* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

वर्ष ७६

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ३
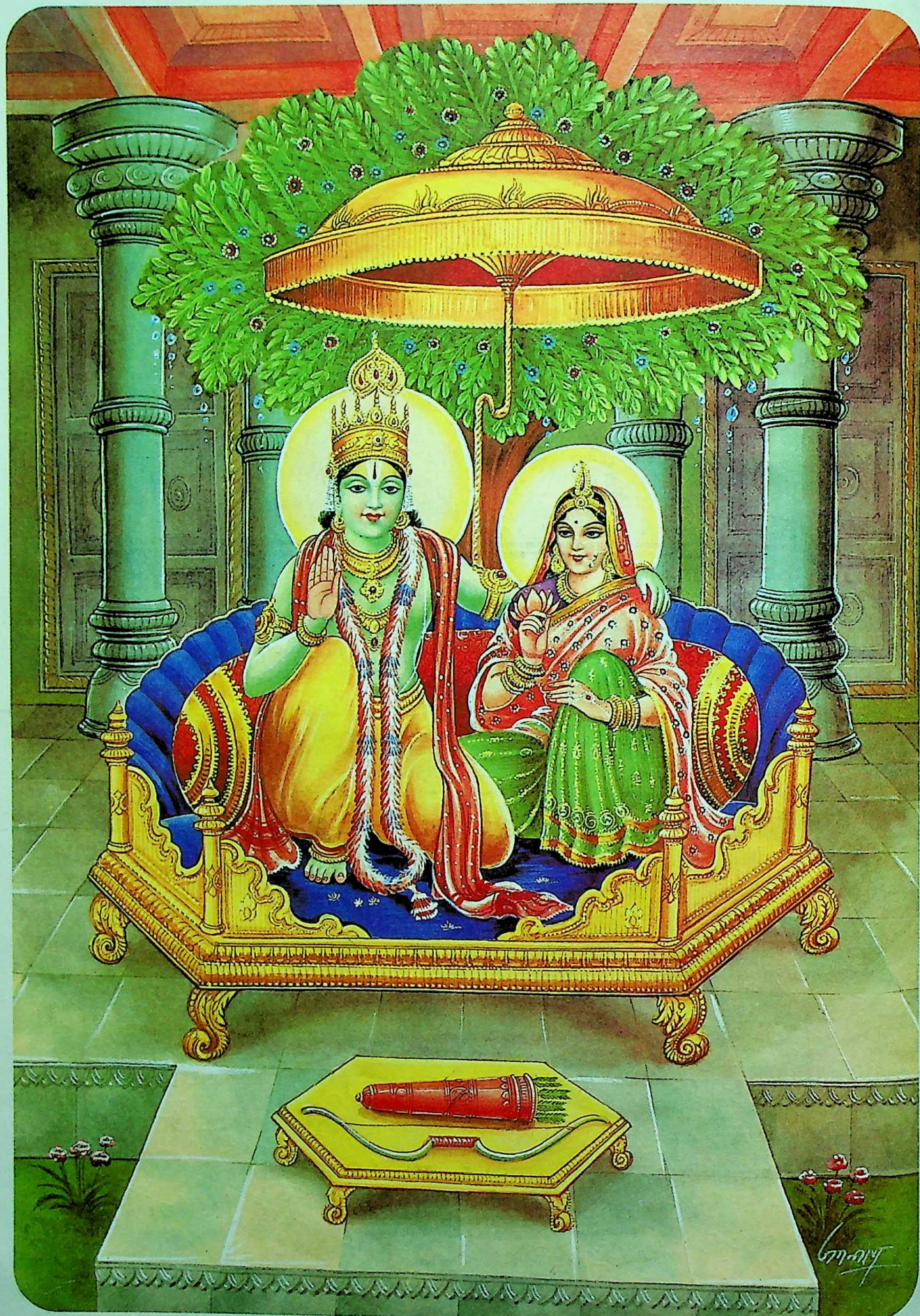
भगवान् श्रीसीताराम

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वर्ष ७६

गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०५८, श्रीकृष्ण-सं० ५२२७, मार्च २००२ ई०

संख्या ३

पूर्ण संख्या ९०४

भक्त-कल्पतरु भगवान् श्रीसीताराम

नील कमल, नव-नील-नीरधर, नील मनोहर मरकत स्याम।
राज-राजमनि-मुकुट कोटि-कंदर्प-दर्प-हर सोभा-धाम॥
राजत रत्न-रचित सिंहासन, भ्राजत सिर मनि-मुकुट ललाम।
अंग-अंग सुचि सुषमा-सागर मुनि-मन-हर लोचन अभिराम॥
बरद हस्त-मुद्रा महिमामय भक्त-कल्पतरु पूरन काम।
जनकनंदिनी सहित सुसोभित सुख-दायक रघुनायक राम॥

(पद-रत्नाकर ८४७)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र, वि०सं० २०५८, श्रीकृष्ण-सं० ५२२७, मार्च २००२ ई०

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

कल्याण

याद रखो—हम आज विज्ञानमें बहुत आगे बढ़ गये हैं। सुदूर राष्ट्रोंकी सीमा गाँवोंकी सीमा-जैसी छोटी हो गयी है। हम आकाशमें इतस्ततः स्वच्छन्द उड़ते हैं, हमारे यन्त्र घंटोंमें पृथ्वीकी परिक्रमा कर लेते हैं; हमारे पास ऐसे आग्नेयास्त्र हैं, जो क्षणोंमें असंख्य प्राणी-समूहका विनाश कर सकते हैं। कारखानों तथा धन-सम्पत्तिकी भी अपार वृद्धि हुई है; भोग-सुख बढ़ गये हैं और जीवन-यात्राका मान भी बढ़ गया है, ऐसा कहा जाता है। यह सब कुछ है, पर शान्ति कहाँ है? अर्थ-पैशाचिकता और अधिकार-लिप्साका सर्वत्र ताण्डव है! प्रपञ्च, पाखण्ड, पातक, प्रमाद, परोत्कर्ष-असहिष्णुता, आतंकवाद और परपीडाका अपार विस्तार हो रहा है। करोड़ों मानव दुःख-दारिद्र्य-ग्रस्त हो गये हैं। आभ्यन्तरिक अशान्तिका साम्राज्य छा गया है। सर्वत्र हाहाकार मचा है। अन्न-वस्त्र आदि जीवनके लिये आवश्यक सभी वस्तुओंमें बेहद महँगी आ गयी है। मनुष्य-मनुष्यमें जहाँ प्रेम बढ़ना चाहिये था, वहाँ द्वेष-वैरके इतने नये-नये कारण उत्पन्न हो गये हैं, जिनकी कल्पना भी पहले नहीं थी। आतंकवादसे सम्पूर्ण राष्ट्र त्रस्त हैं। यह सब क्यों हुआ? इसीलिये कि जड विज्ञानकी चकाचौंधमें चेतन आत्मज्ञान छिप गया और मनुष्यके सामने केवल एक उसीका व्यक्तित्व रह गया है। वह विश्वको, देशको एवं समाजको भूल गया। इसीके फलस्वरूप चारों ओर शङ्का-संदेह, संघर्ष, खून-खराबा और मानसिक-शारीरिक हिंसा व्याप्त हो रही है। मानवने अपने जीवनमें इतनी जटिलताएँ, इतनी समस्याएँ बढ़ा ली हैं कि उनका कहीं अन्त नहीं है। सर्वत्र तमोमयी आसुरी प्रवृत्तिका प्रसार हो रहा है और स्वार्थ-लिप्सा बढ़ती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप कामोपभोगकी—भौतिकताकी प्रधानता हो गयी है।

याद रखो—आज मानवका मन भगवच्चिन्तन, लोकहित-चिन्तनको छोड़कर केवल विषय-चिन्तनमें लगा है; इसीसे गीताके कथनानुसार क्रमशः विषयासक्ति, कामना, क्रोध, सम्मोह एवं स्मृतिभ्रंश होकर उसकी बुद्धिका नाश हो गया है और वह पतित हुआ चला जा रहा है। सारा मानव-समाज परमात्माके सम्बन्धको भुलाकर—'स्व'-स्थताको खोकर सर्वथा प्रकृतिस्थ—'अस्व-स्थ' हो रहा है। व्यक्ति एवं राष्ट्र एक-दूसरेके उत्कर्षको सहन नहीं कर पा रहे हैं, वे विद्वेषकी ज्वालामें स्वयं तो जल ही रहे हैं तथा दूसरोंको भी जला रहे हैं।

इस दुर्दशासे सभी परिचित हैं, पर इसके सुधारका उपाय क्या है? इसका उत्तर है—मानवको 'स्व'-स्थ—आत्मस्थ बनानेके लिये जड भौतिकवादके स्थानपर विशुद्ध अध्यात्मकी, सर्वत्र आत्मदर्शनयुक्त ज्ञानकी स्थापना करनी होगी। इसके लिये ऐसे सात्त्विक प्रकाशकी आवश्यकता है, जो अपने विशुद्ध अनिवार्य प्रभावसे मानव-समाजसे इन सारी बुराइयोंको निकालकर उसे पूर्णरूपसे 'स्व'-स्थ कर दे। ऐसा सात्त्विक प्रकाश 'भगवान्' हैं।

याद रखो—भगवान् सर्वसमर्थ हैं और साथ ही वे सर्वशक्तिमान् हैं; उनका आश्रय ही मानवके लिये परम बल है। हम सब लोग श्रद्धापूर्वक उनका आश्रय ग्रहणकर उनकी पूजाके लिये अपने कर्मोंको उनके अर्पण कर दें तो उपर्युक्त दुर्दशासे हम सहज ही बच सकते हैं। इतना ही नहीं, मानव-जीवनको प्राप्त करनेका परमोद्देश्य अनायास सिद्ध हो जायगा। भगवान्ने गीतामें कहा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८।४६)

'जिससे समस्त प्राणियोंका प्रवर्तन हुआ, जो सबमें व्याप्त है, उस परमात्माको अपने कर्मोंके द्वारा पूजकर—स्वकर्मको ही भगवत्पूजा बनाकर मनुष्य सिद्धिको—जीवनकी सफलताको प्राप्त होता है।'

याद रखो—स्वकर्मको पूजा बनानेका सरलतम साधन है—मानव-समाज एक-दूसरेका हित-चिन्तन करे, हित-साधन करे; मानवके व्यक्तिगत 'स्व'का विस्तार विश्वके प्राणिमात्रमें हो जाय और सबके कल्याणमें, सबके सर्वविध अभ्युदयमें ही उसे अपने कल्याण तथा अभ्युदयकी अनुभूति हो। सेवा हो, पर अभिमान न हो; प्रेम हो, पर मोह न हो; करुणा हो, पर ममता न हो; नीच अहंकारका सदाके लिये शमन हो जाय। यह सब कैसे हो? दूसरोंको आतंकित करने तथा पीडित करनेकी प्रवृत्ति जबतक होगी, तबतक दैवी सम्पदाकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती।

याद रखो—भौतिक दुर्दशासे बचने एवं अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्तिके लिये भगवान् एवं संतोंने यही सरल तथा अमोघ साधन बताया है कि जगत्के सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव रखते हुए भगवत्कृपाका आश्रय ग्रहणकर हम अपने प्रत्येक कर्मको भगवत्पूजाके रूपमें सम्पन्न करें और साथ ही भगवान्से प्रार्थना करें कि वे सबको सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे मानव कल्याणका भागी बन सके।—**'शिव'**

गुप्त भजन एवं सेवाकी महत्ता*

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

किसीने पूछा कि कर्म बड़ा है या भाव? इसका उत्तर है कि भाव ही बड़ा है। भाव अधिक हो और कर्म थोड़ा तो भी वह ऊँचे दर्जेकी चीज बन जाती है और भाव नीचा होनेपर कर्म बड़ा होनेपर भी नीचा दर्जा हो जाता है।

जैसे एक भाई खेती करता है, पर उसका भाव बहुत ऊँचा है कि विश्वको लाभ पहुँचाना है, परंतु वह उद्देश्यका प्रकाश नहीं करता। वह लागत मूल्यपर बेचता है, लोग उसे अपने कॉम्पिटिशन्से बेचना समझते हैं, परंतु भीतरसे उसका भाव लाभ पहुँचाना है। वह कह दे कि लोगोंका उपकार करता हूँ तो वह कम दर्जेका हो जाता है। वह कहता नहीं तो दूसरे भी इसी भाव बेचना शुरू कर देते हैं। वह कह देता तो लोग कम भावमें नहीं बेचते।

एक आदमी यज्ञ, तप इसलिये करता है कि मेरा शत्रु मर जाय तो वह कर्म बहुत नीचे दर्जेका है। लोकदिखाऊ, दूसरेके अनिष्टके लिये या मान-बड़ाईके लिये करना नीचे दर्जेका है।

एक भक्त था, वह गुप्तरूपसे भजन करता था। घरवालोंको किसीको भी इसका पता नहीं था। लोग कहते भजन नहीं करते हो तो वह हँस देता। वह जानता था कि भगवान्‌को ही प्रसन्न करना है। लोगोंसे कहनेसे क्या लाभ है। एक बार स्वप्नमें वह 'राम-राम' कहने लगा तो सब लोगोंने बड़ी खुशी मनायी। उसने पूछा यह क्या हो रहा है तो कहा आप स्वप्नमें 'राम-राम' कह रहे थे। उसने कहा मेरे मुँहसे 'राम-राम' निकल गया, इतना कहकर वह मर गया कि प्रकट हो गया तो अब जीकर क्या करें। भजन गुप्त-से-गुप्त करें।

मनुष्यपर यदि भारी-से-भारी आपत्ति आ जाय, फिर भी सत्यका, धर्मका त्याग नहीं करे तो धर्म भी उसका त्याग नहीं करेगा। मरनेके बाद धर्म ही साथ जाता है। ध्रुव, प्रह्लादपर कितनी आपत्तियाँ पड़ीं, पर उन्होंने धर्मका त्याग नहीं किया। प्रह्लादके पुत्र विरोचन एवं सुधन्वाकी कथा देखें, प्रह्लादने कितना उत्तम न्याय किया।

धर्मपालनमें महाराज युधिष्ठिर बहुत बढ़कर हुए। उनमें दया, क्षमा, धैर्य, शान्ति तथा सत्यता—ये सब थे। इसीसे इनका नाम धर्मराज पड़ा। जब उनके सब भाई मर गये और वे इसी देहसे स्वर्गको गये, तब इन्द्रने कहा कि आप इस नदीमें स्नान करके इस शरीरको बदल लीजिये, क्योंकि देवता इस शरीरसे घृणा करते हैं तो स्नान कर लिया। वहाँ दुर्योधनको देखा तो पूछा कि हमारे भाई कहाँ हैं? मुझे वहीं ले चलो। ले गये तो रास्ता बड़ा भयानक था। पूछनेपर पता चला कि यह नरक है तो वहीं ठहर गये। द्रौपदी, भीमसेन, नकुल, अर्जुन सबकी आवाज आयी कि हम बहुत दुःखी हैं, आप यहाँ ठहरिये। हमें आपसे बड़ा सुख मिल रहा है। युधिष्ठिरने सोचा यह क्या बात है, देवताओंके यहाँ न्याय नहीं है। देवताओंने वापस चलनेको कहा तो उन्होंने कहा कि मैं नहीं जाऊँगा। इतनेमें सारी माया मिट गयी और देखा कि केवल देवराज इन्द्र खड़े हैं। उन्होंने कहा कि आपके भाई नरकके योग्य नहीं हैं। अश्वत्थामाकी मृत्युके बहाने आपने छलसे झूठ कहा था, इसलिये हमने भी आपको छलसे नरक दिखला दिया।

दुर्योधनको स्वर्ग इसलिये मिला कि वह युद्धमें लड़कर मरा है। युधिष्ठिरको दिव्य दृष्टि दी, उन्होंने देखा कि द्रौपदी तो साक्षात् लक्ष्मी बनकर भगवान्‌की सेवा कर रही है और भीमसेन वायु देवताके पास, नकुल-सहदेव अश्विनीकुमारोंके पास बैठे हैं। अर्जुन भगवान्‌के पास बैठा है। जो जिसका अंश है, वह उसी जगह चला गया। युधिष्ठिर फिर धर्मराजके यहाँ चले गये। यहाँ युधिष्ठिरकी दया देखनी चाहिये कि उन्होंने भाइयोंके लिये दुःख उठाना स्वीकार कर लिया। अतः हमको भी ऐसे मौकेपर दुःख उठानेके लिये तैयार रहना चाहिये।

एक दिनकी बात है कि धृतराष्ट्रको भीमसेनने ताना मार दिया, तब उन्होंने तीर्थोंमें जाकर तप करनेका विचार

* प्रवचन—दिनाङ्क २५। ५। ४०, रात्रि, स्वर्गाश्रम।

किया और विदुरसे कहा तो उन्होंने कहा ठीक है। युधिष्ठिर आये, उनके सामने वनमें जानेकी बात कही। उन्होंने मना किया और सेवामें त्रुटि समझकर बहुत पश्चात्ताप किया। आखिर विदुरजीने समझाया कि इन्हें जाने दो, क्योंकि वनमें जाकर प्राण त्याग करना उत्तम है। युधिष्ठिरने बात मान ली, धृतराष्ट्रके मनमें आया कि जाते समय दिल खोलकर खूब दान करूँ। युधिष्ठिर और अर्जुनने खूब उदारताका व्यवहार किया। कहा मेरी सब वस्तुएँ तन, मन, धनपर उनका पूरा अधिकार है। जाते समय उन्होंने खूब दान-पुण्य किया, लोगोंको खूब धन दिया। जाते समय प्रजासे क्षमा माँगी। गांधारीकी सेवाके लिये कुन्ती साथमें गयी। संजय धृतराष्ट्रकी सेवामें गया। वनमें वेदव्यासजीने गांधारीसे पूछा कि तुम्हारा दु:ख किस प्रकार दूर हो। उन्होंने कहा कि मुझे मेरे पुत्रोंसे मिला दो। वेदव्यासजीने अठारह अक्षौहिणी सेनाको बुला दिया, गङ्गाजीमें प्रवेश करके आवाहन किया। जलमें बड़ा शब्द हुआ, फिर हाथी, घोड़े सब वहीं निकले और अठारह अक्षौहिणी सेनाने पड़ाव डाल दिया। सबसे कह दिया गया कि यह सेना रातभर रहेगी, जिनको मिलना हो मिल लो। घोषणा कर दी कि अब आगे कोई नहीं रोना। कोई साथ जाना चाहे तो गङ्गामें गोता लगा ले, वह उसके साथ वहीं चला जायगा। रातभर सब मिले। जिसने गोता लगाया वह उनके साथ विमानमें बैठकर चला गया, गांधारी वगैरह नहीं गये।

जनमेजयको विश्वास नहीं हुआ। कहा कि मेरे पिताको बुला दें, वही यज्ञ पूरा करें तो वेदव्यासजीने वैसा ही करके दिखला दिया। यह महाभारत आश्रमवासिकपर्वकी बात है।

कुन्तीकी तरफ देखो। जब पाण्डव वनमें गये, तब बेचारी कुन्ती रोती रही। धृतराष्ट्र आदि किसीने रोनेपर ध्यान नहीं दिया। वही कुन्ती जब राजमाता हो गयी, तब वनमें सेवा करनेके लिये साथ गयी। हरेक माता-बहिनोंसे यही प्रार्थना है कि जो तुम्हारे साथ बुरा बर्ताव करे, उसके साथ ऐसा उत्तम बर्ताव करके दिखला दे।

एक बार कुन्तीने भगवान्‌के कहनेपर यह वर माँगा कि हमें सदैव दु:ख मिलता रहे जिससे आपकी स्मृति न छूटे—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

कुन्ती सत्यवादी थी, संकटमें दूसरेकी रक्षा करनेवाली थी। पाण्डव लोग एकचक्रा नगरीमें छिपकर रहते थे। उस गाँवमें बकासुर नामक एक राक्षस रहता था। उसके लिये एक आदमी तथा एक गाड़ी बाकला दिया जाता था। जिस घरमें ये रहते थे, उसीकी पारी आ गयी। राजाके सिपाहीने आकर बता दिया। ब्राह्मणने कहा मैं जाऊँगा, ब्राह्मणीने कहा मैं जाऊँगी। उनके एक लड़का और एक लड़की थी, उन्होंने कहा हमें भेज दो। कुन्तीने उनके पास जाकर सारी बात पूछी और कहा मेरे पाँच लड़के हैं, एकको भेज दूँगी। भीमको कहा, वह बड़ा प्रसन्न हुआ। युधिष्ठिर आदिने भी कहा, पर माँने भीमसेनको ही वहाँ भेजा। वहाँ राक्षससे खूब लड़ाई हुई। आखिर भीमसेनने राक्षसको पछाड़कर मार डाला। यहाँ यह देखना चाहिये कि कुन्तीने मृत्युके मुखमें अपने बेटेको भेज दिया। किंतु आजकलकी हमारी माताएँ अपने पुत्रको किसी बीमार व्यक्तिकी सेवामें भी नहीं जाने देतीं।

सुमित्राने लक्ष्मणको रामकी सेवामें भेज दिया तो हमें भी सबको राम समझकर अपनेको सेवामें देना चाहिये। हमारा जीवन एक दिन नष्ट होगा ही, मरनेके बाद न तो इसकी हड्डी काममें आयेगी, न चमड़ा काममें आयेगा, अत: दूसरेकी सेवामें सब कुछ लगा दें। धर्म और ईश्वरके लिये मरनेको तैयार रहना चाहिये—

'जो सिर साटे हरि मिले तो लीजे पुनि दौर।'

यही मुख्य काम है नहीं तो एक दिन शरीर तो भस्मीभूत होना ही है।

स्वारथ सीता राम सों परमारथ सिय राम।
तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहा कहु काम॥

सरल और सुगम साधन—समदर्शन

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

मनुष्य-जीवनका लक्ष्य है—भगवान्‌को पाना; क्योंकि भगवान्‌को पा लेनेके बाद मनुष्यकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि वह निरन्तर सुख-ही-सुख पाता रहे, सब कुछ जान जाय और वह कभी मरे नहीं। भगवान्‌को पा लेनेके बाद मनुष्य निरन्तर आनन्द-ही-आनन्द पाता रहता है, सब कुछ जान जाता है और मौतसे बच जाता है। क्योंकि भगवान्‌को पा लेनेके बाद मनुष्य स्वयं आनन्दमय, ज्ञानमय और सन्मय बन जाता है—

'विष्णुसायुज्यतां व्रजेत्'॥

(पद्मपु० सृ०खं० ५२। ९५)

इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके अनेक साधन हैं। उनमें समदर्शन सबसे सुगम और सरल साधन है।

समदर्शनका अर्थ—'सम' का अर्थ है अस्पृष्ट अविक्रिय ब्रह्म—भगवान्।* क्योंकि भगवान्‌का आनन्दमय, ज्ञानमय और सन्मयस्वरूप सदा सम रहता है। इनमें कभी विषमता नहीं होती। विषमता तो होती है इनकी बहिरङ्गा शक्ति प्रकृतिमें और उसके बनाये जगत्‌में। ये जो विषम संसारके पदार्थ हैं, उनमें भगवान् (सम)-को देखना—यही समदर्शनका अर्थ है।

समदर्शनकी विधि—शास्त्रोंने बताया है कि कंकड़-पत्थर आदि जड़; मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष आदि चेतन और चेतनमें भी शत्रु, मित्र, उदासीन—जो भी दीख जाय, उसमें भगवान्‌को देखना। यही समदर्शनकी विधि है। किंतु साधक अब कोई पाप न करे—

विशेषे समभावस्य पुरुषस्यानघस्य च।
अरौ मित्रेऽप्युदासीने मनो यस्य समं व्रजेत्।

(पद्मपु० सृ०खं० ५२। ९५)

इस तरह साधन-अवस्थामें कोई पाप नहीं हो रहा है, रह गये पहलेके किये हुए पाप। शास्त्र बताते हैं कि साधकके पूर्व अर्जित पापोंको यह समदर्शन-साधन ही समाप्त कर देता है, तब—

सर्वपापक्षयस्तस्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत्॥

(पद्मपु० सृ० खं० ५२। ९५)

साधन सुगमतम और फल महत्तम—लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये योग, तपस्या आदि साधन हैं; परंतु उनमें काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य आदि शत्रुओंको जीतनेके लिये अभ्यास आदि कठिन उपाय करने पड़ते हैं और इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, मृदुभाषिता, ऋजुता आदि गुणोंके समावेशके लिये कठोर उपाय बरतने पड़ते हैं। किंतु इस समदर्शन-साधनमें सभी दोष स्वयं दूर हटते जाते हैं—भगवान्‌से कैसी ईर्ष्या, कैसा लोभ, कैसा अभिमान आदि। जो सामने दीख रहा है, वह भगवान् ही तो हैं। भगवान्-ही-भगवान् दीख रहे हैं तो मन भागकर जायगा कहाँ? इस तरह मनोनिग्रह आदि गुण स्वयं साधकमें आने लगते हैं। यह है इस साधनकी सुगमता। बस, अपने प्रिय मनोरम भगवान्‌को देखते जाओ—देखते ही जाओ।

पद्मपुराणमें समदर्शी तुलाधारकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि तुलाधारमें ये सभी सद्गुण हैं—

सत्यं दमः शमश्चैव धैर्यं स्थैर्यमलोभता।
अनाश्चर्यमनालस्यं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्॥
तेन वै देवलोकस्य नरलोकस्य सर्वशः।
वृत्तं जानाति धर्मज्ञस्तस्य देहे स्थितो हरिः॥
लोके तस्य समो नास्ति समः सत्यार्जवेषु च।
स च धर्ममयः साक्षात् तेनैव धारितं जगत्॥

(सृ०खं० ५२। ९७—९९)

अर्थात् सत्य, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, धीरता, स्थिरता, निर्लोभता, आलस्यहीनता आदि सभी गुण समदर्शी तुलाधारमें प्रतिष्ठित हैं। इसीसे तुलाधारका नाम धर्म-तुलाधार हो गया था। उसकी देहमें भगवान् रहते थे। इस तरह धर्म-तुलाधार स्वयं ही लक्ष्यको पा गये थे।

* सत्त्वादिगुणैः तज्जैः च संस्कारैः तथा राजसैः तथा तामसैः च संस्कारैः अत्यन्तम् एव अस्पृष्टं समम् एकम् अविक्रियं ब्रह्म। (गीता ५। १८ शांकरभाष्य)।

यह तो हुआ समदर्शीका निजी लाभ। समदर्शी केवल अपनेको ही लाभ नहीं पहुँचाता अपितु अपनी करोड़ों पीढ़ियोंको भी तार देता है—**एवं यो वर्तते नित्यं कुलकोटिं समुद्धरेत्**। समदर्शी केवल अपनेको और अपने कुलको ही लाभ नहीं पहुँचाता, अपितु सम्पूर्ण विश्वको लाभ पहुँचाता है। भगवान्ने बताया है कि धर्म-तुलाधारने सम्पूर्ण जगत्को सँभाल रखा था—

तेनैव धारितं जगत्।

इस तरह समदर्शन सुगम-से-सुगम साधन है और इसका फल महान्-से-महान् है। इसीलिये शास्त्रोंने इस साधनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है—

समो धर्मः समः स्वर्गः समं हि परमं तपः।

यही कारण है कि सत् और असत्का विवेचन करनेवाले पण्डित समदर्शी हुआ करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (५।१८)-में कहा गया है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

अर्थात् उत्तम संस्कारवाले ब्रह्मविद्, विनयी, सात्त्विक गुणसे युक्त ब्राह्मणमें, मध्यम गुण—रजोगुणसे युक्त गौमें, संस्कारहीन केवल तमोगुणवाले हाथी, कुत्ता तथा चाण्डालमें पण्डितलोग समदर्शी हुआ करते हैं। अर्थात् इन विषयोंमें सम—भगवान्को देखा करते हैं। यानी विषममें सम अविक्रिय (विकाररहित) ब्रह्मको देखनेके स्वभाववाले होते हैं[1]।

समदर्शन साधन सरस भी है—विष्णुसायुज्य पाकर सन्मय, ज्ञानमय और आनन्दमय होकर निरन्तर आनन्द-ही-आनन्द प्राप्त करनेपर भी कुछ तत्त्ववेत्ता संतुष्ट नहीं होते। वे ब्रह्मको प्रेमरूप[2] भी जानते हैं। वे जानते हैं कि सृष्टिका एकमात्र प्रयोजन लीला[3] है। वे यह भी जानते हैं कि इस लीलामें भाग लेनेके लिये मुक्त भी शरीर धारण करते हैं—**ब्रह्मवादिनो मुक्ता लीलया विग्रहं कृत्वा नयन्ति॥** (बृ० पूर्व ता०उप० २।४ शां०भाष्य)

स्वयं भगवान् भी योगमायासे शरीर धारण करके अपने शरीरका स्पर्शकर उनके ब्रह्मानन्दमें पूर्ण उपनीत करते हैं।

इस तरह समदर्शी सबमें ब्रह्मको देखते हैं और उनसे प्रेम भी करते हैं। अपने मनसे कल्पित मनोरम भगवान्का सौन्दर्यमय स्वरूप देखकर हृदयमें रससंचार हो ही जाता है। इनका जो ब्रह्मानन्द है वह उल्लसित हो उठता है। प्रसिद्ध समदर्शी संत नामदेव ब्रह्मराक्षसमें अपने मनोरम विट्ठल (श्रीकृष्ण)-को देखकर रससे विह्वल हो गये थे। प्रेममें देखा-देखीका खेल चलता रहता है। समदर्शी भगवान्को कण-कणमें देखता है।

भगवान् भी समदर्शीको देखा ही करते हैं—प्रश्न उठता है कि समदर्शी तो घट-घटमें भगवान्को देख रहा है तो क्या भगवान् भी इसे देखते हैं। इसका उत्तर भगवान्ने स्वयं 'हाँ' में दिया है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

भाव यह है कि समदर्शी जिस तरह सबमें मुझको देखता है, वैसे ही मैं भी समदर्शीको देखा करता हूँ—प्रेममें इस देखा-देखीके खेलका बहुत महत्त्व है और यह देखा-देखी दोनों ओरसे चलती ही रहती है—

प्रेमखेलौनवा यही बिसेषा।
मैं तोहि देखूँ तू मोहि देखा॥

(कबीर)

इस देखा-देखीसे दोनों रसमय हो जाते हैं। समदर्शी तो मस्तीसे गाता है—

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

(स्वामी रामतीर्थ)

गोपियाँ अपने प्रियतमको कण-कणमें देखकर निहाल हो जाती हैं—

जित देखौं तित श्याममयी है।

---

१. विद्याविनयसम्पन्ने उत्तमसंस्कारवति ब्राह्मणे सात्त्विके मध्यमायां च राजस्यां गवि संस्कारहीनायाम् अत्यन्तम् एव केवलतामसे हस्त्यादौ च सत्त्वादिगुणैः तज्जैः च संस्कारैः तथा राजसैः तथा तामसैः च संस्कारैः अत्यन्तम् एव अस्पृष्टं समम् एकम् अविक्रियं ब्रह्म द्रष्टुं शीलं येषां ते पण्डिताः समदर्शिनः। (गीता शां० भा०)

२. तस्मात् प्रेमानन्दात् (सामरहस्योपनिषद्)

३. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् (ब्र०सू० २।१।३३)

भगवान्‌का प्रेम कृपासाध्य है, साधन-साध्य नहीं—यहाँ ध्यान देनेकी बात है कि समदर्शनमें साधक और भगवान् दोनों एक-दूसरेको देखते हैं,प्रेमका अंश आ जानेसे साधक आनन्दसे उल्लसित भी हो उठता है, किंतु पादविभूतिमें लीलाकी आयोजिका (प्रकृति)-ने दो आँखें हमें दी हैं। इन आँखोंसे यदि भगवान्‌के सौन्दर्यको देखा जाय तब उस आनन्दमें वह उल्लास उठने लगता है, जिसकी सीमा नहीं होती। समदर्शनमें मनकी आँखें उस सौन्दर्यको नहीं देख पातीं। भगवत्प्रेम किसी साधनसे साध्य नहीं, अपितु कृपासाध्य है। वह समदर्शनसे भी साध्य नहीं, उसके लिये हमें भगवान्‌की कृपा प्राप्त करनी होगी। एक उदाहरण ले लिया जाय—

उपनिषदोंमें मिथिलाधिपति राजा जनकका उल्लेख है। वे ब्रह्मानन्दमें इतना लीन रहते थे कि उन्हें देहका भी भान नहीं होता था। इसलिये वे विदेह कहलाते थे। भगवान्‌ने उनपर कृपा कर दी। अपने अनुज लक्ष्मणके साथ भगवान् उनकी आँखोंके सामने आ गये। सौन्दर्यसिन्धु और प्रेमरूप भगवान्‌को देखते ही वे प्रेमानन्दमें इतना उल्लसित हो उठे कि ब्रह्मानन्द फीका पड़ गया। यह उल्लास प्रेमसे होता है। भगवान्‌के सौन्दर्यने विदेहको प्रेममय बना दिया। उन्होंने कहा है—

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

(रा०च०मा० १।२१६।५)

इसलिये समदर्शीको चाहिये कि वे भगवान्‌का प्रेम पानेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करें—***हे प्रभो! समदर्शिता और प्रेम अपना दीजिये। लीजिये मुझको शरणमें सिक्त रससे कीजिये॥*** विभीषण भी समदर्शी थे। उन्होंने भी भगवान्‌से प्रार्थना की थी कि 'हे भगवान्, आप मुझे वह प्रेम दें जो शिवजीके पास है'—

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥

(रा०च०मा० ५।४९।७)

इसी तरह हमें भी प्रेमकी याचना करनी है। समदर्शन-साधन ठीक-ठीक चलता रहे, इसलिये भी भगवान्‌की कृपा अपेक्षित है। विदेहकी तरह विभीषण भगवान्‌को इन आँखोंसे नहीं देख पाये थे। अतः पूर्ण उल्लसित नहीं हो पाये थे। उनका भाग्य था कि उनके समयमें भगवान् अपने मोहक सौन्दर्यको लेकर अवतीर्ण हुए, जिसे देखकर मलिन प्राणी भी सुध-बुध खो बैठते थे। पुल बँध जानेपर जब भगवान् उससे होकर जाने लगे, तब सब जलचर उनको देखनेके लिये तटपर पहुँच गये थे। भगवान्‌ने विभीषणसे कहा है कि मैं तुम-जैसे समदर्शी संतोंके लिये ही देह-धारण करता हूँ—

समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥

(रा०च०मा० ५।४८।६—८)

यही बात भगवान् अपनी वेद-वाणीसे कह रहे हैं—**वर्ष्मणोप स्पृशामि।** (ऋक्० १०।१२५।७) **मायात्मकेन मदीयेन देहेन उपस्पृशामि** (सायणभाष्य) योगमायासे चिन्मय शरीर धारणकर ऐसे संतोंको गले लगा लेता हूँ। स्वयं प्रेम जब शरीर धारणकर प्रेमी बन जाता है और अपने सुकोमल अङ्कमें अपने प्रेमास्पदको भरकर आँखोंकी स्निग्ध छाया प्रदान करता है, सहलाता है; तब प्रेमास्पदको ब्रह्मानन्दमें जो उल्लास उठता होगा, उसकी कोई सीमा रहती होगी क्या?

समदर्शी विभीषण इन्हीं मनोरथोंको करते हुए भगवान् रामके पास पहुँचे और पहुँचकर डंडेकी तरहसे लेटकर उनके चरण छुए, इससे भगवान् भी उल्लसित हो उठे और उन्होंने उनको भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया—

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥

(रा०च०मा० ५।४६।१-२)

समदर्शन करनेवालोंको चाहिये कि वे इन आँखोंसे देखनेके लिये भगवान्‌से प्रेमकी याचना करें और समदर्शन-साधनमें मन रमा रहे इसके लिये भी प्रार्थना करें। प्रथम पादमें लीलाकी आयोजिका प्रकृतिने हमें इन आँखोंको इसीलिये दिया है।

समदर्शन करें, समव्यवहार न करें—यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि साधनका नाम समदर्शन है न कि समव्यवहार। गीताने '**समदर्शिनः**' कहा है न कि '**समवर्तिनः**'। सत्यरूप भगवान्‌को हमें कण-कणमें देखना है। सत्य तीन प्रकारका होता है—१-पारमार्थिक सत्य, २-व्यावहारिक सत्य और ३-प्रातिभासिक सत्य। भगवान् तो पारमार्थिक

सत्य हैं, उनकी बहिरङ्गा शक्ति प्रकृति और इसके कार्य व्यावहारिक सत्य हैं। यह प्रकृति प्रथम पादमें लीलाका आयोजन करती है। अतः इस लीलामें भाग लेनेके लिये जो विषम व्यवहार हैं इन्हें हमें अपनाना ही होगा। यदि हम ऐसा न करें अर्थात् इस व्यावहारिक सत्यको न मानें तो हमें रोटी खानेका भी अधिकार न रहेगा। साँस लेनेके अधिकारसे भी वञ्चित होना पड़ेगा। क्योंकि अन्न खानेसे भूख मिटना व्यावहारिक सत्य है। कंकड़-पत्थर खानेसे भूख नहीं मिटती यह भी सत्य है। यदि हम इस सचाईको न मानें तो हम रोटी कैसे खायेंगे? हमें कंकड़-पत्थर खाकर मरना होगा। साँस लेनेसे जीवित रहना व्यावहारिक सत्य है, अतः हम साँस लेते रहते हैं। यदि हठवश हम प्रकृतिके इस नियमको न मानें तो हमें नाक-मुँह बंद करके रहना होगा ताकि साँस न ले सकें।

अतः व्यावहारिक सचाईको मानकर व्यवहारमें विषमता बरतनी चाहिये। गायमें और कुत्तामें हमें भगवान्‌को ही देखना है, किंतु उनको भोजन देते समय विषम व्यवहार अपनाना ही होगा। हरे चारेसे हम गौको हृष्ट-पुष्ट कर सकते हैं, किंतु कुत्तेके लिये हरा चारा देना उसको मारना है। अतः हमें साम्यज्ञान चाहिये, साम्यवाद नहीं अर्थात् समदर्शन करना चाहिये, समव्यवहार नहीं।

शत्रुमें, मित्रमें, उदासीनमें हमें समदर्शन करना चाहिये किंतु समव्यवहार नहीं। यह समदर्शन हमें ब्रह्मासे ही प्राप्त हुआ है। ब्रह्माने इस समदर्शनको नारदको दिया, नारदने प्रह्लादको—इस तरह यह परम्परासे हमें प्राप्त है। मनुने स्पष्ट कह दिया है कि समव्यवहार मत करो। मित्रकी तरह उदासीन और शत्रुमें भी परमेश्वरको देखो। इनमें प्रेम करो पर व्यवहार शास्त्रके अनुसार भिन्न-भिन्न करो। शत्रुसे प्रेम करो और उन्हें सम्मान देकर उनसे समस्याका हल ढूँढ़ो—**'प्रीत्यादरदर्शनहितकथनाद्यात्मकेन साम्ना हस्त्यश्वरथहिरण्यादीनां च दानेन तत्प्रकृतीनां तदनुयायिनां च राज्यार्थिनां भेदेन। एतैः समस्तैर्व्यस्तैर्वा यथासामर्थ्यमरीञ्जेतुं यत्नं कुर्यान्न पुनः कदाचिद्युद्धेन'** (मनुस्मृति ७। १९८ कुल्लूककृत टीका)। यदि इसमें सफलता न मिले तब युद्धका भी सहारा लो। व्यवहारोंमें वैषम्य तो चाहिये ही; जैसा व्यवहार मित्रके साथ वैसा शत्रुके साथ सम्भव नहीं।

बीसवीं सदीमें भारतने उपनिवेशवादी शत्रु देशोंके साथ मित्रता निभायी, उन्हें आदर-सम्मान देकर सत्याग्रहके रास्ते अपना काम निकाला। अन्तमें तीसरे उपनिवेश (गोवा, दमन, दीवसे पुर्तगाल)-को हटानेमें युद्धका भी सहारा लिया।

यह था समदर्शनका राजनीतिमें प्रयोग।

हाँ, तो आइये अन्तमें एक बार फिर प्रभुसे प्रार्थना करें कि वे समदर्शन साधनमें हमें लगायें और कृपा करके अपना प्रेम दें—

हे प्रभो! समदर्शिता और प्रेम अपना दीजिये।
लीजिये मुझको शरणमें सिक्त रससे कीजिये॥

अपना बिरद सँभालो भगवन्!

बहुत दुखी हूँ प्रभो, आज मैं होकर तुमसे दूर!

फूलोंके जो स्वप्न सँजोए, बोकर पेड़ बबूल,
छिन्न-भिन्न हो गये सभी वे, मिले शूल-ही-शूल।
विषय-सुखोंमें रहा भटकता, अहंकारमें चूर!
बहुत दुखी हूँ प्रभो, आज मैं होकर तुमसे दूर!
जाने क्या-क्या समझा अपना, थी वह मेरी भूल,
लोभ ब्याजका इतना भारी, गया साथमें मूल!
ज्यादा-से-ज्यादा संग्रह कर, माना खुदको शूर!
बहुत दुखी हूँ प्रभो, आज मैं होकर तुमसे दूर!

पर-निंदा, पर-पीड़ामें ही रहा सदा मशगूल,
डाह-द्वेषमें खूब उछाली सबपर कीचड़-धूल।
काम न कोई हुआ पुण्यका, पाप किये भरपूर!
बहुत दुखी हूँ प्रभो, आज मैं होकर तुमसे दूर!
'बाल' शरणमें आज तुम्हारी, कर लो प्रभो! कबूल,
मैं पापी तो तुम हो तारक—यह मत जाओ भूल।
अपना बिरद सँभालो भगवन्, जो जगमें मशहूर!
बहुत दुखी हूँ प्रभो, आज मैं होकर तुमसे दूर!

(श्रीबालकृष्णजी गर्ग, साहित्यरत्न, आयुर्वेदरत्न)

रासलीला-चिन्तन *

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

आज रास-पूर्णिमा है। 'रास' शब्दको सुनकर हमलोग प्राय: जो रासलीला होती है उसीकी ओर देखते हैं, हमारी दृष्टि वहीं जाती है। परंतु भगवान्‌के रासको थोड़ा-सा समझ लेना चाहिये। 'रास' शब्दका मूल है रस और रस है भगवान्‌का रूप। **'रसो वै सः'** (तैत्ति० उपनिषद् २।७)। रासमें एक ऐसी दिव्य क्रीडा होती है जिसमें एक ही रस अनेक रसोंके रूपमें होकर अनन्त-अनन्त रसोंका समास्वादन करता है और यह एक ही रस—रससमूहके रूपमें प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद्य, स्वयं ही आस्वादक, लीला, धाम, विभिन्न आलम्बन और उद्दीपनके रूपमें प्रकट हो जाता है तथा एक दिव्य लीला होती है, इसीका नाम 'रास' है।

'रास' का अर्थ है लीलामय भगवान्‌की लीला और वह लीला है भगवान्‌का स्वरूप। रास भगवान्‌का स्वरूप ही है। इसके सिवाय और कुछ नहीं। भगवान्‌की जो दिव्य लीला है रासकी, यह नित्य चलती रहती है और चलती ही रहेगी। इसका कोई ओर-छोर नहीं है। कबसे शुरू हुई और कबतक चलती रहेगी यह कोई बता नहीं सकता है। कभी-कभी कुछ बड़े ऊँचे प्रेमी महानुभावोंके प्रेमाकर्षणसे हमारी इस भूमिमें भी रासलीलाका अवतरण होता है। वह अवतरण भगवान् श्रीकृष्णके प्राकट्यके समय हुआ। उसीका वर्णन श्रीमद्भागवतमें 'रास-पञ्चाध्यायी' के नामसे है। पाँच अध्यायोंमें उसका वर्णन है।

इसमें सबसे पहले वंशीध्वनि है। वंशीध्वनिको सुनकर गोपिकाओंका अभिसार है। श्रीकृष्णसे उनका वार्तालाप है। दिव्य रमण है। श्रीराधाजीके साथ श्रीकृष्णका अन्तर्धान है, पुनः प्राकट्य है। फिर गोपियोंके द्वारा दिये हुए वसनासनपर भगवान्‌का विराजना है। गोपियोंके कुछ कूट प्रश्नों—गूढ प्रश्नों—प्रेम-प्रश्नोंका उत्तर है। फिर रास-नृत्य-क्रीडा, जलकेलि और वन-विहार है। अन्तमें परीक्षित्‌के संदेहान्वित होनेपर रासका वर्णन बंद कर दिया जाता है ।

यह बात सबसे पहले समझ लेनी चाहिये, याद रखनेकी बात है—इसीलिये इस 'रास-पञ्चाध्यायी' में सबसे पहला शब्द आता है 'भगवान्'।

'भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।'

(श्रीमद्भा० १०। २९। १)

'शरदोत्फुल्लमल्लिकाः' का अर्थ क्या होता है? हम जो जानते नहीं हैं। भला, शरद् ऋतुमें मल्लिका कैसी? शरद् ऋतुमें मल्लिका कहाँसे फूली? और फिर उसके विचित्र भाव हैं, विचित्र अर्थ हैं। यह अनुभवकी चीज है। इतनी बात अवश्य जान लेनी चाहिये कि यह जो कुछ है यह भगवान्‌में, भगवान्‌का है।

यह जडकी सत्ता जीवकी दृष्टिमें होती है। भगवान्‌की दृष्टिमें जडकी सत्ता नहीं है। यह देह और देही है, इस प्रकारका जो भेदभाव है यह प्रकृतिके राज्यमें है, जड-राज्यमें है। अप्राकृतिक लोकमें जहाँ प्रकृति भी चिन्मय है, वहाँ सभी कुछ चिन्मय होता है। वहाँ जो अचित्‌की प्रतीति होती है कहीं-कहीं, वह तो केवल चिद्विलास अथवा भगवान्‌की लीलाकी सिद्धिके लिये होती है। अचित् वहाँ कुछ है ही नहीं।

इसलिये होता क्या है कि हमारा जो मस्तिष्क है यह जड-राज्यमें है। हम जीव हैं न! हम जड-राज्यमें प्राकृतिक चीजों—जडको देखते हैं। जब हम कभी किसी अप्राकृत वस्तुका विचार करते हैं जैसे भगवान्‌की दिव्य लीलाका प्रसंग, रासलीला इत्यादि तो यह सर्वथा अप्राकृत—चिन्मयलीला है; परंतु हम विचार करते हैं कामसे, उस बुद्धिसे जो बुद्धि जडमें प्रविष्ट है और जडको ही देखती है। अपने जड-राज्यकी धारणाओं, कल्पनाओं, क्रियाओंको लेकर हम उसीका दिव्य राज्यमें आरोप कर लेते हैं और अपनी सड़ी-गली गंदी आँखोंसे हम उसी सड़ी-गली गंदी चीजों तथा हाड़-मांस एवं रक्तसे बने हुए और विष्ठा-मूत्रसे भरे हुए ऐसे शरीरकी कल्पना करते हैं। इसीको देखते हैं। चिन्मय राज्यमें हम प्रवेश नहीं करते हैं। इसीलिये रासमें हमलोग, स्त्री-पुरुषोंकी लीलाकी कल्पना करते हैं, पर यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि यह परम उज्ज्वल दिव्य रसका प्रकाश है। जड-जगत्‌की बात तो दूर रही, ज्ञान या विज्ञानरूप जगत्‌में भी यह रास प्रकट नहीं होता है। इतना ही नहीं जो साक्षात् चिन्मय तत्त्व है, उस दिव्य चिन्मय तत्त्वमें भी उस उज्ज्वल रसका लेशाभास नहीं रहता है।

* शरत्पूर्णिमापर दिया गया एक प्रवचन।

इस परम रसकी स्फूर्ति परमभावमयी, श्रीकृष्ण-प्रेमस्वरूपा, कृष्णगृहीतमानसा उन श्रीगोपीजनोंके मधुर हृदयमें होती है और गोपियोंका वह मधुर हृदय भगवान्‌का ही स्वरूप है। इसीलिये इस रासलीलाके यथार्थ रूपको और परम माधुर्यको समझनेके लिये सबसे पहले यह समझना चाहिये कि यह रासलीला भगवान्‌की दिव्य चिन्मयी लीला है। गोपियाँ भगवत्स्वरूपा हैं, वे चिन्मयी हैं, सच्चिदानन्दमयी हैं। अब साधनाविधिसे भी उन्होंने मानो एक तरहसे जड शरीरका त्याग कर दिया है। शरीरसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग-सुख और कैवल्यसे अनुभव होनेवाले मोक्ष—इनका भी उन्होंने त्याग कर दिया है। गोपिकाओंकी दृष्टिमें क्या है, यह बहुत समझनेकी चीज है। यह साधनाकी बहुत ऊँची-से-ऊँची चीज है।

गोपियोंकी दृष्टिमें हैं केवल चिदानन्दस्वरूप प्रेमास्पद श्रीकृष्ण, बस और कुछ नहीं। उनके हृदयमें श्रीकृष्णको तृप्त करनेवाला प्रेमामृत आ गया है। यही उनके हृदयमें छलकता रहता है। इसीलिये श्रीकृष्ण उनके हृदयके प्रेमामृतका रसास्वादन करनेके लिये लालायित होते हैं, लालायित रहते हैं। इसीलिये श्रीकृष्णने मनकी रचना की, इसीलिये उन्होंने गोपाङ्गनाओंका आवाहन किया और इसीलिये इन शरद्‌की रात्रियोंको उन्होंने चुना एवं उनको बुलाया। यहाँपर यह कल्पना नहीं करनी चाहिये कि यहाँ कोई जड देह है। यहाँपर गोपियोंको पहचानना चाहिये, औरोंकी बात छोड़ दीजिये। शास्त्रोंमें आता है कि ब्रह्मा, शङ्कर, उद्धव, नारद और अर्जुन-जैसे लोगोंने गोपियोंकी उपासना करके और गोपीभावकी थोड़ी-सी लीला देखनेके लिये वरदान प्राप्त किया और अनसूया, सावित्री इत्यादि देवियाँ जो महान् पतिव्रता हैं, ये गोपियोंकी चरणधूलिकी उपासिका हैं।

एकमात्र श्रीकृष्णके अलावा और कोई पति है ही नहीं—इस बातको देखनेवाली तो परम पतिव्रता गोपियाँ ही थीं और कोई था ही नहीं, ऐसा कोई हुआ ही नहीं।

सबसे पहले यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि यह भगवान्‌की लीला है। भगवान्‌का सच्चिदानन्दघन शरीर दिव्य है, अजन्मा है, अविनाशी है, हानोपादानरहित है, सनातन है, शुद्ध है। इसी प्रकार गोपियाँ भी भगवान्‌की स्वरूपभूता श्रीराधाजीकी काय-व्यूहरूपा हैं। ये उनकी अन्तरङ्ग शक्तियाँ हैं। इन दोनोंका सम्बन्ध भी नित्य और दिव्य है। यह भाव-राज्यकी लीला स्थूल मनसे परेकी बात है। इसलिये जब गोपियोंका आवरण भंग हुआ तब इस लीलाके लिये भगवान्‌ने उनको संकेत किया दिव्य रात्रियोंका। उसी संकेतके अनुसार भगवान्‌ने उनका आवाहन किया। रास यहींसे आरम्भ होता है। बहुत संक्षेपमें दो-तीन-चार श्लोकोंकी बात कह देनी है, अधिक नहीं।

यह भगवान्‌का मिलन कब होता है? जब किसी और वस्तुकी कल्पना भी मनमें नहीं रहती है तथा भगवान्‌के मिलनके लिये चित्त अत्यन्त आतुर हो जाता है। यह दशा तब होती है जब भगवान् उसे देखते हैं कि अब यह जरा-सा इशारा पाते ही, जरा-सा संकेत पाते ही सर्वस्वका त्याग तो कर ही चुका है, उस सर्वस्वके त्यागको प्रत्यक्ष करके मेरी ओर आ जायगा; इस प्रकारकी स्थिति जब भगवान् देखते हैं तो भगवान् मुरली बजाते हैं। भगवान् मुरली बजाते हैं और वह मुरलीकी ध्वनि उन्हींको सुनायी देती है। भगवान्‌ने उस समय व्रजमें जो मुरली बजायी, उस मुरलीकी ध्वनि दिव्य लोकोंमें पहुँच-पहुँचकर वहाँके देवताओंको भी स्तम्भित कर देती है, नचा देती है। परंतु उस मुरलीकी ध्वनि उस दिन—आजके दिन—शारदीय रात्रिके दिन औरोंने नहीं सुनी। मुरली बजी, सब जगह बजी, परंतु उस मुरलीकी ध्वनि किनके कानोंमें गयी? उनके जिनका कि हृदय भगवान्‌से मिलनेके लिये अत्यन्त उत्तप्त था, आतुर था। मुरली क्या थी? यह भगवान्‌का आवाहन था। गोपियोंकी साधना पूर्ण हुई। भगवान्‌ने शारदीय रात्रियोंमें उनके साथ विहार करनेका संकल्प कर लिया। मुरली बजी तो क्या हुआ? श्रीमद्भागवतमें इसपर बड़ी सुन्दर बात लिखी है—

> निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
> व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
> आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
> स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः॥[१]
> (१०।२९।४)

१. भगवान्‌का वह वंशीवादन भगवान्‌के प्रेमको, उनके मिलनकी लालसाको अत्यन्त उकसानेवाला—बढ़ानेवाला था। यों तो श्यामसुन्दरने पहलेसे ही गोपियोंके मनको अपने वशमें कर रखा था। अब तो उनके मनकी सारी वस्तुएँ—भय, संकोच, धैर्य, मर्यादा आदिकी वृत्तियाँ भी छीन लीं। वंशीध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र गति हो गयी। जिन्होंने एक साथ साधना की थी श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये, वे गोपियाँ भी एक-दूसरेको सूचना न देकर—यहाँतक कि एक-दूसरेसे अपनी चेष्टाको छिपाकर जहाँ वे थे, वहाँके लिये चल पड़ीं। परीक्षित्! वे इतने वेगसे चली थीं कि उनके कानोंके कुण्डल झोंके खा रहे थे।

यह स्थिति है भगवान्‌के विरही साधकको। बड़ी ऊँची स्थिति है। कहते हैं कि मुरली बजी। मुरलीका गीत उन्हें सुनायी दिया। गीत कैसा था? अनङ्गवर्धन था। संसारमें प्रकृतिकी जितनी भी चीज हम देखते हैं इनमें कोई अनङ्ग नहीं है। प्रकृति अनङ्ग नहीं है। प्रकृति अङ्गवाली है और ये अङ्गवाली कोई चीज इनके मनमें रही नहीं। अङ्गवाली कोई चीज गोपियोंके मनमें नहीं रही तो रहा वह जो अनङ्ग है—अनङ्ग कौन है? अनङ्ग भगवान् हैं, प्रेम है और कोई अनङ्ग है ही नहीं। इस अनङ्गकी, इस प्रेमकी वृद्धि करनेवाली वेणुकी ध्वनि गोपियोंके कानोंमें पड़ी। एक शब्द बड़ा सुन्दर है—'**कृष्णगृहीतमानसा:**' इसका अर्थ है—जिनके मनोंको श्रीकृष्णने पहलेसे ही ले रखा था। गोपियोंका मन अपने वशमें नहीं था। वे '**श्रीकृष्णगृहीतमानसा:**' नहीं होंगी तो उनको घरके कामसे छुट्टी नहीं मिल सकती। जो कृष्णगृहीतमानस नहीं है, वह भगवान्‌के आह्वानको नहीं सुन सकता। वह तो घरमें फँसा है, उसको घरकी पुकार सुनायी पड़ती है चारों ओरसे। उसे मुरलीकी पुकार कहाँसे सुनायी देगी। इसलिये यह मुरलीकी पुकार व्रजमें गयी, पर उन्हीं व्रजबालाओंने सुना। जिनका घरमें मन था, जो कृष्ण-गृहीतमानस नहीं थे, वहाँ तो घरमें ही उनका मानस रम रहा था, घरने ही उनके मानसको पकड़ रखा था। गोपियाँ कैसी थीं? ये '**कृष्णगृहीतमानसा:**' थीं—इनके मनको श्रीकृष्णने पहलेसे ही ले रखा था।

हमें यह चाहिये कि इस मनको खुला छोड़ दें, यद्यपि हमने तो खुला छोड़ ही रखा है। यह जहाँ चाहता है वहाँ हमें ले जाता है, पर इसे ऐसे खुला नहीं छोड़ना है। इसे कृष्णमें लगाकर छोड़ना है। विषयोंमें लगे हुए मनको खुला छोड़नेका अर्थ है विषयोंसे हटकर खुला छोड़ना। विषयोंसे हटकर, विषयोंको मनसे निकालकर मनको खुला छोड़ दे। जहाँ खुला मन हुआ कि भगवान् ले जायँगे। बिलकुल सच्ची बात है। भगवान् आते हैं और हमारे मनको खुला नहीं देखते हैं, किसीके द्वारा पकड़ा हुआ देखते हैं, मनमें किसीको बैठा देखते हैं। वे देखते हैं कि इसका मन तो खाली नहीं है, इसका मन तो खुला नहीं है और यह देखकर वे लौट जाते हैं।

इसीलिये गोपियोंने मनको खुला छोड़ दिया। सब चीजोंसे मनको खोल दिया। मनके जितने बन्धन संसारके थे, वे त्याग दिये, काट दिये—'**मदर्थे त्यक्तदैहिका:**'। तब क्या हुआ कि जब मन इनका ऐसा हो गया कि जिसमें संसार रहा नहीं तो भगवान्‌ने आकर पकड़ लिया और फिर वे गोपियोंके मनको अपने मनमें ले गये और उनके मनको अपने मनमें बैठा दिया। '**ता मनमनस्का:**' का यही अर्थ है कि गोपियोंका अपना मन था नहीं और उनके मनमें श्रीकृष्णका मन आ बैठा। उनका मन कहाँ गया? श्रीकृष्णके पास '**कृष्णगृहीतमानसा:**'।

गोपीभावकी जब हम बात करें तो सबसे पहले यह सोचना चाहिये कि हमारा मन संसारसे मुक्त होकर—खाली होकर भगवान्‌के द्वारा पकड़ा जा चुका है कि नहीं। भगवान्‌ने हमारे मनको पकड़ लिया है कि नहीं। अगर नहीं पकड़ा है तो हम गोपी नहीं बन सकते। उस वेणुगीतको जिसे भगवान्‌ने गाया, वह अनङ्गवर्धन गीत था। अनङ्ग-प्रेम अर्थात् भगवत्प्रेमको बढ़ानेवाले उस गीतको उन श्रीगोपाङ्गनाओंने सुना जिनका मन श्रीकृष्णने पहले ही ले रखा था। उसे सुनते ही क्या हुआ? जैसे कोई धनका अत्यन्त लोभी हो, धनकी आवश्यकतावाला हो और उसे पता चल जाय कि अमुक जगह धन पड़ा है और वहाँ जानेसे मिल जायगा। तब वह किसीको साथ नहीं लेगा और न कोई सलाह करेगा। क्योंकि वह तो धनका लोभी है। जहाँ धनकी बात सुनी, वहाँ भागा। इसी प्रकार कहते हैं कि व्रज-सुन्दरियाँ जो थीं वे '**अन्योन्यमलक्षितोद्यमा:**' थीं—इन्होंने कहा नहीं कि हम जा रही हैं और तुम भी चलो। इसलिये नहीं कहा, क्योंकि ये तो कृष्णगृहीतमानसा थीं वहाँसे आह्वान आया तो बिना किसीसे कहे-सुने चल दीं। और चलीं कैसे? धीरे-धीरे नहीं, मौजसे नहीं, वे दौड़ीं। अपने-आपको रोक नहीं सकीं, ठहर नहीं सकीं। चालमें धीमापन नहीं ला सकीं। दौड़ीं, जितनी तेज दौड़ सकती थीं।

'**जवलोलकुण्डला:**' यह बताते हैं कि दौड़नेमें क्या हुआ। उनके दौड़नेसे उनके कानोंके कुण्डल सब-के-सब हिलने लगे। यह दौड़नेका चिह्न बताते हैं कि वे जवलोलकुण्डला दौड़ीं अर्थात् इतनी जल्दी दौड़ीं कि उनके कानोंके कुण्डल हिलने लगे। असलमें आभूषण वे ही हैं जो भगवान्‌से मिलनेके लिये हिलते हैं। नहीं तो ये जड हैं, पत्थर हैं, उनमें रखा क्या है? वे गयीं और पहुँच गयीं। '**आजग्मु: यत्र स कान्त:**' जहाँपर वह कान्त—स्वामी—प्रियतम थे। (क्रमश:)

परमार्थकी सिद्धिमें धर्मनीतिकी उपादेयता

(म० म० स्वामी श्रीविज्ञानानन्द सरस्वतीजी महाराज)

यह संसार अबाध गतिसे चल रहा है। विश्वके नियन्ता परमात्माने इस संसारके सम्यक् संचालन-हेतु कुछ नियम या सिद्धान्त बनाये हैं, जिनसे यह सब कुछ गतिशील हो रहा है। जिस संविधानसे यह सब संचालित है, उस विधानका नाम ही तो धर्मनीति है। '**ध्रियते येन स धर्मः**' धारण करनेकी सत्ताका नाम 'धर्म' है। नीतिका अर्थ है नियम, सिद्धान्त अथवा विश्वके नियामक परमात्माका शाश्वत संविधान। जो भी शुभाशुभ कर्म जीव करते हैं, उन्हीं संस्कारोंके परिणामस्वरूप सृष्टिका प्रादुर्भाव होता है। वर्तमानमें जैसी सृष्टि दृष्टिगोचर है, इसी भाँति पूर्व कल्पमें भी तीनों लोकों और क्रमशः चतुर्युगोंका पुनः-पुनः सृजन होता रहा है। वेदोंमें कहा है—'**यथा पूर्वमकल्पयत**'।

कर्तव्य कर्मोंको विचारपूर्वक करनेके कारण ही हम सबको मानव कहा जाता है—'**मत्वा कर्माणि सीव्यन्तीति मानवाः**'। जो सत्यासत्य, नित्यानित्य, धर्माधर्मका विचार करके कार्य करे, वह मानव कहलाता है। इसी कारण धर्मनीतिके अनुपालनमें ही हमारी लौकिक एवं पारलौकिक उन्नतियोंका रहस्य संनिहित है। धर्मनीतिकी उपेक्षाके कारण ही आज कदाचार, दुराचार, भ्रष्टाचारका भस्मासुर समस्त विश्वके प्राणियोंको संतप्त कर रहा है। धर्मके परित्यागके कारण मानव दानव बन गया है। मानवका दानव बन जाना उसकी नैतिक पराजय है। निष्काम धर्मके अनुपालनसे नर 'नारायण'-पद प्राप्त कर लेता है।

पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धिमें धर्मनीतिके अनुपालनका ही प्राधान्य है। धर्मके भी दो स्वरूप कहे गये हैं—(१) सकाम धर्म और (२) निष्काम धर्म। निष्काम धर्मसे वैराग्य और वैराग्यसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और यही ज्ञान मोक्षका प्रापक कहा जाता है—

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥

(रा०च०मा० ३। १६। १)

वास्तवमें धर्ममें कर्तव्य-बुद्धि, अर्थमें निर्लोभता तथा सर्वत्र भगवद्भावमें ही इस जीवनकी परिपूर्णता निहित है। जब मानव धर्मनीतिकी उपेक्षा कर देता है, तब वह पशु-पक्षीसे भी निम्न स्तरपर पहुँच जाता है। मनीषियोंने कहा भी है—

दिवा पश्यति नोलूकः काको नक्तं न पश्यति।
अपूर्वः कोऽपि कामान्धो दिवा नक्तं न पश्यति॥

'उल्लूको दिनमें दिखायी नहीं देता और कौएको रातमें नहीं दीखता, परंतु अधर्मसे युक्त वासनावासित अन्तःकरणवाले पुरुषको न तो दिनमें दिखायी देता है और न रातमें। वह तो सदा अन्धा ही रहता है।'

कल्याणकारी धर्म परोक्ष-अपरोक्षरूपसे सबका संरक्षण करता है। एक युवक-युवती एकान्त स्थानमें बैठे हैं। वे परस्पर भाई और बहन हैं। वहाँ ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो उन्हें पतनसे बचाती है, कुवासनाओंसे बचाती है? उत्तर होगा—वह धर्म ही है। धर्म तो अग्निमें भी नहीं जलता। वह तो जीवके साथ ही जाता है। धर्मके तीन स्कन्ध हैं—

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति॥ (छान्दोग्य० २। २३। १)

अर्थात् प्रथम स्कन्ध यज्ञ, अध्ययन और दान, द्वितीय तप एवं तृतीय ब्रह्मचर्यका अनुपालन—इससे धर्मकी संवृद्धि होती है। ये धर्मके मूल हैं। उस अव्यक्त इन्द्रियातीत अगोचर परब्रह्म परमात्माकी अभिव्यक्तिका हेतु धर्मको ही कहा गया है।

श्रीमद्भगवद्गीताका शुभारम्भ धर्म शब्दसे ही होता है—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥

(१। १)

उपसंहारमें—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

(गीता १८। ७८)

गीताशास्त्रके आदि-अन्तपर विचार करें तो '**धर्म**' ही शब्द बनता है। 'धर्म' कहो या 'कृष्ण' कहो—एक ही तत्त्वके दो नाम हैं। जहाँ कर्मरूप अर्जुन और धर्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहींपर श्री, विजय और अचल नीति है। भगवान् वेदव्यासका वचन है—

धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥

(महाभारत, स्वर्गारोहणपर्व ५। ६२)

धर्मनीतिके परिपालनसे ही धन और समुचित कामनाओंकी सम्पूर्तिके साथ परमानन्दस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है। अतः परमार्थकी प्राप्तिके लिये धर्मपथका, सदाचारके पथका अवश्य ही परिपालन करना चाहिये।

साधकोंके प्रति—

'कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्'

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मनुष्यमात्रके लिये मुख्य बात है—अपने जीवनका एक उद्देश्य बनाना। वास्तवमें मनुष्य-जीवनका उद्देश्य पहलेसे ही बना हुआ है। भगवान्‌ने जीवको सदाके लिये जन्म-मरणरूप बन्धनसे मुक्त होकर अपनी प्राप्ति करनेके लिये ही मनुष्य-शरीर दिया है और इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये जीवने मनुष्य-शरीर लिया है। इसलिये भगवान्‌को प्राप्त कर लेनेमें ही मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है। इस कार्यके लिये मनुष्य-शरीरके सिवाय दूसरा कोई शरीर है ही नहीं। यद्यपि भगवान्‌की ओरसे किसीके लिये भी कोई मनाही नहीं है, तथापि मनुष्य-शरीर खास भगवत्प्राप्तिके लिये ही है। इस मनुष्य-शरीरको पाकर यदि अपना उद्देश्य ठीक नहीं बनाया तो क्या किया! इसलिये सब भाई-बहनोंसे प्रार्थना है कि आप स्वयं अपना उद्देश्य बनायें कि हमें भगवान्‌को प्राप्त करना ही है। आप चाहे मेरा कहना मान लो, चाहे गीता, रामायण आदि ग्रन्थोंकी बात मान लो, चाहे अन्य किसीकी बात मान लो, सबकी खास बात यही है कि मनुष्य-जन्म भगवत्प्राप्तिके लिये ही मिला है। भगवत्प्राप्तिके सिवाय मनुष्य-जन्मका दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है। भगवत्प्राप्तिके बिना मनुष्य-शरीर भी चौरासी लाख योनियोंकी तरह ही है। इसलिये मनुष्य-जन्मके मूल्यको समझें। विचार करें कि मनुष्य-जन्म क्यों मिला है? भगवान्‌ने क्यों दिया है? हमने क्यों लिया है? परमात्मप्राप्तिके बिना मनुष्य-जन्मका क्या प्रयोजन है?

मनुष्य-जन्म ही एक ऐसा है, जिससे मनुष्य सदाके लिये दुःखोंसे मुक्त हो सकता है—

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

(मानस, उत्तर० ४३)

ऐसे शरीरको प्राप्त करके भी अगर आध्यात्मिक उन्नति नहीं की तो क्या किया? आध्यात्मिक तत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य-जन्म मिला है, इसके सिवाय मनुष्य-जन्मका और क्या मतलब है? अगर यह भी आपने नहीं किया तो मनुष्य होनेका क्या मतलब हुआ? मनुष्य हो, चाहे कीड़ा-मकोड़ा हो, फर्क क्या हुआ? मनुष्य-जन्मकी सार्थकता क्या हुई? परमात्मप्राप्तिके विषयमें आप जोरसे नहीं लगे तो फिर आपने क्या किया? क्या मतलब सिद्ध किया? चाहे भाई हो, चाहे बहन हो, अगर उसने परमात्मप्राप्तिका उद्देश्य नहीं रखा तो मनुष्य-जन्मका क्या मतलब हुआ? नीतिमें एक श्लोक आया है—

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्॥

'अर्थात् सौ काम छोड़कर भोजन करो, हजार काम छोड़कर स्नान करो, लाख काम छोड़कर दान दो और करोड़ काम छोड़कर भगवान्‌का स्मरण करो।'

तात्पर्य है कि करोड़ काम भी बिगड़ते हों तो बिगड़ जायँ, उनको छोड़कर भगवान्‌का स्मरण करो। भगवान्‌का स्मरण करना सबसे मुख्य रहा। भोजनसे, स्नानसे, दानसे भी बढ़कर भगवान्‌का स्मरण हुआ! भगवान्‌का स्मरण किये बिना जन्म-मरण नहीं छूट सकता। जन्म-मरण छूटे बिना मनुष्य-जन्म किस कामका? लोग सत्संग छोड़कर जाते हैं तो कारण पूछनेपर कहते हैं कि हमें अमुक-अमुक काम करने हैं, जाना ही पड़ेगा। आनेमें देरी हो जाय तो कहते हैं कि अमुक-अमुक काम आ गया, नहीं तो हम पहले ही आ जाते। इससे यह सिद्ध हुआ कि आपने सत्संगकी अपेक्षा दूसरे कामोंको ज्यादा आदर दिया है। शास्त्र कहता है—**'कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्'** करोड़ों काम छोड़कर भी भगवान्‌का स्मरण करो। क्या आपने करोड़ों काम छोड़कर कभी भगवान्‌का स्मरण किया है? विचार करें कि पारमार्थिक उन्नतिके लिये हमने कितने काम छोड़े हैं? कितने कामोंकी उपेक्षा की है? अपने हृदयपर हाथ रखकर स्वयं सोचो कि क्या हमने पारमार्थिक बातोंका इतना आदर किया है? आप कहते तो हैं कि हम सत्संग करते हैं, हमें आध्यात्मिक उन्नति चाहिये, पर अपने लक्ष्यको ठीक पूरा करनेके लिये क्या आपने ऐसा किया है? क्या ऐसा करनेका विचार है? विचार करनेसे पता लगेगा कि आप कितने पानीमें हैं? हमें परमात्मप्राप्ति नहीं हो रही है, ऐसा कहते तो हैं, पर उसके लिये आपने कितने काम छोड़े हैं?

पारमार्थिक उन्नति इस मनुष्य-जन्ममें ही हो सकती है। कारण कि इसीकें लिये यह मनुष्य-जन्म मिला है। पर इस कामके लिये आपकी कितनी तत्परता है—इधर ध्यान दो। अपने भीतर विचार करो। शास्त्र कहता है कि करोड़ों काम बिगड़ते हों तो बिगड़ जायँ, पर भगवान्‌का स्मरण मत छोड़ो। इस भगवत्स्मरणको आपने कितना महत्त्व दिया है? इसपर कितना विचार किया है? फिर आपको पता लगेगा कि हमारी आध्यात्मिक उन्नति कितनी हुई है? हरेक साधकको इस तरह विचार करना चाहिये। यदि सब काम छोड़कर भगवत्स्मरणको महत्त्व देते तो फिर ऐसा नहीं कहते कि हम इतने वर्षोंसे लगे हुए हैं, परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई! हम भगवत्स्मरणका जितना आदर करते हैं, उसकी अपेक्षा भी भगवान् हमपर विशेष कृपा करते हैं।

प्रश्न—क्या शास्त्रविहित कर्तव्य-कर्म छोड़कर भगवान्‌का भजन करें?

उत्तर—शास्त्रविहित कर्तव्य-कर्म करना, कुटुम्बका पालन करना, न्यायानुकूल काम करना बहुत अच्छा है, पर भगवत्स्मरणके सामने सब काम गौण हो जाते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कर्तव्य-कर्म करना छोड़ दें। कर्तव्य-कर्म करें, पर भगवान्‌का स्मरण सबसे मुख्य होना चाहिये।

संसारके जितने भी काम हैं, वे सब-के-सब एक दिन बिगड़नेवाले हैं। परंतु भगवान्‌का स्मरण कभी बिगड़ेगा नहीं। संसारका कितना ही सुधार कर लो, वह तो बिगड़ेगा। वह सुधर जाय तो बिगड़ गया, बिगड़ जाय तो बिगड़ गया। वास्तवमें तो संसारका काम बिगड़ा हुआ ही है। मनुष्य-जन्मकी सफलता भगवान्‌को प्राप्त करनेमें ही है। भोजन करनेसे, स्नान करनेसे, दान देनेसे मनुष्य-जन्म सफल नहीं होगा। मनुष्य-जन्म सफल होगा—भगवान्‌का स्मरण करनेसे। आप स्वयं सोचो कि भगवान्‌के स्मरणसे बढ़कर क्या काम है?

समस्त कर्तव्योंका मूल कर्तव्य है—भगवान्‌का स्मरण करना। अन्य सब कर्तव्य इससे नीचे हैं। कहनेमें तो आप कर्तव्य-कर्मकी बात कहते हो, पर वास्तवमें अपनी आयुका नाश कर रहे हो! पर यह बात पढ़ने-सुननेसे समझमें नहीं आती। आप स्वयं सोचोगे, तब समझमें आयेगी। '**कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्**'—यह बात यों ही अँधेरेमें नहीं कही गयी है।

असली कर्तव्य वही है, जिससे मनुष्य संसारसे ऊँचा उठ जाय। कर्मयोगके पालनसे मनुष्य संसारसे ऊँचा उठ जाता है। अगर आप संसारसे ऊँचा उठ गये, तब तो आपने कर्तव्यका पालन किया, नहीं तो कर्तव्यको समझा ही नहीं है, केवल समय बरबाद किया है। अगर आपने कर्तव्य-कर्मका ठीक पालन किया होता तो स्त्री-पुत्र, रुपये-पैसेमें मन नहीं जाता। रुपयोंके लिये झूठ, कपट, चालाकी, ठगी नहीं करते। यह नियम है कि कर्तव्य-कर्मका पालन करनेसे मनुष्य संसारसे ऊँचा उठ जाता है और उसे शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २।७१)

'जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग करके स्पृहारहित, ममतारहित और अहंतारहित होकर आचरण करता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।'

प्रश्न—अगर कोई बीमार हो तो क्या उसकी सेवा छोड़कर भगवान्‌का भजन करें?

उत्तर—अगर भगवान्‌की सेवा मानकर बीमारकी सेवा करें तो क्या हर्ज है? क्या बाधा लगती है? बीमार व्यक्तिको साक्षात् भगवान् मानकर उसकी सेवा करो। घरके कामको भगवान्‌का काम मानकर करो। गीता (९।२७)-में भगवान्‌ने कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

'अर्थात् हे कुन्तीपुत्र! तू जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे।'

भगवान्‌का काम समझकर सब कार्य करो तो वह सब भजन हो जायगा। शौच-स्नान करना भी भगवान्‌की सेवा है। बालक भोजन कर लेता है तो माँ राजी हो जाती है! भगवान् क्या माँसे भी कम दयालु हैं? एकनाथजी महाराजने श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धकी टीकामें लिखा है कि घरमें झाड़ू देकर कचरा भगवान्‌के अर्पणकी भावनासे बाहर फेंकें तो वह भी भजन हो जायगा! निरर्थक कर्म भी भगवान्‌के अर्पण करनेसे भजन हो जाता है। अगर भगवत्प्राप्तिका दृढ़ उद्देश्य हो जाय तो फिर आपके सभी कार्य भजन हो जायँगे। फिर आपके द्वारा संसारका काम नहीं होगा, प्रत्युत प्रत्येक काम भगवान्‌का ही हो जायगा। इसीमें मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है।

जितनी पकड़ उतना दुःख जितना त्याग उतना सुख

(श्री जय जय बाबा)

उपनिषद्‌का एक वचन है—

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।

(कैवल्योपनिषद् १। ३)

अमृतत्व अर्थात् मोक्ष न तो कर्मसे प्राप्त होता है, न पुत्र-पौत्रादि संतानोंसे और न धनसे ही प्राप्त होता है। यह अमृतत्वरूपी परम शान्ति केवल त्यागसे ही प्राप्त हो सकती है।

भगवान् श्रीकृष्ण (श्रीमद्भगवद्गीता १२। १२)-ने कहा है—**'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** त्यागसे तत्काल ही शान्ति मिलती है।

'शान्तम्' भी भगवान्‌का एक नाम है, जैसा कि माण्डूक्य-उपनिषद्‌के सातवें मन्त्रमें कहा गया है—

प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥

आत्माका स्वरूप बताते हुए उपनिषद्‌के ऋषि कहते हैं—वह आत्मा प्रपञ्चका शमन करनेवाला है, शान्त है, शिवरूप है, अद्वैत है और जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण होनेसे यह चतुर्थ पाद कहा गया है। यही हमारी आत्मा है, इसे ही जानना चाहिये।

हम व्यवहारमें भी देखते हैं कि जो व्यक्ति जितना परिग्रही है, वह उतना ही दुःखी है तथा जो व्यक्ति जितना त्यागमय जीवन बिताता है, वह उतना ही सुखी और शान्त है।

सुख-शान्ति केवल भगवान्‌के भजनसे ही मिल सकती है। भगवान्‌के त्यागी भक्तको भक्ति, विषयोंसे विरक्ति और आत्मसाक्षात्कार—ये तीनों चीजें एक साथ मिलती हैं तथा इसके फलस्वरूप उसको साक्षात् परम शान्ति भी मिल जाती है। जैसा कि भागवतकार (११। २। ४३) कहते हैं—

इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या
भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ।
भवन्ति वै भागवतस्य राजं-
स्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात्॥

प्रथम योगीश्वर कविजी कहते हैं—'हे राजन्! इस प्रकार जो प्रतिक्षण एक-एक वृत्तिके द्वारा भगवान्‌के चरण-कमलोंका ही भजन करता है, उसे भगवान्‌के प्रति प्रेममयी भक्ति, संसारके प्रति वैराग्य और अपने प्रियतम भगवान्‌के स्वरूपकी स्फूर्ति—ये सब अवश्य ही प्राप्त हो जाते हैं एवं वह भागवत हो जाता है। जब ये सब प्राप्त हो जाते हैं, तब वह स्वयं परम शान्तिका अनुभव करने लगता है।'

अब यह विचार करना है कि प्रपञ्चका अत्यन्त अभाव होनेपर भी हमारी इन्द्रियाँ इस प्रपञ्चको सत्य समझकर इसका ग्रहण क्यों करती हैं? भगवान् सनत्सुजातजी राजा धृतराष्ट्रसे कहते हैं—

तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां
मिथ्यार्थयोगस्य गतिर्हि नित्या।
मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मा
स्मरन्नुपास्ते विषयान् समन्तात्॥

(महा०, सनत्सुजातपर्व ४२। १०)

यह हमारी इन्द्रियोंका महामोह है कि वे यह दृश्य-प्रपञ्च न होनेपर भी इनकी कल्पना करके उधर ही प्रवाहित हो रही हैं, इन मिथ्या बाह्य पदार्थोंका स्मरण करती हुई उधर ही गतिमान् हो रही हैं। इसीलिये हम दुःखी हैं और हमको शान्ति नहीं मिलती।

अब इस शान्तिको प्राप्त करनेका साधन कहाँसे प्रारम्भ करेंगे? भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३। ४१)

इसलिये हे अर्जुन! तू पहले इन्द्रियोंको अपने वशमें करके इस ज्ञान और विज्ञानका नाश करनेवाले महान् पापी कामको अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल।

उपर्युक्त माण्डूक्य-उपनिषद्‌के सातवें मन्त्रमें जो कहा गया है—**'प्रपञ्चोपशमं शान्तम्'** इसका अर्थ यह हुआ कि प्रपञ्चका शमन होनेपर ही शान्ति मिल सकती है। जबतक प्रपञ्चका भान है तबतक शान्ति नहीं मिल सकती। प्रपञ्च क्या है? पाँचों इन्द्रियोंका बखेड़ा और ये इन्द्रियोंका बखेड़ा भी केवल आपकी स्मृतिमें ही है, वास्तविक नहीं है। इस स्मृतिकी अत्यन्त विस्मृति होनेपर ही आपको शान्ति मिल सकती है।

भागवतकार (११। २२। ३८) कहते हैं—**'मृत्युरत्यन्त-विस्मृतिः'** अत्यन्त विस्मृति ही मृत्यु है। अहङ्कार क्या है? पूर्वकालमें भोगे हुए सुख-दुःखादिकी स्मृति संस्कारोंका पुञ्ज ही तो यह अहङ्कार है। स्मृति भी एक वृत्ति है, जैसा कि योगसूत्र (१। ६)-में कहा गया है **'प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रा-**

स्मृतयः' प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति—ये पाँच प्रकारकी वृत्तियाँ हैं।

जबतक अहङ्कार है तबतक अशान्ति है। अहङ्कारके लक्षण बताते हुए भागवतकार (११।२८।१५) कहते हैं—

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ।
अहङ्कारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः॥

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीसे कहते हैं—अहङ्कार ही शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा और जन्म-मृत्युका शिकार बनता है। आत्माका तो इनसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

अत: शान्ति और सुख चाहते हो तो इस अहङ्कारका त्याग करो। अहङ्कारका त्याग ही सर्वत्याग है।
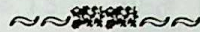
साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[वर्ष ७५, सं० १२, पृ०-सं० १००१ से आगे]

ठहरौ मत जाऔ—याके दो अर्थ हैं।

ठहरौ मत, जाऔ। ठहरौ, मत जाऔ।

साधक शास्त्रनके जाल सौं हूँ बचै। इनमें वाक्य अधिकारी-भेद सौं हैं।

चञ्चलता तौ वास्तवमें तब ही मिटैगी, जब श्री जीवन-सर्वस्व सम्मुख हौयँगे।

विषयीनकी चञ्चलता—विषयन सौं।

साधककी चञ्चलता—साधन-बाहुल्यमें।

प्रेमीकी चञ्चलता—इनके न मिलिवेमें।

इन्द्रियन पै (सब सौं अधिक दृष्टि पै) पूरौ अधिकार रहै। धीरे-धीरे मन कूँ सँभारतौ रहै और बहुत धीरे-धीरे अभ्यास करै सांनिध्य कौ। यथा—धरती पै सिर धरि दियौ—अब अनुभव कियौ कि श्रीप्राणनाथके छोटे-छोटे श्रीचरण-कमलनमें सिर धर्‌यौ है। अपने दौनौं हाथन सौं श्रीचरणारविन्द पकरि राखे हैं—ये है सांनिध्य।

कोई वस्तु भोज्य पदार्थ हाथमें लियौ और साथ ही भावना करौ कि श्रीलाड़िली लाल उठाय कैं पाय रहे हैं—ये है सांनिध्य। प्रसादी समझि कैं वही वस्तु अपने मुख मैं दै दीनी।

सबरे सगुण-उपासक-आचार्य तथा भक्तन कौ एक सिद्धान्त है—नाम, रूप, लीला और धाम।

इन चारनमें ते एक कौ दृढ़ आश्रय करिलैनौं, बस याही सौं सब सिद्ध है जाय है। अपने विचार सौं अपनी सामर्थ्य देखते भये श्रीनाम कौ दृढ़ आश्रय लैनौं ही सुगम, अच्छौ एवं रुचिकर प्रतीत होय है। श्रीब्रज कौ वास हू अभीष्ट है। या प्रकार सौं द्वैन कौ आश्रय तौ दृढ़ता सौं हौनौं चहिए अर्थात् निरन्तर श्रीनाम-भगवान् जिह्वा पै विराजते रहैं तथा भौतिक शरीर श्रीब्रजरजमें रह्यौ आवै।

अब अन्तर्मुखताके ताँईं—स्वरूप कौ ध्यान, स्मरण, सांनिध्य, प्रेमालाप, परमाह्लाद, प्रणाम तथा सेवा आदिक साथ ही अपने भावके अनुसार लीलान कौ चिन्तन।

दृढ़ताके साथ द्वैन कूँ पकरे रहै—श्रीनाम, श्रीधाम; इनमें पूर्ण-प्रयत्न, नियम-पालन, अवशिष्ट द्वै तौ आसन्न सिद्धावस्थामें ही हौयँ हैं।

रूप तौ एक प्रकार सौं फल है।

श्रीनाम और श्रीधाम कौ निरन्तर आश्रयण, रूप कौ यथावसर चिन्तन, सांनिध्य कौ प्रयत्न करनौं।

श्रीमहदाश्रय, श्रीनाम-जप, श्रीब्रजधाम-वास, श्रीप्राणनाथकौ सांनिध्य तथा प्रेमालाप।

सतत स्मरण राखनौं कि संकल्प, इच्छा तथा विचार आदिक सब ही परम संयमके अन्तर्गत ही हौयँ।

प्रश्न—दासभावमें हँसिवौ-खेलिवौ कैसें?

उत्तर—अन्त:करणके अव्यक्त भाव कौ व्यक्तिकरण ही शब्द है या न्यायके अनुसार मेरे शब्दनमें प्राय: वात्सल्यकी झलक रहै है। मुख्य बात तौ यही है—

'सब कर फल हरि भगति भवानी॥'

यहाँ श्रीशंकरजीके '**हरि भगति**' वाक्य सौं अनुरागात्मिका भक्ति कौ निर्देश है।

प्रारम्भमें वैधी भक्ति कौ अनुष्ठान कियौ जाय है। वैधी कौ अर्थ है—विधिसहित।

यह करनौं, यह नहीं करनौं, यह विधि-निषेध है।

जैसें कि हम लोग करि रहे हैं।

किंतु आगे बढ़िवे पै यही भक्ति अनुरागात्मिका है जाय है, जो सब कौ फल है अर्थात् अपने इष्टमें अनुराग-प्रेम उत्पन्न होयवे लगै है।

स्पष्ट यौं है—वैधी भक्ति = साधन, अनुरागात्मिका भक्ति, परिणाम = फल।

वास्तवमें सबरे साधन-नियम आदिकन कौ कठोर पालन याही अवस्थाके ताँईं है। मेरौ कछु ऐसौ विचार है (यामें सत्यता कहाँ तलक है, यह तौ मैं नहीं कह सकूँ) कि दासभावमें हूँ आगें चलिकैं घनिष्ठता होयवे पै हँसिवौ, खेलिवौ सम्भव है जात होय। हाँ, यह बात अवश्य है कि वात्सल्यभावके हँसिवे, खेलिवे, पुचकारिवे, दुलारिवेमें और दासभावके हँसिवे, खेलिवे आदिकनमें कछु अन्तर अवश्य रहै है। किंतु मैं तौ दासभावकी परिपक्व अवस्था कूँ ही वात्सल्यभाव मानूँ हूँ। अन्तःकरणके निःसंकोच होयवे तें अत्यन्त घनिष्ठता (आत्मीयता) हौनौं स्वाभाविक है। याही अवस्थामें यह सब है ही जाय है। यह विषय स्वसंवेद्य है। यामें विशेष शब्दाडम्बर नहीं काम देय।

प्रश्न—अनिवार्य श्रुति कूँ कैसैं रौक्यौ जाय?

उत्तर—ऐसे अवसर पै वा स्थान सौं शीघ्रता सौं हटि जाय।

अवसर होय तौ जोर-जोर सौं श्रीभगवन्नाम-उच्चारण करिवे लगै। अपनी वृत्ति कूँ श्रीभगवत्-नामके रस लैवेमें लगाय दे।

सुन्यौ-अनसुन्यौ करि देय, फिर वाकौ स्मरण न हौन पावै।

सच्ची बात तौ यह है (जो या समय संयमके कछु थोरेसे पालन करिवे तें अनुभव होय है) कि इन्द्रिय विचारी कोई वस्तु ही नहीं, इनकी कोई पृथक् सत्ता ही नहीं। मुख्य तौ मन है। याहीकी प्रेरणा इन्द्रियनमें स्फुरित होय है।

प्रमाण

छोटे-छोटे बालक हूँ वाही बात कूँ सुनैं हैं, किंतु वे वाकौ मनन नहीं करैं। ये बालक चाहैं जो अश्लील-सौं-अश्लील शब्द कह डारैं, चाहैं जो कछु सुनिलैं, इनके मन पै प्रभाव नहीं परै। वे तत्काल भूलि जायँ हैं। इतर प्राणी इन्हीं अश्लीलन कूँ मनन करतौ रहै है। मन इनकूँ पकरि कैं बैठि जाय है।

याही बात सिद्ध पुरुषनमें पाई जाय है। वे महापुरुष इन्द्रियनके अर्थ ग्रहण करिवे पैहूँ वाकूँ मनन नहीं करैं। यह बात तौ बहुत आगेकी है।

प्रारम्भमें, साधनकालमें तौ यही उचित है कि ऐसे अवसर पै अपने कूँ सर्वथा बचाय ही लेय। तात्पर्य तौ मनके रोकिवे सौं है। अभ्यास यही करनौं है कि अपने मन कूँ (वास्तवमें अपनौं मानिकैं) केवल तीन ही स्थलनमें डाटै। अन्यत्र भागिवे तें रोकै—

'मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य'

तथा च—

होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥

(रा०च०मा० ७। ११८। ९)

एक अपने साधनमें—यथा, श्रीहरि-नाम-उच्चारण करते समय मन सौं वाकौ आनन्द भोगनौं।

दूसरे नियमनके पालनमें—जो नियम या समय चलि रहे हैं, उनकौ पालन हम कितनौं करि रहे हैं?

तीसरे इनके फलस्वरूपमें—श्रीप्राणाधार कौ चिन्तन, अद्यावधि इनकी कृपा, इनकी सँभार, इनकौ वात्सल्य, इनकौ रूप, इनकी लीला, इन सौं आत्मीयता कौ भाव।

फिर इन सौं घुलि-घुलि कैं बातैं करनी—आदिक-आदिक। इन तीन स्थलन सौं जब मन अन्यत्र उछल-कूद करै, तब याकूँ वहाँ सौं लौटाय कैं इन्हीं तीन स्थलन पै रोकनौं—याही कौ नाम अभ्यास है।

ऐसौ करिवे लगि जाय तौ श्रुति आदिकनके विषय सौं सर्वथा छुट्टी मिलिवे लगैगी।

यदि हम सावधानता कौ अभ्यास करैं तौ हमारे अभिलषित समस्त कार्य अत्यन्त सरलता सौं पूर्ण है सकैं हैं।

एक श्रीनाम-जपके साथ-साथ श्रवण। दूसरे नियमित कार्यनमें सफलता (सदैव विजय)। तीसरे श्रीप्राणाधार कौ सांनिध्य। ये तीनौं कार्य एक सावधानता पै निर्भर है।

अतएव हमें सब सौं अधिक एक ही अभ्यास बढ़ानौं है—

अनुवेलं सावधानता व्रत

या व्रत कूँ पालन करैं। बड़े भाग्य सौं ऐसौ सुअवसर प्राप्त होय है। याकूँ बहुत ही सँभारिकैं राखैं। प्रत्येक विषयमें अति संयमकी आवश्यकता है। हमारौ परम कर्तव्य है कि हमहूँ पूर्ण उत्साह एवं संयमके साथ साधनमें लगैं, श्रीसद्गुरुभगवान् सब सँभारिंगे। [**क्रमशः**]

सनत्सुजातीय नीति

(पं० श्रीमुरलीधरजी पाण्डेय, आचार्य, एम०ए०, डी०लिट्०)

महात्मा सनत्सुजात ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। महाभारतके अनुसार ये सात भाई थे।[१] इनके नाम हैं—सन, सनत्सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल तथा सनातन। श्रीमद्भागवतमें ये चार भाई कहे गये हैं—

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे
आदौ सनात् स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत्।
प्राक्कल्पसम्प्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं
सम्यग् जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन्॥
(२।७।५)

यहाँ इनका नाम सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार है। इनकी उत्पत्ति कुमाररूपमें हुई थी। अतः ये सातों या ये चारों कुमार कहे जाते हैं। सनका अर्थ होता है—सदा। ये सदा कुमार-अवस्थामें ही रहते हैं, इसलिये ये कुमार कहे जाते हैं। श्रीमद्भागवतके अनुसार सनका अर्थ तप भी होता है। ये सभी तपस्वी तत्त्वदर्शी, ब्रह्मनिष्ठ और जीवन्मुक्त हैं। इनमें सनत्कुमारको सनत्सुजात भी कहा जाता है। सनत्सुजातका अर्थ सनत्कुमार ही है जैसे सनत् अर्थात् सदा और सुजात अर्थात् सुष्ठु प्रकारसे जात—उत्पन्न। ये बड़े उत्तमकोटिके ब्रह्मवेत्ता माने गये हैं। छान्दोग्योपनिषद् (७।१।२।४)-में कहा गया है कि देवर्षि नारदजीको इन्होंने ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया था। महाभारतके उद्योगपर्व (अ० ४१—४६)-के सनत्सुजात नामक उपपर्वमें सनत्सुजातसे सम्बद्ध एक उपाख्यान है, जिसे 'सनत्सुजातीयम्', 'सनत्सुजातीयदर्शनम्' या 'सनत्सुजातीय नीति' कहा जाता है। सनत्सुजातजीके द्वारा किये गये उपदेशसे—इनसे कही गयी नीतिको सुनकर महाराज धृतराष्ट्रको बड़ी शान्ति मिली थी। उनका मोह भंग हो गया था। जब महाराज धृतराष्ट्रने विराटपुरीमें युधिष्ठिरके पास संजयके द्वारा अपना संदेश भेजा था और असफल हो वापस आकर संजयने जो कुछ कहा, उसे सुनकर धृतराष्ट्रको बड़ी निराशा हुई। वे व्यग्र और शोकमग्न हो गये। विदुरजीने समझाया तब उनका मोह भंग हुआ। उस समय धृतराष्ट्रने कहा कि विदुर तुम्हारे कहनेपर शान्ति तो मिलती है, पर दुर्योधनके आनेपर उसके सामने मैं ये सब भूल जाता हूँ। मुझे कुछ तात्त्विक उपदेश दो, जिससे शाश्वत शान्ति मिले। विदुरजीने कहा कि मैं इस शरीरसे धर्मविषयक या ब्रह्मविद्याविषयक उपदेश देनेमें असमर्थ हूँ, यतः यह शरीर जन्मना शूद्र है। किंतु मैं आपके लिये योग्य महापुरुषको उपस्थापित कर रहा हूँ, जो महान् तपस्वी, धर्मज्ञ, ब्रह्मवेत्ता और तत्त्वदर्शी हैं। इतना कहकर महात्मा विदुरने ब्रह्मनिष्ठ सनत्सुजातजीका ध्यान किया। उनके स्मरणमात्रसे सनत्सुजातजी उपस्थित हो गये और धृतराष्ट्रके मोहको भंग करनेके लिये उन्होंने जो उपदेश दिया, वही सनत्सुजातीय दर्शन या सनत्सुजातीय नीति है। उन्होंने अपने उपदेशको चार भागोंमें विभक्त किया, जिसको चार अध्याय कहा जाता है। प्रथम अध्यायमें मृत्युका अभाव वर्णित है। द्वितीय अध्यायमें मौनका वर्णन है। यहाँ मौनसे ब्रह्म विवक्षित है। मौनसे यहाँ यह भाव लिया गया है—**'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** अर्थात् जो वाणी और मनसे अगोचर है, वही मौन है अर्थात् ब्रह्म है। यहाँ मौन शब्दका अर्थ ब्रह्म है। तृतीय अध्यायमें ब्रह्मचर्यकी महिमा और चतुर्थ अध्यायमें ब्रह्मके विराट्रूपका वर्णन है।

महात्मा विदुरजीके स्मरण करनेपर जब ब्रह्मवेत्ता सनत्सुजातजी उपस्थित होते हैं, तब महाराज धृतराष्ट्रका प्रथम प्रश्न मृत्युके सम्बन्धमें होता है। एक मृत्यु ही ऐसी वस्तु है, जिससे देव, दानव, असुर, मनुष्य, पशु-पक्षी सभी जंगम यहाँतक कि स्थावर भी डरते हैं। केवल ब्रह्मज्ञानी या आत्मज्ञ ही ऐसा होता है, जिसे मृत्युभय नहीं होता। यह मृत्युभय दो प्रकारका होता है। एक तो अपनी और परिजनोंकी मृत्युका भय और दूसरा अपनी मृत्युकी परवाह नहीं, पर अपनेसे दूसरेकी मृत्यु न हो जाय इसका भय। इसमें पहला भय सामान्य जनोंमें होता है और दूसरा उत्तम जनोंमें होता है। पहलेका उदाहरण धृतराष्ट्र-जैसे लोग हैं और दूसरेका अर्जुन-जैसे लोग हैं। धृतराष्ट्रको अपनी तथा अपने पुत्र-परिजनोंकी मृत्युकी चिन्ता है, पर दूसरोंकी मृत्युकी चिन्ता नहीं है। इसके विपरीत अर्जुनको अपने मरनेकी चिन्ता नहीं है, अपितु अपने पूज्य गुरु और पितामह आदिके मरनेकी चिन्ता है। ये दोनों पात्र महाभारतके हैं और इन दोनोंके उपदेष्टा भी उसी प्रकारके हैं। धृतराष्ट्रके उपदेष्टा ब्रह्मवित् जीवन्मुक्त सनत्सुजातजी हैं और अर्जुनके उपदेष्टा साक्षात् परब्रह्म आनन्दकन्द श्रीकृष्णजी। इन दोनोंके उपदेश-समन्वित दो महान् ग्रन्थ महाभारतके अन्तर्गत हैं—सनत्सुजातीय और श्रीमद्भगवद्गीता।

मृत्युभयसे आक्रान्त महाराज धृतराष्ट्रने महात्मा सनत्सुजातसे पहला प्रश्न किया कि यह मृत्यु क्या चीज है? मृत्यु नामक

१- सनः सनत्सुजातश्च सनकः ससनन्दनः। सनत्कुमारः कपिलः सप्तमश्च सनातनः॥ (महा०, शान्ति० ३४०।७२)

कोई वस्तु है या नहीं ? कुछ लोग कहते हैं मृत्यु है और कुछ लोग कहते हैं मृत्यु नहीं है। इसमें क्या सत्य है ? महर्षे ! आप मुझे इसका उपदेश कीजिये—

सनत्सुजात यदिदं शृणोमि न मृत्युरस्तीति तव प्रवादम्।
देवासुरा ह्याचरन् ब्रह्मचर्यममृत्यवे तत् कतरन्नु सत्यम्॥

(महा०, उद्योग० ४२। २)

इसपर सनत्सुजातजीने कहा—कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि नित्य-नैमित्तिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे मृत्यु दूर चली जाती है और कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु नामक कोई चीज है ही नहीं। आपकी शंका ठीक है। इन दोनों पक्षोंमें जो यथार्थ है, उसे मैं कह रहा हूँ। ये दोनों पक्ष अधिकारी-भेदसे यथार्थ हैं। कुछ विद्वानोंका कहना है कि मोह अर्थात् अज्ञान ही मृत्यु है। अनात्म वस्तुमें आत्मबुद्धि करना मोह है। यही अज्ञानीके लिये मृत्यु है और आत्मज्ञानके द्वारा जिसका अज्ञान निवृत्त हो चुका है, उसके लिये मृत्यु नामकी कोई वस्तु नहीं है। उसके लिये मृत्युका सर्वत्र अभाव है। जिस प्रकार रस्सीको जाननेवालोंके लिये त्रिकाल सर्पका भान नहीं होता अर्थात् निर्मोहके लिये—ज्ञानवान्‌के लिये मोह कुछ नहीं होता। किंतु मैं प्रमादको ही मृत्यु कहता हूँ और अप्रमादको ही अमरत्व कहता हूँ। प्रमादका अर्थ होता है अपने स्वाभाविक आत्मस्थितिको भूल जाना। यही सभी अनर्थोंका कारण है और अप्रमाद स्वाभाविक स्थिति है अर्थात् आत्मस्वरूपमें आना ही अप्रमाद है। वेदमें एक कथा आती है, असुरराज विरोचन और देवराज इन्द्र दोनों ब्रह्माजीके पास गये। असुरराज विरोचनने प्रमादके कारण ब्रह्माजीके उपदेशका अर्थ देहात्माभिमान माना और वहीं इन्द्रने अप्रमादके कारण उपदेशका अर्थ तत्त्वज्ञान ब्रह्मको माना, जिसके कारण विरोचनका पतन हुआ और देवराज इन्द्रका अभ्युदय। अतः अज्ञानसे भिन्न मृत्यु नामका कोई तत्त्व नहीं है। अज्ञानका कोई रूप-आकार नहीं होता, कार्यमात्रसे उसकी प्रतीति होती है। इस मृत्युके अधिष्ठाताको यम कहते हैं। अज्ञानका कारण यह है कि जब इच्छापूर्ति नहीं होती तब क्रोध होता है, क्रोधसे मन विचलित होता है फिर जीव मोह या अज्ञानसे आवृत हो जाता है और जब प्रमादस्वरूप अज्ञान नष्ट हो जाता है तथा अप्रमादरूप आत्मस्वरूपकी उपलब्धि हो जाती है तब मुक्ति होती है। देहाभिमानी जीव परमात्मतत्त्वके साक्षात्कार न होनेपर अपने कर्मके कारण नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकता-फिरता है। कर्मफलमें अनासक्ति होनेपर ही कर्मकी प्रवृत्ति रुक जाती है। भाव यह है कि कर्मफलमें अनासक्ति होनेसे इन्द्रियोंके भोगसे विरक्ति हो जाती है, यह अनासक्ति मोहकी निवृत्ति होनेपर, आत्मज्ञानकी निष्पत्ति होनेपर ही सम्भव है। सनत्कुमारजीने कहा—'राजन्! विषयोंका चिन्तन ही विनाशका कारण है; यतः विषय-चिन्तनसे काम, कामसे क्रोध, क्रोधसे मोह और मोहसे अज्ञान उत्पन्न होता है। यह अज्ञान ही मृत्यु है और जो विषयासक्तिसे शून्य हैं, वे ही मृत्युको पार कर पाते हैं।'

इसके बाद महाराज धृतराष्ट्रने पुनः पूछा—सनत्कुमारजी! यदि विषयोंसे अनासक्त होना ही अमरत्वका कारण है तो श्रुतियोंने उसके लिये यज्ञादि सनातन श्रेष्ठ कर्मोंका विधान क्यों किया है ? महर्षिने उत्तर दिया—ये यज्ञादि कर्म सांसारिक जड़ पदार्थमें अनुरक्त जनोंके लिये बताये गये हैं और जो प्रमादरहित हैं, निष्काम हैं, उनके लिये अनासक्त-योग बताया गया है। उनके लिये तो केवल परमात्मस्वरूपको पाना ही सर्वस्व है।

इसपर धृतराष्ट्रने पूछा—महर्षे! यदि सम्पूर्ण चराचर विश्व परमात्मस्वरूप है तो विश्वके रूपमें प्रकट होनेके लिये कौन प्रेरित करता है ? महर्षिने कहा—इसमें अनादि माया ही कारण है, जिसके कारण जलमें सूर्यके प्रतिबिम्बके समान मिथ्या जगत् और जीवकी अभिव्यक्ति होती है। माया (अविद्या)-के कारण जीवमें और परमात्मामें भेदका लक्षित होना औपाधिक ही है। वस्तुतः जीव परमात्माका स्वरूप ही है। इसलिये यह कहा जाता है कि प्रमाद ही जगत् है, अप्रमाद ही मुक्ति है। इसपर धृतराष्ट्रने पूछा— महाराज! तब प्राणी धर्म और अधर्म किसलिये करता है? महर्षिने कहा—'राजन्! धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य दोनों ही अज्ञानजनित हैं। अद्वितीय ब्रह्मके सम्यक् ज्ञानीके लिये ये पाप-पुण्य कोई चीज नहीं हैं। देहाभिमानीके लिये धर्म-अधर्मरूप कर्म कहे जाते हैं। जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त नहीं है, वह स्वर्ग आदि अनित्य फलके लिये कोई कर्म नहीं करता।'

शास्त्रविहित शुभ कर्म चित्त-शुद्धिके लिये किये जाते हैं, जिससे शुद्ध चित्त ज्ञानका साधन बने। ऐसा कर्म करनेवाले अप्रमादी ज्ञानी पुरुष जीवन्मुक्त होते हैं और जीवन्मुक्त होकर जडवत् आचरण करते हैं तथा लौकिक शास्त्रोक्त कार्योंको करते हैं। ऐसे महापुरुषोंकी कुछ लोग अवज्ञा भी करते हैं, किंतु इनके मनमें क्षोभ नहीं होता। ऐसे महापुरुष मान-अपमान दोनोंमें मौन रहते हैं। वस्तुतः लोकाराधना एवं परमार्थका साधन मौन है।

धृतराष्ट्रने पूछा—महर्षे! मौनका आचरण कैसे किया जा सकता है ? सनत्सुजातजीने कहा—मौनका तात्पर्य ब्रह्ममें स्थिति है। भाव यह है कि वाणी और मनसे अतीत इस ब्रह्मकी अनुभूति

तभी होती है जब पुरुष श्रवण, मनन और निदिध्यासनके द्वारा बार-बार आत्मचिन्तन करते-करते निर्विकल्प समाधिकी ओर जाता है।

धृतराष्ट्रने पूछा—महर्षे! जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमें उक्त कर्मोंका आचरण करता है, उससे पापाचरण कैसे हो सकता है? महर्षिने कहा—हे राजन्! तुम यह अच्छी प्रकार जान लो कि शरीराध्यासपूर्वक जो भी कर्म किया जाता है, वह सब प्रमादवश किये जानेके कारण आत्मज्ञानका साधन नहीं बन सकता। इसपर धृतराष्ट्रने कहा—महर्षे! यदि त्रिवेदवित् अर्थात् तीनों वेदोंके ज्ञाताको भी यह पाप लगता है तो त्रिवेदका पढ़ना व्यर्थ ही हैं। तब महर्षिने कहा—ये वेद, तप आदि जो कर्म बतलाये गये हैं, वे अधिकारी-भेदसे भिन्न-भिन्न हैं और श्रुतिप्रतिपादित कर्मका उद्देश्य है—मनको शुद्ध करके प्रमाद मिटाना और अप्रमादको ब्रह्मस्थितिमें ले आना। यह समझना चाहिये कि ब्रह्मवेत्ता इन वेदोक्त कर्मों—तप आदिको निष्कामभावसे करता है। इसका उपयोग आत्मसाक्षात्काररूपी महान् फलके लिये होता है। जो तत्त्वज्ञानी नहीं हैं वे भूलोक, देवलोक आदिके सुखोंको भोगनेके लिये इन्हें करते हैं। इसलिये निष्काम तप तथा वेदोक्त निष्काम कर्म आदि बड़े ही उपादेय हैं। महर्षिने कहा कि निष्काम कर्ममें निम्नलिखित बारह दोष महान् बाधक होते हैं—शोक, क्रोध, लोभ, काम, मान, अत्यन्त निद्रा, ईर्ष्या, मोह, तृष्णा, कायरता, गुणोंमें दोष देखना और निन्दा करना।[1] इनमें प्रत्येक एक-से-एक बलवान् होते हैं। ये बारहों दोष साधनमार्गके विरोधी हैं। इनसे विपरीत निम्नलिखित बारह गुण निष्काममार्गके साथी हैं—धर्म, सत्य, तप, इन्द्रियसंयम, डाह न करना, लज्जा, सहनशीलता, किसीमें दोष न देखना, दान, शास्त्रज्ञान, धैर्य और क्षमा (महा०, सन०पर्व ४५।५)। इन बारहोंसे युक्त होकर जो मौन रहता है, वही अप्रमादी है और वही मृत्युसे दूर रहता है। इन सभीमें दमका बहुत महत्त्व है। 'दम' में अठारह गुण और 'मद' में अठारह दोष हैं। मदके अठारह दोष इस प्रकार हैं[2]—(१) लोकविरोधी कार्य करना, (२) शास्त्रके प्रतिकूल आचरण करना, (३) गुणियोंपर दोषारोपण, (४) असत्यभाषण, (५) काम, (६) क्रोध, (७) पराधीनता, (८) दूसरोंके दोष बताना, (९) चुगली करना, (१०) धनका दुरुपयोग, (११) कलह, (१२) डाह, (१३) प्राणियोंको कष्ट पहुँचाना, (१४) ईर्ष्या, (१५) हर्ष, (१६) बहुत बकवाद, (१७) विवेकशून्यता तथा (१८) गुणोंमें दोष देखनेका स्वभाव। इसलिये विद्वान् पुरुषको मदके वशीभूत नहीं होना चाहिये; क्योंकि मदको सदा ही निन्दित बताया गया है। मदके इन अठारह दोषोंका त्याग कर देनेपर ये ही दमके अठारह गुण बन जाते हैं।

अप्रमाद आठ तरहका होता है, जिनका त्याग करनेसे आठ प्रकारके गुण आ जाते हैं—सत्य, ध्यान, समाधान, बोध्य (अर्थात् मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ), वैराग्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और असंग्रह।

सनत्कुमारजीने कहा—राजेन्द्र! संक्षेपमें यह समझो कि सारे पापोंको तथा जन्म-मृत्यु एवं बुढ़ापेको दूर करनेवाला एक ही तत्त्व है और वह है इन्द्रियों एवं मनको विषयसे दूर करना, आदर और अनादरसे दूर रहना—यही सभी सुखोंका मूल है। एक वेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी होना उतना महत्त्व नहीं रखता, जितना कि परम सत्यमें—परमात्मामें स्थित रहना। सत्यस्वरूप परमात्मासे जो दूर हो जाते हैं उनका वेदत्व, उनका वेद एवं ज्ञान सब कुछ निष्फल हो जाता है। जो सर्वथा मौन होकर ब्रह्ममें स्थित होता है, वही श्रेष्ठ है। वनमें रहनेसे ही कोई मुनि नहीं हो जाता, जो परम सत्यको जान लेता है, वही मुनि और वही मौन है।

धृतराष्ट्रने कहा—भगवन्! आपने यह जो उपदेश दिया है, वह उत्तम जनोंके लिये बहुत उपादेय है। किंतु संसारी कामी जनोंके लिये बड़ा कठिन है। इसलिये आप ऐसा उपदेश दें, जो साधारण जनके लिये भी सम्भव हो। सनत्सुजातजीने कहा—राजन्! तुम बार-बार परम तत्त्वके विषयमें प्रश्न करते हो, ब्रह्मके विषयमें जानना चाहते हो, वह इतना सरल नहीं है। वह तभी हो सकता है जब बुद्धिरूप गुफामें मन विलीन हो जाय तथा ब्रह्मचर्यका पालन हो। ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक साधन-चतुष्टयसम्पन्न होकर आचार्यकी शरणमें जाना आवश्यक है। धृतराष्ट्रने फिर कहा—भगवन्! यदि ब्रह्मचर्यसे ही परम

---

१. शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मानः परासुता। ईर्ष्या मोहो विधित्सा च कृपासूया जुगुप्सुता॥
द्वादशैते महादोषा मनुष्यप्राणनाशनाः। (महा०, उद्योग० ४५।१-२)

२. मदोऽष्टादशदोषः स स्यात् पुरा योऽप्रकीर्तितः। लोकद्वेष्यं प्रातिकूल्यमभ्यसूया मृषा वचः॥
कामक्रोधौ पारतन्त्र्यं परिवादोऽथ पैशुनम्। अर्थहानिर्विवादश्च मात्सर्यं प्राणिपीडनम्॥
ईर्ष्या मोदोऽतिवादश्च संज्ञानाशोऽभ्यसूयिता। तस्मात् प्राज्ञो न माद्येत सदा ह्येतद् विगर्हितम्॥
(महा०, उद्योग० ४५।९—११)

तत्त्वका ज्ञान सम्भव है तो पहले ब्रह्मचर्यके विषयमें ही कहें। सनत्कुमारजीने कहा—आचार्योंकी शरणमें जाकर श्रद्धापूर्वक उनके वचनको मानना, कामनाओंका त्याग करना, शीत-उष्ण, सुख-दुःख इन द्वन्द्वोंको सहन करना और भौतिक देहको आत्मासे पृथक् जान लेना—ये ब्रह्मचर्यके आवश्यक गुण हैं। जिस प्रकार माता-पिता शरीरके उत्पादक हैं, उसी प्रकार आचार्य अज्ञानरूपी अन्धकारको दूरकर ज्ञानको प्रकट करता है। इस ब्रह्मचर्य-पालनके चार पाद हैं। प्रथम पाद गुरुके शरणागत होना और वेदका अध्ययन करना; द्वितीय पाद गुरु, गुरुपुत्र और गुरुपत्नीमें श्रद्धा रखना, इनकी शुश्रूषा करना; तृतीय पाद आचार्यके प्रति सम्मान प्रकट करना और चतुर्थ पाद आचार्यको अपने प्राण, धन, मन, वचन और कर्मसे संतुष्ट करना—इस प्रकार करनेपर गुरु अपनी विद्याको शिष्यमें संक्रमित कर देते हैं। इस ब्रह्मचर्यके प्रभावकी शास्त्रमें बड़ी महिमा है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत॥

(अथर्व० ११।५।१९)

धृतराष्ट्रने पूछा—भगवन्! आप जिस परम तत्त्वकी चर्चा बार-बार कर रहे हैं; वह सफेद है, लाल है, काला है या धूसर रंगका है तथा वह किस रूपका है? महर्षिने कहा—वह न तो लाल है, न काला है। वह न अन्तरिक्षमें रहता है, न आकाशमें, न देवतामें, न तारागणमें, न वायुमें रहता है न ही वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदमें ही देखा जाता है। वह तो नित्य सत्तारूप है, सभी पुरुषोंमें आत्मारूपमें समझा जाता है। उसीमें सारा जगत् ओतप्रोत है। वह अमृत है, उसे जो जान लेता है, वह भी अमृतमय हो जाता है।

इसके बाद सनत्सुजातजीने कहा कि वह ब्रह्म महान् ज्योतिर्मय है, उसके तेजसे सूर्य चमकता है और उससे हिरण्यगर्भ उत्पन्न होता है। वह विशुद्ध सच्चिदानन्द और पूर्ण है। जीवात्मा-परमात्मा—यह उपाधि-भेद है, वास्तविक नहीं। जिस प्रकार गङ्गाकी तरंग निकलकर जलसे अलग नहीं होती, उसी प्रकार समस्त चराचर जगत् उससे निकलकर भी अलग नहीं होता। उसी परब्रह्मसे आकाश, वायु, जल, अग्नि पञ्चमहाभूत सूक्ष्म तन्मात्राओंमें प्रकट होते हैं। इस तरह तन्मात्राओंसे पञ्चमहाभूत देहादि उत्पन्न होते हैं। ये जीवात्मा परमात्माके आश्रयसे रहते हैं। इनमें जीवात्मा परमात्मा अलग-अलग नहीं होते। उपाधिके कारण अलग-अलग समझे जाते हैं। इन परब्रह्मकी उपमा किसीसे नहीं दी जा सकती। इनको जाननेका उपाय निर्विकल्प समाधि है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन तथा बुद्धि—ये बारह अपने-अपने विषयकी ओर खींचते रहते हैं। विवेकी जन इन बारह इन्द्रियोंके वशमें नहीं आते। अविवेकी जन पूर्वजन्मके सञ्चित कर्मोंके अनुसार बार-बार जन्म लेते तथा मरते रहते हैं। अज्ञानी लोग सकाम कर्म करते हैं और संसार-चक्रमें भटकते रहते हैं। विवेकी जन आत्मस्वरूप ब्रह्मका चिन्तन करते हैं और उन्हें प्राप्त करते हैं। वह पूर्णरूप परमात्मा सभी प्राणियोंके हृदयमें विराजमान रहता है। इसको ज्ञानी लोग ही देख पाते हैं, अज्ञानी नहीं। विवेक नष्ट करनेमें इन्द्रियोंका बड़ा हाथ है। इन्द्रियोंका दमन करनेके बाद ही ज्ञान-चक्षुका उन्मीलन होता है। यह बहुत आवश्यक है कि आत्म और अनात्मभेदको समझा जाय। यह आत्मा सदा मुक्त है, इसका बन्धन समझना मूर्खता है। इसलिये योगीजन अनासक्तरूपसे अपने-अपने शास्त्रोक्त कर्म करते हुए जीवन्मुक्त होकर लोक-व्यवहार करते हैं। हे राजन्! इस ब्रह्मविद्याको जानकर ऐसा अभ्यास करके तुममें तुच्छ भावनाका उदय न होगा। जो पुरुष ज्ञानस्वरूप परब्रह्मको देख लेता है, वह महान् हो जाता है। उसका जीवभाव समाप्त हो जाता है। उसका आनन्द परमानन्द कहा जाता है। जो ऐसा हो जाता है, उसमें विषयका अनुराग नहीं होता। उसको शोक, मोह कुछ नहीं सताते। कहा है—**'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः'**। अतः हे राजन्! तुम शोक मत करो। पिता-पुत्रका सम्बन्ध वास्तविक नहीं है। तुम ऐसा समझो कि मैं ही सबकी माता, सबका पिता, सबका आत्मा, सबका पितामह और सबका पुत्र हूँ। इस पृथ्वीपर जो कुछ है, सब कुछ मैं ही हूँ। जो कुछ नहीं है, वह भी मैं ही हूँ। मैं ही भूत, भविष्य और वर्तमान हूँ। मेरेमें सब कुछ है और मैं ही सबमें हूँ। ऐसा निश्चय कर लो। हे राजन्! तुम ऐसा समझ लो कि आत्मा ही मेरा निवास-स्थान है, आत्मा ही मेरा जन्म है। न मैं किसीका अनिष्ट कर सकता हूँ, न मेरा कोई अनिष्ट कर सकता है। **'अहम्'** (मैं) और **'मम'** (मेरा) यह सब भूल जाओ। इससे तुम सुखी हो जाओगे और अपने आनन्दस्वरूपको प्राप्त हो जाओगे।

पाथेय

(श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्रत्येक परिस्थिति उसी अनन्तकी अभिव्यक्ति है। इस कारण प्रत्येक कार्य उन्हींकी पूजा है। सत्तारूपसे उन्हें पहचान लेनेपर प्रत्येक कार्य प्रीतिकी जागृतिका साधन बन जाता है। पर यह रहस्य वे ही जान पाते हैं, जो कर्तृत्वमें आसक्ति तथा फलकी आशासे रहित होकर कार्य करने लगते हैं। कर्तृत्वका बोझा अपने ऊपरसे सदाके लिये उतार दो और फलकी आशासे रहित हो जाओ। ऐसा होते ही प्रत्येक कार्य प्रीतिकी जागृतिमें हेतु हो जायगा। जो कुछ हो रहा है, उसमें उस अनन्तकी लीलाका अनुभव करो और जो कुछ कर रहे हो उसे उनकी पूजा जानो।

× × ×

पूजाका भाव प्रियताको सबल तथा पुष्ट बनाता है। कर्मका भाव शिथिलता तथा थकावट उत्पन्न करता है और फलकी आशामें आबद्ध कर देता है। पूजाका भाव नित-नव उत्कण्ठा तथा उत्साह प्रदानकर प्रीतिसे अभिन्न कर देता है। कर्म और पूजाका भेद जान लेनेपर कर्मसे सदाके लिये छुटकारा मिल जाता है और फिर प्रत्येक प्रवृत्तिके अन्तमें चिर-शान्ति स्वतः प्राप्त होती है, जो आवश्यक शक्ति प्रदान करनेमें समर्थ है।

× × ×

शरीरके सम्बन्धमें कुछ भी चिन्ता नहीं करनी है। चाहे जैसा रहे, केवल उसके प्रति सेवाका भाव रखना है। वह भी इस कारण कि वह प्यारेकी वस्तु है। जो वस्तु उनकी हो जाती है, उसमें उनके काम आनेकी योग्यता आ जाती है और जिस वस्तुके प्रति अपनी ममता रहती है, उसमें अनेक दोष आ जाते हैं। ममता करनेके योग्य तो केवल वे ही हैं। अत्यन्त गाढ़ आत्मीयताका भाव ही प्रीतिका संचार करनेमें समर्थ है। उसे सर्वदा सुरक्षित रखो। बस, यही तुम्हारा परम पुरुषार्थ है। आत्मीयतामें प्रियता निहित है। आत्मीयता ही महामन्त्र है। आत्मीयता ही परम आश्रय है। आत्मीयता उदय होते ही जो होना चाहिये, वह स्वतः होने लगता है।

× × ×

सर्वदा अनन्तकी प्रीति बनाये रहो और विश्वके स्वरूपमें अनेक भाव तथा अनेक प्रकारसे क्रियात्मक रूपमें उन्हींको लाड़ लड़ाओ। प्रत्येक प्रवृत्ति (कार्य) प्रियकी पूजा है। प्रवृत्तियोंके अन्तमें स्वतः मधुर स्मृति जाग्रत् रहे। जब क्रियाशीलता भावमें विलीन हो जायगी, तब प्रवृत्तिके अन्तमें मधुर स्मृति स्वतः जाग्रत् होगी, यह निर्विवाद सत्य है। संतुलन सुरक्षित रखनेके लिये कर्मभेदमें भी प्रीति तथा लक्ष्यकी एकता सुरक्षित रखनी है।

× × ×

आस्तिक साधक अपनेमें अपना करके कुछ नहीं जानता। केवल प्रेमास्पदकी अहैतुकी कृपाके आश्रयको ही अपना परम पुरुषार्थ मान निश्चिन्त तथा निर्भय हो जाता है। नित्य-प्राप्तमें नित-नव प्रियताके बिना प्रतीतिका प्रभाव साधकपर बना रहता है। अपने निज स्वरूपकी विस्मृतिसे ही अर्थात् प्रीति ही मेरा एकमात्र जीवन है—यह भूल जानेसे ही ऐसा होता है। प्रीतिका ही क्रियात्मक रूप सेवा है। सेवा प्रीतिकी वृद्धिमें हेतु है और प्रीति सेवाको सजीव बनाती है। प्रवृत्तिमें प्रीति सेवाके स्वरूपमें प्रकट होती है और निवृत्तिमें सेवा प्रेमास्पदकी मधुर स्मृतिका रूप धारण करती है। पर यह सब कुछ स्वतः होगा। अनन्तकी कृपा- शक्ति विश्वासी साधकोंका निर्माण करती है। इस दृष्टिसे आस्तिकके जीवनमें चिन्ता तथा भयके लिये कोई स्थान ही नहीं है।

× × ×

वे स्वयं ही सुख-दुःखके रूपमें सेवा और त्यागका पाठ पढ़ाते हैं और अनेक रूपोंमें वे स्वयं ही हैं, कोई और नहीं है। इतना ही नहीं, आपमें उनके प्रति जो आत्मीयता जाग्रत् हुई है, वह भी उन्हींकी विभूति है। वे स्वयं प्रेम और प्रेमास्पद हैं। उनसे भिन्न कुछ है ही नहीं। उनकी प्रियता, स्मृति, आत्मीयता और विश्वास ही उनके लिये रसरूप है। उनके होकर उनकी प्रियता माँगो। अवश्य मिलेगी। कारण कि वे अपनी प्रियतासे आप मोहित होते हैं। मानवका निर्माण एकमात्र उन्होंने प्रियताके लिये ही किया है। अतः नित-नव प्रियतासे निराश होना भूल है। आशा है कि आप अविचल आस्थापूर्वक अपनेको उनकी प्रियताका अधिकारी स्वीकार करेंगे। मेरी सद्भावना सदैव आपके साथ है।

विदुरनीति

दूसरा अध्याय

[विशेषाङ्क पृ०-सं० ३६४ से आगे]

धृतराष्ट्र उवाच

जाग्रतो दह्यमानस्य यत् कार्यमनुपश्यसि।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि॥ १॥

त्वं मां यथावद् विदुर प्रशाधि
प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः।
यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्व
श्रेयस्करं ब्रूहि तद् वै कुरूणाम्॥ २॥

पापाशङ्की पापमेवानुपश्यन्
पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाहम्।
कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथाव-
न्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः॥ ३॥

विदुर उवाच

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत्पराभवम्॥ ४॥

तस्माद् वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत्स्यात् कुरून्प्रति।
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे॥ ५॥

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत।
अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः॥ ६॥

तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिध्यति।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः॥ ७॥

अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्॥ ८॥

अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम्।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा॥ ९॥

यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते॥ १०॥

यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति॥ ११॥

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम्।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम्॥ १२॥

धृतराष्ट्र बोले—तात! मैं चिन्तासे जलता हुआ अभीतक जाग रहा हूँ, तुम मेरे करने योग्य जो कार्य समझो, उसे बताओ; क्योंकि हमलोगोंमें तुम्हीं धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण हो॥ १॥ उदारचित्त विदुर! तुम अपनी बुद्धिसे विचारकर मुझे ठीक-ठीक उपदेश करो। जो बात युधिष्ठिरके लिये हितकर और कौरवोंके लिये कल्याणकारी समझो, वह सब अवश्य बताओ॥ २॥ विद्वन्! मेरे मनमें अनिष्टकी आशङ्का बनी रहती है, इसलिये मैं सर्वत्र अनिष्ट ही देखता हूँ, अतः व्याकुल हृदयसे मैं तुमसे पूछ रहा हूँ—अजातशत्रु युधिष्ठिर क्या चाहते हैं? सो सब ठीक-ठीक बताओ॥ ३॥

विदुरजीने कहा—मनुष्योंको चाहिये कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी कल्याण करनेवाली या अनिष्ट करनेवाली अच्छी अथवा बुरी—जो भी बात हो, बता दे॥ ४॥ इसलिये राजन्! जिससे समस्त कौरवोंका हित हो, वही बात आपसे कहूँगा। मैं जो कल्याणकारी एवं धर्मयुक्त वचन कह रहा हूँ, उन्हें आप ध्यान देकर सुनें—॥ ५॥ भारत! असत् उपायों (जूआ आदि)-का प्रयोग करके जो कपटपूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, उनमें आप मन मत लगाइये॥ ६॥ इसी प्रकार अच्छे उपायोंका उपयोग करके सावधानीके साथ किया गया कोई कर्म यदि सफल न हो तो बुद्धिमान् पुरुषको उसके लिये मनमें ग्लानि नहीं करनी चाहिये॥ ७॥ किसी प्रयोजनसे किये गये कर्मोंमें पहले प्रयोजनको समझ लेना चाहिये। खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिये, जल्दबाजीसे किसी कामका आरम्भ नहीं करना चाहिये॥ ८॥ धीर मनुष्यको उचित है कि पहले कर्मोंके प्रयोजन, परिणाम तथा अपनी उन्नतिका विचार करके फिर काम आरम्भ करे या न करे॥ ९॥ जो राजा स्थिति, लाभ, हानि, खजाना, देश तथा दण्ड आदिकी मात्राको नहीं जानता, वह राज्यपर स्थित नहीं रह सकता॥ १०॥ जो इनके प्रमाणोंको ठीक-ठीक जानता है तथा धर्म और अर्थके ज्ञानमें दत्तचित्त रहता है, वह राज्यको प्राप्त करता है॥ ११॥ 'अब तो राज्य प्राप्त हो ही गया'—ऐसा समझकर अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिये। उद्दण्डता सम्पत्तिको उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे सुन्दर रूपको बुढ़ापा॥ १२॥

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो वडिशमायसम्।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते॥ १३॥

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता॥ १४॥

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति॥ १५॥

यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलाद् रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः॥ १६॥

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया॥ १७॥

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः॥ १८॥

किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः।
इति कर्माणि संचिन्त्य कुर्याद् वा पुरुषो न वा॥ १९॥

अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथागताः।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद् येषु निरर्थकः॥ २०॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः॥ २१॥

कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान्।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान्॥ २२॥

ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः॥ २३॥

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः।
अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित्॥ २४॥

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति॥ २५॥

मछली बढ़िया चारेसे ढकी हुई लोहेकी काँटीको लोभमें पड़कर निगल जाती है, उससे होनेवाले परिणामपर विचार नहीं करती॥ १३॥ अतः अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको वही वस्तु खानी (या ग्रहण करनी) चाहिये, जो खाने योग्य हो तथा खायी जा सके, खाने (या ग्रहण करने)-पर पच सके और पच जानेपर हितकारी हो॥ १४॥ जो पेड़से कच्चे फलोंको तोड़ता है, वह उन फलोंसे रस तो पाता नहीं; उलटे उस वृक्षके बीजका नाश होता है॥ १५॥ परंतु जो समयपर पके हुए फलको ग्रहण करता है, वह फलसे रस पाता है और उस बीजसे पुनः फल प्राप्त करता है॥ १६॥ जैसे भौंरा फूलोंकी रक्षा करता हुआ ही उनके मधुका आस्वादन करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजाजनोंको कष्ट दिये बिना ही उनसे धन ले॥ १७॥ जैसे माली बगीचेमें एक-एक फूल तोड़ता है, उसकी जड़ नहीं काटता, उसी प्रकार राजा प्रजाकी रक्षापूर्वक उनसे कर ले। कोयला बनानेवालेकी तरह जड़ नहीं काटनी चाहिये॥ १८॥ इसे करनेसे मेरा क्या लाभ होगा और न करनेसे क्या हानि होगी—इस प्रकार कर्मोंके विषयमें भलीभाँति विचार करके फिर मनुष्य करे या न करे॥ १९॥ कुछ ऐसे व्यर्थ कार्य हैं, जो नित्य अप्राप्त होनेके कारण आरम्भ करने योग्य नहीं होते, क्योंकि उनके लिये किया हुआ पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जाता है॥ २०॥ जिसकी प्रसन्नताका कोई फल नहीं और क्रोध भी व्यर्थ है, उसको प्रजा स्वामी बनाना नहीं चाहती—जैसे स्त्री नपुंसकको पति नहीं बनाना चाहती॥ २१॥ जिनका मूल (साधन) छोटा और फल महान् हो, बुद्धिमान् पुरुष उनको शीघ्र ही आरम्भ कर देता है, वैसे कामोंमें वह विघ्न नहीं आने देता॥ २२॥ जो राजा मानो आँखोंसे पी जायगा—इस प्रकार प्रेमके साथ कोमल दृष्टिसे देखता है, वह चुपचाप बैठा रहे तो भी प्रजा उससे अनुराग रखती है॥ २३॥ राजा वृक्षकी भाँति अच्छी तरह फूलने (प्रसन्न रहने)-पर भी फलसे खाली रहे (अधिक देनेवाला न हो), यदि फलसे युक्त (देनेवाला) हो तो भी जिसपर चढ़ा न जा सके, ऐसा (पहुँचके बाहर) होकर रहे। कच्चा (कम शक्तिवाला) होनेपर भी पके (शक्तिसम्पन्न)-की भाँति अपनेको प्रकट करे। ऐसा करनेसे वह नष्ट नहीं होता॥ २४॥ जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म—इन चारोंसे प्रजाको प्रसन्न करता है, उसीसे प्रजा प्रसन्न रहती है॥ २५॥

यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते॥ २६॥

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः॥ २७॥

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्धिनी॥ २८॥

अथ संत्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा॥ २९॥

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने।
स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने॥ ३०॥

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते॥ ३१॥

अप्युन्मत्तात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः।
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम्॥ ३२॥

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा॥ ३३॥

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः॥ ३४॥

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा।
अथ या सुदुहा राजन् नैव तां वितुदन्त्यपि॥ ३५॥

यदतप्तं प्रणमति न तत् संतापयन्त्यपि।
यच्च स्वयं नतं दारु न तत् संनमयन्त्यपि॥ ३६॥

एतयोपमया धीरः संनमेत बलीयसे।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे॥ ३७॥

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः॥ ३८॥

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते॥ ३९॥

जैसे व्याधसे हरिन भयभीत होता है, उसी प्रकार जिससे समस्त प्राणी डरते हैं, वह समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका राज्य पाकर भी प्रजाजनोंके द्वारा त्याग दिया जाता है॥ २६॥ अन्यायमें स्थित हुआ राजा बाप-दादोंका राज्य पाकर भी अपने ही कर्मोंसे उसे इस तरह भ्रष्ट कर देता है, जैसे हवा बादलको छिन्न-भिन्न कर देती है॥ २७॥ परम्परासे सज्जन पुरुषोंद्वारा किये हुए धर्मका आचरण करनेवाले राजाके राज्यकी पृथ्वी धन-धान्यसे पूर्ण होकर उन्नतिको प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्यको बढ़ाती है॥ २८॥ जो राजा धर्मको छोड़ता और अधर्मका अनुष्ठान करता है, उसकी राज्यभूमि आगपर रखे हुए चमड़ेकी भाँति संकुचित हो जाती है॥ २९॥ जो यत्न दूसरे राष्ट्रोंका नाश करनेके लिये किया जाता है, वही अपने राज्यकी रक्षाके लिये करना उचित है॥ ३०॥ धर्मसे ही राज्य प्राप्त करे और धर्मसे ही उसकी रक्षा करे; क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मीको पाकर न तो राजा उसे छोड़ता है और न वही राजाको छोड़ती है॥ ३१॥ निरर्थक बोलनेवाले, पागल तथा बकवाद करनेवाले बच्चेसे भी सब ओरसे उसी भाँति तत्त्वकी बात ग्रहण करनी चाहिये, जैसे पत्थरोंमेंसे सोना ले लिया जाता है॥ ३२॥ जैसे उञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाला एक-एक दाना चुगता रहता है, उसी प्रकार धीर पुरुषको जहाँ-तहाँसे भावपूर्ण वचनों, सूक्तियों और सत्कर्मोंका संग्रह करते रहना चाहिये॥ ३३॥ गौएँ गन्धसे, ब्राह्मणलोग वेदोंसे, राजा जासूसोंसे और अन्य साधारण लोग आँखोंसे देखा करते हैं॥ ३४॥ राजन्! जो गाय बड़ी कठिनाईसे दुहने देती हैं, वह बहुत क्लेश उठाती हैं; किंतु जो आसानीसे दूध देती है, उसे लोग कष्ट नहीं देते॥ ३५॥ जो धातु बिना गरम किये मुड़ जाते हैं, उन्हें आगमें नहीं तपाते। जो काठ स्वयं झुका होता है, उसे लोग झुकानेका प्रयत्न नहीं करते॥ ३६॥ इस दृष्टान्तके अनुसार बुद्धिमान् पुरुषको अधिक बलवान्के सामने झुक जाना चाहिये; जो अधिक बलवान्के सामने झुकता है, वह मानो इन्द्रदेवताको प्रणाम करता है॥ ३७॥ पशुओंके रक्षक या स्वामी हैं बादल, राजाओंके सहायक हैं मन्त्री, स्त्रियोंके बन्धु (रक्षक) हैं पति और ब्राह्मणोंके बान्धव हैं वेद॥ ३८॥ सत्यसे धर्मकी रक्षा होती है, योगसे विद्या सुरक्षित होती है, सफाईसे सुन्दर रूपकी रक्षा होती है और सदाचारसे कुलकी रक्षा होती है॥ ३९॥

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः।
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः॥ ४०॥

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते॥ ४१॥

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः॥ ४२॥

अकार्यकरणाद् भीतः कार्याणां च विवर्जनात्।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत् पिबेत्॥ ४३॥

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः॥ ४४॥

असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भिः क्वचित्कार्ये कदाचन।
मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम्॥ ४५॥

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः॥ ४६॥

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवताजितम्॥ ४७॥

शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः॥ ४८॥

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ॥ ४९॥

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत् स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा॥ ५०॥

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते॥ ५१॥

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद् भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम्॥ ५२॥

तौलनेसे नाजकी रक्षा होती है, फेरनेसे घोड़े सुरक्षित रहते हैं, बारम्बार देखभाल करनेसे गौओंकी तथा मैले वस्त्रसे स्त्रियोंकी रक्षा होती है॥ ४०॥ मेरा ऐसा विचार है कि सदाचारसे हीन मनुष्यका केवल ऊँचा कुल मान्य नहीं हो सकता; क्योंकि नीच कुलमें उत्पन्न मनुष्योंका भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है॥ ४१॥ जो दूसरोंके धन, रूप, पराक्रम, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सम्मानपर डाह करता है, उसका यह रोग असाध्य है॥ ४२॥ न करने योग्य काम करनेसे, करने योग्य काममें प्रमाद करनेसे तथा कार्य सिद्ध होनेके पहले ही मन्त्र प्रकट हो जानेसे डरना चाहिये और जिससे नशा चढ़े, ऐसा पेय नहीं पीना चाहिये॥ ४३॥ विद्याका मद, धनका मद और तीसरा ऊँचे कुलका मद है। ये घमण्डी पुरुषोंके लिये तो मद हैं, परंतु सज्जन पुरुषोंके लिये दमके साधन हैं॥ ४४॥ कभी किसी कार्यमें सज्जनोंद्वारा प्रार्थित होनेपर दुष्टलोग अपनेको प्रसिद्ध दुष्ट जानते हुए भी सज्जन मानने लगते हैं॥ ४५॥ मनस्वी पुरुषोंको सहारा देनेवाले संत हैं, संतोंके भी सहारे संत ही हैं; दुष्टोंको भी सहारा देनेवाले संत हैं, पर दुष्टलोग संतोंको सहारा नहीं देते॥ ४६॥ अच्छे वस्त्रवाला सभाको जीतता (अपना प्रभाव जमा लेता) है, जिसके पास गौ है, वह मीठे स्वादकी आकाङ्क्षाको जीत लेता है; सवारीसे चलनेवाला मार्गको जीत लेता (तय कर लेता) है और शीलवान् पुरुष सबपर विजय पा लेता है॥ ४७॥ पुरुषमें शील ही प्रधान है, जिसका वही नष्ट हो जाता है, इस संसारमें उसका जीवन, धन और बन्धुओंसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता॥ ४८॥ भरतश्रेष्ठ! धनोन्मत्त पुरुषोंके भोजनमें मांसकी, मध्यम श्रेणीवालोंके भोजनमें गोरसकी तथा दरिद्रोंके भोजनमें तेलकी प्रधानता होती है॥ ४९॥ दरिद्र पुरुष सदा स्वादिष्ट ही भोजन करते हैं, क्योंकि भूख उनके भोजनमें स्वाद उत्पन्न कर देती है और वह (भूख) धनियोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है॥ ५०॥ राजन्! संसारमें धनियोंको प्रायः भोजन करनेकी शक्ति नहीं होती, किंतु दरिद्रोंके पेटमें काठ भी पच जाते हैं॥ ५१॥ अधम पुरुषोंको जीविका न होनेसे भय लगता है, मध्यम श्रेणीके मनुष्योंको मृत्युसे भय होता है, परंतु उत्तम पुरुषोंको अपमानसे ही महान् भय होता है॥ ५२॥

ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते॥ ५३॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव॥ ५४॥

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट्॥ ५५॥

अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते।
अमित्रान् वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते॥ ५६॥

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण यो जयेत्।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते॥ ५७॥

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते॥ ५८॥

रथः शरीरं पुरुषस्य राज-
न्नात्मा नियतेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः॥ ५९॥

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम्॥ ६०॥

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम्॥ ६१॥

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥ ६२॥

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः॥ ६३॥

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ ६४॥

यों तो पीनेका नशा आदि भी नशा ही है, किंतु ऐश्वर्यका नशा तो बहुत ही बुरा है; क्योंकि ऐश्वर्यके मदसे मतवाला पुरुष भ्रष्ट हुए बिना होशमें नहीं आता॥ ५३॥ वशमें न होनेके कारण विषयोंमें रमनेवाली इन्द्रियोंसे यह संसार उसी भाँति कष्ट पाता है, जैसे सूर्य आदि ग्रहोंसे नक्षत्र तिरस्कृत हो जाते हैं॥ ५४॥ जो मनुष्य जीवोंको वशमें करनेवाली सहज पाँच इन्द्रियोंसे जीत लिया गया, उसकी आपत्तियाँ शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ती हैं॥ ५५॥ इन्द्रियोंसहित मनको जीते बिना ही जो मन्त्रियोंको जीतनेकी इच्छा करता है या मन्त्रियोंको अपने अधीन किये बिना शत्रुको जीतना चाहता है, उस अजितेन्द्रिय पुरुषको सब लोग त्याग देते हैं॥ ५६॥ जो पहले इन्द्रियोंसहित मनको ही शत्रु समझकर जीत लेता है, उसके बाद यदि वह मन्त्रियों तथा शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करे तो उसे सफलता मिलती है॥ ५७॥ इन्द्रियों तथा मनको जीतनेवाले, अपराधियोंको दण्ड देनेवाले और जाँच-परखकर काम करनेवाले धीर पुरुषकी लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती हैं॥ ५८॥ राजन्! मनुष्यका शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है और इन्द्रियाँ इसके घोड़े हैं। इनको वशमें करके सावधान रहनेवाला चतुर एवं धीर पुरुष काबूमें किये हुए घोड़ोंसे रथीकी भाँति सुखपूर्वक यात्रा करता है॥ ५९॥ शिक्षा न पाये हुए तथा काबूमें न आनेवाले घोड़े जैसे मूर्ख सारथिको मार्गमें मार गिराते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियाँ वशमें न रहनेपर पुरुषको मार डालनेमें भी समर्थ होती हैं॥ ६०॥ इन्द्रियाँ वशमें न होनेके कारण अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ समझकर अज्ञानी पुरुष बहुत बड़े दुःखको भी सुख मान बैठता है॥ ६१॥ जो धर्म और अर्थका परित्याग करके इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है वह शीघ्र ही ऐश्वर्य, प्राण, धन तथा स्त्रीसे ही हाथ धो बैठता है॥ ६२॥ जो अधिक धनका स्वामी होकर भी इन्द्रियोंपर अधिकार नहीं रखता, वह इन्द्रियोंको वशमें न रखनेके कारण ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है॥ ६३॥ मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको अपने अधीन कर अपनेसे ही अपने आत्माको जाननेकी इच्छा करे; क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है॥ ६४॥

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः॥ ६५॥

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः॥ ६६॥

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति।
स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते॥ ६७॥

यः पञ्चाभ्यन्तराञ्छत्रूनविजित्य मनोमयान्।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम्॥ ६८॥

दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः।
इन्द्रियाणामनीशत्वाद् राजानो राज्यविभ्रमैः॥ ६९॥

असंत्यागात् पापकृतामपापां-
स्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्
तस्मात् पापैः सह सन्धिं न कुर्यात्॥ ७०॥

निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्चप्रयोजनान्।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम्॥ ७१॥

अनसूयाऽऽर्जवं शौचं संतोषः प्रियवादिता।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम्॥ ७२॥

आत्मज्ञानमसंरम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत॥ ७३॥

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान्।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते॥ ७४॥

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम्।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम्॥ ७५॥

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम्॥ ७६॥

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते॥ ७७॥

जिसने स्वयं अपने आत्माको जीत लिया है, उसका आत्मा ही उसका बन्धु है। वही सच्चा बन्धु और वही नियत शत्रु है॥ ६५॥ राजन्! जिस प्रकार सूक्ष्म छेदवाले जालमें फँसी हुई दो बड़ी-बड़ी मछलियाँ मिलकर जालको काट डालती हैं, उसी प्रकार ये काम और क्रोध—दोनों विशिष्ट ज्ञानको लुप्त कर देते हैं॥ ६६॥ जो इस जगत्‌में धर्म तथा अर्थका विचार करके विजय-साधन-सामग्रीका संग्रह करता है, वही उस सामग्रीसे युक्त होनेके कारण सदा सुखपूर्वक समृद्धिशाली होता रहता है॥ ६७॥ जो चित्तके विकारभूत पाँच इन्द्रियरूपी भीतरी शत्रुओंको जीते बिना ही दूसरे शत्रुओंको जीतना चाहता है, उसे शत्रु पराजित कर देते हैं॥ ६८॥ इन्द्रियोंपर अधिकार न होनेके कारण बड़े-बड़े साधु भी अपने कर्मोंसे तथा राजालोग राज्यके भोग-विलासोंसे बँधे रहते हैं॥ ६९॥ पापाचारी दुष्टोंका त्याग न करके उनके साथ मिले रहनेसे निरपराध सज्जनोंको भी उनके समान ही दण्ड प्राप्त होता है, जैसे सूखी लकड़ीमें मिल जानेसे गीली भी जल जाती है; इसलिये दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मेल न करे॥ ७०॥ जो पाँच विषयोंकी ओर दौड़नेवाले अपने पाँच इन्द्रियरूपी शत्रुओंको मोहके कारण वशमें नहीं करता, उस मनुष्यको विपत्ति ग्रस लेती है॥ ७१॥ गुणोंमें दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, संतोष, प्रिय वचन बोलना, इन्द्रियदमन, सत्यभाषण तथा अचञ्चलता—ये गुण दुरात्मा पुरुषोंमें नहीं होते॥ ७२॥ भारत! आत्मज्ञान, अक्रोध, सहनशीलता, धर्मपरायणता, वचनकी रक्षा तथा दान—ये गुण अधम पुरुषोंमें नहीं होते॥ ७३॥ मूर्ख मनुष्य विद्वानोंको गाली और निन्दासे कष्ट पहुँचाते हैं। गाली देनेवाला पापका भागी होता है और क्षमा करनेवाला पापसे मुक्त हो जाता है॥ ७४॥ दुष्ट पुरुषोंका बल है हिंसा, राजाओंका बल है दण्ड देना, स्त्रियोंका बल है सेवा और गुणवानोंका बल है क्षमा॥ ७५॥ राजन्! वाणीका पूर्ण संयम तो बहुत कठिन माना ही गया है, परंतु विशेष अर्थयुक्त और चमत्कारपूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती॥ ७६॥ राजन्! मधुर शब्दोंमें कही हुई बात अनेक प्रकारसे कल्याण करती है; किंतु वही यदि कटु शब्दोंमें कही जाय तो महान् अनर्थका कारण बन जाती है॥ ७७॥

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्॥ ७८॥

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः॥ ७९॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति राज्यहानि।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः॥ ८०॥

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति॥ ८१॥

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति॥ ८२॥

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ।
पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे॥ ८३॥

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत्।
शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः॥ ८४॥

अतीत्य सर्वान् पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः।
तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित्॥ ८५॥

अनुक्रोशादानृशंस्याद् योऽसौ धर्मभृतां वरः।
गौरवात् तव राजेन्द्र बहून् क्लेशांस्तितिक्षति॥ ८६॥

बाणोंसे बींधा हुआ तथा फरसेसे काटा हुआ वन भी पनप जाता है, किंतु कटु वचन कहकर वाणीसे किया हुआ भयानक घाव नहीं भरता॥ ७८॥ कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाणोंको शरीरसे निकाल सकते हैं, परंतु कटु वचनरूपी काँटा नहीं निकाला जा सकता; क्योंकि वह हृदयके भीतर धँस जाता है॥ ७९॥ वचनरूपी बाण मुखसे निकलकर दूसरोंके मर्मपर ही चोट करते हैं, उनसे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है। अतः विद्वान् पुरुष दूसरोंपर उनका प्रयोग न करे॥ ८०॥ देवतालोग जिसे पराजय देते हैं, उसकी बुद्धिको पहले ही हर लेते हैं; इससे वह नीच कर्मोंपर ही अधिक दृष्टि रखता है॥ ८१॥ विनाशकाल उपस्थित होनेपर बुद्धि मलिन हो जाती है; फिर तो न्यायके समान प्रतीत होनेवाला अन्याय हृदयसे बाहर नहीं निकलता॥ ८२॥ भरतश्रेष्ठ! आपके पुत्रोंकी वह बुद्धि पाण्डवोंके प्रति विरोधसे व्याप्त हो गयी है; आप इन्हें पहचान नहीं रहे हैं॥ ८३॥ महाराज धृतराष्ट्र! जो राजलक्षणोंसे सम्पन्न होनेके कारण त्रिभुवनका भी राजा हो सकता है, वह आपका आज्ञाकारी युधिष्ठिर ही इस पृथ्वीका शासक होने योग्य है॥ ८४॥ वह धर्म तथा अर्थके तत्त्वको जाननेवाला, तेज और बुद्धिसे युक्त, पूर्ण सौभाग्यशाली तथा आपके सभी पुत्रोंसे बढ़-चढ़कर है॥ ८५॥ राजेन्द्र! धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर दया, सौम्यभाव तथा आपके प्रति गौरव-बुद्धिके कारण बहुत कष्ट सह रहा है॥ ८६॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुनीतिवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरजीके नीतिवाक्य विषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

सभ्यता और शिष्टाचार

एक बार फ्रांसके राजा हेनरी चतुर्थ अपने अंगरक्षकके साथ पेरिसकी आम सड़कसे जा रहे थे कि एक भिखारीने अपने सिरका हैट उतारकर उन्हें अभिवादन किया। प्रत्युत्तरमें हेनरीने भी अपना सिर झुकाया। यह देखकर अंगरक्षक हेनरीसे बोला—महाराज! आप सरीखे सम्राट्को एक तुच्छ भिखारीको अभिवादन करना शोभा नहीं देता।

'शोभा देता है या नहीं, यह तो तुम लोगोंके सोचनेकी बात है, मेरी नहीं।' राजा आगे बोले—यदि मैंने उसे अभिवादन न किया होता तो मेरे अन्तर्मनकी मानवता मुझे कोसती रहती कि 'है तो तू फ्रांसका सम्राट्, किंतु तुझमें एक भिखारीके बराबर भी सभ्यता और शिष्टाचार नहीं।' प्रेषक—श्रीमुकेशमोहनजी तिवारी

श्रीराम-दर्पण

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

'वाल्मीकीय रामायण' संस्कृत साहित्यका आदि महाकाव्य है। ऐतिहासिक कालके अरुणोदयमें रचा जानेवाला यह ग्रन्थ नैतिक आदर्शोंका भण्डार है। अन्तरङ्ग प्रमाणोंके आधारपर श्रीरामके समकालीन महर्षि श्रीवाल्मीकिजीकी लेखनीका अद्भुत कौशल ज्ञानवर्धक, रोचक तथा पाण्डित्यपूर्ण है। समस्त संसारमें किसीने भी किसी भी विषय-वस्तुकी जानकारीकी ऐसी विस्तृत सामग्री नहीं उपलब्ध करायी जैसी इस ग्रन्थमें पायी जाती है। वाल्मीकीय रामायणमें सहस्रों वर्ष पूर्वके भारतीय सनातन आर्योंके जीवन-यापनका सजीव चित्रण मिलता है। इस ग्रन्थमें तत्कालीन युगकी सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियोंपर प्रकाश डालनेवाली सामग्री भरी पड़ी है।

उस शुभ दिनका हम जितना धन्यवाद करें, कम ही होगा; जिस दिन तमसाका वह तट वाल्मीकिके इन स्वरोंसे मुखरित हो उठा होगा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥*

(वा०रा०बाल० २। १५)

प्रजापति ब्रह्माके इस आदेशानुसार कि—

रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः॥

(वा०रा०बाल० २। ३२)

मुनिवर! परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीराम विश्वमें श्रेष्ठतम धर्मात्मा तथा धीर पुरुष हैं, तुम उनका चरित्र-चित्रण करो। जैसा तुमने नारदजीके मुँहसे सुना है—'**यथा ते नारदाच्छ्रुतम्**'। साथ ही ब्रह्माजीने एक ऐसा अद्भुत वरदान भी वाल्मीकिको दिया कि 'इस पृथ्वीपर जबतक नदियों और पर्वतोंकी सत्ता रहेगी, तबतक संसारमें रामायणकथाका प्रचार होता रहेगा'—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले॥
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।

(वा०रा०बाल० २। ३६-३७)

निरन्तर प्रवाहित रामकथाने प्राचीन महर्षियोंसे लेकर वर्तमानमें भी कितने मनीषियोंको प्रेरित कर इस ब्रह्मवाक्यको यथार्थ बनाया है। स्वयं वाल्मीकिजीके शब्द देखिये—

स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः।
भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः॥
स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते॥
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥
बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।
वीर्यवान् न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः॥

(वा०रा०अयो० १। ९—११, १३)

श्रीराम बड़े ही रूपवान्, पराक्रमी, परदोष न देखनेवाले, भूमण्डलमें अद्वितीय समतावाले, योग्य संतान, शान्तचित्त, सान्त्वनायुक्त मृदुभाषी, कठोर वचन सहन करनेवाले, परोपकारी, क्षमावान्, निरभिमानी तथा सर्वगुणसम्पन्न थे। इतना ही नहीं वे 'जितक्रोधः'—क्रोधको जीतनेवाले, 'दीनानुकम्पी'—दीन-दुःखियोंके प्रति दयावान्, 'सर्वविद्याव्रतस्नातः०'—सम्पूर्ण विद्याओंके व्रतमें निष्णात, 'धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः०'—धर्म, काम और अर्थको सम्यक् जाननेवाले, 'स्थितप्रज्ञः०', 'सेनानयविशारदः०'—सैन्य-संचालनकी नीतिमें निपुण तथा 'बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये चापि शचीपतेः'—बुद्धिमें बृहस्पति और बलमें इन्द्रतुल्य थे।

पञ्चम वेद कहे जानेवाले महाभारतमें भी भगवान् वेदव्यासने श्रीरामके गुणोंका चित्रण इसी प्रकार किया है। जयद्रथको द्रौपदीहरणका उचित दण्ड देनेके पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर अधिक उद्विग्न हो उठे। उन्होंने काम्यकवनमें मुनिमण्डलीके साथ बैठे मार्कण्डेयजीको लक्ष्यकर पूछा—'भगवन्! क्या संसारमें मेरे-जैसा भी कोई हतभागी होगा, जिसे इतना महान् कष्ट उठाना पड़ा हो?'

मार्कण्डेय मुनिने कहा—'भरतश्रेष्ठ! श्रीरामका समग्र जीवन ऐसी ही करुण-गाथा है जबकि युद्धमें उनका

* निषाद! तुझे नित्य-निरन्तर—कभी भी शान्ति न मिले; क्योंकि तूने इस क्रौञ्चके जोड़ेमेंसे एककी, जो कामसे मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराधके ही हत्या कर डाली।

पराक्रम देवराज इन्द्रसे कम नहीं था। वे समस्त धर्मोंके पारङ्गत विद्वान् और बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। सम्पूर्ण प्रजाका उनमें अनुराग था। वे सभी विद्याओंमें प्रवीण तथा जितेन्द्रिय थे। उनका अद्भुत रूप देखकर शत्रुओंके भी नेत्र और मन लुभा जाते थे। वे दुष्टोंका दमन करनेमें समर्थ, साधुओंके संरक्षक, धर्मात्मा, धैर्यवान्, दुर्धर्ष, विजयी तथा किसीसे भी परास्त होनेवाले नहीं थे'—

दीप्यमानं श्रिया वीरं शक्रादनवरं रणे।
पारगं सर्वधर्माणां बृहस्पतिसमं मतौ॥
सर्वानुरक्तप्रकृतिं सर्वविद्याविशारदम्।
जितेन्द्रियममित्राणामपि दृष्टिमनोहरम्॥
नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम्।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम्॥

(महा० वन० २७७। १०—१२)

'ब्रह्माण्डपुराण' के उत्तरखण्डके अन्तर्गत उमा-महेश्वर-संवादके रूपमें कहे जानेवाले आख्यानकी विषयवस्तु ही अध्यात्मरामायणमें वर्णित है। अध्यात्म-तत्त्वके विवेचनके कारण ही इसे 'अध्यात्मरामायण' कहा जाता है। इस ग्रन्थका अध्ययन अत्यन्त रोचक, हृदयग्राही तथा ज्ञानवर्धक है। इसके अन्तर्गत शबरी-प्रसङ्गमें श्रीरामके गुणोंका वर्णन करते हुए वेदव्यासजी लिखते हैं—

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे
लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशं
रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः॥

(अर० १०। ४४)

अरे लोगो! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति ही मोक्षप्रदायिनी है। अतः कामधेनुरूप उनके चरणयुगलोंकी अति उत्सुकतासे सेवा करो। हे बुद्धिमान् लोगो! इन विविध विज्ञानवार्ताओं और मन्त्रविस्तारको अत्यन्त अलग रखकर तुरंत ही श्रीशङ्करके हृदयधाममें शोभा पानेवाले श्याम-शरीर भगवान् श्रीरामका ही भजन करो।

अनेक रसोंके वर्णनमें सिद्धहस्त महर्षि व्यासकी लेखनीका कौशल जितना प्रभावोत्पादक 'श्रीमद्भागवतमहापुराण'-में परिलक्षित होता है, उतना अन्यत्र नहीं। अठारह हजार श्लोकों तथा बारह स्कन्धोंवाले इस पुराणके केवल दो अध्यायों (बानबे श्लोकों)-में ही रामकथाको समाहित किया गया है। महामुनि श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्को इक्ष्वाकुवंशकी गाथा सुनाते हुए भगवान् श्रीरामका गुणानुवाद इन शब्दोंमें करते हैं—

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये॥

(९। ११। २१)

भगवान् रामका निर्मल यश समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। वह इतना फैल गया है कि दिग्गजोंका श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलतासे चमक उठता है। आज भी बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि राजाओंकी सभामें उनका गान करते हैं, स्वर्गके देवता और पृथ्वीके नरपति अपने कमनीय किरीटोंसे उनके चरण-कमलोंकी सेवा करते रहते हैं। उन्हीं रघुवंशशिरोमणिकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

'स्कन्दपुराण' के उत्तरखण्डमें नारद-सनत्कुमार-संवादके अन्तर्गत श्रीरामके प्रति भक्तिपूरित हृदयग्राहिणी भावना इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है—

श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गती
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः॥

(स्कन्द० पु०)

समस्त संसारको शरण देनेवाले, कलिमलनाशक, काल-व्यालविनाशक श्रीरामके बिना दूसरी कौन-सी गति है। जिनके वशमें सम्पूर्ण जगत् है उनको नमस्कार करना चाहिये। श्रीराममें मेरी अखण्ड भक्ति बनी रहे। हे श्रीराम! आप ही मेरे आधार हैं।

श्रीबुधकौशिक मुनि अपना सर्वस्व भाव समर्पण करते हुए 'श्रीरामरक्षास्तोत्र' में कहते हैं—

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु-
र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥

(श्लोक ३०)

संस्कृत भाषापर भवभूतिका असामान्य अधिकार था। मूलतः पद्मपुराणके पातालखण्डको कथानकका स्वरूप देकर उन्होंने 'उत्तररामचरितम्' नाटक लिखा। भवभूतिका शब्दविन्यास अनूठा है। भवभूतिकी गद्यशैलीका एक उदाहरण देखिये— सीताजी श्रीरामके चित्रका वर्णन कर रही हैं—

अहो दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृणशोभमान-मांसलदेहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दरश्रीर-नादरत्रुटितशंकरशरासनः शिखण्डमुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखितः।

अहा! प्रस्फुटित नूतन नीलकमलके समान श्यामल, स्निग्ध, चिकने शोभायुक्त और गठीले शरीरसे युक्त यह कैसा अवर्णनीय सौन्दर्य है। आकार सौम्य एवं सुन्दर है, मुखमण्डल भोलेपनसे भरा और काकपक्षकी भाँति कटे हुए केशोंसे कमनीय है। आर्यपुत्रकी ओर पिताजी (जनकजी) विस्मयपूर्ण दृष्टिसे देख रहे हैं। आर्यपुत्रने अनायास ही शिवधनुष तोड़ डाला है। अहा! आर्यपुत्रकी कैसी मनोरम मूर्ति इस चित्रमें अंकित है!

भगवान्के सौन्दर्यका रुचिर वर्णन श्रीयामुनाचार्यने इन भावपूर्ण शब्दोंमें किया है—

श्यामाम्बुदाभमरविन्दविशालनेत्रं
बन्धूकपुष्पसदृशाधरपाणिपादम्।
सीतासहायमुदितं धृतचापबाणं
रामं नमामि शिरसा रमणीयवेषम्॥

(श्रीरामप्रेमाष्टकम् श्लोक १)

जो नील मेघके समान श्याम-वर्ण हैं, जिनके कमलके समान विशाल नेत्र हैं, जो बन्धूक पुष्पके समान अरुण ओष्ठ, हस्त और चरणोंसे शोभित हैं, जो सीताजीके साथ विराजमान एवं अभ्युदयशील हैं, जिन्होंने धनुष-बाणको धारण किया है, जिनका वेष बड़ा ही सुन्दर है, सीताजीके सहित उन श्रीरामको मैं सिरसे नमस्कार करता हूँ।

श्रीतुलसीदासजी महाराजकी लेखनी तो अपने आराध्य श्रीरामके गुणानुवादमें इतनी मुखर हो उठी है कि उन्हें अभिनव वाल्मीकिकी संज्ञासे विभूषित किया जाता है— *'तात राम नहिं नर भूपाला'* (रा०च०मा० ५। ३९। १) और *'राम मनुज कस रे सठ बंगा'* (रा०च०मा० ६। २६। ५) जैसे भावोंकी अभिव्यक्तिकर श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामके ब्रह्मस्वरूपको उजागर किया है। समर्पणकी पराकाष्ठाका अवलोकन करना हो तो श्रीतुलसीदासजीकी विनय-पत्रिकाका अनुशीलन करना चाहिये—

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो॥

(१६२)

सूरदासकी कोमलकान्त पदावली संसारके साहित्यमें दुर्लभ है। उनके अन्तस्तलमें रहस्यमयी मधुर भावनाकी निगूढ़ धारा कृष्णचरित्रको समर्पित है। परंतु भगवान् श्रीरामके प्रति उनकी अभिव्यक्ति माधुर्यभावकी सृष्टि करती है।

जौ तू राम-नाम-धन धरतौ।
टरतो नहीं जनम जन्मान्तर कहा राज जम करतौ॥
लेतो करि व्योहार सबनि सों मूल गाँठ में परतौ।
भजन प्रताप सदाई घृत मधु, पावक परे न जरतौ॥
सुमिरन गोन बेद बिधि बैठो बिप्र परोहन मरतौ।
सूर चलत बैकुण्ठ पैंठ में बीच कौन जो अरतौ॥

निर्गुण निराकारके उपासक कबीर अगर श्रीरामके प्रति समर्पित हो जायँ तो यह जीव और आत्माके अभेदका ही द्योतक है। इसीलिये तो वे कहते हैं, जिन्हें पाण्डित्य बघारना हो उनकी वे जानें—

तू तो राम सुमर, जग लड़वा दे।
कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढ़त वा कौ पढ़वा दे॥
हाथी चलत है अपनी गत में, कुतर भुकत वा कौ भुकवा दे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नरक पचत वा कौ पचवा दे॥

संत श्रीदादूदयालजी श्रीरामरूपी अमृतमय रसका आकण्ठ पानकर भावविभोर हो गा उठते हैं—

राम रस मीठा रे, कोइ पीवै साधु सुजाण।
यह रस मीठा जिन पिया, सो रस ही माहिं समाइ।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ॥

शब्दाडम्बररहित मीराके गुरु रैदासकी पदपंक्तियाँ भेद-अभेदकी दीवारें तोड़ने-हेतु राम-नामका संबल आवश्यक मानते हुए कहती हैं—

जब राम नाम कहि गावैगा, तब भेद अभेद समावैगा।
जे सुख हैं या रसके परसे, सो सुखका कहि गावैगा॥
गुरु परसाद भई अनुभौ मति, बिस अमरित सम धावैगा॥

कह रैदास मेटि आपा-पर, तब वा ठौरहि पावैगा॥

संतोंके मुखसे पतितपावन नाम सुनकर अब मैंने श्रीरामकी शरण ली है। अब तो मैं श्रीरामका गुलाम बन गया हूँ—

अब तेरी सरन आयो राम।
विषय सेती भयो आजिज कह मलूक गुलाम॥

श्रीगुरुनानकदेवने सच कहा है—श्वानकी पूँछकी तरह जीव अपनी टेढ़ी चाल नहीं छोड़ पाता—

स्वान पूँछ ज्यों होय न सूधौ, कह्यो न कान धरै।
कह नानक भजु राम नाम नित जातें काज सरै॥

भक्तिमती मीराकी तो बात ही न्यारी है—रघुवर! इस भवसागरसे पार करना या न करना तुम्हारी मर्जी है। माता-पिता और समस्त परिवार मतलबका है। तुम्हारे सिवा कोई सगा नहीं। मुझे अपने चरणोंकी दासी बना लो यही प्रार्थना है—

तुम सुणौ दयाल म्हाँरी अरजी।
भवसागर में बही जात हूँ काढ़ो तो थाँरी मरजी।
इण संसार सगो नहिं कोई साँचा सगा रघुबरजी।।
मात-पिता और कुटुम कबीलो सब मतलब के गरजी।
मीरा की प्रभु अरजी सुण लो चरण लगावो थाँरी मरजी॥

इस प्रकार श्रीरामके नाम, रूप, लीला और धामको अपनी लेखनीका विषय बनाकर भक्तोंने अपनेको धन्य-धन्य माना है। अर्वाचीन कवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त लिखते हैं—'मेरी समस्त काव्यप्रतिभा श्रीरामकी कृपा है—

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है॥

अन्तमें अपने इस लेखका समापन रुद्रावतार, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ श्रीहनुमान्‌जी महाराजकी श्रीरामस्तुतिसे कर रहा हूँ—

हा नाथ हा नरवरोत्तम हा दयालो
सीतापते रुचिरकुण्डलशोभिवक्त्र।
भक्तार्तिदाहक मनोहररूपधारिन्
मां बन्धनात् सपदि मोचय मा विलम्बम्॥

(पद्मपु० पाता० ५३। १४)

हे नाथ! हे नरवरोत्तम!! हे दयालु सीतापते!!! [आप कहाँ हैं, मेरी दशापर दृष्टिपात करें] प्रभो! आपका मुख स्वभावसे ही शोभासम्पन्न है, उसपर भी सुन्दर कुण्डलोंके कारण तो उसकी सुषमा और भी बढ़ गयी है। आप भक्तोंकी पीडाका नाश करनेवाले हैं। हे मनोहर रूप धारण करनेवाले दयामय! मुझे इस बन्धनसे शीघ्र मुक्त कीजिये, देर न लगाइये।
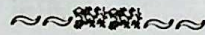
मन्त्रणा-दर्पण

(श्रीगंगाप्रसादजी भट्ट, बी०ए०, एल्०एल्०बी०, साहित्यरत्न)

ऐसा जीवन जिये जगत्‌में सब पूजा बन जाय।
सब पूजा बन जाय रामकी सब पूजा बन जाय॥
कौन यहाँ क्या लेकर आया? पाया जो इस जगसे पाया।
तू सेवा-व्रत प्राणिमात्रका आजीवन अपनाया॥ रामकी०॥
सेवा-हेतु सभी अपने हैं रिश्ते सब मनहर सपने हैं।
देना भूल-भुलैयामें मत तू धन मूल गँवाय॥ रामकी०॥
गया बीत जो भूत हो गया और अनागतसे आशा क्या?
वर्तमान जीवंत न तू क्यों लेता गले लगाय? रामकी०॥
ईश्वर सब कुछ देख रहा है गुप्त-हस्त अभिलेख रहा है।
उसकी सजग दृष्टिसे क्या तू लेगा कर्म छिपाय? रामकी०॥
जो कर प्रभुको अर्पण कर दे 'हरे कृष्ण' कीर्तनको स्वर दे।
चूका यदि तू वर्तमानमें क्या पीछे पछिताय? रामकी०॥

नीतिके आख्यान—

(१)

दूसरोंका अमङ्गल चाहनेमें अपना अमङ्गल पहले होता है

'देवराज इन्द्र तथा देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार करके महर्षि दधीचिने देह-त्याग किया। उनकी अस्थियाँ लेकर विश्वकर्माने वज्र बनाया। उसी वज्रसे अजेयप्राय वृत्रासुरको इन्द्रने मारा और स्वर्गपर पुनः अधिकार प्राप्त किया।' ये सब बातें अपनी माता सुवर्चासे बालक पिप्पलादने सुनीं। अपने पिता दधीचिके घातक देवताओंपर उन्हें बड़ा क्रोध आया। 'स्वार्थवश ये देवता मेरे तपस्वी पितासे उनकी हड्डियाँ माँगनेमें भी लज्जित नहीं हुए।' पिप्पलादने सभी देवताओंको नष्ट कर देनेका संकल्प करके तपस्या प्रारम्भ कर दी।

पवित्र नदी गौतमीके किनारे बैठकर तपस्या करते हुए पिप्पलादको दीर्घकाल बीत गया। अन्तमें भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने पिप्पलादको दर्शन देकर कहा—'बेटा! वर माँगो।'

पिप्पलाद बोले—'प्रलयङ्कर प्रभु! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपना तृतीय नेत्र खोलें और स्वार्थी देवताओंको भस्म कर दें।'

भगवान् आशुतोषने समझाया—'पुत्र! मेरे रुद्ररूपका तेज तुम सहन नहीं कर सकते थे, इसीलिये मैं तुम्हारे सम्मुख सौम्य रूपमें प्रकट हुआ। मेरे तृतीय नेत्रके तेजका आह्वान मत करो। उससे सम्पूर्ण विश्व भस्म हो जायगा।'

पिप्पलादने कहा—'प्रभो! देवताओं और उनके द्वारा संचालित इस विश्वसे मुझे तनिक भी मोह नहीं। आप देवताओंको भस्म कर दें, भले ही विश्व भी उनके साथ भस्म हो जाय।'

परमोदार मङ्गलमय आशुतोष हँसे। उन्होंने कहा—'तुम्हें एक अवसर और मिल रहा है। तुम अपने अन्तःकरणमें मेरे रुद्ररूपका दर्शन करो।'

पिप्पलादने हृदयमें कपालमाली, विरूपाक्ष, त्रिलोचन, अहिभूषण भगवान् रुद्रका दर्शन किया। उस ज्वालामय प्रचण्ड स्वरूपके हृदयमें प्रादुर्भूत होते ही पिप्पलादको लगा कि उनका रोम-रोम भस्म हुआ जा रहा है। उनका पूरा शरीर थर-थर काँपने लगा। उन्हें लगा कि वे कुछ ही क्षणोंमें चेतनाहीन हो जायँगे। आर्त स्वरमें उन्होंने फिर भगवान् शङ्करको पुकारा। हृदयकी प्रचण्ड मूर्ति अदृश्य हो गयी। शशाङ्कशेखर प्रभु मुसकराते हुए सम्मुख खड़े थे।

'मैंने देवताओंको भस्म करनेकी प्रार्थना की थी, आपने मुझे ही भस्म करना प्रारम्भ किया।' पिप्पलाद उलाहनेके स्वरमें बोले।

शङ्करजीने स्नेहपूर्वक समझाया—'विनाश किसी एक स्थलसे ही प्रारम्भ होकर व्यापक बनता है और सदा वह वहींसे प्रारम्भ होता है, जहाँ उसका आह्वान किया गया हो। तुम्हारे हाथके देवता इन्द्र हैं, नेत्रके सूर्य, नासिकाके अश्विनीकुमार, मनके चन्द्रमा। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय तथा अङ्गके अधिदेवता हैं। उन अधिदेवताओंको नष्ट करनेसे शरीर कैसे रहेगा? बेटा! इसे समझो कि दूसरोंका अमङ्गल चाहनेपर पहले स्वयं अपना अमङ्गल होता है। तुम्हारे पिता महर्षि दधीचिने दूसरोंके कल्याणके लिये अपनी हड्डियाँतक दे दीं। उनके त्यागने उन्हें अमर कर दिया। वे दिव्यधाममें अनन्त कालतक निवास करेंगे। तुम उनके पुत्र हो, तुम्हें अपने पिताके गौरवके अनुरूप सबके मङ्गलका चिन्तन करना चाहिये।'

पिप्पलादने भगवान् विश्वनाथके चरणोंमें मस्तक झुका दिया।

(२)

कलहसे हानि होती है

[दो पक्षियोंकी कथा]

प्राचीन कालकी बात है, किसी जंगलमें एक व्याध रहता था। वह पक्षियोंको जालमें फँसाकर अपनी आजीविका चलाता था। उसी जंगलमें दो पक्षी भी रहते थे। जो आपसमें मित्र थे। सदा साथ-साथ रहते, साथ-साथ उड़ते और रात्रिमें एक ही वृक्षका आश्रय लेकर रहा करते थे। बहेलियेकी चतुराईको समझते हुए वे एक-दूसरेको सचेत करते रहते थे और पृथ्वीपर पड़े हुए अनाजके दानोंके लोभमें नहीं पड़ते थे, इसलिये उसके जालसे वे हमेशा बचते रहे। बहेलिया उन चिड़ियोंको भी जालमें फँसाना चाहता था; किंतु बहुत दिन ऐसे ही बीत गये, अपनी मित्रतासे वे पक्षी बचे रहे।

एक दिनकी बात है, उस बहेलियेने पृथ्वीपर जाल बिछाया और दूर किसी पेड़की आड़में छिपकर खड़ा हो गया। संयोगकी बात उस दिन वे दोनों पक्षी जालमें फँस गये। वे दोनों बड़े दुःखी हो गये। जालसे निकलना सम्भव नहीं था। बहेलिया भी उसी ओर आ रहा था। फिर क्या था, दोनोंने राय की और जबतक बहेलिया पास आता कि वे दोनों जाल लेकर आकाशमें उड़ गये।

बहेलिया कुछ निराश तो हुआ, पर उसने हिम्मत न हारी। जिधर-जिधर वे पक्षी जाते, उधर-उधर ही उनके पीछे जमीनपर वह भी दौड़ता गया।

उसी वनमें एक मुनि रहते थे। उन्होंने पक्षियोंको पकड़नेके लिये उनका पीछा करते हुए उस व्याधको देखा तो उन्हें व्याधकी मूर्खतापर हँसी आ गयी, जब दौड़ते-दौड़ते व्याध उनके आश्रमके पास पहुँचा तो वे उससे कहने लगे—'अरे व्याध! तुम मुझे बड़े ही मूर्ख मालूम पड़ते हो, यह बड़ा आश्चर्य है कि तुम आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंके पीछे-पीछे पृथ्वीपर पैदल दौड़ रहे हो।'

व्याध बोला—'मुने! आपकी बात तो बिलकुल ठीक है, किंतु ये पक्षी अभी मिले हुए हैं इसलिये मेरे जालको लिये जा रहे हैं, पर जहाँ ये झगड़ने लगेंगे, वहीं जाल समेत गिर पड़ेंगे और मेरे वशमें आ जायँगे।'

यह कहकर वह व्याध पुनः उन पक्षियोंके पीछे भागने लगा। कुछ दूर वे उड़े थे कि संयोगवश आपसमें यह कहकर झगड़ने लगे कि जाल खींचनेमें तुम ताकत नहीं लगा रहे हो, सारा बोझ मुझपर ही पड़ रहा है। यह कहते-कहते दोनों आपसमें झगड़ने लगे। फलतः जालकी पकड़ ढीली हो गयी। अब वे दोनों आपसमें लड़ते-झगड़ते साथ ही नीचे गिरने लगे और कुछ दूर आगे जाकर जालसहित जमीनपर गिर पड़े। व्याध तो पीछा कर ही रहा

था, ज्यों ही जाल जमीनपर आया, त्यों ही उसने दौड़कर जालमें फँसे उन दोनों मूर्ख पक्षियोंको पकड़ लिया।

इसी प्रकार जो कुटुम्बी जन अथवा अन्य लोग मित्रताको छोड़कर आपसमें कलह करते हैं, वे उन पक्षियोंकी तरह विनाशको प्राप्त होते हैं। अतः कभी भी परस्पर विरोध नहीं करना चाहिये—

'...न विरोधः कदाचन॥'

(महा०, उद्योग० ६४। ११)

(३)

नेक कमाईकी बरकत

प्राचीन कालमें किसी शहरमें एक राजा रहता था। वहीं पासके ही वनमें एक ब्राह्मण भी रहता था। उस ब्राह्मणकी एक कन्या थी, जो विवाहके योग्य हो गयी थी। स्त्रीकी सलाहसे ब्राह्मण उस कन्याके विवाहके लिये उसी राजाके पास धन माँगने पहुँचा। राजाने उसे दस हजार रुपये दिये। ब्राह्मणने कहा—'महाराज! यह तो बहुत थोड़ा है।' राजाने दस हजार पुनः दिलवाये। ब्राह्मण इसपर भी कहता रहा—'महाराज! यह तो बहुत ही कम है।' अन्तमें राजा अपना समूचा राज्य ही ब्राह्मणको देने लगा। पर ब्राह्मण पूर्ववत् यही कहता रहा कि 'महाराज! यह तो बहुत कम है।'

लाचार होकर राजाने पूछा—'तो मुझे आप क्या देनेको कह रहे हैं?' ब्राह्मणने कहा—'आपने अपने परिश्रमद्वारा जो शुद्ध धन उपार्जित किया हो, वह चाहे थोड़ा ही हो, मेरे लिये बहुत है—मुझे वही दीजिये[1]।'

राजा थोड़ी देरतक सोच-विचार करता रहा। फिर उसने कहा—'मैं प्रातःकाल ऐसा धन आपको दे सकूँगा।' तदनन्तर दस बजे रातको वह अपनी वेश-भूषा बदलकर

१- अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलमन्दिरम्। अनुल्लङ्घ्य सतां मार्गे यत् स्वल्पमपि तद्बहु॥ (महा०, उद्योग०, विदुरप्रजागर ३४)

शहरमें घूमने लगा। उसने देखा कि सब लोग तो चैनकी नींद सो रहे हैं, पर एक लोहार अपना काम अभीतक करता जा रहा है। राजा उसके पास गया और बोला—'भाई! मैं बड़ा गरीब आदमी हूँ, यदि तुम्हारे पास कोई काम हो तो देनेकी दया करो।' लोहारने कहा—'मेरे पास यही इतना काम है। यदि तुम इसे प्रात:कालतक कर डालो तो मैं तुम्हें चार पैसे दूँ।' राजाने उस कामको तथा उसके एक-आध और कामको कर डाला। लोहारने उसे चार पैसे दिये, जिसे राजाने राजधानीमें आकर ब्राह्मणको दे दिया। ब्राह्मण भी उनका सारा राज-पाट छोड़ केवल चार पैसे ही लेकर घर चला गया। जब स्त्रीने पूछा कि राजाके पास क्या मिला तो उसने वही चार पैसे दिखलाये। ब्राह्मणी झुँझला गयी और उसके चारों पैसे छीनकर जमीनपर फेंक दिये।

दूसरे दिन उस ब्राह्मणके आँगनमें चार वृक्ष उग आये, जिनमें केवल रत्नके ही फल लगे थे। उन्हींसे उसने कन्याका विवाह किया और वह संसारका सबसे बड़ा धनी भी हो गया। यह समाचार सुनकर सारा नगर दंग रह गया। राजा भी यह सुनकर देखने आया। ब्राह्मणने उन वृक्षोंको उखाड़कर राजाको वे चार पैसे दिखला दिये और बतलाया कि इसीसे मैंने तुम्हारे राज-पाटको छोड़कर तुम्हारी यह ईमानदारी तथा श्रमकी कमाई माँगी थी। नेकीकी कमाई पहले भले ही थोड़ी दिखे, पर पीछे वह मनुष्यको सभी प्रकारसे सुखी और सम्पन्न बना देती है।

(४)

अन्यायका कुफल

एक व्यापारीके दो पुत्र थे। एकका नाम था धर्मबुद्धि, दूसरेका दुष्टबुद्धि। वे दोनों एक बार व्यापार करने विदेश गये और वहाँसे दो हजार अशर्फियाँ कमा लाये। अपने नगरमें आकर सुरक्षाके लिये उन्हें किसी वृक्षके नीचे गाड़ दिया और केवल सौ अशर्फियोंको आपसमें बाँटकर काम चलाने लगे।

एक बार दुष्टबुद्धि चुपके-से उस वृक्षके नीचेसे सारी अशर्फियाँ निकाल लाया और बुरे कामोंमें उसने उनको खर्च कर डाला। एक महीना बीत जानेपर वह धर्मबुद्धिके पास गया और बोला—'आर्य! चलो, उन अशर्फियोंको हमलोग बाँट लें; क्योंकि मेरे यहाँ खर्च अधिक है।' उसकी बात मानकर जब धर्मबुद्धि उस स्थानपर गया और जमीन खोदी तो वहाँ कुछ भी न मिला। जब उस गड्ढेमें कुछ न दीखा, तब दुष्टबुद्धिने धर्मबुद्धिसे कहा—'मालूम होता है तुम्हीं सब अशर्फियाँ निकालकर ले गये हो, अत: मेरे हिस्सेकी आधी अशर्फियाँ अब तुम्हें देनी पड़ेंगी।' धर्मबुद्धिने कहा—'नहीं भाई! मैं तो नहीं ले गया; तुम्हीं ले गये होगे।' इस प्रकार दोनोंमें झगड़ा होने लगा। इसी बीच दुष्टबुद्धि अपना सिर फोड़कर राजाके यहाँ पहुँचा, धर्मबुद्धिको भी बुलवाया गया और उन दोनोंने अपना-अपना पक्ष राजाको सुनाया, किंतु उनकी बातें सुनकर राजा किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सका।

राजपुरुषोंने दिनभर उन्हें वहीं रखा। अन्तमें दुष्टबुद्धिने कहा—'वह वृक्ष ही इसका साक्षी है, जो कहता है कि यह धर्मबुद्धि सारी अशर्फियाँ ले गया है।' इसपर राज्यके अधिकारी बड़े विस्मित हुए और बोले—'प्रात:काल हमलोग चलकर वृक्षसे पूछेंगे।' इसके बाद जमानत देकर दोनों भाई घर आ गये।

इधर दुष्टबुद्धिने अपनी सारी स्थिति अपने पिताको समझायी तथा उसे पर्याप्त धन देकर अपनी ओर मिला लिया और कहा कि 'तुम वृक्षके कोटरमें छिपकर बोलना।' तदनुसार वह रातमें ही जाकर उस वृक्षके कोटरमें बैठ गया। प्रात:काल दोनों भाई व्यवहाराधिपतियोंके साथ उस स्थानपर गये। वहाँ उन्होंने वृक्षसे पूछा कि 'अशर्फियोंको कौन ले गया है?' कोटरस्थ पिताने कहा—'धर्मबुद्धि'। इस असम्भव तथा आश्चर्यजनक घटनाको देख-सुनकर चतुर अधिकारियोंने सोचा कि अवश्य ही दुष्टबुद्धिने यहाँ किसीको छिपा रखा है। उन लोगोंने कोटरमें आग लगा दी। जब उसमेंसे निकलकर उसका पिता कूदा, तब पृथ्वीपर गिरकर वह मर गया। उसे देखकर राजपुरुषोंने सारा रहस्य जान लिया और धर्मबुद्धिको पाँच सौ अशर्फियाँ दिला दीं। धर्मबुद्धिका सत्कार भी हुआ और दुष्टबुद्धिके हाथ-पैर काटकर उसको राज्यसे निर्वासित कर दिया गया। (कथासरित्सागर)

साधना, स्वास्थ्य और आहार

(युवाचार्य श्रीमहाप्राज्ञजी)

साधनाके लिये शक्ति चाहिये और शक्तिके लिये शरीर। शरीरके बिना शक्ति नहीं रहती और शक्तिके बिना साधना नहीं होती। शरीर भी अन्नमय है अतः शरीरकी रक्षाके लिये आहार भी आवश्यक है। साधना आवश्यक है और साधनाके लिये शरीर आवश्यक है तथा शरीरको टिकाये रखनेके लिये आहार आवश्यक है। इसलिये साधना, शरीर और आहारका गहरा सम्बन्ध है।

हम आहार लेते हैं, किंतु आहारकी एक समस्या है कि क्या खायें? कितना खायें? कब खायें? जो आहार हमें शक्ति देता है, वही शक्तिको कम भी कर देता है। दोनों बातें हैं। आहार आलम्बन भी है और हानिकारक भी। इसलिये मनुष्यको आहारके सम्बन्धमें विवेक रखना चाहिये। विवेकके बिना काम नहीं चलता।

प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक साधकके समक्ष यह प्रश्न हो सकता है कि क्या खायें? कुछ लोग पेटभर अन्न खा लेते हैं और उन्हें लगता है कि भूख मिट गयी है। पर शरीरको जो मिलना चाहिये था, वह नहीं मिला। यदि कोरा अन्न खाया जाता है तो शरीरको केवल श्वेतसार (स्टार्च) ही मिल पाता है। शरीरमें विभिन्न तन्तु हैं, रसायन और धातुएँ हैं। उनको भिन्न-भिन्न पदार्थ चाहिये। शरीरको चिकनाई भी चाहिये, खनिज लवण भी चाहिये एवं प्रोटीन और विटामिन भी चाहिये। प्रोटीन नहीं मिलता है तो नयी कोशिकाओंके निर्माणमें बाधा आती है, स्वास्थ्य गड़बड़ा जाता है। एक तत्त्वसे हमारा काम नहीं चलता। शरीरके लिये अनेक पदार्थ चाहिये।

आजसे पचास वर्ष पूर्व लोग बहुत जल्दी बूढ़े हो जाते थे। उसका कारण यह था कि वे लोग प्रोटीन बहुत अधिक मात्रामें खाते थे। श्वेतसार बहुत अधिक मिलता था। वे अन्न, मिठाइयाँ, दूध, घी आदि अधिक खाते। सारा भोजन पौष्टिक होता और तब वे शीघ्र बूढ़े बन जाते। अधिक दूध पीनेवाला जवान नहीं रह सकता, जल्दी बूढ़ा हो जायगा। खूब रोटी खानेवाला जल्दी बूढ़ा होगा, क्योंकि बुढ़ापेसे बचानेवाले तत्त्व हैं—क्षार। इन सब पदार्थोंसे पौष्टिकता मिलती है पर क्षार-तत्त्व नहीं मिलता। इनसे अम्लता बढ़ती है।

भोजनके दो तत्त्व मूल हैं—अम्ल और क्षार। अम्ल-तत्त्वसे मृत्यु और बुढ़ापा जल्दी आते हैं। उससे शक्ति क्षय होती है और बीमारियोंको निमन्त्रण प्राप्त होता है। तले हुए पदार्थ, चटपटी चीजें—ये सब अम्लता बढ़ाते हैं। चीनी खानेमें मीठी होती है, पर उसका परिणाम है अम्लतामें वृद्धि।

भारतीय दर्शनका यह महत्त्वपूर्ण सूत्र है कि प्रवृत्तिको मत देखो, परिणामको देखो। धारणाको मत देखो, उसके विपाकको देखो। जो विपाक या परिणाममें सुन्दर होता है, वह सुन्दर है। जो परिणाममें असुन्दर होता है, वह असुन्दर है। जो परिणाममें मधुर होता है, वह मधुर है और जो परिणाममें कटु होता है, वह कटु है। भारतीय दर्शनमें सिद्धान्तका प्रतिपादन परिणामके आधारपर किया गया है, प्रवृत्तिके आधारपर नहीं। प्रवृत्ति वही अच्छी होती है, जिसका परिणाम सुखद होता है।

चीनी खानेमें मीठी होती है, पर परिणामकालमें वह अम्लता बढ़ानेवाली है। आँवला खानेमें खट्टा होता है, पर उसका परिणाम मधुर होता है। आँवला मधुरता पैदा करता है और अम्लताको कम करता है। चीनी अम्लताको बढ़ाती है।

दूध स्वभावतः मधुर होता है, फिर भी लोग उसमें चीनी मिलाकर पीते हैं; क्योंकि जीभको चीनीका स्वाद लग गया, इसलिये दूध भी फीका लगता है। विचित्र बात है।

चायकी प्रकृतिको लोग नहीं समझते। प्रत्येक बीमारीमें चाय ली जाती है। अम्लताकी बीमारी, पित्तका उफान, पेटमें अल्सर—इन सभी स्थितियोंमें लोग चायका सेवन करते हैं। इन स्थितियोंमें चाय पीना भयंकर हानिप्रद होता है। हमें यह ज्ञात होना चाहिये कि किस बीमारीमें चाय पीना चाहिये और किसमें नहीं। चाय कोई सर्वशक्तिमान् तत्त्व नहीं है, जो सब कुछ ठीक कर दे। प्रत्येक चीज लाभ भी करती है और हानि भी।

आज भोजनके विषयमें अनेक खोजें हुई हैं। नये-नये तथ्य हमारे सामने आये हैं। उनपर हमें गहराईसे ध्यान देना चाहिये। कोई व्यक्ति गैसकी बीमारीसे ग्रस्त है। वह यदि दाल खाता है तो वह उसके लिये जहरका काम करती है। प्रोटीन प्राप्त करनेके लिये दाल आवश्यक है, पर गैसकी बीमारी उससे बढ़ती है, कम नहीं होती। चना

पौष्टिक होता है, किंतु गैसकी बीमारीसे ग्रस्त व्यक्तिके लिये वह हानिकारक भी है।

अमेरिकाके मनोवैज्ञानिक चिकित्सक गै० सल्टनने कहा है—बीमारीमें औषधिकी कोई आवश्यकता नहीं। भोजनको बदलो, बीमारी ठीक हो जायगी। भोजनके परिवर्तनसे स्वास्थ्य-लाभ हो सकता है। भोजनके बाद खटाई खानेका प्रचलन है। इस विषयमें डॉक्टर सल्टनका कहना है कि भोजनके साथ श्वेतसार या खटाई खानेसे पाचन-तन्त्र प्रभावित होता है, पाचन बिगड़ जाता है। क्योंकि अन्न खाते समय एक प्रकारका स्राव होता है— 'पायलिन'। यह अन्नको पचाता है। जब अन्न खानेके बाद ऊपरसे खटाई खायी जाती है तो वह अम्लता उस स्रावको समाप्त कर देती है एवं दूषित वायु पैदा होती है। अपान दूषित होता है और तब शारीरिक गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

भोजनके दो प्रकार हैं—संरक्षक और पौष्टिक। पौष्टिक भोजनमें संरक्षण देनेकी क्षमता नहीं होती। दोनोंका संतुलन होना चाहिये। अम्ल और क्षारका संतुलन होना चाहिये।

फल क्षारप्रधान होते हैं। कोई यह सोचे कि अधिक फल खानेसे अधिक संरक्षण प्राप्त होगा तो यह अज्ञान है। फलोंको पचानेके लिये भी रस चाहिये, स्राव चाहिये। इसलिये अधिक फल खाना भी हानिकारक हो सकता है।

शारीरिक और मानसिक बीमारियोंका मूल कारण है अनियमित और असंतुलित भोजन। हमें पता नहीं चलता, पर भीतर-ही-भीतर जहर जमा होता जाता है और फिर मानसिक बेचैनी, सिर-दर्द, पागलपन आदि बीमारियाँ पैदा होती हैं। आज माना जाने लगा है कि भोजनकी विकृतिके कारण मानसिक बीमारियाँ पैदा होती हैं। भोजन अधिक किया, अपानवायु दूषित हुआ तो मन खराब हो जायगा। जिसका अपान शुद्ध नहीं है, उसका प्राण शुद्ध नहीं हो सकता और जिसका प्राण शुद्ध नहीं है, उसका मस्तिष्क शुद्ध नहीं हो सकता।

हमारे शरीरका सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव है— मस्तिष्क। यह सबसे अधिक मूल्यवान् है। जिसका मस्तिष्क सुन्दर होता है, वास्तवमें वही सुन्दर होता है। जिसका मस्तिष्क विकृत होता है, उसका कोई मूल्य नहीं होता। मस्तिष्कको निर्मल और शक्तिशाली रखनेके लिये भोजनपर ध्यान देना जरूरी है। हमारी ऊर्जा या शक्ति सीमित होती है। उसका उपयोग चाहे भोजन पचानेमें करें या मस्तिष्क-शक्ति-संवर्धनमें; हमारी ऊर्जा तो जितनी है, उतनी ही है। उस ऊर्जाको या तो पाचनकी क्रियामें खपा दें या मस्तिष्कमें सुरक्षित कर लें। यहाँ चुनावका प्रश्न उपस्थित है कि क्या हम ऊर्जाको मस्तिष्कके लिये सुरक्षित रखना चाहते हैं या उसको पेटकी क्रियामें खपा देना चाहते हैं? पेटमें ऊर्जाको खपानेवाला बुद्धिमान् नहीं कहलायेगा किंतु जो अपनी ऊर्जाको मस्तिष्कके लिये सुरक्षित रखता है, वह विवेकशील व्यक्ति दुनियामें कोई अनोखा नया काम कर सकनेमें सफल होगा?

साधना, स्वास्थ्य और आहार—तीनोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है। रोगी आदमी न ध्यान कर सकता है, न अध्ययन कर सकता है और न कोई बड़ा काम कर सकता है। वह क्रोधी और चिड़चिड़े स्वभावका होता है।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यको ठीक रखनेके लिये अपानपर अधिक ध्यान केन्द्रित करना होगा। अपानका स्थान जितना निर्मल होगा, व्यक्तिका आत्मा उतना ही निर्मल, स्वभाव उतना ही निर्मल और चिन्तन भी उतना ही निर्मल होगा। जिस व्यक्तिका अपान दूषित होता है, वह कुछ भी कर सकनेमें समर्थ नहीं होता। उसका विचार और कार्य दूषित ही होगा।

हम सबसे पहले यह निर्णय करें कि हमें कुछ करना है। यदि हम साधनाका विकास करना चाहते हैं तो कोरे ध्यानसे काम नहीं बनेगा, कोरे कायोत्सर्गसे कुछ नहीं होगा। हमें भोजनपर ध्यान केन्द्रित करना होगा। भोजनपर ध्यान केन्द्रित किये बिना ध्यानका परिणाम भी नहीं आयेगा और कायोत्सर्गका परिणाम भी नहीं आयेगा। इधर कायोत्सर्ग किया, शरीर और रक्तचापको संतुलित किया, तनावको मिटाया और उधर ठूँस-ठूँसकर खाया तो जितना तनाव मिटाया था, उससे ज्यादा और कर लिया। इसका कोई अर्थ नहीं होगा। हम नयी दिशामें प्रस्थान करें। वह नयी दिशा होगी कि हम भोजनकी मात्रा और भोजन करनेके प्रयोजनको ठीक ढंगसे समझें। हम यह भी समझें कि

भोजन कितनी बार करना चाहिये। सबसे अच्छा माना जाता है दो बार भोजन करना। प्राचीन सिद्धान्त यह है—**'याममध्ये न भुञ्जीत'**—प्रहरमें दो बार न खायँ। एक बार भोजन करनेके पश्चात् तीन घण्टेतक पुन: भोजन न करें।

आज व्यक्ति नाश्तेमें भी बहुविध पदार्थ खाता है। उन पदार्थोंके पचनेसे पूर्व ही वह अनेक बार और खा लेता है। यह मान्यता अनेक दूषणोंको जन्म देती है। आजके अन्वेषणोंने मान्यताओंको तोड़ा है और सत्यके अनेक कोण प्रस्तुत किये हैं।

आज यदि हम कहें कि मांसे मत खाओ तो लोग इसे सहसा माननेके लिये तैयार नहीं होंगे। उनका तर्क यह है कि मांसमें जितना प्रोटीन मिलता है, उतना अन्य पदार्थोंमें नहीं मिलता। इस प्रलोभनसे आदमी मांस खानेमें रुचि लेता है, वह क्यों छोड़ेगा मांस खाना? जबतक हम उसके सामने वैज्ञानिक दृष्टिसे अन्य विकल्प प्रस्तुत नहीं कर देंगे, तबतक वह मांसको छोड़नेकी बात नहीं सोच सकेगा। वैज्ञानिकोंने मांसके विकल्पमें सोयाबीन खानेका विकल्प प्रस्तुत किया है। सोयाबीनमें जितना अच्छा प्रोटीन होता है, उतना अच्छा प्रोटीन मांसमें भी नहीं होता। सोयाबीनका दूध भी बनाया जा सकता है और आटा भी। उसे रोटीमें मिलाया जा सकता है। वह एक वनस्पति है। जहाँ वह उपलब्ध न हो तो बाजरा उसका विकल्प हो सकता है। बाजरामें भी अच्छा प्रोटीन होता है। बाजरा खानेवाला बहुत शक्ति प्राप्त करता है।

एक बार दो पहलवान मैदानमें उतरे। एक मांसाहारी था, दूसरा शाकाहारी—बाजरेपर रहनेवाला। शाकाहारी पहलवानने अपने प्रतिद्वन्द्वीको पछाड़ दिया। इससे प्रमाणित होता है कि बाजरेमें जो शक्ति होती है, वह मांसमें नहीं होती।

लोग मानते हैं कि अण्डा खाना स्वास्थ्यप्रद है। यह एक भ्रान्ति है। आजके अन्वेषणोंने यह प्रमाणित कर दिया है कि अण्डा खाना लाभप्रद नहीं है। अण्डा खानेसे शरीरमें विष पैदा होता है, सड़न पैदा होती है, लकवा होता है, पित्ताशयमें पथरी हो जाती है, हृदयकी बीमारियाँ होती हैं। इस स्थितिमें कौन समझदार व्यक्ति अण्डा खायेगा? मांस और अण्डा खानेवाला केवल मांस या अण्डा ही नहीं खाता, साथमें उस प्राणीके संस्कारोंको भी खा जाता है। मांस खानेवालेमें पशुता आती है, पाशविक संस्कार आते हैं। मांसाहारी व्यक्ति पाशविकतासे मुक्त नहीं हो सकता।

भोजनके विषयमें हमें तीन निर्णय लेने चाहिये—हमें कैसा भोजन करना है? भोजन कितनी मात्रामें करना है और भोजन कितनी बार करना है?

एक बात बहुत स्पष्ट है कि हमें भोजन करनेके तीन घण्टे पूर्व पुन: भोजन नहीं करना चाहिये। बार-बार भोजन नहीं करना चाहिये। बार-बार भोजन करना अध्यशन-दोष कहलाता है। माना जाता है कि फलके रस सुपाच्य होते हैं। पर उनका भी बार-बार सेवन लाभप्रद नहीं होता। उनको पचानेमें भी कम-से-कम दो घण्टा लग जाता है। हर पदार्थको पचानेमें समय लगता है। कोई भी पदार्थ खाते ही नहीं पच जाता। आदमी घी खाता है। घीको पचानेमें काफी समय लगता है। घी आमाशयमें नहीं पचता। पक्वाशय भी घीको नहीं पचा पाता। छोटी आँतमें जाकर वह चिकनाई पचती है।

शारीरिक स्वास्थ्य और साधनाकी दृष्टिसे भी बार-बार न खानेका सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है। साधना और स्वास्थ्यका योग मिलना भी बहुत कठिन बात है। स्वस्थ वह नहीं होता जो केवल हट्टा-कट्टा होता है, मांसल होता है, चर्बीयुक्त होता है। स्वस्थ वह होता है, जिसकी इन्द्रियाँ निर्मल होती हैं, मन तथा चित्त निर्मल होता है। जो चिड़चिड़ा नहीं होता, क्रोध नहीं करता, आवेश नहीं करता, तनावसे नहीं भरता। उत्तम स्वास्थ्य मिलना दुर्लभ है और उसपर साधनाका योग मिलना तो दुर्लभतर है।

हम अपने अज्ञानसे स्वास्थ्यको बिगाड़ देते हैं। एक बार जब स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, तब पुनः उसकी पूर्ववत् प्राप्ति कठिन हो जाती है। साधनाके विषयमें भी यही बात है। आदमी प्रमाद तथा आलस्यवश साधनाके विषयमें लापरवाही बरतता है और फिर साधनाका योग मिलना कठिन हो जाता है।

हम तीनों—साधना, स्वास्थ्य और आहारपर संतुलित विचार करें। साधनाके लिये स्वास्थ्य जरूरी है और स्वास्थ्यके लिये आहार जरूरी है। इन तीनोंका संतुलन होनेपर ही हम अनेक शक्तियोंको जाग्रत् करनेमें सफल हो सकते हैं।

[प्रेषक—श्रीओमप्रकाशजी छारिया]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

आध्यात्मिक उन्नतिके अमोघ साधन

प्रिय महोदय, सादर हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला। आप आध्यात्मिक उन्नतिके लिये लगनके साथ साधनमें प्रवृत्त होना चाहते हैं और कुछ साधनके उपाय पूछते हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। आपका यह विचार बहुत ही उत्तम है। मेरी समझसे आप नीचे लिखी बातोंका सावधानीसे पालन करें तो मुझे आशा है कि आपको शीघ्र तथा विशेष लाभ होगा—

१-खान-पानकी शुद्धि (असत् कमाईका अन्न और राजस-तामस पदार्थ कभी न खायँ। मांस, अण्डा, मद्य, जूठन, हिंसायुक्त तथा नशीली चीजोंका सेवन बिलकुल न करें।) रखें।

२-संध्या, गायत्री-जप, नियमित नाम-जप, स्वाध्याय—जो करते हैं, श्रद्धापूर्वक करते रहें।

३-नियमितरूपसे कम-से-कम २१६०० भगवन्नामका विशेष जप करें; कुछ नाम-कीर्तन भी करें।

४-ब्रह्मचर्यका पालन करें।

५-सदा सद्ग्रन्थोंका—उपनिषद्, गीता, रामायण, भागवत आदिका अध्ययन करें।

६-बुरे सङ्गका सर्वथा त्याग करके भक्त, संत तथा सदाचारी पुरुषोंका सङ्ग करें।

७-नित्य अपनी भाषामें साधनकी सफलताके लिये श्रद्धापूर्वक भगवान्‌से प्रार्थना करें।

आप श्रद्धापूर्वक करके देखें—कितना लाभ होता है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

घर छोड़ना हानिकारक है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने अपनी शारीरिक दुर्बलताका उल्लेख करते हुए घर छोड़नेके लिये सलाह पूछी, इसके उत्तरमें निवेदन है कि घर छोड़ना आपके लिये न तो उचित है, न लाभदायक ही। भगवान् बुद्ध तथा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी नकल हर आदमी नहीं कर सकता। उनमें जैसा महान् मनोबल था, वैसा हमलोगोंमें कहाँ है? मनुष्यको अपने अधिकारके अनुसार ही व्यवहार करना चाहिये, तभी वह सुखी रहता है; नहीं तो आगे चलकर उसे बहुत पश्चात्ताप करना पड़ता है। जो लोकोत्तर महापुरुष हुए हैं, उनके पवित्र उपदेश ही हमारे लिये परिस्थिति और अधिकारके अनुरूप आचरण करने योग्य हैं। उनके आचरणोंका अनुकरण तो यथार्थरूपमें किया ही नहीं जा सकता।

भगवान् बुद्ध तथा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका बचपन कितना पवित्र तथा संयमपूर्ण था। उनके सामने आप अपने बालकपनको देखिये। बचपनकी बुराइयाँ पूर्वजन्मके दुर्बल मनके ही सूचक हैं। आपकी इस समय जो मानसिक स्थिति है, यह भी, जहाँतक मैं समझ पाया हूँ, यथार्थ वैराग्य नहीं है। यह प्रतिकूलतासे उत्पन्न भावना है, लज्जा एवं ग्लानिका परिणाम है। ऐसी अवस्थामें घर छोड़कर और कहीं चले जानेसे ही भजन बनने लगेगा, ऐसा नहीं सोचना चाहिये। फिर, आजकल तो भजनके अनुकूल स्थानका मिलना भी बहुत कठिन है। आपके मनमें भगवान्‌के दर्शनकी चाह है, यह बड़ी उत्तम चाह है। भगवान्‌के दर्शन उनकी कृपासे हो सकते हैं। इस युगमें उनके दर्शनका श्रेष्ठ साधन है—उनकी अहैतुकी असीम कृपापर परम विश्वास करके उनके नामका नित्य स्मरण करना। इसको आप बाहरकी अपेक्षा घरपर अधिक सुगमतासे कर सकते हैं। सब समय भगवन्नामका अखण्ड स्मरण करते हुए ही घरके सारे आवश्यक काम करें। भगवान्‌ने गीता (८। ७)-में कहा है—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

'इसलिये हे अर्जुन! सब समय मेरा स्मरण करो और (समयपर) युद्ध करो। यों मन-बुद्धिको मुझमें अर्पण करनेपर तुम मुझको प्राप्त होओगे, इसमें संदेह नहीं है।'

इसके सिवा, अग्निकी साक्षी देकर जिस पत्नीका आपने पाणिग्रहण किया और जिसको साथ रखनेकी प्रतिज्ञा की, उसके सुख-दुःखका भी आपपर निश्चित उत्तरदायित्व है। आपके इस प्रकार गृह-त्यागसे यदि कोई बुराई आ गयी तो पत्नीके पाप-पुण्यका आपको भागीदार होना पड़ेगा। इस दृष्टिसे भी घर छोड़ना कदापि उचित नहीं है।

अतएव मेरी सलाह तो यह है कि आप घर छोड़नेका विचार त्याग दीजिये। चिकित्साका प्रयत्न करते रहिये। श्रद्धापूर्वक भगवन्नामका जप तथा भगवान्‌की प्रार्थना करनेसे भी आपके रोगका नाश हो सकता है, विश्वास हो तो। राम-नाम सब रोगोंकी एक रामबाण दवा है—**'सर्वतापशमनैकभेषजम्।'**

शेष भगवत्कृपा!

(३)

दुष्कर्मसे दुर्गति

मान्य बहिन! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके बहनोई 'कल्याण' के ग्राहक हैं, रामायण-भगवद्गीता पढ़ते हैं, घूसखोरीसे सदा दूर रहते हैं और अच्छे स्वभावके हैं; परंतु उनके चरित्रमें दोष है, दोष बतलानेपर वे उलटा डाँटते हैं तथा उसका औचित्य सिद्ध करते हैं। इससे आपकी बहिनको बहुत दुःख है और वह कभी-कभी शरीर-त्यागतककी बात सोचती है। इसके उत्तरमें निवेदन यह है कि आप अपनी बहिनको समझा दें कि वे आत्महत्याकी बात कभी न सोचें। आत्महत्या महापाप है। इससे दुःखोंका नाश नहीं होता, वरं दुःख और भी बढ़ जाते हैं। वे अपने पतिदेवकी बुद्धि सुधरनेके लिये भगवान्‌से कातर प्रार्थना करें। उनकी प्रार्थना जितनी ही विश्वासपूर्ण होगी, उतना ही उसका अच्छा फल देखनेमें आयेगा। मनुष्य जब कामादि विकारोंके वशमें हो जाता है, तब उसका ज्ञान ढक जाता है, बुद्धि विपरीत निर्णय देने लगती है। वह पापको पुण्य बताती है और पुण्यको पाप। यही हाल आपके बहनोईजीका है। वे यह जो कुछ कर रहे हैं सो निःसंदेह प्रत्यक्ष पाप है। इसका परिणाम उनके लिये बहुत ही दुःखदायी हो सकता है। यदि वे मेरी बात मानें तो मैं उनसे यही कहूँगा कि वे शीघ्र-से-शीघ्र इस दुष्कर्मको छोड़ दें और अपनी साध्वी पत्नीको घोर मानसिक पीड़ासे बचा लें। इसीमें उनका कल्याण है। गीता-रामायणका उनको यही संदेश है और मैं भी उनसे बलपूर्वक यही अनुरोध करता हूँ। वे इस प्रकारका कुकार्य करके गीता-रामायणको भी कलङ्क लगा रहे हैं, जो वास्तवमें गीता-रामायणको नहीं लगकर उन्हींको लगेगा और उनकी महान् दुर्गतिका कारण होगा। जो भोली बहिन इनके जालमें फँसी है, उसको भी सावधान होना चाहिये। इस प्रकारका आचरण महान् पाप तो है ही, यह नारी-जातिके लिये बड़ा कलङ्क है। एक बहिन घरमें बैठी रोती-कलपती रहे और दूसरी वहीं उसके पतिको दुराचारका आश्रय देनेवाली बने! पुरुष-जाति तो गिर ही गयी है, पर भारतकी नारियोंका भी इस प्रकार पतन हो रहा है। बड़े दुःखकी बात है।

(४)

शरीरको भगवत्प्राप्तिका साधन बनाइये

प्रिय भाई, सप्रेम हरिस्मरण! तुम्हारा पत्र मिला। शरीरके सम्बन्धमें यह निश्चय रखना चाहिये कि यह निश्चय ही अनित्य और विनाशी है। हम प्रतिदिन देख रहे हैं—हट्टे-कट्टे जवानोंके शरीर पटापट मृत्युके मुखमें जा रहे हैं। अतः इस शरीरमें मोह-आसक्ति न रखकर इससे वास्तविक लाभ उठा लेना चाहिये। यह स्वयं विनाशी होते हुए भी नित्य अविनाशी परम तत्त्व भगवान्‌की प्राप्तिका—सत्यकी उपलब्धिका साधन हो सकता है। बिना प्रमादके प्रतिदिन इसको इसी काममें लगाये रखना चाहिये। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सभीके द्वारा नित्य-निरन्तर भगवान्‌का सम्पर्क प्राप्त करते रहना चाहिये। समय जा रहा है—इसलिये आलस्य, प्रमाद, भोगलिप्सा, प्रपञ्चके सेवन आदिमें इसे नहीं लगाना चाहिये। बुरे कर्म तो कभी करने ही नहीं चाहिये। बुरे कर्म करनेपर तो यह शरीर घोर नरक और आसुरी योनिकी प्राप्तिका साधन बन जायगा।

संसारके हानि-लाभ, सुख-दुःख वास्तवमें कुछ हैं नहीं। शरीर तथा नाममें 'मैं' पन होनेसे ही इनका बोध होता है। यदि हैं तो यह मानना चाहिये कि सुख-दुःख, लाभ-हानि, आराम-पीड़ा सभीके द्वारा भगवान्‌का आशीर्वाद प्राप्त हो रहा है। सब उन्हीं मङ्गलमय प्रभुका मङ्गल-विधान है। सभीमें सदा उन्हींका मधुर संस्पर्श प्राप्त करना चाहिये। प्रत्येक घटनामें उनके मुसकानभरे मुखके दर्शन करने चाहिये। शेष भगवत्कृपा!

विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र—

(१)

आतिथ्य नीतिके आदर्श—महाराज मयूरध्वज

महाभारतका महायुद्ध समाप्त हो चुका था। सम्राट् युधिष्ठिरने अश्वमेध-यज्ञ करनेके लिये अश्व छोड़ा था। उसी समय रत्नपुरके नरेश परम धार्मिक एवं भगवद्भक्त राजा मयूरध्वजने भी अश्वमेध-यज्ञ प्रारम्भ किया था और उस यज्ञका अश्व भी छूटा था। उस अश्वकी रक्षा राजकुमार ताम्रध्वज कर रहे थे। युधिष्ठिरके यज्ञीय अश्वकी रक्षा करते हुए अर्जुन मणिपुर पहुँचे तो रत्नपुरका यज्ञीय अश्व भी वहाँ पहुँचा। फलस्वरूप दोनों दलोंमें युद्ध छिड़ गया। अर्जुन समझते थे कि 'मुझ-सा वीर कोई नहीं है और मेरी भक्ति इतनी प्रबल है कि भगवान् श्रीकृष्ण उसके वशमें हैं। मेरे-जैसा भक्त भला कौन होगा?'

भगवान् तो गर्वहारी हैं। अपने भक्तोंके चित्तमें वे गर्व रहने नहीं देते। मणिपुरके इस युद्धमें गाण्डीवधन्वा अर्जुन पराजित हो गये। श्रीकृष्ण और अर्जुन—दोनों ही युद्धमें मूर्च्छित हो गये। राजकुमार ताम्रध्वज दोनों अश्वोंको पिताके समीप ले गये। मन्त्रीने बड़े उत्साहसे इस विजयका समाचार दिया।

'तू मेरा पुत्र नहीं, शत्रु है!' प्रसन्न होनेके स्थानपर मयूरध्वज अत्यन्त क्षुब्ध तथा दुःखी हुए। 'भवभयहारी श्रीहरिका साक्षात् दर्शन प्राप्त करके भी तू उनकी सेवामें नहीं गया और घोड़ा ले आया। उन भक्तवत्सलके अनुग्रहभाजन युधिष्ठिरके यज्ञमें तूने बाधा डाल दी। तू इतना भी नहीं समझता कि यज्ञ पूर्ण कर लेना ही मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं तो इन यज्ञोंके द्वारा उन्हींकी पूजा करता हूँ। उनकी प्रसन्नता ही मुझे इष्ट है।'

उधर युद्धभूमिमें मूर्च्छा टूटनेपर अर्जुन बहुत दुःखी हुए। अश्वके बिना धर्मराजका यज्ञ अपूर्ण रहेगा, यह चिन्ता उन्हें उद्विग्न किये थी। उनके बलका गर्व तो नष्ट हो चुका था; किंतु भक्तिका गर्व अभी शेष था। श्रीकृष्णने उन्हें आश्वासन दिया। स्वयं ब्राह्मणका वेश बनाया और धनञ्जयको शिष्य बनाकर साथ लिया। एक माया-सिंह भी साथ ले लिया और रत्नपुर जा पहुँचे।

'स्वस्ति राजन्!' पहुँचते ही आशीर्वाद दिया मयूरध्वजको।

'भगवन्! यह अनुचित आचरण आप क्यों करते हैं! ब्राह्मणको प्रणाम करनेपर ही आशीर्वाद देना चाहिये। मैं तो आपका सेवक हूँ आज्ञा करें।' मयूरध्वजने श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके निवेदन किया।

'राजन्! हम आपके अतिथि हैं और बड़ी महत्त्वाकाङ्क्षा लेकर आये हैं'—ब्राह्मणवेशधारी श्रीकृष्णने कहा। 'इधर मैं अपने पुत्रके साथ आ रहा था। यह भूखा सिंह उसे खा ही लेता; किंतु मेरे बहुत अनुनय-विनय करनेपर यह मान गया कि यदि आपकी पत्नी तथा पुत्र आपके शरीरको आरेसे चीरकर देहका दाहिना भाग दें तो उसे खाकर यह तृप्त हो लेगा।

'मेरा परम सौभाग्य कि नाशवान् देह ब्राह्मणके काम आ सकेगा!' मयूरध्वजने तुरंत स्वीकार कर लिया।

'मैं महाराजकी अर्धाङ्गिनी हूँ—' रानीने कहा। 'सिंह! मुझे खा ले तो नरेशका आधा अङ्ग उसे मिला माना जायगा।'

'देवि! आप सत्य कहती हैं; किंतु ब्राह्मणने आपत्ति प्रकट की। 'रानी पुरुषका वामाङ्ग है और सिंहको नरेशका दक्षिणाङ्ग चाहिये।'

'पुत्र पिताका ही स्वरूप होता है। मैं महाराजका स्वरूप हूँ और दक्षिणाङ्ग भी'—राजकुमारने कहा। 'सिंह मेरा भक्षण करे। महाराज जीवित रहें।'

'भद्र! तुमने सुना है कि तुम और तुम्हारी माता आरेसे चीरें तो वह अङ्गार्ध सिंहका भोज्य होगा—' ब्राह्मणने कहा। 'तुम पिताके प्रतीक हो; किंतु अपना अङ्ग तुम स्वयं चीर तो नहीं सकते।'

राजाके मन्त्रियों, सभासदों आदिने बहुत आपत्ति की; किंतु नरेशने उन्हें यह कहकर चुप रहनेपर विवश कर दिया कि—'जो मेरे हितैषी हैं, जो मेरा कल्याण चाहते हैं, उन्हें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।'

आरा लगाया गया। 'माधव, गोविन्द, मुकुन्द' कहते महाराज मयूरध्वज आरेके नीचे शान्त, स्थिर बैठ गये। उन्होंने
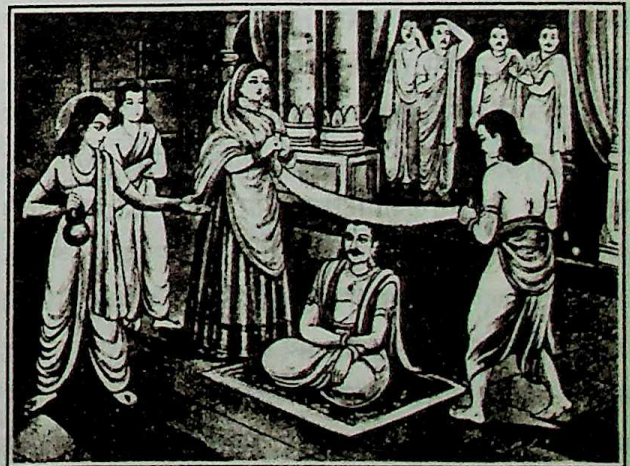
मुकुट उतार दिया था। रानी तथा राजकुमारने आरा पकड़ा। राजा मयूरध्वजका मस्तक चिरने लगा। रक्तकी धारा चल पड़ी। साथ ही उनके वाम-नेत्रसे दो बिन्दु अश्रु ढुलक पड़े।

'मैं दु:खपूर्वक दिया गया दान स्वीकार नहीं करता!' ब्राह्मण रुष्ट हुए।

'भगवन्! मेरे वाम नेत्रसे अश्रु आये हैं—' मयूरध्वजने कहा। 'इस वाम भागको यह दु:ख है कि वह अभागा रह गया। शरीरका दक्षिण भाग आपकी सेवामें लगकर सार्थक हो रहा है और वाम भाग उससे वञ्चित रह जाता है।'

'तुम धन्य हो!' सहसा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी नवजलधर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका रूप प्रकट हो गया। आरा उठाकर उन्होंने फेंक दिया। उनका करस्पर्श होते ही मयूरध्वजका शरीर ज्यों-का-त्यों हो गया। अर्जुन अपने वेशमें दीखने लगे और सिंह अदृश्य हो गया। भगवान्ने वरदान माँगनेको कहा।

'आपके श्रीचरणोंमें मेरी अविचल भक्ति हो।' मयूरध्वज प्रभुके चरणोंपरसे उठते हुए बोले। 'एक प्रार्थना और है दयासागर! आप भक्तोंकी इतनी कठिन परीक्षा फिर न लें।'

'एवमस्तु!' श्रीकृष्णसे दूसरा कुछ सुननेकी सम्भावना की ही कैसे जा सकती है?

'मेरे अपराध क्षमा करें देव!' पार्थ चरण पकड़ने झुके तो राजाने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। अर्जुनका गर्व नष्ट हो चुका था।

'आप अपना यज्ञीय अश्व ले जायँ'—मयूरध्वजने स्वत: कहा। 'धर्मराजसे इस राजकुमारकी धृष्टताके लिये क्षमा चाहता हूँ मैं। सम्राट्-पदके वही अधिकारी हैं। उन श्रीकृष्णके जनका अनुगत होनेमें मेरा गौरव ही है।'

सत्कृत होकर अपने नित्यसारथिके साथ धनञ्जय अश्व लेकर रत्नपुरसे विदा हुए।

(२)

दैत्यराज विरोचन

दैत्यराज भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादके पुत्र थे विरोचन और प्रह्लादके पश्चात् ये ही दैत्योंके अधिपति बने थे। प्रजापति ब्रह्माके समीप दैत्योंके अग्रणीरूपमें धर्मकी शिक्षा ग्रहण करने विरोचन ही गये थे। धर्ममें इनकी श्रद्धा थी। आचार्य शुक्रके ये बड़े निष्ठावान् भक्त थे और शुक्राचार्य भी इनसे बहुत स्नेह करते थे।

अपने पिता प्रह्लादजीका विरोचनपर बहुत प्रभाव पड़ा था। इसलिये ये देवताओंसे कोई द्वेष नहीं रखते थे। संतुष्टचित्त विरोचनके मनमें पृथ्वीपर भी अधिकार करनेकी इच्छा नहीं हुई; स्वर्गपर अधिकार करना, भला, वे क्यों चाहते। वे तो सुतलके दैत्यराज्यसे ही संतुष्ट थे।

शत्रुकी ओरसे सावधान रहना चाहिये, यह नीति है और सम्पन्न लोगोंका स्वभाव है अकारण शङ्कित रहना। अर्थका यह दोष है कि वह व्यक्तिको निश्चिन्त और निर्भय नहीं रहने देता। असुरों एवं देवताओंकी शत्रुता पुरानी है और सहज है; क्योंकि असुर रजोगुण-तमोगुणप्रधान हैं और देवता सत्त्वगुणप्रधान। अत: देवराज इन्द्रको सदा यह भय व्याकुल रखता था कि यदि कहीं असुरोंने अमरावतीपर आक्रमण कर दिया तो परम धर्मात्मा विरोचनका युद्धमें सामना करना देवताओंकी शक्तिसे बाहर है, उस समय पराजय ही हाथ लगेगी।

शत्रु प्रबल हो, युद्धमें उसका सामना सम्भव न हो तो उसे नष्ट करनेका प्रबन्ध पहले करना चाहिये। इन्द्र आक्रमण करके अथवा धोखेसे विरोचनको मार दें तो शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्याके प्रभावसे उन्हें जीवित कर देंगे और आजके प्रशान्त विरोचन क्रुद्ध होनेपर देवताओंके लिये विपत्ति बन जायँगे। अतएव देवगुरु बृहस्पतिकी मन्त्रणासे इन्द्रने ब्राह्मणका वेष बनाया और सुतल पहुँचे।

विरोचनने अभ्यागत ब्राह्मणका स्वागत किया। उनके चरण धोये, पूजा की। इसके पश्चात् हाथ जोड़कर बोले—'मेरा आज सौभाग्य उदय हुआ कि मुझ असुरके सदनमें आपके पावन चरण पड़े। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

इन्द्रने विरोचनकी दानशीलताकी बहुत-बहुत प्रशंसा की और विरोचनके आग्रहपर बोले—'मुझे आपकी आयु चाहिये।'

दैत्यराजका सिर माँगना व्यर्थ था; क्योंकि गुरु शुक्राचार्यकी संजीवनी विद्या कहीं गयी नहीं थी। किंतु विरोचन किंचित् भी हतप्रभ नहीं हुए। उन्होंने प्रसन्नतासे कहा—'मैं धन्य हूँ। मेरा जन्म लेना सफल हो गया। मेरा जीवन स्वीकार करके आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया।'

विरोचनने अपने हाथमें खड्ग उठाया और मस्तक काटकर दूसरे हाथसे ब्राह्मणकी ओर बढ़ा दिया। वह मस्तक लेकर इन्द्र भयके कारण शीघ्र स्वर्ग चले आये। विरोचनको तो भगवान्ने अपना पार्षद बना लिया।

व्रतोत्सव-पर्व

चैत्र कृष्णपक्ष (२९-३-२००२ से १२-४-२००२ तक) सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	शुक्र	हस्त	२९ मार्च	तुलाके चन्द्रमा रात्रि ३-०६ बजे, वसन्तोत्सव, होली (सर्वत्र), होलिकाविभूतिधारण, आम्रमञ्जरीप्राशन, चतु:षष्ठीयात्रा
द्वितीया	शनि	चित्रा	३० ,,	यायिजययोग रात्रि ७-३८ बजेसे, द्विपुष्करयोग दिन २-२० बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग
तृतीया	रवि	स्वाती	३१ ,,	श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ९-०९ बजे, रेवतीके सूर्यकी संक्रान्ति सायं ५-१८ बजे, रवियोग दिनमें १ बजेतक, तृतीया तिथि सायं ५-३८ बजेतक, भद्रा प्रात: ६-३८ बजेसे सायं ५-३८ बजेतक
चतुर्थी	सोम	विशाखा	१ अप्रैल	वृश्चिकके चन्द्रमा प्रात: ६-१४ बजे, यायिजययोग दिन ३-५७ बजेसे, सर्वार्थसिद्धियोग दिन १२ बजेसे, चतुर्थी तिथि दिन ३-५६ बजेतक
पञ्चमी	भौम	अनुराधा	२ ,,	रंगपञ्चमी, वृद्ध अङ्गारक पर्व (बुढ़वा मंगल), अनुराधा नक्षत्र दिन ११-१५ बजेतक
षष्ठी	बुध	ज्येष्ठा	३ ,,	धनुके चन्द्रमा दिन १०-५६ बजे, रवियोग दिन १०-५७ बजेसे, दुर्लभ सन्धिकरयोग दिन १०-५७ बजेसे दिन १-३६ बजेतक, भद्रा दिन १-३७ बजेसे रात्रि १-२२ बजेतक, ज्येष्ठा नक्षत्र दिन १०-५६ बजेतक
सप्तमी	गुरु	मूल	४ ,,	रवियोग दिन ११-०६ बजेतक, अष्टकाश्राद्ध (दोपहर), मूल नक्षत्र दिन ११-०६ बजेतक
अष्टमी	शुक्र	पू०षा०	५ ,,	मकरके चन्द्रमा सायं ६-०३ बजे, श्रीशीतलाष्टमीव्रत, यात्रा-उत्सव आदि कार्य (बासी अन्न-पानादि त्यागकर), स्थायिजययोग दिन ११-४६ बजेतक
नवमी	शनि	उ०षा०	६ ,,	यायिजययोग दिन १२-५६ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग, भद्रा रात्रि २-१७ बजेसे
दशमी	रवि	श्रवण	७ ,,	भद्रा दिन २-४७ बजेतक, कुम्भके चन्द्रमा रात्रि ३-३५ बजे, यायिजययोग दिन २-४८ बजेसे, श्रवण नक्षत्र दिन २-३३ बजेतक, पञ्चक आरम्भ दिन २-३४ बजेसे
एकादशी	सोम	धनिष्ठा	८ ,,	यायिजययोग सायं ४-१६ बजेतक, पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका)
द्वादशी	भौम	शतभिषा	९ ,,	वारुणीपर्वयोग सायं ६-०६ बजेसे सायं ६-१४ बजेतक
त्रयोदशी	बुध	पू०भा०	१० ,,	मीनके चन्द्रमा दिन २-५५ बजे, प्रदोषव्रत, मासशिवरात्रिव्रत, भद्रा रात्रि ८-०८ बजेसे
चतुर्दशी	गुरु	उ०भा०	११ ,,	भद्रा दिन ९-११ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि १२-१३ बजेसे
अमावास्या	शुक्र	रेवती	१२ ,,	मेषके चन्द्रमा रात्रि २-४० बजे, स्नान-दान-श्राद्धकी अमावास्या, पञ्चक समाप्त रात्रि २-४० बजे

चैत्र शुक्लपक्ष (१३-४-२००२ से २७-४-२००२ तक) सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	शनि	अश्विनी	१३ अप्रैल	वासन्तनवरात्र आरम्भ, कलशस्थापन, ध्वजारोपण, वर्षपतिपूजा, पञ्चाङ्गफल-श्रवण, (संवत् २०५९ प्रारम्भ) 'मन्मथ' नाम संवत्सर, नववर्ष आरम्भ, धर्मघटदान, अश्विनी नक्षत्र रात्रि शेष ४-५३ बजेतक
द्वितीया	रवि	भरणी	१४ ,,	चन्द्रदर्शन, अश्विनी नक्षत्र और मेष राशिके सूर्य प्रात: ६-४० बजे, पुण्यकाल दिन १०-४० बजेतक, खरमास समाप्त, हरिद्वारमें अथवा काशीमें असीसंगम-स्नान, सक्तु-व्यजन-जलकुम्भ आदिका दान, बंग सन् १४०९ साल प्रारम्भ, यायिजययोग रात्रि ३-१० बजेसे
तृतीया	सोम	भरणी	१५ ,,	भरणी नक्षत्र प्रात: ६-४१ बजेतक, वृषके चन्द्रमा दिन १-०२ बजे, मत्स्यावतार (दोपहर), सौर वैशाखमास आरम्भ, सौभाग्य सुन्दरीव्रत, गणगौरीव्रत (राजस्थान), गौरीदोलोत्सव
चतुर्थी	भौम	कृत्तिका	१६ ,,	वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, श्रीगणेशदमनकोत्सव, भौम चतुर्थीपर्व (सूर्यग्रहणके समान), स्थायिजययोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग दिन ८-०३ बजेतक तदुपरि रवियोग, भद्रा सायं ४-०७ बजेसे रात्रि शेष ४-१६ बजेतक
पञ्चमी	बुध	रोहिणी	१७ ,,	मिथुनके चन्द्रमा रात्रि ९-०३ बजे, श्रीरामराज्यमहोत्सव दिन १-३७ बजेसे दिन ३-५० बजेतक, श्रीपञ्चमी, लक्ष्मीपूजन, रवियोग दिन ८-५३ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग (दिन-रात)
षष्ठी	गुरु	मृगशिरा	१८ ,,	श्रीसूर्यषष्ठीव्रत (बिहार), श्रीस्कन्ददमनकोत्सव, रवियोग दिन ९-१५ बजेसे
सप्तमी	शुक्र	आर्द्रा	१९ ,,	कर्कके चन्द्रमा रात्रि २-४० बजे, श्रीभास्करका दमनकपूजा, श्रीअन्नपूर्णा परिक्रमा रात्रि २-१० बजेसे, ओली प्रारम्भ (जैन), वासन्तीपूजा (बंगाल), रवियोग दिन ९-०६ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग, भद्रा रात्रि २-१० बजेसे
अष्टमी	शनि	पुनर्वसु	२० ,,	भद्रा दिन १-२१ बजेतक, व्रतकी अष्टमी, तारा अष्टमी, श्रीभवान्युत्पत्ति, अशोकाष्टमी, ब्रह्मपुत्र नदीमें स्नान, अन्नपूर्णा परिक्रमा रात्रि १२-३५ बजेतक
नवमी	रवि	पुष्य	२१ ,,	राष्ट्रिय वैशाखमास आरम्भ, श्रीरामनवमीव्रत, कर्कलग्न (दोपहर)-में श्रीरामजन्ममहोत्सव, रामावतार, अयोध्यामें श्रीरामजन्मभूमि-दर्शन रवियोग प्रात: ७-३९ बजेसे
दशमी	सोम	अश्लेषा	२२ ,,	सिंहके चन्द्रमा प्रात: ६-२४ बजे, नवरात्रव्रतकी पारणा, रवियोग रात्रि शेष ४-५८ बजेतक, अश्लेषा नक्षत्र प्रात: ६-२४ बजेतक तदुपरि मघा नक्षत्र रात्रि शेष ४-५८ बजेतक
एकादशी	भौम	पू०फा०	२३ ,,	कामदा एकादशीव्रत (सबका), श्रीविष्णुदोलोत्सव, सायंकाल दोलाधिरूढ लक्ष्मी-नारायण-पूजन, बाबू कुंवर सिंह-जयन्ती (बिहार), स्थायिजययोग सायं ६-१५ बजेसे रात्रि ३-२१ बजेतक, भद्रा प्रात: ७-२५ बजेसे सायं ६-१४ बजेतक
द्वादशी	बुध	उ०फा०	२४ ,,	कन्याके चन्द्रमा दिन ८-५२ बजे, श्रीविष्णुदमनकोत्सव, वामनद्वादशी, प्रदोषव्रत, श्रीअनङ्गव्रत
त्रयोदशी	गुरु	हस्त	२५ ,,	श्रीशिवनृसिंहदमनकारोपण-पूजन (दोपहर), महावीर-जयन्ती (जैन)
चतुर्दशी	शुक्र	चित्रा	२६ ,,	तुलाके चन्द्रमा दिन ११-१४ बजे, व्रतकी पूर्णिमा, स्थायिजययोग दिन ११ बजेतक, भद्रा दिन ११-०१ बजेसे रात्रि ९-५४ बजेतक
पूर्णिमा	शनि	स्वाती	२७ ,,	स्नान-दानकी पूर्णिमा, सर्वदेवदमनकोत्सव, हनुमज्जयन्ती, ओली समापन (जैन), भरणी नक्षत्रके सूर्य रात्रि १०-५५ बजे, पूर्णिमा तिथि दिन ८-४७ बजेतक

पढ़ो, समझो और करो

(१) मानवता

घटना वर्ष १९९४ की है। बी०एड्०की परीक्षाहेतु मुझे शिक्षा महाविद्यालय खण्डवा पहुँचना था। बसद्वारा मैं अपने गाँवसे होशंगाबाद पहुँचा और वहाँसे खण्डवा जानेके लिये एक्सप्रेस ट्रेनका द्वितीय श्रेणीका टिकट लिया। टिकट लेकर प्लेटफॉर्मपर ट्रेनकी प्रतीक्षा कर रहा था, तभी खण्डवाकी ओर जानेवाली एक सुपर फास्ट ट्रेन आयी और मैं उसमें सवार हो गया।

चूँकि मुझे उसी दिन खण्डवा पहुँचना था, अतः हड़बड़ीमें मैं यह पता न कर पाया कि यह वही ट्रेन है जिसका मैंने टिकट लिया है या कोई दूसरी। ट्रेन चल पड़ी और उसकी गति तीव्र हो गयी। ट्रेन चलनेके कुछ देर बाद टिकटचेकर जब मेरे पास आया तब मुझे जानकारी हुई कि मैं गलत ट्रेनमें बैठ गया हूँ। मेरे द्वारा टिकट दिखाये जानेपर टिकटचेकरने नाराजगी व्यक्त की और कहा कि यह टिकट इस गाड़ीमें नहीं चलेगा। मैंने उससे निवेदन किया, अपनी मजबूरी बतायी और सहयोगकी प्रार्थना की, परंतु वह अपनी जिदपर अड़ा रहा और अन्ततः उसने एक स्टेशनके आउटर सिगनलके समीप ट्रेन रुक जानेपर मुझे ट्रेनसे उतरवा दिया। ऐसी स्थितिमें मैं वहाँ कर भी क्या सकता था? फिर गलती भी तो मेरी ही थी!

जगह अनजानी और सुनसान थी, मैं घबड़ा गया। अब भगवान्का ही भरोसा था। साहस बटोरकर मैं भगवान्का स्मरण करता हुआ पटरीके किनारे पैदल चलता गया। आगे वह छोटा-सा स्टेशन मिला, जहाँ पैसेंजर गाड़ियाँ रुकती थीं।

हाथमें अटैची और छाता लिये थका हुआ मैं वहाँके स्टेशनमास्टरसे मिला और अपना परिचय देते हुए अपनी व्यथा सुनायी। स्टेशनमास्टरने सहानुभूतिपूर्वक पहले मुझे जलपान कराया फिर बताया कि वह ट्रेन जिसका टिकट आपके पास है आनेवाली है, पर वह यहाँ रुकती नहीं है। परंतु उन दयालु व्यक्तिने यह आश्वासन मुझे दिया कि वे उस ट्रेनको रुकवानेका प्रयास करेंगे।

थोड़ी ही देरमें वह ट्रेन आयी और स्टेशनमास्टरके मानवीय प्रयासोंसे वहाँ रुक भी गयी। स्टेशनमास्टरने बड़े प्रेमसे गाड़ीमें बैठाकर मुझे विदा किया। मेरे पास उन अपरिचित भले आदमीको धन्यवाद देनेके लिये शब्द नहीं थे। ऐसी भलमनसाहत विरले लोगोंमें ही देखनेको मिलती है।

एक व्यक्ति इतना कठोर कि अनजान और जंगली रास्तेमें भी ट्रेनसे यात्रीको उतार सकता है तो दूसरा इतना दयालु कि न रुकनेवाली ट्रेनको रुकवाकर उसमें बिठाता है। ऐसी घटनाएँ इस बातका प्रमाण हैं कि मानवता अभी जीवित है। यदि कहीं शैतानके दर्शन होते हैं तो कहीं भगवान् भी मिल जाते हैं। यद्यपि पहलेवाले व्यक्तिने भी अपनी कर्तव्यनिष्ठाका ही परिचय दिया, परंतु दूसरा व्यक्ति मेरे साथ कौन-सा रिश्ता निभा रहा था? मैंने समझा कि सम्भवतः सच्ची मानवताका ही यह रिश्ता हो सकता है, नहीं तो मेरे-जैसे यात्री कितने रोज आते-जाते होंगे पर उनकी कौन सुनता है? भले मानुष भी अभी बहुत हैं, जो दीन-दुखियों, असहायोंकी मदद निःस्वार्थभावसे करते हैं। सचमुच ऐसे भले लोगोंमें देवत्वके दर्शन होते हैं।

—गोपालदास गुप्ता

(२) एकादशीव्रतसे पुत्र-प्राप्ति

मैं गुजरात-राज्यके अमरेली जिलेमें पुलिस फोर्समें कॉन्स्टेबलकी पोस्टपर काम करता हूँ। मेरी शादी १५ वर्ष पूर्व हुई थी। मेरे परिवारमें चार लड़कियाँ थीं। पुत्र न होनेके कारण हम पति-पत्नीको सदैव क्लेश रहता था। हमारे सद्गुरु भगवान् रणछोड़दासजी बापूकी कृपा हमारे कुटुम्बपर है। हम भगवान् रामभद्रके उपासक हैं। प्रतिदिन 'श्रीरामचरितमानस' का पाठ करते हैं। एक दिन बहुत दुःखी होकर मेरी पत्नीने मुझसे कहा कि जो भगवान्को भी नहीं मानते उनके यहाँ तो पुत्र होते हैं, परंतु हमलोग रात-दिन भगवान्की उपासना करते रहते हैं पर हमारे कोई पुत्र नहीं है। लगता है भगवान् कहीं हैं नहीं, हमलोग व्यर्थ ही पूजा-पाठ करते हैं। इसलिये आप भी राम-नाम और रामायण छोड़ दीजिये। मुझे तो अब उनपर विश्वास नहीं रहा। मैंने कहा—'देवि! ऐसा न कहो, भगवान्पर भरोसा रखो। पुत्र देनेवाले वही हैं। वे हमें अवश्य पुत्र देंगे। विश्वास रखो, हमारी प्रार्थना झूठी नहीं जायगी।' इस प्रकार पत्नीको आश्वस्तकर मैं जानकी-जीवन भगवान् रामभद्र और वात्सल्यमयी माँ किशोरीजीसे इस प्रकार प्रार्थना करने लगा—

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

(रा०च०मा० १।११२।३-४)

मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

(रा०च०मा० ३।१०।६—८)

—हे भगवन्! मैंने कभी पुत्रके बारेमें आपसे कुछ भी नहीं

कहा। पुत्रको लेकर हमारे परिवारमें झगड़ा होता रहता है। इसलिये कृपा करके मुझे एक पुत्र ऐसा दीजिये जो आपका भक्त हो। मैं 'श्रीरामचरितमानस' का अनुष्ठान करूँगा। हम पति-पत्नी एकादशीव्रत करेंगे और मैं एकादशीके दिन एकादश 'रामरक्षास्तोत्र'-का पाठ करूँगा। आप हमें पुत्रदा एकादशीके दिन किसी निशानीके साथ एक पुत्र दीजिये। इस प्रकार मैं भगवान्‌को रिझाता रहा।

रातमें हम सो गये। उसी रात मुझे एक स्वप्न दिखायी दिया। मैंने देखा कि एक नन्हा-सा बालक पालनेमें मुसकरा रहा है। मेरी पत्नी उसको झुला रही है। मैंने पत्नीको सपना सुनाया। वह भी प्रसन्न हो उठी। हमें विश्वास हो गया कि प्रभुने कृपा कर दी।

कुछ समय ऐसे ही बीता और विक्रम संवत् २०५७ भाद्रपद कृष्णपक्ष एकादशी शुक्रवारको रामभद्रकी कृपासे पुत्रका जन्म हुआ। उसके दाहिने कंधे और दाहिने पैरके अँगूठेके ऊपर लाल रंगका चिह्न है। पुत्र पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई तथा मेरी पत्नीकी खुशीका तो ठिकाना न था। कुछ समय पूर्व जिसका भगवान्‌से विश्वास उठ-सा गया था, आज वही बार-बार भगवान्‌से क्षमा माँगने लगी। हमलोगोंकी पूजा-उपासना तथा एकादशीव्रतके प्रभावसे हमपर भगवान्‌की कृपा हो गयी थी। आज भी हम पति-पत्नी एकादशीव्रत करते हैं।

जानकी-जीवन भगवान् रामभद्र और वात्सल्यमयी माँ किशोरीजी आस्थाका फल अवश्य देते हैं। हो सकता है कि आपका विश्वास कभी डगमगा जाय, पर भगवान्‌की अपने भक्तपर पूर्ण कृपा रहती ही है।

—नारजभाई सामतभाई जागसर

(३) प्रभुने सुन ली भक्तकी करुण पुकार

घटना ११ जुलाई सन् २००० ई० की है। भगवान् जगन्नाथकी बाहुड़ा-यात्राकी तैयारी चल रही थी। इसी तरहकी तैयारी ग्राम बलौदा (छत्तीसगढ़)-में भी की जा रही थी। इस गाँवसे कुछ ही दूरीपर मेरे समधीका गाँव अन्तरझोला है। यह गाँव अपने प्राकृतिक सौन्दर्यके कारण प्रसिद्ध है। इसके निकट बूढ़ा डोंगरके नामसे एक बहुत बड़ा जंगल है। इस जंगलकी निर्मल जलधारा अन्तरझोलाके खेतोंको शस्य-श्यामला बनाती है। पेड़-पौधोंसे भरे इस जंगलमें जानवर निर्भय होकर विचरण किया करते हैं।

मेरे समधीजीके मनमें बाहुड़ा-यात्रा देखने बलौदा जानेका विचार था। इसी कारण वे अपने घरेलू काम जल्द निपटा देना चाहते थे। प्रातः उठकर खेत-खलिहानोंमें घूमना उनके दैनिक जीवनका एक अङ्ग है। रोजकी तरह बाहुड़ा-यात्राके दिन भी बड़े सबेरे उठकर वे अपने खेतोंकी ओर घूमने निकले। बरसातका दिन था। खेतोंमें फसलके नन्हें-नन्हें पौधे सूर्योदयका आभास पाकर मुसकरा रहे थे। वातावरण बड़ा सुखकर प्रतीत हो रहा था। समधीजी घूमते-घूमते अपनी बाड़ीके पास पहुँचे। वहाँका दृश्य देखते ही उन्हें समझते देर न लगी कि कोई करीलके लोभसे बाड़ी लाँघकर भीतर गया है। तुरंत तोरण खोलकर अंदर प्रविष्ट हुए और उस जगहका निरीक्षण करने लगे, जहाँपर बाँसके वृक्षोंका जमघट था। इतनेमें पीछेसे एक भालूने उनके ऊपर अचानक हमला बोल दिया। हमला इतना तेज था कि समधीजी हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी अपने-आपको सँभाल नहीं सके तथा पीठके बल जमीनपर गिर पड़े। भालू जो कि अत्यन्त गुस्सेमें था, समधीजीके सिरके ऊपरी भागपर अपने दाँतोंसे वार करने लगा। उसकी गुस्साका मुख्य कारण यह था कि पासके गाँववालोंने उसके साथ छेड़खानी करके उसे भगाया था। समधीजीके बाड़ीमें प्रवेश करनेके कुछ समय पूर्व ही वह बाड़ीमें घुसकर विश्राम कर रहा था और उसकी बौखलाहट अभी भी कम नहीं हुई थी। समधीजी अत्यन्त असहाय थे, कुछ क्षणके लिये वे भगवान्‌की स्मृतिमें समाधिस्थ-से हो गये। समधीजीको इस दर्दनाक परिस्थितिसे उबारनेके लिये सिवाय भगवान्‌के और कोई नहीं था। उनके राम-नामकी करुण पुकारसे वातावरण गूँज उठा और वे जो पीठके बल जमीनपर लेटे थे, साहस कर अब पलटकर मुँहके बल लेट गये। उस समय भगवान्‌ने ही उनकी सहायता की। आश्चर्य यह कि आक्रमणके लिये संनद्ध वह भालू चुपचाप क्यों दूसरी ओर चला गया! वह चाहता तो समधीजीको मार सकता था, पर यह तो राम-नामका ही प्रभाव था, जगन्नाथकी बाहुड़ा-यात्राके संकल्पका ही प्रभाव था, जो मेरे समधी कालरूप बने भालूसे बच गये। वास्तवमें प्रभुकी छायामें रहनेवालेका भला, कौन क्या बिगाड़ सकता है?

जब समधीजीने यह घटना हमें सुनायी तो हम सभीके तो रोंगटे खड़े हो गये। पहले तो भालूकी कल्पनासे भय-सा लगा, किंतु फिर प्रभुकी असीम कृपाका खयालकर उनके प्रति श्रद्धाका भाव जाग्रत् हो उठा और स्वयं ही सिर उनके चरणोंपर नमनके लिये अवनत हो गया।

—ईश्वरचन्द्र सिदार

मनन करने योग्य

हृदय-परिवर्तन

एक बार मैं अपनी बहनके गाँव गया था। वहाँ एक सज्जनने मुझे अपने जीवनका एक अनुभव सुनाया, जिसे मैं उन्हींके शब्दोंमें यहाँ दे रहा हूँ—

एक बार मुझे अपने भानजेकी शादीमें भातका नेग लेकर जाना था। दो-तीन दिनोंसे आवश्यक वस्तुओंकी व्यवस्था करनेके प्रयासमें हमलोग थे। दस तोले सोनेके जेवर भी बनवाकर एक डिब्बेमें रख दिये थे। डिब्बेको एक संदूकमें बंद कर दिया था और हम दूसरी चीजोंकी तैयारी कर रहे थे। अगले दिन सुबह दस बजेकी गाड़ीसे जाना था।

शामके समय मेरा छोटा पुत्र घरपर आया और उसने मुझसे कहा—'पिताजी! संदूकमें आपने अभीतक ताला नहीं लगाया; मुझे चाभी दीजिये, मैं लगा दूँ।'

मैं स्वयं ताला लगानेको खड़ा हुआ। स्वाभाविक रूपसे मैंने संदूक खोलकर देखा कि सब सामान तो ठीकसे हैं न। देखनेके बाद पता चला कि उसमें गहनेका डिब्बा नहीं है। यह देखते ही मैं सन्न रह गया। मैंने अपनी पत्नीसे धीरेसे पूछा कि उसने डिब्बेको कहीं अलग सँभालकर तो नहीं रखा है। उसने विस्मयसे पूछा—'क्या संदूकमें डिब्बा नहीं है?' और इतना कहकर वह उदास हो गयी। मैंने उसको धीरज बँधाया और कहा—'अब शोरगुल करनेका कोई अर्थ नहीं है।'

मैं चिन्तातुर हो गया—कल सुबह जाना है, रातभरमें दस तोलेके जेवर तैयार हों तो कैसे? बिना ज़ेवर लिये जाना भी ठीक नहीं। घरमें भी जैसे जेवर चाहिये, वैसे नहीं हो सकते। घरके बच्चोंने तो उस समय भोजन कर लिया, पर मुझे और मेरी पत्नीको भोजन करनेकी इच्छा ही नहीं हुई। हमलोग बिना भोजन किये ही रहे।

हमारे यहाँ खेतीके कार्यमें सहयोग देनेवाले दो साथी (खेत-मजदूर) रखे हुए थे। उनमेंसे एकने रातके दस बजे आकर मुझसे पूछा—'भाई साहब! आपने भोजन क्यों नहीं किया? क्या तबियत अच्छी नहीं है?' मैंने उसे जेवरके डिब्बेकी बात बतलाकर कहा—'किसीको कहना मत।' और वह सोनेके लिये चला गया।

मुझे चिन्ताके कारण नींद नहीं आ रही थी। रातके बारह बजे वही साथी (खेत-मजदूर) मेरे पास फिर आया और कहने लगा—'भाई साहब! मैं आपसे एक बात कहने आया हूँ, पर मेरा हृदय काँप रहा है।' मैंने कहा—'बेखटके जो भी कहना हो, कहो; मैं किसीसे तुम्हारी बातकी चर्चा नहीं करूँगा।'

मेरे द्वारा आश्वस्त होनेपर उस कर्मचारीने अपनी धोतीमें लपेटा हुआ डिब्बा मेरे सामने रख दिया और करुण स्वरसे कहने लगा—'मैंने ही आपकी संदूकसे यह डिब्बा निकाल लिया था। मैंने सोचा था कि इसे बेचकर पैसे बना लूँगा; किंतु आपकी उदासी देखनेके बाद मुझे बड़ा पछतावा हुआ। मेरी भी नींद हराम हो गयी। मेरे द्वारा यह बहुत बड़ा पाप हो गया, जो आपकी बहनको देनेके लिये इन जेवरोंकी मैंने चोरी की। आपके अन्नका अंश मेरी आँतोंमें भरा हुआ है, उसकी भी मुझे शर्म नहीं आयी। जैसे वह आपकी बहन है, वैसे मेरी भी है। अब आप इस डिब्बेको सँभाल लीजिये और ये पाँच रुपये मेरी ओरसे बहनको····।' इतना कहते-कहते वह मेरे पाँव पकड़कर रोने लगा।

मैंने उसे शान्त करते हुए कहा—'तुम अब चिन्ता न करो; मनुष्यसे भूल तो हो जाती है, किंतु पश्चात्तापद्वारा भूलको सुधार लेनेवाला व्यक्ति देव होता है। मैं यह बात किसीसे नहीं कहूँगा। किंतु अब मेरी एक बात तुम्हें माननी पड़ेगी। 'आप जो भी कहेंगे मैं मान लूँगा, मालिक'—उसने कहा।

मैंने कहा—'कल सुबह तुम्हें हमारे साथ विवाहमें सम्मिलित होना है; तुम अपने ही हाथसे ये पाँच रुपये मेरी बहनको देना।'

वह राजी हो गया। बहनके घरमें उसने घरके सदस्यके समान शादीका काम-काज किया। आज उस घटनाको बहुत समय बीत गया है। अब उसके पास स्वयंका खेत है और वह सुखी है। मैं भी उस बातको भूलकर उसके घर प्रसङ्गवश आता-जाता हूँ।

—जैसंगकुमार धरजिया

॥ श्रीहरिः ॥

'गीताप्रेस' से प्रकाशित कुछ नवीन संस्करण—छपकर तैयार

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (केवल भाषा) सचित्र, सजिल्द, मोटा टाइप, दो खण्डोंमें (कोड नं० 1337, 1338)—पाठकोंकी सुविधाकी दृष्टिसे इस नवीन संस्करणमें सम्पूर्ण श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके भाषानुवादको मोटे टाइपके साथ दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है। सम्पूर्णका मूल्य रु० २४० मात्र।

श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी) मोटा टाइप (कोड नं० 1364)—'गीताप्रेस' में इस पुराणका सानुवाद संस्करण पहलेसे उपलब्ध है। श्रद्धालु जनताकी माँगपर इस नवीन संस्करणमें सम्पूर्ण विष्णुपुराणका केवल हिन्दी अनुवाद अनेक आकर्षक चित्रोंके साथ मोटे टाइपमें प्रकाशित किया गया है। मूल्य रु० ५५ मात्र।

श्रीसत्यनारायण-व्रत-कथा (श्रीविष्णुसहस्रनामसहित) (कोड नं० 1367)—इस पुस्तकके प्रारम्भमें श्रीसत्यनारायणभगवान्‌की पूजन-विधि, भावानुवादसहित श्रीसत्यनारायण-व्रत-कथा और अन्तमें हवन-विधि, आरती तथा नित्यपाठके लिये श्रीविष्णुसहस्रनाम भी दिया गया है। लेमिनेटेड चित्रावरणसहित। मूल्य रु० ६ मात्र।

सं० श्रीमद्देवीभागवत (गुजराती) (कोड नं० 1326)—इस पुराणमें पराशक्ति भगवतीके स्वरूप, तत्त्व, महिमा आदिके तात्त्विक विवेचनके साथ देवीके विविध कथा-प्रसंग, देवी-माहात्म्य, देवी-उपासना आदिपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। देवीके विभिन्न लीलापरक अनेक सुन्दर चित्रोंसहित, सजिल्द। मूल्य रु० १२० मात्र।

Dear Reader,

Kalyana-Kalpataru has decided to bring out **Humanity Number** as its **Special Issue** for **October, 2002.** You are invited to send your articles in English on any of the aspects of Humanity covering not more than 10 typed pages and to be received in this office latest by **15th May, 2002.** The contributors may contact the Editor, **Kalyana-Kalpataru** for the topic to write on if they so find it necessary.

Editor—**Kalyana-Kalpataru**, P.O.—Gita Press—273005, Gorakhpur.

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,
२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,
३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल,
(गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये)
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,
४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,
५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं। केशोराम अग्रवाल,
(गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये)—प्रकाशक

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना—

गीताभवन, स्वर्गाश्रममें श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके सत्संगका कार्यक्रम नियमित रूपसे चल रहा है **तथा आगे भी इसके यथावत् चलनेकी बात है।** यहाँ पधारनेवाले सभी लोगोंको संयमित साधक-जीवन बिताते हुए सत्संग आदि कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। आवास, भोजन एवं राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था है।

व्यवस्थापक—गीताभवन, स्वर्गाश्रम—२४९३०४

रजि० समाचारपत्र—रजि० नं० २३०८/५७ पंजीकृत-संख्या— NP/GR—13/02
प्र० ति० २१-२-२००२
LICENCE NO.-WPP/GR-03/2002

इस अङ्कका मूल्य रु० ६ मात्र

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वर्ष ७६ | गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, अप्रैल २००२ ई० | संख्या ४
पूर्ण संख्या ९०५

प्रथम पूज्य श्रीगणेशजी

'प्रथम पूज्य हो कौन सुरोंमें?' खड़ा हुआ यह वाद दुरन्त।
'कर आये जो, प्रथम प्रदक्षिण पृथिवीका वारिधि पर्यन्त'॥
चले देव ले निज-निज वाहन, अमित वेगसे गर्व अनन्त।
मूषक-वाहन श्रीगणेशने, पितृ-परिक्रम किया तुरन्त॥
पूज शिवा-शिवको सादर वे, प्रथम पूज्य हो गये सुसन्त।
श्रीचरणोंमें जा चुप बैठे, शास्त्र-प्रसिद्ध यह है उदन्त॥
इनके ध्यान-नमनसे सारे, विघ्नोंका हो जाय निरन्त।
अखिल विश्वमें मङ्गल होवे, जय-जय सिद्धि-बुद्धिके कन्त॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, वि०सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, अप्रैल २००२ ई०

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

कल्याण

याद रखो—जितना ही तुम ममताकी वस्तुओंको—'मेरी' कहलानेवाली वस्तुओंको बढ़ाओगे, उतनी ही तुम्हारी विपत्तियाँ बढ़ेंगी और उतने ही चिन्ता, विषाद, शोक और बन्धन बढ़ेंगे। जिनके जीवनमें ममताकी जितनी कम-से-कम वस्तु—कम-से-कम प्राणी हैं, उनका जीवन उतना ही विपत्तिरहित अतएव चिन्तारहित, शोक-विषादशून्य और बन्धनमुक्त है।

याद रखो—कोई भी वस्तु तुम्हारी नहीं है, सब भगवान्‌की है; अतएव जब भी कोई वस्तु यह कहे कि तुम उसको 'मेरी' मान लो, 'मेरी' बना लो, उसी समय तुरंत उसे हटा दो और उसी समय उसे, वह जिसकी वस्तु है, उस परमात्माको सौंप दो। उसी क्षण मनके द्वारा उस अन्तर्यामी प्रभुसे कह दो—'नाथ! यह तुम्हारी वस्तु तुम्हारे अर्पण है, तुम्हीं इसके स्वामी हो, अपनी वस्तुको सँभालो।' इसके बाद फिर यदि वे कहें कि 'इस मेरी वस्तुको तुम सेवाके लिये अपने पास रखो' तो भगवान्‌की आज्ञा स्वीकार कर लो, पर उस वस्तुको ग्रहण करो—केवल प्रभुकी वस्तु मानकर उसकी यथायोग्य सेवा करने तथा उसे पूर्णरूपसे प्रभुकी सेवामें लगानेके लिये ही। उसको कभी 'मेरी' मत मानो, उसपर कभी ममताकी छाप मत लगाओ।

याद रखो—तुम जो यह चाहते हो कि 'मेरी' कहानेवाली वस्तुएँ सदा मुझे मिलती रहें, जगत्‌की बहुत सारी अच्छी-अच्छी वस्तुएँ 'मेरी' हो जायँ तो तुम बड़े भ्रममें हो और अपने ही हाथों अपनेको बड़े विकट जालमें फँसा रहे हो। तुम समझते तो हो कि जगत्‌की बहुत-सी वस्तुओंपर ममताकी मुहर लगनेसे मेरा जीवन निर्विघ्न और सुखी हो जायगा, पर सच तो यह है कि तुम्हारा जीवन बहुत अधिक विघ्नोंसे भर जायगा और सुखका स्वप्न भी तुम्हारे लिये दुर्लभ हो जायगा।

याद रखो—तुम जो अपने अध्यवसाय, परिश्रम, बुद्धिमत्ता, विद्या, प्रभाव और विविध इन्द्रियज्ञानका प्रयोग करके उनके द्वारा तथा भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना करके उसके द्वारा—संसारके भोग-पदार्थोंको 'मेरे' के घेरेमें लाकर जीवनको निर्बाध—विघ्नरहित तथा प्रचुर सुविधाओं एवं सहायकोंसे समन्वित बनाना चाहते हो, यह तुम्हारी भूल है। संसारके जितने ही अधिक प्राणी-पदार्थ तुम्हारे 'मेरे' के घेरेमें आयेंगे, उतना ही तुम बाधाओं और विघ्नोंसे घिर जाओगे, उतनी ही तुम्हारी सुख-सुविधाएँ छिन जायँगी एवं उतना ही तुम चारों ओरसे मानो सर्वस्व लूटनेवाले शत्रुओंसे घिरा अपनेको पाओगे। कितना मोह है—जो मनुष्य विघ्ननाशके लिये बार-बार नये-नये विघ्नोंको बुलाता है और जीवनको अधिकाधिक विघ्नसंकुल बनाकर अपने ही अज्ञानसे आप दुखी होता है।

याद रखो—'ममताकी मुहर' लगाने योग्य कोई वस्तु है तो वह बस एकमात्र तुम्हारा अपना स्वरूप—आत्मा है अथवा तुम्हारे नित्य अकारण सुहृद्, सदा सहज सहायता करनेवाले भगवान्‌के श्रीचरणकमल हैं। उनमें ममता करो, एकमात्र उनको 'मेरा' बना लो। इन सुखकी मोहक पोशाक पहनकर आनेवाले दुःखोंमें—अमृतका मीठा स्वाद बनाकर आनेवाले महान् विषमें और अपनत्वकी नक़ाब लगाकर आनेवाले वैरियोंमें कभी ममता मत रखो—इन्हें 'मेरा' मानो ही मत। जगत्‌के समस्त प्राणी-पदार्थोंसे ममता हटाकर एकमात्र भगवान्‌के चरणकमलोंको ही ममताके पात्र बना लो। अपने मनको 'अनन्य ममता' की सुमोहन-सुमधुर-सुकोमल, पर मज़बूत डोरीसे उन श्रीचरणोंमें सदाके लिये बाँध दो। वे सुन्दर चरणकमल कभी न हटेंगे, न छूटेंगे, न मिटेंगे। वे नित्य हैं, सर्वत्र हैं, सुखमय हैं और वास्तवमें वे ही तुम्हारे हैं।

—'शिव'

सत्यका महत्त्व*

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

कीर्तन एक स्वरसे, एक तारसे हो तो भगवान् प्रेमरूपसे आते हैं। मन एकाग्र होकर आनन्दमें डूब जाता है, वहाँ आनन्दरूपमें, प्रेमरूपमें आते हैं। भगवान् चाहे किसी रूपमें मिलें। यह कहना ही नहीं बनता कि हम तो प्रेमरूपमें, शब्दरूपमें या प्रकाशरूपमें नहीं चाहते। हम तो प्रभुसे यही प्रार्थना करते हैं कि चाहे जैसे रूपमें आयें, किंतु हमें यह विश्वास होना चाहिये कि भगवान् आये हैं।

भगवान्‌को मैं बुला सकता तो फिर क्या मेरी यह हालत रहती? केवल एक लाट साहबको बुलानेवालेकी कितनी प्रतिष्ठा होती है? फिर भगवान्‌को बुलानेवालेकी क्या बात है। भगवान् तो प्रेमसे ही दर्शन देते हैं। क्या बिना साधन भी दर्शन दिला सकते हैं? सुना तो है कि प्रह्लादजीने सब दैत्योंको दर्शन करवा दिये।

भगवान् जिसके अधीन हों, ऐसा पुरुष यदि मिल जाय तो फिर उसे छोड़कर भगवद्दर्शनकी इच्छा रखना मूर्खता है।

कोई भगवान्‌का दर्शन करा दे, ऐसे पुरुषके दर्शन होनेपर भगवद्दर्शनकी कोई आवश्यकता नहीं। वह तो भगवान्‌का भी भगवान् है। फिर तो भगवान् स्वयं ही आयेंगे। बुलानेकी क्या आवश्यकता है? भगवान्‌से कोई मिला सकता है यह तो बहुत दूरकी बात है। उसकी तो बात ही क्या है। ऐसे पुरुषसे ही काम चल सकता है, जो भगवान्‌के अधीन है। बहुतसे लोग कहते हैं कि इनको भगवान्‌के दर्शन हुए हैं। कसौटीपर कसते हैं तो यह निश्चय होता है कि यह महात्मा नहीं, कथनमात्र है।

कोई पुरुष जीवन्मुक्त है, एक कहता है ये तो कृतकृत्य हैं। मैं तो सबसे यही प्रार्थना करता हूँ कि कोई मुझमें ऐसी शक्तिकी कल्पना करे, यह भ्रम है। मुझमें ऐसी योग्यता नहीं और मुझे ऐसा पुरुष संसारमें नहीं दीखता। यदि यह कहो कि हमें तो विश्वास है और मैं कहता हूँ मेरी शक्ति नहीं। फिर मैं झूठा हुआ और आपका झूठपर विश्वास हुआ, फिर असत्य बोलनेवाला ठहरा। इस विषयमें मैं कोई असत्य वचन नहीं बोलता, यदि कोई भाई ऐसा कहे, विश्वास करे तो मैं तो उसे मज़ाक़ समझता हूँ कि वह हँसी करता है। यदि कहो कि हमलोग पात्र नहीं इसलिये छिपाते हैं और छिपाना चाहते हैं। तो यह बात तो असत्य हुई कि हमको तो सत्यका ही पाठ पढ़ना चाहिये। सत्यकी बराबरीकी कोई चीज नहीं। परमात्माका स्वरूप भी सत्य है। जो सत्यवादी है, वहाँ परमेश्वर विराजमान हैं। जिसको सत्यकी प्राप्ति हो गयी, उसे सब मिल गया। कबीरदासजीने कहा है—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप॥

यदि भगवान्‌से मिलना चाहते हो तो प्राणसे बढ़कर सत्यका पालन करो। यदि भगवान् फिर न मिले तो सत्यवादी पुरुषोंसे, महात्माओंसे पूछे कि हमने सत्यकी उपासना की, पर सत्य वस्तु नहीं मिली। महर्षि पतञ्जलिने कहा है—**'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्'** उसका फिर नाश नहीं हो सकता—**'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'** (गीता २। १६) सत्यका कभी नाश नहीं होता। आप कहते हैं कि दर्शन करायें। मैं कहता हूँ मेरी प्रार्थनापर ध्यान दो। शास्त्रोंपर, महात्माओंपर विश्वास करो कि जहाँ सत्य है, वहाँ परमात्मा हैं। सत्य ही परमात्माका स्वरूप है। सत्यका पालन करनेके लिये शास्त्रोंमें कितना जोर है, जितनी बड़ाई की गयी, उतनी ही नहीं वेदोंमें भी सत्यकी बड़ाई है। 'बृहदारण्यक'में कथा है। राजा जनकने यह घोषणा की थी—मैंने जो यह गौएँ खड़ी की हैं, वे सब ब्रह्मवेत्ताओंके लिये हैं। याज्ञवल्क्यजीने सब गौओंको ले जानेकी शिष्योंको आज्ञा दी तो लोग बिगड़ गये—क्या आप ब्रह्मवेत्ता हैं? याज्ञवल्क्यजीने कहा—नहीं, मैं तो ब्रह्मवेत्ताओंको नमस्कार करता हूँ, मुझे गौओंकी आवश्यकता है।

शाकल्यने उनसे प्रश्न किया—यह सब किसमें? उत्तर—ब्रह्ममें। प्रश्न—ब्रह्म किसमें? याज्ञवल्क्य—अतिप्रश्न मत करो, अन्यथा सिर कट जायगा। किंतु शाकल्य नहीं माना और उसका सिर कटकर गिर गया। यह सत्यका प्रताप है। उनमें सत्यता थी, उनको ब्रह्मकी प्राप्ति थी, पर वे नहीं कहते कि मुझे ब्रह्मकी प्राप्ति हुई और न यह कहा कि मुझे नहीं हुई।

सत्यका ही ध्यान, सत्यका ही आचरण, सत्यका ही

* प्रवचन-तिथि वैशाख कृष्ण १५, संवत् १९९१, रात्रि, वटवृक्ष स्वर्गाश्रम।

धारण, सत्यका ही वर्णन हो तो किसी सात-पाँचकी आवश्यकता नहीं। बस एक ही बात हो, सत्य आपके रोम-रोममें रम जाय। सत्यकी उपासना करनी चाहिये। सद्गुण, सदाचार, सद्भाषण, हमारी वाणीमें सत्य, आचरणमें सत्य, सब सत्य ही होना चाहिये। एक सत्यपर ही विशेषरूपसे जोर दिया गया है। भगवान् कैसे, कब, क्यों मिलते हैं, सब सवाल छोड़ दो। केवल एक ही बात कि भगवान् हैं, उनके अस्तित्वका निश्चय कर ले तो फिर उसे भगवान्की प्राप्तिमें कोई शंका नहीं। भगवान् सबका मालिक है। वही सबसे बड़ा, ऊँचा है, यह बात परमेश्वर नामसे स्पष्ट है। इस सारे ब्रह्माण्डका वह मालिक है। वह चाहे जैसा कर सकता है, वह सर्वव्यापी, सर्वज्ञ है। यह पता नहीं कि वह काला है या गोरा है। इसको पता करनेकी आवश्यकता भी नहीं। संसारके मनुष्य भगवान्को हजारों प्रकारसे मानते हैं। प्रकार तो एक ही होना चाहिये, बात तो यही है, परंतु जबतक परमेश्वरके दर्शन नहीं होते, तबतक तो अपने ही मनके अनुसार मानेंगे। वास्तवमें सबका कहना गलत है कि परमेश्वरका स्वरूप ऐसा है। कोई कहे कि यह तो नास्तिक है। बात यह है कि सबका बताना ठीक है और सबका बतलाना गलत है, दोनों बातें ठीक हैं। जो स्वरूप दुनियाको मान्य है, उन्हें प्राप्तिके पहले मानें ही कैसे, जानते ही नहीं। इसलिये सबका मानना ठीक है, क्योंकि वे नहीं जानते। हम चित्र देखते हैं, अनेक रूप मिलते हैं। सच्चा चित्र एक भी नहीं है। कौन देखकर बता सकता है कि यही कृष्णजी हैं। क्या तुमने देखा है? यही बात शिवजी, देवी आदि सबके विषयमें है। कोई कहता है यह तो साकारकी बात है, निराकार ठीक है तो कैसा है? सच्चिदानन्द है। आनन्द जैसे हमको होता है, उसी प्रकार आपको होता है। फिर वह तो भोग्य हो गया। वह बुद्धिगम्य भी नहीं है, बुद्धि जड़ है। आप चाहे कैसा ही रूप मानें, पर आप इयत्ता लगायेंगे कि ऐसा है। जैसा तुमने समझा है प्रभु उससे और विलक्षण हैं। तुम्हारे-जैसे समझनेवालोंको इकट्ठा करें तो सब अलग-अलग वर्णन करेंगे। सबको मिला लिया, उससे भी प्रभु विलक्षण हैं। जैसा वेदोंमें वर्णन है, उससे भी प्रभु विलक्षण हैं। यह सवाल छोड़ दो, वह तो मिलेगा तभी पता लगेगा। आप त्रिशूलका चित्र बना लो और उसे सर्वोपरि ईश्वर समझो और सर्वव्यापी, सर्वज्ञ मान लो, यह बात मान लो कि वह मनुष्योंसे भी श्रेष्ठ है। उसका नाम पुरुषोत्तम है।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

(गीता १५। १८)

मैं नाशवान् जडवर्ग-क्षेत्रसे तो सर्वथा अतीत हूँ और अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोकमें और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ।

क्षर तो नाशवान् पदार्थ है, उससे वह अतीत है। पाँचों क्लेश अविद्या, अस्मिता आदि ईश्वरमें नहीं हैं। न शुक्ल और कृष्ण कर्म हैं। ईश्वर पाप-पुण्यसे रहित, उसके फलसे भी रहित, अतिशय ज्ञानस्वरूप है। बस इतना ही मान लो कि है और न्यायकारी है। ईश्वर है, न्यायकर्ता है, वह सबसे बढ़कर है, उससे बढ़कर कोई नहीं। ऐसे मान ले तो फिर उसे परमेश्वरकी प्राप्ति हो जायगी। पापका फल दुःख मिलेगा, यह जानते हो, फिर भी पाप करते हो। ईश्वरकी सत्ता सब जगह है। ईश्वर सर्वव्यापी है, जो पाप करते हो उसे ईश्वर देखता है कि नहीं। देखता है तो दण्ड देगा ही।

यहाँ सरकारका राज्य है। यहाँ गङ्गा किनारे न कोई हाकिम है न कोई और है, परंतु सरकारके विरुद्ध कार्य करे तो दण्ड मिलेगा। सरकारकी सत्ता है, यद्यपि यहाँ कोई सरकारी अधिकारी उपस्थित नहीं है, तब भी उसके विपरीत कार्य नहीं करते। कर भी सकते हैं और न पकड़े जानेपर बच भी सकते हैं, परंतु भगवान्के राज्यमें किसी प्रकारकी भी गुंजाइश नहीं है, धोखा नहीं दे सकते। हम रास्तेमें जा रहे हैं, पेशाब करने बैठे। पुलिसवालेने पूछा—क्या करता है? पैसे गिर गये, वही देख रहा हूँ। पेशाब किसने किया? झूठ भी कहा और घूस देकर पिण्ड छुड़ाया। एक झूठके लिये महाराज युधिष्ठिरको भी कल्पित नरक दिखाया गया था तो फिर हमेशा झूठ बोलनेवालेका क्या होगा? ईश्वरपर दो-चार गुणोंका विश्वास हो जाना चाहिये कि वह सर्वव्यापी है, सर्वज्ञ है, सच्चा है, उसका कभी नाश नहीं होता। जो इस प्रकार जान गया उसकी पहचान यह है कि उसके सब काम सत्य होंगे, संकल्प, क्रिया, कर्म, सब सत्यस्वरूप हो जायँगे। यह बात समझ लेनी चाहिये। इस प्रकार समझ लेनेपर उसमें कोई अवगुण नहीं रह सकते। उसकी सब क्रिया सत्य हो जायगी, वाणी सत्य हो जायगी।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(गीता १७। १५)

जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं

यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है—वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।

युधिष्ठिरका रथ सत्यके प्रभावसे पृथ्वीसे ऊँचा चलता था, वह अब पृथ्वीपर चलने लगा। उसका फल कल्पित नरक हुआ, अर्द्ध सत्य कहा। जिसमें कपट हो, हिंसा हो, वह सत्य सत्य नहीं। जिस सत्यके लिये अपना गला कट जाय तो भी परवाह नहीं, वह सत्य सत्य है। प्राणसे बढ़कर सत्यको मान ले तो फिर मरनेकी भी नौबत नहीं आयेगी। वर्तमानमें देखो तो सही, भाई लोग बिना कारण ही हँसी-मज़ाक़में ही झूठ बोलते हैं। पैसोंके लिये, क्रोधवश तो करते ही हैं पर बिना ही कारण झूठ बोलते हैं। एक सत्यके ही पालनसे सब काम हो जाते हैं। मेरेमें दर्शन करानेकी शक्ति नहीं है। पर मैं यह कहता हूँ कि सत्यका महत्त्व शास्त्रोंमें बहुत उच्च बतलाया है, जो भाई सत्यका सेवन करेगा, उसे अवश्य परमेश्वरकी प्राप्ति हो जायगी। भगवान‍्के राज्यमें इतना तो आपको मान ही लेना चाहिये कि यह जो कहता है वह सत्य है। मैं यह नहीं कहता कि मेरी बात मान लो, पर शास्त्र और संत-महात्मा यही कह रहे हैं। मैं धोखा नहीं देता, प्रामाणिक बात कहता हूँ, महात्माओंकी, शास्त्रोंकी, भगवान‍्की बात कहता हूँ, शास्त्रोंका निचोड़ कहता हूँ। भगवान् कहते हैं—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २। १६)

असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत‍्का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है।

आपने ऋषि, मुनि, शास्त्रोंका विश्वास किया। एक ही बात सत्य ही परमेश्वरका नाम है, सत्यका जप करना चाहिये, सत्य ही उसका स्वरूप है, उसीका ध्यान करना चाहिये, उसीका भाषण करना चाहिये। वास्तवमें मैं उसे ही अपना प्रेमी समझूँगा जो आजसे झूठ नहीं बोलेगा।

लोभका दुष्परिणाम

प्राचीन कालमें सृञ्जय नामक एक नरेश थे। उनके कोई पुत्र नहीं था, केवल एक कन्या थी। पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी सेवा प्रारम्भ की। राजाके दान एवं सम्मानसे संतुष्ट होकर ब्राह्मणोंने देवर्षि नारदसे राजाको पुत्र होनेकी प्रार्थना की। उन दिनों देवर्षि राजा सृञ्जयके ही अतिथि थे। ब्राह्मणोंकी प्रार्थनासे द्रवित होकर देवर्षिने राजासे कहा—'तुम कैसा पुत्र चाहते हो?'

अब राजा सृञ्जयके मनमें लोभ आया। उन्होंने प्रार्थना की—'आप मुझे ऐसा पुत्र होनेका वरदान दें जो सुन्दर हो, स्वस्थ हो, गुणवान् हो तथा उसके मल-मूत्र, थूक-क़फ़ आदि स्वर्णमय हों।'

देवर्षिने कुछ सोचकर 'एवमस्तु' कह दिया। उनके वरदानके अनुसार राजाको थोड़े ही दिनमें पुत्र प्राप्त हुआ। उस पुत्रका नाम राजाने सुवर्णष्ठीवी रखा। अब सृञ्जयके धनका क्या ठिकाना था! उनके पुत्रका थूक तथा मल-मूत्र—सभी स्वर्ण होता था। राजाने अपने राजभवनके सब पात्र, आसन आदि स्वर्णके बनवा लिये। इसके अनन्तर उन्होंने पूरा राजभवन ही स्वर्णका बनवाया। उसमें दीवाल, खंभे, छत तथा भूमि आदि सब सोनेकी थीं।

राजाके पुत्र सुवर्णष्ठीवीका समाचार सारे देशमें फैल गया। दूर-दूरसे लोग उसे देखने आने लगे। डाकुओंने भी यह समाचार पाया। उनके अनेक दल परस्पर मिलकर उस राजकुमारको हरण करनेका प्रयत्न करने लगे। अवसर पाकर एक रात दस्यु राजभवनमें घुस आये और राजकुमारको उठा ले गये।

वनमें पहुँचनेपर दस्युओंमें विवाद हो गया। अधिक समयतक राजकुमारको जीवित छिपाये रखना अत्यन्त कठिन था। सबने निश्चय किया कि सुवर्णष्ठीवीको मारकर जो स्वर्ण मिले, उसे परस्पर बाँट लिया जाय। उन निर्दय दस्युओंने राजकुमारके टुकड़े-टुकड़े कर डाले; किंतु उसके शरीरसे उन्हें एक रत्ती भी सोना नहीं मिला।

लोभके वश होकर राजा सृञ्जयने ऐसा पुत्र माँगा कि उसकी रक्षा अशक्य हो गयी। उन्हें पुत्रशोक सहन करना पड़ा। लोभवश डाकुओंने राजकुमारकी हत्या की। केवल राजकोपके भाजन ही नहीं, वे पापभागी भी हुए। लाभ उन्हें कुछ भी नहीं हुआ। (महाभारत, द्रोण० ५५)

अपनेको जानो

(डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत)

एक राजा मरुस्थलमें अकेला भटक गया। प्याससे व्याकुल होकर धरतीपर गिरकर वह छटपटाकर कहने लगा—'पानी! पानी!! पानी!!!' संयोगवश एक महात्मा उधरसे निकले। पानी-पानीकी आवाज सुनकर महात्माने कमण्डलुका आधा जल उसके मुखमें डाल दिया, जिससे वह स्वस्थ हो गया। राजाने निवेदन किया—'महात्माजी! मैं अपना आधा राज्य आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ, क्योंकि प्याससे छटपटाते समय मैंने ऐसा ही संकल्प किया था।'

महात्माजीने प्रसन्नमुद्रामें राजासे पूछा—'अच्छा राजन्! यह बतलाओ कि यदि अब तुम्हें जलसे अपच हो जाय और लघुशंका न हो तथा मरणासन्न हो जाओ तो चिकित्सा करके नीरोग करनेवालेको क्या दोगे?'

राजाने कहा—'भगवन्! बचा हुआ आधा राज्य भी अपने उस प्राणरक्षकको अर्पित कर दूँगा।'

महात्मा बोले—'इसका अर्थ है कि तुम्हारे समस्त राज्यका मूल्य मात्र आधा कमण्डलु जल है। ऐसा राज्य लेकर मैं क्या करूँगा? राज्यसे भी मूल्यवान् है यह जीवन, जिसके लिये शेष आधा राज्य भी तुम देनेको तैयार हो गये हो। इसलिये जीवनको ही सफल बनाओ।' (परमार्थ)

वास्तवमें जीवन अमूल्य है, यह अनमोल है। अतः इसे जानकर इसका सदुपयोग करना चाहिये।

वेदान्तका संदेश है—**'आत्मानं विद्धि'** अपनेको जानो। अपनेको जान लेना ही जीवनकी सफलताका रहस्य है। जो अपनेको जान लेता है, आत्मतत्त्वको पहचान लेता है, उसके लिये यह शरीर एक रथके समान है। 'कठोपनिषद्'में इस शरीर-रथका सुन्दर विवेचन हुआ है। परमात्मप्राप्तिके उपायका वर्णन करते हुए यमराज नचिकेतासे कहते हैं—

आत्मानꣳ रथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

(१।३।३-४)

अर्थात् हे नचिकेता! तुम जीवात्माको रथका स्वामी, शरीरको रथ, बुद्धिको सारथि तथा मनको ही लगाम समझो। रथीके ज्ञानयुक्त होनेपर इन्द्रियोंके बलवान् घोड़े कभी विपथगामी नहीं होते, अपितु उस मार्गपर ले चलते हैं जो परमात्मासे मिलानेवाला है। यह मार्ग है—उपासनाका, वेदतत्त्व ओंकारस्वरूप भगवान् विष्णुकी वन्दनाका। इस मार्गके पथिकका जप निरन्तर इस प्रकार चलता रहता है—

नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिदं जगत्।
ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः॥
यत्रोतमेतत्प्रोतं च विश्वमक्षरमव्ययम्।
आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः॥
ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः।
यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः॥

(वि०पु० १।१९।८२—८४)

अर्थात् यह जगत् जिनका अभिन्न स्वरूप है, उन भगवान् श्रीविष्णुको नमस्कार है। वे जगत्के आदिकारण और योगियोंके ध्येय, अव्यय, हरि मुझपर प्रसन्न हों। जिनमें यह सम्पूर्ण विश्व ओत-प्रोत है, वे अक्षर, अव्यय और सबके आधारभूत हरि मुझपर प्रसन्न हों। जिनमें सब कुछ स्थित है, जिनसे सब उत्पन्न हुआ है और जो स्वयं सब कुछ तथा सबके आधार हैं, उन वेदतत्त्व ॐकारस्वरूप भगवान् श्रीविष्णुको नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है।

ऐसा विवेकशील व्यक्ति **'तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते'** (कठोपनिषद् १।३।८) उस परम धामको प्राप्त कर लेता है, जहाँसे फिर लौटना नहीं होता। परम धामको प्राप्त कर लेना ही मोक्ष है। ऐसा व्यक्ति जो परब्रह्म परमात्माको जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है—**'स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति'** (मुण्डकोपनिषद् ३।२।९)। वह **'विमुक्तोऽमृतो भवति'** यानी हृदयमें स्थित सब प्रकारके संशय, विपर्यय, देहाभिमान तथा विषयासक्ति आदि ग्रन्थियोंसे छूटकर अमर हो जाता है।

—इस अवस्थाको प्राप्त करनेके लिये कठोर साधना अपेक्षित है। यह साधना तब बन पड़ेगी जब शरीर हृष्ट-पुष्ट होगा और तेजस्विता, ओजस्विता तथा वर्चस्वितासे युक्त होगा। कहा गया है—**'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** धर्मका

प्रथम साधन शरीर है। इसीलिये यजुर्वेद (३। १७)-में प्रार्थना की गयी है—

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण॥

अर्थात् हे अग्नि! तू शरीरकी रक्षा करनेवाला है, मेरे शरीरकी रक्षा कर। हे अग्नि! तू आयुका प्रदाता है, मुझे (दीर्घ) आयु प्रदान कर। हे अग्नि! तू वर्चस्वका प्रदाता है, मुझे वर्चस् प्रदान कर तथा हे अग्नि! मेरे शरीरमें जो कमी है, उसकी पूर्ति कर।

मानव-शरीरके समान उपयोगी दूसरा साधन नहीं, जो जीवन-लक्ष्यका उद्बोधन करा सके। यह एक ऐसा जीवन है, जिससे नर नारायणको प्राप्त कर सकता है। इसीलिये कहा गया है कि नारायणको प्राप्त करनेके लिये नर-देहकी प्राप्ति एक सोपान है। संत एकनाथ भावविभोर होकर गाया करते थे—*'नवदेहा चे नि जाने, सच्चिदानन्द पदवी घेंग, ये बढ़ी अधिकार नारायणे कृपावलोकने दीघला'* परमात्माने मनुष्यको कृपापूर्वक यह अधिकार दिया है कि ज्ञानके द्वारा वह इसी नर-देहसे सच्चिदानन्दको प्राप्त कर सके।

सच्चिदानन्दतक पहुँचनेके तीन मार्ग हैं—ज्ञान, भक्ति तथा कर्म। इनमें भक्तिमार्ग अत्यन्त सरल तथा सर्वसुलभ साधन है। तुलसीदासजीके राम कहते हैं—

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥

(रा०च०मा० ७। ४५। १-२)

इस मार्गपर चलता हुआ व्यक्ति अपने लक्ष्यतक आसानीसे पहुँच जाता है। इसीलिये तुलसीदासजी इसे 'चिन्तामणि' की अनुरूपता प्रदान करते हुए लिखते हैं—

राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥
पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥

(रा०च०मा० ७। १२०। २—१५)

काकभुशुण्डिका गरुडके प्रति यह कथन जहाँ *'भगति मनि'* की उपलब्धताका माध्यम सुनिश्चित करता है, वहीं उसकी 'प्रभुताई' को भी अपने पूर्ण वैभवके साथ व्यञ्जित करता है।

यह भक्ति नौ प्रकारकी मानी गयी है। 'श्रीमद्भागवत' में प्रह्लाद अपने पितासे इसके नवधा स्वरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

अर्थात् श्रीविष्णुका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य एवं आत्म-निवेदन अर्थात् अपना सर्वस्व समर्पण भक्तिके ये नौ रूप हैं। इनमेंसे प्रत्येकके अद्भुत उदाहरण हमारे सम्मुख हैं—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥

श्रीविष्णुके श्रवणमें परीक्षित्, कीर्तनमें श्रीशुकदेवजी, स्मरणमें भक्त प्रह्लाद, पादसेवनमें लक्ष्मीजी, पूजनमें महाराज पृथु, वन्दनमें अक्रूर, दास्यमें हनुमान्‌जी, सखाभावमें अर्जुन एवं सम्पूर्ण आत्मनिवेदनमें महादानी बलि हुए। इन श्रेष्ठ पुरुषोंको श्रीकृष्णकी प्राप्ति हुई।

इस भक्तिमार्गमें सबसे बड़ा बाधक है अहंकार। इसी अहंकारके कारण सारी साधना निष्फल हो जाती है। एक मुसलमान फकीर हाजी मुहम्मदके जीवनकी एक घटना है। वे साठ बार हज कर आये थे और प्रतिदिन नियमपूर्वक पाँचों वक्तकी नमाज़ पढ़ते थे। एक दिन हाजी साहबने सपनेमें देखा—'स्वर्गीय दूत बेंत हाथमें लेकर स्वर्ग और नरकके बीच खड़ा है। जो भी यात्री आता है, उसके भले-बुरे कर्मोंका परिचय जानकर वह किसीको स्वर्ग और किसीको नरकमें भेज रहा है। हाजी मुहम्मद जब इसके सामने आये तब दूतने पूछा—

'तुम किस सत्कार्यके फलस्वरूप स्वर्गमें जाना चाहते हो?' उत्तरमें हाजी साहबने कहा—'मैंने साठ बार हज किया है।' स्वर्गीय दूत बोला—'यह तो सत्य है, परंतु जब कोई तुमसे तुम्हारा नाम पूछता तो तुम गर्वके साथ बोलते हो—'मैं हाजी मुहम्मद हूँ।' इस गर्वके कारण तुम्हारा साठ बार हज करनेका पुण्य नष्ट हो गया। तुम्हारा और कोई पुण्य हो तो बताओ?'

हाजी साहबका, जो अपनेको सहज ही स्वर्गका अधिकारी मानते थे, मुँह उतर गया। उन्होंने काँपते हुए स्वर्गीय दूतसे कहा—'मैंने साठ वर्षतक नित्य-नियमित रूपसे प्रतिदिन पाँचों वक्त नमाज़ पढ़ी।' स्वर्गीय दूतने कहा—'तुम्हारी वह पुण्यकी ढेरी भी नष्ट हो गयी।'

हाजी मुहम्मदने काँपते-काँपते पूछा—'सो कैसे? मेरे किस अपराधसे यह तप नष्ट हो गया?'

स्वर्गीय दूतने कहा—'एक दिन बाहरसे बहुत-से धर्मजिज्ञासु तुम्हारे पास आये थे। उस दिन उनके सामने, उन लोगोंको दिखानेके लिये तुमने दूसरे दिनोंकी अपेक्षा अधिक देरतक नमाज़ पढ़ी थी। इस लोक-दिखाऊ भावके कारण तुम्हारी साठ वर्षकी तपस्या नष्ट हो गयी।' (परमार्थ, बोधकथा)

हाजी मुहम्मदके जीवनकी इस घटनाके समान हमारे रोजके जीवनमें भी ऐसे अवसर आते हैं, जहाँ हमारा अहंकार हमारे रास्तेमें रोड़ा अटकाता रहता है। यह घटना इस बातपर बल देती है कि अहंकार तथा प्रदर्शनसे पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

वास्तवमें यह अहंकार एक ऐसी दीवार है, जो 'दीदार' में बाधक है। प्रियतम सामने खड़ा है फिर भी हम उसके दर्शन नहीं कर पा रहे हैं। हमने अपनी आँखें ही बंद कर रखी हैं और शिकायत कर रहे हैं कि वह दिखायी नहीं देता। सच तो यह है कि—

न कोई पर्दा है उसके दरपर, न रूये रोशन नकाबमें है।
तू आप अपनी खुदीसे ऐ दिल, हिजाबमें था हिजाबमें है।

और यह उद्घोष—

रोशन है मेरे जलवे हर एक शै में लेकिन।
है चश्म कोर तेरी क्या है कुसूर मेरा॥

—अंदरकी आँखें खोलनेकी प्रेरणा प्रदान करता है। तुलसीदासजी जब लिखते हैं—*'अस मानस मानस चख चाही'* तो इसके मूलमें भी यही प्रेरणा विद्यमान है।

भक्ति करनेके लिये किसी विशेष साधनकी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है केवल भावना बदलनेकी। जो भी कर्म हम करते हैं, 'मैं' और 'मेरे लिये' न होकर ईश्वर और ईश्वरके लिये हों। भगवान् शङ्कराचार्य 'शिवमानसपूजा' श्लोक (४)-में कहते हैं—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

हे शम्भो! मेरी आत्मा तुम हो, बुद्धि पार्वती हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपका मन्दिर है, सम्पूर्ण विषयभोगकी रचना आपकी पूजा है, निद्रा समाधि है, मेरा चलना-फिरना आपकी परिक्रमा है तथा सम्पूर्ण शब्द आपके स्तोत्र हैं; इस प्रकार मैं जो-जो भी कर्म करता हूँ, वह सब आपकी आराधना ही है।

ऐसी स्थितिमें हमारा यह प्रयत्न होना चाहिये कि हम जो भी कार्य करें, भगवान्‌की प्रीतिके लिये ही करें और इस बातका सदा ध्यान रखें कि जिस कार्यमें किसी भी प्राणीका अहित है, वह कार्य भगवान्‌की प्रीतिके लिये नहीं हो सकता।

'नीतिशतक' (श्लोक २६)-में मनुष्यके कल्याणका जो मार्ग बतलाया गया है, वह सार्वदेशिक तथा सार्व-कालिक है—

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।
तृष्णास्रोतोविभंगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः॥

जीव-हिंसा न करना, पराया धन हरण करनेसे मनको रोकना, सत्य बोलना, समयपर सामर्थ्यानुसार दान करना, परस्त्रियोंकी चर्चा न करना और न सुनना, तृष्णाके प्रवाहको तोड़ना, गुरुजनोंके आगे नम्र रहना और सब प्राणियोंपर दया करना—ये सब सामान्यतया सब शास्त्रोंके मतसे मनुष्यके कल्याणकारी मार्ग हैं। अतः कल्याणमार्गका पथिक बनते हुए स्वयंको पहचाननेका—आत्मतत्त्वको जाननेका प्रयत्न अविलम्ब ही कर लेना चाहिये; क्योंकि मृत्यु किस घड़ी आकर सामने खड़ी हो जाय, यह कोई नहीं जानता।

रासलीला-चिन्तन*

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ०-सं० ५६८ से आगे]

प्रियतम एक भगवान् ही हैं और संसारमें कोई प्रियतम, कान्त आदि है नहीं। हमलोगोंने न जाने किस-किसको कान्त बना रखा है। स्त्रियोंके ही नहीं, पुरुषोंके भी कान्त होते हैं। गोपियाँ असली कान्तके पास जा पहुँचीं। ये एक-एक अलग-अलग गयीं। प्रश्न हुआ कि ये घरके काम सहेज करके गयी होंगी कि वैसे ही गयीं। आप कहते हैं कि ऐसे ही भाग गयीं तो कैसे ऐसे भाग गयीं? कहा कि ये **'कृष्णगृहीतमानसाः'** थीं, मुरलीकी ध्वनि सुनते ही भागीं। भागी क्यों? **'समुत्सुकाः'**—वे श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये उत्सुक थीं। यही साधकका रूप होता है। ये जो उनके विशेषण हैं—**'कृष्णगृहीतमानसाः और समुत्सुकाः'**—ये बताते हैं उनकी स्थितिको। **'समुत्सुकाः'**—ये उतनी उत्सुक थीं भगवान्से मिलनेके लिये कि जहाँ मिलनेकी बात किसी भी रूपमें आयी कि इनको और कुछ सूझा ही नहीं। क्या किया? अब स्थिति बताते हैं—**'दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः'** (श्रीमद्भागवत १०।२९।५)। कुछ गोपियाँ गाय दुह रही थीं। थन हाथमें, दूध दुह रही हैं, नीचे बर्तन रखा है और मुरलीकी ध्वनि कानमें आयी तो वे दुहना छोड़ करके भागीं। कहाँ भागीं? जिधरसे वह वेणुनाद आया था। उस वेणुनादकी ओर लक्ष्य करके भागीं। यह थी दुहनेवालोंकी दशा और कुछ गोपियाँ दूध दुह लायी थीं तो उन्होंने दूधको चूल्हेपर रख दिया था औटानेके लिये और जहाँ यह आह्वान आया तो अब औटाये कौन? जैसे वे दुहना छोड़कर भागीं, वैसे ही ये भी भागीं चाहे दूध चूल्हेपर उफनकर गिर जाय।

जबतक जगत्की स्मृति रहती है तबतक हम भगवान्का आह्वान नहीं सुनते। ज्यों ही भगवान्का आह्वान सुना तो सुनते ही जगत्की स्मृति भूल गया। साधनाका यह ऊँचा स्तर है। जगत्को याद रखते हुए हम जो भगवान्की ओर जाते हैं तो हम भगवान्की ओर नहीं जाते बल्कि भगवान्का नाम लेकर हम जगत्में रमते हैं। उसी जगत्में रमते हैं क्योंकि उसीको स्मृतिमें रखते हैं। जहाँ भगवान्का आह्वान सुनायी दिया तो जगत् भूल गया। दूध दुहती हुई गोपियाँ दुहना भूल गयीं और दूध भूल गयीं चूल्हेपर। कुछ गोपियाँ और काम कर रही थीं। कुछ हलवा बना रही थीं अपने घरवालोंके लिये, उसको उतारे बिना ही चल दीं। उतारनेका होश रहता तब न उतारतीं, बिना उतारे ही भाग गयीं। यह साधककी स्थिति होती है। जब साधक भगवान्का आह्वान सुनता है तो वह जगत्की ओर नहीं देखता। बुद्धने नहीं देखा, जो प्रेमके साधक रहे। जरा-सा एक बार पुत्रकी ओर देखा फिर मुँह मोड़ लिया, भाग गये। इस प्रकारसे हलवेको चूल्हेसे उतारे बिना ही भाग गयीं। बोले—यह तो अपना काम था, कोई दूसरेका काम कर रही हो तो? **'परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा'**—जो घरवालोंको भोजन परोस रही थीं, वे ऐसा कैसे कर सकती थीं? सभ्यता तो यही होती कि परोसनेका काम पूरा करके जातीं, पर पूरा करे कौन? सब **'कृष्णगृहीतमानसाः'** और **'समुत्सुकाः'** थीं। वह तो दूसरा काम पूरा करनेके लिये चलीं। खैर, यह कोई बात नहीं। बच्चे बड़े प्यारे होते हैं। कोई-कोई बच्चोंको दूध पिला रही थीं—**'पाययन्त्यः शिशून् पयः'**—शिशुओंको दूध पिलाती हुई भी छोड़कर भाग गयीं। शिशु रोते रहे और **'शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिद्'**—कुछ अपने पतियोंकी सेवा कर रही थीं, वे भी भाग गयीं। अब इसका उलटा अर्थ जो ले लेगा वह धूलमें जायगा। यह लौकिक अर्थ नहीं है। यह परम उच्च साधनाकी बात है। जहाँ जगत् नहीं रहता है। इसलिये इसमें आगे बात आयी है। 'रासपञ्चाध्यायी' पढ़े तो समझमें आयेगा कि भगवान्ने पतियोंकी बात याद दिलायी जो साधारण स्त्रियोंके लिये होती है।

कुछ गोपियाँ खाना खा रही थीं। इतना स्वार्थ होता है कि आदमी सोचता कि खा लें तो चलें।

* शरत्पूर्णिमापर दिया गया एक प्रवचन।

'अश्नन्त्योऽपास्यभोजनम्'—कई भोजन कर रही थीं। थाली पड़ी रही वहींपर **'लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्याः'**—कुछ अङ्गराग लगा रही थीं और कुछ उबटन लगाकर नहा रही थीं और कुछ उबटन लगा चुकी थीं और नहाना था उनका उबटन लगा ही रह गया और छोड़कर चल दीं। कुछ नेत्रोंमें अञ्जन लगा रही थीं। **'अञ्जन्त्यः काश्च लोचने'**—एक आँखमें काजल लगा ली और दूसरी वैसे ही रह गयी और कुछ—**'व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः'** (१०।२९।७)—पहन रही थीं चोली और सोचा कि ओढ़नी है तो उसको सिरपर डाल लिया। उलटे कपड़े पहन लिये और हाथका गहना पैरमें पहन लिया। कानका गहना अँगुलीमें डाल दिया। पता ही नहीं रहा कि यह गहना क्या है? बस! उलटे-सीधे कपड़े पहन लिये। विचित्र श्रृंगार हो गया। जहाँतक अपना श्रृंगार दीखता है, वहाँतक श्रृंगारका दासत्व है, श्रृंगारकी गुलामी है और जब भगवान्का आह्वान होता है तो यहाँके श्रृंगारका फिर वहाँपर कोई मूल्य नहीं रहता। यह सारा श्रृंगार बिगड़कर वहाँका श्रृंगार बनता है।

महाभागा गोपियोंके लिये एक शब्द और आया है, वह शब्द **'कृष्णगृहीतमानसाः'** जैसा ही है—**'गोविन्दापहृतात्मानः'** अर्थात् गोविन्दने इनके अन्तःकरणका हरण कर लिया था। ऐसा कभी सौभाग्य हो कि हमारे मनको भी भगवान् हरण कर लें, चुरा लें। वे क्यों चुरा लें? यहाँ बस, यही एक समझनेकी बात है। हम यह कामना करें, इच्छा करें कि हमारा मन गोविन्द ले जायँ, पर जब हम गोविन्दके लिये मनको खाली करेंगे तभी तो ऐसा होगा। मनमें भरा हुआ बोझा कौन उठाकर ले जायगा? भगवान् कहते हैं हम तो मनको हरण करके ले जायँगे, चोरी करके ले जायँगे, पर तुम अपने मनको जगत्से खाली तो करो। उसमें कूड़ा-करकट भर रहे हो उसे निकाल दो। गोपियोंने सब कुछ अपने मनसे निकाल दिया था। इसलिये उनके मनको गोविन्द हरकर ले गये। **'गोविन्दापहृतात्मानः'**, **'कृष्णगृहीतमानसाः'**, **'समुत्सुकाः'**—ये इनके नाम हैं।

इसी परम त्यागकी परम ऊँची जो समर्पणकी लीला है, उसमें अपनेमें ही लीला होती है वहाँ दूसरे और कोई नहीं हैं। ये खाली लोगोंको दिखानेके लिये ही दो बने हैं लेकिन हैं एक ही। श्रीकृष्ण अपने-आप ही लीला करते हैं, पर इसमें यह दिखलाया है कि जो भगवान्की ओर जाना चाहता है, उस साधकमें ऊँचे-से-ऊँचा त्याग होना चाहिये। यह उलटी बात है कि लोग देखते हैं कि इसमें भोग-ही-भोग है, पर इसमें तो केवल त्याग-ही-त्याग है। इसमें कहीं भोग है ही नहीं। यह तो त्यागसे ही आरम्भ होता है और त्यागमें ही इसकी पराकाष्ठा है। सारा-का-सारा त्याग श्रीकृष्णके सुखमें जाकर विलीन हो गया। गोपियोंका जीवन, उनकी क्रिया, उनके सारे काम, उनकी कुल चेष्टाएँ श्रीकृष्णमें जाकर विलीन हो गयीं। इस प्रकारका था उनका त्यागमय जीवन।

अगर किसीको गोपी बनना हो तब तीन बातें करनी होंगी। साड़ी, लहँगा नहीं मँगाना है। हम सब गोपी बन सकते हैं—

पहली बात—अपने मनसे जगत्को निकाल देना।

दूसरी बात—भगवान्को देनेके लिये मनको तैयार कर देना।

तीसरी बात—किसी भी कारणसे, किसी भी हेतुको लेकर कहींपर भी अटकनेकी भावना न करना।

जहाँतक हमारे मनमें विषय भरे हैं, वहाँतक विषयोंको निकालकर भी अगर हम ज्ञान-विज्ञानकी ओर जाते हैं तो भगवान्को अपना मन देना नहीं चाहते हैं। वहाँ भी भगवान् मन नहीं लेते हैं। मन अमन हो जाता है, मन मर जाता है, मिट जाता है पर मन भगवान्का नहीं होता है और तीसरी बात जो सबके लिये आवश्यक है—अटकना। यह अटकना गोपीमें नहीं है। वह कहीं भी अटकी नहीं। न गहनोंने अटकाया, न कपड़ोंने अटकाया, न भोजनने अटकाया, न घरवालोंने अटकाया। एकको अटकाया तो वह पहले वहाँ पहुँच गयी—

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।९)

परीक्षित्! उस समय कुछ गोपियाँ घरोंके भीतर थीं। उन्हें बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब उन्होंने अपने

नेत्र मूँद लिये और बड़ी तन्मयतासे श्रीकृष्णके सौन्दर्य, माधुर्य और लीलाओंका ध्यान करने लगीं।

किसीको रोका तो वह पहले पहुँच गयी। प्राणोंको देकर गयी। मतलब यह है कि आजकी जो शरत्पूर्णिमाकी रात्रि है यह ऊँची बातोंको छोड़ दें बस, इतनी बात कि यह साधनाके लिये बड़े ऊँचे आदर्शको बतलानेवाली रात्रि है। इस दिन साधनाकी परिपूर्णताका जो परम फल होता है उसे प्राप्त किया श्रीगोपाङ्गनाओंने। बड़ी विलक्षण बात इसमें यह है कि पहले गोपियोंने अपने हृदयमें जिस विशुद्ध प्रेमामृतको भर रखा था, उस प्रेमामृतकी आकांक्षा भगवान्‌को हो गयी। उस निष्काममें, परम अकाममें, पूर्णकाममें उस पवित्र मधुर प्रेम—रसास्वादनकी इच्छा उत्पन्न हो गयी। भगवान्‌को सुख देने गयी थीं, सुख लेने नहीं। यह सार है।

जहाँतक हम भगवान्‌के द्वारा सुख चाहते हैं, वहाँतक हम भगवान्‌के भक्त नहीं हैं। एक प्रेमी ही ऐसा है और कोई ऐसा नहीं है। बड़े-बड़े भक्त भी भगवान्‌से सुख चाहते हैं कि भाई! हम समीप ही रहें आपके। आपके लोकको प्राप्त कर लें। सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सार्ष्टि—यह प्राप्त कर लें। दर्शन दे दें हमको। प्रेमी भक्त कहते हैं भगवन्! यदि दर्शन देनेसे आपको सुख न होता हो तो दर्शन मत दें। किसी भोग आदिकी तो बात ही नहीं। दर्शन भी यदि आपको सुखकर न हो तो हमें नहीं चाहिये। हमें चाहिये केवल आपका सुख। इस प्रकार भगवान्‌को सुख देनेवाले केवल भगवान्‌को देनेके लिये पैदा होते हैं। केवल प्रेमी देनेवाले होते हैं बाकी सभी लेनेवाले होते हैं। जिज्ञासु साधक जो मुमुक्षु है, वह मोक्ष चाहता है। महाराज! हमको मोक्ष दे दो। छुटकारा मिल जाय बन्धनसे। सकामीकी तो बात ही क्या? और भोग चाहनेवाले तो नरकके कीड़े हैं। उनकी तो बात ही नहीं है।

जो गोपियाँ वहाँपर गयीं वे भगवान्‌को प्रेमामृत देनेके लिये गयीं। जब भगवान्‌को दिया, भगवान्‌को सुखी देखा तो अपनेको परम सुख और भगवान्‌ने उनको सुखी देखा तो भगवान्‌को परम सुख। 'एक-दूसरेको सुखी बनाकर सुखी होना'—इसीका नाम 'रास' है। यह रास नित्य चलता है।

यह जो रासपूर्णिमा है यह त्यागकी पराकाष्ठाका रूप बतानेवाली है, साधकका रूप बतानेवाली है। जो भोगोंमें रहे वह बाधक और जो भोगोंसे हटे वह साधक। जो भोगोंमें रहता है वह अपने-आपको बाधा देता है। सारे भोगोंसे हटकर सारे भोगोंका परित्याग करके भगवान्‌के पवित्र आह्वानपर गोपियाँ अपने-आपको भगवान्‌के श्रीचरणारविन्दमें ले गयीं और वहाँ जाकर भगवान्‌को सुखदान दिया। यह रासका स्वरूप है। ऐसे तो रासकी बड़ी-बड़ी, ऐसी-ऐसी बातें हैं जो बातें कभी चुकती ही नहीं। इसमें बहुत-से ऊँचे दूसरे भाव हैं। जिन भावोंके लिये न तो समय है, न अवकाश है और न पूरी जानकारी ही है।

इसीलिये इतनी बात अपनी जानकारीके लिये, अपने लिये होनी चाहिये कि भगवान्‌के लिये त्याग करें। विषय-भोगका त्याग करें। संसारकी आसक्ति, ममताका त्याग करें। हमारी सारी आसक्ति, सारी ममता भगवान्‌में जाकर लग जाय। इतना हम गोपीभावसे ले लें, इतना हम राससे ले लें तो हमारा जीवन पवित्र हो जाय। फिर रासमण्डलमें तो भगवान् ले जायँगे। वह तो कहीं उनकी इच्छा होगी या श्रीराधारानीकी कहीं कृपा होगी तो वह किसी सखी-मञ्जरीसे कह देंगी अपने लिये तो वह ले जायगी। हम अपने पुरुषार्थसे वहाँ नहीं जा सकते। हमारा पुरुषार्थ जहाँ समाप्त होता है वहाँ प्रेमका पाठ आरम्भ होता है। जहाँ चारों पुरुषार्थोंकी सीमा इधर रह जाती है, वहाँ प्रेमकी सीमाका प्रारम्भ होता है। यह गोपीप्रेम है और रास तो उसका एक प्रत्यक्ष पूर्ण स्वरूप है। पूर्णत: प्रेम तो किसीको कह ही नहीं सकते। कहीं पूर्ण है ही नहीं। यहाँ तो सारा-का-सारा अपूर्ण रहता है। जितना मिला उतना ही थोड़ा। इस प्रेमराज्यमें प्रवेश करनेवालोंके लिये यह गोपियोंका उदाहरण है। श्रीकृष्णमानसा होकर वे श्रीकृष्णके चरणोंमें अपनेको समर्पित कर देती हैं कृष्णको सुखी बनानेके लिये। यह गोपीभाव है। [समाप्त]

श्रीरामचरितमानसमें वर्णित नीति-धर्म

(डॉ० श्रीचन्द्रभूषणलालजी वर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

श्रीरामचरितमानस मूलतः भक्ति-प्रधान काव्य है। यह श्रुति-सिद्धान्तोंका निचोड़ है परंतु साथ ही नीति-शिक्षाका भी एक अनुपम और उत्कृष्ट ग्रन्थ है, जो प्रत्येक दृष्टिसे अपूर्व है। सर्वसाधारणकी रुचि रखते हुए रामकथाके माध्यमसे नीति और युग-धर्मकी सब बातें कह देना ही इसकी अपूर्वता है।

नीति और धर्मका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। नीति या सुनीति वही है जो धर्मानुकूल हो और नीतिपूर्वक किया गया आचरण ही धर्म है। धर्म एक शाश्वत नीतिका नाम है। सनातन हिन्दू-धर्ममें भारतीय संस्कृति और मानव-धर्म दोनोंका मेल है। मानवेतर जीवोंको भी अपने स्वार्थके लिये प्रताड़ित न करना, परोपकारके साथ त्यागपूर्ण जीवन जीना और ऊँच-नीचमें व्यवहार-भेद न करना मानव-धर्मके मूल सिद्धान्त हैं। परिस्थिति, स्थान, काल और प्रवृत्तिके भेदसे कर्तव्यमें भी भेद हो जाया करता है। इसी कर्तव्य-भेदका नाम युग-धर्म है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामको केन्द्रमें रखकर अनेक नीतियों और व्यावहारिक धर्मोंकी चर्चा की है। उन्होंने राज-धर्मकी नीतिका भरत और लक्ष्मणके प्रति, मित्र या सुहृद्की नीतिका सुग्रीवके प्रति, शरण्यता और धर्म-रथकी नीतिका विभीषणके प्रति तथा मानव-धर्मकी नीतिका निषाद, जटायु और शबरीके प्रति सुन्दर वर्णन किया है। नारी-धर्मके विषयमें सती अनसूयाद्वारा सीताजीको उपदेश तो दिया ही गया है, पर चित्रकूटमें पति-अनुगामिनी पुत्रीको तपस्विनीके वेषमें देखकर पिता विदेहका व्यथित हो जाना और फिर सहसा कह उठना—*'पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ'* कितना मार्मिक है। काकभुशुण्डि और गरुडके संवादमें तुलसीदासजीने युग-धर्मका भी विस्तृत वर्णन किया है।

एक वैदेशिक विद्वान् श्रीकामिल बुल्केसे जब पूछा गया कि श्रीरामचरितमानसमें उन्हें सबसे अधिक रुचिकर क्या लगा तो उनका उत्तर था—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

वास्तवमें यही धर्म और नीतिका सार है। गोस्वामीजीद्वारा भिन्न-भिन्न स्थलोंपर दी गयी नीतिकी उक्तियाँ ग्राम-ग्राममें कहावतोंके रूपमें प्रचलित हैं—

यथा—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥
भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥
धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥

(५।४०।६; ४।२३।४; ६।७८।२; २।९५।५)

तुलसीदासजीने धर्मका एक ऐसा स्वरूप सामने रखा है जिसे पालन करनेसे रसकी एक पवित्र अनुभूति हो, आनन्द उत्पन्न हो और आत्मतुष्टि हो। श्रीरामचरितमानस एक आदर्श पुरुषकी, आदर्श सम्बन्धोंकी और आदर्श राज्य-व्यवस्थाकी सुन्दर कथा है। पुरुषकी मर्यादा जहाँतक जा सकती है, वह हमें श्रीरामके चरित्रमें अनायास ही मिल जाती है। श्रीरामका विनयशीलसम्पन्न स्वभाव और माता-पिता-गुरुविषयक भक्तिभाव तथा व्यावहारिक धर्मका दर्शन हमें प्रफुल्लित कर देता है। भरतका चरित्र तो अनुपमेय ही है।

जनकपुरीके समीप आश्रममें श्रीराम गुरु विश्वामित्रजीसे कहते हैं—'हे नाथ! लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं, परंतु संकोचवश आपसे कह नहीं पाते। यदि आपकी आज्ञा हो तो उन्हें नगर दिखाकर तुरंत लौट आऊँ।' मुनीश्वर मुसकराते हैं और कहते हैं—'हे राम! तुम नीतिकी रक्षा कैसे न करोगे? यह सर्वविदित है कि तुम धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाले हो।'

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥

(१।२१८।७-८)

चित्रकूटकी सभामें गुरु वसिष्ठजी कहते हैं—हे सभासदो! हे सुजान भरत! सुनो। श्रीरामका अवतार ही जगत्के कल्याणार्थ हुआ है। नीति और धर्मके यथार्थ तत्त्वको श्रीरामजीके समान और कोई नहीं जानता। अतः

सबको उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये—

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥

(२।२५४।५)

श्रीरामके बाणसे विद्ध बालि उलाहना देते हुए प्रभुसे पूछता है—'हे राम! आपने तो धर्मरक्षार्थ अवतार लिया है, फिर व्याधकी भाँति (छिपकर) मुझे क्यों मारा?' श्रीराम कहते हैं—'रे मूर्ख! सुन, इसमें कुछ भी अनीति नहीं है।' क्योंकि—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥

(४।९।७-८)

समुद्र-तटपर विभीषण कहते हैं—'हे रघुनाथ! यद्यपि आपका एक ही बाण सैकड़ों समुद्रोंको सुखा सकता है, तथापि नीति ऐसी कही गयी है कि पहले प्रार्थना की जाय।' लक्ष्मणजीको यह मत अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—'हे नाथ! दैवसे प्रार्थना करनेसे क्या लाभ? कायर पुरुष ही दैव-दैव पुकारा करते हैं। आप क्रोध करके समुद्रको सुखा डालिये।' श्रीरघुवीर हँसकर बोले—'धैर्य रखो, ऐसा ही होगा।' इसलिये जब तीन दिन बीत जानेपर समुद्र उसी प्रकार लहराता रहा तो भगवान् क्रुद्ध होकर बोले—'भयके बिना प्रीति नहीं होती। लक्ष्मण! मेरा धनुष-बाण तो लाओ।'

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥
लछिमन बान सरासन आनू…।

(५।५७, ५८।१)

युद्धभूमिमें रावणको रथपर और श्रीरामजीको बिना रथके देखकर विभीषण अधीर हो उठे और बोले—'हे नाथ! आपके पास न रथ है, न शरीरकी रक्षाके लिये कवच। आप इस बली रावणको कैसे जीत सकेंगे?' श्रीरामने कहा—'हे सखे! जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य उसके पहिये हैं तथा सत्य, शील उसकी ध्वजा-पताका। बल, विवेक, दम (इन्द्रियोंका दमन) और परोपकार उसके चार घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरीसे रथमें जुड़े हैं। ईश-भजन चतुर सारथि है, वैराग्य ढाल और संतोष तलवार है, दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है एवं श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल मन तरकशके समान है, यम-नियम आदि अनेक बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरुका पूजन अभेद्य कवच है। हे सखे! जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु)-रूपी दुर्जय शत्रुको भी जीत सकता है, रावणकी तो बात ही क्या है!'—

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

(६।८० क)

चित्रकूटमें भरतजीको धर्मका उपदेश देते हुए प्रभु श्रीराम कहते हैं—'हे बन्धु! मेरा और तुम्हारा भी परम धर्म एवं सुयश इसीमें है कि हम दोनों भाई पिताकी आज्ञाका पालन करें'—

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥

(२।३१५।३)

फिर राज-धर्मकी शिक्षा देते हुए वे कहते हैं कि तुम अयोध्या लौटकर प्रजाकी उसी प्रकार रक्षा करो, जिस प्रकार मुख खाने-पीनेको तो अकेला है पर सब अङ्गोंका विवेकपूर्वक पालन-पोषण करता है—

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥

(२।३१५)

भरतकी महिमा तो अपार है। ग्रन्थके प्रारम्भमें ही तुलसीदासजी उनकी वन्दना करते हुए कहते हैं—

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥

(१।१७।३)

देवताओंने भी उनकी प्रशंसा कर कहा कि यदि भरतका जन्म न होता तो पृथ्वीपर सम्पूर्ण धर्मकी धुरीको कौन धारण करता?

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

(२।२३३।१)

चित्रकूट जाते समय मार्गमें सेवक बार-बार कहते हैं—'हे नाथ! आप घोड़ेपर सवार होकर चलिये' किंतु भरतजी कहते हैं कि 'प्रभु श्रीराम इस मार्गपर पैदल

चलकर गये हैं, मैं उनका सेवक हूँ और सेवक-धर्म बड़ा कठिन होता है। मुझे उचित तो यह है कि मैं सिरके बल जाऊँ।'

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥

(२।२०३।७)

चित्रकूटकी सभामें गुरु वसिष्ठजी श्रीरामसे कहते हैं—'हे राम! तुमने सच ही कहा कि भरत मेरी आज्ञाका पालन करेंगे, परंतु भरतके प्रेमने मुझमें विचार ही नहीं रहने दिया। मेरी बुद्धि भरतके वशमें हो गयी है। इसलिये मैं बार-बार कहता हूँ कि भरतके कथनानुसार चलनेमें ही भलाई है। कृपया भरतकी विनती सुनिये—'

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥

(२।२५८)

इस दोहेके दो अर्थ निकलते हैं। पहला तो यह है कि भरतकी विनती सुन उसपर विचार कीजिये। फिर साधुमत, लोकमत, राजनीति और *'निगम निचोरि'* जो हो उसके अनुसार निर्णय लीजिये।

दूसरा अर्थ यह है कि भरतकी विनती सुनिये और उसपर विचार कीजिये कि उनकी विनतीमें ही ये चारों विकल्प (साधुमत, लोकमत, राजनीति और निगम-निचोड़) निहित हैं। अब देखें कि भरतकी विनती क्या है—

सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥
नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥

(२।२६८, २६९।१-२)

पहला विकल्प साधुमत है कि भरत और शत्रुघ्न वन जायँ और श्रीराम सीता तथा लक्ष्मणसहित अयोध्या लौट जायँ—

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥

(२।२५६।३)

दूसरा विकल्प लोकमत है। भरतजी लक्ष्मणसे बड़े थे। अतः उन्हें ही श्रीरामके साथ जाना चाहिये। यह मत जनकजीने भी व्यक्त किया था, कौसल्या माताके कहनेपर—

बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं॥

(२।२८९।४)

तीसरा विकल्प राजनीतिके अन्तर्गत है, जहाँ ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम जाकर राज करें और तीनों भाई वन जायँ। दशरथजीने भी कैकेयीको समझाते हुए यही कहा था—

लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति॥

(२।३१)

और चौथे विकल्पमें भरतजीकी अपार कुशलता प्रदर्शित होती है। वेदोंका सार यही है कि प्रभुकी इच्छा ही सर्वोपरि है। भरतजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीराम गद्‌गद हो गये और बोले—'हे भरत! तुम धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले हो और लोक एवं वेद दोनोंको जानते हो'—

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥

(२।३०४।८)

नन्दिग्राम प्रस्थान करते समय भरतजी राजसिंहासनपर प्रभुकी चरण-पादुकाएँ स्थापित करते हैं। उस समय गुरु वसिष्ठ पुलकित हो भावविह्वल हो जाते हैं और कहते हैं—'हे भरत! तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे वही जगत्‌में धर्मका सार होगा'—

समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥

(२।३२३।८)

नीति और धर्मका मूल लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके पथकी ओर उन्मुख होना और भगवत्प्रीतिकी प्राप्ति है। लक्ष्मणजीने इसे समझा। वन जाते समय जब श्रीराम लक्ष्मणजीको अयोध्यामें ही रहकर माता-पिताकी सेवा करने और प्रजा-पालन करनेके द्वारा राज-धर्मका उपदेश देते हैं तब लक्ष्मणजी कहते हैं कि जो मन, वचन और कर्मसे प्रभुके चरणोंमें समर्पित हो उसे नीति और धर्मसे क्या प्रयोजन—

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

(२।७२।७-८)

साधकोंके प्रति—

परमात्मप्राप्तिमें देरी क्यों?

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

परमात्मप्राप्तिका उद्देश्य लेकर चलनेवाले जितने भी मनुष्य हैं, उन सबको परमात्मप्राप्ति होगी, पर कब होगी? कितने जन्मोंके बाद होगी? इसका पता नहीं है। शरीरको अपना और अपने लिये मानते हुए कोई साधन करेगा तो उसको कितने जन्म लेने पड़ेंगे, कितनी योनियाँ भोगनी पड़ेंगी, इसका कुछ पता नहीं है। इसलिये मेरी शुरूसे यही लगन रही है कि मनुष्यको जल्दी परमात्मप्राप्ति कैसे हो? यद्यपि किया हुआ साधन निरर्थक नहीं जाता, तथापि परमात्माकी प्राप्ति जल्दी कैसे हो, यह लगन होनी चाहिये। लगन नहीं होगी तो कई जन्म लग जायँगे। जो वस्तु कल मिलेगी, वह आज मिलनी चाहिये, आज भी अभी मिलनी चाहिये। परमात्मा भी मौजूद हैं, आप भी मौजूद हैं, फिर देरी किस बातकी? परमात्मप्राप्तिमें देरीकी बात मेरेको सुहाती नहीं। जो काम जल्दी हो सके, उसके लिये देरी क्यों? जो काम अभी हो सके, उसके लिये कल क्यों?

श्रीशरणानन्दजी महाराजने लिखा है कि जीव-ब्रह्मकी एकता कभी हुई नहीं, कभी हो सकती नहीं। इसका तात्पर्य है कि जीवपना छूटनेपर ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। यह सूक्ष्म विवेचन है। इसी तरह कहा जाता है कि साधुको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, गृहस्थको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, ब्राह्मणको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती तो इसका तात्पर्य है कि साधुपनेका अभिमान रहते हुए परमात्मप्राप्ति नहीं होती। ब्राह्मणपनेका अभिमान रखते हुए परमात्मप्राप्ति नहीं होती। अभिमान छूटेगा, तब प्राप्ति होगी। इन सब बातोंको कहनेका तात्पर्य यही है कि परमात्मप्राप्तिमें देरी मत करो। आपके कैसे ही पाप-ताप हों, आप कितने ही दुर्गुणी-दुराचारी हों, पर आपकी लगन लग जाय तो आज परमात्मप्राप्ति हो सकती है।

साध्यकी प्राप्ति साधकको ही हो सकती है, ब्राह्मण, साधु आदिको कैसे होगी? ब्राह्मणको ब्राह्मण-कन्या विवाहके लिये मिल सकती है, पर परमात्मा कैसे मिलेंगे? साधुको भिक्षा मिल सकती है, पर परमात्मा कैसे मिलेंगे? शरीरधारीको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। साधक शरीरधारी नहीं होता और शरीरधारी साधक नहीं होता। अपनेको पुरुष या स्त्री मानेंगे तो परमात्मप्राप्ति कैसे होगी? मैं स्त्री या पुरुष हूँ ही नहीं, मैं तो भगवान्‌का हूँ—ऐसा भाव होगा तो बहुत जल्दी कल्याण हो जायगा। अपनेको स्त्री या पुरुष मानना तो सांसारिक व्यवहार (मर्यादा)-के लिये है। परंतु पारमार्थिक मार्गमें अपनेको स्त्री या पुरुष मानेंगे तो बहुत देरी लगेगी। चिन्मयकी प्राप्ति चिन्मयको ही होगी, जडको कैसे हो जायगी?

समताकी प्राप्तिको बहुत ऊँचा बताया गया है। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने लिखा है कि गीताके अनुसार अगर समता आ गयी तो दूसरे लक्षण भले ही न आयें, परमात्मप्राप्ति हो जायगी और समता नहीं आयी तो भले ही दूसरे बड़े-बड़े लक्षण आ जायँ, परमात्मप्राप्ति नहीं होगी। वह समता ममताका त्याग करते ही आ जाती है—

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार।

(दोहावली ९४)

श्रीशरणानन्दजी महाराजने साफ लिखा है कि ममताको छोड़ते ही समता आ जायगी। दूसरी बात उन्होंने लिखी है कि अपने लिये तप करना भी भोग है और परमात्माके लिये झाड़ू लगाना भी पूजा है। हिरण्यकशिपुने कितनी कठोर तपस्या की। ब्रह्माजीने भी कह दिया कि ऐसी तपस्या आजतक किसीने नहीं की। परंतु उसकी तपस्यासे क्या परमात्मप्राप्ति हो गयी? उसका परमात्मप्राप्तिका उद्देश्य ही नहीं था। इन बातोंका तात्पर्य परमात्मप्राप्ति जल्दी करनेमें है।

अगर परमात्माकी प्राप्ति करना चाहते हो तो अपनेको स्त्री या पुरुष न मानकर अपना सम्बन्ध परमात्माके साथ जोड़ो। शरीर तो मिला है और बिछुड़ जायगा। इस शरीरमें ही आप अटक जाओगे तो फिर परमात्मप्राप्ति कैसे होगी? परमात्माकी प्राप्ति तब होगी, जब परमात्माके साथ सम्बन्ध जोड़ोगे। कोई कपूत हो या सपूत हो; पूत तो वह है ही। कपूत भी बेटा है, सपूत भी बेटा है। अतः हम कैसे ही हों, अच्छे हों या मन्दे हों, परमात्माके ही हैं। परमात्माकी प्राप्ति न स्त्रीको होती है, न पुरुषको होती है। विवाह करना हो तो अपनेको

स्त्री-पुरुष मानो। स्त्रीको पुरुष मिलेगा। परमात्मा कैसे मिलेंगे? पुरुषको स्त्री मिलेगी, परमात्मा कैसे मिलेंगे? परमात्मा तो साधकको मिलेंगे। साधक स्वयं होता है, शरीर नहीं होता। मुक्ति भी स्वयंकी होती है, शरीरकी नहीं होती। अत: हम न स्त्री हैं, न पुरुष हैं, प्रत्युत हम परमात्माके हैं। परमात्मा हमारे हैं। हम और किसीके नहीं हैं और कोई हमारा नहीं है। जिसको प्राप्त करना हो, उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये। इसलिये परमात्माके साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ो। परमात्माकी प्राप्तिमें स्त्रीपना और पुरुषपना—दोनों ही बाधक हैं। अपनेको स्त्री या पुरुष माननेवाला तो शरीरमें ही बैठा है, फिर उसको परमात्मा कैसे मिलेंगे? मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं—यह मान लो तो बड़ा भारी काम हो गया। यह मामूली साधन नहीं हुआ है। भगवान्‌की और आपकी जाति एक हो गयी, जो कि वास्तवमें है।

जाति, कुल, विद्या, सम्प्रदाय आदिका अभिमान परमात्माकी प्राप्तिमें बहुत बाधक है। भगवान् जिस जातिके हैं उसी जातिके हम हैं। भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध असली है, बाकी सब सम्बन्ध नकली हैं। हम भगवान्‌के अंश हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५।७)। हम संसारके अंश नहीं हैं। हम साक्षात् भगवान्‌के बेटा-बेटी हैं। सांसारिक स्त्री-पुरुष तो हम बादमें बने हैं—***'सो मायाबस भयउ गोसाईं'*** (मानस ७।११७।२)।

यहाँ शंका हो सकती है कि मैं भगवान्‌की बेटी हूँ—ऐसा माननेसे अपनेमें स्त्रीभाव रह जायगा! वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। अगर भगवान्‌के साथ सम्बन्ध माननेसे स्त्रीभाव रह भी जाय तो वह मिट जायगा। भगवान्‌का सम्बन्ध ऐसा विलक्षण है कि सभी सम्बन्धोंको काट देता है। कारण कि सब सम्बन्ध झूठे हैं, पर भगवान्‌का सम्बन्ध सच्चा है। भगवान्‌ने कहा है कि जीव केवल मेरा ही अंश है—'**ममैवांशो जीवलोके।**' सच्ची बातके आगे झूठी बात कैसे टिकेगी? परंतु आप, मैं स्त्री हूँ या मैं पुरुष हूँ—इस बातको ही महत्त्व देते रहोगे तो यह कैसे मिटेगा? ***'जदपि मृषा छूटत कठिनई।'*** इसलिये एक भगवान्‌के सिवाय दूसरेका सर्वथा निषेध कर दो—*'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई'*। भगवान् मिलें चाहे उम्रभर न मिलें, दर्शन दें चाहे न दें, पर हम तो भगवान्‌के ही हैं। भरतजी कहते हैं—

जानहुँ राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

(मानस २।२०५।१-२)

हम जैसे हैं, भगवान्‌के हैं। अच्छे हैं तो भगवान्‌के हैं, बुरे हैं तो भगवान्‌के हैं। जैसे विवाहित स्त्री भीतरसे अपनेको कुँआरी नहीं मान सकती, इसी तरह भक्त भगवान्‌के सिवाय दूसरेको अपना मान सकता ही नहीं। झूठी बात कैसे माने? भगवान्‌को हरेक आदमी अपना मान सकता है। पापी-से-पापी, दुष्ट-से-दुष्ट आदमी भी भगवान्‌को अपना मान सकता है। कारण कि यह मान्यता सच्ची है, दूसरी सब मान्यताएँ झूठी हैं। आपको हजारों आदमी कह दें कि तुम भगवान्‌के नहीं हो तो उनसे यही कहें कि आपको पता नहीं है। भगवान् भी कह दें कि तुम हमारे नहीं हो तो उनसे कहें कि आपको भूल हो सकती है, पर मेरेको भूल नहीं हो सकती। इतना पक्का विचार होना चाहिये—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(मानस ३।११।११)

इस तरह दृढ़तासे भगवान्‌में अपनापन हो जाय तो फिर परमात्मप्राप्तिमें देरी नहीं लगेगी।

तापसको बरदायक देव सबै पुनि बैरु बढ़ावत बाढ़ें।
थोरेंहि कोपु, कृपा पुनि थोरेंहि, बैठि कै जोरत, तोरत ठाढ़ें॥
ठोंकि-बजाइ लखें गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़ें।
आरतके हित नाथु अनाथके रामु सहाय सही दिन गाढ़ें॥

अपना सुधार कैसे करें

(डॉ० पण्डित श्रीविनयकुमारजी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

जो जीवन दोषपूर्ण हो, उस जीवनमें परिवर्तन जरूरी है, पर जीवनमें परिवर्तन तभी आ सकते हैं, जब हम अपने-अपने निर्दिष्ट मार्गपर चलें। जो काम करने लायक हो वह करें तथा छल-कपट, पाप-प्रपञ्च आदिसे दूर रहें। जीवनको सुन्दर तथा सुखमय बनानेके लिये अनेक मार्ग बतलाये गये हैं। शास्त्रकारोंने सत्संगकी महत्ता बतलाकर जीवनको अधोगतिसे बचानेका सारस्वत प्रयास किया है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कुसंगके दुष्परिणामोंकी चर्चा करते हुए उनसे बचनेका उपाय भी बतलाया है—

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥

सत्संगसे परिवार, समाज, देश, धर्म और सम्प्रदाय बदल सकता है। व्यक्तिमात्रका हृदय परिवर्तित हो सकता है। मनश्चिन्ताएँ और मनस्ताप मिट सकते हैं। परंतु यह तभी सम्भव है जब हम पवित्र विचारोंका अनुसरण करेंगे, पापपूर्ण जीवनसे पूर्णतः मुक्त रहेंगे, जब जगत्के कल्याणकी कामना और इच्छा प्रस्फुटित तथा बलवती होती है तब तदनुसार मनोवाञ्छित फल भी फलितार्थ होने लगते हैं। जीवनमें आनन्द और उल्लास तथा भक्तिकी त्रिवेणी लहलहा जाती है। मनके द्वन्द्व, ईर्ष्या-द्वेष तथा कलह आदि क्षणभरमें लुप्तप्राय हो जाते हैं। मानसिक द्वन्द्व और मानसिक विकारसे मुक्ति मिल जानेपर मनमें भक्ति तथा धार्मिक कार्योंके प्रति रुचि जगती है।

आज हमारा जीवन जिन-जिन समस्याओंसे घिरा हुआ है, वे सारी समस्याएँ भौतिक जीवन और तथाकथित संस्कृतिसे प्रभावित हैं। बाह्याडम्बर तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जितने भी आन्तरिक दोष हैं, ये सब मानवमात्रके प्रबल शत्रु हैं। इनके द्वारा जीवन बुरी तरह प्रभावित होता है। जब जीवनमें सत्यकी जगह असत्य, दयाकी जगह निर्दयता, शान्तिकी जगह क्रोधाग्नि, त्यागकी जगह मोह-आसक्ति भारी पड़ने लगे, जब सत्कार्य करनेकी प्रवृत्ति ही क्षीण तथा लुप्त होने लगे और असत्कार्यमें रस आने लगे तब हमें समझना चाहिये कि हम पतनकी ओर बढ़ रहे हैं। हमें अब सत्संगकी जरूरत है, स्वाध्यायकी जरूरत है, भक्ति और अध्यात्मकी जरूरत है। बिना सत्संग, भक्ति, स्वाध्याय, शास्त्रचिन्तन-मनन किये न तो सुख-शान्ति सम्भव है और न जीवनमें अपेक्षित परिवर्तन ही सम्भव है। शास्त्रके बताये मार्गका अवलोकन, तदनुकूल आचरण, व्यवहार, चिन्तन और मनन जबतक न किया जायगा तबतक सुधार असम्भव है।

महाभारतमें वेदव्यासजीने एक बड़ी अच्छी बात बतायी है कि बड़े लोग, महापुरुष जिस मार्गसे गये हों उसी मार्गका अनुसरण करना चाहिये—'**महाजनो येन गतः स पन्थाः।**'

मनु महाराजने जीवन-सुधार तथा धर्मानुकूल आचरणके हेतु चारों वर्णोंके लिये अर्थात् सर्वसाधारणके निमित्त पाँच कर्म बतलाये हैं—किसीकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्रता—शुद्धतासे रहना तथा इन्द्रियोंको वशमें रखना आदि। भूलना नहीं चाहिये कि यदि व्यक्ति इतनेपर भी चले तब अपेक्षित सुधार निश्चय ही सम्भव है। जीवनका धर्मयुक्त सार भी यही है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥

(मनु० १०। ६३)

ये शास्त्रोक्त वाक्य हमें यही सिखाते हैं कि हम भाई-भाईसे प्रेम करें, द्रोह न करें। सुख-दुःखमें एक-दूसरेकी अपेक्षित मदद करें और स्वयंको धर्ममें लगाये रखें।

इस जगत्में सब कुछ नश्वर है और यदि अनश्वर कुछ है तो वह मात्र धर्म ही है। यह धर्म ही जगत्को धारण करता है। जीवनमें आवश्यक धर्म हैं—सत्यवचन, क्षमा, परोपकार, सत्कर्ममें प्रवीणता तथा प्राणिमात्रके प्रति आदरभाव। इन सत्कर्मोंसे जीवन सुधरता है और सांसारिक कष्ट मिटते हैं, शान्ति, सुख तथा आनन्दका प्रसार होता है। जीवनका परम लाभ आध्यात्मिक मनन तथा चिन्तन है। जो व्यक्ति अध्यात्मके पथपर चलते हैं अथवा धर्मके पथका नित्य अनुसरण करते हैं, वे सच्चे अर्थोंमें मानवधर्मका पालन

करते हैं, वे ही मनुष्य भी कहलानेके अधिकारी हैं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने मनुष्यके मनुष्यत्वको बनाये रखनेके लिये सभी प्राणियोंमें ईश्वरके स्वरूपको देखनेकी आवश्यकता बतलायी थी। उनका कहना था कि जो व्यक्ति सम्पूर्ण जगत्के स्त्री-पुरुषोंमें परम पिता परमेश्वर श्रीरामको तथा उनकी प्रियतमा पत्नी अर्धाङ्गिनी सीताको देखेंगे वे ही श्रेष्ठ हैं। यही श्रेष्ठत्व व्यक्तिको पशुत्वसे विलग करता है। हम सबको चाहे वह स्त्री हो या पुरुष यदि सियाराममय देखेंगे तो अवश्य ही सांसारिक पापकर्मोंसे बच जायँगे। सांसारिक पापकर्म तब हो नहीं पायेंगे; क्योंकि हम जब किसीके प्रति क्रोध करेंगे तो लगेगा कि हम तो ईश्वरके प्रति क्रोध कर रहे हैं। यदि मनमें मनोमालिन्य उत्पन्न होगा तो लगेगा कि हम तो ईश्वरके प्रति ही ऐसी कुत्सित भावनाकी उत्पत्तिमें सहयोग दे रहे हैं, फिर मनमें एक ठहराव आ जायगा। भक्तिके पथपर चलते हुए अथवा सत्संगके मार्गका अनुगमन करते हुए हमें ऐसा लगेगा कि हमें अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये। ऐसी स्थितिमें अनेक कुत्सित भावनाएँ स्वयमेव मृतप्राय-सी हो जायँगी तथा मनके तलपर जो कुत्सित भावनाएँ हृदयगत अथवा हृदयस्थ हो चुकी हैं, वे सब दिन-पर-दिन नष्ट होती चली जायँगी।

आज हमारे जीवनमें इसी पशुत्वके विनष्टीकरणकी आवश्यकता है। पशुतासे मुक्ति मिल जानेपर जीवनमें स्वर्णिम विहान अथवा नयी सुबहके दर्शन होंगे। आज आपसमें जो कलह-द्वेषकी उत्पत्ति हो रही है, यही उत्पत्ति जीवनको विषमय बना रही है। यही विषमयता परिवारसे गुजरते हुए समाज तथा राष्ट्रपर अपना विनाशकारी प्रभाव जमा लेती है। भूलना नहीं चाहिये कि प्रत्येक व्यक्तिके जीवनका सुधार धर्माचरण और आध्यात्मिकतासे ही सम्भव है। इसी कारण सब धर्मोंमें मानवधर्म सर्वोपरि माना गया है। यदि धरतीके सारे लोग निज धर्ममें लगे रहें तो कोई कारण नहीं कि वे सांसारिक, भौतिक और लौकिक समस्याओंसे मुक्त न रह सकें। शास्त्रोंमें कहा गया है कि सभी प्राणी सुखपूर्वक जीवन-यापन करें, कोई किसीसे ईर्ष्या-द्वेष आदि न करे। जो व्यक्ति दूसरेके हितमें अपना शरीर त्याग देते हैं, उन्हें परम शान्तिकी प्राप्ति होती हैं, संत और शास्त्र—दोनों ही उनकी प्रशंसा करते हैं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने लिखा है—

पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥

(रा०च०मा० १।८४।२)

मानवकी महत्ता इसी कारण सर्वविदित है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(रा०च०मा० ७।४३।७)

'तोल-तोलकर बोल, वाणीमें रस घोल'

(श्रीनृसिंहदेवजी अरोड़ा)

बातचीत करना भी एक कला है। यदि झूठ बोलना पाप है तो अप्रिय सत्य बोलना भी निन्दनीय है, इसीलिये कहा गया है—'हमेशा प्रिय-सत्य बोलें, अन्यथा मौन रहें।'

योगिराज भर्तृहरिने मौनको ज्ञानियोंकी सभामें अज्ञानियोंका श्रेष्ठ आभूषण बताया है। साथ ही मौनको सर्वोत्तम भाषण भी कहा गया है।

महाभारतमें भीष्म पितामहका एक शिक्षाप्रद संवाद आया है, जिसमें उन्होंने बताया है कि मीठी और नम्र वाणीसे बढ़कर संसारमें कुछ भी नहीं है।

यदि किसीको उसकी मनोवाञ्छित प्रियतम वस्तु देकर भी उसके लिये कटु वचन बोले जायँ तो वह आपसे कभी प्रसन्न नहीं होगा। इसके विपरीत यदि आप किसीका अहित करके भी उससे मधुर और विनम्र शब्दोंमें बात करेंगे तो शायद वह अपनी हानि या सम्मानको भूलकर फिर आपका हो जायगा।

इस संदर्भमें एक उदाहरण प्रस्तुत है—

ब्रिटेनकी साम्राज्ञी विक्टोरियासे उसके पति एलबर्ट एक बार अत्यधिक क्रुद्ध हो उठे और तिलमिलाते हुए अपने कमरेमें पहुँचे। कमरा उन्होंने भीतरसे बंद कर लिया। विक्टोरिया भी बड़ी नाराज हुई। उन्होंने बाहरसे किवाड़ झंझोड़ डाले। एलबर्टने भीतरसे पूछा—कौन? 'मैं हूँ साम्राज्ञी'—विक्टोरियाने रोबसे कहा। एलबर्टने द्वार नहीं

खोला, न ही कोई उत्तर दिया। विक्टोरिया अपमानित होकर लौट गयी, पर उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। अतः दुबारा फिर उन्होंने किवाड़ खटखटाये। वही प्रश्न हुआ—कौन? पर न तो द्वार खुला, न उत्तर ही मिला। लेकिन विक्टोरिया हारकर भी नहीं हारी, उसने तीसरी बार फिर दरवाजा खटखटाया। अलबर्टने पूछा—कौन? तो धीरेसे नम्रतापूर्वक आवाजमें मधुरतासे विक्टोरिया बोली—'मैं हूँ जी आपकी प्रिय पत्नी।' इस बार साम्राज्ञीके अति मृदु तथा विनम्र शब्दोंने पतिदेवको द्रवित कर दिया और उन्होंने झटकेसे किवाड़ खोल दिये।

संत तुलसीदासजीका निम्न दोहा प्रसिद्ध है—

तुलसी मीठे बचन ते सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है परिहरु बचन कठोर॥

मृदु बोलनेके लिये हमें अपने बोलनेके ढंगको, हावभाव एवं विचारोंको सदा देखते-तौलते रहना चाहिये कि हमारे व्यवहारमें फूलोंकी-सी सुन्दरता, कोमलता और मिठास है कि नहीं। जब हम मृदुभाषणके अभ्यस्त हो जायँगे, तब चीखकर पुकारना, कठोर जवाब देना और बात करते-करते उत्तेजित हो जाना—यह सब स्वयं ही समाप्त हो जायगा। प्रिय भाषणद्वारा हम दूसरोंको वशमें करके उनके प्रिय बन सकते हैं। एक दोहा है—

कागा काको धन हरे कोयल काको देत।
मीठी बानी बोलकर जग अपनो कर लेत॥

हम मीठी वाणी बोलकर किसीको भी मित्र बना सकते हैं और कड़वी जबान बोलकर दुश्मन।

यह सोचने-समझनेकी बात है कि इस संसारमें सब कुछ हमारे मनके, हमारे विचारोंके अनुकूल तो हो नहीं सकता। दुनिया जैसी है उसको वैसी ही मानकर चलना पड़ता है। अतः हमें अपने मनोवेगोंको काबूमें रखकर, व्यवहारकुशल बनना चाहिये। जो कुछ भी जीमें आया बक दिया, यह आदत अच्छी नहीं होती। मनके आवेशको रोकना, अपनेको सहनशील तथा विवेकशील बनाना या चुप रह जाना, हमें कटु वाणीके प्रयोगसे बचाने तथा शान्त रहनेमें सहायक होते हैं। इससे हमारी मानसिक शक्ति बढ़ेगी, आपसमें सद्भावना बनी रहेगी और हमारे वचनोंसे किसीको दुःख नहीं होगा।

आवेगमें चीखने-चिल्लानेके बजाय चुप रहकर धैर्य तथा शान्ति धारण करना हितकारी होता है। हमें ऐसा समझकर अपना व्यवहार चलाना चाहिये।

दूसरा दृष्टान्त विवाहके समयका है। बात यह हुई कि एक आमन्त्रित न्यायाधीशने वधूसे कहा—देवि! तुम भाग्यवान् हो कि तुम्हें ऐसे योग्य व्यक्ति पतिके रूपमें मिले हैं। इसपर वधूने कुछ गर्वके साथ कहा—भाग्यवान् मैं नहीं मेरे पति हैं जिन्हें कि मैं पत्नीरूपमें प्राप्त हुई हूँ और यह गर्वसे भरा वाक्य उन सज्जनके हृदयमें सदाके लिये शूलकी तरह चुभ गया। बोलनेको तो वधू विवाहमण्डपमें अप्रिय बोल गयी, परंतु बोलनेसे पहले उसे तोला नहीं, विचार नहीं किया कि वह क्या कहने जा रही है। बोली ही विचारोंकी प्रतिमूर्ति एवं तस्वीर होती है। वास्तवमें जो वचन मुँहसे निकलते हैं उनमें हृदयका भाव छिपा रहता है। यदि हृदय शुद्ध और प्रेममय है तो जो भी शब्द निकलेंगे मधुर होंगे। वधूके मुखसे जो शब्द निकले थे उनमें रूप और यौवनका अभिमान हिलोरें ले रहा था, अतः वाणीमें विनम्रता कहाँसे आती। इसी कारण उनका दाम्पत्य-जीवन दुःखी रहा।

उपर्युक्त वृत्तान्तोंसे शिक्षा मिलती है कि यथासम्भव मौन रहना चाहिये। वाणीमें सरस्वतीका वास रहता है, अतः हमें बहुत विचारपूर्वक बोलना चाहिये और सत्य तथा प्रिय-सम्भाषण ही करना चाहिये। कहा भी गया है—'तोल-तोलकर बोल, वाणीमें रस घोल।' इसीलिये मधुर, सत्य-भाषण तथा मौनको सुख-शान्ति और संतोषका प्रदाता कहा गया है। वाणीके संयमके साथ मनका मौन तो और भी उत्तम कोटिका साधन है। इससे अध्यात्मपथकी साधना सहजता, सुगमतासे सध जाती है। मनकी वृत्तियोंको भगवद्विषयिणी बना लेनेसे मन निर्मल हो जाता है और भगवत्प्राप्तिकी योग्यता आ जाती है।

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ५७४ से आगे]

सम्प्रति परम कारुणिक, भक्तवत्सल, सहज उदार मेरे श्रीप्राणाधारने सब प्रकारके सुभीते हम लोगनके ताँईं प्रदान करि राखे हैं। अतः हमें उचित यही है कि ऐसे सुअवसर कौ एक-एक क्षण बहुत सावधानताके साथ व्यतीत करैं।

परम कर्तव्य—श्रीनाम-जपके आनन्दमें डूबते रहैं। प्रायः एकान्तमें ही वास करैं। नेत्र, कर्ण, हस्त तथा पादादि इन्द्रियनके संयममें कैसैं हूँ प्रमाद न हौन पावै। बहुत ही सावधानता रहै, मनके सँभारिवेमें।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥[1]

(गीता ६। २५)

तथा च—

'मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य[2]**'** (श्रीमद्भा० २। २। १६)

इन महावाक्यन सौं पूर्ण लाभ उठावैं।

स्त्री जाति, हृदयकी संकीर्णता, दुराग्रह, काहू प्रकार कौ अहंकार, राग-द्वेष, लोकरञ्जन, दम्भ, विलासिता, अकर्मण्यता, घृणा, आचार-विहीनता, असूया तथा प्रतिष्ठा-लोभ—ये सब साधकके नाशकारक हैं। अतएव हमें इन सबन सौं बहुत ही बचते रहनौं चहिए।

प्रायः आत्म-निरीक्षण करते रहैं। तामैं संख्या छः में लिखे भयेन सौं हम बचते रहैं हैं या नहीं, यह बड़ी गहराईके साथ अत्यन्त सात्त्विकी बुद्धि सौं खोज करते रहैं।

नियम-पालन कितनी सावधानी सौं करि रहे हैं? एक हू क्षण व्यर्थ तौ नहीं खोय रहे? अपने प्राण-प्यारे दुलारेके मिलिवेके ताँईं अन्तःकरणके काऊ कोनेमें कुछ स्फुरण उठै है या नहीं?

उद्योग करिवै पै सफलता प्राप्त होय है, यह भ्रम है। सफलता तौ नित्य सिद्ध वस्तु है। उद्योगरूपी तपमें जितनौं अपने कूँ तपाय कैं शुद्ध करते जायँगे, उतने ही सफलता-रूपी परम निधिके ग्रहण करिवेके योग्य बनते जायँगे।

सर्वव्यापक श्रीभगवान्‌के दर्शन करिवेके ताँईं साधनरूपी तपमें अपने नेत्रन कूँ तपाय कैं शुद्ध, योग्य बनावै, तब ही श्रीभगवद्दर्शन होयवे लगिंगे।

आज अमावास्या है, घोर अन्धकार सर्वत्र फैल जाय है। किंतु अनेकन दीपकनके प्रज्वलित होते ही विचारौ अन्धकार अपने प्राण बचाय कैं भाग जाय है।

प्रमाद है = अन्धकार विकट।

उद्योगशीलता है = प्रकाशाधिक्य।

कितनौं विकट परिश्रम कियौ हो श्रीविष्णुभगवान्‌ने, श्रीलक्ष्मीजीकी प्राप्तिके ताँईं? अब तौ श्रीभगवान् सोते रहैं हैं और विचारी श्रीलक्ष्मीजी इनके श्रीचरणन कूँ पलोटती रहैं हैं।

यासौं शिक्षा मिलै है—उद्योगशीलके सोयवे पै हू सिद्धि याकौ साथ नहीं छोड़ै है।

साधक, साधन, साध्य—तीनौंके मध्यमें साधन है। यही दोउनके बीचमें है। यही दोउन कूँ मिलायवेमें समर्थ है।

कहवेमें संकोच होय है, भय लगै है, किंतु बात सर्वथा सत्य है। सिद्धि तौ साधककी चेरी है।

अनुभव—श्रीविष्णुभगवान् कौ श्रीलक्ष्मीजी प्राप्त करनौं।

चित्त कूँ शान्त करिकैं पूर्णरूप सौं काहू साधनमें लगि जाय। संशय न राखै—**'संशयात्मा विनश्यति।'** बहुत झमेलनमें अपने कूँ न डारै। जौ करै, वाही कूँ समझै, विचारै, मनन करै, पूर्ण प्रयत्न करै, मरि मिटै।

---

१. क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरामताको प्राप्त होवे तथा धैर्ययुक्त बुद्धिद्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके, परमात्माके सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे।

२-अपनी निर्मल बुद्धिसे मनको नियमित करे।

किंतु इतनौं सवरौ वानिक तबही बनि पावैगौ, जब काहू मनुष्यरूपधारी श्रीसंत भगवान्में पूर्णरूप सौं श्रद्धा होयगी।

श्रीप्राण-प्रियतमके श्रीमुखके महावाक्य हैं, यामैं बड़ौ गम्भीर रहस्य है। यह नियम है कि जब ताँईं साधकके पुण्य रहैं हैं, तब ताँईं वाकूँ या लोकमें स्वर्गीय सुख प्राप्त होते रहैं हैं। यदा-कदा स्वर्ग हू जानौं परै है तथा जिनके पाप रहैं हैं, वे या लोकमें दुःख, चिन्ता, शोक, निद्रा आदिकनमें फँसे रहैं हैं; जो जीते-जी नरक होय है।

अब जीव कौ कल्याण कैसें होय?

याके निराकरणके ताँईं यह महा-महावाक्य है कि जिन साधकन कूँ मेरी प्राप्तिकी इच्छा होय, वे भोगन कूँ भोगि डारैं, याते सवरे पुण्य क्षीण है जायँगे। अब स्वर्ग कौ मार्ग बंद।

अब रहे पाप—इनके ताँईं सदैव सदाचार-परायण, सुशील महापुरुषके समान आचरण करिवे वारौ बनै। यातें पाप नष्ट है जायँगे। जब ये दौनौं नष्ट है गये, तब ही मेरी प्राप्ति होय है। आशय यह है कि ऐसे उच्चकोटिके महापुरुषनके आचरण जन्म सौं ही लोक सौं भिन्न हौयँ हैं।

उदाहरण—श्रीउद्धवजी कौ—श्रीउद्धवजी जा समय पाँच वर्षके थे, बालकनके संग खेलि रहे। मैया कलेऊ करिवेके ताँईं बुलायवे गयी किंतु **'तन्नैच्छत्'**—कलेऊकी इच्छा ही न करी।

कारण यह है कि अपने समवयस्क बालकनके संग श्रीप्राणधनकी सेवा कौ विधान करि रहे हते। वा समय कलेऊकी सुधि कहाँ? पाँच वर्षके बालकमें इतनौं अनुराग!

या प्रसंगकी यदि व्याख्या करिकैं कथा कहवे कौ अवसर मिलै, तौ मैं एक जन्ममें हूँ पूरी नहीं करि सकूँ हूँ।

उत्तम साधक कौ यही श्रेयस्कर है कि—इच्छान कूँ मिटावै। कर्तव्य कौ पालन प्राणपन सौं करै। इच्छा होते ही मनकी शान्ति मारी जाय है। मन चञ्चल एवं उद्विग्न है जाय है। जो साधकके ताँईं सर्वथा अहितकर है।

इच्छा, वासना तौ रहन ही न पावै। इनकूँ निर्मूल करनौं साधक कौ परम कर्तव्य है। साधक जैसें-जैसें आगे बढ़ै है, वैसें-वैसें ही कठिनता कौ साम्मुख्य प्राप्त होय है। परीक्षानमें—यथा—प्रथमा सौं मध्यमा कठिन। मध्यमा सौं शास्त्री कठिन। शास्त्री सौं आचार्य कठिन।

किंतु यदि छात्र प्रथमामें ही 'लघुकौमुदी' ठीक-ठीक समझिकैं अध्ययन करि लेय तौ आगेकी परीक्षाएँ कठिन होते भये हू कठिन नहीं प्रतीत होयँ हैं। तद्वत् साधक—

परिभाषा—इच्छा = अभाव वस्तुकी चाह। रुचि = जो वस्तु मन कूँ सुहाय—

'रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी।' (रा०च०मा० २।८२।५)

वैसें तौ रुचि और इच्छामें बहुत ही कम भिन्नता-सी प्रतीत होय है, यह तौ स्थूलतामें रही। अवान्तर भेद तौ है ही।

जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥
(रा०च०मा० ७।११४।४)

कहूँ-कहूँ 'इच्छा' शब्द कौ प्रयोग संकल्पमें होय है। यथा—

'हरि इच्छा भावी बलवाना॥' (रा०च०मा० १।५६।६)

किंतु विशेष करिकैं इच्छाकी परिभाषा यही ठीक जँचै है। यथा—

इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥
(रा०च०मा० १।७०।८)

जा साधक कूँ भजनमें रस नहीं मिलै, वही विचारौ यत्र-तत्र भटकतौ फिरै है। यह एक परिचय है। जैसैं-जैसैं आनन्द आतौ जायगौ, वैसैं-वैसैं ही रसकी उत्पत्ति होती जायगी। किंतु रस कौ बोध साधक कूँ बहुत आगें चलिकैं होय है। यही आसन्न सिद्धावस्था है।

ऐसौ साधक भजन छोड़ि नहीं सकै। अब भजनने याकूँ पकरि लियौ है।

आनन्द सौं रस अति सूक्ष्म है।

आनन्द कौ अनुभव तौ कितने ही साधकन कूँ यत्किञ्चित् होयवे लगै है, यद्वा वह मानि बैठै है—किंतु रसोत्पत्ति तौ काहू विरले साधक कूँ ही उपलब्ध होय है। रस—अदृष्ट, अनुभवगम्य तथा स्वसंवेद्य है।

एक बात सौं बड़ी ही प्रसन्नता भयी तथा बड़ौ आश्वासन मिल्यौ कि यदि बुद्धि सावधानता सौं देखती रहै, तौ इन्द्रिय तथा मन स्वतः संयमी बनि जायँ हैं। याही सौं सब काम बनि जायँगे।

यही करनौं, यही विचारनौं, यही धारणामें लानौं तथा याही विषयकी युक्तियाँ सोचनीं।

(क्रमशः)

पाथेय

(श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

श्रद्धावान् साधक सर्वसमर्थकी अहैतुकी कृपाका आश्रय पाकर सदाके लिये निश्चिन्त हो जाते हैं। कारण कि वे सर्वत्र-सर्वदा अनेक रूपोंमें अपने प्रियतमको ही पाते हैं। प्रत्येक परिस्थितिमें उन्हींकी सेवा-पूजा करते हुए प्रेमास्पदकी मधुर स्मृति ही होकर रहते हैं अर्थात् प्रियकी मधुर स्मृति ही उनका जीवन है। स्मृति आत्मीयतासे जाग्रत् होती है, जिसे साधक आस्था, श्रद्धा-विश्वासपूर्वक स्वतः स्वीकार करता है। जब अनेक स्वीकृतियाँ एक स्वीकृतिमें विलीन हो जाती हैं, तब अखण्ड स्मृति स्वतः जाग्रत् होती है। इस दृष्टिसे आत्मीयता ही प्रियताकी भूमि है। अनेक संतों, भक्तों तथा सद्ग्रन्थोंसे यह सिद्ध है कि साधकका विश्व और विश्वनाथसे अविभाज्य सम्बन्ध है। तो फिर भय, चिन्ता आदिके लिये साधकके जीवनमें स्थान ही कहाँ है।

दुःखका प्रभाव दुःखीको दुःखहारी प्रभुसे अभिन्न करनेमें समर्थ है। सुखका प्रलोभन मिटानेके लिये दुःखहारी स्वयं दुःखके वेषमें प्रगट होते हैं और फिर सुखके प्रलोभनको खाकर दुःखीको अपनेसे अभिन्न कर प्रियता प्रदान करते हैं। यह उनका सहज-स्वभाव है। उनसे आस्था, श्रद्धा, विश्वासकी प्रार्थना करना साधकका परम पुरुषार्थ है। उनकी आस्था पाकर भयभीत अभय हो जाते हैं और अनाथपन सदाके लिये मिट जाता है अर्थात् साधक सनाथ हो जाता है और फिर उसे कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। वे तो जानते ही हैं कि साधक उनका अपना है। उन्हें साधक अत्यन्त प्रिय है। साधकमें भी उनकी प्रियताकी माँग रहनी चाहिये। बस, बेड़ा पार है।

× × ×

अनेक रूपोंमें अनेक भावोंसे अपने एक ही प्रेमास्पदकी पूजा करनी है और उन्हींकी प्रीति होकर रहना है। अपनेमें अपना करके कुछ भी नहीं रखना है; क्योंकि यही वास्तविक तथ्य है। मिला हुआ उनका है, जिन्होंने दिया है। उसे अपना मानना भूल है। वे कितने परम उदार सहृदय हैं कि अपने दिये हुएको वापस लेकर अपनेको ही दे डालते हैं। इतना ही नहीं, जो उन्हें अपना मान लेता है और अपनेमें अपना कुछ नहीं रखता तथा भोग और मोक्षकी कामनासे रहित हो जाता है, उसके वे प्रेमी हो जाते हैं और स्वयं अपनेको ऋणी मानने लगते हैं। यह अनुपम उदारता भला कहाँ मिलेगी? अतः सब प्रकारसे उन्हींके होकर रहो। बस, यही सफलताकी कुञ्जी है।

× × ×

सर्वदा प्रेमास्पदकी मधुर स्मृति तथा अगाध प्रियतासे अभिन्न होकर रहो। यही वास्तविक जीवन है।

विवेकपूर्वक ममता, कामना तथा तादात्म्यका त्याग ही वास्तविक जाने हुए असत्का त्याग है। असत्के त्यागमें ही अकर्तव्य, असाधन और आसक्तियोंका नाश निहित है, जिसके होते ही स्वतः प्रत्येक साधककी साधन-तत्त्वसे अभिन्नता हो जाती है। पर यह विचार-पथ है। इसका अधिकारी वही है, जिसे संयोग तथा श्रमजनित सुख सहन नहीं होता तथा सुखमें दुःखका स्पष्ट दर्शन होता है।

अपनी असमर्थतासे पीड़ित साधक सुने हुए प्यारे प्रभुमें अविचल आस्था, श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक आत्मीयता अपनी मधुर स्मृति तथा अगाध प्रियता प्रदान करे। निर्बलकी पुकार प्यारे अवश्य सुनते हैं। इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। बलका अभिमान ही साधकको शरणागत नहीं होने देता। गुणोंका भोग ही वास्तविक बाधा है। असमर्थताकी पीड़ामें समस्त विकास निहित है। किसी भी दशामें निराश नहीं होना है। तुम सच मानो, तुम अपने प्यारके अनुपम खिलौने हो। वे सदैव तुम्हारे साथ हैं और तुम सदैव उनके। तुम प्रीति हो तो वे आनन्द, तुम प्रिया हो तो वे प्रीतम, तुम जिज्ञासा हो तो वे तत्त्वज्ञान। तुम शरीर हो तो वे विश्वरूप। तुम प्रोफेसर हो तो वे विद्यार्थी; प्रत्येक परिस्थितिमें तुम्हारा उनका नित्य-सम्बन्ध है। निष्कामता-निर्ममता ही आत्मीयताको सजीव बनाती है। आत्मीयतामें ही मधुर स्मृति तथा प्रियता है। मेरी सद्भावना सदैव आपके साथ है। जहाँ रहो प्रसन्न रहो। प्रवृत्तिमें प्यारेकी पूजा और निवृत्तिमें अखण्ड स्मृति स्वतः जाग्रत् होगी। तुम इसमें लेशमात्र भी विकल्प मत करो, अपितु उत्तरोत्तर नित-नव आशा उदित होने दो। [मानव-सेवा-संघ]

'करने' में सावधान और 'होने' में प्रसन्न

[स्वस्थ एवं शान्त रहनेका महामन्त्र]

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

दो विभाग—दो विभाग एकदम अलग-अलग हैं—पहला है—'करना' और दूसरा है—'होना'। आपका विभाग है—'करना'। प्रभुने आपको करनेकी शक्ति, सामग्री और आंशिक स्वाधीनता दी है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, विवेक, वस्तुएँ आदि 'करने' की सामग्री हैं। करनेकी शक्ति प्रतिदिन प्रातःकाल मिलती है, जो विभिन्न कार्य 'करने'-से घटती है, समाप्त हो जाती है और दूसरे दिन पुनः मिल जाती है। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। आपको 'करने'-की पूर्ण स्वाधीनता नहीं मिली है, केवल आंशिक स्वाधीनता मिली है। आप जैसा चाहें वैसा नहीं कर सकते। आप अपने शरीरको जबतक चाहें तबतक और जैसा चाहें वैसा रखनेमें स्वाधीन नहीं हैं। परंतु आप वाणीसे सत्य अथवा असत्य, मधुर अथवा कटु बोलने, कानोंसे प्रशंसा अथवा निन्दा सुनने, आँखोंसे गंदे एवं अच्छे दृश्य देखने, मनमें सद्भाव अथवा बुरा भाव रखने, दूसरोंका हित अथवा अहित सोचने, प्राप्त विवेकका आदर अथवा अनादर करने, प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग करनेमें स्वाधीन हैं। 'करने'की शक्ति और सामग्रीके द्वारा आप विभिन्न प्रकारके कार्य करते हैं।

सावधानी रखें—जब आप अपने विभिन्न कार्य करें तो कुछ सावधानी रखें। यदि आप 'करने'में सावधानी रखेंगे तो आपको 'करने'में बड़ा आनन्द आयेगा, 'करने'-में आपका उत्साह बना रहेगा, आपके कार्यकी किस्म एवं गुणवत्ता उच्च स्तरकी होगी, आपका 'करना', आपकी सजीव-साधना बन जायगी, 'करने'से आपको परम शान्ति, जीवन्मुक्ति और भगवद्भक्ति मिल जायगी, आपका मानव-जीवन सफल हो जायगा।

क्या-क्या करते हैं—'करने'की शक्ति और सामग्रीके द्वारा आप प्रतिदिन अनेक कार्य करते हैं, साथ ही आप अपने मनमें सोचनेका कार्य भी पल-पलपर करते रहते हैं।

किस कार्यको 'करने' में क्या सावधानी रखें—जब आप कार्योंको करें, तब प्रत्येक कार्यको करते समय उससे सम्बन्धित विशेष सावधानी रखें। किस कार्यको 'करने'में क्या सावधानी रखनी है, उसका विवेचन इस प्रकार है—

(१) प्रभुके कार्य—इस जगत्के मालिक परमात्मा हैं। परमात्मा ही जगत्को बनाने तथा चलानेवाले हैं। इसलिये आप जितने भी कार्य करते हैं, वे सब आपके प्रभुके कार्य हैं। आप अपने शरीर, परिवार, व्यापार, नौकरी आदिके समस्त कार्योंको अपने प्रभुके ही कार्य मानकर करें। कार्य करते समय आपको यह बात याद रहे और इस सत्यका स्पष्ट अनुभव हो कि मैं अपने प्यारे प्रभुका कार्य कर रहा हूँ। प्रभुका कार्य मान लेनेपर उसमें आपका उत्साह बना रहेगा, कार्य करनेसे प्रसन्नता होगी, कार्यकी किस्म तथा गुणवत्ता भी उच्चतम होगी। यदि आपको यह बात याद न रहे कि मैं अपने प्रभुका कार्य कर रहा हूँ तो आप अपनी वाणीसे बार-बार यह वाक्य बोलते-सुनते रहें—'हे प्रभो! मैं आपका कार्य कर रहा हूँ।' जिस कार्यको आप प्रभुका कार्य मान लेंगे, उसमें आपको आशातीत सफलता मिलेगी।

(२) प्रभुके मेहमानोंका कार्य—इस वास्तविकताको सावधानीपूर्वक स्वीकार करें कि जगत्के मालिक परमात्मा हैं और शरीर, परिवारजन, सम्पर्कमें आने तथा रहनेवाले व्यक्ति आपके प्यारे प्रभुके प्यारे-प्यारे मेहमान हैं। प्रभुके मेहमानोंके समस्त कार्य प्रभुके कार्य ही हैं। अपने शरीर तथा परिवारजनोंके कार्य करते समय आपको यह अनुभव होता रहे कि मैं अपने प्रभुके मेहमानोंका कार्य कर रहा हूँ।

(३) सम्पूर्ण शक्ति लगायें—कार्योंको करनेमें अपनी पूरी शक्ति, बुद्धि, योग्यता, अनुभव तथा समय लगायें, लेशमात्र भी असावधानी न करें। प्रभुका कार्य मान लेनेपर उसमें स्वतः गम्भीरता आ जायगी।

(४) हितकी भावना रखें—समस्त कार्य हितकी भावनासे करें। शरीरके कार्य करते समय शरीरके हितको ध्यानमें रखें। अपने सुख-स्वादके लिये शरीरका अहित न करें। अपने सुखके लिये पान, सुपारी, गुटका, जर्दा, नशीली वस्तुओं, शराब, अंडा, मांस, बीड़ी, सिगरेट आदिका सेवन करना शरीरके लिये अहितकर है। शरीरके कार्य करते समय शरीरको 'मैं', 'मेरा' और 'मेरे लिये' मानना भी आपकी गम्भीर भूल है। माता-पिता, पति-पत्नी, संतान आदि

परिवारजनोंके कार्य करते समय इन सबको अपने प्रभुका मेहमान मानें। इनके साथ ऐसा कोई कार्य न करें, जिससे इन्हें दुःख पहुँचे अथवा इनका अपमान हो। इनके कार्य करते समय इनके हितको ध्यानमें रखें और इन्हें यथाशक्ति सुख, सुविधा, सम्मान, प्रेम और प्रसन्नता दें।

(५) अशुभ कार्य न करें—जान-बूझकर किसी भी प्रकारकी बुराई या अशुभ कार्य न करें। जिस कार्यसे दूसरोंका अहित होता है, वही अशुभ कार्य है। दूसरोंके अहितमें अपना बहुत बड़ा अहित छिपा रहता है। जिनके साथ आप सदैव नहीं रह सकते और जो आपके साथ सदैव नहीं रह सकते, वे सब दूसरोंकी गिनतीमें आते हैं। इस दृष्टिसे आपका शरीर, परिवारजन, समाज, संसार तथा प्राणिमात्र दूसरे हैं।

(६) शुभ कार्योंका कर्ता न मानें—दूसरोंके हितकी भावनासे किये जानेवाले समस्त कार्य 'शुभ कार्य' कहलाते हैं। जब आप किसी भी प्रकारका शुभ कार्य करें तो अपनेको उसका 'कर्ता' न मानें अर्थात् ऐसा न सोचें कि यह शुभ कार्य मैंने किया है। वास्तविकता यह है कि सभी शुभ कार्य समष्टि (सांसारिक) शक्तियोंके सहयोगसे सम्पादित होते हैं, उन कार्योंमें विभिन्न शक्तियोंका योगदान रहता है, उन्हें आप अकेले नहीं करते हैं। इसलिये अपनेको उनका 'कर्ता' मानना भूल है।

(७) फल न चाहें—आप शुभ कार्यका फल न चाहें अर्थात् ऐसा न सोचें कि मुझे शुभ कार्य करनेका अमुक फल मिलना ही चाहिये। सोचिये, जब आपने शुभ कार्य किया ही नहीं तो आपको उसका फल चाहनेका क्या अधिकार है? आपने अशुभ कार्योंका त्याग कर दिया और शुभ कार्योंका फल छोड़ दिया तो आप 'कर्म-बन्धन'से मुक्त हो गये, जन्म-मरणके दुःखसे छूट गये।

(८) फल सामने आनेपर दो बातोंका ध्यान रखें—सांसारिक शक्तियोंकी सहायतासे आपने शुभ कार्य तो किया, परंतु अपनेको उसका 'कर्ता' नहीं माना और यह इच्छा भी नहीं रखी कि मुझे इस कार्यका अमुक फल मिलना ही चाहिये। फल न चाहनेपर भी उसका फल आपके सामने आयेगा। जब वह फल आपके सामने आये तो आप दो बातोंका ध्यान रखें—पहली बात—उस फलसे आपको कुछ नहीं मिला है। न आपका दुःख मिटा, न चिन्ता, न भय, न तनाव, न मोह और न आपको शान्ति, मुक्ति, भक्ति या भगवान् ही मिले। उस फलसे आपको कोई नुकसान भी नहीं हुआ है, क्योंकि अब भी आपके पास प्रभुप्रदत्त शान्ति, मुक्ति, भक्ति, भगवान्‌को पानेकी शक्ति ज्यों-की-त्यों है। आपको जो फल मिला है, उसका सम्बन्ध आपके शरीरसे है। उससे आपके 'शरीर' को कुछ सुख-सुविधाएँ मिलेंगी अथवा शरीर उससे वञ्चित रहेगा। मानव-जीवनमें शारीरिक सुख-सुविधाओंका कोई विशेष महत्त्व नहीं है, यह तो प्रारब्धका परिणाम है। दूसरी बात है—उस फलको आप अपने प्यारे प्रभुका 'पवित्र-प्रसाद' मानकर उसमें खूब प्रसन्न रहें, चाहे उसका बाह्य स्वरूप कैसा भी क्यों न हो, जैसे लाभ-हानि, यश-अपयश, सफलता-असफलता, अनुकूलता-प्रतिकूलता, जीवन-मृत्यु आदि। याद रखें, आपको जो फल मिला है, वह 'होने'-के विभागमें है।

'होना' आपका विभाग नहीं है—होना आपके हाथमें नहीं है। होनेपर आपका लेशमात्र भी नियन्त्रण नहीं है। होनेपर आपका कोई वश नहीं है। होनेको करनेवाले आप नहीं हैं। यदि होना आपके वशमें होता तो आप अपने शरीरमें असाध्य बीमारी, अपने तथा अपने परिवारजनोंके साथ होनेवाली भीषण दुर्घटना, अपनी तथा अपने परिवारके प्यारे सदस्योंकी मृत्यु, अपने व्यापारमें नुकसान, अपना अपमान एवं मानव-समाजके साथ होनेवाली प्राकृतिक दुर्घटनाओं—जैसे भूकम्प, बाढ़, सूखा, अकाल, महामारी, तूफान आदिको होने ही नहीं देते। यदि होनेपर आपका नियन्त्रण चलता तो आप अपने जीवनमें किसी भी प्रकारकी प्रतिकूल परिस्थितिका निर्माण होने ही नहीं देते, सदैव अनुकूलताके सागरमें स्नान करते, अपने शरीरको सुन्दर, सुडौल, नीरोग और शक्तिशाली बनाये रखते।

'होना' प्रभुका विभाग है—निम्नलिखित चार प्रश्नोंपर गम्भीरतासे विचार कीजिये—(१) होना किसे कहते हैं, इसकी क्या परिभाषा है, (२) होना किसका विभाग है, होना कौन करता है, होनेको करनेवाला कौन है, (३) होनेको करनेवाला कैसा है तथा (४) वह होनेको क्यों करता है, होनेके पीछे क्या रहस्य है? इन प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) होनेकी परिभाषा—जिसे आप अपने लिये नहीं करते, अपने लिये नहीं चाहते, उसे 'होना' कहते हैं। आपके न करनेपर भी, आपके द्वारा कोई प्रयास न करनेपर भी, आपके न चाहनेपर भी, अपनी तरफसे पूरी सावधानीसे अपना कार्य करनेपर भी, बरबस, आपके साथ स्वतः जो

कुछ हो जाता है, उसीका नाम है 'होना'।

(२) 'होने' को करनेवाला कौन है?—जो साधक प्रभुकी सत्तामें विश्वास करते हैं, प्रभुको मानते हैं, उनके अनुसार 'होने' को करनेवाले प्रभु हैं, 'होना' प्रभुका विभाग है। करनेमें सावधानी रखनेके बावजूद भी आपके साथ जो कुछ स्वतः होता है, वह प्रभुकी आज्ञासे होता है। उनकी आज्ञाके बिना न आपकी तथा न आपके परिवारजनोंकी मृत्यु होती है, न आपके साथ कोई दुर्घटना, न बीमारी, न व्यापारिक नुकसान, न आपका अपमान। उनकी आज्ञाके बिना आपके जीवनमें किसी भी प्रकारकी 'प्रतिकूल परिस्थिति'का निर्माण हो ही नहीं सकता। स्मरण रहे, प्रतिकूल परिस्थितिका निर्माण दो प्रकारसे होता है—पहला अपने-आप, बिना किसी माध्यमके। इसमें आपको यह पता ही नहीं चलता कि इस प्रतिकूलताका निर्माण किसने किया। उदाहरण लीजिये—आप रात्रिमें आरामसे स्वस्थ अवस्थामें सोये, अचानक पक्षाघात हो गया, आप अपनी कार चला रहे हैं, सड़क खाली है कार उलट गयी। दूसरा, प्रतिकूल परिस्थितिके निर्माणमें माध्यम बननेवाला व्यक्ति आपको साफ-साफ दिखायी देगा, आपको पता चल जायगा कि अमुक व्यक्तिके कारण मेरे जीवनमें प्रतिकूलता आयी है। उदाहरण लीजिये—आप नींदमें सो रहे हैं, आपके पड़ोसीने आपपर हमला कर दिया, आपको चोट लगी, लकवा हो गया। आप कार चला रहे हैं सामनेवालेने आपकी कारको टक्कर मार दी। दोनोंकी गिनती 'होने'में होगी।

(३) 'होने'को करनेवाला कैसा है?—संतवाणी, ग्रन्थवाणी और भक्तवाणीके अनुसार 'होने'को करनेवाले प्रभु सर्वसामर्थ्यवान् हैं, परम दयालु हैं, परम करुणासागर हैं, पतितपावन हैं, अधमोद्धारक हैं, क्षमासिन्धु हैं, परम सुहृद् हैं, अहैतुकी कृपा करनेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वत्र हैं, सबका भरण-पोषण करनेवाले माता-पिता हैं, इस जगत्को बनाने तथा चलानेवाले हैं, इस जगत्के मालिक हैं। प्रभुकी महिमाका कोई पारावार नहीं है। वे कैसे हैं, यह तो वे ही बता सकते हैं, जिनको उन्होंने अपनी कृपासे कुछ अनुभव करवाया है। उपर्युक्त विशेषताएँ तो उनकी महिमाका कणमात्र संकेत हैं।

(४) 'होने' का रहस्य—यदि आप इस बातको समझ लें, इस रहस्यको जान लें कि प्रभु 'होने'को क्यों करते हैं तो आपको होनेमें प्रसन्न रहनेकी शक्ति मिल जायगी। विचार कीजिये, होना क्या है—होना आपके लिये आपके परम सुहृद् प्रभुका आदेश है, उपदेश है, आज्ञा है, संदेश-निर्देश है, इशारा है, संकेत है। 'होना' आपके लिये आपके प्रभुका जजमेण्ट—फैसला है।

विशेषताएँ—प्रभुके फैसले या 'होने'की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(१) अहितकर नहीं—करुणासागर, परम सुहृद् प्रभुकी तरफसे आपके साथ जो कुछ स्वतः होता है, उससे आपका कभी अहित नहीं हो सकता। इस आधारपर आपको 'होने'में सदैव निश्चिन्त एवं निर्भय रहना चाहिये। ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिये कि प्रभुने ऐसा यह क्या कर डाला, अब क्या होगा, कैसे होगा? मैं अनाथ हो गया आदि।

(२) सदैव हितकर—'होना' सदैव हितकर ही होता है। आपकी अल्प दृष्टि और अल्प बुद्धिसे 'होना' आपको अपने लिये अहितकर दिख सकता है। 'अहितकर' लगना—यह आपकी बुद्धिका निर्णय है। प्रभुकी बुद्धि एवं दृष्टि आपकी बुद्धि और दृष्टिकी तुलनामें अनन्त गुनी अधिक है। इसलिये उनका निर्णय परम हितकारी ही होता है। इस आधारपर होनेमें आपको खूब प्रसन्न रहना चाहिये।

(३) प्रतिकूलताका रहस्य—अपनी तरफसे करनेमें पूर्ण सावधानी रखनेपर भी आपके जीवनमें प्रभुके आदेशसे जिस प्रतिकूलताका निर्माण स्वतः अथवा किसीके माध्यमसे होता है। उसके पीछे निम्नलिखितमेंसे कोई भी कारण हो सकता है—

(क) अनुकूल परिस्थितिका दुरुपयोग करना।

(ख) करनेमें असावधान रहना।

(ग) पराधीनताका नाश।

(घ) प्रभुके द्वारा आपका सुधार किया जाना।

विचार करनेपर आपको स्पष्ट अनुभव होगा कि इन सबमें आपका परम हित छिपा हुआ है। आपके परम हितके लिये उस प्रतिकूलताका निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक था। यदि प्रभु उस प्रतिकूलताको नहीं भेजते तो आपको भीषण नुकसान होता। प्रभुनिर्मित प्रतिकूलताका रहस्य है—भयंकर हानिसे आपकी रक्षा करके आपका परम हित करना। आइये, इसपर विचार करें।

(क) अनुकूल परिस्थितिका दुरुपयोग—इसका आशय

है—अनुकूलताके सुखको अपने जीवनका लक्ष्य मानकर उसका 'भोग' करना, उसमें राजी या सुखी होना और दिन-रात सुख-सामग्रीके संग्रह, उसमें वृद्धि तथा उसको बनाये रखनेके प्रयासोंमें लीन रहना। उसके आगे कुछ नहीं सोचना, कुछ नहीं करना। भगवान्‌का पूजन भी सुख-सामग्रीकी वृद्धि और सुरक्षाके लिये करना। यदि आप अनुकूलताके सुखको ही अपने जीवनका लक्ष्य मान लेंगे तो वह सुख न रहनेपर आपको भयंकर दुःख होगा और शान्तिकी तरफ आपकी दृष्टि ही नहीं जायगी। आप शान्तिकी बात कभी नहीं सोचेंगे। स्मरण रहे, अनुकूलताका सुख सदैव रह ही नहीं सकता, क्योंकि यहाँकी हर चीज, प्रत्येक परिस्थिति प्रतिपल बदल रही है। प्रतिकूलता भेजकर प्रभुने आपको चेतावनी दी है—प्यारे! क्षणिक सीमित सुखमें मत फँसो, यह सुख रहनेवाला नहीं है, यह जा रहा है। सदैव रहनेवाले सुख (शान्ति)-की खोज करो, उसे प्राप्त करो। वही तुम्हारे जीवनका लक्ष्य है। यदि प्रभु प्रतिकूलता नहीं भेजते तो आप अनन्त कालतक 'सीमित सुख'के कुचक्रमें फँसे रहते। सुख भोगते अपनी इच्छासे और दुःख भोगना पड़ता विवशतासे।

(ख) 'करने' में असावधानी—'प्रतिकूलता' करनेमें असावधानीका संकेत है। गम्भीरतासे विचार करनेपर आपको अपनी किसी-न-किसी असावधानीका पता चलेगा। 'प्रतिकूलता' उस असावधानीको मिटानेका संदेश है। यदि वह असावधानी होती ही रहती तो आपको काफी अधिक नुकसान होता। प्रतिकूलता भेजकर प्रभुने आपको भविष्यमें होनेवाले भयंकर नुकसानसे बचाया है।

(ग) पराधीनताका नाश—यदि आप 'अपने' लिये किसी भी नाशवान् वस्तु, व्यक्ति, परिवारजन अथवा अपने शरीरकी आवश्यकता समझते हैं तो आप पराधीन हैं। जो व्यक्ति अपनेको पराधीन बना लेता है, उसे कभी भी स्थायी प्रसन्नता नहीं मिल सकती। उसके चेतन-अचेतन मनमें हर समय वस्तु, व्यक्ति, शरीर आदिके वियोगका भय बना रहता है और इनका वियोग हो जानेपर उसे भयंकर दुःख होता है। नाशवान्‌का वियोग अवश्य होगा। इसलिये पराधीन व्यक्तिको दुःख भोगना ही पड़ेगा। प्रतिकूलता आपको यह संदेश देती है कि आप पराधीन न रहें, अपनी प्रसन्नताको नाशवान् वस्तुओं तथा व्यक्तियोंपर आधारित न रखें, स्वाधीन हो जायँ। यदि प्रतिकूलता नहीं आती तो आप स्वाधीन होनेकी बात कभी नहीं सोचते और सदैव पराधीनताजनित सुख-दुःखमें फँसे रहते।

(घ) प्रभुद्वारा किया जानेवाला सुधार—आपके पास तीन शरीर हैं। हाड़, मांस, रक्त, नाडियोंसे बना हुआ ढाँचा जिसमें यथास्थान विभिन्न इन्द्रियाँ लगी हुई हैं। यह स्थूल शरीर है। आपके भाव, आपका चिन्तन आपका सूक्ष्म शरीर है। आपको 'मैंपन'का जो आभास होता है वही आपका कारण शरीर है। आपके सूक्ष्म शरीरमें मोह, ममता तथा कामना और कारण शरीरमें अहंकाररूपी रोगका खतरनाक जहर फैल रहा था। उस जहरसे आप दिन-रात दुःखी, चिन्तित, परेशान तथा मानसिक तनावसे ग्रस्त थे, दीनता और अभिमानकी अग्निमें झुलस रहे थे। करुणासागर प्रभुसे आपका दुःख सहन नहीं हुआ। इसलिये उन्होंने आपका ऑपरेशन करके सुधार कर डाला। जिस प्रकार आप अपने बालकके जहरीले फोड़ेका ऑपरेशन करवाते हैं, उसके रोनेकी परवाह नहीं करते, उसी प्रकार संसारके सबसे कुशल चिकित्सक प्रभुने प्रतिकूलताके द्वारा आपका ऑपरेशन करके आपके जहरको बाहर निकाला है।

यदि प्रभु मोह, ममता, कामना, अहंकारके जहरको बाहर नहीं निकालते तो अनन्त कालतक आप दुःखके सागरमें डूबते रहते। व्यक्तियोंको अपना मानकर उनसे सुखकी आशा रखना मोह है। वस्तुओंको मेरा मानकर सुखकी आशा रखना ममता है। मैं जैसा चाहूँ वैसा ही दूसरे लोग करें ताकि मुझे सुख मिले और मैं जैसा नहीं चाहूँ वैसा कोई नहीं करे—ऐसा सोचना कामना है। शुभ कार्य मैं कर रहा हूँ—ऐसा सोचना ही अहंकार है। ऑपरेशन करके प्रभुने आपके सांसारिक बन्धनको तोड़ा है, आपके जीवनको अपनी तरफ मोड़ा है, आपको एक नयी दिशा, नया चिन्तन, नया जीवन दिया है जिसमें अपार प्रेम और आनन्द है। अब आप परम शान्ति, जीवन्मुक्ति, भगवद्भक्ति तथा भगवद्दर्शनके अलौकिक आनन्दमें सराबोर हैं। यही आपके जीवनकी सर्वोच्च सफलता है।

इस दृष्टिसे 'प्रतिकूलता' प्रभुका सबसे बड़ा वरदान है।

विदुरनीति

तीसरा अध्याय

[गताङ्क पृ०-सं० ५८६ से आगे]

धृतराष्ट्र उवाच

ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे॥ १॥

धृतराष्ट्रने कहा—महाबुद्धे! तुम पुनः धर्म और अर्थसे युक्त बातें कहो, इन्हें सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती। इस विषयमें तुम अद्भुत भाषण कर रहे हो॥ १॥

विदुर उवाच

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते॥ २॥
आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो।
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि॥ ३॥
यावत् कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते।
तावत् स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते॥ ४॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विरोचनस्य संवादं केशिन्यर्थे सुधन्वना॥ ५॥
स्वयंवरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः।
रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया॥ ६॥
विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह।
प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह केशिनी॥ ७॥

विदुरजी बोले—सब तीर्थोंमें स्नान और सब प्राणियोंके साथ कोमलताका बर्ताव—ये दोनों एक समान हैं अथवा कोमलताके बर्तावका विशेष महत्त्व है॥ २॥ विभो! आप अपने पुत्र कौरव-पाण्डव—दोनोंके साथ समानरूपसे कोमलताका बर्ताव कीजिये। ऐसा करनेसे इस लोकमें महान् सुयश प्राप्त करके मरनेके पश्चात् आप स्वर्गलोकमें जायँगे॥ ३॥ पुरुषश्रेष्ठ! इस लोकमें जबतक मनुष्यकी पावन कीर्तिका गान किया जाता है, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ४॥ इस विषयमें उस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसमें 'केशिनी' के लिये सुधन्वाके साथ विरोचनके विवादका वर्णन है॥ ५॥ राजन्! एक समयकी बात है, केशिनी नामवाली एक अनुपम सुन्दरी कन्या सर्वश्रेष्ठ पतिको वरण करनेकी इच्छासे स्वयंवर-सभामें उपस्थित हुई॥ ६॥ उसी समय दैत्यकुमार विरोचन उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे वहाँ आया। तब केशिनीने वहाँ दैत्यराजसे इस प्रकार बातचीत की॥ ७॥

केशिन्युवाच

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद्विरोचन।
अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति॥ ८॥

केशिनी बोली—विरोचन! ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं या दैत्य? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं तो सुधन्वा ब्राह्मण ही मेरे शय्यापर क्यों न बैठे? अर्थात् मैं सुधन्वासे विवाह क्यों न करूँ?॥ ८॥

विरोचन उवाच

प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः।
अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः॥ ९॥

विरोचनने कहा—केशिनी! हम प्रजापतिकी श्रेष्ठ संतानें हैं, अतः सबसे उत्तम हैं। यह सारा संसार हमलोगोंका ही है। हमारे सामने देवता क्या हैं? और ब्राह्मण कौन चीज हैं?॥ ९॥

केशिन्युवाच

इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ॥ १०॥

केशिनी बोली—विरोचन! इसी जगह हम दोनों प्रतीक्षा करें, कल प्रातःकाल सुधन्वा यहाँ आयेगा, फिर मैं तुम दोनोंको एकत्र उपस्थित देखूँगी॥ १०॥

विरोचन उवाच

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे।
सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टासि संगतौ॥ ११॥

विरोचन बोला—कल्याणि! तुम जैसा कहती हो, वही करूँगा। भीरु! प्रातःकाल तुम मुझे और सुधन्वाको एक साथ उपस्थित देखोगी॥ ११॥

विदुर उवाच

अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले।

विदुरजी कहते हैं—राजाओंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्र! इसके बाद जब रात बीती और सूर्यमण्डलका उदय हुआ, उस

अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राजसत्तम।
विरोचनो यत्र विभो केशिन्या सहितः स्थितः॥ १२॥
सुधन्वा च समागच्छत् प्रह्लादिं केशिनीं तथा।
समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ।
प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः॥ १३॥

सुधन्वोवाच

अन्वालभे हिरण्मयं प्राह्लादे ते वरासनम्।
एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वासेऽहं त्वया सह॥ १४॥

विरोचन उवाच

तवार्हते तु फलकं कूर्चं वाप्यथवा बृसी।
सुधन्वन्न त्वमर्होऽसि मया सह समासनम्॥ १५॥

सुधन्वोवाच

पितापुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि।
वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम्॥ १६॥
पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः।
बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किंचन बुध्यसे॥ १७॥

विरोचन उवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः।
सुधन्वन् विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥ १८॥

सुधन्वोवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥ १९॥

विरोचन उवाच

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
न तु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित्॥ २०॥

सुधन्वोवाच

पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत्॥ २१॥

विदुर उवाच

एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा।
विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति॥ २२॥

प्रह्लाद उवाच

इमौ तौ सम्प्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह।
आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ॥ २३॥

समय सुधन्वा उस स्थानपर आया जहाँ विरोचन केशिनीके साथ उपस्थित था॥ १२॥ भरतश्रेष्ठ! सुधन्वा प्रह्लादकुमार विरोचन और केशिनीके पास आया। ब्राह्मणको आया देख केशिनी उठ खड़ी हुई और उसने उसे आसन, पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया॥ १३॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लादनन्दन! मैं तुम्हारे इस सुवर्णमय सुन्दर सिंहासनको केवल छू लेता हूँ, तुम्हारे साथ इसपर बैठ नहीं सकता; क्योंकि ऐसा होनेसे हम दोनों एक समान हो जायँगे॥ १४॥

विरोचनने कहा—सुधन्वन्! तुम्हारे लिये तो पीढ़ा, चटाई या कुशका आसन उचित है; तुम मेरे साथ बराबरके आसनपर बैठने योग्य हो ही नहीं॥ १५॥

सुधन्वाने कहा—पिता और पुत्र एक साथ एक आसनपर बैठ सकते हैं; दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध, दो वैश्य और दो शूद्र भी एक साथ बैठ सकते हैं, किंतु दूसरे कोई दो व्यक्ति परस्पर एक साथ नहीं बैठ सकते॥ १६॥ तुम्हारे पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर ही मेरी सेवा किया करते हैं। तुम अभी बालक हो, घरमें सुखसे पले हो; अतः तुम्हें इन बातोंका कुछ भी ज्ञान नहीं है॥ १७॥

विरोचन बोला—सुधन्वन्! हम असुरोंके पास जो कुछ भी सोना, गौ, घोड़ा आदि धन है, उसकी मैं बाजी लगाता हूँ, हम-तुम दोनों चलकर जो इस विषयके जानकार हों, उनसे पूछें कि हम दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है?॥ १८॥

सुधन्वा बोला—विरोचन! सुवर्ण, गाय और घोड़ा तुम्हारे ही पास रहें, हम दोनों प्राणोंकी बाजी लगाकर जो जानकार हों, उनसे पूछें॥ १९॥

विरोचनने कहा—अच्छा, प्राणोंकी बाजी लगानेके पश्चात् हम दोनों कहाँ चलेंगे? मैं न तो देवताओंके पास जा सकता हूँ और न कभी मनुष्योंसे ही निर्णय करा सकता हूँ॥ २०॥

सुधन्वा बोला—प्राणोंकी बाजी लग जानेपर हम दोनों तुम्हारे पिताके पास चलेंगे। [मुझे विश्वास है कि] प्रह्लाद अपने बेटेके लिये भी झूठ नहीं बोल सकते हैं॥ २१॥

विदुरजी कहते हैं—इस तरह बाजी लगाकर परस्पर क्रुद्ध हो विरोचन और सुधन्वा दोनों उस समय वहाँ गये, जहाँ प्रह्लादजी थे॥ २२॥

प्रह्लादने (मन-ही-मन) कहा—जो कभी भी एक साथ नहीं चले थे, वे ही दोनों ये सुधन्वा और विरोचन आज साँपकी तरह क्रुद्ध होकर एक ही राहसे आते दिखायी देते हैं॥ २३॥

किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह।
विरोचनैतत् पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना॥ २४॥

[फिर विरोचनसे कहा—] विरोचन! मैं तुमसे पूछता हूँ, क्या सुधन्वाके साथ तुम्हारी मित्रता हो गयी है? फिर कैसे एक साथ आ रहे हो? पहले तो तुम दोनों कभी एक साथ नहीं चलते थे॥ २४॥

विरोचन उवाच

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे।
प्रह्लाद तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदेः॥ २५॥

विरोचन बोला—पिताजी! सुधन्वाके साथ मेरी मित्रता नहीं हुई है। हम दोनों प्राणोंकी बाजी लगाये आ रहे हैं। मैं आपसे यथार्थ बात पूछता हूँ। मेरे प्रश्नका झूठा उत्तर न दीजियेगा॥ २५॥

प्रह्लाद उवाच

उदकं मधुपर्कं वाप्यानयन्तु सुधन्वने।
ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरी कृता॥ २६॥

प्रह्लादने कहा—सेवको! सुधन्वाके लिये जल और मधुपर्क लाओ। [**फिर सुधन्वासे कहा**—] ब्रह्मन्! तुम मेरे पूजनीय अतिथि हो, मैंने तुम्हारे लिये सफेद गौ खूब मोटी-ताजी कर रखी है॥ २६॥

सुधन्वोवाच

उदकं मधुपर्कं च पथिष्वेवार्पितं मम।
प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः।
किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहो स्विद् विरोचनः॥ २७॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लाद! जल और मधुपर्क तो मुझे मार्गमें ही मिल गया है। तुम तो जो मैं पूछ रहा हूँ, उस प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर दो—क्या ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं अथवा विरोचन?॥ २७॥

प्रह्लाद उवाच

पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः।
तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत्॥ २८॥

प्रह्लाद बोले—ब्रह्मन्! मेरे एक ही पुत्र है और इधर तुम स्वयं उपस्थित हो; भला तुम दोनोंके विवादमें मेरे-जैसा मनुष्य कैसे निर्णय दे सकता है?॥ २८॥

सुधन्वोवाच

गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद्वान्यत् स्यात् प्रियं धनम्।
द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया॥ २९॥

सुधन्वा बोला—मतिमन्! तुम्हारे पास गौ तथा दूसरा जो कुछ भी प्रिय धन हो, वह सब अपने औरस पुत्र विरोचनको दे दो; परंतु हम दोनोंके विवादमें तो तुम्हें ठीक-ठीक उत्तर देना ही चाहिये॥ २९॥

प्रह्लाद उवाच

अथ यो नैव प्रब्रूयात् सत्यं वा यदि वानृतम्।
एतत् सुधन्वन् पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत्॥ ३०॥

प्रह्लादने कहा—सुधन्वन्! अब मैं तुमसे यह बात पूछता हूँ—जो सत्य न बोले अथवा असत्य निर्णय करे, ऐसे दुष्ट वक्ताकी क्या स्थिति होती है?॥ ३०॥

सुधन्वोवाच

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः।
यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत्॥ ३१॥
नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः।
अमित्रान् भूयसः पश्येद् यः साक्ष्यमनृतं वदेत्॥ ३२॥
पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते॥ ३३॥
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदेः॥ ३४॥

सुधन्वा बोला—सौतवाली स्त्री, जूएमें हारे हुए जुआरी और भार ढोनेसे व्यथित शरीरवाले मनुष्यकी रातमें जो स्थिति होती है, वही स्थिति उलटा न्याय देनेवाले वक्ताकी भी होती है॥ ३१॥ जो झूठा निर्णय देता है, वह राजा नगरमें कैद होकर बाहरी दरवाजेपर भूखका कष्ट उठाता हुआ बहुत-से शत्रुओंको देखता है॥ ३२॥ पशुके लिये झूठ बोलनेसे पाँच पीढ़ियोंको, गौके लिये झूठ बोलनेपर दस पीढ़ियोंको, घोड़ेके लिये असत्य भाषण करनेपर सौ पीढ़ियोंको और मनुष्यके लिये झूठ बोलनेपर एक हजार पीढ़ियोंको मनुष्य नरकमें ढकेलता है॥ ३३॥ सोनेके लिये झूठ बोलनेवाला भूत और भविष्य सभी पीढ़ियोंको नरकमें गिराता है। पृथ्वी तथा स्त्रीके लिये झूठ कहनेवाला तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है, इसलिये तुम भूमि या स्त्रीके लिये कभी झूठ न बोलना॥ ३४॥

प्रह्लाद उवाच

मत्तः श्रेयानङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन।
मातास्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः॥ ३५॥
विरोचन सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव।
सुधन्वन् पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम्॥ ३६॥

सुधन्वोवाच

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः।
पुनर्ददामि ते पुत्रं यस्मात् प्रह्लाद दुर्लभम्॥ ३७॥
एष प्रह्लाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् कुमार्याः संनिधौ मम॥ ३८॥

विदुर उवाच

तस्माद् राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि।
मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन्॥ ३९॥
न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्॥ ४०॥
यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः॥ ४१॥
नैनं छन्दांसि वृजिनात् तारयन्ति
मायाविनं मायया वर्तमानम्।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षा-
श्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले॥ ४२॥
मद्यपानं कलहं पूगवैरं
भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम्।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं
वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः॥ ४३॥
सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं
शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च
नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त॥ ४४॥
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः।
एतानि चत्वार्यभयङ्कराणि
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि॥ ४५॥
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः॥ ४६॥
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात् पानपो द्विजः।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः॥ ४७॥
स्रुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समाः॥ ४८॥

प्रह्लादने कहा—विरोचन! सुधन्वाके पिता अङ्गिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है, इसकी माता भी तुम्हारी मातासे श्रेष्ठ है, अतः तुम आज सुधन्वासे हार गये॥ ३५॥ विरोचन! अब सुधन्वा तुम्हारे प्राणोंका मालिक है। सुधन्वन्! अब यदि तुम दे दो तो मैं विरोचनको पाना चाहता हूँ॥ ३६॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लाद! तुमने धर्मको ही स्वीकार किया है, स्वार्थवश झूठ नहीं कहा है; इसलिये अब इस दुर्लभ पुत्रको फिर तुम्हें दे रहा हूँ॥ ३७॥ प्रह्लाद! तुम्हारे इस पुत्र विरोचनको मैंने पुनः तुम्हें दे दिया; किंतु अब यह कुमारी केशिनीके निकट चलकर मेरा पैर धोये॥ ३८॥

विदुरजी कहते हैं—इसलिये राजेन्द्र! आप पृथ्वीके लिये झूठ न बोलें। बेटेके स्वार्थवश सच्ची बात न कहकर पुत्र और मन्त्रियोंके साथ विनाशके मुखमें न जायँ॥ ३९॥ देवतालोग चरवाहोंकी तरह डण्डा लेकर पहरा नहीं देते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धिसे युक्त कर देते हैं॥ ४०॥ मनुष्य जैसे-जैसे कल्याणमें मन लगाता है, वैसे-ही-वैसे उसके सारे अभीष्ट सिद्ध होते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है॥ ४१॥ कपटपूर्ण व्यवहार करनेवाले मायावीको वेद पापोंसे मुक्त नहीं करते; किंतु जैसे पंख निकल आनेपर चिड़ियोंके बच्चे घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार वेद भी अन्तकालमें उसे त्याग देते हैं॥ ४२॥ शराब पीना, कलह, समूहके साथ वैर, पति-पत्नीमें भेद पैदा करना, कुटुम्बवालोंमें भेदबुद्धि उत्पन्न करना, राजाके साथ द्वेष, स्त्री तथा पुरुषमें विवाद और बुरे रास्ते—ये सब त्याग देने योग्य बताये गये हैं॥ ४३॥ हस्तरेखा देखनेवाला, चोरी करके व्यापार करनेवाला, जुआरी, वैद्य, शत्रु, मित्र और नर्तक—इन सातोंको कभी भी गवाह न बनाये॥ ४४॥ आदरके साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौनका पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदरके साथ यज्ञका अनुष्ठान—ये चार कर्म भयको दूर करनेवाले हैं; किंतु ये ही यदि ठीक तरहसे सम्पादित न हों तो भय प्रदान करनेवाले होते हैं॥ ४५॥ घरमें आग लगानेवाला, विष देनेवाला, जारज संतानकी कमाई खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, शस्त्र बनानेवाला, चुगली करनेवाला, मित्रद्रोही, परस्त्रीलम्पट, गर्भकी हत्या करनेवाला, गुरुस्त्रीगामी, ब्राह्मण होकर शराब पीनेवाला, अधिक तीखे स्वभाववाला, कौएकी तरह काँय-काँय करनेवाला, नास्तिक, वेदकी निन्दा करनेवाला, ग्रामपुरोहित, व्रात्य, क्रूर तथा शक्ति रहते हुए रक्षाके लिये प्रार्थना करनेपर भी जो हिंसा करता है—ये सब-के-सब ब्रह्महत्यारोंके समान हैं॥ ४६—४८॥

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं
वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः
कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च॥ ४९॥
जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा
ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः॥ ५०॥
श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति॥ ५१॥
अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥ ५२॥
एतान् गुणांस्तात महानुभावा-
नेको गुणः संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं
सर्वान्गुणानेषु गुणो विभाति॥ ५३॥
अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके
स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भि-
श्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः॥ ५४॥
यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च
चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं
चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः॥ ५५॥
इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥ ५६॥
तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति॥ ५७॥
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥ ५८॥
सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः॥ ५९॥
पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते॥ ६०॥
तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥ ६१॥
नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥ ६२॥

जलती हुई आगसे सोनेकी पहचान होती है, सदाचारसे सत्पुरुषकी, व्यवहारसे साधुकी, भय आनेपर शूरकी, आर्थिक कठिनाईमें धीरकी और कठिन आपत्तिमें शत्रु एवं मित्रकी परीक्षा होती है॥ ४९॥ बुढ़ापा (सुन्दर) रूपको, आशा धीरताको, मृत्यु प्राणोंको, दोष देखनेकी आदत धर्माचरणको, क्रोध लक्ष्मीको, नीच पुरुषोंकी सेवा सत्स्वभावको, काम लज्जाको और अभिमान सर्वस्वको नष्ट कर देता है॥ ५०॥ शुभ कर्मोंसे लक्ष्मीकी उत्पत्ति होती है, प्रगल्भतासे वह बढ़ती है, चतुरतासे जड़ जमा लेती है और संयमसे सुरक्षित रहती है॥ ५१॥ आठ गुण पुरुषकी शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, दम, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, बहुत न बोलना, यथाशक्ति दान देना और कृतज्ञ होना॥ ५२॥ तात! एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणोंपर हठात् अधिकार जमा लेता है। जिस समय राजा किसी मनुष्यका सत्कार करता है, उस समय यह एक ही गुण (राजसम्मान) सभी गुणोंसे बढ़कर शोभा पाता है॥ ५३॥ राजन्! मनुष्यलोकमें ये आठ गुण स्वर्गलोकका दर्शन करानेवाले हैं; इनमेंसे चार तो संतोंके साथ नित्य सम्बद्ध हैं—उनमें सदा विद्यमान रहते हैं और चारका सज्जन पुरुष अनुसरण करते हैं॥ ५४॥ यज्ञ, दान, अध्ययन और तप—ये चार सज्जनोंके साथ नित्य सम्बद्ध हैं और इन्द्रियनिग्रह, सत्य, सरलता तथा कोमलता—इन चारोंका संतलोग अनुसरण करते हैं॥ ५५॥ यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ—ये धर्मके आठ प्रकारके मार्ग बताये गये हैं॥ ५६॥ इनमेंसे पहले चारोंका तो दम्भके लिये भी सेवन किया जा सकता है, परंतु अन्तिम चार तो जो महात्मा नहीं हैं, उनमें रह ही नहीं सकते॥ ५७॥ जिस सभामें बड़े-बूढ़े नहीं, वह सभा नहीं, जो धर्मकी बात न कहें, वे बूढ़े नहीं, जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और जो कपटसे पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है॥ ५८॥ सत्य, विनयका भाव, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और चमत्कारपूर्ण बात कहना—ये दस स्वर्गके साधन हैं॥ ५९॥ पापकीर्तिवाला मनुष्य पापाचरण करता हुआ पापरूप फलको ही प्राप्त करता है और पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ अत्यन्त पुण्यफलका ही उपभोग करता है॥ ६०॥ इसलिये प्रशंसित व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि बारम्बार किया हुआ पाप बुद्धिको नष्ट कर देता है॥ ६१॥ जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा पाप ही करता रहता है। इसी प्रकार बारम्बार किया हुआ पुण्य बुद्धिको बढ़ाता है॥ ६२॥

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति।
तस्मात् पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः॥ ६३॥
असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात् पापमाचरन्॥ ६४॥
अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा।
न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते॥ ६५॥
प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम्॥ ६६॥
दिवसेनैव तत् कुर्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत्।
अष्टमासेन तत् कुर्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत्॥ ६७॥
पूर्वे वयसि तत् कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत्।
यावज्जीवेन तत् कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत्॥ ६८॥
जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम्॥ ६९॥
धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते॥ ७०॥
गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥ ७१॥
ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च॥ ७२॥
द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी।
क्षत्रियः शीलभाग् राजंश्चिरं पालयते महीम्॥ ७३॥
सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥ ७४॥
बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च॥ ७५॥
दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा।
कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि॥ ७६॥
सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ।
पितृवत् त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत्॥ ७७॥

जिसकी बुद्धि बढ़ जाती है, वह मनुष्य सदा पुण्य ही करता है। इस प्रकार पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ पुण्यलोकको ही जाता है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह सदा एकाग्रचित्त होकर पुण्यका ही सेवन करे॥ ६३॥ गुणोंमें दोष देखनेवाला, मर्मपर आघात करनेवाला, निर्दयी, शत्रुता करनेवाला और शठ मनुष्य पापका आचरण करता हुआ शीघ्र ही महान् कष्टको प्राप्त होता है॥ ६४॥ दोषदृष्टिसे रहित शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष सदा शुभकर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ महान् सुखको प्राप्त होता है और सर्वत्र उसका सम्मान होता है॥ ६५॥ जो बुद्धिमान् पुरुषोंसे सद्बुद्धि प्राप्त करता है, वही पण्डित है, क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ही धर्म और अर्थको प्राप्तकर अनायास ही अपनी उन्नति करनेमें समर्थ होता है॥ ६६॥ दिनभरमें ही वह कार्य कर ले, जिससे रातमें सुखसे रह सके और आठ महीनोंमें वह कार्य कर ले, जिससे वर्षाके चार महीने सुखसे व्यतीत कर सके॥ ६७॥ पहली अवस्थामें वह काम करे, जिससे वृद्धावस्थामें सुखपूर्वक रह सके और जीवनभर वह कार्य करे, जिससे मरनेके बाद भी सुखसे रह सके॥ ६८॥ सज्जन पुरुष पच जानेपर अन्नकी, निष्कलङ्क जवानी बीत जानेपर स्त्रीकी, संग्राम जीत लेनेपर शूरकी और तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जानेपर तपस्वीकी प्रशंसा करते हैं॥ ६९॥ अधर्मसे प्राप्त हुए धनके द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह तो छिपता नहीं, उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है॥ ७०॥ अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले शिष्योंके शासक गुरु हैं, दुष्टोंके शासक राजा हैं और छिपे-छिपे पाप करनेवालोंके शासक सूर्यपुत्र यमराज हैं॥ ७१॥ ऋषि, नदी, महात्माओंके कुल तथा स्त्रियोंके दुश्चरित्रका मूल नहीं जाना जा सकता॥ ७२॥ राजन्! ब्राह्मणोंकी सेवा-पूजामें संलग्न रहनेवाला, दाता, कुटुम्बीजनोंके प्रति कोमलताका बर्ताव करनेवाला और शीलवान् राजा चिरकालतक पृथ्वीका पालन करता है॥ ७३॥ शूर, विद्वान् और सेवाधर्मको जाननेवाले—ये तीन प्रकारके मनुष्य पृथ्वीसे सुवर्णरूपी पुष्पका सञ्चय करते हैं॥ ७४॥ भारत! बुद्धिसे विचारकर किये हुए कर्म श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबलसे किये जानेवाले कर्म मध्यम श्रेणीके हैं, जङ्घासे होनेवाले कार्य अधम हैं और भार ढोनेका काम महान् अधम है॥ ७५॥ राजन्! अब आप दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दुःशासन तथा कर्णपर राज्यका भार रखकर उन्नति कैसे चाहते हैं?॥ ७६॥ भरतश्रेष्ठ! पाण्डव तो सभी उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हैं और आपमें पिताका-सा भाव रखकर बर्ताव करते हैं, आप भी उनपर पुत्रभाव रखकर उचित बर्ताव कीजिये॥ ७७॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरजीका नीतिवाक्यविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

हिन्दी-कवियोंके नीतिवचनामृत

(पं० श्रीउमाशंकरजी मिश्र 'रसेन्दु' आचार्य, एम्०ए०, बी०एड्०)

हिन्दी साहित्याकाशमें ऐसे-ऐसे ज्योतिष्क—नक्षत्रस्वरूप कविगण हुए हैं, जिनकी विमल नीति-काव्य-प्रभा मानवपथको अविराम आलोकित कर रही है। इनमें कुछ तो भुवनभास्करतुल्य हैं, कुछ सुधाकर और कुछ-कुछ प्रखर नक्षत्र-मल्लिकाओंकी भाँति अद्भुत आलोक प्रसारित कर रहे हैं। युगद्रष्टा गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा सूर, कबीर, दानवीर रहीम, वृन्द कवि, गिरधरदास, दीनदयाल, पं० रामचरित उपाध्याय, महापण्डित घाघकी युक्तियाँ और नीतियाँ अपने अचूक अर्थ-प्रभावके कारण स्वसिद्ध-सूत्रकी भाँति भारतीय जनमानसका कलकण्ठहार बन चुकी हैं। ऐसे अचूक शक्तियुक्त सरस दोहे, चौपाइयाँ एवं छन्द अपने असीम अर्थ-गाम्भीर्यकी शक्तिमत्तासे विलक्षण प्रभावकारी हैं। रीतिकालीन महाकवि बिहारीलालके जिस दोहेकी अभिव्यञ्जना-शक्तिने मिर्जा राजा जयसिंहके हृदयपटलको क्षणमात्रमें परिवर्तित कर दिया था वह दोहा इस प्रकार है—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास यह काल।
अली, कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

असार-संसार, वाणी-व्यवहार, राज-समाज, कर्तव्या-कर्तव्य, धर्माधर्म और संसारी सम्बन्धोंपर इन कवियोंकी नीतियाँ सदा-सर्वत्र द्रष्टव्य हैं। ये नीतियाँ मानव-जीवनपथकी सशक्त-सक्षम पथदर्शिका बनकर जीवनयात्राको निर्भय, निष्कलंक सम्पन्न कर देती हैं।

संसारकी असारताका तात्त्विक विश्लेषण करते हुए महात्मा कबीरने वास्तविक सत्यको उद्घाटित किया है। इस शाश्वत सत्यको स्वीकार करनेमात्रसे जीवनकी यथार्थता, दहीसे प्रकट नवनीतकी भाँति छलक आती है। अनित्य संसारमें मायाकी सम्मोहक चकाचौंधमें मनुष्य कैसा भूल गया है कि उसे नित्य सत्य वस्तुकी आत्मानुभूति भी विस्मृत हो चुकी है। सम्मोहक संसारी रूप कितना स्थिर है, इसकी अभिव्यञ्जना सेमर-फूलसे की गयी है—

ऐसा यह संसार है, जैसे सेमर फूल।
दिन दस के व्यौहार में, झूठे रंग न भूल॥

(कबीर)

संसारसागरकी यात्रा करता हुआ मनुष्य, दूसरेको देखकर कभी गर्वसे सिर ऊँचा करता है, कभी वह दूसरोंपर हँसता है, उसे इसका ध्यान ही नहीं रहता कि मेरी नौका भी अभी इसी सागरके मध्यमें चक्कर काट रही है, न जाने किस वायुके झोंकेसे डूब जाय। कविवाणी कितनी मार्मिकतासे ओत-प्रोत है, यह तो सहृदय भावुक ही समझता है—

कबिरा गर्ब न कीजिये, और न हँसिये कोय।
अजहूँ नाव समुद्र में, ना जाने का होय॥

संसारी लोगोंको पीयूषरससे ओत-प्रोत करनेका श्रेयस्कर और अतिपवित्र कार्य संत-महात्मा और मनीषी कविवर सदासे करते आये हैं। उन्होंने विषयानलदग्ध मानवको प्रेमामृतरससे सींचनेका गुरुतर कार्य किया है। हिन्दी-कवियोंकी नीतियाँ उपदेशात्मक, निर्देशात्मक एवं अन्योक्ति शैलीमें अभिव्यक्त हुई हैं। साहित्यिक दृष्टिसे भावसम्प्रेषणीयता एवं प्रभावोत्पादकताकी प्रधानतासे नीतिके छन्द सदैव लोकसमादृत हैं।

महात्मा श्रीतुलसीदासजीने प्रेमरसको कल्पतरुके सदृश सकल कामनासिद्ध सर्वोत्तम साधन स्वीकार करते हुए कलितरुसदृश अधर्मसेवनको निष्फल ही बताया है। ऐसी सुन्दर हितकारी सुनीतिका समादर सर्वथा सुख और शान्ति प्रदान करनेवाला है—

राम कामतरु परिहरत सेवत कलि तरु ठूँठ।
स्वारथ परमारथ चहत सकल मनोरथ झूँठ॥

(तुलसी)

इस प्रसंगमें हिन्दीके मध्यकालीन कवि 'सम्मन' के नीतिवचनामृतका उल्लेख करना भी औचित्यपूर्ण है। निम्नांकित सोरठा अपनी भाव सम्प्रेषणीयताके लिये स्मरणीय है—

सम्मन मन की भूल, सेवा करी करील की।
चाहत उन ते फूल, जिन डारन पत्ता नहीं॥

(सम्मन)

वाणी-व्यवहार—आज समाजमें मात्र वाणी-व्यवहारके

असंयमसे कटुतापूर्ण झंझावात-सा छा गया है। हिन्दी-कवियोंने हृदयविदारक, विषवत् वाणी-व्यवहारको त्याज्य बताया है; साथ ही मधुर वाणीको हृदय जीतनेका मन्त्र भी बता दिया है—

तुलसी मीठे बचन ते सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है परिहरु बचन कठोर॥

(तुलसी)

महात्मा कबीरदासजी का कहना है—

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन कौं सीतल करै, आपहु सीतल होय॥

राज-समाज—शासकोंके व्यापक प्रभाव-विस्तारसे सभी परिचित हैं। उत्तम राजव्यवस्था (शासन-प्रशासन), उत्तम स्वस्थ समाज, पारदर्शी एवं लोकोपकारी सरकारकी अपेक्षा सभी करते हैं। राज-समाजका सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। समाज अपने मुखियाके हाथोंमें देशकी बागडोर समर्पित कर देता है। मुखियाके उदात्त गुणों, उसके शीर्षस्थ कर्तव्योंको लक्षित करते हुए युगद्रष्टा विश्वकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी लिखते हैं—

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥

आज इसी विवेकके अभावके कारण अनेक वादोंका जन्म हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप शासन-प्रशासन विफल हो रहा है, प्रजा असंतुष्ट और उद्विग्न होती जा रही है। ऐसेमें हिन्दी-कवियोंके वचनामृत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

हिन्दी-साहित्यकारोंने नीतियोंके हितोपदिष्ट परम्पराका पूर्णतया निर्वहन किया है। मुगलकालमें मिर्जा राजा जयसिंह शाहजहाँ बादशाहकी ओरसे हिन्दू राजाओंको पराभूत करनेमें संलग्न थे। उनके कुकृत्योंको देखकर, उन्हींको लक्ष्य करके कविवर श्रीबिहारीलालने मर्मस्पर्शी नीति-सूत्रमन्त्रसे उन्हें परिवर्तित कर दिया था। आज भी उस नीतिका स्मरण तथा उसे हृदयंगम करनेकी आवश्यकता है—

स्वारथ सुकृत न श्रमु बृथा, देखि बिहंग बिचारि।
बाज पराये पाणि पर, तू पछीहि न मारि॥

(बिहारी)

यहाँ कतिपय विशिष्ट नीतिकार कवियोंकी उत्तम नीतियोंका उल्लेख किया जा रहा है—

संसारी लोगोंकी रीति—

हरे चरहिं तापहिं बरे जरत फरें पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ॥

(तुलसी)

सच्चे मित्रकी कसौटी—

कहि रहीम सम्पति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति-कसौटी जे कसे, सोही साँचे मीत॥

(रहीम)

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

(तुलसी)

कर्मकी प्रधानता और परिणाम—

'करम प्रधान बिस्व करि राखा।'

× × ×

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

(तुलसी)

परोपकार धर्म—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

(तुलसी)

अच्छे-बुरेकी पहचान—

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥

(तुलसी)

स्वार्थी मनुष्योंके कार्य—

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर॥

(रहीम)

समय-असमयकी बात—

जिहि अंचल दीपक दुर्‍यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥

(रहीम)

शाहोंका शाह कौन—

चाह गई, चिन्ता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सो जग साहनसाह॥

(कबीर)

शोचनीय कौन?—

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई॥
सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥

किसका जीवन व्यर्थ है—

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

धीर कौन—

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िअ सोच सकल हितकारी॥

किसके लिये क्या असम्भव है—

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥
(तुलसी)

कुमार्गगामीकी दशा—

इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥

क्या न करें—

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
(तुलसी)

संपत्ति-विपत्तिके स्थान—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥
(तुलसी)

कौन लोग त्याज्य हैं—

नारि करकसा कटहा घोर, हाकिम होइके खाइ अँकोर।
कपटी मित्र पुत्र है चोर, घग्घा इनको गहिरे बोर॥
(घाघ)

किन-किनको भेद नहीं बताना चाहिये—

नारिन सो लरिकान सो, भेद कहौ जनि कोइ।
वे दुराइ जानत नहीं, निहचै प्रगटै सोइ॥
(जान कवि)

संगका प्रभाव-कुप्रभाव—

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन॥
(रहीम)

प्रभुताका प्रभाव—

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥
(तुलसी)

स्वार्थकी व्यापकता—

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

बिना विचारे कार्यका परिणाम—

बिना बिचारे जो करै सो पीछे पछताय।
काम बिगारै आपनो जगमें होत हँसाय॥
(गिरधरदास)

सच्चा सेवक—

सेवक सोई जानिये, रहै बिपति में संग।
(वृन्दकवि)

रोषपूर्ण वचन नहीं बोलने चाहिये—

रोष न रसना खोलिये बरु खोलिए तरवारि।
सुनत बचन परिनाम हित बोलिय बचन विचारि॥
(वृन्दकवि)

रे सठ, बिन गोबिंद सुख नाहीं।
तेरौ दुःख दूरि करिबे कौं, रिधि सिधि फिरि-फिरि जाहीं॥
सिव, बिरंचि, सनकादिक मुनिजन इनकी गति अवगाहीं।
जगत-पिता जगदीस सरन बिनु, सुख तीनौं पुर नाहीं॥
और सकल मैं देखे ढूँढ़े, बादर की सी छाहीं।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, दुख कबहूँ नहिं जाहीं॥
(सूर-विनय-पत्रिका १२३)

नीतिके आख्यान—

(१)

'अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्'

जैनपुराणकी कथा है कि एक बार श्रीबलदेव, वासुदेव और सात्यकि—ये तीनों बिना किसी सेवक-सैनिकके वनमें भटक गये। बात यह थी कि तीनोंके घोड़े शीघ्रगामी थे। ये नगरसे तो सेवक-सैनिकोंके साथ ही निकले थे, किंतु इनके घोड़े बहुत आगे निकल गये, सैनिक पीछे रह गये। घोर वनमें सैनिकोंसे ये पृथक् हो गये। संध्या तो कबकी बीत चुकी थी, रात्रिका अन्धकार फैल रहा था। अब न आगे जाना सम्भव था और न पीछे लौटना। एक सघन वृक्षके नीचे रात्रि-विश्राम करनेका निश्चय हुआ। घोड़े बाँध दिये गये और उनपर कसी जीन भूमिपर उतार दी गयी।

रात्रिका प्रथम आधा प्रहर बीत चुका था। अन्तिम आधे प्रहरसे पूर्व तो तीनोंको ही प्रातःकृत्यके लिये उठ ही जाना था। बात केवल तीन प्रहर व्यतीत करनेकी थी। निश्चय हुआ कि बारी-बारीसे एक-एक व्यक्ति जगते हुए रक्षाका कार्य करे और शेष दो निद्रा लें। पहले सात्यकिको रक्षाका काम करना था। जब बलदेव और वासुदेव सो गये, तब वहाँ एक भयंकर पिशाच प्रकट हुआ। वह सात्यकिसे बोला—'मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, इन दोनोंको भक्षण कर लेने दो।'

सात्यकिने उसे डाँटा—'प्राण बचाना हो तो भाग जा यहाँसे। तनिक भी इधर-उधर की तो कचूमर निकाल दूँगा।'

पिशाचने लाल-लाल आँखें निकालीं—'तू नहीं मानता तो आ जा!'

पिशाच और सात्यकि आपसमें भिड़ गये। परंतु सात्यकि जितना ही क्रोध करते थे, पिशाचका आकार और बल उतना ही बढ़ता जाता था। उस पिशाचने सात्यकिको अनेक बार पटका। स्थान-स्थानसे सात्यकिका शरीर छिल गया। उनका मुख तथा घुटने सूज गये।

युद्ध करते हुए जब एक प्रहर हो गया, पिशाच स्वयं अदृश्य हो गया। सात्यकिने बलदेवजीको जगा दिया और स्वयं सो गये। परंतु सात्यकिके निद्रामग्न होते ही पिशाच फिर प्रकट हुआ। बलदेवजीसे भी उसने पहलेके समान बातें कीं और उनसे भी उसका द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। पूरे एक प्रहर द्वन्द्वयुद्ध चला। पिशाचका बल और आकार बढ़ता ही जाता था। बलदेवजीको भी उसने भरपूर तंग किया।

रात्रिके पिछले भागमें वासुदेव उठे। बलदेवजीके निद्रित हो जानेपर जब पिशाच प्रकट हुआ और वासुदेवको उसने निद्रित लोगोंको छोड़कर चले जानेको कहा, तब वे बोले—'तुम अच्छे आये। तुम्हारे साथ द्वन्द्वयुद्ध करनेमें एक प्रहर मजेसे बीतेगा। न निद्रा आयेगी और न आलस्य।'

पिशाच वासुदेवसे भी भिड़ गया। परंतु इस बार उसकी दुर्गति होनी थी। वह जब दाँत पीसकर घूसे या थप्पड़ चलाता था, तब वासुदेव हँस उठते थे—'ओह! तुम अच्छे वीर हो! तुममें उत्साह तो है।' इसका परिणाम यह होता था कि पिशाचका बल बराबर घटता जाता था और उसका आकार भी छोटा होता जा रहा था। अन्तमें तो वह एक छोटे कीड़े-जितना ही रह गया। वासुदेवने उसे उठाकर पटुकेके छोरमें बाँध लिया।

प्रातःकाल तीनों उठे। सात्यकिका मुख और घुटना इतना फूला था, उसे इतने घाव लगे थे कि उसे देखते ही वासुदेवने पूछा—'तुम्हें क्या हो गया है?'

सात्यकिने पिशाचकी बात बतलायी। उसकी बातें सुनकर श्रीबलदेव बोले—'ओह! बड़ा भयंकर पिशाच था वह। मुझे भी उसने बहुत तंग किया।'

वासुदेवने पटुकेके कोनेसे खोलकर पिशाचको आगे रख दिया और बोले—'यह रहा वह पिशाच! तुमलोगोंने इसे पहचाना ही नहीं। यह तो क्रोध है। जितना क्रोध तुम करते गये, उतना यह बढ़ता और बलवान् होता गया। यही इसका स्वरूप है। क्रोध न किया जाय तो इसका बल और विस्तार सब समाप्त हो जाता है।'

(२)

सहोदर भाइयोंकी पारस्परिक फूटसे विनाश होता है

[हाथी और कछुएकी कथा]

महाभारतने नीतिकी यह सीख दी है कि सहोदर भाइयोंमें आपसमें फूट होना ठीक नहीं, इस फूटका फायदा तीसरा व्यक्ति उठाता है और वह उनके विनाशका हेतु भी बन जाता है। अतः कल्याणकामी व्यक्तिको चाहिये कि वह अपने बन्धु-बान्धवोंसे मिलकर रहे, सबसे मैत्रीका व्यवहार करे। कथा इस प्रकार है—

प्राचीन कालकी बात है विभावसु तथा सुप्रतीक नामके दो भाई थे। विभावसु बड़े थे तथा सुप्रतीक छोटे। यद्यपि दोनों बड़े तपस्वी थे, किंतु धनके लोभके वशीभूत हो उनमें पारस्परिक विभेद उत्पन्न हो गया था। बड़े भाई विभावसु, सुप्रतीकको बहुत समझाते थे, किंतु सुप्रतीक मानते नहीं थे, वे धनका बँटवारा चाहते थे और अलग रहना चाहते थे। बहुत समझानेपर भी जब सुप्रतीक नहीं माने तो विभावसुने क्रुद्ध हो उन्हें शाप दे डाला—'जाओ तुम्हें हाथीकी योनिमें जन्म लेना पड़ेगा।' इसपर सुप्रतीकने कहा—'यदि ऐसी बात है तो तुम्हें भी मैं शाप देता हूँ कि तुम पानीके भीतर रहनेवाले कछुएकी योनि प्राप्त करोगे।' इस प्रकार दोनों भाई परस्परके शापवश दूसरे जन्ममें हाथी और कछुआ हो गये और एक सरोवरके पास रहने लगे।

उन दोनोंको जन्मान्तरीय वैरका स्मरण था। अतः वे दोनों एक-दूसरेको मारनेके लिये अवसर ढूँढ़ा करते थे।

एक दिनकी बात है जब गजराज और कच्छप दोनों सरोवरके पास युद्धके लिये सन्नद्ध थे, उसी समय पक्षिराज गरुड जो बहुत भूखे थे, उस सरोवरके पास पहुँचे। उन दोनोंके विशाल शरीरको देखकर महाबली गरुडकी बुभुक्षा और भी जाग्रत् हो उठी और वे मन-ही-मन सोचने लगे कि आज मुझे भरपेट आहार मिल गया है।

फिर क्या था! उन गरुडने बड़े वेगसे एक पंजेसे उस हाथी (विभावसु)-को तथा दूसरे पंजेसे कछुए (सुप्रतीक)-

को पकड़ लिया और वे पक्षिराज बड़े वेगसे आकाशमें उड़ चले एवं दूरतक उड़ते हुए एक पर्वतकी चोटीपर पहुँचकर उन्होंने उन दोनोंको अपना ग्रास बना डाला। (महा०, आदि० अ० २९-३०)
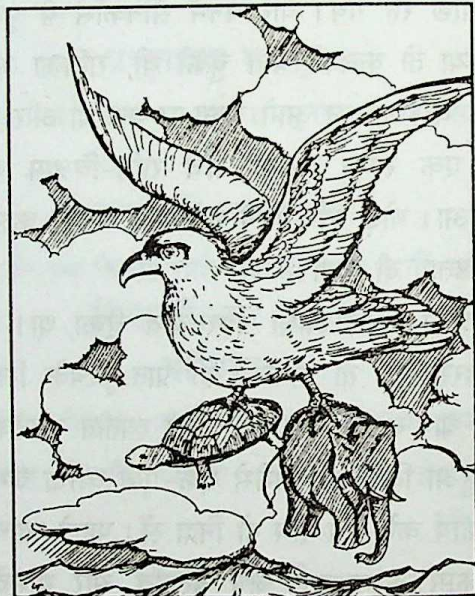
(३)

नम्रताके व्यवहारसे पराभव नहीं होता

[नदियों और समुद्रका आख्यान]

एक बार महाराज युधिष्ठिरने पितामह भीष्मजीसे पूछा—तात! यह बतलानेकी कृपा करें कि जब एक राजा दुर्बल और साधनहीन हो तो उसे पराक्रमी शत्रु राजाके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये?

भीष्मजीने कहा—भारत! मैं इस सम्बन्धमें नीतिमान् विज्ञ पुरुषोंद्वारा कही गयी एक नीतिका दृष्टान्त देता हूँ, जो समुद्र और नदियोंके बीच हुआ था। ध्यानसे सुनो।

एक समयकी बात है। समुद्रने नदियोंसे पूछा—नदियो! मैं देखता हूँ कि बाढ़के समय तुम सब बहुत-से बड़े-बड़े वृक्षोंको जड़से उखाड़कर अपने प्रवाहमें बहा ले आती हो, किंतु उनमें बेंतका कोई पेड़ नहीं दिखायी देता, इसमें क्या रहस्य है? इसपर देवनदी गङ्गाने कहा—नदीश्वर! आपकी बात बहुत अर्थवाली है। जो पेड़ हमारे प्रवाहमें बहकर आते हैं, वे हमारे पराक्रमको देखकर झुकते
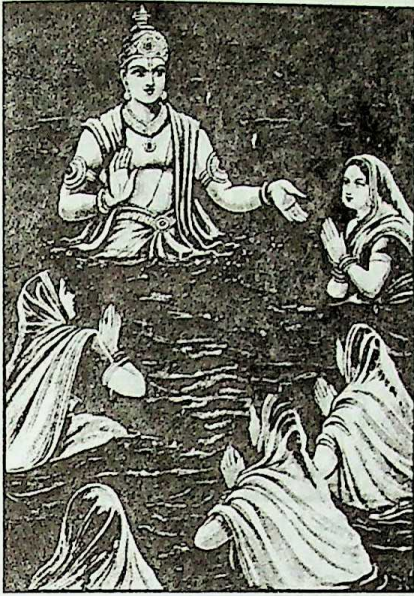
नहीं, नम्र नहीं होते, गर्वसे अकड़कर खड़े ही रहते हैं। अतः इस प्रतिकूल बर्तावके कारण उन्हें नष्ट होकर अपना स्थान छोड़ना पड़ता है, परंतु बेंत एक ऐसा वृक्ष है, जो ऐसा आचरण नहीं करता। वह हमारे आते हुए वेगको देखता है तो नम्रतासे झुक जाता है, परिस्थितिको पहचानता है और उसीके अनुसार बर्ताव करता है, कभी उद्दण्डता नहीं दिखाता और अनुकूल बना रहता है, उसमें कोई अकड़ नहीं रहती, इसीलिये वह अपने स्थानपर बना रहता है। जब हमारा वेग शान्त हो जाता है तो वह पुनः सीधा खड़ा हो जाता है। जो पौधे, वृक्ष, लता-गुल्म आदि हवा और पानीके वेगके सामने झुक जाते हैं तथा वेग शान्त होनेपर पुनः स्थिर हो जाते हैं, ऐसोंका कभी पराभव नहीं होता।

शील—विनय विजयका मूल है। अतः जीवनमें विनयको प्रतिष्ठितकर अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ते रहना चाहिये। ऐसेमें भगवत्तत्त्व बहुत दूर नहीं रहने पाता।

भीष्मजीने पुनः कहा—युधिष्ठिर! इसी प्रकार राजाको चाहिये कि वह अपने तथा परपक्षके पराक्रमको भलीभाँति समझकर नीतिके तत्त्वको समझनेका प्रयास करे। इस प्रकार समझकर जो व्यवहार करता है, उसकी कभी पराजय नहीं होती। (महा०, शान्ति० अ० ११३)
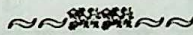
विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र— (१)

राजधर्मके आदर्श कोसलराज

काशीनरेशने कोसलपर आक्रमण कर दिया था। कोसलके राजाकी चारों ओर फैली कीर्ति उन्हें असह्य हो गयी थी। युद्धमें उनकी विजय हुई। पराजित नरेश वनमें भाग गये थे; किंतु प्रजा उनके वियोगमें व्याकुल थी और विजयीको अपना सहयोग नहीं दे रही थी। विजयके गर्वसे मत्त काशीनरेश प्रजाके असहयोगसे क्रुद्ध हो गये। शत्रुको सर्वथा समाप्त करनेके लिये उन्होंने घोषणा करा दी—'जो कोसलराजको ढूँढ़ लायेगा, उसे सौ स्वर्ण-मुद्राएँ पुरस्कारमें मिलेंगी।'

इस घोषणाका कोई प्रभाव नहीं हुआ। धनके लोभमें अपने धार्मिक राजाको शत्रुके हाथमें देनेवाला अधम वहाँ कोई नहीं था।

कोसलराज वनमें भटकते घूमने लगे। जटाएँ बढ़ गयीं। शरीर कृश हो गया। वे एक वनवासी दीखने लगे। एक दिन उन्हें देखकर एक पथिकने पूछा—'यह वन कितना बड़ा है? वनसे निकलने तथा कोसल पहुँचनेका मार्ग कौन-सा है?'

नरेश चौंके! उन्होंने पूछा—'आप कोसल क्यों जा रहे हैं?'

पथिकने कहा—'विपत्तिमें पड़ा व्यापारी हूँ। मालसे लदी नौका नदीमें डूब चुकी है। अब द्वार-द्वार कहाँ भिक्षा माँगता भटकता डोलूँगा। सुना है कि कोसलके राजा बहुत उदार हैं। अतएव उनके पास जा रहा हूँ।'

'तुम दूरसे आये हो। वनका मार्ग बीहड़ है। चलो, तुम्हें वहाँतक पहुँचा आऊँ।' कुछ देर सोचकर पथिकसे राजाने कहा।

पथिकके साथ वे काशिराजकी सभामें आये। अब उन जटाधारीको कोई पहचानता न था। काशिराजने पूछा—'आप कैसे पधारे?'

उन महत्तमने कहा—'मैं कोसलका राजा हूँ। मुझे

पकड़नेके लिये तुमने पुरस्कार घोषित किया है। अब पुरस्कारकी वे सौ स्वर्णमुद्राएँ इस पथिकको दे दो!'

सभामें सन्नाटा छा गया। सब बातें सुनकर काशिराज अपने सिंहासनसे उठे और बोले—'महाराज! आप-जैसे धर्मात्मा, परोपकारनिष्ठको पराजित करनेकी अपेक्षा उनके चरणाश्रित होनेका गौरव कहीं अधिक है। यह सिंहासन अब आपका है। मुझे अपना अनुचर स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये!'

व्यापारीको मुँहमाँगा धन प्राप्त हुआ। कोसल और काशी उसी दिन मित्रराज्य बन गये।

(२)

न्यायके आदर्श—राव रतनसिंह

उन दिनों बूँदीराज्यपर राव रतनसिंह हाड़ाका आधिपत्य था। राव रतनसिंह अत्यन्त धार्मिक, न्यायप्रिय एवं निर्भीक तथा वीर शासक थे। उनकी धर्मनिष्ठा एवं न्यायप्रियताकी दूर-दूरतक धाक थी।

एक दिन राव रतनसिंहके बीस-वर्षीय युवक पुत्र राजकुमार गोपीनाथने सड़कपर एक षोडशी युवतीको देखा तो देखता ही रह गया। ऐसी रूपसी थी वह।

राजकुमारने युवतीका पीछा किया और पता लगा लिया कि वह तरुणी एक ब्राह्मण युवककी नवविवाहिता पत्नी थी। दूसरे ही दिन राजकुमार उस ब्राह्मणके घर जा पहुँचा। कामान्ध राजकुमारने ब्राह्मण युवकको डरा-धमकाकर घरसे बाहर निकाल दिया और दरवाजेके अंदरसे साँकल बंद कर ली। ब्राह्मण युवकने भी बाहरसे साँकल लगा दी और दौड़ा हुआ वह बूँदी-नरेश राव रतनसिंहके पास पहुँचा।

'मेरा सर्वस्व लुट गया अन्नदाता!'— ब्राह्मण युवकने रोते-चिल्लाते हुए बूँदी-नरेशसे कहा।

'क्यों, क्या आपत्ति आ गयी, ब्राह्मण देवता!' राव रतनसिंहने विनम्रतापूर्वक पूछा।

'एक राजपूतने मेरी नवविवाहिता पत्नीके साथ बलात्कार किया है अन्नदाता!'—युवक कहते-कहते सुबकने लगा।

'क्या तेरे शरीरमें रक्त नहीं था, जो तूने यह भयंकर अत्याचार सहन किया? उस नराधम पापात्माका सिर उतार लेना चाहिये था'—राव रतनसिंहने क्रोधमें तमतमाकर कहा।

'किंतु उसकी हत्या करनेके अपराधमें मुझे दण्ड जो मिलता।'

'उस पापात्माका सिर उतारनेपर दण्ड नहीं, पुरस्कार दिया जाता। धर्मका हनन करनेवालेकी हत्या ही महान् पुण्य है।' रावने उत्तर दिया।

युवकने खेतसे गँड़ासा लिया और घर जा पहुँचा। दरवाजेकी साँकल खोलकर उसने दरवाजा खटखटाया। कामान्ध राजकुमार अपनी कामपिपासा शान्त करके बाहर निकला। ब्राह्मण युवकने तुरंत ही कामुक राजकुमारका सिर गँड़ासेसे अलग कर दिया।

समस्त बूँदीराज्यमें राजकुमारकी निर्मम हत्यासे आतंक छा गया। पुलिस थानेदारने तुरंत ब्राह्मण युवकको खूनसे सने गँड़ासे और खूनसे भीगे कपड़ोंसहित गिरफ्तार कर लिया।

युवकको हथकड़ी डालकर राजदरबारमें पेश किया गया।

'मैने राव साहबकी आज्ञासे ही राजकुमारकी हत्या की है'—ब्राह्मण युवकने बूँदी-नरेशकी ओर संकेत करते हुए थानेदारसे कहा।

'हाँ, मेरी आज्ञा लेकर ही इस वीर युवकने उस कामुक नरपिशाचका सिर उतारा है। राजाका यह धर्म है कि वह न्याय करते समय, अपने पुत्रके अपराधपर पर्दा न डालकर, उसे निष्पक्षतासे दण्ड दे'—रावने थानेदारको सम्बोधित करते हुए कहा।

ब्राह्मण युवककी हथकड़ियाँ खोल दी गयीं। बूँदीनरेश राव रतनसिंहने अपनी धर्मनिष्ठा एवं न्यायकी रक्षाके लिये अपने कामुक तथा दुराचारी पुत्रकी हत्यापर आँसू नहीं बहाये, अपितु गौरवका अनुभव किया।

(३)
महाराज मेघवाहन

महाराज मेघवाहन दिग्विजय करने निकले थे। समुद्रतटीय वनसे वे जा रहे थे कि उनके कानोंमें एक चीत्कार पड़ी—'मेरी रक्षा करो! कोई मेरे प्राण बचाओ!'

महाराजका रथ सेनासे आगे निकल आया था। अत: वे खड्ग लेकर रथसे कूद पड़े। सारथिको रथ वहीं रोके रहनेके लिये कहकर उन्होंने वनमें प्रवेश किया। सघन वनके भीतर एक चण्डिकामण्डप मिला। देवीकी पूजा हो चुकी थी और एक शबर-सेनापति पुरुष-बलि देनेको उद्यत था। जिसकी बलि दी जा रही थी, वही व्यक्ति चीत्कार कर रहा था। उसने महाराजको देखते ही कातर कण्ठसे पुकार की—'भद्रपुरुष! मेरी रक्षा करो।'

'डरो मत! सुरक्षित हो तुम!' महाराजने उसे आश्वासन दिया। और शबर-सेनापतिकी ओर मुड़े—'मेघवाहनके राज्यमें दूसरेपर, अत्याचार करनेका साहस करनेवाला तू कौन है? तुझे प्राणोंका भय नहीं है?'

शबर-सेनापति देखते ही समझ गया था कि ये स्वयं सम्राट् मेघवाहन न भी हों तो उनके कोई बहुत बड़े अधिकारी अवश्य होंगे। उसने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'मेरा पुत्र रुग्ण है। वह मरणासन्न हो गया है। देवताओंने उसके रोगमुक्त होनेका उपाय नर-बलि बतलाया है। मैं पुत्रकी प्राणरक्षाके लिये यह देवाज्ञाका पालन कर रहा हूँ। मेरे पुण्यकार्यमें आपको बाधक नहीं बनना चाहिये।'

'असहाय प्राणीका वध महापाप है। मोहान्ध होकर तुम इस पापमें प्रवृत्त हुए हो।' महाराजने कहा।

'आपके लिये जैसा यह अपरिचित है, वैसा ही मेरा पुत्र भी है। मैं पुत्रमोहसे ग्रस्त साधारण प्राणी हूँ; किंतु आप इसकी रक्षाके लिये मेरे पुत्रको मृत्युके मुखमें फेंक रहे हैं, यह कौन-सा पुण्य है?' उस बालकने आपका क्या बिगाड़ा है? शबर-सेनापतिने अभीतक बलि देनेका शस्त्र नीचे नहीं रखा था। वह कह रहा था—'मैं और मेरे परिवारके कई व्यक्तियोंका जीवन उस बालकको रक्षापर निर्भर है। आप एकको बचानेके प्रयत्नमें अनेकको हत्या अपने सिर ले रहे हैं।'

वध्यपुरुष बड़ी दीनता-याचनाभरी दृष्टिसे महाराजकी ओर देख रहा था। कई क्षण मौन रहकर महाराजने विचार किया। सोचकर वे बोले—'तुम्हें तो किसीकी भी बलि देनी है। मेरा कर्तव्य इस पुरुष तथा तुम्हारे पुत्र—दोनोंके प्राणोंकी रक्षा करना है। तुम इसे छोड़ दो और मेरी बलि देकर देवताको संतुष्ट करो।'

महाराजने हाथका खड्ग फेंक दिया। वे मुकुट उतारकर बलिस्थानपर पहुँच गये। बलिके लिये बँधे पुरुषको उन्होंने खोल दिया और स्वयं वहाँ खड़े होकर मस्तक झुका दिया।

'राजन्! आपके प्राण पूरी प्रजाकी रक्षाके लिये आवश्यक हैं। आप यह क्या कर रहे हैं? राजाको प्रजा, धन, परिवारकी चिन्ता त्यागकर अपनी प्राणरक्षा करनी चाहिये—यह नीति है।' शबर-सेनापतिने समझानेका प्रयत्न किया।

'तुम नीतिकी बात ठीक कहते हो; किंतु धर्म नीतिसे बहुत श्रेष्ठ है। मैं प्राणभयसे धर्म नहीं त्याग सकता। तुम शस्त्र उठाओ!' मेघवाहनने फिर सिर झुकाया।
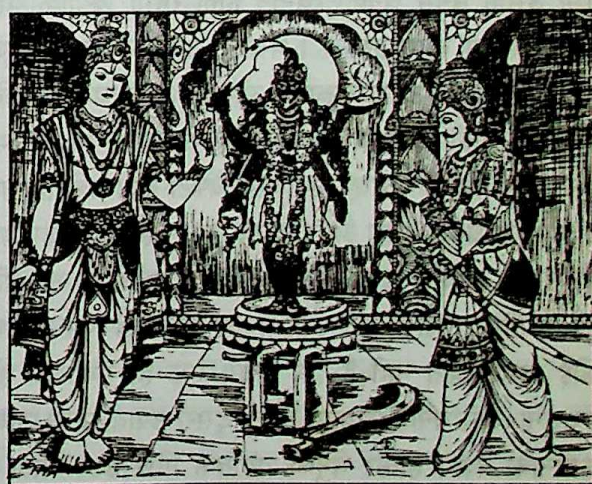
'महाराज मेघवाहनकी जय हो! आप धन्य हैं।' शबर-सेनापति तो कोई था ही नहीं। वहाँ तो लोकपाल वरुण खड़े थे आशीर्वाद देते हुए। महाराजकी धर्म-परीक्षाके लिये उन्होंने ही यह नाटक रचा था।

साधनोपयोगी पत्र

[१]

सकाम भक्ति और सकाम कर्म

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। सत्य तो यही है कि मनुष्य भ्रमवश जबतक विषयोंमें सुख मानता है, जबतक विषय-सुखकी खोजमें लगा है, तबतक उसे न तो शान्ति मिल सकती है और न वह यही कह सकता है कि मुझसे पाप नहीं बन सकते। एक मनुष्य धनकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीशङ्करजीकी उपासना-भक्ति करता है, पर जब कुछ समयतक उपासना करनेपर उसका कोई अनुकूल फल नहीं मिलता, तब वह शङ्करजीकी उस उपासनासे ऊबकर दूसरे किसी देवताकी उपासना करना चाहता है। अनुकूल फल न मिलनेपर वह इसी प्रकार बार-बार उपासना बदला करता है। कोई कह देता है कि तुम अबकी बार भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणकी उपासना करो, वह करता है, पर उसका मन तो सदा धनके अनुसन्धानमें लगा है। वह भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणकी या अन्य किसी देवताकी उपासना तो उस धनकी प्राप्तिके लिये करता है। अतएव धन-कामनामें लगा हुआ भगवान्‌की उपासना कैसे करेगा। तुलसी-माला चढ़ाते, आरती करते या दण्डवत् प्रणाम करते—जब देखो तभी उसके मनमें धनका चिन्तन होता रहेगा; क्योंकि वही उसका साध्य या उपास्य है। भगवान् और भगवान्‌की पूजा तो गौण वस्तु है, उपायस्वरूप है और यह आवश्यक नहीं कि किसी कार्यकी सिद्धिके लिये मनुष्य फल मिलनेमें विलम्ब होनेपर भी किसी एक ही उपायसे चिपटा रहे। वह तो जिस उपायसे शीघ्र-से-शीघ्र अपना कार्य सफल हो, उसी उपायसे काम लेगा। एकसे न हुआ, दूसरा सही, दूसरेसे भी न सिद्धि हुई तो तीसरा, चौथा और इसी प्रकार असंख्य। फिर यह भी कोई जरूरी बात नहीं है कि उपाय एक ही प्रकारका हो; उपासना-आराधनासे न काम हो तो दूसरा उपाय सोचा जाय। कामनाके वशमें होकर मनुष्य यहाँतक नीचे उतर आता है कि चोरी या झूठसे धन आता दीखता है तो चोरी-झूठको भी उपाय बना लेता है। उसे मतलब है धनसे, फिर चाहे वह उपासना-भक्तिसे आये, किसी व्यापार-व्यवसायसे आये या चोरी-असत्यसे आये। इसीसे भगवान्‌ने 'गीता' में कामनाको ही पापमें एकमात्र हेतु बतलाया है। यह कामना ही क्रोध बन जाती है। यही जीवका परम शत्रु है। अतएव जबतक विषयमें सुखकी सम्भावना दीखती है और जबतक विषयका अनुसन्धान एवं विषय-कामना है, तबतक पापसे मनुष्यका बच सकना अत्यन्त ही कठिन है। विषय-कामना भी रहे और पाप न हो, यह सम्भव नहीं है।

आपका यह लिखना सत्य है कि कामनासे भी भगवान्‌की भक्ति करना बहुत श्रेष्ठ है। पर विषय-कामना मनुष्यको भक्तिनिष्ठ होने देती नहीं। सकाम भक्तिमें भी अनन्यताकी—एकमात्र प्रभुसे ही वस्तु-प्राप्तिकी चाह होनेकी आवश्यकता है। जैसे कोई स्त्री गहने-कपड़े तो चाहती है पर चाहती है एकमात्र पतिसे ही। पतिके अतिरिक्त दूसरे पुरुषको या दूसरे किसी उपायको वह जानती ही नहीं। ऐसी स्थितिमें जैसे वह भी पतिव्रता है, यद्यपि केवल पति-सुखके लिये बिना किसी अन्य कामनाके पतिकी सेवा करनेवालीसे उसका स्तर नीचा है; इसी प्रकार अन्याश्रय और अन्योपायसे सर्वथा रहित होकर जो ध्रुवकी भाँति केवल भगवान्‌को ही जानता है और उन्हींसे अभीष्ट-सिद्धि चाहता है, उसकी समस्त कामनाओंका नाश करके भगवान् उसे अपनी परमकृपाका दान करते हैं—इसीलिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा—

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौ
जियँ जाचिअ जानकीजानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ,
जो जारति जोर जहानहि रे॥

'जगत्‌में किसीसे भी कुछ माँगना-जाँचना नहीं चाहिये, परंतु यदि जाँचना ही हो तो मनमें श्रीजानकी-जीवन भगवान् राघवेन्द्रसे जाँचना चाहिये, जिनको जाँचनेपर वह जाँचकता (कामना) ही जलकर भस्म हो जाती है, जो सारे जगत्‌को जबरदस्ती जला रही है।'

परंतु ऐसी अनन्य सकामता सुलभ नहीं है, इसमें बहुत बड़ी श्रद्धा और महान् विश्वासकी आवश्यकता है। विषय-कामनासे चित्त इतना मलिन हुआ रहता है, उसमें अश्रद्धा और अविश्वासका इतना विष भरा रहता है कि वह विषय-प्राप्तिमें जरा-सी देर या प्रतिकूलता दीखते ही क्षुब्ध हो उठता है और सारी भक्तिको भूलकर बड़े-से-बड़े पापको उपायरूपमें स्वीकार करनेको प्रस्तुत हो जाता है। सकामतामें यह दोष प्रायः आ जाता है।

यदि इस दोषसे मनुष्य बचा रहे तो सकाम भक्ति बहुत लाभदायक और अन्तमें भगवान्‌को प्राप्त करानेवाली सिद्ध होती है। भगवान्‌ने गीतामें सकाम भक्तोंको भी सुकृती और उदार कहा है और उनको अन्तमें अपनी प्राप्ति बतलायी है—**'मद्भक्ता यान्ति मामपि'** (७।२३) अतएव अनन्यनिष्ठापूर्वक भगवान्‌की सकाम भक्ति निःसंदेह अन्तमें भगवत्प्राप्तिरूप परमकल्याण प्राप्त करानेवाली होती है।

सात्त्विक देवताओंकी सकाम आराधना भी इस दृष्टिसे लाभदायक है। मनुष्य जैसा कार्य करता है, जिस प्रकारके कार्योंमें उसका मन लगा रहता है, उसी प्रकारका उसका स्वभाव बनता है। एक मनुष्य धनके लिये चोरी-ठगी करता है, दूसरा मनुष्य धनके लिये धनी मनुष्योंकी सेवा करता है, तीसरा व्यापार करता है, चौथा सात्त्विक आराधना आदि शास्त्रीय कर्मोंका अनुष्ठान करता है। कर्मका फल तो कर्मके अनुसार प्राप्त होता ही है; परंतु वह मनुष्य लगातार बहुत दिनोंतक श्रद्धा-सत्कारपूर्वक जिस कार्यमें लगा रहता है, वैसा ही उसका स्वभाव बन जाता है। सात्त्विक आराधनादि कर्मोंसे सात्त्विक स्वभाव बनता है, अन्तःकरणकी क्रमशः शुद्धि होती है और अन्तमें जीवन सत्त्वमुखी बनकर उसे भगवान्‌की ओर प्रवृत्त कर देता है। अतः सात्त्विक सकाम अनुष्ठान भी परम्परासे क्रमशः लाभ पहुँचाते हुए भगवान्‌की ओर ले जाते हैं, इसलिये ये न तो पाप हैं और न इनका निषेध ही है। अवश्य ही, विशुद्ध निष्काम भक्ति या भगवत्प्रेमकी तुलनामें इनका स्तर बहुत नीचा है और लक्ष्य भगवान् न होकर भोग होनेके कारण मार्गभ्रष्ट होकर पाप-पङ्कमें फँसनेका भय भी है ही। शेष भगवत्कृपा!

[२]

पत्नीका सुधार

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने पत्नीके सम्बन्धमें जो बातें लिखीं, वे सचमुच दुःखदायिनी हैं और उनको लेकर आपके मनमें क्षोभ होना स्वाभाविक है; परंतु भूल होना मनुष्यके जीवनमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मन-इन्द्रियाँ वशमें नहीं, कुसङ्ग मिल जाता है तो आदमी गिर जाता है। पुरुषोंसे भी तो भूलें होती हैं अतएव आप न तो अपनी हत्याकी बात सोचें, न किसी दूसरेकी ही। इसी प्रकार घर छोड़ने, संन्यासी हो जानेकी कल्पना भी न करें। आप अपनी पत्नीको अपने पास रखें, उसके अपराधको क्षमा करें। भूलका सुधार दण्डसे उतना अच्छा नहीं होता, जितना प्रेमसे होता है। आप उसपर दया करें, प्रेम करें, अपना सद्व्यवहार दें और उसके जीवनको पवित्र बना लें। भगवान् आपका और उसका मङ्गल करेंगे। इस विषयकी चर्चा छोड़ दें। पापका सच्चा प्रायश्चित्त है—पश्चात्ताप और भविष्यमें वैसा पाप न करनेका निश्चय। आप प्रेमपूर्ण व्यवहार करके उसको समझायेंगे तो पश्चात्ताप भी होगा और भविष्यमें पाप भी नहीं बनेगा। ऐसा होना बड़ी बात नहीं है। इसे असम्भव न समझें। घरमें रहें, सुखी रहें और सबको सुखी बनायें। शेष भगवत्कृपा!

[३]

सत्सङ्गकी इच्छा

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपकी महापुरुषोंके समीप रहने और साधन-भजन करनेकी इच्छा है सो तो बड़ी ही श्रेष्ठ इच्छा है। मानव-जीवनका यही तो सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है, परंतु घरमें आप पिताजीके अकेले पुत्र हैं। माता, विधवा चाची, पत्नी, कन्या हैं। उनकी सेवा और पालन करना आपका कर्तव्य है। घरमें आसक्ति तथा ममताका त्याग करना चाहिये, घरका और कर्तव्यका नहीं। घरको भगवान्‌का समझकर भगवान्‌की सेवाके भावसे भगवान्‌का स्मरण करते हुए कर्तव्य-कर्मका पालन कीजिये। घर छोड़नेकी उमंग तो होती है पर घर जितना सुरक्षित है, उतना घर छोड़कर भटकना नहीं है। आजकल तो बाहर बड़ी दुर्दशा है और पतनके हजारों साधन हैं। दुर्गति मानो मुँह बाये खड़ी है। अतएव घर छोड़नेकी बात सर्वथा अनुचित है।

प्रतिवर्ष गर्मियोंमें तीन-चार महीने गीताभवन स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें सत्सङ्ग होता है। हो सके तो कुछ समय निकालकर वहाँ सत्सङ्गके लिये जाना चाहिये। वहाँके सत्सङ्गमें बहुत-सी शङ्काओं और प्रश्नोंका समाधान हो जायगा तथा यथार्थ उत्तर मिल जायगा। भगवान्‌का स्मरण करते हुए ही सारे कार्य कीजिये। अर्जुनको भगवान्‌ने आज्ञा दी—'तुम निरन्तर मेरा स्मरण करते हुए ही युद्ध करो। मन-बुद्धि मुझे सौंप दो। तब निश्चय मेरी ही प्राप्ति होगी'—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

(गीता ८।७)

शेष भगवत्कृपा!

व्रतोत्सव-पर्व

वैशाख कृष्णपक्ष (२८-४-२००२ से १२-५-२००२ तक) सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	रवि	विशाखा	२८ अप्रैल	वृश्चिकके चन्द्रमा दिन २-१५ बजे, वैशाखमासमें पौसरा चलवाना, जलघट-दान, तुलसीपत्रसे विष्णुपूजन, कच्छपावतार, त्रिपुष्करयोग प्रातः ६-४४ बजेसे रात्रि ७-५९ बजेतक
द्वितीया	द्वितीया तिथिका क्षय			प्रतिपदा तिथि प्रातः ६-४३ बजेतक तदुपरि द्वितीया तिथि रात्रि शेष ४-५९ बजेतक
तृतीया	सोम	अनुराधा	२९ ,,	सर्वार्थसिद्धियोग तथा यायिजययोग रात्रि ७-१२ बजेतक, भद्रा सायं ४-१७ बजेसे रात्रि ३-३५ बजेतक
चतुर्थी	भौम	ज्येष्ठा	३० ,,	धनुके चन्द्रमा सायं ६-४८ बजे, भौमवती चतुर्थीपर्व, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि १०-०३ बजे, स्थायिजययोग सायं ६-४८ बजेतक
पञ्चमी	बुध	मूल	१ मई	पञ्चमी तिथि रात्रि २-०७ बजेतक, मूल नक्षत्र सायं ६-५१ बजेतक
षष्ठी	गुरु	पू०षा०	२ ,,	मकरके चन्द्रमा रात्रि १-४० बजे, रवियोग रात्रि ७-२५ बजेसे, यायिजययोग रात्रि २-०९ बजेसे, भद्रा रात्रि २-०९ बजेसे
सप्तमी	शुक्र	उ०षा०	३ ,,	भद्रा दिन २-२३ बजेतक, श्रीशीतलाष्टमीव्रत, अगस्त्य तारेका अस्त दिन ९-२० बजे, मृत्युबाण रात्रि ७-१७ बजेसे, रवियोग रात्रि ८-२७ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग
अष्टमी	शनि	श्रवण	४ ,,	सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ९-५९ बजेतक, मृत्युबाण रात्रि ८-०५ बजेतक, श्रवण नक्षत्र रात्रि ९-५९ बजेतक, पञ्चक आरम्भ रात्रि १० बजेसे
नवमी	रवि	धनिष्ठा	५ ,,	कुम्भके चन्द्रमा दिन १०-५९ बजे, यायिजययोग रात्रि १२ बजेसे
दशमी	सोम	शतभिषा	६ ,,	शतभिषा नक्षत्र रात्रि २-१८ बजेतक, भद्रा सायं ६-०२ बजेसे
दशमी	भौम	पू०भा०	७ ,,	भद्रा प्रातः ६-५५ बजेतक, मीनके चन्द्रमा रात्रि १०-१३ बजे, दशमी तिथि प्रातः ६-५५ बजेतक, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र रात्रि शेष ४-५२ बजेतक
एकादशी	बुध	उ०भा०	८ ,,	वरूथिनी एकादशीव्रत (सबका), वल्लभाचार्य-जयन्ती
द्वादशी	गुरु	उ०भा०	९ ,,	उत्तराभाद्रपद नक्षत्र प्रातः ७-२८ बजेतक, प्रदोषव्रत, रविन्द्रनाथ टैगोर-जयन्ती, सर्वार्थसिद्धियोग प्रातः ७-२९ बजेसे
त्रयोदशी	शुक्र	रेवती	१० ,,	मेषके चन्द्रमा दिन १०-०१ बजे, मासशिवरात्रिव्रत, अमृतसिद्धियोग दिन १०-०१ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग तथा स्थायिजययोग दिन १२-५५ बजेसे, भद्रा दिन १२-५५ बजेसे रात्रि १-४४ बजेतक, पञ्चक समाप्त दिन १०-०१ बजे
चतुर्दशी	शनि	अश्विनी	११ ,,	श्राद्धकी अमावास्या, कृत्तिका नक्षत्रके सूर्य सायं ५-५३ बजे, चतुर्दशी तिथि दिन २-३३ बजेतक
अमावास्या	रवि	भरणी	१२ ,,	वृषके चन्द्रमा रात्रि ८-३३ बजे, स्नान-दानकी अमावास्या, मृत्युबाण रात्रि ३-१० बजेसे, अमावास्या तिथि दिन ३-४९ बजेतक

वैशाख शुक्लपक्ष (१३-५-२००२ से २६-५-२००२ तक) सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	सोम	कृत्तिका	१३ मई	चन्द्रदर्शन, देवदामोदर तिथि (असम), मृत्युबाण रात्रि शेष ४-०४ बजेतक, प्रतिपदा तिथि सायं ४-३७ बजेतक
द्वितीया	भौम	रोहिणी	१४ ,,	मिथुनके चन्द्रमा रात्रि शेष ४-५० बजे, वृषराशिके सूर्य रात्रि शेष ५-०३ बजे, पुण्यकाल दूसरे दिन, शिवाजी-जयन्ती, श्रीपरशुराम-जयन्ती
तृतीया	बुध	मृगशिरा	१५ ,,	आज ही संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल (दोपहर), गो-अन्न-तिल-जल आदिका दान, गोदावरीमें स्नान, 'ग्रीष्म-ऋतु', अक्षय तृतीया, श्रीबद्रीकेदारयात्रा, जलकुम्भ-शर्करा-व्यजनादि दान, श्रीविष्णुकी चन्दन-पूजा, त्रिलोचनयात्रा, भद्रा रात्रि शेष ४-१७ बजेसे
चतुर्थी	गुरु	आर्द्रा	१६ ,,	भद्रा दिन ३-५४ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मृत्युबाण प्रातः ६-०२ बजेसे, रवियोग सायं ५-०२ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग
पञ्चमी	शुक्र	पुनर्वसु	१७ ,,	कर्कके चन्द्रमा दिन १०-३९ बजे, आद्यजगद्गुरु शंकराचार्य-जयन्ती, मृत्युबाण प्रातः ६-५५ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग सायं ४-३२ बजेतक
षष्ठी	शनि	पुष्य	१८ ,,	श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती, रवियोग दिन ३-३६ बजेतक तदुपरि यायिजययोग, पुष्य नक्षत्र दिन ३-३६ बजेतक
सप्तमी	रवि	अश्लेषा	१९ ,,	सिंहके चन्द्रमा दिन २-३३ बजे, श्रीगङ्गासप्तमी (दोपहर), यायिजययोग दिन ११-१३ बजेतक, भद्रा दिन ११-१४ बजेसे रात्रि १०-०९ बजेतक
अष्टमी	सोम	मघा	२० ,,	अष्टमी तिथि दिन ९-०४ बजेतक, श्रीसीता नवमी (दोपहर), जानकी-जयन्ती, रवियोग दिन १-०९ बजेसे
नवमी	भौम	पू०फा०	२१ ,,	कन्याके चन्द्रमा सायं ५-०८ बजे, सायन मिथुन राशिके सूर्य दिन २-१८ बजे, रवियोग प्रातः ५-२० बजेसे सायं ६-४० बजेतक
दशमी	दशमी तिथिका क्षय			नवमी तिथि प्रातः ६-४३ बजेतक तदुपरि दशमी तिथि रात्रि शेष ४-१७ बजेतक
एकादशी	बुध	उ०फा०	२२ ,,	मोहिनी एकादशीव्रत (स्मार्त्त), पौराणिक अगस्त्य अस्त दिन १२-०६ बजे, रवियोग दिन ९-५४ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग, भद्रा दिन ३-०३ बजेसे रात्रि १-५० बजेतक
द्वादशी	गुरु	हस्त	२३ ,,	तुलाके चन्द्रमा रात्रि ७-२६ बजे, मोहिनी एकादशीव्रत (वैष्णव)
त्रयोदशी	शुक्र	चित्रा	२४ ,,	प्रदोषव्रत, ओंकारेश्वरयात्रा, रवियोग प्रातः ६-४० बजेसे रात्रि शेष ५-१५ बजेतक, चित्रा नक्षत्र प्रातः ६-३९ बजेतक तदुपरि स्वाती नक्षत्र रात्रि शेष ५-१५ बजेतक
चतुर्दशी	शनि	विशाखा	२५ ,,	वृश्चिकके चन्द्रमा रात्रि १०-२२ बजे, नृसिंह चतुर्दशीव्रत, व्रतकी पूर्णिमा, रोहिणी नक्षत्रके सूर्य दिन ३-१७ बजे, यायिजययोग रात्रि शेष ४-०६ बजेसे, भद्रा रात्रि ७-०६ बजेसे
पूर्णिमा	रवि	अनुराधा	२६ ,,	भद्रा प्रातः ६-११ बजेतक, स्नान-दानकी पूर्णिमा, बुद्ध पूर्णिमा, बुद्ध-जयन्ती, कूर्म-जयन्ती, हरिद्वार अथवा काशीमें स्नान, वैशाख व्रत-यम-नियम आदि समाप्त, कुम्भ-तिल-सुवर्ण-घृत-मधु-दान, यायिजययोग रात्रि ३-१६ बजेतक, पूर्णिमा तिथि सायं ५-१९ बजेतक

पढ़ो, समझो और करो

(१)

दो बहनोंकी ईमानदारी और उदारताने अभिभूत कर डाला

आजसे लगभग १५ वर्ष पूर्व मैं उत्तर प्रदेश चीनी निगममें सुरक्षा अधिकारीके पदपर नन्दगंज कार्यरत था। वहाँसे मेरा स्थानान्तरण चीनी मिल मोहीउद्दीनपुर हो गया और मैं सपरिवार बनारससे मेरठके लिये 'काशी विश्वनाथ एक्सप्रेस'से रवाना हो गया। मेरे परिवारमें मेरी पत्नी तथा १२ सालकी लड़की थी। गाड़ी हमें गाजियाबादमें बदली करनी थी। हमारी शीट आरक्षित थी, अतः पत्नी तथा लड़कीको महिला-कम्पार्टमेन्टमें सीट मिली और मुझे बाहरकी सीट मिली। मैंने अपने जरूरी कागज जिसमें स्थानान्तरण-सम्बन्धी आदेश, परिचय-पत्र आदिके साथ ही पत्नीके जेवर तथा नगद १५०० रुपये थे, एक बैगमें रखकर वह बैग पत्नीको दे दिया तथा सँभालकर रखनेको कह दिया। उसी महिला-कम्पार्टमेन्टमें मिस रीता नामकी एक शिक्षिका भी सफर कर रही थी, जो दिल्लीके एक इंग्लिश स्कूलमें शिक्षिका थी। हमारी लड़की मिस रीतासे बात करती रही। दोनों आपसमें खूब घुल-मिल गयीं।

दूसरे दिन सुबह लगभग ७ बजे गाड़ी गाजियाबाद रेलवे-स्टेशनपर पहुँची, वहाँ दैनिक यात्रियोंका जत्था गाड़ीमें घुस आया। गाड़ी गाजियाबाद स्टेशनपर सिर्फ़ दो मिनट रुकती थी। अतः मैंने जल्दी-जल्दी सामान उतारना शुरू किया। इसी जल्दीमें प्लेटफार्मपर सामान भी बिखर गया और गाड़ी भी चल दी। मैंने सामान इकट्ठा करना शुरू किया, इतनेमें मेरी पत्नी तथा लड़की भी आ गयी। उनके पास बैग नहीं था। मैंने पूछा बैग कहाँ है? तब उन्हें होश आया कि बैग तो ट्रेनमें ही छूट गया। मेरी पत्नी रोने लगी तथा लड़की भी डरके कारण सहम गयी। मुझे गुस्सा तो बहुत आया, पर कर क्या सकता था। आँखें बंद करके वहीं बैठ गया। थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि हमारे चारों तरफ बहुत लोग इकट्ठे हो गये हैं तथा पूछ रहे हैं कि क्या हुआ? एक सज्जनके कहनेपर मैं कण्ट्रोल-टावरपर गया ताकि नयी दिल्ली स्टेशन-मास्टरको सूचना दे सकूँ। परंतु वहाँ पता चला कि फोन खराब है। थोड़ी देर बाद मैं दूसरी गाड़ीसे नयी दिल्ली स्टेशन गया, परंतु कुछ हासिल नहीं हुआ। हताश हो हमलोग चीनी मिल चले गये।

मोहीउद्दीनपुर चीनी मिलमें जो निवास हमें मिला, उसके सामने ही 'श्रीराम-जानकी'का मन्दिर था। शामको हमलोग रोज मन्दिरमें जाते, भगवान्से प्रार्थना करते, पर हमलोग दुःखी बहुत थे, इसलिये वहाँ भी मन नहीं लगता था। मैं तो निराश ही हो गया था, परंतु मेरी पत्नी अक्सर कहती थी कि ईमानकी कमाई अवश्य मिलेगी। भगवान् सब देखता है, किसी-न-किसी रूपमें हमारी सहायता करेगा।

लगभग १५-२० दिन बाद हमारी फैक्ट्रीके 'जनरल मैनेजर'ने मुझे बुलाया तथा बताया कि दिल्लीसे एक इंग्लिश स्कूलकी क्रिश्चियन प्रिन्सिपलने यहाँ एक पत्र भेजा है, उसमें उन्होंने आपकी बच्चीकी बहुत प्रशंसा की है तथा आपको याद भी किया है। यह सुनकर मैं अपने निवासपर आ गया तथा सोचने लगा कि मैं तो किसी क्रिश्चियन प्रिन्सिपलको जानता नहीं, इसपर मेरी लड़कीने कहा—'पिताजी! गाड़ीमें जो दीदी हमारे साथ थीं, उनका नाम मिस रीता था। वे अपनेको दिल्लीमें इंग्लिश स्कूलमें टीचर बता रही थीं।' मैंने फिर सोचा कि हो सकता है उन्हें बैगकी जानकारी हो। अतः एक सज्जनको साथ लेकर मैं दिल्ली गया। जब मैं वहाँ पहुँचा तो स्कूल बंद हो चुका था, पर प्रिन्सिपल महोदया मिल गयीं। उन्होंने हमारा खूब सम्मान किया। मैं अपनी बात कहना चाहता था, परंतु उन्होंने कहा कि पहले नाश्ता कीजिये तब बात होगी। नाश्तेके बाद उन्होंने पूछा—क्या बात है, कैसे आना हुआ? मैंने रुआँसा होकर अपनी कहानी उन्हें सुनायी। वे शीघ्रतासे उठीं और अंदरसे लाकर हमारा बैग हमें वापस कर दिया तथा बोलीं—'अभी चेक कर लो।' मैंने चेक किया तो बैगमें पत्नीके सोनेके जेवर, १५०० रुपये नगद तथा सब कागज-पत्र यथावत् थे।

प्रिन्सिपल महोदयाने बताया कि 'मैंने तमाम पुलिस-स्टेशनोंमें पूछ लिया कि कहीं किसीने रिपोर्ट तो नहीं लिखायी? परंतु ऐसा कहीं कुछ नहीं था। अन्तमें मैंने आपका

बैग खोला, जिसमें आपका सामान, परिचय-पत्र तथा पता मिल गया। मैंने जो पत्र आपके मैनेजरको भेजा था, उसमें बैगका जिक्र इसलिये नहीं किया कि कोई दूसरा बैगपर अपना हक जता सकता था। परिचय-पत्रमें आपका फोटो था, इसीसे मैं समझ गयी कि बैग आपका ही हैं। अब आप इसे ले लें।'

मेरी तो खुशीका ठिकाना न था। वे प्रिन्सिपल मुझे देवीके रूपमें दिखायी देने लगीं। मैं बार-बार उनकी उदारता, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा तथा महानताके विषयमें सोच-सोचकर मुग्ध-सा हुआ जा रहा था। मेरे हाथ उनके प्रति जुड़े-के-जुड़ेसे रह गये। मैंने धृष्टतावश कुछ पुरस्कार देनेका दुस्साहस किया तो वे मुसकरा उठीं और बोलीं—'यह तो मेरा कर्तव्य था।' मेरी एक जिज्ञासा शान्त नहीं हुई थी कि मेरी बेटी जिस रीता दीदीकी चर्चा कर रही थी, वह तो ये हैं नहीं। फिर बैग इनके पास कैसे आया, मैंने उनसे पूछा—'मिस रीता कहाँ हैं?' उन्होंने बताया कि 'उनका दूसरे स्कूलमें ट्रान्सफर हो गया है। वह इस बैगको आपतक पहुँचानेकी जिम्मेदारी मुझे सौंपकर चली गयीं।'

मैं यह सोचता हुआ वापस अपने घर आ गया कि भगवान्‌की प्रेरणाके बिना इस कलियुगमें ऐसा सम्भव नहीं, जैसा मिस रीता एवं प्रिन्सिपल महोदयाने किया।

--यशपाल सिंह

(२)

'जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती'

यह रोमाञ्चक सच्ची घटना नवम्बर १९७७ की है। काफ़ी समयसे लिखनेके लिये सोच रहा था। पर लिख न सका; आज प्रभुकृपासे प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है, पाठक-वृन्दको इससे प्रेरणा मिलेगी एवं आस्तिक जनोंकी प्रभुके प्रति आस्था और भी दृढ़ होगी।

मुम्बईमें मेरे चित्रकलावाले गुरुजी हमें बड़े प्रेमसे चित्रकला सिखाया करते थे। सेवा-निवृत्त हो वे अपनी सारी जमा-पूँजी लगाकर जयपुरमें श्रीराघवेन्द्र सरकारका एक छोटा-सा मन्दिर 'श्री-धाम' बनाकर वर्षोंसे वहाँ एकाकी रह रहे थे। अध्ययनकालसे ही मेरे ऊपर उनका विशेष स्नेह था और उन्होंने पूर्ण मनोयोगसे मुझे चित्रकला सिखायी थी। इधर कुछ वर्षोंसे मैं जयपुर नहीं जा पाया था और उधर वृद्धावस्थाके कारण उनका भी स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहता था। इसलिये उन्होंने एक बार मुझसे जयपुर मिलने आनेकी अपनी इच्छा प्रकट की। तदनुसार ही मैंने वहाँका कार्यक्रम बनाया। मेरी माताजीने कहा कि 'मैं भी चलूँगी।' उन्हें दिल्ली जाना था, सोचा वाया जयपुर चले जायँगे। नवम्बर १९७७ में माताजी, मैं और मेरा ६-७ वर्षका बालक तीनों जयपुर गये और वहाँ ८-१० दिन रहकर रात्रिकी गाड़ीसे वापस दिल्लीके लिये रवाना हुए।

प्रातः लगभग ५ बजे, जब सभी यात्री मीठी नींदमें सोये थे, अचानक एक झटका लगा और गाड़ी जैसे एकदम पथरीले, ऊबड़-खाबड़ मार्गपर दौड़ने लगी। बत्ती गुल हो गयी और जैसे सब कुछ उलटने-पलटने लगा इस सीटसे उस सीटपर। ऊपरकी सीटके लोग भी सामानसहित नीचेवालोंपर; कौन कहाँ-कैसे है, कौन नीचे है और कौन ऊपर, कुछ पता नहीं। यह सब कुछ ही क्षणोंमें हो गया। इसके साथ ही चीख-पुकार सुनायी देने लगी। मुझे तो होश ही नहीं था, थोड़ा सँभला तो माँ-बेटेकी याद आयी, पर इस उलट-पलट और अँधेरेमें कौन कहाँ कराह रहा है, कुछ पता नहीं चला। मैं मन-ही-मन भगवान्‌का स्मरण करने लगा। ऐसे संकटकी घड़ीमें केवल 'राम-नाम' ही अवलम्बन था। कुछ क्षण ऐसे ही बीते कि मुझे माँकी घबरायी हुई आवाज सुनायी दी—'यह क्या हुआ, गट्टू (बालक) कहाँ है?' तबतक एक क्षीण स्वर कहींसे सुनायी दिया—'दादी कहाँ हो? पापाजी मुझे निकालो।' चित्त एकदम व्याकुल हो उठा। अँधेरा इतना था कि कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था। फिर वही करुण पुकार सुनायी दी। मैंने आश्वासन दिया 'हाँ बेटा, अभी निकालता हूँ', अंधेके बटेरके समान इधर-उधर टटोलना शुरू किया और सामान इधर-उधर करते हुए आवाजकी दिशामें बढ़ा। अब आवाज कुछ अधिक साफ थी। अगले कुछ क्षणोंमें सामानके नीचेसे बालकको निकाल पानेमें मुझे सफलता मिल गयी। बालक काफ़ी सहमा और काँपता हुआ लड़खड़ाती आती हुई दादीसे जा चिपटा। संतोष हुआ, उसे कहीं चोट नहीं आयी थी।

भाग-दौड़, चीख-चिल्लाहटकी आवाजें आने लगीं। धीरे-धीरे प्रकाश फैलने लगा और पता चला कि गाड़ी

पटरीसे उतरकर उलट गयी है। कुछ अन्य डिब्बोंको काफ़ी क्षति भी पहुँची थी। अगला और पिछला डिब्बा एकदम चकनाचूर हो गया था। काफ़ी लोग मारे गये और आहत भी हुए। माँकि सिरसे खून बह रहा था, बालक ठीक था। परंतु वह हादसेसे बहुत डर गया था। मैंने चारों ओर नजर दौड़ानी शुरू की। बाहर निकलनेके लिये सिवाय ऊपरी दरवाजेके और कोई रास्ता नजर नहीं आया।

किसी प्रकार हमलोग डिब्बेसे बाहर निकले और माँका प्राथमिक उपचार कराकर बससे रिवाड़ी तथा फिर रिवाड़ी स्टेशनसे दूसरी गाड़ीद्वारा दिल्ली पहुँचे। इसके बाद जो घटना हुई, वह और भी रोमाञ्चक है।

चूँकि मुम्बईसे मेरी वापसीका टिकट पहलेसे ही बुक था, इसलिये माँको बड़े भाईके घर छोड़कर बगैर एक क्षण भी रुके, सामान उठा तुरंत बालकके साथ मैं स्टेशनकी ओर भागा। गाड़ी छूटनेमें मुश्किलसे ५ मिनट बाकी थे। किसी तरह गाड़ीमें हमलोग बैठे, गाड़ी चली तो दूसरी चिन्ता सवार हुई कि गुरुजीको कैसे सूचना दी जाय कि हमलोग सुरक्षित हैं।

पास ही खड़े टिकट-मास्टर बोले—'मथुरा स्टेशनके प्लेटफार्मपर ही तारघर है। आप स्वयं तार कर सकते हैं, नहीं तो मैं कर दूँगा।' बात जँच गयी। मैंने तारका प्रारूप बनाया और जैसे ही मथुरा स्टेशन आया, उतरकर शीघ्र ही मैं तारघरके अंदर गया और तारबाबूसे सम्पर्क किया।

तारका विषय पढ़नेसे तारबाबूने घटनाके बारेमें उत्सुकतासे पूछा और मैं उन्हें घटना बताने लगा। इसी बीच उन्होंने टोका—आप कौन-सी गाड़ीसे जा रहे हैं? मैंने बताया कि यही गाड़ी जो अभी आयी थी। तो वे बोले—वह तो गयी। यह सुनकर मुझे काटो तो खून नहीं, कारण अब अकेला बालक सामानके साथ उसी गाड़ीमें था। मैं तो पैसे फेंक जल्दीसे गाड़ीकी ओर भागा, किंतु गाड़ी प्लेटफार्म पार कर चुकी थी। आँखोंके आगे अँधेरा-सा छा गया। अब क्या होगा? गाड़ी पकड़ना किसी भी प्रकार सम्भव न था। बुरा हाल हो गया। पुनः भगवान्‌को याद करने लगा और गाड़ीकी ओर दौड़ता भी रहा। एक चमत्कार-सा हुआ, गाड़ी धीमी होती प्रतीत हुई और सचमुच ही कुछ दूर जाकर वह रुक गयी। मेरी तो मानो रुकी साँस चल पड़ी। तुरंत दौड़ा और ऐसा दौड़ा कि गाड़ीमें चढ़कर ही दम लिया। मुझे लगा कि भगवान्‌ने ही मुझपर कृपा करके गाड़ी रुकवा दी, मैं भगवान्‌के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनेके लिये शब्द भी नहीं ढूँढ़ पाया। हृदय भर आया और मन-ही-मन विह्वल हो रो पड़ा उस करुणामयकी कृपाका स्मरण कर।

इसके बाद मैं न तो ट्रेनमें सो ही सका और न मुम्बईतक ट्रेनसे नीचे उतरनेकी हिम्मत ही जुटा पाया।

इधर घरवालोंको पता भी न चल पाया कि क्या-क्या गुजरा है। सब किस्सा बताया तब पत्नी बोली कि गत सप्ताहसे ही मैं अपनी देवरानीकी देखा-देखी 'सुन्दरकाण्ड'का पाठ करने लगी थी, फिर जब वे रक्षक हैं तब ***'काहू को डर ना'***।

और भी, मुम्बईसे चलनेके पहले पत्नीने जोर देकर कहा था कि 'सालासर' हनुमान्‌जीके दर्शन भी कर आना, पर मेरा कुछ विशेष मन न था। उधर जयपुरमें माँने भी २-३ बार कहा। इसलिये एक दिन पहले ही प्रोग्राम बनाकर हमलोग हनुमान्‌जीके दर्शन कर आये थे। मेरा विश्वास पक्का हुआ कि यह सब पवनपुत्रकी कृपासे ही हुआ है।

मुम्बई आनेके दो रोज बाद जयपुरसे गुरुजीका पत्र आया तो पता चला कि दुर्घटनाकी खबर सुनकर वे तो एकदम घबरा ही गये थे। उन्होंने सब परिचित लोगोंको इधर-उधर दौड़ा रखा था। दुःखी मनसे वे श्रीराघवेन्द्र सरकारके सामने प्रार्थना करते रहे। उनकी प्रार्थनाने हम सभीको बचा लिया।

मैं तो भगवान्‌की असीम कृपाका ख्यालकर बार-बार उन्हें मन-ही-मन प्रणाम कर रहा था और सोचता भी जा रहा था कि देखो, किस प्रकार उन करुणावरुणालय आनन्दकन्द मङ्गलमय प्रभुने हमें सँभाला और सब भाँति हर बार हमारी रक्षा की। यह सब प्रत्यक्ष देखकर यह निश्चित ही प्रतीत होता है कि प्रभुकृपा समस्त विपत्तियोंको सहज ही पार कर देती है। उसी कृपाको समझते हुए हमारा तो यही कर्तव्य बनता है कि हम प्रभुको कभी भूलें नहीं।

—महावीरप्रसाद अग्रवाल
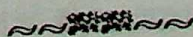
मनन करने योग्य

(१)

शिक्षाका उद्देश्य

कई वर्ष पहलेकी बात है, राजस्थान राज्यके भरतपुर जिलेमें श्रीईश्वरचन्द्रजी जिला-कलेक्टर थे। वे अपने अधीनस्थ अधिकारियों और कर्मचारियोंसे भी बातें करते समय उन्हें 'आप' शब्दसे सम्बोधित किया करते थे। जब वे अपने यहाँके चपरासियोंको भी 'आप' कहकर सम्बोधित करते थे तो उन चपरासियोंको बड़ा आश्चर्य होता था कि इतने बड़े अधिकारी होकर भी वे उन्हें 'आप' शब्दसे सम्बोधित करते हैं, जब कि छोटे अधिकारी तथा क्लर्क आदि उन्हें 'तुम' या 'तू' शब्दसे ही सम्बोधित करके बुलाया करते हैं।

एक बार जिला-कलेक्टर महोदय अपने अधीनस्थ एक पटवारीका निरीक्षण करने उसके गाँवमें पहुँचे। वे उसके राजस्व अभिलेखोंका निरीक्षण करते समय उसे 'आप' शब्दसे सम्बोधित करने लगे तो उनके मुँहसे अपने प्रति इस प्रकारका सम्मानसूचक सम्बोधन सुनकर उसकी आँखोंसे आँसू बह निकले। आँसुओंको देखकर कलेक्टर महोदयने पूछा—'आपको कोई परेशानी है क्या, जो आपकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं?'

'नहीं साहब!' उस पटवारीने उन्हें जवाब दिया। यह सुनकर वे पुनः बोले—'फिर आपकी आँखोंमें ये आँसू क्यों?'

'ये तो खुशीके आँसू हैं सरकार!' पटवारीने जवाब दिया। 'किस खुशीके आँसू हैं ये?' कलेक्टर महोदयने उसके जवाबको सुनकर उससे पूछा तो वह अपनी खुशीका कारण बताते हुए बोला—'हुजूर! आपके मुँहसे अपने प्रति यह 'आप' सम्बोधन सुनकर मेरी आँखोंसे खुशीके आँसू निकल पड़े हैं। छोटे-छोटे अधिकारी भी अपनेसे छोटे कर्मचारियोंको 'तुम' या 'तू'से सम्बोधित करते हैं। आप इतने बड़े अधिकारी होकर भी हम-जैसे छोटे कर्मचारियोंको 'आप' से सम्बोधित करते हैं। सचमुच आप महान् हैं हुजूर! आप-जैसे महान् अधिकारी बड़े सौभाग्यसे मिलते हैं।' पटवारीकी बातोंको सुनकर कलेक्टर महोदय उससे बोले—'हमारी शिक्षाका उद्देश्य सिर्फ़ बड़ा-से-बड़ा पद प्राप्त करना ही नहीं होता, बल्कि उसके साथ-साथ शिष्टाचारका ज्ञान प्राप्त करना भी होता है। विद्या हमें विनय सिखाती है और विनय हमें विनम्र बनाता है। हमें सभीसे शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। किसीसे शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार करनेपर हमें कुछ व्यय नहीं करना पड़ता, बल्कि उससे हम दूसरोंसे सम्मान ही प्राप्त करते हैं।'

हम सभीको उन जिला-कलेक्टर महोदयकी ही भाँति सभीसे शिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हुए अपने शिक्षाके उद्देश्यको सार्थक करना चाहिये। —ओ० पी० राजकुमार

(२)

बड़ा कौन

लगभग साठ वर्ष पहले कुम्हारका एक लड़का हमारे यहाँ नौकरी करता था। बेसमझीके कारण उसके व्यवहारमें कुछ उच्छृङ्खलता देखकर एक-दो वर्ष बाद हमने उसे नौकरीसे अलग कर दिया था।

फिर तो इस लोकोक्तिके अनुसार भादोंकी नदीका बहुत पानी बह गया। रणछोड़ (उस लड़केका नाम था) खुली मजदूरी करके अपना गुज़रान चलाता था।

लगभग पंद्रह वर्ष पहले हमारे मकानकी दूसरेकी मालिकीकी एक कोठरी नीलामसे बिकनेवाली थी। हमें स्थानकी आवश्यकता थी और वह कोठरी हमारे उपयुक्त थी, इसलिये नीलाममें चाहे जिस कीमतमें हमें वह लेनी थी।

इस नीलाममें एक खरीदार रणछोड़ भी था। दूसरे ख़रीदार थे हमारे दूरके एक कुटुम्बी सज्जन। रणछोड़को जब पता लगा कि यह कोठरी हम ले रहे हैं, तब उसने यह कहकर अपना नाम हटा लिया कि जब उनको कोठरी लेनी है तो मैं बीचमें नहीं पड़ूँगा, वे मेरे पुराने मालिक हैं। दूसरी ओर वे हमारे कुटुम्बी थे, जिन्हें जगहकी जरूरत भी नहीं थी, तो भी वे नीलामकी बोलीमें खड़े रहे और उन्होंने हमको नुकसान पहुँचाया।

मनमें अब भी विचार आता है कि इनमें बड़ा कौन है। अशिक्षित कुम्हार या अपना कहलानेवाला कुटुम्बी? (अखण्ड आनन्द)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वर्ष ७६ | गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, मई २००२ ई० | संख्या ५

पूर्ण संख्या ९०६

सुदामा-सत्कार

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः। प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः॥
अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम्। उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः॥
अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः। व्यलिम्पद् दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुङ्कुमैः॥
धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा। अर्चित्वाऽऽवेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतमब्रवीत्॥
कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम्। देवी पर्यचरत् साक्षाच्चामरव्यजनेन वै॥

(श्रीमद्भा० १०। ८०। १९—२३)

[**श्रीशुकदेवजी परीक्षित्‌जीसे कहते हैं—**] परमानन्दस्वरूप भगवान् अपने प्यारे सखा ब्राह्मणदेवता (सुदामाजी)-के अङ्ग-स्पर्शसे अत्यन्त आनन्दित हुए। उनके कमलके समान कोमल नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बरसने लगे। कुछ समयके बाद भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें ले जाकर अपने पलंगपर बैठा दिया और स्वयं पूजनकी सामग्री लाकर उनकी पूजा की। भगवान् श्रीकृष्ण सभीको पवित्र करनेवाले हैं; फिर भी उन्होंने अपने हाथों ब्राह्मणदेवताके पाँव पखारकर उनका चरणोदक अपने सिरपर धारण किया और उनके शरीरमें चन्दन, अरगजा, केसर आदि दिव्य गन्धोंका लेपन किया। फिर उन्होंने बड़े आनन्दसे सुगन्धित धूप और दीपावलीसे अपने मित्रकी आरती उतारी। इस प्रकार पूजा करके पान एवं गाय देकर मधुर वचनोंसे 'भले पधारे' ऐसा कहकर उनका स्वागत किया। ब्राह्मणदेवता फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे। शरीर अत्यन्त मलिन और दुर्बल था। देहकी सारी नसें दिखायी पड़ती थीं। स्वयं भगवती रुक्मिणीजी चँवर डुलाकर उनकी सेवा करने लगीं।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि०सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, मई २००२ ई०

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

कल्याण

याद रखो—प्रकृतिके विस्तारका अन्त नहीं है और प्रकृतिका प्रत्येक पदार्थ, प्रकृतिकी प्रत्येक परिस्थिति अपूर्ण और अनित्य—फलतः परिणाममें दुःखप्रद है। वस्तुतः प्रकृतिके क्षेत्रमें कहीं भी, किसी भी स्थितिपर पहुँच जाइये, निरन्तर कमी मालूम होगी, अभावका अनुभव होगा। उस अभावको मिटाने जाइये—या तो उसके मिटनेके पहले ही आप मिट जाइयेगा अथवा कदाचित् वह मिटा भी तो दूसरा उससे भी बड़ा अभाव तुरंत उपस्थित हो जायगा, जो आपको नये दुःखोंमें डाल देगा। यथार्थतः सबसे बड़ा दुःख है—असंतोष और सबसे बड़ा सुख है—संतोष। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह प्रकृतिके क्षेत्रमें संतोष करे। महर्षि पतञ्जलिने अनुभूत सत्य बतलाया है—

'**संतोषादनुत्तमसुखलाभः**।' (योगदर्शन २।४२)

'संतोषसे सर्वश्रेष्ठ सुखकी प्राप्ति होती है।'

भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें भक्तके लक्षण बतलाते हुए एक प्रसङ्गमें दो बार संतोषकी चर्चा की है—

'**संतुष्टः सततम्**' (१२।१४)

'**संतुष्टो येन केनचित्**।' (१२।१९)

'निरन्तर प्रत्येक परिस्थितिमें संतुष्ट रहे' और 'जिस किसी प्रकारसे रहना पड़े, उसीमें संतुष्ट रहे।' इसका अभिप्राय यह है कि यदि संसारकी दृष्टिसे—भोगदृष्टिसे दुःख, अभाव, प्रतिकूलता, विपत्ति आदि हों तो उनमें भी भक्त संतुष्ट रहे।

याद रखो—जिसका मन संतुष्ट है, उसके लिये सर्वत्र सुख-सम्पत्ति भरी है, कहीं भी दुःख-विपत्ति नहीं है; वह हर हालतमें सुखी है, वैसे ही जैसे जिसके पैर जूतेसे ढके हैं, उसके लिये मानो सारी पृथ्वी चमड़ेसे ढकी है। संतोषरूपी अमृतसे तृप्त और शान्तचित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़-धूप करनेवालोंको कहाँ मिल सकता है!

याद रखो—संतोंकी इस अनुभवपूर्ण वाणी एवं शास्त्र-वचनोंके आधारपर हम अपनी स्थितिपर विचार करें तो हमें अनुभव होता है कि स्त्री, पुत्र, मकान, व्यापार, मान-इज्जत होनेपर भी हम दुःखी हैं; कारण, हमारे पास जितना, जो कुछ है, उससे हमको संतोष नहीं है अथवा दूसरोंके पास ये चीजें हमसे अधिक क्यों हैं—इसकी जलन हमारे हृदयमें है। इन दोनों विचारोंसे हम बेचैन हो जाते हैं तथा विवेक छोड़कर अधिक और अधिक प्राप्त करनेकी घुड़-दौड़में आगे बढ़ना चाहते हैं। परिणाम यह होता है कि और अधिक प्राप्त होनेके स्थानपर जो कुछ सम्पत्ति-कीर्ति हमारे पास रहती है, वह भी चली जाती है तथा हम नयी-नयी विपत्तियोंसे घिर जाते हैं। इस प्रकार हमारे अधिकांश दुःख, असंतोष और ईर्ष्या—दूसरोंके उत्कर्षको न सह सकनेकी दूषित वृत्तिसे हमारे मनद्वारा सृष्ट हैं। इन दोनों दुःखदायिनी वृत्तियोंसे छुटकारा पानेका सरल उपाय है—हम बार-बार उन करोड़ों-करोड़ों अपने ही सरीखे शरीर-मनवाले स्त्री-पुरुषोंकी स्थितिपर विचार करें, जो भाँति-भाँतिके अभावोंसे ग्रस्त हैं, विपन्न हैं—पूरा खाने-पहननेतकको नहीं पा रहे हैं। ऐसा करनेसे अभावग्रस्तोंके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होगी और अपनी स्थितिके लिये भगवान्‌के प्रति कृतज्ञता जाग्रत् होगी। अतएव सुख-कामी व्यक्तियोंको चाहिये कि वे अपनी स्थितिके लिये भगवान्‌के कृतज्ञ बनें और भगवान्‌की दी हुई स्थिति एवं सामग्रियोंसे यथायोग्य एवं यथासाध्य समाजके अभावग्रस्तोंकी सेवा-सहायता करें। संतोष, मुदिता और करुणावृत्ति मनमें आयी कि हम सुखी हो जायँगे।

याद रखो—संक्षेपमें, अपनी स्थितिपर संतोष करना, दूसरोंके उत्कर्षको देखकर मुदित होना और दुःखियोंको देखकर करुणापूर्ण होना—मानवका परम कर्तव्य है और है दुःखनाशका सर्वोत्तम उपाय। जो चाहे, वह इस सत्यको आचरणमें लाकर स्वयं अनुभव कर ले। —'**शिव**'

पापका मूल—आसक्ति*

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

पहली बात तो यह है कि मनुष्यको सदाके लिये ही पापसे बचना चाहिये, यहाँ तीर्थमें तो पाप करना ही नहीं चाहिये। लोग तीर्थोंमें आते हैं तो स्वाभाविक ही यहाँ आकर स्नान करते हैं, कुछ त्याग करके जाते हैं। आपसे यही प्रार्थना है कि ऐसी चीजका त्याग करें कि जिस एकके त्यागसे ही सबका त्याग हो जाय। कम-से-कम पापका त्याग तो कर ही देना चाहिये। पाप कामसे उत्पन्न होता है। अर्जुनने भगवान्से पूछा—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

(गीता ३। ३६)

हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात् लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है?

आसक्तिसे कामकी उत्पत्ति होती है, भगवान्ने उत्तर दिया—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।

आसक्तिका त्याग हो जानेसे सबका त्याग हो जाता है।

रामको बुलानेके लिये आरामको छोड़ना चाहिये, जहाँ आराम है, वहाँ राम नहीं। वास्तवमें आपलोग जो मानते हैं, वह तो झूठा आराम है। आराम तो दूसरा ही है—

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥

(गीता ५। २४)

जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है।

हरेक बातमें आरामबुद्धि ही मुक्तिमें बाधा देती है। शौकीनी आफत है। ऐश प्रायः धनसे होता है, ऐशसे मनुष्य स्वस्थ होते हुए भी बीमार है। जो विषय-भोगोंमें रमता है वह अपने-आपको आगमें ढकेलता है। यह नियम लेना चाहिये कि भोजनमें जो कुछ भी तैयारी हुई, उसीमें आनन्द मान ले, राग-द्वेष नहीं करे; इसी प्रकार पहननेके लिये जो मिले, उसीमें आनन्द मान ले।

नील मीलका त्याग करना चाहिये, वस्त्र भी पवित्र, जूते भी पवित्र पहनने चाहिये। चमड़ोंमें हिंसा होती है, चूड़ी भी पवित्र पहननी चाहिये, लाखकी उत्पत्ति कीड़ोंसे होती है। वाणीको भी पवित्र बनाना चाहिये, वाणी पवित्र, सत्य और विनययुक्त होनी चाहिये—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(गीता १७। १५)

जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है—वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।

ऐसा आचरण करनेवालेकी वाणीमें; फिर वह जो कुछ कहता है वही हो जाता है। **'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्'**। व्यवहार पवित्र होना चाहिये। इससे आत्मा पवित्र हो जाती है। सत्य व्यवहार करना चाहिये। दूसरेकी आत्मा मुग्ध हो जाय ऐसा व्यवहार करना चाहिये। दूसरोंकी सेवा करनी चाहिये। आरामबुद्धिके त्यागसे सब काम हो जाता है। झूठे आरामके त्यागसे सच्चा आराम मिलता है। यहाँ तीर्थपर व्रत, दान करना उत्तम है। पर यदि वह घरपर असत्य व्यवहार करता है तो ठीक नहीं है। यहाँ

* प्रवचन—तिथि वैशाख शुक्ल ३, संवत् १९९१, रात्रि, स्वर्गाश्रम।

आकर तो उत्तम आचरण सीखने चाहिये। फिर सदाके लिये उसे काममें लाना चाहिये, कम-से-कम असत्यको तो छोड़ ही देना चाहिये। यदि आपसे सदाचार उच्च श्रेणीका न हो सके, यदि उससे लाभ न उठा सकें तो कम-से-कम नुकसान तो नहीं उठाना चाहिये। *'आया था कुछ लाभको खोय चला सब मूल'।* घरमें रूठना नहीं चाहिये। क्रोध झूठ बुलाता है। सबसे उत्तम बात तो यह है कि क्रोधका त्याग कर दे। यह बड़ी भारी बुरी आदत है। इसे गङ्गाके पार ही छोड़ देना चाहिये था। आगेके लिये नियम कर ले कि भोजनके लिये या अन्य किसी बातके लिये रूठना नहीं है। जहाँ कलह है वहाँ क्लेश है, कलियुग है, काल है। किसी घरमें कलियुग हो तो उसको चरण पकड़कर धक्का देकर फेंक दे। इसके लिये उपाय मौन है। रूठकर नहीं बैठना चाहिये। हँसकर रह जाय या उसको उत्तर थोड़े शब्दोंमें शान्तिसे दे। शिक्षा मानकर हँसना चाहिये, मृदु शब्दोंमें बोलना चाहिये।

क्रोध साक्षात् आग है। अग्नि बाहर जलाती है और क्रोध बहुत घरोंको अंदर-ही-अंदर जलाता है। उपाय यही है कि आग लगे तो पानीसे तर कर दो। भीतरके घरमें जब क्रोध आता है तो हृदय जलता है, फिर कठोर वचन निकलते हैं, वे कठोर वचन जिसे कहे जाते हैं, उसमें प्रवेश करते हैं और वहाँ आग लग जाती है और वहाँ खड़े रहनेवालोंके कर्णमें प्रवेश करके और बढ़ जाती है। क्रोध आग है, हृदय घर है, पतङ्ग है। कठोर वचन जहाँ जाकर गिरते हैं, वहीं आग लग जाती है। क्रोधरूपी आगको बुझानेके लिये शान्ति जल है। चाहे कोई कैसा ही कहे, अपना भाव ठण्डा शीतल बनाना चाहिये। प्रभुकी भक्ति, ध्यान, शरण लेनेसे शान्ति मिलती है। प्रभु ही बचा सकते हैं। उन्हींको पुकार लगानी चाहिये। जब आग लगती है तब भी हम पुकारते हैं। लोग आकर आग बुझाते हैं। जब क्रोध पैदा हो, तब प्रभुको याद करना चाहिये। मृत्युको नजदीक देखना चाहिये तथा समयको अमूल्य समझना चाहिये। अपना समय अमूल्य कार्यमें ही बिताना चाहिये। उत्तम उपदेशसे आगको शान्त करना चाहिये, क्रोध उत्पन्न ही न हो, हो जाय तो शान्त कर देना चाहिये। यह नियम लेना चाहिये कि आजसे कठोर वचन और कलह नहीं करेंगे। इससे क्रोध भी नहीं आ सकता, प्रेम इसके लिये जल है। जलसे पहले ही तृप्त हो जाय तो फिर क्रोध आये ही नहीं। यह नियम लेता जाय कि हृदयमें क्रोध आये तो एक बार उपवास और बाहरमें आ जाय तो दो बार उपवास करेंगे या यह नियम ले कि बाहरमें आये तो उपवास और भीतरमें आये तो उसे शान्त करनेके लिये पश्चात्ताप करना और सावधान करना चाहिये। पर यह प्रकट नहीं होना चाहिये कि आज क्रोध आनेके कारण उपवास किया है, यदि प्रकट होनेका भय हो तो उपवास दूसरे, तीसरे दिन कर ले। दृष्टिदोषके लिये उपवास करनेका नियम कर लेना चाहिये। स्त्रियोंको पुरुषोंको जानकर नहीं देखना चाहिये। भूलसे दृष्टि चली जाय तो दृष्टि हटा लेनी चाहिये।

सत्यवचन आधीनता, परतिय मातु समान।
इतनेमें हरि ना मिलें, तुलसीदास जमान॥

तीन बातोंकी शरणसे यदि कल्याण न हो तो तुलसीदासजीकी गारंटी है।

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
(रा०च०मा० ३।५।१२)

उत्तमके हृदयमें पति ही बसता है। स्वप्नमें भी दूसरे पुरुषकी भावना ही नहीं होती।

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
(रा०च०मा० ३।५।१३)

जिसकी दृष्टि पिता, भाईकी तरह ही जाती है, समझकर लौटा लेती है। स्वभावसे यदि दृष्टि चली जाय और एक क्षण भी ठहर जाय तो एक समय उपवास करना चाहिये। यह एक नियम ले ले कि अपने मुखसे झूठे, असत्य, अश्लील शब्द नहीं कहेंगे। कठोर नहीं कहेंगे। झूठ या अश्लील बोला जाय तो एक समय उपवास करे। इन तीन बातोंके लिये नियम ले ले। क्रोध आये या दृष्टिदोष हो अथवा अश्लील बात कही जाय तो एक समयका उपवास करेंगे। प्रत्यक्ष मालूम हो सकता है कि सुधार हुआ कि नहीं। सबके लिये ही यह बात समझनी चाहिये। इस

पुरुषोत्तम मासमें एक महीने इस प्रकार करके देखो तो सही, इस प्रकार चेष्टा करनेपर क्रोधादि निकट ही नहीं आयेंगे। उपवासका भय लगेगा। इस प्रकारसे वृत्तियाँ पवित्र होती हैं। असली सुधार वैराग्यसे, रागके नाशसे हो जाता है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २।६२-६३)

विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है।

सारे अनर्थोंका मूल आसक्ति है। तीर्थमें स्नान करे तो यह भावना करे कि पाप नष्ट होते हैं, विश्वास करे। उत्तम व्यवहार करना चाहिये। एक ही बात जिससे सारा व्यवहार, बर्ताव सुधर जायगा। उसको काममें ला सको तो उस एकसे ही काम बन जायगा। वह बात है स्वार्थको छोड़कर सबकी सेवा करना, दूसरोंकी आत्माको सुख पहुँचाना। लोभमें ही पाप है। लोभके कारण ही काम बिगड़ता है। लड़ाई भी इसीसे होती है। इस लोभके त्यागसे ही सब काम हो जायगा। सोने, खाने, पीने सबमें स्वार्थ ही विराजमान हो रहा है। उस स्वार्थको हाथ पकड़कर निकाल दो, फिर शान्ति, सरलता—सब गुण आ जायँगे, नवीन जीवन-संचार हो जायगा। आचरणोंमें सत्यभाषण है, सद्गुणोंमें त्याग है, बर्तावमें त्याग ही बर्ताव सुधारनेका उपाय है। संयममें भी त्याग ही प्रधान है और वही त्याग यदि विवेक, वैराग्यपूर्वक हो तो फिर कहना ही क्या है। नारायणका नाम लेनेसे बुरे आचरणोंका, सब दुर्गुणोंका नाश हो जाता है। परमेश्वरके नामकी स्मृतिसे सब दोष नष्ट हो जाते हैं। माला तो फेरते ही हैं। उसका प्रभाव समझना चाहिये, एक बारके भी भगवन्नामोच्चारणसे सब पापोंका नाश हो जाता है। यह लाभ प्रभाव जाननेसे ही होता है। इस प्रकार भावना, विश्वास करके नाम ले, भजन करे, विश्वास करे कि मैं भजन करता हूँ, इसलिये मेरेसे बुरे कर्म हो ही नहीं सकते, इस प्रकार नित्य याद करे। आजसे यह भी नियम ले ले कि प्रभुके भजन करनेसे पाप नहीं आ सकते, नहीं आ सकते, यह विश्वास कर लेना चाहिये। यदि आते हैं तो हम वह भजन ढोंगसे, बड़ाईके लिये करते होंगे, अन्यथा तो पाप नष्ट होने ही चाहिये। एक भगवन्नामोच्चारणसे त्रिलोकीका राज्य भी नीचा है, वह त्रिलोकीका राज्य भी झूठा है, भगवन्नाम ही सत्य है। जो भगवान्‌को उत्तम समझता है, वह फिर उसीको भजता है—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५।१९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

भगवान्‌से बढ़कर उसकी समझमें कोई चीज ही नहीं तो फिर वह दूसरेको क्यों भजेगा। पत्थरकी, ताँबेकी लोहेकी, सोनेकी, चाँदीकी खानें हैं तो हम सबसे कीमती चीजको ही उठाना चाहेंगे। भगवन्नामके महत्त्वको समझनेवालेके लिये भगवान्‌के नामसे बढ़कर कोई चीज नहीं रह जाती। भगवन्नामका महत्त्व समझना चाहिये। फिर हमारेमें अवगुण नहीं ठहर सकते, दुर्व्यवहार नहीं हो सकता।

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥

(रा०च०मा० ७।१२०।६)

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि हमारेमें दुर्गुण हैं तो हमारेमें भक्ति ही नहीं है। इसलिये निश्चय करना चाहिये कि आजसे दोष नहीं हो सकेगा। यदि दोष आता है तो निश्चयमें कमी है। भगवन्नामका जप, स्वरूपका चिन्तन, गुणोंका गायन करनेसे उसके नजदीक दोष आ ही नहीं सकते। इसके लिये यथाशक्ति प्रयास करना चाहिये, यही प्रार्थना है।

मैत्री-भावनाका अभ्यास

मैत्री-भावनाका अभ्यास मनुष्यकी द्वेषात्मक मनोवृत्तिके संस्कारोंका विनाशक है। इसके द्वारा मनुष्यको मानसिक और शारीरिक—दोनों प्रकारका स्वास्थ्य-लाभ होता है। मैत्री-भावनाके अभ्यासके ग्यारह लाभ बौद्धग्रन्थोंमें बताये गये हैं। उनमेंसे मुख्य लाभ सुखकी नींद सोना और प्रसन्नचित्त रहना तथा सभीका प्रिय होना है। हम जैसे विचार दूसरे लोगोंके पास भेजते हैं, दूसरे लोग भी वैसे ही विचार हमारे पास अनायास भेजते हैं। मैत्री-भावनासे प्रेरित होकर जो विचार दूसरे व्यक्तिके पास भेजे जाते हैं, वे उसका अवश्य लाभ करते हैं। ऐसे विचार हमारा लाभ भी करते हैं। यदि हम दूसरे लोगोंको हृदयसे प्यार करते हैं तो दूसरे लोग भी हमें हृदयसे प्यार करने लगते हैं। मनुष्यके मनके आन्तरिक भाव किसी-न-किसी प्रकार प्रकाशित हो जाते हैं। अप्रकाशित होनेकी अवस्थामें भी वे हमारे अनुकूल अथवा प्रतिकूल सृष्टिका निर्माण करते हैं।

मैत्री-भावनाके अभ्यासके कई प्रकार हैं। जब किसी व्यक्तिके विषयमें चर्चा की जाय, तब उसके विषयमें उदार विचार ही प्रकट किये जायँ। किसी व्यक्तिके विषयमें हमारे आन्तरिक विचार उसके विचारों और आचरणको प्रभावित करते हैं। अतएव किसी व्यक्तिकी अनुपस्थितिमें प्रकाशित किये गये विचारोंको व्यर्थ न समझना चाहिये। ऐसे विचार भी उसके आचरणको प्रभावित करते हैं—चाहे वे प्रकाशितरूपसे उसतक पहुँचें अथवा नहीं। हम दूसरे व्यक्तियोंके विषयमें जैसी चर्चा करते हैं, दूसरे लोग भी उसी प्रकारकी चर्चा हमारे विषयमें करने लगते हैं। दूसरेकी निन्दा करना अमैत्री-भावनाका अभ्यास है। यह एक प्रकारकी हिंसा है। अतएव निन्दाको पाप माना गया है। जितना नुकसान किसी मनुष्यका उसका धन चुराकर किया जा सकता है, उससे कहीं अधिक नुकसान उसकी निन्दासे होता है। कितने रोजगारियोंका रोजगार उनके नामपर ही चलता है। उनकी किसी प्रकार निन्दा करना उन्हें आर्थिक हानि पहुँचाना है। इसी प्रकार समाजके कार्यकर्ताओंकी काममें सफलता उनकी ख्यातिपर निर्भर करती है। अतएव किसी व्यक्तिकी निन्दा सुनने अथवा करनेमें भाग न लेना और उसके विषयमें कुछ भली ही चर्चा करना मैत्री-भावनाके अभ्यासका एक रूप है।

मैत्री-भावनाके अभ्यासका सामान्य रूप सबके प्रति शुभ कामना करना है। जिस व्यक्तिके प्रति हमारे मनमें द्वेष-भावना है, उसके प्रति विशेषरूपसे शुभ कामना करना उचित है। अपने मित्रके प्रति सभी लोग शुभ कामना करते हैं, पर अपने शत्रुके प्रति विरला ही व्यक्ति शुभ कामना करता है। मनुष्यकी दूसरे लोगोंसे शत्रुता अथवा मित्रता उसकी स्वार्थ-सिद्धिपर निर्भर करती है। जो हमारे स्वार्थमें साधक होते हैं, उन्हें हम मित्रके रूपमें देखते हैं और जिन लोगोंसे हमारे स्वार्थमें बाधा प्रतीत होती है, उन्हें हम शत्रुरूपमें देखते हैं। यदि हम अपने स्वार्थको अलग करके किसी व्यक्तिकी ओर देखें तो हम उसे न शत्रु पायेंगे और न मित्र। ऐसे व्यक्तिके प्रति भी हमें मैत्री-भावनाका अभ्यास करना चाहिये।

मैत्री-भावनाका अभ्यास सोते समय करना सर्वोत्तम है। सोते समयके विचार मनुष्यके आन्तरिक मनको प्रभावित करते हैं। उनसे उसके स्वभावका परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकारके अभ्याससे उन गुणोंका चरित्रमें आविर्भाव होता है, जिनका अन्यथा आना असम्भव दिखायी देता है। सोते समयके मैत्री-भावनाके विचारोंसे ही मनुष्यके स्वास्थ्यमें सुधार होता है। अभद्र कल्पनाओंका विनाश भी इसी प्रकार होता है।

मैत्री-भावनाके अभ्यासका एक रूप अपनी सहायताकी आशा रखनेवाले व्यक्तिकी सहायता करना है। संसारमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं, जिन्हें हमारी सहायता अथवा सेवाकी आवश्यकता है। इनकी सहायता और सेवा करना हमारा धर्म है। जो व्यक्ति संसारके कल्याणकी भावना मनमें लाते हैं, पर अपनी थैलीसे एक भी पैसा गरीब, दीन-दुःखियोंकी सहायताके लिये नहीं निकालते, वे अपने प्रति सच्चे नहीं हैं। ऐसे व्यक्तियोंके सद्भाव निकम्मे होते हैं। त्याग ही हमारे भावोंकी सचाईकी कसौटी है। यदि हम मैत्री-भावनाको सच्चा मानते हैं तो उसके अनुसार हमें अपना आचरण भी बनाना होगा। मनुष्यका जैसा आचरण होता है, उसके आन्तरिक विचार भी वैसे ही होते हैं। जिस प्रकार विचारोंका प्रभाव आचरणपर पड़ता है, इसी तरह आचरणका प्रभाव भी विचारोंपर पड़ता है। आचरण और विचार एक-दूसरेके सापेक्ष हैं।

मनुष्य दूसरे लोगोंकी सहायता धनसे अथवा शारीरिक सेवासे कर सकता है। बीमारकी सेवा करना मैत्री-भावनाके अभ्यासका एक रूप है। बुद्धभगवान्‌ने कहा है कि जो बीमारकी सेवा करता है, वह मेरी ही सेवा करता है। रोगी व्यक्तिकी सेवासे एक ओर रोगी व्यक्तिका मानसिक लाभ होता है और दूसरी ओर सेवा करनेवालेका भी मानसिक लाभ होता है। जिस व्यक्तिको किसी प्रकारकी बीमारी है, वह उसी प्रकारकी बीमारीसे पीड़ित जब किसी दूसरे व्यक्तिकी सेवा करने लगता है, तब अपनी बीमारीसे मुक्त होने लगता है।

कितने ही लोग सदा अपने-आपके विषयमें चिन्तित रहते हैं। वे जितना ही अधिक अपनी स्थितिको सुधारनेकी चेष्टा करते हैं, उनकी स्थिति उतनी ही और भी बिगड़ती जाती है। ऐसे व्यक्ति यदि अपने विषयमें चिन्ता करना छोड़कर किसी दूसरे व्यक्तिकी दयनीय दशाको सुधारनेमें लग जायँ तो वे अपनी दयनीय अवस्थासे भी मुक्त हो सकते हैं। विचार करनेसे ही हमारे दुःख बढ़ते हैं। उनपर विचार न करनेसे बहुत-से दुःख अपने-आप ही शान्त हो जाते हैं। जिस व्यक्तिको दूसरोंके दुःखोंके विषयमें सोचनेसे फुरसत नहीं मिलती, उसे अपने दुःख दुःखरूप ही नहीं दिखायी देते। वे जीवनकी प्रयोगशालाके एक अङ्ग बन जाते हैं। वह इन दुःखोंसे आनन्दकी ही प्राप्ति करता है।

मैत्री-भावनाके अभ्यासका एक परिष्कृत रूप सद्विचारोंका निर्माण है। संसारमें सद्विचारोंके अभावमें कितने ही लोग दुःखी हैं। यदि उनके विचारोंमें परिवर्तन हो जाय तो उनके दुःखोंका अन्त हो जाय। हमारे सद्विचार उन्हीं लोगोंका सबसे अधिक लाभ करते हैं, जो हमें जानते हैं और जो सदा हमारे सम्पर्कमें आते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी मानसिक उलझनमें पड़ जाता है, तब उसे सहायता देना हमारा धर्म होता है। इस प्रकारकी सहायतासे उसमें उत्साहकी वृद्धि हो जाती है और उसके हृदयमें आत्म-विश्वास उत्पन्न हो जाता है। सच्चे मनसे जो व्यक्ति दूसरोंकी सहायता करना चाहता है, उसे सहायता करनेका मार्ग भी मिल जाता है। निराशायुक्त लोगोंको सद्विचारद्वारा सहायता देना और उनके मनमें नयी आशाका सञ्चार करना समाजकी सबसे बड़ी सेवा है। आशावादी मनुष्य ही संसारका कोई कल्याण कर सकता है। कितने ही लोगोंको पत्र लिखकर, कितनोंको बातचीतके द्वारा और कितनोंको लेखों और पुस्तकोंके द्वारा अपने विचारोंसे लाभ पहुँचाया जा सकता है। ये मैत्री-भावनाके अभ्यासके कुछ प्रकार हैं।

राखो आरत लाज हरी

राखो आरत लाज हरी।
दुखसागरमें पड़ी है नैया, तुम बिन कब उबरी॥
काम, क्रोध, मद, लोभ सतावें, बारहि बार विषय-सुख भावें।
हारो मैं तो चौरासीसे, भारी विपत परी।
राखो आरत लाज हरी॥
बिरद तुम्हारी जग उजियारी, भगत बछल प्रभु जनहितकारी।
दीनानाथ दया करो मोपे, मोरी सब बिगरी।
राखो आरत लाज हरी॥
दया करो हे जानकिनाथा, भजन करूँ तुम्हरो दिन राता।
चाकर जान सम्हारो स्वामी, मोपे कठिन घरी।
राखो आरत लाज हरी॥
गुन-अवगुन देखो न जाता, अरज करूँ सुनो मोरी बाता।
कहे 'बेताब' सरन परो तेरी, जुगल किसोर हरी।
राखो आरत लाज हरी॥

(श्रीबेताब केवलारवी)

साधनकी उपयोगी बातें

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

समस्त विश्वमें चराचर रूपमें अभिव्यक्त भगवान्के पावन चरण-कमलोंमें सभक्ति नमस्कार।

मनुष्यको सहज ही जैसा दूसरोंको उपदेश देनेमें सुख मिलता है, वैसा कोई उपदेश लेनेमें नहीं मिलता। यदि उपदेश देनेवाले लोग अपने उपदेशको स्वयं पहले ग्रहण करने लगें तो फिर बहुत उपदेशोंकी आवश्यकता न रहे। उपदेश जबतक क्रियामें नहीं आते, जीवनमें नहीं उतर आते; तबतक चाहे वे किताबोंमें रहें, चाहे वाणीके शब्दोंमें रहें, उनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता। थोड़ी बात भी जीवनमें उतर जाय तो बहुत सुननेकी और कहनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

अच्छी चीजका कहना-सुनना अच्छा है। यदि अशुभके कहने-सुननेमें मन न लगे और अच्छा कहने-सुननेके लिये मन लगता रहे अथवा बुरेके लिये अवकाश न मिले, अच्छेसे फुरसत न मिले तो इसमें लाभकी बात तो अवश्य है; परंतु वास्तविक लाभ तबतक नहीं है, जबतक जीवनमें वह चीज उतर न जाय। इसलिये प्राचीन कालकी गुरु-परम्परामें उपदेशोंकी विशेष आवश्यकता नहीं थी। गुरुने उसके लायक चुपकेसे एक साधन बता दिया और वह शिष्य अपने साधनपर संलग्न हो गया। उसको करनेमें तत्पर हो गया। राह चलने लगा। चलेगा तो वह पहुँच जायगा, पर जो चलेगा नहीं केवल बात करेगा, बात सुनेगा तो जैसे बिना खाये पेट नहीं भरता इसी प्रकार बिना किये कोई सफलता नहीं मिलती। इस प्रकार साधनकी सफलताके लिये साधन करना आवश्यक है।

तो हम जो कुछ भी अच्छी बात सुनें, समझें, कहें—वह बात हमारे जीवनमें उतर जानी चाहिये।

युधिष्ठिर छोटे बच्चे थे तो पाठशालामें पढ़ते थे। गुरुजीने कहा कि देखो, कोई मार भी दे तो गुस्सा न आये यह बात सीख लो। विद्यार्थियोंसे पूछा—क्यों सीख लिया? तो वे बोले—हाँ, सीख लिया कि कोई मार भी दे तो गुस्सा न आये। यह सीख लिया। दस-पाँच दिनतक पूछते रहे कि सबने सीख लिया? तो युधिष्ठिर रोज कहते रहे कि नहीं सीखा। दो-तीन सप्ताहके बाद युधिष्ठिरसे फिर पूछा—क्यों सीख लिया? तो वे बोले नहीं सीखा तो गुरुजीको गुस्सा आ गया। छोटी-सी बात सब तो सीख गये और यह नहीं सीख पाया। गुरुजीने गुस्सेमें आकर दो-चार बेंत लगा दी। बोले—अब सीख लिया? उन्होंने कहा कि हाँ, अब सीख गया। बोले—बेंत लगाया तब सीखा, वैसे नहीं सीखा। इसपर युधिष्ठिर बोले—गुरुजी! बात यही है। आपने कहा था कि कोई मारे तो गुस्सा नहीं आये। आजतक तो किसीने मारा नहीं, फिर गुस्सा आनेकी परीक्षा कैसे होती? सीखता कैसे? आज आपके मारनेपर मैंने अपने मनमें देखा तब पता लगा कि गुस्सा नहीं आया। तो आज सीख गया, बस, इसी प्रकारसे जीवनमें बात उतर जानी चाहिये।

हम रोज-रोज एक ही बात बहुत सुनते हैं, बहुत कहते भी हैं; क्योंकि नयी बात आयेगी कहाँसे? उन्हीं बातोंको घुमा-फिराकर हजार बार भले ही कह दें। कहनेका नया तरीका भले ही अपना लें, बातें तो वही रहेंगी। 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है' इस बातको हजार बार कह दें, चाहे किसी रूपमें कह दें। 'सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान् हैं'—इसे किसी रूपमें कह दें। 'भगवान्से प्रेम करना चाहिये'—इसे किसी रूपमें कह दें। बात तो इतनी ही है। इन्हीं बातोंका विस्तार अनेक रूपोंमें हो सकता है। परंतु इन बातोंको अपने जीवनमें उतारनेके लिये युक्तिवादकी जरूरत नहीं होती।

महाभारतमें एक घटना आती है कि एक बार किसी ब्राह्मणकी गौएँ डाकूलोग चुरा ले गये। रातका समय था। ब्राह्मणने आकर पुकार की कि मेरी गाय डाकू ले गये। अर्जुनने पुकार सुनी। अर्जुनके धनुष-बाण अन्तःपुरमें रखे थे और अन्तःपुरमें उस दिन युधिष्ठिर

महाराज थे। द्रौपदीके पाँच पति थे। भगवान् व्यासने यह नियम बनाया था कि जो भाई अन्तःपुरमें रहे उसके अतिरिक्त दूसरा भाई उन दिनों अन्तःपुरमें न जाय, अगर चला जाय तो उसको बारह वर्षका देश-निकाला हो। अर्जुनने सोचा कि अब सामने दो बातें हैं। एक ओर बारह वर्षका देश-निकाला है और दूसरी ओर है राजधर्मका पालन—ब्राह्मणकी गायोंको बचाकर लाना। उन्होंने पहली बातको स्वीकार किया। नीची नजर किये अन्तःपुरमें गये। वहाँसे धनुष-बाण लिया और गायोंको छुड़ाकर ले आये। ब्राह्मणके गायोंकी रक्षा हो गयी।

युधिष्ठिरको यह घटना मालूम नहीं थी; क्योंकि वे सो रहे थे। दूसरे दिन अर्जुनने सभामें आकर बड़े भाई युधिष्ठिरजीसे कहा—महाराज! मुझे बारह वर्षका देश-निकाला मिलना चाहिये। युधिष्ठिरने कहा—कैसे? तुमने क्या कसूर किया? अपराध क्या हुआ? तो बोले—अपराध यह हुआ कि मैं रातको नियम-भंग करके अन्तःपुरमें गया था; क्योंकि वहाँसे धनुष-बाण निकालने थे और ब्राह्मणके गौओंकी रक्षा करनी थी। इसपर धर्मराजने कहा—इसमें तो कोई ऐसी बात हुई नहीं। प्रथम तो मैं बड़ा भाई और बड़े भाईके घरमें जाना कोई दोष नहीं तथा दूसरी बात तुम मेरी धर्मरक्षाके लिये गये थे। गायोंकी रक्षा करनी थी, तुमने अच्छा काम किया। तुम्हारा कोई दोष नहीं। धर्मराजकी इस बातको सुनकर अर्जुनने कहा कि महाराज! मैंने आपसे यही सीखा है कि किसी बहानेसे धर्मका लोप न करो। किसी युक्तिवादसे कोई युक्ति लगाकर बहाना बनाकर अपने दोषका समर्थन न करो। मैं युक्तिवादसे दोषका समर्थन करना नहीं चाहता। इस घटनाका तात्पर्य यही है कि जो धर्मसंगत बात हो वह जीवनमें उतर जाय। जबतक जीवनमें साधना नहीं उतरती, जबतक जीवनमें उपदेशकी बात नहीं उतरती, तबतक उपदेशकका उपदेश व्यर्थ होता है।

उपदेशकमें चार प्रधान बातें होनी चाहिये। वह जिस सिद्धान्तको कहता हो वह सिद्धान्त सच्चा हो, एक बात। दूसरी बात उस सिद्धान्तका वह स्वयं माननेवाला हो। एक घटना बतायी जाती है—एक दिन एक सज्जन हमारे पास आये। संन्यासी थे, बड़े विद्वान् थे। उन्होंने कहा कि बोलिये किस विषयपर कहना है। ईश्वरका खण्डन करें कि मण्डन। आप जो कहें सो कर देंगे, हमारे पास विद्या है। विद्यासे खण्डन भी कर देंगे, मण्डन भी कर देंगे। हमने कहा सिद्धान्त कौन-सा है? बोले—सिद्धान्त कोई नहीं। सिद्धान्त हमारी विद्या है। तो यह बात ठीक नहीं। जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन करे, वह सिद्धान्त वास्तवमें सत्य हो। दूसरी बात, वह स्वयं उस सिद्धान्तको माननेवाला हो।

तीसरी बात है कि केवल माननेवाला ही न हो, उस बातका पालन करनेवाला भी हो और चौथी बात है—उस उपदेशमें—सिद्धान्तके वर्णनमें किसी प्रकारका—मान, धन इत्यादिका स्वार्थ न हो। ये चारों बातें उपदेशकमें होनी चाहिये तब उसका उपदेश अपने-आप ग्रहीत होता है। उसे देखकर लोग उसकी बात मान लेते हैं। उपदेश पेशा नहीं होता। आजकल तो उपदेशका प्रवाह बह रहा है, उपदेशकी नदी बह रही है, नदी ही तो है, कभी कैसा पानी, कभी कैसा पानी और उसमें यह चीज भी है कि कभी कोई बड़ा महात्मा भी बोले और कोई कलाकार भी बोले। सदाचारी भी बोले, असदाचारी भी बोले। बोलना आना चाहिये। बोलनेकी कला होनी चाहिये, फिर बोलनेवाला कोई हो और जिसके पास कला न हो और महात्मा हो तो उसकी बात कोई सुनना नहीं चाहता; क्योंकि हमलोग तो कला देखते हैं। पहले हमने देखा यहाँ इन झाड़ियोंमें एक महात्मा रहते थे, उनसे कोई व्याख्यान दिलवाये तो उनको तो बोलना नहीं आता, पर उनके एक-एक शब्दमें उनके जीवनका अनुभव भरा रहता। उनके एक-एक शब्दमें तत्त्व भरा रहता।

जहाँ हम केवल बोलते हैं और कहते रहें वहाँ हमारा बोलना एक नाट्य होता है। जैसे नाटकमें कोई शंकराचार्यका अभिनय करे तो वह शंकराचार्य नहीं हो जाता, उसी प्रकारसे यदि हम केवल बोलना जानते हैं, करना नहीं जानते तथा वैसा बनना नहीं जानते तो

हमारा बोलना एक कला हो सकता है, हमारा बोलना लोक रिझानेकी चीज हो सकती है, हमारा बोलना हमारी बोलनेकी वासनाकी पूर्ति हो सकती है, जैसे—प्यास होती है, वैसे ही बोलनेकी वासना भी होती है। वासनाकी पूर्ति भले हो जाय या उससे हमारी किसी लौकिक कामनाकी पूर्ति हो जाय अथवा कौतूहलके लिये उक्ति हो जाय या उस कलाका प्रदर्शन हो जाय, परंतु जबतक हमारे जीवनमें वह बात नहीं है तबतक हम वह बात बोलनेके अधिकारी नहीं हैं।

पहले हमारे यहाँ बड़ी सुन्दर चीज थी अधिकारी-भेद। किस विषयपर कौन-कौन बोलनेका अधिकारी है। यदि गुरुके पास शिष्य जाता तो गुरु शिष्यको देखते कि शिष्य अधिकारी है कि नहीं, इसी प्रकार गुरु अगर उस विषयके अधिकारी नहीं होते तो वह कह देते कि भई, इस विषयको मैं नहीं जानता। तुम अमुक ऋषिके पास जाओ, अमुक महात्माके पास जाओ, वह तुम्हें इसका उपदेश देंगे। इस प्रकार बता देते, स्वयं अपनेको अधिकारी नहीं मानते। तब सुननेवाला और कहनेवाला एक ही बातमें कह देता और एक ही बातमें सुननेवालेका काम भी बन जाता। आज हम पचास बात सुनते रहें और एक भी बात धारण न करें तो काम नहीं बनता। पहले कहने और सुननेके अधिकारी होते थे। बिना अधिकारीके काम नहीं बनता, कम-से-कम इस साधनाके क्षेत्रमें—परमार्थ-साधनाके क्षेत्रमें तो अधिकारी-भेदकी बड़ी आवश्यकता होती है। किस प्रकारका कौन अधिकारी है। नाम-संकीर्तन यह सबके अधिकारकी चीज है, परंतु नाम-संकीर्तनमें भी जहाँ परम प्रेमका उद्भव होता है, वहाँ अधिकार आ जाता है।

चैतन्य महाप्रभुके विषयमें आता है कि श्रीवासके घरमें उनका अन्तरंग कीर्तन होता था। कीर्तन एक तो सामूहिकरूपसे बाहर होता है और एक अन्तरंग कीर्तन होता है, जिसमें प्रेमीगण प्रेमरसमें उन्मत्त होकर झूमते हुए अपने-आपको भूलकर कीर्तनमें मस्त हो जाते हैं, ऐसा ही कीर्तन था महाप्रभुजीका। एक दिन एक कीर्तन-विरोधी मनुष्य उनके घरमें घुस गया और जाकर तख्तेके नीचे छिप गया। उस दिन कीर्तनमें वैसा प्रेमरसका उद्भव नहीं हुआ। तब महाप्रभु चैतन्यने कहा कि कोई विजातीय तत्त्व है यहाँपर। देखा गया तो तख्तेके नीचे एक आदमी लेटा हुआ था। पता लग गया कौन है? वही कीर्तनका विरोधी व्यक्ति वहाँ था। उस व्यक्तिको तो लाभ मिला कीर्तन-श्रवणका। उसकी बुद्धि सुधर गयी। लेकिन जबतक उसको बाहर नहीं किया गया तबतक प्रेमरस उत्पन्न नहीं हुआ।

साधना खेल नहीं है। एक आसन हो, एक स्थान हो, एक मन्त्र हो, एक गुरु हो, एक इष्ट हो, एक समय हो तो साधनाका इस प्रकारका एक वातावरण बन जाता है कि वहाँ जाते ही वह बात अपने-आप शुरू हो जाती है। वहाँके वायुमण्डलमें उस प्रकारके तत्त्व सब ओर इस प्रकार विस्तृत हो जाते हैं, पूर्ण हो जाते हैं कि दूसरे तत्त्वोंको वहाँ प्रवेश करनेका स्थान ही नहीं मिलता। पहले ये सब साधनाके तरीके थे। साधना बाजारकी चीज नहीं। साधना दूकानपर नहीं मिलती, बिकती नहीं। जबसे यह बिकने लगी और जबसे बाजारमें आयी तबसे साधना रही नहीं। सच्ची बात, कटु जरूर है पर यह है सत्य।

तो साधनामें क्या चीज है? चीज यही है कि साधनाको अपने जीवनमें उतार लेना। ऐसा ही बन जाना। महाराज खट्वाङ्गके दृष्टान्तमें आता है कि उन्होंने तो मुहूर्त (दो घड़ी)-मात्रमें भगवान्‌को पा लिया।* कितनी देर लगती है ब्रह्मकी प्राप्तिमें। कुछ भी देर नहीं लगती। जैसे घोड़ेपर सवार होकर कोई आदमी उसके पाँवड़ेमें पैर रखे, इतनी देरमें मिलन हो जाता है। कैसे हो जाता है? गुरुजीने बताया—**'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**—'यह सारा ब्रह्म है' बस, इस बातपर विश्वास कर लिया। विश्वास करते ही अनुभूति हो गयी। क्या देर लगी। केवल विश्वासकी बात है। **[क्रमशः]**

* मुहूर्तं प्राप्य जीवितम्। (विष्णु० ४।४।८२) मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः॥ (श्रीमद्भा० ९।९।४२)

सत्सङ्ग

(श्रीशम्भुनाथजी चतुर्वेदी)

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

प्रत्येक मनुष्यकी यह आकाङ्क्षा होती है कि वह सदा सुखमें ही रहे, दुःख कभी न हो। यद्यपि सुख और दुःख दिनके बाद रातकी भाँति आते और जाते रहते हैं, परंतु दुःखका नाम सुनते ही प्राणिमात्र काँप उठते हैं। किस प्रकार अधिक-से-अधिक सुख प्राप्त हो, इसी उद्देश्यसे मनुष्य एकके पश्चात् दूसरी ईप्सित वस्तुकी आकाङ्क्षा करता है और उसे पानेका प्रयत्न करता है। जब ईप्सित वस्तु मिल जाती है, तब उससे भी उसकी संतुष्टि नहीं होती। उस समय नये अभाव उत्पन्न हो जाते हैं और उनकी पूर्ति आवश्यक प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार आवश्यकताएँ प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं और वह उन्हींके चक्करमें फँसा रहता है। अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे तो यह बहुत ही अच्छी बात है; क्योंकि जितनी ही मनुष्यकी आवश्यकताएँ बढ़ेंगी, उतने ही आविष्कार होते जायँगे और देश तथा समाजके उत्थानमें सहायक होंगे; परंतु इस प्रकारका सुख वास्तवमें सुख नहीं है और बारम्बार विषय-सुखकी प्राप्ति करनेवाले लोग भी सांसारिक झंझटोंसे ऊबकर वास्तविक सुखकी चाहना करते हैं। यह कैसे प्राप्त हो? इसका एकमात्र साधन है—**'असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा'**। वैराग्यरूपी शस्त्रसे वासनाकी जड़ काट देना। यह एकदम तो सम्भव है ही नहीं, इसके लिये शनैः-शनैः प्रयत्न करना होता है। सत्सङ्गकी इसीलिये आवश्यकता होती है; क्योंकि *'बिनु सतसंग बिबेक न होई'*। सत्सङ्ग क्या है और कैसे मिले—यह प्रश्न बड़ी गम्भीरतासे विचारणीय है। 'सत्' शब्दका प्रयोग दो प्रकारसे होता है—एक तो सद्भावमें और दूसरा साधुभावमें—**'सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते'**। (गीता १७। २६)

यहाँ पहले सद्भावको ही लीजिये। सत्सङ्गका अर्थ होता है—आसक्ति यानी सत्में आसक्ति। सत्की व्याख्या गीताके द्वितीय अध्यायके १६ वें श्लोकमें की गयी है—**'नाभावो विद्यते सतः'** अर्थात् सत्का कभी अभाव नहीं होता। ऐसी अव्यय अविनाशी सत्-वस्तु क्या है? उत्तर—

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥

अब प्रश्न यह होता है कि वह कौन-सी ऐसी सत्ता है जिसके द्वारा यह समस्त संसार व्याप्त है। श्रीभगवान्ने इसका उत्तर दिया है—**'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना'**—'मैंने ही अव्यक्तरूपसे इस समस्त जगत्को व्याप्त कर रखा है।' अव्यक्त-स्वरूपका वर्णन श्रुतिमें इस प्रकार दिया गया है—**'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'**। इसके अनुसार जंगम, स्थावर सभी भूतोंमें परमात्मा ही व्याप्त है। कबीर साहबने कैसा सुन्दर कहा है—

साहिब तेरी साहिबी, सब घट रही समाय।
ज्यों मेंहदीके पातमें, लाली लखी न जाय॥

गीतामें श्रीभगवान्ने नाशरहित कूटस्थसे भी अतीत वस्तुको ब्रह्म कहा है यथा—**'अक्षरं परमं ब्रह्म'**। यही कूटस्थ अक्षर कहलाता है, जिसका कभी विनाश नहीं होता। इस अक्षरका स्वरूप भी अनिर्देश्य और अव्यक्त है। अव्यक्तके सम्बन्धमें ऊपर लिखा ही गया है। अब अनिर्देश्यके सम्बन्धमें—

नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥

तथा—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

आकाशवत् सर्वव्यापी, मनके भी अगोचर, कूटस्थ—सबके मूलमें रहनेवाले अचल अक्षरका निर्देश 'कठोपनिषद्'में स्पष्ट कर दिया गया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥
(१। २। १५)

यहाँ ओंकारको ही नाशरहित कूटस्थसे परे परम वस्तु ब्रह्म कह दिया है। 'पद्मोद्भवसंहिता' में ओंकारको विष्णुवाचक, लक्ष्मीवाचक तथा जीववाचक कहा है—

अकारेणोच्यते विष्णुः सर्वलोकैकनायकः।
उकारेणोच्यते लक्ष्मीर्मकारो जीववाचकः॥

'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र' में इसीका दिग्दर्शन कराते हुए कहा है—

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम्॥
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥
यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये॥

इस परम तत्त्वका नित्य सङ्ग अथवा इसकी प्राप्ति करानेवाले साधन या पदार्थका सङ्ग ही सत्सङ्ग है। इस सत्सङ्गकी बड़ी महिमा है।

यह तो हुआ निर्गुण अथवा निराकार ब्रह्मका निरूपण। इसमें जैसा श्रीभगवान्‌ने निज मुखसे गीतामें कहा है कि साधारण कोटिके उपासकको अधिक क्लेश है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

(१२।५)

सगुणोपासना इससे सरलतर है। इसमें उपासक अपने भावानुसार किसी उपास्य देवताकी उपासना करता है। यदि किसी विशेष उद्देश्यकी पूर्ति-हेतु उपासना की जाती है तो देवता प्रसन्न होकर अभीष्टकी पूर्ति भी कर देता है। सगुणोपासनामें विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य तथा गणेश—इन पञ्चमूर्तियोंको ईश्वर-भावनासे पूजनेकी विधि है। देवता यदि प्रसन्न हो जाय तो अपने अन्तर्गत सब कुछ दे सकता है। इसमें कौन छोटा और कौन बड़ा—यह कहना नहीं बनता। पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि देवताके स्वरूपोंमें भिन्नता होनेपर भी उपासना वस्तुतः एक ही सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की ही होती है। **'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।'**

भगवान् कहते हैं—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

(गीता ९।२३)

निर्गुण ब्रह्म ही सगुण अथवा साकार रूपमें प्रकट होकर अपने भक्तोंके हितके लिये आवश्यकतानुसार लीला करके पुनः अव्यक्त हो जाते हैं। अवतार भी अनेक हैं—जैसे मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह इत्यादि। परंतु इनमें मुख्य दो ही माने गये हैं, एक तो त्रेतामें श्रीरामावतार और दूसरा द्वापरमें श्रीकृष्णावतार। ये दोनों ही भगवान्‌के साक्षात् अवतार हैं। अवतारका कारण 'श्रीरामचरितमानस' में इस प्रकार बताया गया है—

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

(१।१२१)

'श्रीमद्भागवत' में भी कहा है—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

(१०।१४।५५)

'श्रीकृष्ण सबके आत्माओंके आत्मा—परमात्मा हैं। केवल जगत्-कल्याणके लिये योगमायाके आश्रयसे वे रूप-धारीकी तरह दीखते हैं।' यह भगवान्‌का शरीर भगवान्‌से अभिन्न और भगवत्स्वरूप है। यही श्रीभगवान्‌के अवतारकार्यके लिये दिव्य जन्म तथा दिव्य शरीर-धारणका रहस्य है।

निर्गुण ब्रह्म जब सगुणरूपमें व्यक्त हुआ, तब उसका नाम भी चाहिये; क्योंकि बिना नामके तो उसका बोध हो ही नहीं सकता—

रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥

यदि किसी व्यक्तिकी चर्चा की जाती है और वह उस स्थानपर उपस्थित नहीं होता तो नामसे उसका स्वरूप तुरंत सामने आ जाता है—

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नामकरणके अवसरपर उनके कुलगुरु श्रीवसिष्ठजीने कहा—

इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥
जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

'नित्यानन्दलक्षणेऽस्मिन् योगिनो रमन्ति इति रामः।'

'नित्यानन्दस्वरूप चिदात्मामें योगिजन रमण करते हैं, इसलिये वे राम हैं।' अथवा—

'स्वेच्छया रमणीयं वपुर्वहन्वा दाशरथी रामः।'

अर्थात् अपनी ही इच्छासे रमणीय शरीर धारण करनेवाले दशरथनन्दन ही राम हैं।

अन्य अवतार तो अंशावतार हैं; किंतु वासुदेव तो सोलहों कलाओंसे पूर्ण अवतार हैं—

'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

कृष्णका अर्थ है जो अपनी ओर आकर्षित कर ले

अथवा जो अपने भक्तोंके पापोंका कर्षण कर ले—

व्रजे प्रसिद्धं नवनीतचौरं
गोपाङ्गनानां च दुकूलचौरम्।
अनेकजन्मार्जितपापचौरं
चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि॥

इन्हीं सगुणरूप पूर्णकाम सच्चिदानन्दकी उपासना सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञानुष्ठान, द्वापरमें पूजनसे होती है और इनसे जो लाभ होता है, वही कलियुगमें श्रीकेशवके नाम-संकीर्तनसे हो जाता है—

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

(वि० पु० ६।२।१७)

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी 'श्रीरामचरितमानस'में कहा है—

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥

× × ×

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

हरिवंशपुराणमें लिखा है—हे विप्रगण! आपलोगोंको सर्वदा सत्त्वगुणसम्पन्न होकर एकमात्र श्रीहरिका ही ध्यान करना चाहिये। आप सदा 'ॐ'का जप और श्रीकेशवका ध्यान करें।

हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वमास्थितैः॥
ओमित्येवं सदा विप्राः पठत ध्यात केशवम्॥

(भविष्यपर्व ८९।८-९)

जैसे अनिच्छासे स्पर्श करनेपर भी अग्नि जला ही डालती है, वैसे ही श्रीहरिका यदि दुष्ट पुरुषोंसे भी स्मरण हो जाय तो वे उनके समस्त पापोंको हर लेते हैं—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

'श्रीतुलसीदासजी'ने कवितावलीमें लिखा है—

रामु बिहाइ 'मरा' जपतें बिगरी सुधरी कबिकोकिलहू की।
नामहि तें गजकी, गनिकाकी, अजामिलकी चलि गै चलचूकी॥
नामप्रताप बड़ें कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधूकी।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति-प्रतीति है आखर दूकी॥

(उ०का० ८९)

नामकी बड़ाई तो श्रीराम भी स्वयं नहीं कह सकते—

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

इसीलिये तो—

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥

इस कोटिके भक्तोंमें ही शिवजी तथा उनके अंशावतार श्रीमङ्गलमूर्ति मारुतनन्दनजी, महामुनि नारद तथा उनके शिष्यद्वय ध्रुव एवं प्रह्लाद उल्लेखनीय हैं।

सीताहरणके पश्चात् जब श्रीराम-लक्ष्मण वनमें सीताजीको खोज रहे थे, शिवजी कुम्भज ऋषिके यहाँसे लौट रहे थे। मार्गमें इष्टदेव श्रीरामके दर्शन हुए। कुसमय जानकर जान-पहचान तो नहीं की, परंतु चुपचाप ***'जय सच्चिदानंद जग पावन'*** कहते हुए प्रणाम कर चले गये। सतीने जब शिवजीसे पूछा कि आप तो स्वयं ही जगद्वन्द्य हैं, आपने किसे प्रणाम किया, तब शिवजीने बताया। सतीजीको संतोष नहीं हुआ और वे उनकी परीक्षा लेने चलीं। उन्होंने सीताका कपट वेश बनाया; परंतु सर्वज्ञ भगवान् राम तुरंत पहचान गये और हाथ जोड़कर अपना नाम बताते हुए प्रणाम किया। इसी अपराधके कारण शिवजीने प्रण कर लिया कि अब इस सतीके शरीरसे प्रेम नहीं करना चाहिये; क्योंकि ऐसा करना भक्तिके पन्थमें अनीति होगी। सतीको जब यह ज्ञात हुआ, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे पिताके यज्ञमें शरीर त्यागकर पुनः पार्वतीरूपमें प्रकट हुईं। तब शिवजीने उन्हें अङ्गीकार किया। इन्हीं भगवान् रामको—

संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी॥

× × ×

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥

मङ्गलमूर्ति मारुतनन्दनजी तो शिवजीके अंशावतार ही थे और रामकाजके लिये ही अवतरित हुए थे। विभीषणजीको अपना परिचय देते हुए आप कहते हैं—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

(रा०च०मा० ५।७।७-८, दोहा ७)

सीताजीकी खोजके लिये समुद्र पारकर लङ्का गये। भगवान् रामकी कुशल उनको सुनायी। तब माता सीताने आशीर्वाद दिया कि अष्टसिद्धि नौ निधि तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ी रहेंगी। लक्ष्मण-शक्तिके समय संजीवन-बूटी

लाकर उनको जीवनदान दिया। ऐसे जाने कितने उपकार किये। उसके फलस्वरूप श्रीरामको यही कहना पड़ा कि तुम मुझे भरतके समान ही प्रिय हो। बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

महाप्रयाणके समय इन्हीं आञ्जनेयको अपना प्रतिनिधि बनाकर भगवान्‌ने कहा—तुम गन्धमादनपर अमर होकर रहो और जो कोई आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी अथवा ज्ञानी भक्त आये, उसकी मनोकामना पूर्ण करते रहो। वे श्रीरामजीके इतने अनन्य भक्त थे कि हरेक वस्तुको, जिसमें राम नहीं, हेय समझते थे। यहाँतक कि अपने कलेजेको चीरकर दिखा दिया कि उसमें भी धनुष-बाणधारी श्रीराम सदा निवास करते हैं।

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥

भला, नारदजी नामका प्रभाव न जानेंगे तो और कौन जानेगा। नारदजी तो भगवान्‌के प्रधान अर्चक हैं ही और छः महीने जब बदरिकाश्रममें बर्फ जमी रहती है, वहाँ कोई नहीं रहता, तब यही नारदजी भगवान्‌की सेवा-अर्चा करते हैं। यहाँतक कि यह क्षेत्र 'नारदीयक्षेत्र' कहलाता है। रामावतारमें इन्हींने तो भगवान् श्रीरामसे यह वरदान माँगा था—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥
एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ॥

(रा०च०मा० ३। ४२। ७-८, दोहा ४२ (क, ख))

इसके अतिरिक्त भगवान्‌ने स्वयं ही तो नारदजीसे कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

इसीलिये तो नारदजी अपनी वीणाके तार झनकारते हुए सदा—

'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।'

—की ध्वनि बिखेरते सानन्द विचरते फिरते हैं।

भगवान्‌का वचन है कि वेद, तपस्या, दान या यज्ञ किसी उपायसे भी उनका रूप देखा नहीं जा सकता। केवल अनन्य भक्तिके द्वारा ही भक्तगण उन्हें तत्त्वतः जान सकते हैं। भगवान् भुक्ति तथा मुक्ति तो सहजमें दे डालते हैं; लेकिन भक्ति देनेमें कुछ आनाकानी करते हैं। क्योंकि भक्ति देनेसे तो उन्हें भक्तके योगक्षेमका ही निरन्तर प्रबन्ध करना पड़ता है। परंतु भगवान्‌के भक्त मुक्तिको ठुकराते हैं। संसारके आवागमनसे मुक्त हो जानेपर भगवान्‌का नाम-स्मरण एवं यशोगान कैसे हो सकेगा। इसीलिये तो भक्तजनमुकुटमणि प्रह्लादने भगवान्‌से यही वर माँगा था—

नाथ योनिसहस्त्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु त्वयि दृढा॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥

भक्तवर भरतजीने भी त्रिवेणीजीसे यही तो वर माँगा था—

अरथ न धरम न कामरुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

एक अन्य भक्तकी प्रार्थना है—

नाथ! व्रजके लता पता माहि कीजै।
गोपी पद पंकज पावनकी रज जामें सिर मीजै॥
आवत जात कुंजकी गलियन रूप सुधा नित पीजै।
श्रीराधे राधे मुख यह बर मुह माँग्यो हरि दीजै॥

ऐसे ही अनन्य भक्तोंको लक्ष्य करके गोस्वामी तुलसीदासजीने कह दिया है '**धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्।**' श्रीभगवान्‌का भी उनके प्रति आश्वासन है—

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

(रा०च०मा० ३। १६)

ऐसे परम भागवत जो हर समय खाते-पीते, उठते-बैठते बस—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

—और उन्हींकी रूपमाधुरीका रसास्वादन करते हुए सर्वदा ब्रह्मानन्द-सिन्धुमें निमग्न रहते हैं। ऐसे परमप्रेमी भक्तोंके लवमात्रके सङ्गसे स्वर्ग और मोक्षकी भी तुलना नहीं होती। श्रीमद्भागवत (१। १८। १३)-में कहा है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

इसीका अनुवाद है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

साधकोंके प्रति—

सब साधनोंका सार

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जीवमात्रका स्वरूप चिन्मय सत्तामात्र है। वह सत्ता सत्-रूप, चित्-रूप और आनन्द-रूप है। वह सत्ता नित्य-निरन्तर ज्यों-की-त्यों निर्विकार, असंग रहती है। इस स्वरूपको अर्थात् अपने-आपको जब मनुष्य भूल जाता है, तब उसमें देहाभिमान उत्पन्न हो जाता है अर्थात् वह अपनेको शरीर मान लेता है। शरीरसे माना हुआ यह सम्बन्ध तीन प्रकारका होता है—१. मैं शरीर हूँ, २. शरीर मेरा है और ३. शरीर मेरे लिये है।

हमारे देखनेमें दो ही चीजें आती हैं—नाशवान् (जड़) और अविनाशी (चेतन)। इन दोनोंका विभाग अलग-अलग है। इसीको गीताने शरीर और शरीरी, क्षर और अक्षर, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ आदि नामोंसे कहा है। इसीको सन्तोंने 'नहीं' और 'है' नामसे कहा है। हमारा स्वरूप शरीरी है, चेतन है, अविनाशी है, अक्षर है, क्षेत्रज्ञ है और 'है'-रूप है। जो हमारा स्वरूप नहीं है, वह शरीर है, जड़ है, नाशवान् है, क्षर है, क्षेत्र है और 'नहीं'-रूप है। जो 'है'-रूप है, वह नित्यप्राप्त है और जो 'नहीं'-रूप है, वह मिलता है और बिछुड़ जाता है।

एक मार्मिक बात है कि 'है' को देखनेसे शुद्ध 'है' नहीं दीखता, पर 'नहीं' को 'नहीं'-रूपसे देखनेसे शुद्ध 'है' दीख जाता है। कारण यह है कि मैं शुद्ध, बुद्ध और मुक्त आत्मा हूँ—इस प्रकार 'है' पर विचार करनेमें हम मन-बुद्धि लगायेंगे, वृत्ति लगायेंगे तो 'है' के साथ 'नहीं' (मन-बुद्धि, वृत्ति, मैं-पन) भी मिला रहेगा। परंतु मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है—इस प्रकार 'नहीं' को 'नहीं'-रूपसे विचार करनेपर वृत्ति भी 'नहीं' में चली जायगी और शुद्ध 'है' शेष रह जायगा। उदाहरणार्थ—झाड़ूके द्वारा कूड़ा-करकट दूर करनेसे उसके साथ झाड़ूका भी त्याग हो जाता है और साफ मकान शेष रह जाता है। तात्पर्य यह हुआ कि 'मैं आत्मा हूँ'—इसका मनसे चिन्तन तथा बुद्धिसे निश्चय करनेपर वृत्तिके साथ हमारा सम्बन्ध बना रहेगा। परंतु 'मैं शरीर नहीं हूँ'—इस प्रकार विचार करनेपर शरीर और वृत्ति दोनोंसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा और चिन्मय सत्तारूप शुद्ध स्वरूप स्वतः शेष रह जायगा। इसलिये तत्त्वप्राप्तिमें निषेधात्मक साधन मुख्य है। निषेधात्मक साधनमें साधकके लिये तीन बातोंको स्वीकार कर लेना आवश्यक है—मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है। जबतक साधकमें यह भाव रहेगा कि मैं शरीर हूँ और शरीर मेरा तथा मेरे लिये है, तबतक वह कितना ही उपदेश पढ़ता-सुनता रहे और दूसरोंको सुनाता रहे, उसको शान्ति नहीं मिलेगी और कल्याण भी नहीं होगा। इसलिये गीताके आरम्भमें ही भगवान्‌ने साधकके लिये इस बातपर विशेष जोर दिया है कि जो बदलता है, जिसका जन्म और मृत्यु होती है, वह शरीर तुम नहीं हो।

मैं शरीर नहीं हूँ

सर्वप्रथम साधकको यह बात अच्छी तरहसे समझ लेनी चाहिये कि मैं चिन्मय सत्तारूप हूँ, शरीररूप नहीं हूँ। हम कहते हैं कि बचपनमें मैं जो था, वही मैं आज हूँ। शरीरको देखें तो बचपनसे लेकर आजतक हमारा शरीर इतना बदल गया कि उसको पहचान भी नहीं सकते, फिर भी हम वही हैं—यह हमारा अनुभव कहता है। बचपनमें मैं खेलता-कूदता था, बादमें मैं पढ़ता था, आज मैं नौकरी-धंधा करता हूँ। सब कुछ बदल गया, पर मैं वही हूँ। कारण कि शरीर एक क्षण भी ज्यों-का-त्यों नहीं रहता, निरन्तर बदलता रहता है। तात्पर्य यह हुआ कि जो बदलता है, वह हमारा स्वरूप नहीं है। जो नहीं बदलता, वही हमारा स्वरूप है।

हमने अबतक असंख्य शरीर धारण किये, पर सब शरीर छूट गये, हम वही रहे। मृत्युकालमें भी शरीर तो यहीं

छूट जायगा, पर अन्य योनियोंमें हम जायँगे, स्वर्ग-नरक आदि लोकोंमें हम जायँगे, मुक्ति हमारी होगी, भगवान्‌के धाममें हम जायँगे। तात्पर्य है कि हमारी सत्ता (होनापन) शरीरके अधीन नहीं है। शरीरके बढ़ने-घटनेपर, कमजोर-बलवान् होनेपर, बालक-बूढ़ा होनेपर अथवा रहने-न रहनेपर हमारी सत्तामें कोई फ़र्क नहीं पड़ता। जैसे हम किसी मकानमें रहते हैं तो हम मकान नहीं हो जाते। मकान अलग है, हम अलग हैं। मकान वहीं रहता है, हम उसको छोड़कर चले जाते हैं। ऐसे ही शरीर यहीं रहता है, हम उसको छोड़कर चले जाते हैं। शरीर तो मिट्टी हो जाता है, पर हम मिट्टी नहीं होते। हमारा स्वरूप गीताने इस प्रकार बताया है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

(२।२३-२४)

शस्त्र इस शरीरीको काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु इसको सुखा नहीं सकती। यह शरीरी काटा नहीं जा सकता, यह जलाया नहीं जा सकता, यह गीला नहीं किया जा सकता और यह सुखाया भी नहीं जा सकता। कारण कि यह नित्य रहनेवाला, सबमें परिपूर्ण, अचल, स्थिर स्वभाववाला और अनादि है।

तात्पर्य है कि शरीरका विभाग ही अलग है और न बदलनेवाले शरीरी (स्वरूप)-का विभाग ही अलग है। हमारा स्वरूप किसी शरीरसे लिप्त नहीं है, इसलिये उसको गीतामें भगवान्‌ने सर्वव्यापी कहा है—**'येन सर्वमिदं ततम्'** (२।१७) **'सर्वगतः'** (२।२४)। तात्पर्य है कि स्वरूप एक शरीरमें सीमित नहीं है, प्रत्युत सर्वव्यापी है।

शरीर पृथ्वीपर ही (माँके पेटमें) बनता है, पृथ्वीपर ही घूमता-फिरता है और मरकर पृथ्वीमें ही लीन हो जाता है। इसकी तीन गतियाँ बतायी गयी हैं—इसको जला देंगे तो भस्म बन जायगी, पृथ्वीमें गाड़ देंगे तो मिट्टी बन जायगी और जानवर खा लेंगे तो विष्ठा बन जायगी। इसलिये शरीर मुख्य नहीं है, प्रत्युत हमारा स्वरूप मुख्य है।

यद्यपि होनापन (सत्ता) आत्माका ही है, शरीरका नहीं, तथापि साधकसे भूल यह होती है कि वह पहले शरीरको देखकर फिर उसमें आत्माको देखता है, पहले आकृतिको देखकर फिर भावको देखता है। ऊपर लगायी हुई पालिश कबतक टिकेगी? साधकको विचार करना चाहिये कि आत्मा पहले थी या शरीर पहले था? विचार करनेपर सिद्ध होता है कि आत्मा पहले है और शरीर पीछे है। भाव पहले है और आकृति पीछे है। इसलिये हमारी दृष्टि पहले भावरूप आत्मा (स्वरूप)-की तरफ जानी चाहिये, शरीरकी तरफ नहीं।

जैसे भोजनालय भोजन करनेका स्थान होता है, ऐसे ही यह शरीर सुख-दुःख भोगनेका स्थान (भोगायतन) है। सुख-दुःख भोगनेवाला शरीर नहीं होता, प्रत्युत शरीरसे सम्बन्ध जोड़नेवाले हम स्वयं होते हैं। भोगनेका स्थान अलग होता है और भोगनेवाला अलग होता है। शरीर तो ऊपरका चोला है। हम कैसा ही कपड़ा पहनें, कपड़ा अलग होता है, हम अलग होते हैं। जैसे हम अनेक कपड़े बदलनेपर भी एक ही रहते हैं, अनेक नहीं हो जाते, ऐसे ही अनेक योनियोंमें अनेक शरीर धारण करनेपर भी हम स्वयं एक ही (वही-के-वही) रहते हैं। जैसे पुराने कपड़े उतारनेपर हम मर नहीं जाते और नये कपड़े पहननेपर हम पैदा नहीं हो जाते, ऐसे ही पुराने शरीर छोड़नेपर हम मर नहीं जाते और नया शरीर धारण करनेपर हम पैदा नहीं हो जाते।* तात्पर्य है कि शरीर जन्मता-मरता है, हम नहीं जन्मते-मरते। अगर हम मर जायँ तो फिर पाप-पुण्यका फल कौन भोगेगा? अन्य योनियोंमें और स्वर्ग-नरकादि लोकोंमें कौन जायगा? बन्धन किसका होगा? मुक्त कौन होगा? हमारा जीवन इस शरीरके अधीन नहीं है। हमारी आयु बहुत लम्बी—अनादि और अनन्त है। महासर्ग और

* वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ (गीता २।२२)

महाप्रलय हो जाय तो भी हम जन्मते-मरते नहीं, प्रत्युत ज्यों-के-त्यों रहते हैं—'**सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥**' (गीता १४।२)

हमारा और शरीरका स्वभाव बिलकुल अलग-अलग है। हम शरीरके साथ चिपके हुए, शरीरके साथ मिले हुए नहीं हैं। शरीर भी हमारे साथ चिपका हुआ, हमारे साथ मिला हुआ नहीं है। जैसे शरीर संसारमें रहता है, ऐसे हम शरीरमें नहीं रहते। शरीरके साथ हमारा मिलन कभी हुआ ही नहीं, है ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं। वास्तवमें हमें शरीरकी जरूरत ही नहीं है। शरीरके बिना भी हम स्वयं मौजसे रहते हैं। तात्पर्य है कि शरीरके न रहनेपर हमारा कुछ भी नहीं बिगड़ता। अबतक हम असंख्य शरीर धारण कर-करके छोड़ चुके हैं, पर उससे हमारी सत्तामें क्या फ़र्क़ पड़ा? हमारा क्या नुकसान हुआ? हम तो ज्यों-के-त्यों ही रहे—'**भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते**' (गीता ८।१९)

शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंकार—इन सबके अभावका अनुभव तो सबको होता है, पर अपने अभावका अनुभव कभी किसीको नहीं होता। उदाहरणार्थ, सुषुप्ति (गाढ़ निद्रा)-के समय हमें शरीरादिके अभावका अनुभव होता है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं कहता कि सुषुप्तिमें मैं नहीं था, मर गया था। कारण कि शरीरादिके अभावका अनुभव होनेपर भी हमें अपने अभावका अनुभव नहीं होता। तभी जगनेपर हम कहते हैं कि मैं बड़े सुखसे सोया कि कुछ भी पता नहीं था। सुषुप्तिमें भी हमारा होनापन ज्यों-का-त्यों था। इससे सिद्ध हुआ कि हमारा होनापन शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंकारके अधीन नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण सब शरीरोंका अभाव होता है, पर हमारा अभाव नहीं होता।

हमारा स्वरूप स्वतः-स्वाभाविक असंग है—'**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**' (बृहदारण्यक० ४।३।१५), '**देहेऽस्मिन्पुरुषः परः**' (गीता १३।२२)। इसलिये शरीरके साथ अपना सम्बन्ध मानते हुए भी वास्तवमें हम शरीरसे लिप्त नहीं होते। शरीरका संग करते हुए भी वास्तवमें हम असंग रहते हैं। तभी भगवान् कहते हैं—'**शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते**' (गीता १३।३१)। तात्पर्य है कि बद्धावस्थामें भी स्वरूप वास्तवमें मुक्त ही है। बद्धपना माना हुआ है और मुक्तपना हमारा स्वतःसिद्ध स्वरूप है। जैसे अन्धकार और प्रकाश आपसमें नहीं मिल सकते, ऐसे ही शरीर (जड़, नाशवान्) और स्वरूप (चेतन, अविनाशी) आपसमें नहीं मिल सकते। कारण कि शरीर संसारका अंश है और हम स्वयं परमात्माके अंश हैं।

एक ही दोष अथवा गुण स्थानभेदसे अनेक रूपोंसे प्रकट होता है। शरीरको अपनेसे अधिक महत्त्व देना अर्थात् शरीरको अपना स्वरूप मानना मूल दोष है, जिससे सम्पूर्ण दोषोंकी उत्पत्ति होती है। अपने स्वरूप (चिन्मय सत्तामात्र)-को शरीरसे अधिक महत्त्व देना मूल गुण है, जिससे सम्पूर्ण सद्गुणोंकी उत्पत्ति होती है।

अर्जुनने गीताके आरम्भमें भगवान्से अपने कल्याणका उपाय पूछा—'**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे**' (२।७)। इसके उत्तरमें भगवान्ने सर्वप्रथम शरीर और शरीरी (स्वरूप)-का ही वर्णन किया। इससे सिद्ध होता है कि जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, उसके लिये सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि 'मैं शरीर नहीं हूँ'। जबतक उसमें 'मैं शरीर हूँ'—यह भाव रहेगा, तबतक वह कितना ही उपदेश सुनता रहे अथवा सुनाता रहे और साधन भी करता रहे, उसका कल्याण नहीं होगा।

मनुष्यशरीर विवेकप्रधान है। अतः 'मैं शरीर नहीं हूँ'—यह विवेक मनुष्यशरीरमें ही हो सकता है। शरीरको 'मैं' मानना मनुष्यता नहीं है, प्रत्युत पशुता है। इसलिये श्रीशुकदेवजी महाराज परीक्षित्से कहते हैं—

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि॥

(श्रीमद्भा० १२।५।२)

'हे राजन्! अब तुम यह पशुबुद्धि छोड़ दो कि मैं मर जाऊँगा। जैसे शरीर पहले नहीं था, पीछे पैदा हुआ और फिर मर जायगा, ऐसे तुम पहले नहीं थे, पीछे पैदा हुए और फिर मर जाओगे—यह बात नहीं है।' [**क्रमशः**]

शरणागति

(पं० श्रीबृजेशकुमारजी पयासी 'मानस-प्रवचनकर्ता')

भगवान्‌के प्रति विश्वासपूर्वक पूर्णसमर्पणभाव सच्ची शरणागति है। शरणागतिका मूल रहस्य है भगवान्‌के प्रति निश्छलभावसे अपनी समस्त विवशताओं और दुर्बलताओंके साथ आत्मदान। अपनी अपूर्णता और प्रभुकी असीम पूर्णता, अपनी लघुता और प्रभुकी विराटताका अनुभव अणु जीवको विभु परमदेवके प्रति समर्पित हो जानेको प्रेरित करता है। अपने अहंका अबोधभाव शरणागतिका प्रथम सोपान है। क्योंकि अहंकारके अधीन होकर प्राणी अनैतिक चेष्टाएँ करता है, जिससे उसका पतन हो जाता है, इस पतनके मार्गका सर्वथा त्याग करना ही वास्तविक शरणागति है।

अहंकारको तबतक नहीं जीता जा सकता जबतक प्रभुका कृपा-कटाक्ष प्राणीपर पड़ न जाय। कहनेका भाव यह कि इस अहंकारकी शृङ्खलाको अनन्तगुणगणैक प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर देना शरणागति है।

प्रभुके आश्रयमें निराश्रय बनकर जाना शरणागति है। अपनी समस्त क्रियाओंको परमप्रभुको समर्पित करना शरणागति है। अकिंचनत्व, आर्तित्व, अगतित्वकी धारणा कर प्रभुके चरणोंमें प्रार्थनाके महाविश्वासको धारण करना प्रपत्ति या शरणागति है।

शरणागतिके लिये साधकको चाहिये कि वह प्रभुकी उस वाणीको समझनेका प्रयास करे जो श्रीमद्भगवद्गीतामें निहित है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(१८।६६)

अर्थात् सभी धर्मों (आश्रयों)-का परित्याग कर एकमात्र मेरी शरण ग्रहण कर लो। मैं तुम्हें सभी पापोंसे मुक्त कर दूँगा, शोक मत करो।

अस्तु! प्रभुको अपना सर्वस्व अर्पण कर दो।

शास्त्रों और सद्गुरुओंने छः प्रकारकी शरणागति बतलायी है, जिसपर चलकर जीव भगवत्प्राप्ति कर सकता है—यथा—

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।

(अहिर्बुध्न्य सं० ३७। २८-२९)

यही बात श्रीभारद्वाजसंहितामें निहित है—

प्रपत्तिरानुकूलस्य संकल्पोऽप्रतिकूलता।
विश्वासो वरणं न्यासः कार्पण्यमिति षड्विधा॥

इन श्लोकोंका भाव यह है कि प्रपत्ति या शरणागतिके छः अङ्ग हैं—(१) भगवान्‌के अनुकूल होनेका संकल्प, (२) कभी उनके प्रतिकूल न होना, (३) वे रक्षा करेंगे—यह विश्वास, (४) भगवान्‌को रक्षक मानना, (५) आत्मसमर्पण और (६) नितान्त दीनता।

हम क्रमशः इनके पदोंमें चलकर इनका अवलोकन करें।

(१) आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः—प्रपत्तिके प्रथमाङ्गमें शरणागतद्वारा प्रभुके प्रति सर्वथा अनुकूल रहनेका संकल्प है। प्रथम संकल्पके साथ उस सर्वशरण्यके प्रति सहज भागवती धर्ममयी चर्याको धारणकर आराध्यके प्रति **'तत्सुखसुखित्वम्'**की भावनाको जानकर प्रभुका कैंकर्य करते रहना चाहिये।

साधक किसी भी अवस्थामें हो, वह केवल एक-संकल्प होकर भगवन्मङ्गलानुशासन करे एवं सर्वभूतोंके हित एवं प्रियकी सेवाओंके प्रतिकूल न हो, यह आनुकूल्य है। यथा—

आनुकूल्यमिदं प्रोक्तं सर्वभूतेष्वानुकूलता।

अस्तु! प्रियकी रुचि एवं समस्त भूतोंकी हिताकाङ्क्षा, आनुकूल्यता निर्देशित करती है। उदाहरणके लिये—

जैसे—गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्या दैववश शापकी अधिकारिणी बनीं। किंतु, पाषाणखंडा होनेके पश्चात् भी प्रभु-के प्रति उनकी आनुकूल्यता बनीं रही और संतकृपा, भगवत्कृपासे उनका उद्धार हुआ।

रामजी महाराज एवं विश्वामित्रसहित लखन लालजू जा रहे थे मिथिलाकी ओर, अचानक एक आश्रम आया, उसे देखकर रामजी अनभिज्ञ बने रहे। मानो यह शिक्षा दे रहे हों कि गुरुदेवके सम्मुख कभी ज्ञाता न बनो। गुरुदेवने बड़े प्रेमसे कहा—

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥

(रा० च० मा० १। २१०)

मानसकेसरी पं० श्रीवाल्मीकिप्रसादजी इसी बातको बताते हुए कहते हैं कि कृपा करनेके पाँच आधार हैं—

(१) गौतम नारि—

गौतम नारी को मिले, आज शाप उद्धार।
इसीलिये तो आपने लिया मधुर अवतार॥

(२) शापवश—

शाप विवश सकतीं न कर अपना कुछ उपचार।
अस्तु कृपानिधि करि कृपा करें आज उद्धार॥

(३) उपल देह—

इतना तप इसने किया कि प्रस्तर हुआ शरीर।
प्रायश्चित तो हो चुका कृपा करें रघुबीर॥

(४) धरि धीर—

खग मृग ने भी तज दिया करके पाप विचार।
अब आशा प्रभु की लिये उचित आज उद्धार॥

(५) रज चाहति—

जो रज कीट पतंग को लुटा रहें हैं आप।
हर सकती है किसी का आज महा संताप॥

और अन्ततः श्रीरामजी महाराजने उनका उद्धार किया, क्योंकि अहल्या-चरित्रमें आनुकूल्य संकल्पकी भावना निहित है।

तात्पर्य यह कि आराध्यके प्रति अनुकूलता ही सर्वश्रेयस्कर है।

(२) प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्—शरणागतिका यह दूसरा अंग है। इसके अन्तर्गत प्रभु-प्रतिकूलताके त्यागको बताया गया है। 'शास्त्रों एवं संतोंके द्वारा बताये हुए अविहित कर्मोंको न करना प्रतिकूलताका त्याग कहलाता है।' इस प्रकारके आचरणोंको प्रपन्न कभी भी न करे। ये सभी निषिद्ध आचरण **'प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्'** कहलाते हैं।

पतिके प्रतिकूल स्त्री, पिताके प्रतिकूल पुत्र, शास्त्रनिषिद्ध आचरणनिष्ठ जैसे सुखका दर्शन नहीं करते वैसे ही शास्त्रों, संतोंके प्रतिकूल चलनेवालेकी दुर्गति ही होती है। अतः प्रभुकी शास्त्ररूप आज्ञाओंका पालन करना चाहिये और तत्प्रतिकूलका वर्जन करना चाहिये।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(गीता १६। २३)

संतोंद्वारा, शास्त्रोंद्वारा जो निषिद्ध कर्म बताये गये हैं, प्रपन्नको उन्हें स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। यह **'प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्'** है। जो बातें प्रेमास्पदके प्रतिकूल हों उनका आचरण न करे।

(३) रक्षिष्यतीति विश्वासः—'प्रभु हमारी रक्षा अवश्य करेंगे, ऐसा अटूट विश्वास प्रपन्नके हृदयमें जब उदय होता है तब **'रक्षिष्यतीति विश्वासः'** सार्थक होता है।

सर्वसमर्थ प्रभु मुझ शरणागतकी रक्षा अवश्य ही करेंगे क्योंकि, मैं उनका ही हूँ—

'तवास्मि जानकीकान्तो मनसा वाचा कर्मणा'

प्रभो! आपका विरद बहुत विशाल है, आपहीने तो भक्तोंको वचन दिया है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० युद्धकाण्ड १८। ३३)

अर्थात् जो एक बार भी मैं आपका हूँ इस प्रकारसे कहता है, उसे मैं सभीसे अभय कर देता हूँ। यह मेरी प्रतिज्ञा है।

इस प्रकार प्रभुके वचनोंपर प्रतीति रखना प्रपन्नका कार्य होना चाहिये। यह बात विभीषणजीके चरित्रमें देखी जा सकती है—

विभीषणजी महाराजने बड़े भाई रावणसे द्रोह किया और प्रभुकी शरणमें आ गये। पर सुग्रीव आदि उसे संदेहकी दृष्टिसे देखते हुए कहते हैं—

कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥
ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥

कपिगण उस परमार्थ-पथके पथिकको बन्दी बनाना चाहते हैं जो अपनी रक्षाके लिये प्रभुकी शरणमें आया है। *'राखिअ बाँधि'* में यही भाव दृष्टिगोचर होता है।

ऐसे वचन जब प्रभुजी सुने तो वे बड़ी सरलतासे

कहते हैं—

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥

मेरा प्रण तो शरणागतकी रक्षा करना है—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

और फिर शरणागत विभीषणजी भगवान्‌के प्रिय हो गये। कारण केवल एक ही था, मनमें प्रभुके प्रति यह महाविश्वास कि प्रभु मुझे अवश्य अपनायेंगे। इसलिये—

अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल॥

(रा०च०मा० १। २११)

(४) गोप्तृत्ववरणं तथा—शरणागतको चाहिये कि वह सदैव प्रभुसे यह प्रार्थना करे कि मैं आपका हूँ आपकी शरणमें हूँ। मेरेद्वारा जो मन, वचन और कर्मसे अपराध हुए हैं, उन्हें आप दयानिधान क्षमा करे। मैं पापी प्राणी आपके चरित्रमें मन न लगा सका, आपका विधान तो बहुत बड़ा है। प्रभो! आप मेरी रक्षा करें। जब ऐसी प्रार्थना होगी जो प्रभुको याद दिलायेगी यह गोप्तृत्ववरण है।

अपने रक्षणभारको सर्वशरण्यके श्रीचरणोंमें समर्पित करनेकी भावना शरणागतिका चतुर्थाङ्ग है।

(५) आत्मनिक्षेपः—प्रभुके श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण करना ही शरणागति है। जब प्रपन्न प्रभुको अपना सर्वस्व मान ले और अपना मान-सम्मान, मन, वचन, कर्म सब समर्पित कर दे। वह सर्वसमर्पण आत्मनिक्षेप होगा। जैसे एक कुलीन स्त्री अपने पतिके सिवाय अन्य पुरुषसे कोई अपेक्षा नहीं करती वरन् उसे अपना सर्वस्व दानकर उसीकी सेवामें रत रहती है। ठीक उसी प्रकार जीवात्मारूपी कन्याका, भगवान् रूपी पतिको समर्पित हो जाना उन्हींकी सेवा करके जीवन-यापन करना सच्चे शरणागतका लक्षण है। प्रपन्नद्वारा अपना सर्वस्व शरण्यके चरणोंमें अर्पित करके दुर्लभ कैंकर्य करनेकी आज्ञा माँगना और उसपर दृढ़ होना—यह प्रपन्नका कार्य है। नारद-पाञ्चरात्रमें कहा गया है—

योऽहं ममास्ति यत् किञ्चिदिहलोके परत्र च।
तत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम्॥
त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम्।

प्रपन्नको चाहिये कि वह अपने अन्तः और बाह्य स्थितिको पुष्पके समान परमात्माके चरणोंमें निवेदित कर दे।

(६) कार्पण्यम्—प्रभुको अपनी कार्पण्यता निवेदित करनी चाहिये। कार्पण्यताका अर्थ है नितान्त दीनता।

दैन्यानुसंधान करके प्रभुके सन्मुख जाना और उसी दैन्यभावको प्रभुके सम्मुख प्रकट करना शरणागतका स्वरूप है।

विभीषणजी महाराजने प्रभुके समक्ष अपनी कार्पण्यता निवेदित की—

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः॥
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः।
परित्यक्ता मया लंका मित्राणि च धनानि च॥
भवद्‌गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च।

(वा०रा० युद्धकाण्ड १९। ४—६)

विभीषणने कहा—भगवन्! मैं रावणका छोटा भाई हूँ। रावणने मेरा अपमान किया है। आप समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, इसलिये मैंने आपकी शरण ली है। अपने सभी मित्र, धन और लङ्कापुरीको मैं छोड़ आया हूँ। अब मेरा राज्य, जीवन और सुख सब आपके ही अधीन है।

दीनता निवेदन करनेके पश्चात् विभीषणजी प्रभुके प्रिय हो गये। इस प्रकार शरणागतिमें षडङ्गोंका महत्त्व है।

यदि हमें अपने जीवनको प्रेमास्पद प्रभुके प्रेममें निमग्न करना है तो उनके द्वारा प्रतिपादित नियमोंपर चलकर उन्हें प्राप्त करनेका यथाशीघ्र प्रयास करना चाहिये। शरणागतिके इन अंगोंको आत्मसात् करके भगवत्कैंकर्य प्राप्तकर अपना जीवन सफल बनाना चाहिये।

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ६२६ से आगे]

आज श्रीगुरुवार है। आज यह निश्चय है गयौ कि, इन्द्रिय तथा मन कौ संयम कष्टसाध्य है, असाध्य नहीं। अर्थात् सर्वथा सुसाध्य है। यामें हमारी ही शिथिलता है।

मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य

तथा च

होय बुद्धि जौ परम सयानी

निष्कर्ष यह है कि, हमें सदैव बुद्धि बलवती बनाये राखनी चहिये।

बात यही जानि परै है कि, मन कूँ विषयनमें विशेष रस मिलै है। कारण यहू है कि, जन्म-जन्मान्तर सौं जब-जब, जा-जा यौनिमें जीव पहुँच्यौ, विशेषतया विषयनकौ ही शिकार होतौ रह्यौ है। देव-यौनि हमलोगन सौं बहुत ऊँची मानी जायँ हैं, किंतु वे तौ मनुष्यन सौं कई गुने अधिक विषयनके गुलाम बने बैठे हैं। यही कारण है कि, मन बार-बार रोकिवे पै हू उसमें ही भटकतौ रहै है। येन-केन प्रकारेण अपनौं काम बनाय ही लेय है। प्रकृतिने दौनौं प्रकारकी वस्तुएँ रची हैं।

यथा अग्नि दाहक है—तौ

याके शमनके ताँईं जल इत्यादि।

यहाँ मन कूँ रसान्तरमें लायवेके ताँईं श्रीप्राणनाथकी स्मृति ही परमौषधि है।

यह अनुभूति है कि—जा क्षण श्रीप्राण-प्रियतमकौ स्मरण कैसैं हूँ होयवे लगै वा क्षण अन्तःकरणमें कोई हू विकार ठहर ही नहीं पावै है।

अब हमारौ कर्तव्य है कि—

मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य

—बार-बार श्रीप्राणवल्लभकी स्मृति। लयके साथ श्रीनामोच्चारण तथा श्रवणके द्वारा श्रवण। साथ ही यामें आनन्दकौ अनुभव करनौं।

—बार-बार विषयनके दोषन कौ चिन्तन—

रावण, कीचक, दुर्योधन आदिक हरिदास पुरुष तथा वर्तमानमें हूँ अनेकन उदाहरण प्रस्तुत हैं। हाँ, एक बात परम संतोषकी है कि—

समझायवे सौं मन समझि जाय है। बहुत पुरानौं रोग है। धीरें-धीरें हटि सकै है।

यदि चाहैं और पूर्ण प्रयत्न करैं तौ—सदाचारी, निरोग तथा भगवद्भक्त सब ही बनि सकैं हैं।

श्रद्धा—गुरुजननके वाक्य अथवा स्वनिर्मित नियमनकौ पालन। (**परिवर्तन नहीं करनौं**)

तप—नियमके पालनमें जो कष्ट सहनौं परै, प्रसन्नता सौं सहलेय और मनमें यही मानैं कि, यह सब श्रीप्राणनाथकी कृपा है, जो सहन करवाय रहे हैं। अन्यथा मैं क्षुद्र जन्तु कष्ट कैसैं सह लैंतौ?

संयम—आहार-विहार तथा नियम-पालनमें यथातथ्य वर्ताव।

सत्य—नियम-पालन तथा आत्मनिरीक्षणमें।

उच्च विचार तथा उच्चतम क्रिया—ये पाँचौ परमावश्यक हैं।

ज्ञान-मार्गमें वैराग्यकी प्रधानता है। अतएव मनोनिग्रह करनौं परै है। किंतु भाव-राज्यके पथमें मनोलयकी विशेषता है। महाहठी, महाचंचल मन या स्थितिमें (**श्रीजीवनधनके सान्निध्य अनुभवके आनन्दमें**) ऐसौ डूबि जाय है कि, न वहाँ मनकौ पतौ लगै है, न बिचारी इन्द्रियाँ हीं कछु जानि परैं हैं, विषयकी तौ गन्ध हू नहीं रहै है। विषय स्वसंवेद्य है। स्थिति बहुत ऊँची है।

सबकौ संचालक तथा सबकौ जानिवे वारौ मन ही जब महानन्दमें डूबि गयौ, तब कौन वहाँकी स्थिति कूँ वर्णन करै? आवश्यकता है, बड़े धैर्यके साथ या अवस्थामें

प्रवेश करिवे की। अति-कठिन होते भये हू दुर्लभ नहीं। यह चशका यदि लगिवे लगै तौ अन्तर्मुखी वृत्ति स्वतः होयवे लगैगी।

समस्त प्रपंच।

समस्त विषय।

ऐसे साधक कूँ स्वतः त्यागिवे लगैं हैं।

न त्यागकी आवश्यकता परै और न वैराग्यकी खोज ही करनी परै।

कामके विषयमें समस्त सन्तनने अपने विचार व्यक्त किये हैं। सबने यासौं बचिवेकी सम्मति दई है। सवरे सद्ग्रन्थनमें याकी घोर निन्दा करी गयी है। सूकर तौ महानीच स्वपच आदिक ही अपने यहाँ पालैं हैं। ब्राह्मणके द्वार पै तौ गौमाता ही दीखै है। यह सब प्रकार सौं साधककी हानि ही करै है। यदि साधकने याकूँ अजेय यद्वा दुर्जेय मानि लियौ, तब तौ याकी खूब बनि आवै है और तब तौ यह घोर आक्रमण करै है और यदि कदाचित् साधक भ्रान्ति सौं कहूँ यह मानि बैठ्यौ कि, मैंने काम पै विजय कर लीनी है। मैं चाहैं जहाँ रहूँ, स्त्री आदिकनके सम्पर्कमें हूँ, मोकूँ, कबहूँ विकारकी गन्ध नहीं उठै। जानें वे कैसे दुर्बल साधक होयँ हैं, जो सदैव यासौं भयभीत रहैं हैं? यह है ही कितनी गिनतीमें इत्यादि—तब तौ समझ लेउ कि, यह महाशत्रु धोखौ दैकैं, समय पायकैं बिचारे विजयम्मन्य प्राणी कूँ बुरे ढँग सौं नरक-कुण्डमें पटकि कैं पतन कराय बैठै है।

साधक कूँ या नीच सौं सदैव सावधान रहनौं चहिये। सदैव विषय-सम्बन्धी वस्तुन सौं दूरि ही रहै।

इन्द्रियन कूँ पूर्णतः अपने वशमें राखै।

मन कूँ धीरे-धीरे समझातौ रहै।

मनकी प्रगति पै दृष्टि राखै।

सत्व गुण कूँ बढ़ातौ रहै।

श्रीप्रियतममें प्रेम करिवेकी लालसा तथा पूर्ण प्रयत्न करतौ रहै।

याके शमन करिवेके ताँईं श्रीशंकर भगवान्‌की आराधना करनी उचित जानि परै है।

क्रमशः—

पूर्ण-प्रतिज्ञा होय, विषय सौं बचिवेकी।

विकार भाव सौं कबहूँ न देखै, न सुनै, न छुवै, न पढ़ै। विषयन सौं दूर ही रहै।

विषयवर्द्धक कोई वस्तु अपने समीप न राखै।

विषय-चिन्तन करिवे सौं मन कूँ बचावै।

याके दुष्परिणामन कूँ मनके समक्ष धरै।

श्रीप्राण-प्रियतमकौ चिन्तन बढ़ावै।

जीव जा समय चिन्ता, शोक, क्रोधादिकनके वेग सौं आक्रान्त रहै है। वा समय हू भोजन तौ करि हि लेय है, किंतु रस नहीं आवै।

ठीक यही दशा विकारयुक्त जपकी है।

ऐसौ आहार शरीरमें लाभ नहीं पहुँचावै, प्रत्युत विष ही बढ़ावै है। ऐसें हीं—शोक, चिन्ता, क्रोधादिकन सौं युक्त भजन अन्तःकरणमें सत्व नहीं बढ़ाय पावै, प्रत्युत भोग उपस्थित करि देय है।

मन है तौ हमारौ ही तथा यह हमारौ सेवक है। हमारी असावधानता सौं यह हम पै शासन करिवे लग्यौ है। पुनः सावधानता स्वीकार करते ही यह दास है जायगौ।

हमतौ प्रतिक्षण लय चाहैं हैं।

जीते-जी यहीं सब सुख भोगि लैं, मरिवे पै कौन ने देख्यौ है?

अखण्ड मौनके समान अपनौं हितकर कोई व्रत नहीं।

साधन तथा नियम-पालन श्रीगिरिराज भगवान्‌के सान्निध्यमें ही पूर्णतया पालन हौयँ हैं।

विरहकौ विशेष महत्त्व या कारण सौं है कि, विरहकी अग्निमें सवरे शुभाशुभ कर्म-फल नष्ट है जायँ हैं।

सबसौं कठिन है—राग-द्वेष। सो सर्वथा विदा है जायँ हैं। कठिन है संसारकी विस्मृति, सो स्वप्नमें हू नहीं उठै है। निरन्तर अविच्छिन्न तैलधारावत् अन्तःकी वृत्ति अपने श्रीप्राण-प्रियतममें ही अटकी रहै है। कोई प्रयत्न नहीं करनौं परै। प्रत्युत हटायवेकौ प्रयत्न करै, तऊ वह वृत्ति नहीं हटै।

[क्रमशः]

विदुरनीति

चौथा अध्याय

[गताङ्क पृ०-सं० ६३७ से आगे]

विदुर उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम्॥ १॥

चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम्।
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा॥ २॥

साध्या ऊचुः

साध्या देवा वयमेते महर्षे
दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमातुम्।
श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो नः
काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम्॥ ३॥

हंस उवाच

एतत् कार्यममराः संश्रुतं मे
धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः।
ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं
प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत॥ ४॥

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति॥ ५॥

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य
मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो
रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयीत॥ ६॥

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून्
रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्।
तस्माद् वाचमुषतीं रूक्षरूपां
धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत॥ ७॥

अरुन्तुदं परुषं रूक्षवाचं
वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां
मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वै वहन्तम्॥ ८॥

परश्चेदेनमभिविध्येत बाणै-
र्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तैः।
स विध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो
विद्यात् कविः सुकृतं मे दधाति॥ ९॥

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति॥ १०॥

विदुरजी कहते हैं—इस विषयमें दत्तात्रेय और साध्य देवताओंके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, यह मेरा भी सुना हुआ है॥ १॥ प्राचीन कालकी बात है, उत्तम व्रतवाले महाबुद्धिमान् महर्षि दत्तात्रेयजी हंस (परमहंस)-रूपसे विचर रहे थे, उस समय साध्य देवताओंने उनसे पूछा—॥ २॥

साध्य बोले—महर्षे! हम सब लोग साध्य देवता हैं, आपको केवल देखकर हम आपके विषयमें कुछ अनुमान नहीं कर सकते। हमें तो आप शास्त्रज्ञानसे युक्त, धीर एवं बुद्धिमान् जान पड़ते हैं; अतः हमलोगोंको विद्वत्तापूर्ण अपनी उदार वाणी सुनानेकी कृपा करें॥ ३॥

हंसने कहा—देवताओ! मैंने सुना है कि धैर्य-धारण, मनोनिग्रह तथा सत्य-धर्मोंका पालन ही कर्तव्य है, इसके द्वारा पुरुषको चाहिये कि हृदयकी सारी गाँठ खोलकर प्रिय और अप्रियको अपने आत्माके समान समझे॥ ४॥ दूसरोंसे गाली सुनकर भी स्वयं उन्हें गाली न दे। क्षमा करनेवालेका रोका हुआ क्रोध ही गाली देनेवालेको जला डालता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है॥ ५॥ दूसरेको न तो गाली दे और न उसका अपमान करे, मित्रोंसे द्रोह तथा नीच पुरुषोंकी सेवा न करे, सदाचारसे हीन एवं अभिमानी न हो, रूखी तथा रोषभरी वाणीका परित्याग करे॥ ६॥ इस जगत्‌में रूखी बातें मनुष्योंके मर्मस्थान, हड्डी, हृदय तथा प्राणोंको दग्ध करती रहती हैं; इसलिये धर्मानुरागी पुरुष जलानेवाली रूखी बातोंका सदाके लिये परित्याग कर दे॥ ७॥ जिसकी वाणी रूखी और स्वभाव कठोर है, जो मर्मपर आघात करता और वाग्बाणोंसे मनुष्योंको पीड़ा पहुँचाता है, उसे ऐसा समझना चाहिये कि वह मनुष्योंमें महादरिद्र है और वह अपने मुखमें दरिद्रता अथवा मौतको बाँधे हुए ढो रहा है॥ ८॥ यदि दूसरा कोई इस मनुष्यको अग्नि और सूर्यके समान दग्ध करनेवाले तीखे वाग्बाणोंसे बहुत चोट पहुँचाये तो वह विद्वान् पुरुष चोट खाकर अत्यन्त वेदना सहते हुए भी ऐसा समझे कि वह मेरे पुण्योंको पुष्ट कर रहा है॥ ९॥ जैसे वस्त्र जिस रंगमें रँगा जाय वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरकी सेवा करता है तो वह उन्हींके वशमें हो जाता है—उसपर उन्हींका रंग चढ़ जाता है॥ १०॥

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्
योऽनाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत्।
हन्तुं च यो नेच्छति पापकं वै
तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय॥ ११॥

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं
धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम्॥ १२॥

यादृशैः संनिविशते यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः॥ १३॥

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि॥ १४॥

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्या-
न्न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो
न शोचते हृष्यति नैव चायम्॥ १५॥

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः॥ १६॥

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च।
रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः॥ १७॥

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो
नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा
कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः॥ १८॥

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशङ्कितः।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः॥ १९॥

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान्।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद् भूतिमात्मनः॥ २०॥

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन
नित्योत्थानात् प्रज्ञया पौरुषेण।
न त्वेव सम्यग् लभते प्रशंसां
न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम्॥ २१॥

जो स्वयं किसीके प्रति बुरी बात नहीं कहता, दूसरोंसे भी नहीं कहलाता, बिना मार खाये स्वयं न तो किसीको मारता है और न दूसरोंसे ही मरवाता है, मार खाकर भी अपराधीको जो मारना नहीं चाहता, देवता भी उसके आगमनकी बाट जोहते रहते हैं॥ ११॥ बोलनेसे न बोलना अच्छा बताया गया है; किंतु सत्य बोलना वाणीकी दूसरी विशेषता है, यानी मौनकी अपेक्षा भी दूना लाभप्रद है। सत्य भी यदि प्रिय बोला जाय तो तीसरी विशेषता है और वह भी यदि धर्मसम्मत कहा जाय तो वह वचनकी चौथी विशेषता है॥ १२॥ मनुष्य जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे लोगोंकी सेवा करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है॥ १३॥ मनुष्य जिन-जिन विषयोंसे मनको हटाता जाता है, उन-उनसे उसकी मुक्ति होती जाती है, इस प्रकार यदि सब ओरसे निवृत्त हो जाय तो उसे लेशमात्र भी दुःखका कभी अनुभव नहीं होता॥ १४॥ जो न तो स्वयं किसीसे जीता जाता, न दूसरोंको जीतनेकी इच्छा करता है, न किसीके साथ वैर करता और न दूसरोंको चोट पहुँचाना चाहता है, जो निन्दा और प्रशंसामें समान भाव रखता है, वह हर्ष-शोकसे परे हो जाता है॥ १५॥ जो सबका कल्याण चाहता है, किसीके अकल्याणकी बात मनमें भी नहीं लाता; जो सत्यवादी, कोमल और जितेन्द्रिय है, वह उत्तम पुरुष माना गया है॥ १६॥ जो झूठी सान्त्वना नहीं देता, देनेकी प्रतिज्ञा करके दे ही डालता है, दूसरोंके दोषोंको जानता है, वह मध्यम श्रेणीका पुरुष है॥ १७॥ जिसका शासन अत्यन्त कठोर हो, जो अनेक दोषोंसे दूषित हो, कलंकित हो, जो क्रोधवश किसीकी बुराई करनेसे नहीं हटता हो, दूसरोंके किये हुए उपकारको नहीं मानता हो, जिसकी किसीके साथ मित्रता नहीं हो तथा जो दुरात्मा हो—ये अधम पुरुषके भेद हैं॥ १८॥ जो अपने ही ऊपर संदेह होनेके कारण दूसरोंसे भी कल्याण होनेका विश्वास नहीं करता, मित्रोंको भी दूर रखता है, अवश्य ही वह अधम पुरुष है॥ १९॥ जो अपनी उन्नति चाहता है, वह उत्तम पुरुषोंकी ही सेवा करे, समय आ पड़नेपर मध्यम पुरुषोंकी भी सेवा कर ले, परंतु अधम पुरुषोंकी सेवा कदापि न करे॥ २०॥ मनुष्य दुष्ट पुरुषोंके बलसे, निरन्तरके उद्योगसे, बुद्धिसे तथा पुरुषार्थसे धन भले ही प्राप्त कर ले, परंतु इससे उत्तम कुलीन पुरुषोंके सम्मान और सदाचारको वह पूर्णरूपसे कदापि नहीं प्राप्त कर सकता॥ २१॥

धृतराष्ट्र उवाच

महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा
धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च।
पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं
भवन्ति वै कानि महाकुलानि॥ २२॥

विदुर उवाच

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः
पुण्या विवाहाः सततान्नदानम्।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति
सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि॥ २३॥
येषां हि वृत्तं व्यथते न योनि-
श्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां
त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि॥ २४॥
अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च॥ २५॥
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥ २६॥
ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाच्च भारत।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च॥ २७॥
कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥ २८॥
वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः॥ २९॥
वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥ ३०॥
गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥ ३१॥
मा नः कुले वैरकृत् कश्चिदस्तु
राजामात्यो मा परस्वापहारी।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा
पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः॥ ३२॥
यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद्यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत्।
न नः स समितिं गच्छेद्यश्च नो निर्वपेत् पितॄन्॥ ३३॥
तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥ ३४॥
श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम्।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम्॥ ३५॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! धर्म और अर्थके नित्य ज्ञाता एवं बहुश्रुत देवता भी उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुषोंकी इच्छा करते हैं। इसलिये मैं तुमसे यह प्रश्न करता हूँ कि महान् (उत्तम) कुल कौन है?॥ २२॥

विदुरजी बोले—जिनमें तप, इन्द्रियसंयम, वेदोंका स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार—ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें महान् (उत्तम) कुल कहते हैं॥ २३॥ जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषोंसे माता-पिताको कष्ट नहीं पहुँचाते, प्रसन्न चित्तसे धर्मका आचरण करते हैं तथा असत्यका परित्याग कर अपने कुलकी विशेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान् कुलीन हैं॥ २४॥ यज्ञ न होनेसे, निन्दित कुलमें विवाह करनेसे, वेदका त्याग और धर्मका उल्लङ्घन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं॥ २५॥ देवताओंके धनका नाश, ब्राह्मणके धनका अपहरण और ब्राह्मणोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं॥ २६॥ भारत! ब्राह्मणोंके अनादर और निन्दासे तथा धरोहर रखी हुई वस्तुको छिपा लेनेसे अच्छे कुल भी निन्दनीय हो जाते हैं॥ २७॥ गौओं, मनुष्यों और धनसे सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचारसे हीन हैं, वे अच्छे कुलोंकी गणनामें नहीं आ सकते॥ २८॥ थोड़े धनवाले कुल भी यदि सदाचारसे सम्पन्न हैं तो वे अच्छे कुलोंकी गणनामें आ जाते हैं और महान् यश प्राप्त करते हैं॥ २९॥ सदाचारकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये; धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जानेपर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता; किंतु जो सदाचारसे भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिये॥ ३०॥ जो कुल सदाचारसे हीन हैं, वे गौओं, पशुओं, घोड़ों तथा हरी-भरी खेतीसे सम्पन्न होनेपर भी उन्नति नहीं कर पाते॥ ३१॥ हमारे कुलमें कोई वैर करनेवाला न हो, दूसरोंके धनका अपहरण करनेवाला राजा अथवा मन्त्री न हो और मित्रद्रोही, कपटी तथा असत्यवादी न हो। इसी प्रकार माता-पिता, देवता एवं अतिथियोंको भोजन करानेसे पहले भोजन करनेवाला भी न हो॥ ३२॥ हमलोगोंमेंसे जो ब्राह्मणोंकी हत्या करे, ब्राह्मणोंके साथ द्वेष करे तथा पितरोंको पिण्डदान एवं तर्पण न करे; वह हमारी सभामें न जाय॥ ३३॥ तृणका आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी—सज्जनोंके घरमें इन चार चीजोंकी कभी कमी नहीं होती॥ ३४॥ महाप्राज्ञ राजन्! पुण्यकर्म करनेवाले धर्मात्मा पुरुषोंके यहाँ ये तृण आदि वस्तुएँ बड़ी श्रद्धाके साथ सत्कारके लिये उपस्थित की जाती हैं॥ ३५॥

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै
शक्तो वोढुं न तथान्ये महीजाः।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति
महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः॥ ३६॥
न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति
यद् वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम्।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत
तद् वै मित्रं सङ्गतानीतराणि॥ ३७॥
यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परायणम्॥ ३८॥
चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः॥ ३९॥
चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।
अर्थाः समभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा॥ ४०॥
अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा॥ ४१॥
सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते॥ ४२॥
अर्चयेदेव मित्राणि सति वासति वा धने।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम्॥ ४३॥
संतापाद् भ्रश्यते रूपं संतापाद् भ्रश्यते बलम्।
संतापाद् भ्रश्यते ज्ञानं संतापाद् व्याधिमृच्छति॥ ४४॥
अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः॥ ४५॥
पुनर्नरो म्रियते जायते च
पुनर्नरो हीयते वर्धते च।
पुनर्नरो याचति याच्यते च
पुनर्नरः शोचति शोच्यते च॥ ४६॥
सुखं च दुःखं च भवाभवौ च
लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति
तस्माद् धीरो न च हृष्येन्न शोचेत्॥ ४७॥
चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि
तेषां यद् यद् वर्धते यत्र यत्र।
ततस्ततः स्त्रवते बुद्धिरस्य
छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः॥ ४८॥

धृतराष्ट्र उवाच

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति॥ ४९॥

नृपवर! छोटा-सा भी रथ भार ढो सकता है, किंतु दूसरे काठ बड़े-बड़े होनेपर भी ऐसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार उत्तम कुलमें उत्पन्न उत्साही पुरुष भार सह सकते हैं, दूसरे मनुष्य वैसे नहीं होते॥ ३६॥ जिसके कोपसे भयभीत होना पड़े तथा शङ्कित होकर जिसकी सेवा की जाय, वह मित्र नहीं है। मित्र तो वही है, जिसपर पिताकी भाँति विश्वास किया जा सके; दूसरे तो सङ्गीमात्र हैं॥ ३७॥ पहलेसे कोई सम्बन्ध न होनेपर भी जो मित्रताका बर्ताव करे, वही बन्धु, वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है॥ ३८॥ जिसका चित्त चञ्चल है, जो वृद्धोंकी सेवा नहीं करता, उस अनिश्चितमति पुरुषके लिये मित्रोंका संग्रह स्थायी नहीं होता॥ ३९॥ जैसे हंस सूखे सरोवरके आस-पास ही मँड़राकर रह जाते हैं, भीतर नहीं प्रवेश करते, उसी प्रकार जिसका चित्त चञ्चल है; जो अज्ञानी और इन्द्रियोंका गुलाम है, उसे अर्थकी प्राप्ति नहीं होती॥ ४०॥ दुष्ट पुरुषोंका स्वभाव मेघके समान चञ्चल होता है, वे सहसा क्रोध कर बैठते हैं और अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं॥ ४१॥ जो मित्रोंसे सत्कार पाकर और उनकी सहायतामें कृतकार्य होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नोंके मरनेपर उनका मांस मांसभोजी जन्तु भी नहीं खाते॥ ४२॥ धन हो या न हो, मित्रोंका तो सत्कार करे ही। मित्रोंसे कुछ भी न माँगते हुए उनके सार-असारकी परीक्षा न करे॥ ४३॥ संतापसे रूप नष्ट होता है, संतापसे बल नष्ट होता है, संतापसे ज्ञान नष्ट होता है और संतापसे मनुष्य रोगको प्राप्त होता है॥ ४४॥ अभीष्ट वस्तु शोक करनेसे नहीं मिलती; उससे तो केवल शरीरको कष्ट होता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं। इसलिये आप मनमें शोक न करें॥ ४५॥ मनुष्य बार-बार मरता और जन्म लेता है, बार-बार हानि उठाता और बढ़ता है, बार-बार स्वयं दूसरेसे याचना करता है और दूसरे उससे याचना करते हैं तथा बारम्बार वह दूसरोंके लिये शोक करता है और दूसरे उसके लिये शोक करते हैं॥ ४६॥ सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण—ये बारी-बारीसे सबको प्राप्त होते रहते हैं, इसलिये धीर पुरुषको इनके लिये हर्ष और शोक नहीं करना चाहिये॥ ४७॥ ये छः इन्द्रियाँ बहुत ही चञ्चल हैं; इनमेंसे जो-जो इन्द्रिय जिस-जिस विषयकी ओर बढ़ती है, वहाँ-वहाँ बुद्धि उसी प्रकार क्षीण होती है; जैसे फूटे घड़ेसे पानी सदा चू जाता है॥ ४८॥

धृतराष्ट्रने कहा—काठमें छिपी हुई आगके समान सूक्ष्म धर्मसे बँधे हुए राजा युधिष्ठिरके साथ मैंने मिथ्या व्यवहार किया है। अतः वे युद्ध करके मेरे मूर्ख पुत्रोंका नाश कर डालेंगे॥ ४९॥

नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः।
यत् तत् पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते॥ ५०॥

महामते! यह सब कुछ सदा ही भयसे उद्विग्न है, मेरा यह मन भी भयसे उद्विग्न है, इसलिये जो उद्वेगशून्य और शान्त पद हो, वही मुझे बताओ॥ ५०॥

विदुर उवाच

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ॥ ५१॥

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति॥ ५२॥

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः॥ ५३॥

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते॥ ५४॥

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना
न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति
न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः॥ ५५॥

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं
न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति
न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति॥ ५६॥

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं
योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं
न विद्यते किंचिदन्यद् विनाशात्॥ ५७॥

सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः।
सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम्॥ ५८॥

तन्तवः प्यायिता नित्यं तनवो बहुलाः समाः।
बहून् बहूत्वादायासान् सहन्तीत्युपमा सताम्॥ ५९॥

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ॥ ६०॥

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते॥ ६१॥

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात्॥ ६२॥

विदुरजी बोले—पापशून्य नरेश! विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और लोभत्यागके सिवा और कोई आपके लिये शान्तिका उपाय मैं नहीं देखता॥ ५१॥ बुद्धिसे मनुष्य अपने भयको दूर करता है, तपस्यासे महत् पदको प्राप्त होता है, गुरुशुश्रूषासे ज्ञान और योगसे शान्ति पाता है॥ ५२॥ मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य दानके पुण्यका आश्रय नहीं लेते, वेदके पुण्यका भी आश्रय नहीं लेते, किंतु निष्कामभावसे राग-द्वेषसे रहित हो इस लोकमें विचरते रहते हैं॥ ५३॥ सम्यक् अध्ययन, न्यायोचित युद्ध, पुण्यकर्म और अच्छी तरह की हुई तपस्याके अन्तमें सुखकी वृद्धि होती है॥ ५४॥ राजन्! आपसमें फूट रखनेवाले लोग अच्छे बिछौनोंसे युक्त पलंग पाकर भी कभी सुखकी नींद नहीं सोने पाते, उन्हें स्त्रियोंके पास रहकर तथा सूत-मागधोंद्वारा की हुई स्तुति सुनकर भी प्रसन्नता नहीं होती॥ ५५॥ जो परस्पर भेदभाव रखते हैं, वे कभी धर्मका आचरण नहीं करते। वे सुख भी नहीं पाते। उन्हें गौरव नहीं प्राप्त होता तथा शान्तिकी वार्ता भी नहीं सुहाती॥ ५६॥ हितकी बात भी कही जाय तो उन्हें अच्छी नहीं लगती। उनके योगक्षेमकी भी सिद्धि नहीं हो पाती। राजन्! भेदभाववाले पुरुषोंकी विनाशके सिवा और कोई गति नहीं है॥ ५७॥ जैसे गौओंमें दूध, ब्राह्मणमें तप और युवती स्त्रियोंमें चञ्चलताका होना अधिक सम्भव है, उसी प्रकार अपने जाति-बन्धुओंसे भय होना भी सम्भव ही है॥ ५८॥ नित्य सींचकर बढ़ायी हुई पतली लताएँ बहुत होनेके कारण बहुत वर्षोंतक नाना प्रकारके झोंके सहती हैं; यही बात सत्पुरुषोंके विषयमें भी समझनी चाहिये। (वे दुर्बल होनेपर भी सामूहिक शक्तिसे बलवान् हो जाते हैं)॥ ५९॥ भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! जलती हुई लकड़ियाँ अलग-अलग होनेपर धुआँ फेंकती हैं और एक साथ होनेपर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जातिबन्धु भी फूट होनेपर दुःख उठाते और एकता होनेपर सुखी रहते हैं॥ ६०॥ धृतराष्ट्र! जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जातिवालों और गौओंपर ही शूरता प्रकट करते हैं, वे डंठलसे पके हुए फलोंकी भाँति नीचे गिरते हैं॥ ६१॥ यदि वृक्ष अकेला है तो वह बलवान्, दृढ़मूल तथा बहुत बड़ा होनेपर भी एक ही क्षणमें आँधीके द्वारा बलपूर्वक शाखाओंसहित धराशायी किया जा सकता है॥ ६२॥

अथ ये सहिता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात्॥ ६३॥
एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम्।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम्॥ ६४॥
अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत॥ ६५॥
अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः॥ ६६॥
न मनुष्ये गुणः कश्चिद् राजन् सधनतामृते।
अनातुरत्वाद् भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः॥ ६७॥
अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य॥ ६८॥
रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते
न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम्।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव
न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम्॥ ६९॥
पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे
द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन्।
दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां
कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति॥ ७०॥
न तद् बलं यन्मृदुना विरुध्यते
सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्री-
र्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान्॥ ७१॥
धार्तराष्ट्राः पाण्डवान् पालयन्तु
पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु।
एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या
जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धाः॥ ७२॥
मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य
त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ।
पार्थान् बालान् वनवासप्रतप्तान्
गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन्॥ ७३॥
संधत्स्व त्वं कौरव पाण्डुपुत्रै-
र्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे
दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र॥ ७४॥

किंतु जो बहुत-से वृक्ष एक साथ रहकर समूहके रूपमें खड़े हैं, वे एक-दूसरेके सहारे बड़ी-से-बड़ी आँधीको भी सह सकते हैं॥ ६३॥ इसी प्रकार समस्त गुणोंसे सम्पन्न मनुष्यको भी अकेले होनेपर शत्रु अपनी शक्तिके अन्दर समझते हैं, जैसे अकेले वृक्षको वायु॥ ६४॥ किंतु परस्पर मेल होनेसे और एकसे दूसरेको सहारा मिलनेसे जातिवाले लोग इस प्रकार वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे तालाबमें कमल॥ ६५॥ ब्राह्मण, गौ, कुटुम्बी, बालक, स्त्री, अन्नदाता और शरणागत—ये अवध्य होते हैं॥ ६६॥ राजन्! आपका कल्याण हो, मनुष्यमें धन और आरोग्यको छोड़कर दूसरा कोई गुण नहीं है; क्योंकि रोगी तो मुर्देके समान है॥ ६७॥ महाराज! जो बिना रोगके उत्पन्न, कड़वा, सिरमें दर्द पैदा करनेवाला, पापसे सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सज्जनोंद्वारा पान करनेयोग्य है और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते—उस क्रोधको आप पी जाइये और शान्त होइये॥ ६८॥ रोगसे पीड़ित मनुष्य मधुर फलोंका आदर नहीं करते, विषयोंमें भी उन्हें कुछ सुख या सार नहीं मिलता। रोगी सदा ही दुःखी रहते हैं; वे न तो धनसम्बन्धी भोगोंका और न सुखका ही अनुभव करते हैं॥ ६९॥ राजन्! पहले जुएमें द्रौपदीको जीती गयी देखकर मैंने आपसे कहा था—'आप द्यूतक्रीडामें आसक्त दुर्योधनको रोकिये; विद्वान्लोग इस प्रवञ्चनाके लिये मना करते हैं।' किंतु आपने मेरा कहना नहीं माना॥ ७०॥ वह बल नहीं, जिसका मृदुल स्वभावके साथ विरोध हो; सूक्ष्म धर्मका शीघ्र ही सेवन करना चाहिये। क्रूरतापूर्वक उपार्जन की हुई लक्ष्मी नश्वर होती है, यदि वह मृदुलतापूर्वक बढ़ायी गयी हो तो पुत्र-पौत्रोंतक स्थिर रहती है॥ ७१॥ राजन्! आपके पुत्र पाण्डवोंकी रक्षा करें और पाण्डुके पुत्र आपके पुत्रोंकी रक्षा करें। सभी कौरव एक-दूसरेके शत्रुको शत्रु और मित्रको मित्र समझें। सबका एक ही कर्तव्य हो, सभी सुखी और समृद्धिशाली होकर जीवन व्यतीत करें॥ ७२॥ अजमीढकुलनन्दन! इस समय आप ही कौरवोंके आधारस्तम्भ हैं, कुरुवंश आपके ही अधीन है। तात! कुन्तीके पुत्र अभी बालक हैं और वनवाससे बहुत कष्ट पा चुके हैं, इस समय अपने यशकी रक्षा करते हुए पाण्डवोंका पालन कीजिये॥ ७३॥ कुरुराज! आप पाण्डवोंसे सन्धि कर लें; जिससे शत्रुओंको आपका छिद्र देखनेका अवसर न मिले। नरदेव! समस्त पाण्डव सत्यपर डटे हुए हैं, अब आप अपने पुत्र दुर्योधनको रोकिये॥ ७४॥ [क्रमशः]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

हम कैसे रहें

समदर्शनके आदर्श

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

(१) समदर्शी धर्मतुलाधार

तुलाधार नामके एक वैश्य थे। उन्होंने समदर्शनको ही पूजा मान लिया था। इसी समदर्शनके प्रभावसे उन्हें भगवान्‌का दर्शन प्राप्त हुआ और भगवान्‌ने उनका नाम धर्मतुलाधार रख दिया था। धर्मतुलाधार अपने शरीरमें पूर्ण कलासे युक्त अपने इष्टदेव भगवान्‌को देखते और अपनी आत्माको उन्हींकी एक कला मानते। इसी तरह दूसरेके शरीरमें भी पहले तो अपने इष्टदेवको देखते फिर कलारूपमें उसे अपना ही रूप समझते। इस तरह सभी प्राणियोंमें पूर्ण कलासे युक्त और एक कलासे युक्त भगवान्‌को देखते तो फिर द्वेष किससे करते, ईर्ष्या किससे करते? इस तरह ईर्ष्या, द्वेष आदि उनके सभी दुर्गुण मिट गये थे। उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था। वे न किसीसे झूठ बोलते, न किसीकी वस्तु हड़पते, न किसीसे झगड़ा करते; क्योंकि सभीमें वे अपनेको ही देखते थे। इसी समदर्शनके प्रभावसे तुलाधारपर पितर, देवता तथा मुनि सभी संतुष्ट रहते थे। वे भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनोंको जाननेवाले थे। भगवान्‌ने समदर्शनके विषयमें कहा है कि समदर्शन ही उत्कृष्ट तपस्या है, जिसके हृदयमें यह समता विराजती है, वही पुरुष सम्पूर्ण लोकोंमें तथा योगियोंमें सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। ऐसा व्यक्ति न मात्र स्वयंका अपितु अपनी करोड़ों पीढ़ियोंका भी उद्धार कर देता है। इतना ही नहीं, समदर्शी समस्त जगत्‌को सँभाल लेता है। स्वयं भगवान्‌ने श्रीमुखसे तुलाधारके लिये कहा है कि तुलाधारने समदर्शनसे सम्पूर्ण जगत्‌को सँभाल लिया है।

तुलाधार वैश्य थे, इसलिये वे अपने सहज कर्म (जातिगत कर्म) व्यापारादि किया करते थे। व्यापारमें सभी व्यापारियोंको दिशानिर्देश करते थे। व्यापारियोंसे वे घिरे रहते थे। उनकी बातपर ही लोग सभी वस्तुएँ लेते-देते थे। वे व्यापारी भी इन्हींकी तरह सचाईसे व्यापार करते थे। इसलिये विश्व सुखकी श्वास ले रहा था।

इस तरह दुनियामें सौ-सौ स्वर्ग उतारकर समदर्शी धर्मतुलाधार ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त हुए और तीनों लोकोंसे ऊपर प्रतिष्ठित हुए। (पद्मपुराण)

(२) समदर्शी नामदेव

हैदराबादके नरसी ब्राह्मणी ग्राममें नामदेवजीका जन्म संवत् १३२७ में हुआ था। इनके पिताका नाम दामासेठ और माताका नाम गोणाई था। इनके कुलमें दर्जीका व्यवसाय और कृष्णकी उपासना होती थी। इन्हें बचपनमें ही बता दिया गया था कि भगवान्‌को 'सम' कहते हैं; क्योंकि भगवान् प्रेममय, आनन्दमय, प्रकाशमय (सच्चिन्मय) हैं। इनमें कभी विषमता नहीं होती है। विषमता तो इनकी बहिरंगा शक्ति प्रकृतिमें होती है। इसीलिये भगवान्‌को सम और प्रकृतिको विषम कहते हैं। भगवान् सबमें विद्यमान हैं, इसलिये विषममें भी भगवान्‌के दर्शन करने चाहिये। सम उनका पारमार्थिक सत्य और विषम व्यावहारिक सत्य है। इसलिये व्यवहार व्यवहार-जगत्‌के अनुसार करते हुए भी सबमें भगवान्‌को देखना चाहिये।

नामदेव बचपनसे ही सबमें भगवान् विट्ठल (कृष्ण)-को निहारते थे और उनके प्रेमानन्दमें निमग्न रहते थे। उनके लिये विट्ठलकी मूर्ति मूर्ति न होकर साक्षात् कृष्णस्वरूप ही थी। वे इनके आग्रहपर दूध पीते और भोग भी पाते थे।

एक बार महाराष्ट्रके महान् संत ज्ञानेश्वरने नामदेवसे अपने साथ तीर्थयात्राके लिये चलनेको कहा। इस यात्रामें विट्ठलसे वियोग होना स्वाभाविक था। भगवान् भी नामदेवके वियोगसे व्याकुल हो उठे, उन्होंने ज्ञानेश्वरसे कहा कि हममें-तुममें कोई अन्तर नहीं है और मैं तुम्हें नामदेवको सौंप रहा हूँ। इस तरह सभी प्राणी भगवान्‌के ही रूप हैं, इसलिये अपनी ही तरह सबके साथ व्यवहार करना चाहिये—

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति॥

(मनुस्मृति १२।९१)

नामदेवने उत्तरी भारतमें जाकर इस सिद्धान्तका प्रचार किया कि भगवान् हम सबमें विद्यमान हैं, इसलिये सबके साथ प्रेम-व्यवहार रखना चाहिये। ये जहाँ जाते, वहाँकी भाषामें भजन बनाकर वहाँके लोगोंको सुनाते। श्रीगुरुग्रन्थ साहिबमें इनके बहुत-से भजन विद्यमान हैं। इसी प्रवासमें एक बार इन्हें एक सूने मकानमें ठहरनेका अवसर मिला। लोगोंने बहुत मना किया कि इसमें अत्यन्त निष्ठुर ब्रह्मराक्षस रहता है और यहाँ आनेवालोंको बहुत परेशान करता है। नामदेव तो सबमें भगवान्‌का ही दर्शन करते थे। उन्होंने कहा कि उसमें भी तो भगवान् ही हैं। भगवान्से क्या डरना? वे वहीं सो गये।

आधी रातको ब्रह्मराक्षस बहुत लम्बा-चौड़ा शरीर बनाकर भयंकर चीत्कार करने लगा। नामदेवकी नींद टूट गयी। उस ब्रह्मराक्षसमें भी उन्हें अपने भगवान् विट्ठल ही दिखायी देने लगे और वे प्रेमसे गाने लगे—

भले पधारे लंबक नाथ।
धरनी पाँव स्वर्ग लौ माथा, जोजन भर के लाँबे हाथ॥
सिव-सनकादिक पार न पावैं, अनगिन साज सजायें साथ॥
नामदेव के तुम ही स्वामी, कीजै प्रभुजी मोहि सनाथ॥

इस पद्यको सुनकर भगवान् विट्ठलने सचमुच उनको अपना सुन्दर रूप दिखाया और उनसे प्रेम-प्रदर्शन किया। उधर प्रेतका प्रेतत्व भी छूट गया।

(३) दण्डवत् स्वामी

दक्षिण भारतके पैठणतीर्थमें एकनाथ नामक महात्मा रहा करते थे। उनसे बहुत लोगोंका कल्याण हुआ था। उनका एक ऐसा शिष्य था, जिसकी आध्यात्मिक उन्नति अन्य साधनोंसे नहीं हो रही थी। महात्मा एकनाथने विचार किया कि इस शिष्यका कल्याण समदर्शन-साधनसे ही सम्भव है। ऐसा विचार कर उन्होंने शिष्यको समझाया कि बेटा! मैं तुम्हें एक ऐसा साधन बता रहा हूँ, जिससे तुम्हें पूरी सफलता मिल जायगी। शास्त्रमें इस साधनका नाम समदर्शन बताया गया है। वेदने बताया है कि जो भी जड और चेतन हैं, सब भगवान् ही हैं, भगवान् ही लीलाके लिये जड और चेतनके रूपमें आ गये हैं। अतः तुम जिसे देखो उसमें पूर्ण कलारूपसे भगवान्‌को और कलारूपसे भी परमात्माको ही देखो और दण्डकी तरह लेटकर उनको प्रणाम करो—

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन्।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥

(श्रीमद्भा० ३। २९। ३४)

सर्वाणि रूपाणि विचित्र धीरो
नामानि कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते॥

(तैत्तिरीयारण्यक ३। १२)

शिष्यको यह साधन बहुत भाया, जिसको भी आगे देखता, बस साष्टाङ्ग लेटकर उसे प्रणाम करता। इसलिये उस शिष्यका नाम दण्डवत् स्वामी पड़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसको सब जगह भगवान्-ही-भगवान् दिखायी पड़ने लगे। जब उसकी आँखें बंद रहतीं तो भी भगवान् दिखायी देते। धीरे-धीरे उसे समाधि लगने लगी और वह भगवन्मय हो गया।

पैठणमें दण्डवत् स्वामीकी आज भी समाधि है, लोग उसका दर्शन करते हैं। **[क्रमशः]**

जाके गति है हनुमानकी।
ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषानकी॥
अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आनकी।
सुमिरत संकट-सोच-बिमोचन, मूरति मोद-निधानकी॥
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरु जानकी।
तुलसी कपिकी कृपा-बिलोकनि, खानि सकल कल्यानकी॥

सकल गुणनिधान भगवान् राम

(डॉ० श्रीरामानन्दजी तोष्णीवाल, विशारद, एम्०ए०, एम्०फिल्०, पी-एच्०डी०)

भगवान् राम परब्रह्म परमात्मा हैं। वे प्रत्येक परमाणुमें व्याप्त चेतना शक्ति हैं। उन्होंने *'बिप्र धेनु सुर संत हित'* अवतार लिया है। वे मानव-रूपमें अपरिमित तेज, मधुर, ओजस्वी वाक्शक्ति एवं दिव्य आचरणके साथ प्रकट हुए हैं। वे अत्यन्त सहृदय, सुशील एवं सर्वगुणसम्पन्न महामानव हैं। शील, सौन्दर्य, शक्ति एवं उदारता आदि उदात्त वृत्तियोंके वे सजीव रूप हैं। उनका मानवीय गुणोंसे युक्त मर्यादामय उदात्त जीवन मानवमात्रके लिये एक आदर्श उपस्थित करता है।

रामका शील स्पृहणीय एवं अद्वितीय है। वे अनन्त शीलकी साक्षात् मूर्ति हैं। वे प्रात: उठकर माता-पिता और गुरुको प्रणाम करते हैं—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

(रा०च०मा० १। २०५। ७)

वे गुरुजनोंका आदर करते हैं, सेवाभावसे विश्वामित्रके पैर दबाते हैं। जब गुरु वसिष्ठ रामके महलमें आते हैं तो वे विनयपूर्वक उनका स्वागत करते हैं—

गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥

(रा०च०मा० २। ९। ४-५)

वे राजा जनककी सभामें धनुष-भंग करनेके लिये तभी उठते हैं जब गुरु विश्वामित्र उन्हें आदेश देते हैं—

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

(रा०च०मा० १। २५४। ५-६)

गुरुके वचन सुनकर राम उन्हें प्रणाम करते हैं और धनुष-भंगके लिये चल पड़ते हैं। धनुषको उठानेके पहले भी मन-ही-मन वे अपने गुरुका स्मरण करते हैं और तब धनुषको सहज ही उठा लेते हैं।

चित्रकूटमें राम और भरतका मिलन तो शील और स्नेहका ही मिलन है। यह शील, स्नेह, विनय, त्याग आदि उदात्त वृत्तियोंका समुच्चय सर्वथा अपूर्व है। शीलसे पूर्ण उस समाजको देखकर सभी वनवासी सात्त्विक वृत्तिमें लीन हो जाते हैं, द्रवीभूत हो उठते हैं।

रामके प्रति यदि कोई राईके समान भी उपकार कर देता है तो वे उसे पर्वतसदृश मानते हैं। वे हनुमान्‌जीके कार्योंका स्मरण करके कहते हैं—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

(रा०च०मा० ५। ३२। ५-६)

वे प्रथम भेंटमें ही विभीषणको लङ्काका राजा बना देते हैं; लेकिन मन-ही-मन यह सोचते हैं कि वे उसे कुछ भी नहीं दे पाये। लङ्का-विजयके बाद राम अपने सहायकोंको भूल नहीं पाते। वे उस विजयका श्रेय वानरोंको देते हुए कहते हैं—

तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‍यो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‍यो॥

(रा०च०मा० ६। ११८। ४)

भगवान् राम अत्यन्त उदार हैं। वे अपनी माताओंमें किसी भी प्रकारकी भेद-बुद्धि नहीं रखते। यद्यपि उनकी जन्मदात्री माता कौसल्या थीं, लेकिन वे कैकेयीके लिये विशेष आदरका भाव रखते और उनके लिये भी 'जननी' शब्दका प्रयोग करते हैं—

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥

(रा०च०मा० २। ४१। ७)

चित्रकूटमें वे अन्य माताओंसे पहले कैकेयीसे मिलते हैं और सम्पूर्ण घटनाचक्रका दोष काल, कर्म तथा विधाताके सिर मढ़कर उन्हें सान्त्वना देते हैं—

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

(रा०च०मा० २। २४४। ७-८)

भगवान् रामका अपने भाइयोंके प्रति अटूट प्रेम था। जब राजा दशरथ उनके राज्याभिषेकका निर्णय लेते हैं तो उन्हें यह अनुचित लगता है। वे कहते हैं कि केवल बड़ेका ही राज्याभिषेक क्यों, अन्य भाइयोंका क्यों नहीं—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥

(रा०च०मा० २। १०। ५—७)

उन्होंने आजीवन एक पत्नीव्रतका पालन किया और स्वप्नमें भी कभी परस्त्रीका चिन्तन नहीं किया—

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

(रा०च०मा० १। २३१। ६)

राम अनन्त सौन्दर्यकी साक्षात् प्रतिमा हैं। उनके रूपमें तीनों लोकोंके सौन्दर्यका चरम उत्कर्ष अभिव्यक्त होता है। वे सौन्दर्यके सार हैं। जनकपुरमें बालक, वृद्ध और वनिता

सब रामके सौन्दर्य-रसका पान करके भावाभिभूत हो जाते हैं। उस पुरमें रानियाँ अटारियोंपर बैठकर, रामका रूप निहारकर आत्म-विस्मृत हो उठती हैं। सीताकी सखियाँ राम और लक्ष्मणके सौन्दर्यका सटीक वर्णन कर पानेमें अपनेको असमर्थ पाती हैं—

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

(रा०च०मा० १। २२९। २)

वनगमनके समय उनकी रूप-राशिका पान करके ग्रामवासी जन आत्म-विभोर हो उठते हैं। ग्राम-वधूटियाँ राम-जानकीके सौन्दर्यपर मुग्ध हो जाती हैं तथा उनके अनुपम सौन्दर्यका दर्शन कर कृतार्थ हो जाती हैं—

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥

(रा०च०मा० २। ११४। ३-४)

रामके रूपपर देवता भी मोहित हो उठते हैं। यह सौन्दर्य और भव्यता राक्षसोंके हृदयको भी स्पर्श करनेवाली है। रामपर आक्रमण करनेवाले क्रूर राक्षस तो उनपर बाण चलाना ही भूल जाते हैं—

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥

(रा०च०मा० ३। १९। १)

और तो और, मगर, घड़ियाल, मत्स्य और सर्प-जैसे जलचर प्राणी भी रामके दिव्य सौन्दर्यको देखकर आनन्दसे पुलकित हो उठते हैं—

मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला॥
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं॥
प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥
तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी॥

(रा०च०मा० ६। ४। ५—८)

रामका सौन्दर्य दिव्य है। यह सौन्दर्य सगुण भक्तोंके मनको एकाग्रता प्रदान करता है। इस सौन्दर्यके कारण उनका मन भगवान्से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। भक्त अपने आराध्यको मानसिक चेतनामें लानेके लिये उनके नाम, रूप और गुणोंका स्मरण करता है। उनकी लीलाका चिन्तन करता है। इससे उसके मस्तिष्क-पटलपर भगवान्की छवि अंकित हो जाती है और मन चञ्चलताको त्यागकर सगुण आराध्यके रूप-सौन्दर्यमें स्थिर हो जाता है।

भगवान् राम पर-दु:खकातर हैं, करुणावरुणालय हैं, दीनानाथ हैं, अशरणशरण हैं। वे वनमें अस्थिसमूहको देखकर मुनियोंसे पूछताछ करते हैं। उन्हें यह जानकर अत्यन्त दु:ख होता है कि राक्षसोंने मुनियोंका भक्षण किया है और ये उन्हींकी अस्थियाँ है। उनका हृदय करुणासे भर उठता है। वे उसी क्षण पृथ्वीको राक्षस-विहीन करनेकी कठोर प्रतिज्ञा करते हैं—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

(रा०च०मा० ३। ९)

राम परम शक्तिसम्पन्न हैं। वे विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करते हैं और ताड़का, सुबाहु, खर-दूषण आदि राक्षसोंको नष्ट कर देते हैं। जिस शिव-धनुषको स्पर्श करनेका साहस रावण और बाणासुर-जैसे योद्धा भी न कर सके, उसे वे सहज ही भंग कर देते हैं। वे दुन्दुभि राक्षसके अस्थि-समूह और तालके वृक्षोंको सहज ही ढहा देते हैं तथा युद्ध-भूमिमें विभीषणकी रक्षा करनेके लिये रावणके द्वारा फेंके गये प्रचण्ड शूलका प्रहार स्वयं सह लेते हैं। वे अपनी शक्तिके बलपर बिना रथ, कवच और पदत्राणके ही रावणसे युद्ध करनेके लिये रणभूमिमें पहुँच जाते हैं। वे कुम्भकर्ण और त्रिलोक-विजयी रावणके सदृश महाबली राक्षसोंका संहार कर देते हैं। उनका बाण अमोघ है। वह कभी निष्फल नहीं जाता।

राम सर्वशक्तिमान् हैं; लेकिन वे मर्यादाकी सीमाएँ कभी नहीं लाँघते। वे एक ही बाणसे सैकड़ों समुद्रोंको सोख सकते हैं; परंतु मर्यादाका पालन करनेके लिये समुद्रसे राह माँगते हैं। लेकिन जब उनकी प्रार्थनाका समुद्रपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब वे उसके लिये दण्डका उपक्रम करने लगते हैं। उनमें शक्तिके साथ क्षमाशीलता भी है। वे शरणमें आनेपर भयभीत समुद्रको क्षमा कर देते हैं। देवराज इन्द्रका पुत्र जयन्त उनके बलकी परीक्षा लेना चाहता है। इसपर राम धनुषपर सींकका बाण संधान करते हैं और जयन्त प्राणोंके भयसे भागता है। अन्तमें वह रामकी शरणमें आ जाता है और कृपालु राम उसे भी एकाक्षी करके प्राण-दान दे देते हैं।

इस प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम रामका शील, सौन्दर्य और शक्तिका समन्वित स्वरूप हमारे लिये एक आदर्श है। यह हमारे जीवनमें कर्तव्यपूर्ण उत्थान और उन्नयनका मार्ग प्रशस्त करता है। भगवान् राम मङ्गल-भवन और अमङ्गलहारी हैं। वे अनाथोंपर दया करनेवाले अकाम ब्रह्म हैं। उनकी भक्ति मानवके हृदय एवं मस्तिष्कको परम शान्ति प्रदान करती है—

रघुपति-भगति सुलभ, सुखकारी। सो त्रयताप-सोक-भय-हारी॥

गोवंश-रक्षण एवं संवर्द्धन—महत्ता एवं आवश्यकता

(श्रीराजीवजी गुप्ता, सचिव, पशुधन०, उत्तर प्रदेश शासन तथा आयुक्त एवं सचिव, उत्तर प्रदेश गो-सेवा आयोग)

भारत देश मानव-सभ्यताका अग्रणी रहा है। प्रथमतः यहाँ हमारे पूर्वजोंने प्रकृतिके पञ्चतत्त्वों—क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीरके गुणोंकी पहचान की। शिकारी जीवनको छोड़कर कृषिको अपनाया एवं विभिन्न कृषि-प्रणालियाँ विकसित कीं। स्थान-स्थानकी मिट्टीके अनुसार फसल-चक्र बनाये और जैव-विविधताओंको दृष्टिगतकर हजारों किस्में विकसित कीं। कृषि-कार्यमें सहायक रहे बैल और रोगी तथा बच्चों एवं बूढ़ोंकी सहारा बनीं गायें। सदियोंकी ऐसी परम्पराओंने गायसे दूध एवं घी प्राप्त किया, बैलोंसे खेतोंको परिष्कृत किया एवं देशमें शाकाहारको बढ़ाया। अनेक प्रकारकी विपदाएँ आयीं—कभी प्राकृतिक तो कभी राजनैतिक, परंतु गोवंश कभी उपेक्षित नहीं रहा, यह सतत पल्लवित-पुष्पित होता रहा। बैल कृषिके साथ ही परिवहनमें भी प्रयोग किये जाते रहे। मुख्य बात यह थी कि गोवंशके साथ पवित्रता एवं श्रद्धा-भक्तिका भाव पुष्ट था। '**कृषिगौरक्ष्य-वाणिज्यम्**' के उद्बोधनसे भारतीय अर्थव्यवस्थाको पूर्णता प्राप्त हुई। तब पर्यावरण प्रदूषणरहित था। पौष्टिक चारा पशुधनको सुलभ था। चारागाह तथा गोचर-भूमि पर्याप्त थी। भारत देश कृषि-प्रधान रहा है। मुगलकालतक किसानकी समृद्धि पशुधन, गोधनकी उपलब्धतासे आँकी जाती रही। पुरातन कालमें गोधन राजाकी महत्ताको दर्शाता था। गोधनकी बहुलता सम्पन्नता एवं समृद्धिकी परिचायिका थी। गोकुलके राजा नन्दके पास नौ लाख गायें थीं, तो वृषभानुके पास बारह लाख।

कालान्तरमें देश-कालकी परिस्थितियोंने करवट ली। पश्चिमी लोग यहाँपर आये, कोलम्बस नामक यात्री गाय तथा गन्ना साथ लेकर गया, जिनकी संततिसे अमेरिका, इंग्लैण्ड, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि देशोंने यूरोपीय साझा बाजारमें अपनी साख स्थापित की। परंतु हमारे देशमें 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी'के प्रादुर्भावसे अंग्रेजोंके कूटनीतिक क्रिया-कलापों तथा किसानोंपर जमींदारोंके माध्यमसे कराये गये अत्याचारों और मांसाहारकी बढ़ती प्रवृत्तिके कारण किसान शोषित हुए। किसानोंकी विपन्नतासे पशु लावारिस बने एवं उनका वध होने लगा। स्वतन्त्र भारतके संविधानके अनुच्छेद ४८ के तहत कृषि एवं पशुपालनको सुदृढ़ करनेके निमित्त गोवंशके वधपर रोक लगानेके प्रयास किये गये, परंतु यह प्रयास आंशिक रहा। अनुपयोगी पशुओंके साथ ही उपयोगी पशु भी कटने लगे। किसान क्रमशः गरीब होते गये। रासायनिक खादों, कीटनाशकोंका उपयोग बढ़नेसे एवं कृषिका मशीनीकरण होनेसे गोवंशका प्रयोग कम हो गया, जिससे अनुपयोगी मानकर उनका वध किया जाने लगा। फिर कृषिके 'व्यवसायीकरण' तथा 'ग्लोबलाइजेशन'का दौर आया, जिसमें अधिक उत्पादकताकी होड़ लगी। रासायनिक खादोंका उपयोग एवं खाद्य पदार्थोंके प्रसंस्करणको प्राथमिकता मिली, जिससे न केवल खेती प्रदूषित हुई, बल्कि मांसाहारका प्रयोग बढ़ा, कृषिकी लागतें भी बढ़ीं, साथ ही कृषिमें विविध रसायनों एवं कीटनाशकोंके प्रयोगने खाद्यान्नको विषाक्त भी बनाया और जैव-विविधताओंपर वज्रपात किया। इस प्रक्रियाने मनुष्य, पशु एवं पक्षियोंके स्वास्थ्यपर विपरीत प्रभाव डाला। पशुओंसे अधिक उत्पादन लेनेके लिये विश्वमें अधिक उत्पादक समझी जानेवाली प्रजातियाँ, जिनकी हमारे देशमें अनुकूलन-क्षमता नहीं है, आयातित की गयीं और उनसे स्वदेशी प्रजातियोंमें संकरण किया जाने लगा। फलस्वरूप प्रथम पीढ़ीकी संततिमें तो उत्पादकता बढ़ी, परंतु द्वितीय पीढ़ी और उसके बादकी संततियोंमें विभिन्न प्रकारके रोग दिखायी देने लगे, जैसे कि नव-वत्सोंमें मृत्यु-दर अधिक हुई, बाँझपनकी समस्या जो पहले तीन प्रतिशततक थी बढ़कर बाईस प्रतिशततक हो गयी, विविध संक्रामक तथा पारजैविकीय रोगोंसे पशुओंमें मृत्युसे अधिक हानि होने लगी। ऐसी परिस्थितिमें न केवल प्रदेश वरन् देशके गो-वंशकी भारी हानि हुई, जैसा कि पशु-गणना वर्ष १९९७-९८ की स्थितिसे स्पष्ट है (विगत पाँच वर्षोंमें गोवंशकी संख्या २.३५ करोड़से घटकर २.०० करोड़ हो गयी, प्रति वर्ष ह्रासकी दर तीस प्रतिशत आँकी गयी

है)। कई स्वदेशी प्रजातियाँ विलुप्त होनेके कगारपर आ खड़ी हुई हैं।

देशके प्रबुद्ध नागरिकोंद्वारा स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् गोवंशको बचानेके लिये सतत प्रयास किये जाते रहे। गोवंश-रक्षणके निमित्त अनेक आन्दोलन हुए, यहाँतक कि भारत-सरकारके कृषि-मन्त्रीने इनकी उपादेयताको माना और कहा कि पशुधनसे सत्तर लाख टन पेट्रोलियमकी बचत, साठ अरब रुपयोंका दूध, तीस अरब रुपयोंकी जैविक खाद, बीस करोड़ रुपयोंकी रसोई-गैस वर्ष १९९४ में प्राप्त हुई है (५ मार्च १९९४ को पशु-ऊर्जा-सम्मेलनमें दिया गया वक्तव्य)। फिर भी गो-वधपर पूर्ण प्रतिबन्धकी कार्यवाही प्रतीक्षित रही। उत्तर प्रदेश सरकारद्वारा इस प्रकरणपर समुचित कदम उठाते हुए सम्पूर्ण प्रदेशमें गोवंशकी हत्याको पूर्णरूपसे प्रतिबन्धित कर दिया गया है, पशुओंपर होनेवाले अत्याचारोंकी रोकथामके लिये कड़े प्रयास किये जा रहे हैं ताकि गोवंशका क्षरण न होने पाये।

स्वदेशी पशु-प्रजातियों, विशेषकर गोवंशके संरक्षण एवं विकासहेतु योजनाएँ प्रारम्भ की गयी हैं। विश्व बैंकके 'स्विस डेवलपमेंट कोऑपरेशन' तथा 'कृषि-विविधीकरण परियोजना'के माध्यमसे ऐसे कार्यक्रमोंको किसानोंतक पहुँचाया जा रहा है, जिससे किसान अधिक जागरूक हो सकें और गोवंशके संरक्षणमें सक्रियतासे सहभागी बनें। केन्द्र सरकारके 'नेशनल प्रोजेक्ट ऑन कैटिल एण्ड बफैलो ब्रीडिंग' के माध्यमसे इस निमित्त संसाधनोंके विकास और प्रजनन-सम्बन्धी निवेशोंकी नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करायी जा रही है।

स्वदेशी प्रजातिके गोवंशके पशु प्रथमतः कम उत्पादक दिखायी देते हैं, परंतु इनके समग्र गुण आकलित करनेपर इनकी विशिष्टताएँ स्थानीय प्रचलित कृषि-प्रणाली (फार्मिंग सिस्टम)-में अधिक उपयोगी पायी गयी है, क्योंकि—

—स्वदेशी गोवंशके पशु स्थानीय जलवायुके पूर्ण अनुकूल होते हैं।

—स्वदेशी गोवंशके पशु प्रत्येक क्षेत्रमें सुलभ चारा-दानाका उपयोग कर भरपूर उत्पादन देते हैं और स्वदेशी गोवंशका दुग्ध कहीं अधिक पौष्टिक तथा गुणकारी होता है।

—स्वदेशी गोवंशके पशुओंके रख-रखावपर अपेक्षाकृत कम लागत आती है।

—स्वदेशी गोवंशके पशुओंमें कई संक्रामक रोग एवं किसी प्रकारके अन्य प्रकोप नहींके बराबर होते हैं।

—स्वदेशी गोवंशके पशुओंमें बाँझपन-जैसी समस्याएँ तथा वत्सोंमें मृत्युदर प्रायः बहुत कम होती है।

—स्वदेशी गोवंशकी ब्यातोंकी संख्या विदेशी प्रजातियोंकी ब्यातोंसे कहीं अधिक होती है तथा स्वदेशी बैलकी कृषि-कार्यमें पूर्ण उपयोगिता होती है।

—स्वदेशी गोवंशके एक पशुके रख-रखावपर होनेवाला व्यय उनसे प्राप्त गोमय, गोमूत्र तथा उनकी अन्य उपादेयताके सापेक्ष बहुत ही कम आता है।

—स्वदेशी गोवंशकी प्रजातियाँ प्रकृतिकी धरोहर हैं। प्रकृतिकी सभी विरासतोंका संरक्षण एवं विकास नैतिक कर्तव्य है।

—प्रत्येक स्वदेशी गोवंश-प्रजातिकी अपनी विशिष्टताएँ होती हैं, जो उनमें सदियोंके अन्तरालमें विभिन्न प्राकृतिक एवं मनुष्योंकी आवश्यकताओंके सापेक्ष विकसित हुई होती हैं।

—स्वदेशी प्रजातियाँ पशु-प्रजनन-कार्यक्रमोंकी रीढ़ होती हैं, जिनके सापेक्ष पशुके आनुवांशिक क्षमताओंमें विकासके दरका तुलनात्मक अध्ययन सम्भव हो सकता है।

अतएव आवश्यकता है कि किसान इन तथ्योंका आकलन करें और गोवंशके विकासहेतु आत्म-मन्थनके उपरान्त सक्रिय हो सहभागी बनें। इस संदर्भमें क्षेत्रीय गोशालाओंका विकास तथा गोसदनोंको अपेक्षित सहयोग दिये जानेकी भी आवश्यकता होगी, क्योंकि गोशाला ग्राम्याञ्चलका एक प्रशिक्षण माडल सिद्ध हो सकता है, जहाँ किसान सुगमतासे पहुँचकर उनपर अपनायी जा रही तकनीकोंका अध्ययन करके स्वयं भी कृषिके साथ ही पशुपालनके कार्योंमें यथेष्ट उन्नति सुनिश्चित कर सकेंगे। गोशालाओंकी समस्त व्यवस्थामें शिक्षा, स्वरोजगार, पशुधन-विकास, स्वस्थ कृषि, प्रदूषणमुक्त जीवन-शैली, संतुलित आहारकी परिकल्पना, व्यवसायिकता तथा ऊर्जाके एक ही स्थलपर समन्वयकी अभिप्रेरणा प्राप्त होती है।

भारतीय दर्शनकी प्रतीक गाय इस प्रकार न केवल सृष्टिके समयसे ही भारतीय जीवनमें रची-बसी है, वरन् भारतीयोंसे भी समग्ररूपसे जुड़ी हुई है। विश्वके सकल क्षेत्रफलका २.५ प्रतिशत क्षेत्र भारतमें है और विश्वकी जनसंख्याके सापेक्ष सोलह प्रतिशत लोग यहाँ निवास करते हैं, इस तुलनाके विरुद्ध सत्तर प्रतिशत यहाँके निवासी किसान हैं। यदि देशके सभी किसान कृषिके मशीनीकरणके परिणामस्वरूप ट्रैक्टरका उपयोग करने लगें तो इनमें प्रयुक्त होनेवाले डीजलहेतु भारी मात्रामें विदेशी मुद्रा व्यय करके डीजल आयात करना होगा, जो कि भारत-जैसे राष्ट्रहेतु किसी प्रकार उपयुक्त नहीं है। पुनश्च, ट्रैक्टरसे जुताई किये जानेपर भूमिकी उर्वराशक्तिका भी क्षरण होता है, कृषिमें अधिक रासायनिक उर्वरकोंकी जरूरत पड़ती है, संयन्त्रोंके रख-रखावपर अधिक व्यय करना होता है जो कि किसी भी दृष्टिसे किसानोंके हितमें नहीं हो सकता तथा ऐसे समस्त व्यय बैलद्वारा खेती किये जानेपर अपेक्षाकृत कम होते हैं। साथ ही गोबरकी खाद प्रयोग किये जानेसे रासायनिक खादोंकी भी कम जरूरत होगी, जिससे कृषि न केवल सस्ती वरन् संतुलित भी हो सकेगी। ट्रैक्टरों तथा रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकोंके बढ़ते हुए प्रयोग— जो ग्रामीण वातावरणको विषाक्त एवं निरन्तर प्रदूषित कर रहे हैं—से भी छुटकारा मिल सकेगा और उक्त परिवेश स्वस्थ बना रहेगा।

गोबरकी खाद स्थान-स्थानपर खेतीके लिये अनुपयुक्त ऊसरके सुधारहेतु भी प्रयुक्त की जा रही है और इसमें लगभग शत-प्रतिशत सफलता मिल रही है।

गोमूत्रका प्रयोग कृषि-कार्योंमें ऑर्गेनिक कीटनाशकके रूपमें क्रमशः प्रसारित हो रहा है जो एक बार पुनः रासायनिक कीटनाशकोंकी तुलनामें सस्ता तथा सर्वत्र सुलभ और वातावरणीय प्रदूषणको दूर रखनेवाला सिद्ध हो रहा है।

पञ्चगव्यकी महत्ता आदिकालसे स्थापित रही है। वर्तमान चिकित्सा-प्रणालीमें पञ्चगव्यके प्रमुख घटक गोमूत्रकी उपादेयता भी कम नहीं है। गो-अनुसंधान-कार्यक्रमोंसे जुड़े विभिन्न संस्थानोंद्वारा गोमूत्र एवं पञ्चगव्यसे मनुष्यकी सभी बीमारियोंकी औषधियाँ विकसित करके उपयोगमें लायी जा रही हैं।

अतः गोवंशकी स्वदेशी प्रजातियोंका संरक्षण एवं विकास आजके सामाजिक तथा आर्थिक परिदृश्यमें एक ऐसी अपरिहार्यता है, जिससे इनकी उपादेयताके प्रसारके साथ किसानोंकी उन्नति एवं स्वरोजगारके नये अवसर सृजित होंगे।

समस्त ग्रामीण बन्धु तथा शहरोंमें रहनेवाले वे व्यक्ति जो अपने घरपर गो-पालनकी व्यवस्था कर सकते हैं, उन्हें अवश्य गो-पालन करना चाहिये; ताकि पौष्टिक आहारके साथ गोबर, गोमूत्रके रूपमें खाद, कीटनाशक औषधि एवं ऊर्जा प्राप्त हो सके तथा गौके सहज वात्सल्य एवं गो-सेवाके पुण्यसे जीवन सार्थक हो सके। अन्य व्यक्तियोंको भी निकटवर्ती गोशालाओंमें जाकर समय-समयपर गो-सेवा करनी चाहिये। सभीको गो-वंशकी तस्करी तथा गो-वध रोकनेका पूर्ण प्रयास करना चाहिये।

परमपूज्य ब्रह्मर्षि श्रीदेवरहा बाबाके अमृत वचन हैं—

''गायके पृष्ठभागमें ब्रह्माजीका, गलेमें विष्णुभगवान्‌का, मुखमें शिवजीका और रोम-रोममें ऋषि-महर्षि, देवताओंका वास है तथा आठ ऐश्वर्योंको लेकर लक्ष्मी माता गायके गोबरमें बसती हैं। गायकी बहुत बड़ी महिमा है। जहाँ गायके चरण पड़ते हैं, वहाँ देवताओंका वास रहता है। भारतकी गरीबी दूर करनेके लिये, भारतको समृद्धिशाली बनानेके लिये गोरक्षा अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, अंग्रेज—कोई भी हों, यानी सबको गोरक्षामें तत्पर हो जाना चाहिये।

मैं प्रेमपूर्वक बतलाता हूँ कि अब सब भारतका कलंक मिट जायगा, अब गो-वध बंद हो जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं।''

सम्पूर्ण पापोंके नाशका उपाय

चान्द्रायणसहस्रं तु यश्चरेत्कायशोधनम्।
पिबेद्यश्चापि गङ्गाम्भः समौ स्यातां न वा समौ॥

अपने पापोंकी शुद्धिके लिये एक हजार चान्द्रायण-व्रत किये जायँ तो भी वे गङ्गाजल-पानके पुण्यके समान नहीं होते अर्थात् एक हजार चान्द्रायणव्रतसे भी बढ़कर गङ्गाजल पीनेकी विशेष महिमा है।

भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा ताक्ष्र्यस्य दर्शनात्।
गङ्गाया दर्शनात्तद्वत् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

जैसे गरुडको देखते ही सभी सर्प विषरहित हो जाते हैं, ऐसे ही गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है।

स्नानमात्रेण गङ्गायां पापं ब्रह्मवधोद्भवम्।
दुराधर्षं कथं याति चिन्तयेद् यो वदेदपि॥
तस्याहं प्रददे पापं ब्रह्मकोटिवधोद्भवम्।
स्तुतिवादमिमं मत्वा कुम्भीपाकेषु जायते॥
आकल्पं नरकं भुक्त्वा ततो जायेत गर्दभः।

यदि कोई मनुष्य 'गङ्गाके स्नानमात्रसे कोई ब्रह्महत्यादि पापोंसे कैसे छूट सकता है?'—इस प्रकार वाणीसे बोल देता है अथवा चिन्तन भी कर लेता है तो उसे करोड़ ब्रह्महत्याका पाप लगता है। गङ्गाजीकी महिमाको अर्थवाद मानकर इस प्रकार शंका करनेके फलस्वरूप वह कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकको भोगकर फिर गधेकी योनिको प्राप्त होता है।

पापानां पापहन्तृत्वं स्वर्गमोक्षैकहेतुता।
स्वभाव एव गङ्गायाः शैत्ये शीतरुचिर्यथा॥

जैसे शीतकालमें स्वाभाविक ही शीत लगता है, वैसे ही गङ्गाजीसे स्वाभाविक ही पापोंका नाश तथा स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः।
..................इत्येवमाह पितामहः॥

गङ्गासे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है और भगवान् केशवसे बढ़कर कोई देव नहीं है—ऐसा पितामह भीष्मजीने कहा है।

सर्वं कृतयुगे तीर्थं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गैव केवलम्॥

सत्ययुगमें सब तीर्थ समान थे। त्रेतायुगमें पुष्करराजकी प्रधानता थी। द्वापरमें कुरुक्षेत्रकी प्रधानता थी। कलियुगमें तो केवल गङ्गाजीकी ही प्रधानता है।

येनाकार्यं शतं कृत्वा कृतं गङ्गैव सेवनम्।
तत्सर्वं तस्य गङ्गाम्भो दहत्याग्निरिवेन्धनम्॥

जिसने पहले सैकड़ों पाप कर लिये, पर शेष जीवनमें वह गङ्गाजीका ही सेवन करता है, उसके सभी पाप अग्निमें काठकी तरह भस्म हो जाते हैं।

(प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)

[संकलनकर्ता—नागौरवाले पं० श्रीनरसीजी महाराज]

विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र—

भारतीय राजर्षियोंके आदर्श—महाराज मुचुकुन्द

सूर्यवंशमें इक्ष्वाकुकुल बड़ा ही प्रसिद्ध है, जिसमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीरामरूपसे अवतीर्ण हुए। इसी वंशमें महाराज मान्धाता-जैसे महान् प्रतापशाली राजा हुए। महाराज मुचुकुन्द उन्हीं मान्धाताके पुत्र थे। ये सम्पूर्ण पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् थे। बल-पराक्रममें ये इतने बढ़े-चढ़े थे कि पृथ्वीके राजाओंकी तो बात ही क्या, देवराज इन्द्र भी इनकी सहायताके लिये लालायित रहते थे।

एक बार असुरोंने देवताओंको दबा लिया, देवता बड़े दुःखी हुए। उनके पास कोई योग्य सेनापति नहीं था, अतः उन्होंने महाराज मुचुकुन्दसे सहायताकी प्रार्थना की। महाराजने देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार की और बहुत समयतक उनकी रक्षाके लिये असुरोंसे लड़ते रहे। बहुत कालके पश्चात् देवताओंको शिवजीके पुत्र स्वामिकार्तिकेयजी योग्य सेनापतिके रूपमें मिल गये। तब देवराज इन्द्रने महाराज मुचुकुन्दसे कहा—'राजन्! आपने हमारी बड़ी सेवा की, अपने स्त्री-पुत्रोंको छोड़कर आप हमारी रक्षामें लग गये।

यहाँ स्वर्गमें जिसे एक वर्ष कहते हैं, पृथ्वीपर उतने ही समयको तीन सौ साठ वर्ष कहते हैं। आप हजारों वर्षोंसे यहाँ हैं। अत: अब आपकी राजधानीका कहीं पता भी नहीं है; आपके परिवारवाले सब कालके गालमें चले गये। हम आपपर बहुत प्रसन्न हैं। मोक्षको छोड़कर आप जो कुछ भी वरदान माँगना चाहें, माँग लें; क्योंकि मोक्ष देना हमारी शक्तिके बाहरकी बात है।'

महाराजको मानवीय बुद्धिने दबा लिया। स्वर्गमें वे सोये नहीं थे। लड़ते-लड़ते बहुत थक भी गये थे। अत: उन्होंने कहा—'देवराज! मैं यही वरदान माँगता हूँ कि मैं पेटभर सो लूँ, कोई भी मेरी निद्रामें विघ्न न डाले। जो मेरी निद्रा भंग करे, वह तुरंत भस्म हो जाय।'

देवराजने कहा—'ऐसा ही होगा, आप पृथ्वीपर जाकर शयन कीजिये। जो आपको जगायेगा, वह तुरंत भस्म हो जायगा।' ऐसा वरदान पाकर महाराज मुचुकुन्द भारतवर्षमें आकर एक गुफामें सो गये। सोते-सोते उन्हें कई युग बीत गये। द्वापर आ गया, भगवान्ने यदुवंशमें अवतार लिया। उसी समय कालयवनने मथुराको घेर लिया। उसे अपने-आप ही मरवानेकी नीयतसे और महाराज मुचुकुन्दपर कृपा करनेकी इच्छासे भगवान् श्रीकृष्ण कालयवनके सामनेसे छिपकर भागे। कालयवनको अपने बलका बड़ा घमण्ड था, वह भी भगवान्को ललकारता हुआ उनके पीछे पैदल ही भागा। भागते-भागते भगवान् उस गुफामें घुसकर छिप गये, जहाँ महाराज मुचुकुन्द सो रहे थे। उनको सोते देखकर

भगवान्ने अपना पीताम्बर धीरेसे उन्हें ओढ़ा दिया और आप छिपकर तमाशा देखने लगे; क्योंकि उन्हें छिपकर तमाशा देखनेमें बड़ा आनन्द आता है। द्रष्टा ही जो ठहरे।

कालयवन बलके अभिमानमें भरा हुआ गुफामें आया और महाराज मुचुकुन्दको ही भगवान् श्रीकृष्ण समझकर जोरोंसे दुपट्टा खींचकर जगाने लगा। महाराज जल्दीसे उठे। सामने कालयवन खड़ा था। दृष्टि पड़ते ही वहीं जलकर भस्म हो गया। अब तो महाराज इधर-उधर देखने लगे। भगवान्के तेजसे सम्पूर्ण गुफा जगमगा रही थी। उन्होंने नवजलधरश्याम पीतकौशेयवासा वनमालीको सामने मन्द-मन्द मुसकराते हुए देखा। देखते ही वे अवाक् रह गये। अपना परिचय दिया और प्रभुका परिचय पूछा। गर्गाचार्यके वचन स्मरण हो आये। ये साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं, यह समझकर वे भगवान्के चरणोंपर लोट-पोट हो गये।

भगवान्ने उन्हें उठाया, छातीसे चिपटाया, भाँति-भाँतिके वरोंका प्रलोभन दिया, किंतु वे संसारी-पदार्थोंकी निःसारता समझ चुके थे। अत: उन्होंने कोई भी सांसारिक वर नहीं माँगा। उन्होंने यही कहा—'प्रभो! मुझे देना हो तो अपनी भक्ति दीजिये, जिससे मैं सच्ची लगनके साथ भलीभाँति आपकी उपासना कर सकूँ; मैं श्रीचरणोंकी भलीभाँति भक्ति कर सकूँ, ऐसा वरदान दीजिये।' प्रभु तो मुक्तिदाता हैं, मुकुन्द हैं। उनके दर्शनोंके बाद फिर जन्म-मरण कहाँ! किंतु महाराजने अभीतक भलीभाँति उपासना नहीं की थी और वे मुक्तिसे भी बढ़कर उपासनाको चाहते थे। अत: भगवान्ने कहा—'अब तुम ब्राह्मण तथा सर्व-जीवोंमें समान दृष्टिवाले होओगे, तब जी खोलकर मेरी अनन्य उपासना करना। तुम मेरे तो बन ही गये। तुम्हारी उपासना करनेकी जो अभिलाषा है, उसके लिये तुम्हें विशुद्ध ब्राह्मणवंशमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ तुम उपासना-रसका भलीभाँति आस्वादन कर सकोगे।' वरदान देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और महाराज मुचुकुन्द ब्राह्मण-जन्ममें उपासना करके अन्तमें प्रभुके साथ अनन्य भावसे मिल गये।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवत्प्रेम और अनुकूलताकी खोज

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आप अपनेको भगवान्‌का प्रेमी भी मानते हैं और सांसारिक सुविधाओं तथा अनुकूलताओंके लिये इतने अधिक चिन्तित भी हैं, यह आश्चर्यकी बात है। संसारके दुःखोंको तो वह बुद्धिमान् मनुष्य भी धीरजके साथ सह लेता है जो उन्हें अपने ही किये हुए कर्मोंका अनिवार्य फल मानता है। वह भी समझता है कि प्रारब्धके अनुसार जो फल-भोग प्राप्त होता है, उससे कर्मका ऋण ही उतरता है। इसमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है। उससे आगे बढ़कर भगवान्‌का वह विश्वासी पुरुष है जो प्रत्येक फलको भगवान्‌के मङ्गलमय विधानके द्वारा निर्मित मानता है और विपरीत प्रतीत होनेपर भी विश्वासके बलपर उसका मङ्गलमय परिणाम मानकर प्रसन्न होता है। उससे आगे बढ़ा हुआ वह प्रेमी है, जो किसी घटनाको प्रतिकूल तो समझता है, परंतु यह मानकर प्रसन्न होता है कि इसमें मुझे तो दुःख होगा पर मेरे प्रियतम भगवान्‌को सुख होगा। ऐसा न होता तो भगवान् इस प्रकार करते ही क्यों? भगवान् जिस बातमें सुख समझें, वही मेरे लिये सुख है, इसलिये मैं सुखी हूँ। इससे भी आगे बढ़ा हुआ वह सच्चा प्रेमी है जिसको दुःख होता ही नहीं, जो प्रत्येक फलमें भगवान्‌का स्पर्श पाकर सुखी ही होता रहता है। प्रियतम भगवान् जो कुछ करते हैं, उसमें उसे प्रतिकूलताकी कल्पना ही नहीं होती। वह पद-पदपर सुखका ही अनुभव करता है। भगवान् जो कुछ करते हैं, उसे छोड़कर किसी भी सांसारिक सुविधा और अनुकूलताकी ओर उसका मन कभी जाता ही नहीं। ऐसा प्रेमी कभी दुःखका अनुभव नहीं करता। आप अपने लिये कहते हैं कि 'मैं भगवान्‌के प्रेमके अतिरिक्त और कुछ भी न जानता हूँ और न चाहता हूँ।' फिर तो सांसारिक सुविधा और अनुकूलताको जाननेका भी प्रश्न नहीं उठना चाहिये।

अतएव मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप प्रेमके स्वरूपको समझिये और सदा आनन्दमग्न रहिये। जहाँ प्रेम होगा वहाँ आनन्द ही रहेगा। जितनी-जितनी प्रेमकी कमी होगी, प्रेमके स्थानपर कोई अन्य वस्तु होगी, उतना ही आनन्दका अभाव होगा। यह सिद्धान्त है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

मोहका स्वरूप

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला था। आपने अपनी पत्नी, घर, व्यापार-उपार्जन, घरमें जेठानी-देवरानी, सास-बहू, छोटे-बड़े भाई, धन, महँगाई आदिका वर्णन करके सबको प्रतिकूल बताया और अन्तमें लिखा कि 'संसारसे हट गया हो मोह जिसका। उद्देश्य हो इसी शरीरद्वारा ईश्वर-प्राप्ति—मोक्ष...। उस मनुष्यका क्या कर्तव्य है?' इसके उत्तरमें यही निवेदन है कि आपने जिन सारी प्रतिकूलताओंका वर्णन किया है, वही तो संसारका स्वरूप है। उससे मोह हट जाना ही उससे छूटकर इसी शरीरद्वारा ईश्वर-प्राप्तिका उपाय है। आप लिखते हैं 'मोह हट गया।' मोह हट गया तो फिर इतनी प्रतिकूलताके दर्शन कैसे होते हैं? संसारको सत्य मानकर उसमें अनुकूलताकी खोज करना तो मोहका ही कार्य है—वस्तुतः यही मोह है। मेरी समझसे आपका मोह नहीं हटा है, प्रतिकूलतासे डरकर आप उससे पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। सो यह निश्चय मानिये कि जबतक आप संसारको इसी रूपमें सत्य मानेंगे और भोगोंमें सुख है, ऐसा समझते रहेंगे, तबतक प्रतिकूलतासे पिण्ड छूटेगा ही नहीं। मोहभङ्ग यथार्थ होना चाहिये। यह मोह ही सारी प्रतिकूलताओंका मूल है, इसीसे सारी आधि-व्याधि उत्पन्न होती है और जीवको दुःख भोगनेके लिये बाध्य होना पड़ता है—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

इस मोहका नाश होता है श्रीभगवान्‌की रहस्यमयी लीलाकथाओंको सुनने-समझनेसे और भगवान्‌के सच्चे भावोंकी कथा प्राप्त होती है—संतोंकी अनुभवयुक्त वाणीसे। अतएव जितना और जैसे हो सके, संतोंके वचनोंका मनन कीजिये—सत्सङ्ग कीजिये। तब असली मोहका नाश होगा और फिर कर्तव्यका प्रश्न रह ही नहीं जायगा। मोह मिटा कि भगवान्‌में प्रेम हुआ। प्रेम होनेपर अपने-आप ही

जीवन उसी मार्गमें लग जायगा और सब ओर अनुकूलता और सुखका दर्शन होने लगेगा—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

शेष भगवत्कृपा।

(३)

कुसङ्गका त्याग तुरंत कीजिये

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपकी लिखी बातें यदि सत्य हैं तो बड़ी भयानक हैं। आजकल छात्र-छात्रा कितना अनर्थ कर रहे हैं, छात्रोंकी यात्राओंमें क्या होता है इसका पापपूर्ण चित्र है। आप जो कुछ कर रहे हैं यह आपके लिये बड़ा ही अशुभ है। इसका परिणाम बहुत ही बुरा होगा। आप जिन दुराचारी, व्यभिचारी छात्रोंको अपना अन्तरङ्ग मित्र मानते हैं और जिन छात्राओंको अपनी सङ्गिनी मानकर जीवनको कलङ्कित करते हैं, वे आपके शत्रु हैं और उनके साथ इस प्रकार पापके गढ़ेमें गिरकर उनके साथ भी आप शत्रुताका ही व्यवहार कर रहे हैं। आप सावधान हो जाइये। इस कुसङ्गको तुरंत छोड़ दीजिये। आपके भाई आपसे बहुत ठीक कहते हैं। आप कॉलेज छोड़ दीजिये। दूकानपर भाईके पास बैठिये। ऐसे पापके अड्डेमें रहनेसे तो हानि-ही-हानि है। जब आप 'कल्याण' पढ़ते हैं तब आपको अपने कुकृत्योंपर पश्चात्ताप होता है और आप उनसे छूटनेकी इच्छा करते हैं, पर साथियोंके मिलनेपर फिर वैसे ही कुकर्मोंमें लग जाते हैं—सो पश्चात्ताप होना तो बहुत ठीक है, परंतु जबतक कुकर्म बनते हैं, तबतक असली पश्चात्ताप कहाँ है? वास्तविक पश्चात्ताप वही है जो पुनः वैसा कुकर्म न करनेका दृढ़ निश्चय ही नहीं करा दे वरन् उसे असम्भव कर दे। भगवान्‌से प्रार्थना कीजिये, मनको दृढ़ बनाइये, बार-बार सत्साहित्यका अध्ययन कीजिये। कुकर्मी साथियोंका परित्याग कीजिये। छात्राओंको तो देखना भी बड़ा पाप मानिये। उनसे कभी बोलनेकी भी इच्छा मत कीजिये। सिनेमा छोड़िये और भगवान्‌के कृपा-बलपर दृढ़प्रतिज्ञ होकर पापसे छूट जाइये। यह असम्भव नहीं है। भगवत्कृपा और उसके बलपर आपके सच्चे प्रयत्नसे यह पाप छूट जायगा। कुसङ्ग किसी प्रकारका हो, उसका त्याग तुरंत आवश्यक है। शेष भगवत्कृपा।

(४)

पतिका अत्याचार

मान्य बहिन! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी दुःख-कहानी पढ़कर बड़ा खेद हुआ। वस्तुतः वह पुरुष बड़ा ही भाग्यहीन और पाप-जीवन है जो अपनी निर्दोष पत्नीपर अत्याचार करता है। गाली देना और मारना तो बहुत बड़ा अपराध है। अपराध तो असत्कार करना भी है। एक धर्मप्राण राजाको केवल एक इसी पापके कारण नरकका हाहाकार सुनना पड़ा था कि उन्होंने अपने जीवनमें एक बार पत्नीका तिरस्कार किया था। जैसे पतिकी प्रसन्नता-सम्पादन पत्नीका कर्तव्य है, वैसे ही पत्नीको निर्दोष सुख पहुँचाना पतिका धर्म है। पति इस धर्मसे वञ्चित होता है तो वह घोर नरकका भागी होता है। जिस घरमें दुःखके भारसे पीड़ित होकर स्त्री रोया करती है वह घर नष्ट हो जाता है। यह मनुमहाराज कहते हैं। अतएव मुझे तो आपके पतिदेवसे यही कहना है कि वे अपने-आपको सँभालें, केवल ग्रन्थोंके अध्ययनसे कुछ नहीं होता, वास्तविक लाभ तो आचरणसे होता है। वे यदि इसी प्रकार क्रोधके वश होकर अत्याचार करते रहेंगे तो उसका परिणाम उनके लिये लोक-परलोकमें बड़ा ही दुःखदायी होगा। साथ ही आपसे भी निवेदन है कि आप अपने स्वामीको उनकी होनेवाली इस दुर्दशासे बचानेका शुभ प्रयत्न करें। आप उनके लिये प्रेमयुक्त शुभ भावना करें। उनका स्वभाव बदलकर सात्त्विक हो जाय, इसके लिये विश्वासपूर्वक भगवान्‌से प्रार्थना करें। अपनी तपस्यासे भगवान्‌को संतुष्ट करके इनके अपराधको उनसे क्षमा करावें। भगवन्नामस्मरण और भगवत्प्रार्थना ही आपके सुख-शान्तिके लिये अमोघ उपाय है। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

ज्येष्ठ कृष्णपक्ष (२७-५-२००२ से १०-६-२००२ तक) सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	सोम	ज्येष्ठा	२७ मई	धनुके चन्द्रमा रात्रि २-४५ बजे, ज्येष्ठमासमें आटेसे ब्रह्माकी मूर्ति बनाकर वस्त्र आदिके द्वारा पूजन करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति, ज्येष्ठा नक्षत्र रात्रि २-४५ बजेतक
द्वितीया	भौम	मूल	२८ ,,	द्वितीया तिथि दिन २-५१ बजेतक, मूल नक्षत्र रात्रि २-४१ बजेतक, भद्रा रात्रि २-३६ बजेसे
तृतीया	बुध	पू०षा०	२९ ,,	भद्रा दिन २-१९ बजेतक, तृतीया तिथि दिन २-१९ बजेतक, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ९-४३ बजे
चतुर्थी	गुरु	उ०षा०	३० ,,	मकरके चन्द्रमा दिन ९-२२ बजे, श्री माँ आनन्दमयी-जयन्ती, यायिजययोग दिन २-१८ बजेसे रात्रि शेष ४-०५ बजेतक तदुपरि रवियोग, उत्तराषाढ़ नक्षत्र रात्रि शेष ४-०५ बजेतक
पञ्चमी	शुक्र	श्रवण	३१ ,,	रवियोगसर्वार्थसिद्धियोग सायं ६-४४ बजेतक
षष्ठी	शनि	श्रवण	१ जून	कुम्भके चन्द्रमा सायं ६-२८ बजे, द्विपुष्करयोग तथा यायिजययोग दिन ३-४४ बजेसे, श्रवण नक्षत्र प्रातः ५-३१ बजेतक, पञ्चक आरम्भ प्रातः ५-३२ बजेसे, भद्रा दिन ३-४४ बजेसे रात्रि शेष ४-२६ बजेतक
सप्तमी	रवि	धनिष्ठा	२ ,,	द्विपुष्करयोग तथा यायिजययोग प्रातः ७-२६ बजेतक, धनिष्ठा नक्षत्र प्रातः ७-२६ बजेतक
अष्टमी	सोम	शतभिषा	३ ,,	श्रीशीतलाष्टमीव्रत (श्रीशीतलाजीका पूजन एवं बासी भोजन), मृत्युबाण रात्रि १-२६ बजेसे
नवमी	भौम	पू०भा०	४ ,,	मीनके चन्द्रमा प्रातः ५-३४ बजे, मृत्युबाण रात्रि २-३७ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग दिन १२-१३ बजेसे
दशमी	बुध	उ०भा०	५ ,,	विश्वपर्यावरणदिवस, भद्रा दिन ९-५४ बजेसे रात्रि १०-५५ बजेतक
एकादशी	गुरु	रेवती	६ ,,	मेषके चन्द्रमा सायं ५-२५ बजे, अचला एकादशीव्रत (सबका), यायिजययोग सायं ५-२४ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग, पञ्चक समाप्त सायं ५-२५ बजे, रेवती नक्षत्र सायं ५-२५ बजेतक
द्वादशी	शुक्र	अश्विनी	७ ,,	सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ७-४४ बजेतक, अश्विनी नक्षत्र रात्रि ७-४४ बजेतक, द्वादशी तिथि रात्रि २-२७ बजेतक
त्रयोदशी	शनि	भरणी	८ ,,	वृषके चन्द्रमा रात्रि शेष ४ बजे, शनिप्रदोषव्रत (पुत्रकी कामनाके लिये आज ही व्रतका आरम्भ), वटसावित्रीव्रतका आरम्भ (तीन दिनतक), मृगशिरा नक्षत्रके सूर्य दिन २-३५ बजे, यायिजययोग रात्रि ९-४४ बजेतक, भद्रा रात्रि शेष ३-४३ बजेसे
चतुर्दशी	रवि	कृत्तिका	९ ,,	भद्रा दिन ४-०७ बजेतक, मासशिवरात्रिव्रत, वटसावित्रीव्रत (दूसरा दिन), चतुर्दशी तिथि रात्रि शेष ४-३१ बजेतक
अमावास्या	सोम	रोहिणी	१० ,,	स्नान-दान-श्राद्धकी अमावास्या, सोमवती अमावास्या, वटसावित्रीव्रत (तीसरा दिन), सर्वार्थामृतसिद्धियोग रात्रि १२-२१ बजेतक, अमावास्या तिथि रात्रि शेष ४-४९ बजेतक

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष (११-६-२००२ से २४-६-२००२ तक) सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	भौम	मृगशिरा	११ जून	मिथुनके चन्द्रमा दिन १२-३८ बजे, दशाश्वमेध-स्नान आरम्भ (काशी), तिथि दशमी दिन गुरुवार दिनाङ्क २० जूनतक, वृद्धिके लिये 'गङ्गास्तोत्र' का नित्यपाठ, करवीरव्रत
द्वितीया	बुध	आर्द्रा	१२ ,,	चन्द्रदर्शन, सोपपदा द्वितीया, वेदारम्भानध्याय, दुर्लभसन्धिकरयोग रात्रि १२-५९ बजेतक
तृतीया	गुरु	पुनर्वसु	१३ ,,	कर्कके चन्द्रमा सायं ६-४१ बजे, महाराणाप्रताप-जयन्ती, रम्भातृतीयाव्रत, मृत्युबाण दिन १२-२० बजेसे, सर्वार्थसिद्धियोग तथा यायिजययोग रात्रि १२-३५ बजेतक तदुपरि रवियोग
चतुर्थी	शुक्र	पुष्य	१४ ,,	वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, उमावतार चतुर्थी, मृत्युबाण दिन १-३५ बजेतक, गुरु अर्जुनदेव-शहीद-दिवस, रवियोग रात्रि ११-५० बजेतक, भद्रा दिन १-५२ बजेसे रात्रि १-०४ बजेतक
पञ्चमी	शनि	अश्लेषा	१५ ,,	सिंहके चन्द्रमा रात्रि १०-४४ बजे, सायन मिथुनराशिके सूर्य दिन २-५० बजे, पुण्यकाल सायं ६-४७ बजेतक, मन्दाकिनी-स्नान-वस्त्र-अन्न-दान, यायिजययोग रात्रि १०-४४ बजेतक तदुपरि रवियोग
षष्ठी	रवि	मघा	१६ ,,	स्कन्दषष्ठीव्रत, **सौर आषाढ़मास आरम्भ,** मृत्युबाण सायं ४-०७ बजेसे
सप्तमी	सोम	पू०फा०	१७ ,,	कन्याके चन्द्रमा रात्रि १-२४ बजे, मृत्युबाण सायं ५-२२ बजेतक, भद्रा सायं ६-४१ बजेसे
अष्टमी	भौम	उ०फा०	१८ ,,	भद्रा प्रातः ५-२६ बजेतक, शुक्लादेवीका पूजन (अष्टमी), रवियोग सायं ६-१२ बजेसे
नवमी	बुध	हस्त	१९ ,,	तुलाके चन्द्रमा रात्रि ३-४१ बजे, नवमीमें उपवास रहकर देवीकी पूजा, रवियोग सायं ६-४७ बजेतक
दशमी	गुरु	चित्रा	२० ,,	गङ्गादशहरा, आज (काशी) दशाश्वमेध तीर्थमें स्नान करके गङ्गापूजन, श्रीगङ्गाजन्म रात्रि २-५९ बजेसे रात्रि शेष ४-५४ बजेतक (वृषलग्नमें), सूर्योदय प्रातः ५-१३ बजेके पहले ही, श्रीगङ्गावतरण, आज ही श्रीसेतुबन्ध रामेश्वर-प्रतिष्ठा दिन, गङ्गास्तोत्रपाठ तथा दशाश्वमेध-स्नानका नियम समाप्त, रवियोग दिन २-५३ बजेतक तदुपरि यायिजययोग, भद्रा रात्रि १०-१० बजेसे
एकादशी	शुक्र	स्वाती	२१ ,,	भद्रा दिन ९ बजेतक, निर्जला एकादशीव्रत (सबका), भीमसेनी एकादशी, सायन कर्कराशिके सूर्यकी संक्रान्ति रात्रि १-४१ बजे
द्वादशी	शनि	विशाखा	२२ ,,	वृश्चिकके चन्द्रमा प्रातः ६-३१ बजे, राष्ट्रिय आषाढ़मास, एकादशीव्रतकी पारणा प्रातः ६-५४ बजेतक, शनिप्रदोषव्रत (पुत्रकी कामनाके लिये आजसे व्रतका आरम्भ), दाक्षिणात्य त्रिदिवसीय वटसावित्रीव्रत आरम्भ, गौतमेश्वरदर्शन, त्रिविक्रमपूजा, आर्द्रा नक्षत्रके सूर्य दिन ३-२३ बजे
त्रयोदशी	त्रयोदशी तिथिका क्षय			द्वादशी तिथि प्रातः ६-५४ बजेतक तदुपरि त्रयोदशी तिथि रात्रि शेष ५-०६ बजेतक, सूर्योदय प्रातः ५-१३ बजे, सूर्यास्त ६-४७ बजे
चतुर्दशी	रवि	अनुराधा	२३ ,,	दाक्षिणात्य वटसावित्रीव्रत (दूसरा दिन), रवियोग दिन ११-१९ बजेसे, भद्रा रात्रि ३-४० बजेसे
पूर्णिमा	सोम	ज्येष्ठा	२४ ,,	भद्रा दिन ३-०७ बजेतक, धनुके चन्द्रमा दिन १०-४२ बजे, स्नान-दान-व्रतकी पूर्णिमा, संत कबीर-जयन्ती, दाक्षिणात्य वटसावित्रीव्रत (तीसरा दिन) समाप्त, पूर्णिमा तिथि रात्रि २-३५ बजेतक

पढ़ो, समझो और करो

(१)

बचानेवाली शक्तिके कई हाथ

हम नहीं जानते कि कौन-सी शक्तिने हमें बचाया और किसने क्रुद्ध होकर मारनेकी कोशिश की, पर मानना यही पड़ेगा कि बचानेवाली शक्तिके कई हाथ होते हैं। बात आश्विन शुक्ल 'श्रीदुर्गानवमी' २५ अक्टूबर २००१ की है। हमलोग कुलदेवीके पूजनके लिये अपनी कार लेकर प्रातः छः बजे भोपालसे शाजापुरके लिये रवाना हुए। कारमें मेरे अलावा मेरी पत्नी, बड़ी बहू और सवा माहकी नवजात बालिका थी। कार ड्राइवर चला रहा था। प्रातःका समय होनेसे सड़कपर वाहनोंकी आवा-जाही बहुत कम थी, लिहाजा ड्राइवर कारको ८०-९० कि०मी० प्रति घण्टेकी स्पीडसे और कभी-कभी एक सौकी स्पीडसे ले जा रहा था। पत्नी और बहू इतनी स्पीडसे घबरा रही थीं, पर कहना चाहकर भी कह नहीं पायीं, किसी अनहोनीकी आशंकासे भयभीत हो वे भगवान्‌को याद कर रही थीं। कुछ देरके लिये मेरी मति भी जैसे जड़ हो गयी। मैं भी ड्राइवरको सावधान न कर पाया।

होनी थी, हमलोग भोपालसे करीब ६५-७० किलोमीटर दूर कुरावर-नरसिंहगढ़ मार्गपर जा रहे थे कि अचानक सड़कका मोड़ आ गया, जिसका अनुमान न तो मुझे था और न ही ड्राइवरको। धर्मपत्नी और बहू देवताओंको याद कर रही थीं। छोटी बच्ची अपनी दादीकी गोदमें सो रही थी। मोड़ आते ही ड्राइवर घबरा गया और ब्रेकके बजाय एक्सीलेटर दबा दिया। मोड़पर मिट्टीका टीला था, जिससे टकराकर कार उछली और कुलाँचें खाती हुई झाड़ियोंके बीच उलटकर एक ओर झुक गयी। ड्राइवर तो पहले ही सामनेका काँच अलग हो जानेसे कूदकर बाहर निकल गया तथा मैं भी उसी तरह बाहर निकल पड़ा। धर्मपत्नी प्रभुनामका जप करते हुए बच्चीको कसकर गोदीमें लिये थी और बहू अनजाने भयसे रोती हुई काँप रही थी। यह हादसा जहाँ हुआ, वह स्थान 'तीन बल्ली चौकी बड़ोदिया'-के नामसे जाना जाता है, जहाँ बाल हनुमान्‌जीके मन्दिरका निर्माण-कार्य चल रहा था। वहाँ उपस्थित लोग तुरंत दौड़े आये। मन्दिर-निर्माण-समितिके अध्यक्ष और उनके साथियोंने किसी प्रकार कारको सीधा करके धर्मपत्नी, बहू और बच्चीको बाहर निकाला। दो-तीन लोग ड्राइवरकी मरहमपट्टी करनेमें लग गये। उसे आँखके ऊपर थोड़ी चोट लगी थी, परंतु देवीकी कृपा कि हममेंसे किसीको खरोंचतक नहीं आयी।

सबसे पहले हमलोग हनुमान्‌जीके मन्दिर गये। वहाँसे प्रसाद ग्रहण करके और ईश्वरका आभार मानकर वापस लौटे। वहाँ जमा लोगोंने बताया कि इस स्थानपर प्रत्येक वाहनकी गति धीमी करनी जरूरी रहती है अन्यथा कुछ-न-कुछ मुसीबत उठानी पड़ती है। हमारे साथ भी कुछ वैसा ही हुआ। ड्राइवरको तो उसकी गलतीकी थोड़ी सजा मिली, परंतु हम चारोंको अदृश्य शक्तिने बचा लिया। यही नहीं, हमारी कारका इंजिन जरा भी क्षतिग्रस्त नहीं हुआ और मैं कारको करीब ७० किलोमीटर चलाकर भोपाल वापस ले आया तथा ड्राइवरका उपचार कराया। धर्मपत्नी, बहू और बच्चीको बसमार्गसे देवीपूजनके लिये शाजापुर रवाना कर दिया। मुझे बार-बार देवी माँकी कृपाका खयाल आता था कि उन्हींकी कृपासे आज हम सभी बच सके। हम प्रातः घरसे देवीकी पूजा और दुर्गाजीके रक्षाकवचका पाठ करके निकले थे। सम्भवतः उसीका यह प्रभाव था कि हम बच गये। मुझे लगा कि मारनेवालेसे बचानेवालेके हाथ ज्यादे मजबूत होते हैं।

—कैलास नारायण

(२)

भगवान्‌की कृपा

बात आजसे लगभग छः-सात साल पुरानी है, किंतु वह घटना मेरे लिये इतनी रोमाञ्चक थी कि आज भी ज्यों-की-त्यों याद है। उन दिनों जयपुरमें लोहेके सरिये बनानेकी मेरी फैक्ट्री थी। रविवारका दिन था, उस दिन फैक्ट्री बंद थी और कोई आदमी भी वहाँ नहीं था। चौकीदार छुट्टीपर गया हुआ था, इसलिये मैं वहाँ दिनभर ऑफिसमें बैठा रहा।

सोच रहा था कि शामको लाइट जलाकर मैं घर जाऊँगा। शामके समय मैंने स्विच चालू किया पर फैक्ट्रीमें लाइट नहीं जली। मैंने सोचा—आगे चलकर देखता हूँ, लगता है कहीं शार्ट-सर्किट हो गया है। आगे बढ़नेपर मैंने देखा कि कुछ दूरीपर एक जगहसे तार टूटे हैं तथा पासमें ही एक गड्ढा है। विचार किया कि इन तारोंको यदि जोड़ दूँ तो बिजली चालू हो जायगी। जैसे ही मैंने बिजलीके तारोंको जोड़ा कि एकदम उसमें करंट चालू हो गया; क्योंकि ऑफिसमें स्विच खुला छोड़ आया था। मेरा हाथ उन तारोंपर ही चिपक गया और इतना तेज करंट मेरे शरीरमें लगा कि पासमें जो गड्ढा था उसमें मैं गिर पड़ा, पर तार मेरे हाथसे चिपका रहा। चिपका हुआ हाथ ऐसा लग रहा था कि पिघलता जा रहा है। पूरा शरीर धीरे-धीरे सुन्न होता जा रहा था। दिमागने काम करना बंद कर दिया। मैं जोरसे चिल्लानेकी कोशिश कर रहा था, पर आवाज ही नहीं निकल रही थी। मुझे सामने मौत नजर आ रही थी। आस-पास कोई था भी नहीं जो आकर मुझे बचाता। मुझे लगा मैं अब मरनेहीवाला हूँ। पूरा शरीर सुन्न हो गया था। इतनेमें पता नहीं, भगवान्‌की कृपा हुई या मेरी माँके आशीर्वादका फल था कि अचानक मेरा दायाँ पैर अपने-आप उठा और उसके द्वारा तारपर जोरसे आघात हुआ। चूँकि पैरमें जूता था इसलिये तार एकदम अलग हो गया और उसमें करंट पास होना बंद हो गया। मेरे दिमागने काम करना चालू कर दिया। मैं उस समय गड्ढेमें गिरा हुआ था और कम-से-कम १० मिनट वहीं पड़ा रहा। भगवान्‌को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया कि आज उन्होंने मुझे बचा लिया। वरना करंट लगनेके १०-२० सेकेण्डमें ही आदमीका बचना मुश्किल रहता है। फैक्ट्रीमें तो वैसे भी बहुत हाई वोल्टेजकी बिजली रहती है। फिर धीरे-धीरे उस जगहसे उठकर मैं ऑफिसतक आया और घर फोन किया। मेरे उस हाथमें इतनी सुन्नता आ गयी थी कि दो-तीन सालमें जाकर हाथ पूर्णरूपसे ठीक हुआ। उस दिनके बादसे मेरी भगवान्‌के प्रति श्रद्धा बहुत बढ़ गयी और यह विश्वास बन गया कि एक भगवान् ही हैं, जो सभीको हर मुसीबतसे बचा सकते हैं। अत: प्रत्येकको चाहिये कि हर समय भगवान्‌की कृपाका ख्याल करते रहें।

—उमेशचन्द खुटे

(३)

गोमाताकी सेवासे

मेरे पूर्वज गाँवमें सदा सम्पन्न रहे, मेरे पिताजीका जीवन भी उन्नत रहा, वे चार-पाँच घंटे ईश्वराराधनमें लगाते और शेष समय साहूकारी, गल्ला-बीजके देनेमें तथा खेतीके कार्यमें व्यतीत करते। इस कार्यमें उनका खूब मन लगता। उन्होंने भूमि भी पर्याप्त एकत्र कर ली थी। वे कृषि बहुत उत्तम तरीकेसे करते। गाँवके लोगोंपर उनका प्रभाव था और सब लोग उनसे संतुष्ट रहते थे। पिताजीके परलोकगमनके बाद गृहस्थीका सारा दायित्व मुझपर आ पड़ा। किंतु क्रमश: सम्पत्तिका ह्रास होने लगा। थोड़े ही समयमें मेरी सम्पत्ति आधी रह गयी। भूमिका कार्य स्थगित हो गया। बीजका गल्ला सब डूब गया। पैसेकी आय बंद हो गयी। खेतीसे अन्न कम होने लगा और अधिकांश जमीन परती पड़ गयी। देखते-देखते सारा काम चौपट हो गया।

मैं रात-दिन चिन्तित रहने लगा। भाग्यने जैसे मेरा साथ छोड़ दिया था। मैं जिस कार्यमें हाथ डालता, उसीमें असफल होता। मेरे दो और छोटे भाई हैं। उन लोगोंकी इच्छासे मुझे उनसे पृथक् होना पड़ा। सारी सम्पत्ति तीन भागोंमें बराबर-बराबर बाँटकर हम सब अपना-अपना कार्य चलाने लगे। चार वर्ष बीत गये, किंतु मेरी दशा उत्तरोत्तर अवनत ही होती गयी। गाँवके लोग मुझे निरुद्यमी और आलसी कहने लगे। मुझपर ऋण भी काफी हो गया। यहाँतक कि अनाजके लिये भी मैं दूसरोंका मुँह देखने लगा। जिनको मैं गल्ला और रुपया दिया करता था, अब उनके द्वारपर मुझे दौड़ना पड़ता, किंतु इतना होनेपर भी मैं धैर्य नहीं छोड़ सका और भगवान्‌का भरोसा मेरे मनमें ज्यों-का-त्यों बना रहा।

एक दिन चिन्तित-मन चारपाईपर मैं लेटा हुआ था कि मेरी आँख लग गयी। निद्रामें मुझे लगा कि बैल-गाय

मुझे मारने दौड़ रहे हैं और मनुष्यकी भाषामें बोलते हुए मुझसे कह रहे हैं कि 'अभी हम तुझे और तंग करेंगे। तूने अपने खाने-पीनेके सिवा कभी हमारी भी खबर ली है कि हम भूखे या प्यासे हैं? सारों (गोशाला)-में कभी जाकर देखा भी है कि वह साफ है या हम गोबर-मूत्रमें पड़े हैं? तू अपने इसी पापका परिणाम भोग रहा है। तू अब भी चेत जा और अपना तरीका बदल दे, नहीं तो अन्ततः तेरा सर्वनाश हो जायगा।'

गाय-बैलोंके वचन सुनकर मुझे बहुत व्यथा हुई और मैं चौंककर जाग उठा। मैंने देखा, यह तो स्वप्न था। रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी। किंतु मैं उसी समय लालटेन लेकर गोशालामें गया। वहाँ देखा, सारे पशु भूखे खूँटेसे बँधे हैं। उनके आगे घास-भूसाका एक तिनका भी नहीं, कूड़ेका तो ढेर लगा है। मैं मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगा। मैंने उसी क्षण अपने हाथसे गोशालाको साफ करना शुरू किया और दिनके दस बजेतक गोशालाकी सफाईमें लगा रहा। उस दिनसे हर समय मैं अपने जानवरों एवं गोशालापर ध्यान रखने लगा। प्रातः-सायं गो-दुग्ध अपने हाथसे दुहना और चारा-घास एवं स्वच्छ जल अपने सामने डलवाना मेरा मुख्य कर्तव्य हो गया। मेरे गाय-बैल जब चरने जाते, तब मैं गोशाला अपने हाथोंसे साफ करता। कूड़ा-करकट अलग गड्ढेमें डालता और उसकी अच्छी खाद बनती। जानवर सुखपूर्वक रहने लगे। मेरे जानवर स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हो गये। घृत-दुग्ध पर्याप्त मिलने लगा। बैलोंके सुस्वास्थ्यके कारण मेरी कृषि चमक उठी और अनाज पाँच-छः-गुना अधिक उत्पन्न होने लगा। खेतीमें मेरी रुचि बढ़ गयी और निराशा दूर हो गयी। ऋण भी अधिकांश चुका दिया गया। मेरी स्थितिमें काफी परिवर्तन हो गया। मुझे निरुद्यमी, आलसी और अभागे कहनेवाले लोग अब मेरी प्रशंसा करने लगे।

यह घटना बिलकुल सच्ची है। रईसीके चक्करमें मैं अपनी सम्पत्तिका नाश कर चुका था, किंतु आज ईश्वरकी कृपा, गो-माताकी आशिष् और अपने हाथोंसे काम करनेके कारण मेरी दशा अत्यन्त सुन्दर हो गयी। यदि कोई गो-पालक कृषक भाई मेरी तरह दरिद्रनारायणके शिकार हो गये हों तो उन्हें मेरे पथका अनुसरण करना चाहिये। मैं डंकेकी चोट कहता हूँ कि भगवान्पर विश्वास और गो-माताकी सेवासे बुरी-से-बुरी हालत बदलकर अच्छी हो जायगी।

—एक गो-सेवक कृषक

(४)

पशुओंमें भी सहृदयता होती है

यह घटना अगस्त १९७५ की है, दिनाङ्क ठीक-ठीक स्मरण नहीं। बाल-सूर्यकी स्वर्णिम रश्मियाँ धीरे-धीरे पृथ्वीपर आ रही थीं। मैं डेयरीसे दूध लेने जानेकी तैयारीमें ही था कि एक कुत्तेका चीत्कार रह-रहकर मेरे कानोंमें गूँजने लगा। मैंने खिड़कीमेंसे झाँककर देखा कि मेरे पड़ोसकी पाठशालाके लोहेके फाटकमें एक कुत्तेकी गर्दन फँस गयी है और वह निकलनेके लिये बुरी तरह छटपटा रहा है।

मुझसे यह नहीं देखा गया, अतः शीघ्रतासे दौड़कर मैं वहाँ पहुँचा तथा उसकी गर्दन उस फाटकमेंसे निकालनेका प्रयत्न करने लगा। फाटकपर लोहेकी जंजीर लगी थी और उसपर ताला लगा हुआ था। फाटकके दोनों भागोंकी दूरीको फैलाने (बढ़ाने)-के लिये मैंने उन्हें खींचा, किंतु उसकी गर्दन नहीं निकल पायी। कुत्तेकी तड़प बढ़ती ही जा रही थी।

मोहल्लेवाले भी अपने-अपने दरवाजे और खिड़कियोंसे यह दृश्य देख रहे थे। दस-पंद्रह मिनटके प्रयत्नके बाद भी जब मुझे कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई, तब मैं हताश हो गया।

अचानक एक कुत्तेने जो कुछ ही क्षण पूर्व इसी कुत्तेके साथ खेल रहा था, आकर उसके पिछले पैरको अपने मुखमें दबाकर एक झटकेमें उसकी गर्दनको जादूकी तरह उस फाटककी फाँसीसे मुक्त कर दिया।

एक जानवरद्वारा अपने साथीके प्राण बचानेके लिये किये गये प्रयत्नका चमत्कार देखकर मैं तथा सभी पड़ोसी हर्षसे खिल उठे। —जोगेन्द्रसिंह छाबड़ा

मनन करने योग्य

अहंकार और मानवता

लगभग सवा दो सौ वर्ष पहले अमेरिका भी हमारे देशकी भाँति एक गुलाम देश था। जार्ज वाशिंगटनने ही अमेरिकाको स्वतन्त्र कराया था।

जार्ज वाशिंगटन एक लोकप्रिय नेता तथा सफल सेनानायक थे। अमेरिकाकी जनता तथा सेना जी-जानसे उन्हें चाहती थी। जब उनकी सूझ-बूझ तथा कुशल सैन्य-संचालनसे अमेरिका सन् १७८१ ई० में स्वतन्त्रता-संग्राममें विजयी हुआ और इंग्लैण्डकी दासतासे मुक्त हो गया, तब सेनाके अधिकारियोंने उन्हें अमेरिकाका सम्राट् बनाना चाहा। इस योजनाके अधिष्ठाता कर्नल निकालेलाने एक पत्रद्वारा जार्ज वाशिंगटनको यह शुभ सूचना दी तथा उनकी स्वीकृति माँगी।

सूचना पढ़कर जार्ज वाशिंगटनकी आँखोंसे अश्रुधारा फूट पड़ी। उन्होंने उत्तरमें अश्रुओंसे भीगे हुए कागजपर लिखा—'आजतक मुझे जीवनमें किसी भी घटनासे इतना कष्ट नहीं हुआ, जितना इस समाचारसे। मैं ऐसे विचारोंसे घृणा करता हूँ तथा उनकी कठोर निन्दा करता हूँ। इंग्लैण्डके सम्राट् और अमेरिकाके सम्राट्में क्या अन्तर है? क्या इसीलिये इतना खून-खराबा किया गया कि सम्राट् इंग्लैण्डका नहीं, अमेरिकाका होना चाहिये? व्यक्तिसे राष्ट्र बड़ा है। व्यक्तिकी खातिर राष्ट्रका गला नहीं घोंटना चाहिये। राष्ट्रके हितमें ही सबका हित निहित है। अतः यदि आपको मेरा तथा अपनी भावी संततियोंके हितका कुछ भी ध्यान है, यदि आपके हृदयमें मेरे प्रति कुछ भी सम्मानकी भावना है तो आप इस तरहके विचारोंको अपने मनसे निकाल दीजिये और राष्ट्रमें लोकतन्त्र स्थापित करनेमें मेरा सहयोग कीजिये। मोहान्ध न बनिये, विवेकसे काम लीजिये। श्रद्धा-सुमन विवेकके प्रकाशमें ही खिलते हैं।'

अन्तमें अमेरिकामें लोकतन्त्रकी स्थापना हुई। जार्ज वाशिंगटन राष्ट्रपति चुने गये। दूसरी बार भी वही राष्ट्रपति चुने गये। तीसरी बार जब जनताने पुनः सर्वसम्मतिसे उन्हें राष्ट्रपति बनाना चाहा तो उन्होंने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि बार-बार एक ही व्यक्तिके राष्ट्रपति बननेसे राजतन्त्र या अधिनायकवादकी नींव पड़ सकती है।

जार्ज वाशिंगटन कभी-कभी गुप्तरूपसे लोगोंमें आया-जाया करते थे। एक दिन उन्होंने देखा कि कुछ मजदूर एक भारी लट्ठा छतपर नहीं चढ़ा पा रहे हैं। पासमें खड़ा जमादार मजदूरोंको उत्साहित तो कर रहा है, पर स्वयं हाथ नहीं लगाता है।

'तुम हाथ क्यों नहीं लगाते?' राष्ट्रपतिने पूछा।

'मैं जमादार हूँ। मेरा काम मजदूरोंसे काम लेना है, काम करना नहीं।' जमादारके उत्तरमें अकड़ थी।

'अच्छा!' कहकर राष्ट्रपति स्वयं मजदूरोंके साथ जोर लगाने लगे। जब लट्ठा ऊपर पहुँच गया, तब राष्ट्रपतिने जमादारसे कहा—'जमादार साहब! यदि फिर कभी सहयोगकी आवश्यकता आ पड़े तो मुझे बुला लेना। मैं तुम्हारा राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन हूँ।'

यह सुनते ही जमादारके पैरोंके नीचेकी जमीन खिसक गयी। वह हक्का-बक्का रह गया और उनके चरणोंपर गिरकर क्षमा माँगने लगा। राष्ट्रपतिने कहा—'तुम अहंकारका प्रदर्शन कर रहे हो और मैं नम्रतामें मानवताका दर्शन कर रहा हूँ। मैं तुम्हें इस शर्तपर क्षमा करता हूँ कि भविष्यमें कभी पुनः मानवताका निरादर न हो। जिस राष्ट्रमें मानवताका सम्मान नहीं, वह राष्ट्र राष्ट्र कहलानेयोग्य नहीं होता।'

(श्रीहरनारायणजी 'महाराज')

क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः।
क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः॥

'वास्तवमें क्षमा ही धर्म, क्षमा ही सत्य और क्षमा ही दान, यश एवं स्वर्गकी सीढ़ी है—ऐसा वेदके मर्मज्ञ विद्वानोंका कथन है।'

आगामी ७७वें वर्ष (सन् २००३ ई०)-का विशेषाङ्क

'भगवत्प्रेम-अङ्क'

'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥' सर्वव्यापक परमात्मप्रभुका प्राकट्य प्रेमसे ही होता है। अत: भगवत्प्राप्तिके लिये प्रेम-साधनाकी अत्यन्त आवश्यकता है। यह प्रेम-साधना एक विलक्षण साधन है। इसमें विलक्षणता यह है कि इस साधनमें प्रारम्भसे ही केवल माधुर्य-ही-माधुर्य है, खारापन तो है ही नहीं। प्रेम-साधना स्वाभाविकरूपसे चलती है रागको लेकर। अत: भगवान्‌में अनुरागको लेकर प्रेमकी साधनाका प्रारम्भ होता है। एकमात्र भगवान्‌में अनन्य राग हो जानेपर संसारकी अन्य वस्तुओंमें रागका अभाव हो जाना स्वाभाविक है। सांसारिक वस्तुओंसे राग निकल जानेके कारण इनमें द्वेष भी नहीं रहता। इस प्रकार प्रेमी साधक राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंसे स्वाभाविकरूपमें मुक्त होता है। इसलिये प्रेम-साधनामें कहीं भी कड़ुवापन नहीं है।

इसके साथ ही प्रेम भगवान्‌का साक्षात् स्वरूप है। जिस प्राणीको विशुद्ध सच्चे प्रेमकी प्राप्ति हो गयी, वास्तवमें उसे भगवत्प्राप्ति हो गयी, यह मानना चाहिये। इस प्रकार प्रेम 'साधन' और साधनका फल—'साध्य' दोनों है। भगवान् स्वयं प्रेममय हैं, भगवान् ही प्रेम करने योग्य हैं और भगवान्‌को प्राप्त करनेका साधन भी प्रेम ही है, अत: प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पद स्वयं प्रभु ही हैं।

प्रेमसे लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं। लोकमें प्रेमकी भावनासे व्यक्तिका उत्कर्ष होता है और परलोकमें अखण्ड आनन्द तथा शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है।

प्रभु-प्रेरणासे आगामी वर्ष २००३ ई०में 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें **'भगवत्प्रेम-अङ्क'** प्रकाशित करनेका निर्णय किया गया है। वास्तवमें भगवत्प्रेमका अवलोकन, चिन्तन और मनन भगवत्प्राप्तिका एक अमोघ साधन है।

इस बार यह निश्चय किया गया कि सर्वसामान्य प्रेमीजनोंके कल्याणार्थ प्रभुकृपाका आश्रय लेकर परमात्मप्रभुके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमनके रूपमें **'भगवत्प्रेम-अङ्क'** प्रस्तुत किया जाय, जिससे भारतीय जनमानसको परब्रह्म परमात्मप्रभुके प्रेमका तथा प्रेमपूर्ण लीलाओंका सम्यक् दर्शन, चिन्तन एवं मनन हो सके तथा संसारके प्रेमी भक्तजनोंमें प्रभु-प्रेमके प्रति प्रगाढ़ता, एकाग्रता और अनन्यताका उदय हो। इन सबके लिये हम भारतके गण्यमान्य आचार्य, संत-महात्माओं तथा अधिकारी मनीषी महानुभावों एवं प्रेमी भक्तोंसे सादर सहयोगकी प्रार्थना करते हैं।

हमारा विचार है कि आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुके प्रेममय स्वरूपका, उनके दिव्य गुणोंका, उनके अलौकिक प्रेम-रहस्योंका, प्रेममयी लीलाओंका तथा ऐकान्तिक प्रेमी भक्तों, प्रेमी सेवकों, प्रेमी उपासकों एवं मित्र-भावान्वित तथा शत्रु-भावान्वित प्रेमी सहचरोंके विभिन्न चरित्रोंका यथास्थान चित्रण करते हुए भगवत्प्रेमका दर्शन तथा साथ ही प्रेम-रहस्योंका उद्‌घाटन और प्रेमकथाके प्रत्येक पक्षपर पठनीय, विचारप्रेरक तथा अनुष्ठेय सामग्रीका संकलन इस विशेषाङ्कमें किया जाय। अतएव विद्वज्जनों तथा प्रेमी साधकोंकी सेवामें विशेषाङ्ककी एक विषय-सूची दिशा-निर्देशके रूपमें साथ ही दी जा रही है।

यद्यपि इस वर्ष विशेषाङ्कके लिये सामान्य लेख भेजनेका अनुरोध नहीं है; फिर भी विद्वान् लेखकों एवं प्रेमी साधकोंसे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि अपने चिरस्वाध्याय, प्रेम-साधना तथा प्रेमानुभूतिके आधारपर प्रस्तुत सूचीमें संलग्न विषयोंपर तथा भगवत्प्रेमसे सम्बद्ध किसी भी विषयपर अपनी विशिष्ट सामग्री ३१ जुलाई २००२ ई०से पूर्व अवश्य भेजनेकी कृपा करें।

(सरल एवं रोचक भाषामें विषयसे सम्बद्ध संक्षिप्त विशिष्ट सामग्रीको प्रकाशनमें प्राथमिकता दी जा सकेगी।)

विनीत—

राधेश्याम खेमका

(सम्पादक)

विषय-सूची

६६- रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंमें भगवत्प्रेम-लीलाका निरूपण।
६७- भक्तमाल, प्रेमपत्तनम् तथा प्रेमसागर आदि सद्ग्रन्थोंमें वर्णित प्रेमका प्रतिपादन।
६८- राधा-माधव-प्रेम-दर्शन।
६९- मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंका भगवत्प्रेम।
७०- प्रेमी संतों तथा प्रेमी भक्तोंके लक्षण।
७१- **प्रेमी भक्तोंके भगवत्प्रेमका स्वरूप और उनका पावन चरित**—[नर-नारायण, मनु-शतरूपा, नारद, वाल्मीकि, वेदव्यास, शाण्डिल्य, शौनक, सुतीक्ष्ण, पुण्डरीक, रुक्माङ्गद, अम्बरीष, दाल्भ्य, महामुनि शुकदेव आदि]
७२- **श्रीरामकथाके प्रेमी पात्र**—
(क) मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम।
(ख) प्रेमकी प्रतिमूर्ति—जगज्जननी सीता।
(ग) भ्रातृप्रेमके आदर्श—भरतजी (भयउ न भुअन भरत सम भाई)।
(घ) भ्रातृभक्त—लक्ष्मण।
(ङ) दास्य प्रेमके आदर्श—श्रीहनुमान्जी।
(च) सख्य प्रेमके आदर्श—श्रीसुग्रीवजी।
(छ) शरणागत-प्रेमके उदाहरण—श्रीविभीषणजी।
(ज) केवट और निषादराजकी प्रेमा-भक्ति।
(झ) जाम्बवान् तथा अङ्गदकी प्रेमनिष्ठा।
(ञ) भगवत्प्रेमकी मूर्तिमयी उपासना—श्रीशबरी।
(ट) विदेहराज जनकजीकी अनुरागात्मिका भक्ति।
(ठ) कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्राका वात्सल्यभाव।
(ड) महाराज दशरथका वात्सल्यप्रेम।
(ढ) अहल्याका भगवच्चरणोंमें अनुराग।
७३- **श्रीकृष्णलीलाके प्रेमी पात्र**—
(क) लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण।
(ख) भगवत्प्रेमकी निवासभूता वंशी।
(ग) प्रेमकल्पलता श्रीराधाजी।
(घ) प्रेमकी मूर्तिरूपा महाभावमयी व्रजगोपियाँ।
(ङ) वात्सल्यप्रेमकी प्रतिमूर्ति—माता यशोदा।
(च) वात्सल्यप्रेमी श्रीनन्दजी।
(छ) भगवान्के बाल-सखाओंका सख्य प्रेम।
(ज) प्रेमी सखा उद्धव।
(झ) प्रेमी भक्त अक्रूर।
(ञ) विदुर एवं विदुरानीका भगवच्चरणोंमें अनन्य प्रेम।
(ट) पितामह भीष्मकी अनन्य भक्ति।
(ठ) प्रिय सखा अर्जुनका अनन्य भगवत्प्रेम।
(ड) धर्मराज युधिष्ठिर तथा भाइयोंकी अनन्य निष्ठा।
(ढ) भगवत्प्रेमकी प्रतिमूर्ति—माता कुन्ती।
(ण) देवी द्रौपदीका श्रीकृष्णप्रेम।
(त) प्रिय सखा सुदामाकी अलौकिक प्रेमनिष्ठा।
७४- भक्त ध्रुव और उनकी प्रेमसाधना।
७५- भक्त प्रह्लादका भगवत्प्रेम।
७६- पातिव्रत प्रेमकी प्रतिमाएँ—सीता, अनसूया, सावित्री आदि।
७७- राजा परीक्षित्का भगवत्प्रेम।
७८- श्रीमदाद्यशंकराचार्यकी प्रेममीमांसा।
७९- **आचार्य-परम्परामें भगवत्प्रेमोपासना**—रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, रामानन्दाचार्य आदिका भगवत्प्रेम; संकीर्तनप्रेमी श्रीचैतन्यजी।
८०- **हिन्दी-साहित्यमें संत कवियोंकी प्रेमसाधना**—[संत-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी, वात्सल्यरसके प्रतिष्ठापक संत सूरदासजी, प्रेम-दीवानी मीराँ, श्रीकृष्ण-प्रेमी रसखान, संत कबीर, कविवर बिहारी आदि]
८१- रसिक-सम्प्रदायके प्रेमी भक्त।
८२- सूफी संतोंकी प्रेमोपासना।
८३- प्रेमसाधनासे अभिलाषाओंकी सिद्धि तथा असाध्य कार्योंमें सफलता।
८४- भगवत्प्रेमद्वारा अनन्त सुख एवं समृद्धिकी प्राप्ति।
८५- कर्तव्यपालनमें प्रेमकी आवश्यकता।
८६- अपने इष्टदेवमें नित्यप्रेमकी भावना।
८७- भगवदनुरागसे दिव्य ज्ञानकी उपलब्धि।
८८- भगवत्प्रेमसे दिव्यानन्दकी अनुभूति।
८९- प्रेमपंथ—कल्याणप्राप्तिका प्रशस्त पथ।
९०- भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म ही भगवत्प्रेमका मुख्य साधन।
९१- प्रेमसाधनासे अनन्त जन्मोंके पापोंका समूल विनाश।
९२- भगवत्प्रेमियोंपर समस्त प्राणियोंकी सहज कृपा।
९३- जीवनकी सार्थकताके लिये प्रेमनिष्ठाकी अनिवार्यता।
९४- प्रेमके अवलम्बनसे विश्वबन्धुत्व एवं विश्वशान्तिकी स्थापना।
९५- विशुद्ध प्रेमसे संतोंके सांनिध्यकी प्राप्ति।
९६- तीर्थाटन तथा देवदर्शनमें प्रेमभावकी प्रधानता।
९७- निष्काम कर्म ही भगवत्प्रेमका मूलाधार।
९८- आत्मोद्धारके लिये निःस्वार्थ भगवत्प्रेमका अवलम्बन आवश्यक।
९९- भगवत्प्राप्तिके लिये प्रेममें स्फुरण, स्पन्दनकी विशेषता।
१००- ऐकान्तिक एवं अनन्य प्रेमसे भगवत्प्राप्ति।
१०१- प्रेमा-भक्तिसे प्रेमस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभुकी प्राप्ति।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण
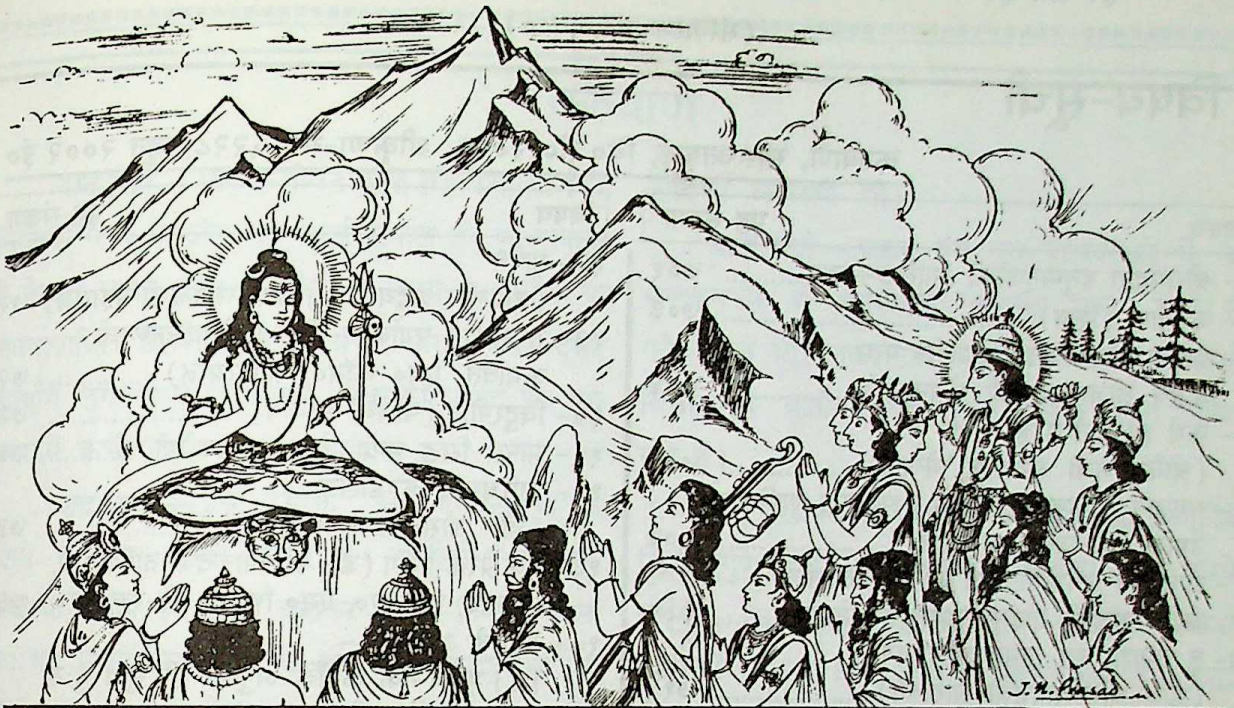
यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वर्ष ७६ | गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, जून २००२ ई० | संख्या ६

पूर्ण संख्या ९०७

श्रीरामद्वारा हनुमान्‌जीको आलिङ्गन-दान

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति । यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम्॥
एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः । मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः॥
इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे । हनूमन्तं कृतात्मानं कृतकार्यमुपागतम्॥

(वा० रा०, युद्धकाण्ड १। १२—१४)

'मुझे जिसने यहाँ इतना प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई उतना ही प्रिय कार्य नहीं कर पा रहा हूँ, इस बातसे मेरे मनमें बड़ी कसक है। आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तुका अभाव है, अतः इस समय इन महात्मा हनुमान्‌को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ, क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है'—ऐसा कहते-कहते रघुनाथजीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रेमसे पुलकित हो गये और उन्होंने अपनी आज्ञाके पालनमें सफलता पाकर लौटे हुए पवित्रात्मा हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, जून २००२ ई०

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

कल्याण

याद रखो— मानव-जीवन बहुत बड़े उच्च कार्यकी सिद्धिके लिये है और वह कार्य सफल हो भी सकता है केवल मानव-जीवनमें ही। वह कार्य है—मुक्ति या भगवत्प्राप्ति। उसके लिये प्रयत्न न करके दूसरे-दूसरे कार्योंमें लगे रहना ही मानव-जीवनका प्रमाद है। इस प्रमादमें कभी नहीं पड़ना चाहिये।

याद रखो— इसी 'मुक्ति' या 'भगवत्प्राप्ति' के लिये ही यह जीवन मिला है। इसलिये 'बालक-अवस्था' से ही इसे लक्ष्य बनाकर जीवन-निर्माण करना है। यह मानना मूर्खता है कि यह काम 'वृद्धावस्था' का है। कौन जानता है वृद्धावस्था आयेगी या नहीं? कौन कह सकता है, बालकपनमें ही मृत्यु नहीं आ जायगी! इसलिये घरवालोंको तथा समझदार बालकोंको शुरूसे ही ऐसा वातावरण बनाना तथा आचरण करना चाहिये, जिससे शिशु-अवस्थामें ही इस मार्गके संस्कार बनें और बढ़ें।

याद रखो— मदालसा मैयाने लोरीमें ही अपने बच्चोंको ब्रह्मोपदेश किया था, प्रह्लादकी माता कयाधूदेवीने गर्भावस्थामें ही नारदजीके द्वारा अपने गर्भस्थ शिशु प्रह्लादको भगवद्भक्तिकी शिक्षा सुलभ कर दी थी। घर-घरमें कथा-पुराणके प्रसंग, माता-पिता तथा दादी-नानीके द्वारा रामायण-महाभारतकी कहानियाँ बालकोंको इसीलिये सुनायी जाती थीं। उठते, नहाते, खाते, जम्हाई लेते, छींकते, पढ़ाई आरम्भ करते, यात्रा आरम्भ करते, किसीसे मिलते, किसीको पत्र लिखते, सोते, मृत्युके समय तथा मरनेके बाद शवको श्मशान ले जाते समय आदि विविध रूपोंमें इसीलिये भगवान्का नाम लेने, लिखने, उच्चारण करने आदिकी प्रथा थी, जिससे घरके वातावरणमें भगवान्के साथ सम्पर्क बना रहे और बालकपर उसका प्रभाव पड़े तथा इसीलिये संस्कार, तीनों काल भगवान्के स्मरण एवं नित्यकर्म आदिकी व्यवस्था थी।

याद रखो— प्रह्लाद एवं ध्रुव बालक ही थे, जो बालकपनमें ही भगवान्की कृपाको पाकर धन्य हो गये। आज भी उनका नाम लेकर और उनके जीवनकी विश्वासभरी बातोंको पढ़-सुनकर सभी लोग पवित्र होते हैं।

याद रखो— जीवनको भगवान्की ओर लगानेके लिये दुर्गुण, दुराचार, दुर्विचार, दुःसङ्गका त्याग करके सद्गुण, सदाचार, सद्विचार तथा सत्सङ्गका सेवन करनेकी नितान्त और अत्यन्त आवश्यकता है। श्रद्धा, विश्वास, आज्ञानुवर्तिता, अनुशासन, नियमित जीवन, संयम, सादगी, इन्द्रियनिग्रह आदि इस मार्गके प्रधान सहायक हैं। इनका सेवन श्रद्धापूर्वक बालक-अवस्थासे ही करना शुरू कर दो।

याद रखो— माता-पिताके चरणोंमें नमस्कार, उनकी सेवा तथा उन्हें सुख पहुँचानेका पूरा प्रयत्न, गुरुका सम्मान, उनकी आज्ञाका पालन, प्रतिदिन अपने अधिकारानुसार तथा भावानुसार नियमित भजन, प्रार्थना, संध्या, जप, स्वाध्याय, सेवा एवं दुःखपीड़ित नर-नारियोंकी सेवासे इस मार्गमें बड़ा लाभ होता है। इतना ही नहीं, इससे इस लोकमें भी सुख, ऐश्वर्य, आरोग्य, विद्या, यश, शक्ति और गौरवकी प्राप्ति होती है।

याद रखो— भगवान्को पानेके लिये विषय-वैराग्य और ईश्वर-भजन अवश्य-अवश्य होने चाहिये। इसके लिये पूर्ण प्रयत्न करो। सदा सावधानीसे सचेष्ट रहो।

याद रखो— धन, विद्या, बल, पौरुष, बुद्धिमत्ता और महत्ताकी सफलता इसीमें है कि इन सबका प्रयोग-उपयोग भगवत्प्राप्तिके लिये हो; नहीं तो ये सभी व्यर्थ हैं और हैं नरकाग्निमें ढकेलनेवाले।

—'शिव'

प्रार्थना और ध्यान*

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

रुपयोंके तत्त्वको मनुष्योंने समझ लिया, प्रभाव जान लिया, इसलिये स्वाभाविक ही रुपयोंमें प्रेम है, वैसे ही भगवान्‌का प्रभाव जान लेनेपर प्रभुमें प्रेम हो जाता है। उस प्रभुको सबसे बढ़कर समझना चाहिये। उसका रहस्य, तत्त्व, प्रभाव जानना चाहिये। प्रभाव क्या है? रुपयोंसे बड़ा है सोना, सोनेसे बड़ा है पारस, पारस मिलनेपर रुपये और सोनेकी आवश्यकता नहीं, परंतु पारस सोना ही बना सकता है, पारस नहीं बना सकता। पत्थरको सोना नहीं बना सकता, लोहेको ही सोना बना सकता है। पारस देखा हुआ नहीं है और उसके मिलनेमें भी शंका है, किंतु भगवान्‌में कोई शंका नहीं है। पारस मिले हुए मनुष्य नहीं दिखायी देते, पर भगवत्प्राप्तिवाले पुरुष मिलते हैं। पारस जड़ है। पारस सर्वत्र नहीं मिल सकता, वह प्रभु तो सर्वत्र प्राप्त होते हैं। वह तो अपनी योगमायासे छिपे हुए हैं जैसे बादलसे सूर्य।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

(गीता ७। २५)

अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझ जन्मरहित अविनाशी परमेश्वरको नहीं जानता अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है।

बहुरूपिया जैसे पुलिसका रूप बनाकर आया, डराता है, पता चलनेपर कि यह बहुरूपिया है, कुछ भय नहीं। फिर नहीं डरता। रहस्य खुल गया। ऐसे ही प्रभु सब जगह छिपे हुए हैं। जब प्रभुका रहस्य खुल जायगा, फिर मामला समाप्त है। भगवान्‌के रहस्यको समझानेके लिये कोई दृष्टान्त नहीं मिला। एक अंशमें कोई भक्त ही पहचानता है। प्रार्थनाकी सुनवाई होती है। प्रभुसे बार-बार प्रार्थना की जाय। एक बार पर्दा खुलनेपर काम बन जायगा। जिसका पर्दा नहीं खुला, उसे प्रार्थना करनी चाहिये—हे नाथ! आप दर्शन दें, हे प्रभु! अपनी मायाका पर्दा आप ही हटायें। प्रभु फिर अपने-आप पर्दा खोल देते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १०। ११)

हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।

बस यही बात है कि प्रार्थना करो। कभी-न-कभी सुनवाई होगी ही। प्रार्थनामें कोई पैसा नहीं लगता, कुछ नहीं बिगड़ता, प्रभुसे यही प्रार्थना करें कि हम तो प्रार्थना ही करते रहें। प्रार्थनामें ही आनन्द है। प्रभु चाहे पर्दा रखें, प्रार्थना करता ही रहे। प्रार्थना करते-करते ही शरीर शान्त हो जाय। प्रभु ऐसा निर्दयी नहीं है कि नहीं आये। वसिष्ठजी कहते हैं—

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥

(रा०च०मा० ७। ४९)

जन्मकी परवाह नहीं है। जो जन्म नहीं चाहता, उसे प्रभु जन्म देते ही नहीं। प्रभुसे प्रार्थना करता है कि मैं बार-बार जन्म नहीं चाहता। पापोंका भोग प्रायश्चित्त है, ध्यान, भजन, नमस्कार, प्राणायाम, उपवासादि प्रायश्चित्त हैं। लोग प्रार्थना नहीं करते। हम अभीतक जन्मसे उकताये नहीं। उकताना क्या है। जैसे गङ्गाजीमें कोई आदमी डूब रहा है, वह उकता जाता है। ऐसे व्याकुल होनेपर प्रभु उबार ही लेते हैं, व्याकुलता तो आ जानी चाहिये। जो जन्म लेना चाहता है, उसे ही जन्म मिलता है, अन्यथा नहीं मिलता। हमलोग विचारसे ही चाहते हैं। हममें व्याकुलता कहाँ है। व्याकुलता हो और उस समय प्रभुको पुकारें तो उसी समय प्रभु गोदमें ले ही लेंगे।

प्रश्न—कर्मोंका फल तो होता है ऐसा कहते हैं?

* प्रवचन—तिथि प्रथम वैशाख शुक्ल ५, संवत १९९९, सायंकाल, टीबड़ी स्वर्गाश्रम।

उत्तर—उससे आगे बढ़कर भी है, भगवान् कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

प्रायश्चित्तसे पाप नष्ट हो जाते हैं। सारे पाप तो भोगे ही नहीं जा सकते, क्योंकि कर्म तो मनुष्य-जन्ममें रहते ही हैं।

केशव केशव कूकिये न कूकिये असार।
रात दिवसके कूकते कबहुँ तो सुने पुकार॥
राम नाम रटते रहो जब लगि घटमें प्रान।
कबहुँ तो दीनदयालके भनक परेगी कान॥

सब शास्त्र उपाय बता रहे हैं। ध्यानसे सब दोष स्वाहा हो जाते हैं। कोई ध्यानसे, कोई भजनसे, कोई ज्ञानसे, कोई उपवाससे, कोई सत्संगसे लाभ बताता है, सभी सत्य हैं। सभीसे पाप नष्ट होते हैं और यदि सभी करो तो और जल्दी नष्ट हो जायँगे। अपने तो बस यही निश्चय करें कि जितने दिन यहाँ रहना हो, उतने दिनमें काम पूरा कर लें। दृढ़ विश्वास करें, एक महीनेकी क्या बात है, आज ही, काम पूरा हो जाना चाहिये, खूब लगन लगाये। लगन ऐसी होनी चाहिये—

लगन लगन सब कोइ कहे लगन कहावे सोय।
नारायण जा लगनमें तन मन दीजे खोय॥

रात-दिन उसके ध्यानमें मग्न रहें, हमारा सबसे बढ़कर संसारमें ध्यान है। परमेश्वरके प्रेम, रहस्य, प्रभावकी बातें होती हैं, फिर भी ध्यान नहीं रहता, बड़े आश्चर्यकी बात है। स्वरूपको याद रखें। चलते-फिरते सब जगह स्वरूपको याद रखें। नामका स्मरण इसीलिये बताया जाता है कि नामसे नामी याद आ जाय। चित्रका ध्यान करें, मूर्ति तो जड़ है, उसे चेतन देखें। असली स्वरूप अनुमानमें जैसा आये उसका ध्यान करें। पहले-पहल गलती रहती है, फिर वह अपने-आप ठीक हो जायगा। प्रभुका स्वरूप जैसा समझे उसी प्रकार प्रभाव-तत्त्वसहित ध्यान करे, प्रभाव-तत्त्व यह कि प्रभु सर्वत्र हैं। जैसे अग्नि सारे संसारको जला सकती है, उसी प्रकार प्रभु सारे संसारका उद्धार कर सकते हैं। असम्भवको भी सम्भव कर देते हैं। नीच-से-नीच भी यदि प्रभुसे मिलना चाहे तो प्रभु अपने-आपको उसके चरणोंमें गिरा देते हैं। दया तो अपार है। गङ्गाजीकी धारा बह रही है चाहे जितना जल ले जाओ। प्रभुकी दयाका प्रवाह बह रहा है। जल पात्रमें ही लिया जा सकता है। जितना बड़ा पात्र लाओगे उतना ही अधिक पानी आयेगा। प्रभुको जैसा समझा है, वैसे ही स्वरूपकी ध्यानमें भावना करे कि प्रभु आये हैं। ऐसे करते-करते प्रभु प्रत्यक्ष आ जाते हैं। प्रभुका स्वप्न आना अच्छा है, संकल्प आना अच्छा है। स्वप्नकी प्रभुकी आज्ञा सच्ची समझनी चाहिये। प्रभुकी दया गङ्गाकी तरह बह रही है। चाहे जैसा पात्र ले आओ, यहाँ पात्र अन्तःकरण है। जैसा पवित्र अन्तःकरण होगा, जितना मानेगा उतनी ही प्रभुकी दयासे लाभ उठा लेगा। यह विश्वास है कि सूर्य कल आयेंगे। वैसे ही आज प्रभु मिलेंगे, यह विश्वास हो तो आज प्रभु अवश्य ही मिलेंगे। अपने ही हाथकी बात है। यह मान लो कि आसुरी सम्पदा, माया हमारे पास नहीं आ सकती तो फिर आजसे ही आसुरी सम्पदा आ ही नहीं सकेगी। प्रभुको हम सर्वत्र देखते हैं। फिर पाप कैसे होंगे, फिर पाप हो ही नहीं सकते। प्रभुको सामने देखते हुए पाप नहीं हो सकता। वह सर्वव्यापी है, फिर वियोग कैसे हो सकता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ

वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

प्रभुसे ऐसी मित्रता कर लो, प्रभुको सर्वत्र देखो। भगवान् निराकाररूपसे सर्वत्र हैं और साकाररूपसे प्रभु साक्षात् खड़े हैं। यह विराट् विश्व प्रभुका स्वरूप है। सब वृक्ष प्रभुके केश हैं, सूर्यादि भगवान्‌के नेत्र हैं, विराट्का नेत्र तो इतना बड़ा ही होगा। प्रभुकी आँख समझकर आँख-से-आँख मिलाओ। पर्वत प्रभुकी अस्थियाँ हैं, पृथ्वी उसकी चर्बी, जीव-जन्तु उसमें रहनेवाले हैं। सारा संसार प्रभुका शरीर है। देख-देखकर मुग्ध होना चाहिये। यह भी नहीं हो सके तो भगवान्‌के कृष्ण आदि रूपोंको ही सब जगह देखो। निराकाररूपसे इस प्रकार देखो कि संसार कपूरकी तरह उड़नेवाला है। उड़ते-उड़ते समाप्त हो जायगा। भावना ही तो करनी है। निराकार परमात्मा सब जगह परिपूर्ण है। आकाशमें जैसे बादल आदिमें भी अव्यक्त, अन्तमें भी अव्यक्त है, बीचमें कुछ दीखता है। मृगतृष्णाके जलकी तरह है। केवल एक विज्ञानानन्दघन परमात्मा है, वही रामरूपमें, वही कृष्ण आदि रूपोंमें दीखते हैं। प्रभु लीलाके लिये स्वाँग धारण कर रहे हैं—यह बात समझ लेनेपर प्रभु एक मिनटके लिये भी नहीं छिप सकते। एक मिनट भी भूल नहीं हो सकती। जैसे हम उठते, बैठते, चलते हैं, भावना यह कर लें कि प्रभुमें चल रहा हूँ, एक परमात्मा ही नीचे-ऊपर सर्वत्र है, परिपूर्ण है। परमात्माके संकल्पमें मेरा शरीर है, वह घूम रहा है। चाहे निराकारमें, चाहे साकारमें, पहले भावना होती है।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६। ३१)

जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।

प्रभुकी बड़ी भारी दया है। समझनेसे ही विशेष लाभ होता है। असीम दया समझे, कहनेकी नहीं, समझनेकी आवश्यकता है। जो प्रभुकी अपार दया समझ लेता है, वह फिर हर्षमें समायेगा क्या? आनन्दकी बाढ़ आ जाती है। ऐसी आनन्दकी बाढ़को छोड़कर रुपयोंमें हँसता-हँसता मर रहा है। ईश्वरकी दयामें यदि हँसता-हँसता मर जाय तो अच्छी गति होगी।

~~~

कर्म ही कर्तव्य है

मानव-जीवन पाकर भी, भगवत्प्राप्तिका उद्देश्य समझकर भी मनुष्य दिग्भ्रमित क्यों रहता है? क्या जीवन उसे उसकी इच्छासे प्राप्त हुआ है? अमुक वंश या जातिमें जन्म पाना मनुष्यके वशकी बात नहीं है। फिर क्यों न मनुष्य जहाँ प्रभुकी इच्छासे जीवन जीनेका स्थान मिला, उसे ही अपनी कर्मभूमि समझ अपने योग्यतानुसार प्रभुकार्यमें लगकर अपना जीवन सफल करनेका प्रयास करे।

मनुष्यको भगवान्‌ने जो कुछ दिया है उसके प्रति आभार व्यक्त करनेकी अपेक्षा जो नहीं मिला उसे लेकर वह चिन्तित तथा दुःखी रहता है। भौतिक सुख-साधनोंको सर्वोपरि समझकर परमार्थको भूल जाता है। अपने जिम्मे आये कार्योंको करना नहीं चाहता। केवल भोग भोगना चाहता है, कितनी बड़ी मूर्खता करता है।

एक किसान हल चलाता और खेतकी मिट्टीको नरमकर उसमें बीज डालता है। उसके पश्चात् प्रकृति या परमात्माके अनुग्रहसे फसल होती है तथा फल भी प्राप्त होता है। यदि भाग्यमें नहीं होता तो वर्षा न होने या कम होनेसे लाभसे वञ्चित भी रह जाता है। मगर यदि मेहनत नहीं करेगा, बीज नहीं बोयेगा तो कितनी ही अच्छी वर्षासे फल लाभदायक नहीं हो सकता। ईश्वरकी सहायता भी तभी फलीभूत होती है जब हमने अपना कर्म किया हो। केवल आशावादी बनकर कर्म-विमुख जीवन निरर्थक है। बिना बीज बोये तो अनपेक्षित झाड़-झंखाड़ ही पैदा होंगे और शेष जीवन उन झाड़ियोंके उखाड़ फेंकनेमें ही बीत जायगा।

(श्रीकैलासजी अग्रवाल 'बेगाना')
~~~

भगवान् श्रीकृष्णका बताया हुआ सुख-शान्तिका उपाय

(श्री जय जय बाबा)

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

(गीता २।६६)

अयुक्त पुरुषमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उसमें भावना भी नहीं होती, भावनाहीन व्यक्तिको शान्ति नहीं मिलती तथा जिस व्यक्तिको शान्ति नहीं है उसे सुख कैसे मिल सकता है?

युक्तका क्या अर्थ है? युक्तका साधारण अर्थ होता है जुड़ा हुआ; किससे जुड़ा हुआ? अध्यात्म-साधनामें परमात्मासे जुड़ा हुआ—ऐसा अर्थ लेना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीतामें युक्तकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥

(६।८)

जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर तथा सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्की प्राप्तिवाला है, ऐसा कहा जाता है।

थोड़ा ध्यान लगाकर हम देखें कि हम किससे जुड़े हुए हैं तो हमको मालूम होगा कि हममेंसे अधिकांश भगवान्से न जुड़कर उनकी मायासे ही जुड़े हुए हैं। अतः हमको सुख-शान्ति कैसे मिल सकती है?

अब इस मायासे छुटकारा प्राप्तकर हम भगवान्से कैसे जुड़ सकते हैं? इसका उपाय भी स्वयं श्रीभगवान्ने ही बता दिया है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७।१४)

यह अलौकिक और अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है, परंतु जो व्यक्ति केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायासे तर जाते हैं।

यहाँपर विशेष ध्यान देनेकी बात यह है कि श्रीभगवान्ने इस मायाको **'मम माया'** स्वयंकी माया बताया है, किसी दूसरेकी बनायी हुई नहीं। अतः उनकी कृपा बिना, उनके शरणागत हुए बिना कोई भी इसके पार नहीं जा सकता।

अब उपर्युक्त श्लोक (२।६६)-में बताये हुए सुख-शान्ति प्राप्त करनेके उपायपर थोड़ा विचार किया जाय—

(१) 'नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य'—जो अयुक्त है अर्थात् भगवान्से जुड़ा हुआ नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिर और निश्चयात्मिका नहीं होती। सुख और शान्तिके लिये प्रथम आवश्यकता स्थिर और निश्चयात्मिका बुद्धिकी है। ऐसी बुद्धिके द्वारा ही हम तत्काल और उचित निर्णय करनेकी क्षमता प्राप्त कर सकते हैं।

यही कारण है कि गायत्री महामन्त्रको चारों वेदोंका सार बताया गया है; क्योंकि इस महामन्त्रमें परमात्मासे बुद्धिको शुद्ध रखनेकी प्रार्थना की गयी है।

उपनिषदोंमें इस शरीररूपी रथका सारथि बुद्धिको ही बताया गया है। सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति आदि सब खेल बुद्धिके ही अधीन हैं। तुलसीदासजीने भी कहा है—

'जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥'

(रा० च० मा० ५।४०।६)

(२) 'न चायुक्तस्य भावना'—दूसरी बात यह है कि जो व्यक्ति भगवान्से जुड़ा हुआ नहीं है, उसे भगवद्भावकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भाव शब्दकी व्याख्या करते हुए महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवजीने कहा है—

प्रेमेर परम सार तार नाम भाव।

(चैतन्यचरितामृत)

भक्तिका, प्रेमका जो परम सार है उसीको भाव कहते हैं।

इस भगवद्भावका माहात्म्य बताते हुए भक्तप्रवर प्रह्लादजी असुर बालकोंको उपदेश देते हुए कहते हैं—

तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम्॥

(श्रीमद्भा० ७।७।३६)

तब भक्तियोगके महान् प्रभावसे भक्तके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावकी ही भावना करते-करते

उसका हृदय भी तदाकार—भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसके जन्म-मृत्युके बीजोंका कोष ही जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर लेता है।

(३) 'न चाभावयतः शान्तिः'—तीसरी बात यह है कि भगवद्भावसे रहित व्यक्तिको शान्ति कहाँ? परम शान्ति तो निरन्तर भगवच्चरणारविन्दोंकी उपासनासे ही मिल सकती है, दूसरा कोई भी उपाय नहीं।

श्रीमद्भागवतमें नव योगीश्वरोंका भागवत-धर्मपर बहुत ही सुन्दर प्रवचन है। उनमेंसे प्रथम योगीश्वर कविजीने अपने प्रवचनकी पूर्णतापर राजा निमिसे कहा—

इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या
भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ।
भवन्ति वै भागवतस्य राजं-
स्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात्॥

(११।२।४३)

हे राजन्! इस प्रकार जो प्रतिक्षण एक-एक वृत्तिके द्वारा भगवान्‌के चरणकमलोंका ही भजन करता है, उसे भगवान्‌के प्रति प्रेममयी भक्ति, संसारके प्रति वैराग्य और अपने प्रियतम भगवान्‌के स्वरूपकी स्फूर्ति—ये सब अवश्य ही प्राप्त होते हैं, तब वह स्वयं भागवत हो जाता है और परम शान्तिका अनुभव करने लगता है।

(४) 'अशान्तस्य कुतः सुखम्'—अशान्त व्यक्तिको सुख नहीं मिल सकता। यहाँपर सुखका तात्पर्य सब इन्द्रियोंसे भोगके द्वारा मिलनेवाला सुख न लेकर अतीन्द्रिय सुख लेना चाहिये, जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता (६।२१)-में कहा गया है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित यह योगी परमात्माके स्वरूपसे कभी विचलित नहीं होता।

निम्न श्लोकमें और भी महत्त्वपूर्ण बातें बतायी गयी हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६।२२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कोई भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

श्रीमद्भगवद्गीताके अठारहवें अध्यायमें श्रीभगवान्‌ने सात्त्विक, राजस और तामस सुखोंका वर्णन इस प्रकार किया है—

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

(१८।३६-३७)

हे भरतश्रेष्ठ! अब तीन प्रकारके सुखको भी तू मुझसे सुन। जिस सुखमें साधक भजन, ध्यान और सेवादिके अभ्याससे रमण करता है तथा दुःखोंके अन्तको प्राप्त हो जाता है—जो ऐसा सुख है वह आरम्भकालमें यद्यपि विषके तुल्य प्रतीत होता है, परंतु परिणाममें अमृतके तुल्य है। इसलिये वह परमात्मविषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाला सुख सात्त्विक कहा गया है।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(१८।३८)

जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है, वह पहले भोगकालमें अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी परिणाममें विषके तुल्य है। इसलिये वह सुख राजस कहा गया है।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥

(१८।३९)

जो सुख भोगकाल और परिणाममें भी आत्माको मोहित करनेवाला है—वह निद्रा, आलस्य और प्रमादद्वारा उत्पन्न सुख तामस कहा गया है।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः॥

(१८।४०)

पृथिवी या आकाशमें अथवा देवताओंमें तथा इनके सिवा और कहीं भी ऐसा कोई भी सत्त्व (प्राणी) नहीं है, जो प्रकृतिसे उत्पन्न इन तीनों गुणोंसे रहित हो।

अस्तु भगवच्चरणारविन्दोंका आश्रय ग्रहण करना ही सुख-शान्तिका अमोघ उपाय है।

साधनकी उपयोगी बातें

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ०-सं० ६६३ से आगे]

एक बार व्यासजी महाराजने शुकदेवजीको उपदेश दिया, किंतु उनकी समझमें वह बात नहीं आयी तो पिताने कहा कि तुम महाराज जनकके पास जाओ, वे उपदेश देंगे। शुकदेवजी जनकजीके द्वारपर पहुँचे। जनकजी जान गये थे कि शुकदेव आ रहे हैं। उन्होंने बाहर पहरेदारोंको पहलेसे खबर करवा दी कि अंदर मत आने देना। शुकदेवमुनि द्वारपर आ गये और अंदर जाने लगे तो पहरेदारोंने कहा—महाराज! रुकिये, अंदर जानेकी आज्ञा नहीं है। शुकदेवजी खड़े हो गये। न स्वागत हुआ न सत्कार और न आसन दिया गया। गुप्तचर देखते रहे कि इनके मुखकी आकृति कैसी बनती है। आकृतिविज्ञानवालोंने देखा कि मुख जैसा-का-तैसा है। कोई भी विकारका भाव नहीं है। महलमें निर्विकारताकी खबर दी गयी। इसपर जनकजीने कहा—अच्छा, अब उनको ऐसे विलासकाननमें भेज दो, जहाँ विलासकी सारी सामग्री और सारे-के-सारे विलासके साधन मौजूद हों। ऐसा ही किया गया। जहाँपर विकार पैदा करनेवाली सारी सामग्रियाँ उपस्थित थीं, जहाँपर इन्द्रियोंके सारे विषय विद्यमान थे, ऐसे स्थानपर उन्हें भेज दिया गया। वस्त्रालंकारोंसे सुसज्जित पचास तरुणी स्त्रियोंको उनकी सेवामें लगा दिया गया। शुकदेवजी तो गर्भज्ञानी थे। जो बाहर थे, वही अंदर रहे। कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जैसे-के-तैसे रहे।

महलमें महाराजके पास खबर पहुँची कि वे तो जैसे बाहर हैं वैसे ही अंदर भी हैं। जनकजीने कहा—अब उन्हें ससम्मान यहाँ ले आइये। सामने पहुँचे तो जनक महाराज स्वयं आदरपूर्वक उन्हें ले गये। महलमें ले जाकर योग्य आसन दिया, स्थान दिया, पूजा की, अर्घ्य दिया और पूछा—महाराज! कैसे पधारे? शुकदेवजीने कहा—पिताजीने आज्ञा दी है। आपके पास बोध प्राप्त करने आया हूँ। शुकदेवजीकी तो परीक्षा हो चुकी थी—

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।

मान-अपमानमें तुल्य रहना बड़ी कठिन बात है। जरा-सी बातमें हमलोगोंका मान-भंग हो जाता है। प्रेमसे भी अनजानमें भी कहीं कोई अगर जरा-सी अपने मनकी कल्पनामें रूक्षता हो जाय तो हमें लगता है कि हमारा अपमान कर दिया। गुरुजीने अपमान कर दिया, हमारे भाईने अपमान कर दिया, पिताने-पतिने अपमान कर दिया। न मालूम क्या-क्या अपमानकी कल्पना करके मनमें मनुष्य दुःखी होता है।

कितना अपमान! जनकजीके यहाँ शुकदेवमुनिसे बैठनेके लिये भी नहीं कहा गया। जलके लिये भी नहीं पूछा गया। कुछ भी नहीं कहा गया। विलास-भवनमें सारी सामग्रियाँ उनके विलासके लिये मौजूद! परंतु कुछ भी विकार नहीं आया। परीक्षा हो गयी कि ये केवल मौखिक वेदान्ती नहीं हैं। ये केवल मौखिक ज्ञानी नहीं हैं। ज्ञान इनके जीवनमें उतर आया है। जो ज्ञानका परिणाम होता है वह इनके जीवनमें मूर्तिमान् है। तब जनकने कहा—महाराज! आप जो यह मानते हैं कि मुझे बोध नहीं है, ज्ञान नहीं है, इसको छोड़ दीजिये। आप ज्ञानवान् हैं, परंतु आपने जो मान रखा है कि अभी हमें बोध प्राप्त करना अवशेष है, बोध नहीं है, बस यही अवरोध है। इसको छोड़ दीजिये, आप बोधवान् हैं। वह तो वैसे भी छूटा हुआ था ही। जनकजीकी यह बात शुकदेवजीको तत्काल समझमें आ गयी।

कहना यह है कि जहाँ जीवनमें उतरी हुई चीज होती है, वहाँ वह चीज तत्काल ठीक समझमें आ जाती है। इसके विपरीत जब हम केवल कहते हैं और बात जीवनमें उतरी नहीं रहती तो मैं सत्य कहता हूँ कि इससे कोई लाभ नहीं होता। जीवनमें लोगोंको समझानेके लिये बहुत चीज चाहिये, अपने समझनेके लिये उतनी नहीं। परंतु अपने जीवनमें जब हम उस चीजको नहीं उतार पाते तो हमारा कहना व्यर्थ होता है। सबकी बात नहीं कहता, मैं अपनी बात कहता हूँ। मेरे-जैसे कहनेवालोंसे आप-जैसे सुननेवालोंमें बहुत लोग बहुत ही अच्छे हैं। गह मुझे विश्वास है। जब

मैं आपलोगोंमेंसे किसी-किसीके साधनकी बात सुनता हूँ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि देखो न कैसे ये लोग हैं? चुपचाप सुनते हैं और चुपचाप कर रहे हैं तथा हमलोग कुछ नहीं करते। जीवनमें चीज उतरनी चाहिये। जब जीवनमें चीज उतरे तब जीवनकी सचाई है और जीवनमें उतरी हुई चीज उसी प्रकारका जीवन बना देती है। साधन जीवनका स्वरूप बन जाना चाहिये। सत्यवादी कौन? जो मूर्तिमान् सत्य हो। जिसको देखते ही सत्य याद आ जाय। जिसके सामने आनेसे यह बात हो कि यहाँ मिथ्या व्यवहार नहीं हो सकता, अपने-आप विश्वास हो जाय, वह सत्यवादी है।

युधिष्ठिर और दुर्योधनके बर्तावकी बात है, महाभारतकी नहीं, अन्यत्रकी है। युद्ध समाप्त हो चुका था। अब केवल दुर्योधनका वध शेष था। दुर्योधनके मरे बिना पाण्डवोंकी विजय कैसे होती? दुर्योधनका वध करनेके लिये भीमसेन कृतसंकल्प हैं और दुर्योधन बचना चाहता है। दुर्योधन माँकि पास गया। गान्धारी मैयामें तो पातिव्रतका परम प्रताप था। एक बार क्रुद्ध आँखोंसे उन्होंने देख लिया तो युधिष्ठिरके नख जल गये। इसी प्रकारका उनका प्रबल तेज था। माँने तो पहलेसे ही आशीर्वाद देना बंद कर दिया था। जिस दिन द्रौपदीकी साड़ी उतरी, उस दिन माँ गान्धारीने कह दिया कि अब आशीर्वाद नहीं देना है। कौरवोंका विनाश होगा। कुलवधूपर उन्होंने अत्याचार किया है। वे नहीं बचेंगे। माँ गान्धारीके पास दुर्योधन पहुँचा और बोला—माँ, मैं बचना चाहता हूँ। गान्धारीके पास चीज थी पर अपने मुँहसे गान्धारी कैसे कहे? गान्धारीने कहा कि बेटा बचना चाहते हो तो युधिष्ठिरके पास जाओ, उनसे पूछो।

यह समझमें आने लायक बात नहीं लगती; क्योंकि जिनसे प्रत्यक्ष युद्ध है उन युधिष्ठिरकी विजय दुर्योधनके वधपर है। सारा युद्ध समाप्त हो चुका है। अब दुर्योधन अपना वध न होनेका उपाय पूछने जाय युधिष्ठिरके पास? —यह बात किसी भी राजनीतिज्ञके समझमें नहीं आ सकती। मूलतः यह तो राजनीतिकी चीज नहीं, राजनीति संसारसे बिलकुल अलग चीज है। ऐसा भी कहीं हो सकता है क्या? कल्पनातीत बात है। दुर्योधनने माँकी बात मान ली। निर्भय हो दुर्योधन युधिष्ठिरके पास पहुँचा। युधिष्ठिरने स्वागत किया—आओ भाई आओ, बैठो! बड़े प्रेमसे बैठाया। कहा—बोलो भैया! मेरे लायक कुछ काम बताओ। इसपर दुर्योधनने कहा—भाई! एक कामसे आया हूँ। युधिष्ठिर बोले—क्या काम? साफ कह दिया कि भीम मुझे मारना चाहता है और मैं बचना चाहता हूँ। आप कोई उपाय बतायें जिससे मैं बच जाऊँ, भीमसेन मुझे न मार सकें। मेरा सारा शरीर वज्रका हो जाय, मुझे कोई आघात न लगे। इसपर महाराज युधिष्ठिरने निःसंकोच और बड़ी सरलतासे कह दिया—उपाय है, भैया! माँ गान्धारीके पास जाओ और माँसे कह दो कि एक बार आँखोंकी पट्टी खोल दें और तुम वस्त्ररहित हो जाओ। माँ एक बार आँखोंसे तुम्हारे अङ्गोंको देख लेंगी तो तुम्हारे अङ्ग वज्रके हो जायँगे, फिर भीमकी क्या ताकत कि तुम्हें मार सके। दुर्योधनने बात सुन ली। विश्वास हो गया इसलिये कि युधिष्ठिर झूठ नहीं बोलते, सत्य कहते हैं। तो युधिष्ठिरके सम्बन्धमें दुर्योधनके मनमें भी यह विश्वास है कि यद्यपि युधिष्ठिर मेरे शत्रु हैं फिर भी वे सत्य कहेंगे, झूठ नहीं बोलेंगे। इस विश्वासके आधारपर दुर्योधन गया था और युधिष्ठिरने सच्ची बात बता दी। दुर्योधन वहाँसे लौटने लगा तो भगवान् कृष्णने देखा कि थोड़ेमें बना-बनाया सारा काम खत्म हो जायगा। इसलिये युक्तिसे काम लिया।

वे दुर्योधनसे रास्तेमें मिले और पूछा—दुर्योधनजी! कहाँ गये थे? दुर्योधनने सत्य कह दिया कि मैं युधिष्ठिरके पास गया था। क्यों गये थे? तो बताया—यह पूछने गया था कि मेरा शरीर वज्रका कैसे होगा। तो उन्होंने क्या बताया? दुर्योधनने युधिष्ठिरकी बात ज्यों-की-त्यों बताते हुए कहा—माँ गान्धारीके सामने वस्त्रहीन होकर चले जाओ और माँसे कह दो कि पट्टी खोलकर एक बार देख लें तो पूरा शरीर वज्रका हो जायगा। भगवान् कृष्ण बोले—बिलकुल सत्य बात है। युधिष्ठिरने सत्य ही कहा है, माँ गान्धारीकी आँखमें यह शक्ति है, फिर भी दुर्योधन! आप इतने बड़े शूर-वीर, फिर आप मृत्युके भयसे इस अवस्थामें माँके सामने नंगे होकर जायँगे, शरम नहीं आयेगी आपको! दुर्योधनने कहा—महाराज! बात तो ठीक कही आपने।

लेकिन इसके अतिरिक्त कोई उपाय भी नहीं दीखता। श्रीकृष्ण बोले—कोई बात नहीं, उनकी भी बात रह जाय और आपका भी काम हो जाय। इसलिये आप कटिसे नीचे और जहाँतक जंघा-प्रान्त ढक जाय, उतना वस्त्र पहन लें और फिर चले जायँ माँके पास। दुर्योधनने कहा—ठीक है। बात समझमें आ गयी। भगवान्‌की मायाका खेल था। दुर्योधनकी मति फिर गयी। युद्धसे पूर्व अर्जुनके साथ भी ऐसा ही हुआ था। वह मोहके वशीभूत हो गया था, तब भगवान्‌ने कहा—'**निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्**' हे सव्यसाचिन्! तुम निमित्तमात्र बनो। तुम कौन करनेवाले हो, उसपर भी अभिमान करते हो कि युद्ध नहीं करूँगा, नहीं लड़ूँगा। मैंने इन सबको पहले ही मार रखा है। '**मयैवैते निहताः पूर्वमेव**' देखना हो तो देख लो मेरी दाढ़ोंमें—'**चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः**' उत्तम-उत्तम सारे अङ्ग चूर्ण-विचूर्ण हो रहे हैं। तुम निमित्त हो। तुम कौन मारनेवाले और तुम कौन न मारनेवाले?

युधिष्ठिर चाहे कह दें, चाहे गान्धारी देख लें, पर श्रीकृष्ण जो चाहते हैं वही होगा, दूसरा कैसे होगा?

दुर्योधनकी बुद्धि पलट गयी। जाँघिया पहनकर गया माँके सामने। माँसे कहा कि पट्टी खोलो। उस समय दुर्योधन उस बातको भूल गया कि भीमने प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारी जंघाको तोड़ूँगा। इसलिये युद्धका वह नियम—कटिसे नीचे गदा न मारनेका, यहाँ नहीं लागू हो सकता। भीमकी प्रतिज्ञा थी पर भूल गया, भगवान्‌की मायासे भूल गया। माँके सामने गया जाँघको ढककर। माँने आँख खोली और कहा—बेटा! रास्तेमें तुम्हें कृष्ण तो नहीं मिले थे? बोला—मैया वही मिले थे। तो मैया बोलीं कि उनकी इच्छा सफल हो। बेटा! तुम नहीं बच सकते। बादमें गदायुद्ध हुआ। भीमने जाँघपर गदा मारी। जाँघ टूट गयी। बलदेवजी आ गये। बलदेवजी उसके गुरु थे। दुर्योधनको गदा सिखलानेवाले पहलवान थे। बलदेवजीने कहा—भीमने क्या अनर्थ किया? सारा-का-सारा नियम तोड़ दिया, कटिके नीचे गदा मारी! इसपर भगवान् कृष्ण बोले—दाऊजी! जरा बात तो सुनो। भगवान्‌की यह बात सुनकर दाऊजी हँस पड़े। दाऊजीको कृष्णने पकड़ लिया और कहा—दाऊजी! सुनो, भीमने प्रतिज्ञा की थी; इसलिये कि भरी सभामें दुर्योधनने द्रौपदीसे कहा था—मेरी खुली जाँघपर नंगी होकर बैठ जाओ। उस समयसे भीमके हृदयमें आग लगी थी। उस समय आप होते तो क्या करते? भीमने प्रण किया था—इसकी जाँघको तोड़ूँगा, इसलिये तोड़ दी, इससे क्या पाप हुआ! दाऊजी बोले—भैया तुम जानो तुम्हारा काम जाने, हम तो चलते हैं। दाऊजी चलते बने।

इस दृष्टान्तको कहनेका मेरा तात्पर्य सत्यसे और जीवनमें सत्यके मूर्तिमान् रहनेकी विशेषतासे था। युधिष्ठिरके सत्यपर शत्रुको भी विश्वास है कि वे झूठ नहीं बोलते। इससे एक और दूसरी सुन्दर बात समझमें आती है कि हमलोग जो कुछ प्रयास करते हैं, यह प्रयास तो हमें करना ही चाहिये। अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये, पर संसारमें होगा वही जो भगवान् श्रीरामने रच रखा है—

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥

हमलोगोंकी उलटी मति है। जो चीज विधिकी रची हुई है, उसे न मानकर सांसारिक हानि-लाभके लिये हम जीवनभर प्रयत्नवान् रहते हैं कि कर लेंगे, अबकी बार प्राप्त कर लेंगे और भगवान् चाहे पुरुषार्थसे प्राप्त होते हों, किंतु उनके लिये कहते हैं कि भाग्यमें होगा तो भजन करेंगे। भजन क्यों नहीं करते? वे बोले—भाग्यमें नहीं लिखा है तो क्या करें? और भाग्यमें धन लिखा था, इसका कैसे पता लग गया? जिसके लिये रात-दिन झूठ बोलते हो, कपट करते हो, गङ्गा बहाकर अपनेको धनी मानते हो? क्या पता लगा, कैसे पता लगा? पर यह मोह है।

इसलिये भगवान्‌पर विश्वास करना चाहिये। पाण्डवोंका भगवान्‌पर विश्वास था। न मालूम कितनी बार धर्मराजसे, कितनी बार अर्जुनसे इस प्रकारकी भूलें हुईं कि वे मर जाते; किंतु भगवान्‌को उन्हें रखना था तो आगे-से-आगे रक्षाकी योजना तैयार कर देते। एक बार कर्णने एक बाणका संधान किया। उस बाणकी नोकपर एक नाग आ बैठा जो अर्जुनका शत्रु था। कर्णने अभिमन्त्रित करके उस विषैले बाणको छोड़ा, निश्चित हो गया कि यह बाण अर्जुनके गलेमें लगेगा तो गलेको काटता हुआ आगे बढ़ जायगा। कहनेमें देर लगती है। बाण छूटा, श्रीकृष्णने यूँ जोर लगाया कि

घोड़ोंके घुटने टिक गये। सर्रसे बाण निकला और अर्जुनके किरीटको जलाता हुआ चला गया। अर्जुन बच गये। यह किसको पता था कि अर्जुनके लिये ऐसा बाण आयेगा और भगवान् बचा लेंगे। भगवान्‌को पहलेसे पता था। ऐसे ही अर्जुनने प्रण कर लिया था कि यदि सूर्यास्ततक जयद्रथको नहीं मार सकूँगा तो सूर्यास्त होते ही मैं चिता जलाकर मर जाऊँगा। भगवान्‌ने कहा— अर्जुन! तुमने यह क्या प्रण कर लिया? देखो, इतने महारथी हैं, किसके बलपर तुमने प्रतिज्ञा कर ली। अर्जुनने कहा—महाराज! आपको छोड़कर मेरे पास दूसरा बल कौन-सा है? एक ही तो बल है—

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

हम बहुतोंके बलका आश्रय करते हैं। बुद्धिबल, विद्याबल, कौशलबल और अपनी चतुराईका बल; पापका भी बल अपने साथ ले लेते हैं। परास्त हो जाते हैं, हार जाते हैं, मर जाते हैं। अर्जुनने कहा—प्रभो! एक ही बल है। बोले—कोई बात नहीं। रातभर भगवान् समझाते रहे। सबेरे युद्ध आरम्भ हुआ। अर्जुन बढ़े। रास्तेमें घोड़े थम गये। भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि अच्छा, एक काम करो। बाणोंका यहाँपर एक घेरा बनाओ, पृथ्वीसे बाण मारकर जल निकालो और यहीं मैं इन घोड़ोंको धोऊँगा, ठीक करूँगा। बाण मारा गया, जल निकला। भगवान्‌ने अपने हाथोंसे घोड़े धोये। फिर आगे बढ़े। देखा कि संध्या होनेवाली है। अभी जयद्रथ दूर है। संध्या हो चली। भगवान्‌ने सोचा अब कोई युक्ति करनी है। लोगोंने देखा कि सूर्यास्त हो गया। चिता जलायी गयी कि अर्जुन जल मरेंगे। कौरवपक्षमें हर्षका जय-जयकार होने लगा। आकाशमें उनके हर्षकी ध्वनि छा गयी। पाण्डवोंका महारथी अर्जुन आज मर रहा है। सारा पाण्डवपक्ष शोकनिमग्न हो गया। भगवान् चुपचाप खड़े हैं। सब लोग पास आ गये कि अर्जुनका मरना देखेंगे। अर्जुनका जलना देखेंगे, हर्षित होंगे। दुर्योधन भी आ गया और सब लोग भी आ गये। जयद्रथ भी पास आकर खड़ा हो गया। जैसे ही खड़ा हुआ, भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—बाणका संधान करो। अर्जुन बोले—महाराज! सूर्यास्त हो गया। बोले—चुप रहो। संधान करो बाणका। एक बात और करना, इसका सिर काटकर नीचे न गिराना। अपनी बाण-विद्यासे उसे वहाँ ले जाना जहाँ इसके पिता सरोवरपर सूर्योपस्थान कर रहे हैं। उसकी अञ्जलिमें जाकर सिर गिरे। इतना उस समय बाण-विद्याका कौशल था। सामने खड़ा जयद्रथ हँस रहा है। दुर्योधन हर्ष-ध्वनि कर रहा है। अकस्मात् सूर्य निकल आया। सूर्य निकला, बाण छूटा, सिर कटा, सिर उड़ा और जयद्रथके पिताकी अञ्जलि (गोद)-में गिरा। पिताका सिर भी कटकर नीचे गिर गया। पिता-पुत्र दोनों समाप्त हो गये। हर्षध्वनि दूसरी ओर बदल गयी। क्या हो गया, क्या हो गया? किसीने कहा कि कृष्णका जादू था। किसीने कहा कि बादल आ गये थे, हम लोग समझे नहीं। जो कुछ भी था वह था श्रीकृष्णका मात्र अपने भक्तका कार्य, उसकी रक्षा करनेका कार्य।

इस प्रकार भगवान् अपने-आप रक्षा करते हैं। जो कुछ उनको करना होता है वही होता है, हमारे किये-कराये कुछ नहीं होता। [क्रमशः]

मैं गिरधरके घर जाऊँ।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़ै तबही उठ जाऊँ भोर भये उठि आऊँ।
रैन दिना वाके सँग खेलूँ ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीति पुराणी उण बिन पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावें तितही बैठूँ बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर बार बार बलि जाऊँ॥

तू तमाशा बन, तमाशाई न बन

(डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत)

गोस्वामी तुलसीदासजीने 'श्रीरामचरितमानस' में अपने इष्टदेव रामकी ब्रह्म तथा महामानव—दोनोंके मिश्रित रूपमें अवतारणा की है। उनके राम व्यापक ब्रह्म हैं, निर्गुण हैं, विगत-विनोद हैं तथा भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर प्रकट होते हैं। उनका अवतरण *'बिप्र धेनु सुर संत हित'* होता है। वे सच्चिदानन्ददिनेश हैं, जहाँ मोहनिशाका लवलेश भी नहीं है। वे पुरुष-प्रसिद्ध प्रकाशनिधि हैं, प्रकाश्य जगत्के वे ही प्रकाशक हैं। वे ही मायाधीश हैं। उनकी सत्तासे मोहकी सहायता पाकर माया भी सत्य-जैसी प्रतीत होती है—*'जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥'* निर्गुण-साधकोंके लिये वे परब्रह्म हैं तथा सगुणोपासकोंके लिये दशरथ-सुत हैं। तुलसीदासजीने रामके इन दोनों ही रूपोंकी उपासनापर विशेष बल दिया है तथा कहा है कि हृदयमें निर्गुण ब्रह्मका ध्यान हो, नेत्रोंके सम्मुख सुन्दर स्वरूपकी झाँकी हो तथा जिह्वापर राम-नामका जप चलता रहे—

हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम॥

(दोहावली ७)

इसलिये हमारा लक्ष्य प्रत्येक श्वासका सदुपयोग होना चाहिये, जो भगवन्नाम-स्मरणके द्वारा ही सम्भव है। जिन भगवान्की हम स्तुति करते हैं, वे हमसे दूर नहीं हैं। वे हममें हैं और हम उनमें। वे ही सर्वेश्वर साकार-विग्रहसे भक्तोंके सामने आते हैं तथा निराकाररूपमें समग्र विश्वमें व्याप्त रहते हैं एवं साक्षी चिदात्मारूपमें समस्त प्राणियोंके हृदयोंमें रहते हैं। 'कपट-टाटी'के कारण ही वे हमें नहीं दिखायी देते—

मैं जान्यो हरि दूर हैं, हरि हैं हिरदय माहिं।
आड़ी टाटी कपट की, तासो दीसत नाहिं॥

इस कपटकी टाटीको दूर करनेके लिये आवश्यक है ज्ञान और यह ज्ञान है—*'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥'*

जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंके फलस्वरूप ही यह दृढ़ हो पाता है कि *'कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप। परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥'* इस विश्वासके दृढ़ होते ही परमात्माके प्रति चित्तमें अनुराग सुदृढ़ हो जाता है तथा महात्मा बुद्धकी यह वाणी हृदयमें प्रवेश कर जाती है—

पुत्तामत्थि धनम्मत्थि इति वालो विहञ्चति।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनम्॥

अर्थात् 'मेरा पुत्र है, मेरा धन है'—यह सोच-सोचकर मूर्ख परेशान होता है। जब मनुष्य स्वयं ही अपना नहीं है तब पुत्र और धन उसके कहाँतक होंगे? यह विवेक ही सांसारिक भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न करता है। इस वैराग्यसे शम (मनका वशमें होना), दम (इन्द्रियोंका वशमें होना), तितिक्षा (सहनशीलता), उपरति (भोगोंके सामने रहनेपर भी उनमें आसक्ति न होना), श्रद्धा (परमात्मामें, उनकी प्राप्तिमें, प्राप्तिके साधन बतलानेवाले शास्त्र तथा संतोंके वाक्योंमें अखण्ड विश्वास) तथा समाधान (सारी शंकाओंका मिट जाना)—इन छः सम्पत्तियोंकी प्राप्ति होती है। इनकी प्राप्तिसे आत्मसाक्षात्कारकी, परमात्माको प्राप्त करनेकी लालसा अपने पूर्ण आवेगके साथ जाग्रत् होती है। यह लालसा साधकको निश्चेष्ट नहीं रहने देती, परमार्थ-पथका पथिक बना देती है। उसकी यह साधना तबतक चलती रहती है, जबतक कि वह अपने अभीष्टकी सिद्धि नहीं कर लेता। *'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई'* की स्थिति ही उसका अभीष्ट है।

भगवत्प्राप्तिके साधनोंमें भक्तिका स्थान असाधारण है—**'मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।'** इस साधनमें साधकको मनोज्ञ माधुर्य रसकी प्राप्ति प्रारम्भसे ही होने लगती है। साधनावस्थामें ही इतना आनन्द प्राप्त होने लगता है कि भक्त सिद्धि भी नहीं चाहता, साधनामें ही निरत रहना चाहता है। वह यही याचना करता है कि हे प्रभो! हमें इसी अवस्थामें पड़ा रहने दो, हम और कुछ नहीं चाहते। भरतकी भी तो यही कामना है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(रा०च०मा० २।२०४)

भक्तकी इस भावनापर भगवान् रीझ जाते हैं और उसे सर्वस्व देनेको ललचा उठते हैं। भगवान् कहते हैं कि *'जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥'*

भक्ति भगवद्भावको विस्तार देती है, जिसके फलस्वरूप *'सीय राममय सब जग जानी'* की सूक्ति आचरणका विषय बन जाती है तथा *'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत'* की भावना रोम-रोमको पुलकित कर देती है और तब यह वाणी मुखर हुए बिना नहीं रहती है—*'कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय, हिय मैं न जानि परै कान्ह है या प्रान है।'*

ऐसी दशामें भक्तके सामनेसे संसार अदृश्य हो जाता है। वह एक भावसे भावित होकर हँसता, रोता, गाता और चिल्लाता है। सुतीक्ष्णजीकी यही स्थिति हुई। भगवान् रामके आगमनका वृत्त सुनते ही वे इतने प्रेममग्न हो जाते हैं कि उन्हें आस-पासका भानतक नहीं रह जाता—

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥

(रा०च०मा० ३।१०।११-१२)

ऐसे भक्तोंके लिये ही भगवान् कहते हैं कि *'तात निरंतर बस मैं ताके।'* उद्धवको सम्बोधित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'**क्रीतोऽहं तेन उद्धव**' हे उद्धव! मैं तो आत्मसमर्पण करनेवाले भक्तोंके हाथ बिक जाता हूँ, उनका क्रीतदास हो जाता हूँ। तुलसीदासजीकी इस प्रतिज्ञाके मूलमें भी यही समर्पण-भाव है—

श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं॥
नातो-नेह नाथसों करि सब नातो-नेह बहैहौं।

मीराकी भी यही प्रतिज्ञा है—*'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई। जाके सिर मोर मुगट मेरो पति सोई॥'*

जिन आँखोंमें भगवान्‌की छबि बस जाती है, उनमें अन्य वस्तुओंके लिये स्थान ही कहाँ? रहीमका विश्वास है कि—

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आय पथिक फिरि जाय॥

इसीलिये हम चारों ओर बिखरी हुई अपनी सांसारिक वृत्तियोंको समेटकर परात्पर ब्रह्मके किसी भी रूपमें लगा दें। भगवान् कहते हैं—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

(रा०च०मा० ५।४८।४—७)

भाव-सिद्धिके लिये अनेकत्वका एकत्वमें लय हो जाना अनिवार्य है। एक उर्दू कविकी इस वाणीमें जीवनकी सफलताका सम्पूर्ण रहस्य निहित है—

एक गुलपर हो फिदा, बुलबुल तू हरजाई न बन।
खुद तमाशा बन मगर तू अब तमाशाई न बन॥

ऐसे भक्तोंका योगक्षेम वहन करनेकी जिम्मेदारी स्वयं भगवान्‌ने ले रखी है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अर्थात् जो प्रेमीजन अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करते रहते हैं, उन शरणागतोंके योगक्षेमका वहन मैं स्वयं करता हूँ। इसलिये अपनेको उनके हाथोंमें सौंपकर हम निश्चिन्त हो जायँ।

इस निश्चिन्तताके लिये आवश्यक है उपासना। उपासनाके प्रारम्भमें प्रार्थना उपासकको उपास्यसे अभिन्न होनेकी प्रेरणा देती है। अन्तःकरणका सप्रेम आत्मनिवेदन, सप्रेम स्तुति ही प्रार्थना है। अनुराग एवं करुणामयी प्रार्थनामें विचित्र आकर्षण होता है। करुण पुकारपर प्रभु स्वयंको रोक नहीं पाते—रुक भी नहीं सकते। इसीलिये कातर स्वरोंमें हम निरन्तर यह प्रार्थना करते रहें—

विधिका विधानका न ज्ञान कुछ भी है मुझे,
करुणानिधान! पंथ सूझता न अभिराम।
भेद-भावनामें मति भ्रमित हुई है अति,
स्वार्थ-सिद्धिमें ही रति मानता हूँ आठों याम।
मुक्ति मिल पाती नहीं, चलती न कोई युक्ति,
घेरे रहते सदैव लोभ-मोह-द्रोह-काम।
डूबा अब डूबा इस कामनाके सागरमें,
लो उबार एक बार मेरे पूर्णकाम राम।

हमारे पुकारने भरकी देर है। वे तो रक्षा करनेके लिये तत्पर हैं ही। उनकी तो यह टेक ही है—

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥

(रा०च०मा०३।४३।५)

साधकोंके प्रति—

सब साधनोंका सार

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ६७० से आगे]

शरीर कभी एकरूप रहता ही नहीं और हमारा स्वरूप कभी अनेकरूप होता ही नहीं। शरीर जन्मसे पहले भी नहीं था, मरनेके बाद भी नहीं रहेगा और वर्तमानमें भी यह प्रतिक्षण मर रहा है। वास्तवमें गर्भमें आते ही शरीरके मरनेका क्रम शुरू हो जाता है। बाल्यावस्था मर जाय तो युवावस्था आ जाती है। युवावस्था मर जाय तो वृद्धावस्था आ जाती है। वृद्धावस्था मर जाय तो देहान्तर-अवस्था अर्थात् दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

(गीता २। १३)

बाल, युवा और वृद्ध—ये तीन अवस्थाएँ स्थूल-शरीरकी हैं और देहान्तरकी प्राप्ति सूक्ष्म तथा कारणशरीरकी है। देहान्तरकी प्राप्ति (मृत्यु) होनेपर स्थूलशरीर तो छूट जाता है, पर सूक्ष्म तथा कारणशरीर नहीं छूटते। जबतक मुक्ति न हो, तबतक सूक्ष्म तथा कारणशरीरसे सम्बन्ध बना रहता है। तात्पर्य है कि हमारा वास्तविक स्वरूप स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण—इन तीनों शरीरोंसे तथा इनकी अवस्थाओंसे अतीत है। शरीर और उसकी अवस्थाएँ बदलती हैं, पर स्वरूप वही-का-वही रहता है। जन्मना और मरना हमारा धर्म नहीं है, प्रत्युत शरीरका धर्म है। हमारी आयु अनादि और अनन्त है, जिसके अन्तर्गत अनेक शरीर उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। हमारी स्वतन्त्रता और असंगता स्वतःसिद्ध है। असंग (निर्लिप्त) होनेके कारण ही हम अनेक शरीरोंमें जानेपर भी वही रहते हैं, पर शरीरके साथ संग मान लेनेके कारण हम अनेक शरीरोंको धारण करते रहते हैं। माना हुआ संग तो टिकता नहीं, पर हम नया-नया संग पकड़ते रहते हैं। अगर नया संग न पकड़ें तो मुक्ति स्वतःसिद्ध है।

बालिके मरनेपर भगवान् श्रीराम तारासे कहते हैं—

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥

(मानस, किष्कि० ११। २-३)

देश बदलता है, काल बदलता है, वस्तुएँ बदलती हैं, व्यक्ति बदलते हैं, अवस्थाएँ बदलती हैं, परिस्थितियाँ बदलती हैं, घटनाएँ बदलती हैं, पर हम नहीं बदलते। हम निरन्तर वही रहते हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ बदलती हैं, पर तीनों अवस्थाओंमें हम एक ही रहते हैं, तभी हमें तीनों अवस्थाओंका और उनके परिवर्तन (आरम्भ और अन्त)-का ज्ञान होता है। स्थूल दृष्टिसे विचार करें तो जैसे हम हरिद्वारसे रायवाला आये और फिर रायवालासे ऋषिकेश आये। अगर हरिद्वारमें या रायवालामें अथवा ऋषिकेशमें ही रहनेवाले होते तो हरिद्वारसे ऋषिकेश कैसे आते? अतः हम न तो हरिद्वारमें रहनेवाले हुए, न रायवालामें रहनेवाले हुए और न ऋषिकेशमें ही रहनेवाले हुए, प्रत्युत तीनोंसे अलग हुए। हरिद्वार, रायवाला और ऋषिकेश तो अलग-अलग हुए, पर हम उन तीनोंको जाननेवाले एक ही रहे। ऐसे ही हम सभी अवस्थाओंमें एक ही रहते हैं। इसलिये हमें बदलनेवालेको न देखकर रहनेवाले (स्वरूप)-को ही देखना चाहिये—

रहता रूप सही कर राखो बहता संग न बहीजे।

जैसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीनों शरीर अपने नहीं हैं, ऐसे ही स्थूलशरीरसे होनेवाली क्रिया, सूक्ष्मशरीरसे होनेवाला चिन्तन और कारणशरीरसे होनेवाली स्थिरता तथा समाधि भी अपनी नहीं है। कारण कि प्रत्येक क्रियाका आरम्भ और अन्त होता है। प्रत्येक चिन्तन आता और जाता है। स्थिरताके बाद चंचलता तथा समाधिके बाद व्युत्थान होता ही है। क्रिया, चिन्तन, स्थिरता और समाधि—कोई भी

वस्तु निरन्तर नहीं रहती। इन सबके आने-जानेका अनुभव तो हम सबको होता है, पर अपने आने-जानेका, परिवर्तनका अनुभव कभी किसीको नहीं होता। हमारा होनापन निरन्तर रहता है।

विचार करें, जब चौरासी लाख योनियोंमें कोई भी शरीर हमारे साथ नहीं रहा तो फिर यह शरीर हमारे साथ कैसे रहेगा? जब चौरासी लाख शरीर मैं-मेरे नहीं रहे तो फिर यह शरीर मैं-मेरा कैसे रहेगा?

शरीर मेरा नहीं है

अनन्त ब्रह्माण्डोंमें अनन्त वस्तुएँ हैं, पर उनमेंसे तिनके-जितनी वस्तु भी हमारी नहीं है, फिर शरीर हमारा कैसे हुआ? यह सिद्धान्त है कि जो वस्तु मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह अपनी नहीं होती। शरीर मिला है और बिछुड़ जायगा, इसलिये वह अपना नहीं है। अपनी वस्तु वही हो सकती है, जो सदा हमारे साथ रहे और हम सदा उसके साथ रहें। यदि शरीर अपना होता तो यह सदा हमारे साथ रहता और हम सदा इसके साथ रहते। परंतु शरीर एक क्षण भी हमारे साथ नहीं रहता और हम इसके साथ नहीं रहते।

एक वस्तु अपनी होती है और एक वस्तु अपनी मानी हुई होती है। भगवान् अपने हैं; क्योंकि हम उन्हींके अंश हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५।७)। वे हमसे कभी बिछुड़ते ही नहीं। परंतु शरीर अपना नहीं है, प्रत्युत अपना माना हुआ है। जैसे नाटकमें कोई राजा बनता है, कोई रानी बनती है, कोई सिपाही बनते हैं तो वे सब नाटक करनेके लिये माने हुए होते हैं, असली नहीं होते। ऐसे ही शरीर संसारके व्यवहार (कर्तव्य-पालन)-के लिये अपना माना हुआ है। यह वास्तवमें अपना नहीं है। जो वास्तवमें अपना है, उस परमात्माको तो भुला दिया और जो अपना नहीं है, उस शरीरको अपना मान लिया—यह हमारी बहुत बड़ी भूल है। शरीर चाहे स्थूल हो, चाहे सूक्ष्म हो, चाहे कारण हो, वह सर्वथा प्रकृतिका है। उसको अपना मानकर ही हम संसारमें बँधे हैं।

परमात्माका अंश होनेके नाते हम परमात्मासे अभिन्न हैं। प्रकृतिका अंश होनेके नाते शरीर प्रकृतिसे अभिन्न है। जो अपनेसे अभिन्न है, उसको अपनेसे अलग मानना और जो अपनेसे भिन्न है, उसको अपना, सम्पूर्ण दोषोंका मूल है। जो अपना नहीं है, उसको अपना माननेके कारण ही जो वास्तवमें अपना है, वह अपना नहीं दीखता।

यह हम सबका अनुभव है कि शरीरपर हमारा कोई वश (अधिकार) नहीं चलता। हम अपनी इच्छाके अनुसार शरीरको बदल नहीं सकते, बूढ़ेसे जवान नहीं बना सकते, रोगीसे नीरोग नहीं बना सकते, कमजोरसे बलवान् नहीं बना सकते, कालेसे गोरा नहीं बना सकते, कुरूपसे सुन्दर नहीं बना सकते, मृत्युसे बचाकर अमर नहीं बना सकते। हमारे न चाहते हुए भी, लाख प्रयत्न करनेपर भी शरीर बीमार हो जाता है, कमजोर हो जाता है, बूढ़ा हो जाता है और मर भी जाता है। जिसपर अपना वश न चले, उसको अपना मान लेना मूर्खता ही है।

शरीर मेरे लिये नहीं है

शरीर नाशवान् है और हमारा स्वरूप अविनाशी है। अविनाशी तत्त्वके लिये अविनाशी वस्तु ही हो सकती है। नाशवान् वस्तु अविनाशीके लिये कैसे हो सकती है? अविनाशीके क्या काम आ सकती है? अमावास्याकी रात्रि सूर्यके क्या काम आ सकती है? सांसारिक शरीर आदि वस्तुएँ संसारके ही काम आती हैं, हमारे काम किंचिन्मात्र भी नहीं आतीं। इसलिये अनन्त ब्रह्माण्डोंमें एक भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो हमारी और हमारे लिये हो। अतः शरीर मेरे लिये है, शरीरसे मेरेको कोई लाभ हो जायगा—यह कोरा वहम है।

शरीर केवल कर्म करनेका साधन है और कर्म केवल संसारके लिये ही होता है। जैसे कोई लेखक जब लिखने बैठता है, तब वह लेखनीको ग्रहण करता है और लिखना बंद करनेपर लेखनीको छोड़ देता है, ऐसे ही हमें कर्म करते समय शरीरको स्वीकार करना चाहिये और कर्म समाप्त होते ही शरीरसे असंग हो जाना चाहिये। अगर हम कुछ भी न करें तो शरीरकी क्या जरूरत है? अगर हम कोई कर्म न करें तो शरीरका कोई उपयोग नहीं है। शरीर

परिवारकी, समाजकी अथवा संसारकी सेवाके लिये है, अपने लिये है ही नहीं। स्थूलशरीरसे होनेवाली क्रिया, सूक्ष्मशरीरसे होनेवाला चिन्तन और कारणशरीरसे होनेवाली स्थिरता तथा समाधि भी हमारे लिये नहीं है। हमारे काम न क्रिया आती है, न चिन्तन आता है, न स्थिरता आती है, न समाधि आती है। ये सब प्राकृत वस्तुएँ हैं और संसारके ही काम आती हैं। हमारा स्वरूप इनसे अलग है।

अगर शरीर हमारे लिये होता तो उसके मिलनेपर हमें संतोष हो जाता, हमारे भीतर और कुछ पानेकी इच्छा नहीं रहती और शरीरसे कभी वियोग भी नहीं होता, वह सदा ही हमारे साथ रहता। परंतु यह सबका अनुभव है कि शरीर मिलनेपर भी हमें संतोष नहीं होता, हमारी इच्छाएँ समाप्त नहीं होतीं, हमें पूर्णताका अनुभव नहीं होता और शरीर भी सदा हमारे साथ नहीं रहता, प्रत्युत हमारेसे बिछुड़ जाता है। इसलिये शरीर हमारे लिये नहीं है।

यहाँ शंका हो सकती है कि जब शरीर हमारे लिये है ही नहीं तो फिर शास्त्रोंमें मनुष्यशरीरकी महिमा क्यों गायी गयी है? इसका समाधान है कि वास्तवमें वह महिमा शरीर (आकृति)-की नहीं है, प्रत्युत विवेककी है। आकृतिका नाम मनुष्य नहीं है, प्रत्युत विवेक-शक्तिका नाम मनुष्य है। मनुष्यशरीरका मस्तिष्क विशेष प्रकारसे बना हुआ है, जिसमें सत् और असत्, कर्तव्य और अकर्तव्यका विवेक विशेषरूपसे प्रकट हो सकता है। वैसा मस्तिष्क अन्य शरीरोंमें नहीं है। अन्य (पशु आदि) शरीरोंका विवेक उनके जीवन-निर्वाहतक सीमित रहता है। इसलिये मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है—इस विवेकविरोधी सम्बन्धका त्याग मनुष्य ही कर सकता है।

उपसंहार

शरीरको मैं, मेरा और मेरे लिये मानना विवेकविरोधी सम्बन्ध है। विवेकविरोधी सम्बन्धको रखते हुए कोई भी साधक सिद्धिको प्राप्त नहीं हो सकता। शरीरके साथ सम्बन्ध रखते हुए कोई कितनी ही तपस्या कर ले, समाधि लगा ले, लोक-लोकान्तरोंमें घूम आये अथवा यज्ञ, दान आदि बड़े-बड़े पुण्यकर्म कर ले तो भी उसका बन्धन सर्वथा नहीं मिट सकता। परंतु शरीरके सम्बन्धका त्याग होते ही बन्धन मिट जाता है और सत्य तत्त्वकी अनुभूति हो जाती है। इसलिये विवेकविरोधी सम्बन्धका त्याग किये बिना साधकको चैनसे नहीं बैठना चाहिये। अगर हम शरीरसे माने हुए सम्बन्धका त्याग न करें तो भी शरीर हमारा त्याग कर ही देगा। जो हमारा त्याग अवश्य करेगा, उसका त्याग करनेमें क्या कठिनाई है? किसी भी मार्गका साधक क्यों न हो, उसे इस सत्यको स्वीकार करना ही पड़ेगा कि शरीर मैं नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है। कारण कि शरीरके साथ अपना सम्बन्ध मानना ही मूल बन्धन अथवा दोष है, जिससे सम्पूर्ण दोषोंकी उत्पत्ति होती है।

शरीर संसारकी वस्तु है। संसारकी वस्तुको मैं, मेरा और मेरे लिये मान लेना बेईमानी है और इसी बेईमानीका दण्ड है—जन्म-मरणरूप महान् दुःख। इसलिये साधकका कर्तव्य है कि वह ईमानदारीके साथ संसारकी वस्तुको संसारकी ही मानते हुए उसे संसारकी सेवामें अर्पित कर दे और भगवान्‌की वस्तुको अर्थात् अपने-आपको भगवान्‌का ही मानते हुए भगवान्‌के समर्पित कर दे। ऐसा करनेमें ही मनुष्यजन्मकी पूर्ण सार्थकता है।

मन! माधवको नेकु निहारहि।
सुनु सठ, सदा रंकके धन ज्यों, छिन-छिन प्रभुहिं सँभारहि॥
सोभा-सील-ग्यान-गुन-मंदिर, सुंदर परम उदारहि।
रंजन संत, अखिल अघ-गंजन, भंजन बिषय-बिकारहि॥
जो बिनु जोग-जग्य-ब्रत-संयम गयो चहै भव-पारहि।
तौ जनि तुलसिदास निसि-बासर हरि-पद-कमल बिसारहि॥

रामराज्यके लिये समर्थ स्वामी श्रीरामदासजीकी हनुमत्-साधना

(डॉ० श्रीगजाननजी शर्मा एवं प्रो० श्रीश्यामसुन्दरजी झँवर)

देशमें राष्ट्रिय चेतना, राष्ट्रबोध और देशप्रेम जाग्रत् करनेवाले संतोंमें महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध संत समर्थ स्वामी श्रीरामदासजीका विशेष स्थान है। सत्रहवीं सदीमें प्रकट होनेवाले समर्थ श्रीरामदासजीने पञ्चवटी (नासिक)-के पास टाकळी नामक स्थानपर बारह वर्षोंतक जलमें खड़े होकर *'श्रीराम जय राम जय जय राम'* इस दिव्य मन्त्रका पुरश्चरण किया। इस मन्त्रका तेरह करोड़ जप करनेके बाद आध्यात्मिक शक्तिसे सम्पन्न होकर उन्होंने सन् १६३२ ई०से आरम्भ कर बारह वर्षोंतक सम्पूर्ण भारतका भ्रमण किया तथा देशकी पराधीनताजन्य दुर्दशाको प्रत्यक्ष देखा।

अपने प्रवासमें समर्थ श्रीरामदासजीने देखा कि भारतवासी विदेशी आक्रान्ताओंसे आतंकित हैं। वे उत्साहशून्य और अकर्मण्य बन गये हैं। वे 'दैव' के भरोसे हाथ-पर-हाथ रखे पुरुषार्थहीन हो गये हैं तथा स्वाभिमान, स्वतन्त्रता, धर्मरक्षण तथा तेजस्विताको भूलते जा रहे हैं। इस निराशाजनक स्थितिमें उनके मनमें भगवत्प्रेरणा हुई कि देशमें राष्ट्रप्रेम और स्वधर्मकी अस्मिताका जागरण नितान्त आवश्यक है।

समर्थ श्रीरामदासजीने यह समझ लिया था कि राष्ट्रिय चेतना और स्वधर्मरक्षणकी भावना जगानेके लिये समर्थ रघुवीर और रामकार्यके लिये अवतरित हनुमान्‌जीको अधिष्ठान बनाकर चलनेसे ही सफलता प्राप्त हो सकेगी। अत: आपने *'जय-जय रघुवीर समर्थ'* के उद्घोषका जागरण-मन्त्र समाजको दिया। उन्होंने श्रीरामको स्वधर्म एवं राष्ट्रके सर्वोच्च आदर्श एवं आराध्यके रूपमें प्रस्तुत किया। साथ ही रामकाजके साकार रूप हनुमान्‌जीको भक्त और सेवकके अनुकरणीय अधिष्ठानके रूपमें स्थापित किया।

आपने राष्ट्र-जागरण-अभियानको सक्रिय और सार्थक रूप देनेके लिये प्रमुख तीर्थों एवं महत्त्वपूर्ण स्थानोंपर अनेक मठोंकी स्थापना की तथा इन स्थानोंपर श्रीराम एवं हनुमान्‌जीकी मूर्तियाँ भी स्थापित कीं। समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी रामराज्यकी स्थापनाके लिये रामकाजको ही जीवन-व्रत माननेवाले हनुमान्‌जीका अनुकरण करनेकी प्रेरणा समाजको देते रहे।

समर्थ श्रीरामदासजीने १०१ मठ स्थापित किये। वहाँ भी आपने श्रीराम और हनुमान्‌जीकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित कीं। मठ-स्थापनाके पीछे उनका यही उद्देश्य था कि ये स्थान केवल पूजा-अर्चनाके स्थल बनकर ही न रह जायँ, प्रत्युत यहाँसे धर्म, समाज और राष्ट्रके जागरणकी सतत प्रबल प्रेरणा भी मिलती रहे। इन मठोंमें देशकी राजनीतिक स्थितिपर भी चर्चा हो। भगवन्त-हनुमन्तकी कथा-वार्ता, सुन्दरकाण्डके पाठ आदिके माध्यमसे जनतामें स्वधर्मनिष्ठा, धर्मरक्षणकी भावना, स्वतन्त्रताके प्रति अदम्य आकाङ्क्षा, शौर्य और वीरताकी भावनाका संचार हो। समर्थ श्रीरामदासजीने अपने मठोंको धर्मजागरण और रक्षण तथा स्वाधीनताकी चेतनाका संचार करनेका केन्द्र बना दिया।

समर्थजीकी शिक्षा-दीक्षासे अनुप्राणित हो महाराज शिवाजी स्वराज-स्थापनके लिये समर्पित हो गये। वे मुगलोंसे लड़े, विजयी हुए और छत्रपति बने। समर्थजी शिवाजीके धर्मगुरु थे। वे शिवाजीके छत्रपति बननेपर राजगुरु भी बने, किंतु आम जनताके मार्गदर्शक सदैव बने रहे। राजा और प्रजा सभीको समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी श्रीराम और हनुमान्‌जीके अधिष्ठानके द्वारा ही धर्मरक्षण और स्वराज-स्थापनकी प्रेरणा देते रहे।

समर्थ श्रीरामदासजीके द्वारा जो दिशा-दर्शन सत्रहवीं शतीमें दिया गया, वह आज भी सार्थक है। आज भी शिवाजीके समान सच्चे सार्थक स्वराज्यके प्रति समर्पणभाव और बलिदानी भावनायुक्त उत्साहकी नितान्त आवश्यकता है, जिससे हमारे स्वतन्त्र राष्ट्रमें 'सुराज' की स्थापना हो सके। जब राष्ट्रका प्रत्येक नागरिक हनुमान्‌जीके समान यह निश्चय करेगा कि मेरा जन्म 'राम-काज' के लिये हुआ है और जब वह 'राम-काज' करनेके लिये 'आतुर' हो जायगा, तभी 'रामराज्य' की स्थापना हो सकेगी। हनुमान्‌जी इसी लक्ष्यके प्रति सम्पूर्ण समर्पणके प्रतीक हैं, उदाहरण हैं। 'सुराज' और 'रामराज्य' के लिये स्वयंके स्वार्थसे ऊपर उठकर, भगवद्भावनासे जब कार्य किया जाता है, तो वह 'रामकाज' होता है।

हनुमान्‌जीके चरित्र-श्रवण एवं पठन-मननसे उनके

गुणों तथा कार्योंका सतत ध्यान बना रहता है और हमें यह प्रेरणा मिलती है कि प्रभुने हमें भी किसी विशिष्ट भगवत्कार्यके लिये जन्म दिया है, हम भी हनुमान्‌जीके समान 'राम-काज' के लिये समर्पित हों। 'राम-काज' हमारा जीवनव्रत बन जाय। हनुमान्‌जीका आदर्श और उनके प्रति भक्ति बढ़े—इस उद्देश्यसे समर्थ श्रीरामदासजीने 'दासबोध', 'मनाचे श्लोक' आदि ग्रन्थोंके साथ ही 'मारुति गौरव' की रचना भी की।

समर्थ स्वामी श्रीरामदासजीने हनुमत्-स्तवनके साथ 'अंजनी गीत' भी लिखा। 'अंजनी गीत' में प्रसंग है कि लङ्कासे लौटते समय हनुमान्‌जीने श्रीराम, श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताजीको माता अंजनीके दर्शन कराये। चारोंने उन्हें प्रणाम किया। तब श्रीरामने माता अंजनीसे कहा—'माँ! आपके कुमारने मुझपर बहुत उपकार किया है। आपके उदरसे हनुमान्‌रूपी रत्न प्रकट हुआ है। उसीके कारण जो कार्य हुए बस वही तो है मेरी रामायण—'

तुझ्या कमरें घोर उपकार केला।... माते तुझ्या उदरी जाण। हनुमान जन्मला रत्न। येवढे माझें रामायण। याचे नियोगें। (अंजनी गीत २-३)। यह है श्रीरामके द्वारा गाया गया हनुमान्‌जीका गौरव और उसके माध्यमसे माता अंजनीका गौरव।

समर्थजीको श्रीरामजीके दर्शन हुए थे। उन्हें हनुमान्‌जीका अवतार माना जाता है। उन्होंने स्वराज्य—सुराज—रामराज्यकी स्थापनाके लिये शिवाजीको शिक्षा और प्रेरणा प्रदान की।

समर्थ रामायणमें स्पष्ट किया गया है कि हनुमान्‌जी राक्षसोंकी नगरी लङ्कामें निर्भय होकर प्रवेश करते हैं, डगमगाते नहीं हैं और कहते हैं—***'तया झोडितो दास मी राघवांचा'*** (सुन्दर २०) अर्थात् मैं राघव श्रीरामका दास उन्हें पीटता हूँ।

समर्थ स्वामी श्रीरामदासजीने 'दासबोध' में चार सूत्र दिये हैं—(१) हरिकथा-निरूपण अर्थात् भगवत्-चिन्तन या अध्यात्म, (२) राजकारण, (३) सर्वविध सावधानता और (४) अत्यन्त सापेक्ष।

पहला सूत्र है जीवनमें आध्यात्मिक दृष्टिकोण हो, भगवत्-चिन्तन हो, सर्वत्र भगवत्-दृष्टि हो। इसके अभावसे व्यक्तिमें अहंकार और स्वार्थ व्याप्त हो जाता है।

दूसरा सूत्र है कि समाज और राजनीतिसे जुड़े रहो तथा स्वराज-सुराज-रामराज्यकी स्थापनाके लिये सदैव तत्पर रहो।

तीसरा सूत्र जीवनके सभी क्षेत्रोंके लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है—सभी विषयोंमें पूर्ण और अखण्ड सावधानी, पूरी सजगता और विवेकपूर्ण चातुर्य। श्रीरामदासजीने लग्नमण्डपमें 'सावधान' शब्द सुनते ही लग्नमण्डपसे उड़ी मारकर (उड़ान भरकर, उछलकर) पञ्चवटी (नासिक) पहुँच गये। जीवनभर पूर्ण सावधान रहे। यह अद्वितीय उदाहरण है। समर्थ स्वामीजीका 'सर्वविषयी सावधानपण' का उपदेश अनुभूत आदेश है।

चौथा सूत्र है—'अत्यन्त सापेक्ष'। इस सूत्रके द्वारा समर्थजीने दैवके भरोसे बैठे रहनेवाले अपने युगके निरुद्योगी व्यक्तियोंको सतत प्रयत्न, उद्योग और पुरुषार्थका उपदेश दिया है। समर्थका यह प्रबोधन हर युगके लिये है। आज भी यह उतना ही सार्थक और प्रासंगिक है।

समर्थ स्वामी धर्म-स्थापन—धर्मराज्यकी स्थापनाके लिये प्रयत्नशील थे। इसके लिये लोकसंग्रह, जनजागृति और जनसंगठन आवश्यक था। समर्थजी जानते थे कि धर्मप्राण भारतमें धर्मके माध्यमसे ही जनजागरण सम्भव है। अतः समर्थ श्रीरामदासजीने श्रीराम और हनुमान्‌जीके अधिष्ठानसे, विशेषतः हनुमान्‌जीकी उपासनासे, धर्मनिष्ठा, कर्तव्य-परायणता, राजनीतिक जागृति, आत्मविश्वास, सुराजकी स्थापनाके लिये संघर्षकी भावना समाजमें सुदृढ़ की। वे २४ वर्षकी आयुसे ७३ वर्षकी आयु (सन् १६८१)-तक—लगभग आधी शताब्दीतक समाजको इस शौर्य-साधना, बजरंगीकी उपासनाकी ओर प्रवृत्त करते रहे। इससे जनतामें चेतना जागी और समर्थसे प्रेरित होकर शिवाजीने उनका नेतृत्व किया। स्वाधीन राज्यकी स्थापना हुई और सुराज—स्वराज्य—रामराज्यको साकार करनेकी सार्थक साधना हुई।

समर्थजीका जीवन और कार्य इस बातकी साक्षी देते हैं कि प्रभुपर विश्वास रखकर पूर्ण प्रयत्न करनेसे सफलता मिलती ही है। उनका आदेश है—'करो। करनेसे होता है। प्रयत्नको देव जानो। उसे अपने अंदर जाग्रत् कर लो।' श्रीरामकी उपासना और उनकी हनुमत्-साधनाका रहस्य भी यही है।

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ६७५ से आगे]

मैं चार बात सबकौ बतलाता हूँ—

सहनशीलता, निरहंकारिता, निरन्तर श्रीनाम-जप और 'श्रीभगवान् अवश्य मिलैंगे' ऐसा दृढ़ विश्वास।

(परमपूज्य श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज) या महा महावाक्य कूँ दिनमें कैऊवार सुनते।

माया कौ प्रधान काम है—जीव कूँ लक्ष्य सौं भ्रष्ट करनौं।

श्रीसद्गुरु, संत और इष्टमें प्रगाढ़ आत्मीयता ही या पथकी कुंजी है। यासौं यह पथ अतिसुगम, सरस और मधुर बनि जाय है तथा शीघ्र प्रेम-प्राप्तिमें सहायक होय है। अन्तमें यही प्रेम बनि जाय है। ये तौ मेरे हैं हीं और मैं आयौ हूँ केवल इनके ताँईं हीं।

ब्रजके एक सुप्रसिद्ध, परम तपस्वी, महात्यागी, परम वीतराग श्रीसंतजी कूँ वृद्धावस्थामें रोगग्रस्त स्थितिमें देखिवे कूँ कलकत्ताके एक सुप्रसिद्ध वैद्य आये। श्रीसंतजीकी स्थिति कूँ देखिकैं वैद्यजीने बताया कि 'बाबा कूँ ऐसौ कोई रोग नहीं है कि जाकौ उपचार कियौ जाय सकै। वैराग्यके कारण इन्द्रियाँ शिथिल परि गयी हैं। अब काम करनौं बंद करि दियौ है'। हमें ऐसे वैराग्यकी आवश्यकता नहीं है। त्याग, वैराग्य कूँ उतने ही अंशमें स्वीकारनौं है, जितनौं साधनोपयोगी जीवनमें सहायक होय। साधनोपयोगी खूब खायलें, पीलें, सोयलें। शरीर कूँ न कसिकैं, मन कूँ ही कसैं। जासौं वृद्धावस्थामें हू शरीर भजन-साधन करतौ रहै। ऐसे बहुत देखे, जिननें शरीर कूँ अधिक कस्यौ, तौ वृद्धावस्थामें आयकें उनकूँ शरीरने धोखौ दै दियौ। उद्देश्य है, जीवनकी अन्तिम स्वाँसतक भजन-साधन करते-करते जीनौं और भजन-साधन करते-करते मरनौं। या कारण साधनोपयोगी आहार-विहारमें कमी न राखै—'युक्ताहार-विहारस्य…।' (गीता ६। १७)

यह संसार प्रियतमकी स्वयंकी अपनी रचना है। अपने करकमलन सौं इननें रच्यौ है। यामें हमें गंदगी करिवेकौ कोई अधिकार नहीं है। गंदगी कैसी? लड़ाई, क्रोध, विरोध, अशान्ति, राग-द्वेष, आसक्ति आदि। यामें मछलीकी भाँति जीवन व्यतीत करनौं है, सूअरकी भाँति नहीं। मछली जहाँ कहूँ रहै है, वहाँ शुद्ध जलमें ही रहै है तथा अशुद्ध कूँ शुद्ध बनाय कैं ही रहै है और सूअर जबतक बामें कीच नहीं उठाय लेय है, तबतक बामें बाकूँ आनन्द नहीं आवै है। ऐसैं ही संतजन जहाँ रहैं हैं, वहाँके वातावरण कूँ सतयुगी बनाय कैं हीं रहैं हैं। स्वयं आनन्दमें रहैं हैं और आस-पासके जीवन कूँ हूँ आनन्दमें ही राखैं हैं।

श्रीभगवत्प्रेम-रस या आत्मबोध सौं भर्‌यौ भयौ एक घट उपस्थित है। जो मानौं साधककौ हृदय ही है। जब साधक याकूँ अपने श्रीसद्गुरु-भगवान्में दृढ़तम श्रीभगवत्-भाव बनाय कैं, उनकी आज्ञा सौं, पूरी प्रीति, प्रतीति और सुरीति सौं, एकनिष्ठ है कैं, अपने जीवन-सर्वस्व प्रभुको नाम और चिन्तनरूपी धारान सौं निरन्तर भरिवे लगै है, तब समस्त विकार साधकके प्रियतमके प्रेम-रस सौं भरे भये हृदयरूपी घट कूँ सब ओर सौं फोरिबेकी ताकमें लगे रहैं हैं। जा क्षण साधक अपने कूँ स्वतन्त्र मानि बैठै है अथवा अपनी साधनाकौं अहंकार करि बैठै है, वाही क्षण इन समस्त बिकाररूपी डाकूँन कूँ अवसर मिलि जाय है और एक संग साधकके हृदयरूपी घट कूँ सब ओर सौं छिद्र करिकैं, भीतर भरे भये अमूल्य प्रेमरस कूँ मल-मूत्र (संसारी विषय-वासना)-में मिलाय देयँ हैं। जासौं हृदय फिर काहू काम कौ नहीं रहै है अर्थात् साधककी समस्त आध्यात्मिक पूँजी कूँ लूटि लै जायँ हैं और बाकूँ कंगाल बनाय देयँ हैं।

यासौं साधक कूँ प्रतिक्षण यह देखते रहनौं चहिये कि

अपने महदाश्रयमें कमी तो नायँ आय रही। अध्यात्म हृदयकी वस्तु है, जितनौं हृदय कोमल और पवित्र होयगौ, उतनौं ही साधक प्रियतमके समीप होयगौ। मल-मूत्र और बिकारन सौं निर्मित या मानव-देहमें केवल हृदय ही तौ एक ऐसी वस्तु है, जो प्रियतमके काम आय सकै है तथा इनकूँ भेंट करी जायँ सकै है। या कारण साधककौ परम कर्तव्य होय है कि भले ही प्राण चले जायँ, परंतु प्रियतमकी वस्तु पै आँच न आय जाय। कोई माया-राज्यकी वस्तु याकौ स्पर्श हू न करि जाय अर्थात् कोई विकार-वासना याकी छायाकौ हू स्पर्श न करि जाय। केवल अपने जीवन-सर्वस्व कूँ सौपि कैं ही, तब चैनकी साँस लेय—

दास कबीर जतन सों ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया॥

उपर्युक्त समस्त विवेचनाकौ सार यही है कि हृदयरूपी अमूल्य धरोहरकी काहू प्रकार सौं विकृति न होन पावै और साथ ही अपने श्रीसद्गुरु-भगवान्के आज्ञारूपी ब्रह्मास्त्र सौं, विकारन सौं रक्षा करिकैं अपने श्रीप्राण-प्रियतम कूँ सौपि दे। तब ही अपनी ईमानदारी मानी जायगी। अन्यथा तौ पक्के बेईमान हैं।

प्रसंग चल्यौ श्रीसुग्रीवजी और श्रीविभीषणजी पै— ये प्रभुकी शरणमें आये—कामना लैकैं। एक कूँ राज्य-तिलक करि दियौ और एक कूँ राज्य दै ही दियौ। अब समुद्र पार करिकैं सुवेल शिखर पै पौढ़े हैं। श्रीचरणनमें हैं श्रीअंगदजी और श्रीहनुमान्‌जी। एक ओर बैठे हैं श्रीसुग्रीवजी और दूसरी ओर हैं श्रीविभीषणजी। विचार करि रहे हैं कि कल सौं युद्ध हौनौं हैं। इनकी परीक्षा तौ लैलैं? तब चन्द्रमाकी श्यामता सौं वहाँ प्रभुने सबकी परीक्षा लई।

जब श्रीअयोध्यामें राजगद्दीके पीछैं सबकी विदाई करी, तब एकहु कूँ अपने पास नहीं राख्यौ। नित्य सेवा हाथ परी, तौ केवल श्रीहनुमान्‌जीके। क्यौं? कोई कामना लैकैं नहीं आये। इनके अन्तःकरणमें श्रीप्राणनाथकौ ही नित्य निवास रहै है। जगज्जननी श्रीजानकी तौ अपनौं जेष्ठ पुत्र ही मानैं हैं।

याद राखौ—यदि हमारे अन्तरमें इनके अतिरिक्त और कोई कामना छिपी है तौ हम इनकी सेवा और इनकौ सांनिध्य पायवेके अधिकारी नहीं हैं।

दूसरौ प्रसंग है राजा प्रतापभानु कौ।'' कि—

करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥

(रा०च०मा० १।१५६।२)

यहाँतक कि जो कछु करतौ केवल प्रभुके ताँईं ही। किंतु पोल खुली तब, जब वनमें कपटी मुनि सौं भेंट भई। अन्तरमें छुपी भई कामना अवसर पायकैं उभरि आयी और माँगि बैठे—

एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥

(रा०च०मा० १।१६४)

परिणामका भयौ, राक्षस होनौं पर्‌यौ। यदि अन्तरमें कछु और बाहरमें कछु और तौ याद राखौ—कामना एक दिन अवसर पायकैं तुम्हैं धोखौ देगी, ऐसौ पटकैगी कि तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर, लोक-परलोक सब स्वाहा है जायँगे। काहू कामके नहीं रहौगे।

श्रीभगवान् जब काहू कूँ दर्शन देयँ हैं तौ कहैं हैं कि— **'वरं ब्रूहि!'** तब पतौ चलै है कि यह कितने पानीमें है? वा समय सब छुपी भई वस्तु सामने आय जाय है। प्रभु तौ जरैला हैं। भक्तके हृदयमें अपने अतिरिक्त ये काहू दूसरे कूँ देखि नहीं सकैं हैं। इनके सामने ज्ञान, वैराग्यतक कूँ हाथ जोरि दैनौं परै है। ये देखैं हैं कि जीव का चाहै है? मोकूँ चाहै है या मेरे अतिरिक्त कछु और चाहै है। ऐसे प्रभु कूँ श्रीप्रह्लादजीके सम्मुख ठोडीमें हाथ डारि कैं कहनो पर्‌यो कि मेरी लाज राखि दै। कछु माँगि लै। वा समय श्रीप्रह्लादजीके शब्द हैं कि बड़े दानी बनि रहे हौ। नायँ मानौ तौ दै देउ कि—'मेरे मनमें, कैसी हू परिस्थितिमें, काहू जन्ममें, कबहूँ, कोई कामनाकौ अंकुरतक न उठै **और दूसरी बात**—मेरे पिताकौ उद्धार है जाय। कितनी यातना सहीं? कितने कष्ट सहे? परंतु कबहूँ क्रोध नहीं कियौ, काहू सौं विरोध नहीं कियौ। ये है सार या पथ कौ। ताकौ परिणाम कि भक्तनकी गणनामें शिरोमणिकी पदवी प्राप्त भई।'

याद राखौ—जब-जब कामना उठै, तब-ही-तब रोऔ, व्रत करौ, मचलौ कि—आपके अतिरिक्त मेरे हृदयमें ये आयी कहाँ सौं? ये आयी ही कैसैं? और फिर सावधान रहौ कि कोई कामना आवै ही नहीं। **[क्रमशः]**

कीटसे ब्रह्मपदतककी यात्रा

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें अमानवीय कृत्योंका विकराल अट्टहास अपने साथ अनेक शंकाओंको जन्म दे रहा है। महाभारतके अनुशासनपर्वपर आधारित यह लघु आख्यान अनेक शंकाओंका समाधान प्रस्तुत करता है—

कर्म-सिद्धान्तके अनुसार प्राणीके जीवनमें कोई भी अचिन्त्य घटना घट सकती है। ब्रह्मस्वरूप विप्रवर कृष्णद्वैपायन कहीं जा रहे थे। अनायास उनकी दृष्टि एक कीटपर पड़ी, जो गाड़ीकी लीकपर द्रुत गतिसे भाग रहा था। सम्पूर्ण प्राणियोंकी भाषाका ज्ञान रखनेवाले व्यासजीने उस कीटको रोककर पूछा—'तुम इतने उतावले और भयभीत होकर कहाँ भागे जा रहे हो? तुम्हें किसका भय है?' घबराये हुए उस कीटने आर्त स्वरमें कहा—'महामते! वह जो बैलगाड़ी आ रही है, उसकी भयंकर गड़गड़ाहट मैं स्पष्ट सुन रहा हूँ! देखिये न, बैलोंपर चाबुककी मार पड़नेसे भारी बोझके कारण वे हाँफते हुए निकट ही आ रहे हैं। मैं तो गाड़ीपर बैठे मनुष्योंके भी नाना प्रकारके वार्तालाप सुन रहा हूँ। अपने प्राणोंपर आनेवाले दारुण भयने मेरे हृदयमें खेद उत्पन्न कर दिया है। प्राणिमात्रके लिये मृत्युसे बढ़कर और कोई दु:खदायी अवसर नहीं होता, यह अक्षुण्ण सत्य है। कहीं ऐसा न हो कि मैं सुखके स्थानपर दु:खमें पड़ जाऊँ!'

कीटके इन वचनोंको सुनकर महामुनि व्यासजीने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा—'क्या कहा तुमने? सुख! तुम्हें सुख कहाँ है? इस तिर्यक् अधम कीटयोनिमें शब्द-स्पर्श-रस-गन्ध-जैसे भोगोंसे वञ्चित तुम्हारा तो मर जाना ही श्रेयस्कर है।'

मर्मभरी वाणीमें कीटने कहा—'ऐसा न कहिये प्रभो! मुझे इसी योनिमें सुख मिल रहा है। मैं जीवित रहना चाहता हूँ। इस शरीरमें उपलब्ध भोगोंसे ही मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ। मैं पूर्वजन्ममें एक धनी शूद्र था। ब्राह्मणोंके प्रति मेरे मनमें आदरका भाव न था, मैं कंजूस, क्रूर और ब्याजखोर था। सबसे तीखे वचन बोलना, लोगोंको ठगना, झूठ बोलकर धोखा देना, दूसरेके धनको हड़प लेना मेरा स्वभाव बन गया था। मैं अतिथियोंको बिना भोजन कराये अकेले ही भोजन कर लेता था। दूसरेकी समृद्धि देखकर ईर्ष्यावश जलता रहता था, दूसरेके अच्छे कामोंमें बाधा डालता था, इस प्रकार मैं बड़ा ही निर्दयी और धूर्त था पर मैंने उस जन्ममें केवल अपनी बूढ़ी माताकी सेवा की तथा एक दिन अनायास घर आये अतिथिका सत्कार किया था। उसी पुण्यके प्रभावसे मुझे पूर्वजन्मकी स्मृति अभीतक बनी है। तपोधन! क्या मुझे किसी शुभ कर्मद्वारा सद्गति प्राप्त हो सकती है?'

'क्षुद्रजीव! संतोंके दर्शनसे ही पुण्यकी प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि वे तीर्थरूप होते हैं; तीर्थ सेवनका फल तो यथाकाल होता है। किंतु संतोंके दर्शनसे तत्काल ही फल मिलता है। अत: मेरे दर्शनमात्रसे तुम्हारा उद्धार हो गया समझो—'**अहं त्वां दर्शनादेव तारयामि तपोबलम्।**' (महा०, अनु० ११८। २)

अगर तुम्हें अपने कियेपर पश्चात्ताप हो रहा है तो नि:संदेह तुम्हें इस योनिसे मुक्ति मिल जायगी, तुम शीघ्र ही मानवयोनिमें उत्पन्न होओगे।'

व्यासजीके इन वचनोंको आज्ञास्वरूप शिरोधार्य कर वह बीच मार्गमें ही पड़ा रहा। छकड़ेके विशाल पहियेके नीचे दबकर उसने प्राण त्याग दिये! जीवनमें मृत्यु ही एकमात्र गूढ एवं प्रत्यक्ष सत्य है।

तत्पश्चात् वह कीट क्रमश: शाही, गोधा, सूअर, मृग, पक्षी, चाण्डाल आदि योनियोंको भोगता हुआ राजपरिवारमें राजकुमारके रूपमें उत्पन्न हुआ। इस योनिमें पुन: व्यासजीकी उससे भेंट हुई। पूर्वजन्मकी स्मृतिके फलस्वरूप वह ऋषिके चरणोंमें गिरकर बोला—'भगवन्! आपकी अनुकम्पासे मैं तुच्छ कीटसे राजकुमार हो गया हूँ। अब मेरे लिये सभी प्रकारके सुख-साधन उपलब्ध हैं। अब मुझे वह स्थान मिल गया है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है।'

'ऊँट और खच्चरोंसे जुती हुई गाड़ियाँ मुझे ढोती हैं। मैं भाई-बन्धुओं और अपने मन्त्रियोंके साथ मांस-भक्षण करता हूँ। महाप्राज्ञ! आपको नमस्कार है। मुझे आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करूँ।'

राजकुमारसे इस प्रकारके वचन सुनकर दीर्घ नि:श्वास लेते हुए व्यासजीने कहा—'राजन्! अभीतक कीटयोनिके घृणित व्यवहार तुम्हारी वासनासे चिपके हैं। तुम्हारे पूर्व-जन्मोंके पाप-संचय अभी सर्वथा नष्ट नहीं हुए हैं। तुमने मांस-भक्षणकी निन्दनीय प्रवृत्ति अभी छोड़ी नहीं है।'

इन प्रेरणादायी वचनोंको सुनकर राजकुमार वनमें जाकर उग्र तपस्यामें लीन हो गया, जिसके प्रभावसे वह अगले जन्ममें ब्रह्मवेत्ताओंके श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होकर ब्रह्मपद पानेमें समर्थ हुआ।

कीटने स्वधर्मका पालन किया था, उसीके फलस्वरूप उसने सनातन ब्रह्मपद प्राप्त कर लिया। उत्तम कर्म करनेवाला उत्तम योनिमें और नीच कर्म करनेवाला पापयोनिमें जन्म लेता है। मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसीके अनुसार उसे फल भोगना पड़ता है। इसलिये उत्तम धर्मका ही सर्वदा आचरण करना चाहिये।
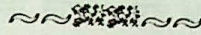
पाथेय

जीवनोपयोगी सूत्र

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

जिसने अपनेमें अपना कुछ नहीं रखा, उसने सब कुछ कर लिया। जो उन (भगवान्)-की प्रीति पा गया, वह सब कुछ हो गया। जिन्होंने उनसे भिन्नकी सत्ताको स्वीकार ही नहीं किया, उन्होंने सब कुछ जान लिया। जिनका चित्त करुणा और प्रसन्नतासे भरपूर है, उन्हें फिर और कुछ करना शेष नहीं है।

× × ×

सत्-असत्—समस्त विश्व प्रीति और प्रीतमका ही चमत्कार है। तभी तो प्रत्येक वस्तु किसीकी ओर दौड़ रही है अथवा यों कहो कि अपना वेष बदलकर अपने प्यारेको लाड़ लड़ा रही है। जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्रकी ओर गतिशील हैं, उसी प्रकार समस्त विश्व उस अनन्तकी ओर गतिशील है। पर यह अनुभव उन्हींको होता है, जिनकी विवेक-दृष्टि प्रीतिमें विलीन होकर प्रीति हो गयी है अर्थात् प्रीति-निर्मित दृष्टिसे ही सर्वत्र-सर्वदा प्रीतमका ही दर्शन होता है। जहाँ-जहाँ दृष्टि पड़े वहीं-वहीं प्रियतम दिखायी देते हैं।

× × ×

जो कुछ स्वतः हो रहा है, उसे देख-देखकर उनकी महिमाका दर्शन करो और उनकी अनुपम रचना तथा कारीगरीपर मुग्ध होते रहो—वे स्वयं ही अनेक रूपोंमें प्रकट हुए हैं। तुम उन्हें पहचान लिया करो। तुम्हारी प्रसन्नताके लिये ही वे नाना वेष धारणकर तुम्हारे सामने आते हैं। तुम्हें वीतराग बनानेके लिये वे भयंकर दुःखका वेष धारण करते हैं। तुम उनकी नित-नव प्रीति हो। देहका वेष धारणकर विद्यमान रागकी निवृत्तिके लिये कर्तव्य-परायणताका खेल करते रहो। तुम्हारे अनेक खेल देखकर उन्हें प्रसन्नता होगी। ज्यों-ज्यों रागकी निवृत्ति होती जायगी, त्यों-त्यों अनुरागकी वृद्धि स्वतः होने लगेगी।

× × ×

तुम देह नहीं हो। अतः देहके कर्म-धर्मको अपना कर्म-धर्म न मानो। बेचारी देह तो विश्वरूप सागरकी लहर है। उसे तो उसीकी सेवामें लगी रहने दो। तुम प्यारेकी प्रीति हो, देह नहीं। तुम्हारा प्रीतम तुम्हींमें छिपा है। उनसे देश-कालकी दूरी नहीं है। तुम देहसे तद्रूप होकर अपने प्यारेसे विमुख हो गये हो, दूर नहीं हुए हो। प्रत्येक प्रवृत्तिसे प्यारेकी पूजा करो। सभीमें उनकी सत्ता जानो और प्रीति होकर उन्हींको रस प्रदान करो। तुम रसमय हो। तुम्हारे प्रीतम तुमसे कभी भी दूर नहीं हैं। अब तुम कहोगे कि हम तो उन्हें नहीं जानते, न जाने वे कहाँ छिपे हैं? वे प्रीतिमें ही छिपे हैं। पर जबतक केवल प्रीति ही प्रीति नहीं रह जाती, तबतक वे अन्तर्धानसे रहते हैं। जब मन-इन्द्रिय आदि सभी अपने भौतिक स्वभावको त्यागकर प्रीतिसे अभिन्न हो जायँगे, तब वे स्वतः प्रकट हो जायँगे और फिर तुम अपनेमें ही उनको तथा उनमें ही अपनेको पाओगे अर्थात् प्रीति प्रीतमसे और प्रीतम प्रीतिसे अभिन्न हो जायँगे।

× × ×

प्रत्येक प्रवृत्तिद्वारा प्रियकी पूजा और प्रवृत्तिके अन्तमें स्वतः प्रियकी स्मृति होनी चाहिये। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंहीके द्वारा दिव्य चिन्मय प्रीति जाग्रत् करना है, जो तुम्हारा स्वरूप है।

× × ×

मूक-सत्संग (चुप-साधन) प्रत्येक प्रवृत्तिके अन्तमें स्वतः होना चाहिये। अचाह (अपने लिये कुछ न चाहना) और अप्रयत्न (अपने लिये कुछ न करना) ही मूक-सत्संगकी आधारभूमि है। शरीर तथा मनपर लेशमात्र भी जोर मत डालो। मूक-सत्संगसे स्वतः छिपी हुई शक्तिका विकास होता है। बलका सदुपयोग होनेपर जो स्वाभाविक विश्राम है, वह भी मूक-सत्संग है और अपने-आपको

अनन्तकी अहैतुकी कृपापर निर्भर कर देना भी मूक-सत्संग है और सब ओरसे विमुख होकर अपनेहीमें संतुष्ट हो जाना भी मूक-सत्संग है। मूक-सत्संगसे जिसे अभिन्नता होती है, वह देश-काल आदिकी दूरीसे रहित है। तुम जिसकी प्रीति हो, वह नित्य-प्राप्त है। इस दृष्टिसे तुम सर्वदा उसके साथ हो और वह तुमसे सदैव अभिन्न है।

× × ×

किसी भी कालमें कोई और है ही नहीं। सर्वरूपमें अपने ही प्रेमास्पद हैं। किसी औरका भास होना ही अपनी भूल है। इस भूलका अन्त शरणागत होते ही स्वतः हो जाता है। अपनेमें अपना करके कुछ नहीं है। सब कुछ उनका है। पर वे अपने हैं, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। अपनेकी अपनेको स्मृति स्वतःसिद्ध है।

× × ×

अपने लिये अपनेको कुछ भी नहीं करना है। समस्त प्रवृत्तिमें सेवा (पूजा) और निवृत्तिमें प्रीति स्वतःसिद्ध है। निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों ही मङ्गलमय विधानसे निर्मित हैं। अपना संकल्प मिटते ही सब कुछ स्वतः हो जाता है। अपने संकल्पने ही अपनेको अपनेसे विमुख किया है। अतः अपने सभी संकल्पोंको समर्पण कर अपनेमें अपनेकी स्थापना कर सब प्रकारसे निश्चिन्त तथा निर्भय हो जाना है। वे अपनी अहैतुकी कृपासे आपको अपनी अगाध प्रियता प्रदान करें। यही मेरी सद्भावना है।

× × ×

भूल-विनाशक प्यारे प्रभुकी अविचल आस्थामें सर्वतोमुखी विकास निहित है। पर यह रहस्य वे ही साधक जान पाते हैं, जिन्होंने वर्तमान वस्तुस्थितिका अध्ययनकर अपनी असमर्थता तथा भूलका अनुभव किया है। भूलजनित वेदना स्वतः भूल-विनाशकी आस्था प्रदान करती है। आस्था स्वतः श्रद्धा, विश्वास, आत्मीयता आदिके रूपमें परिणत हो साधकको साधन-तत्त्वसे अभिन्नकर, कृतकृत्य करनेमें समर्थ होती है। इस दृष्टिसे साधकके जीवनमें निराशा तथा असफलताके लिये कोई स्थान ही नहीं है। अतः सफलताके लिये नित-नव उत्साह तथा आकुलता बढ़ती रहे, जो एकमात्र अपनी असमर्थता और उनकी महत्तासे ही साध्य है। असमर्थ साधक बड़ी ही सुगमतापूर्वक सर्व-समर्थकी शरणागति प्राप्तकर निश्चिन्त तथा निर्भय हो जाता है। यह मङ्गलमय विधान है।

रामराज्यमें पर्यावरण-नीति

(श्रीबालकृष्णजी कुमावत, एम्० कॉम०, साहित्यरत्न)

'पर्यावरण' दो शब्दोंका संयोजन है—'परि' तथा 'आवरण'। 'परि' का आशय चारों ओर तथा 'आवरण' का ढकना या आच्छादन करना है। आकाश, वायु, जल, अग्नि एवं पृथ्वी—इन पाँचों तत्त्वोंकी विशुद्धि और पवित्रतासे सम्पूर्ण परिवेश परिशुद्ध हो जाता है और इनमें विकार आ जानेसे सारा वातावरण दूषित हो जाता है।

हमारी प्राचीन संस्कृति 'अरण्य-संस्कृति' या 'तपोवन-संस्कृति' के नामसे जानी जाती रही, पर आजके विकासवादसे उसका रूप प्रायः अस्तित्वविहीन-सा हो रहा है। जिस प्रकार शरीरमें वात-पित्त-कफका असंतुलन हमें रुग्ण कर देता है, उसी प्रकार भूमि, जल, वायु आदिमें असंतुलन होनेपर प्रत्येक जीव-जन्तु, पेड़-पौधे तथा मानवपर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित पर्यावरण अनेक संक्रामक रोगोंको जन्म देता है। इसे नियति न समझकर मानवद्वारा प्रसूत विकृति कहना अधिक ठीक होगा। इसके लिये सचेष्ट रहनेकी आवश्यकता है।

'श्रीरामचरितमानस' में गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने इस बातपर पर्याप्त प्रकाश डाला है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके सिंहासनपर आसीन होते ही सर्वत्र हर्ष व्याप्त हो गया, सारे भय-शोक दूर हो गये एवं दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे मुक्ति मिल गयी। इसका प्रमुख कारण यह है कि रामराज्यमें किसी भी प्रकारका प्रदूषण नहीं था। इसीलिये कोई भी अल्पमृत्यु, रोग-पीड़ासे ग्रस्त नहीं था, सभी स्वस्थ, बुद्धिमान्, साक्षर, गुणज्ञ, ज्ञानी तथा कृतज्ञ थे।

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥

(रा०च०मा० ७। २०। ७-८; २१। १, ५-६, ८; २१)

श्रीभरतजी रामराज्यके विलक्षण प्रभावका उल्लेख करते हुए कहते हैं—

राघव! आपके राज्यपर अभिषिक्त हुए एक माससे अधिक समय हो गया। तबसे सभी लोग नीरोग दिखायी देते हैं। बूढ़े प्राणियोंके पास भी मृत्यु नहीं फटकती है। स्त्रियाँ बिना कष्टके प्रसव करती हैं। सभी मनुष्योंके शरीर हृष्ट-पुष्ट दिखायी देते हैं। राजन्! पुरवासियोंमें बड़ा हर्ष छा रहा है। मेघ अमृतके समान जल गिराते हुए समयपर वर्षा करते हैं। हवा ऐसी चलती है कि इसका स्पर्श शीतल एवं सुखद जान पड़ता है। राजन्! नगर तथा जनपदके लोग इस पुरीमें कहते हैं कि हमारे लिये चिरकालतक ऐसे ही प्रभावशाली राजा रहें।[१]

पापसे पापीकी हानि ही नहीं होती अपितु वातावरण भी दूषित होता है, जिससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रामराज्यमें पापका अस्तित्व नहीं है, इसलिये दु:ख लेशमात्र भी नहीं है। पर्यावरणकी शुद्धि तथा उसके प्रबन्धनके लिये रामराज्यमें सभी आवश्यक व्यवस्थाएँ की जाती रहीं। वृक्षारोपण, बाग-बगीचे, फल-फूलवाले पौधे तथा सुगन्धित वाटिका लगानेमें सब लोग रुचि लेते थे। नगरके भीतर तथा बाहरका दृश्य 'मनोहारी था—

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं॥

(रा०च०मा० ७। २८। १-२)

बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं॥

रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥

(रा०च०मा० ७। २९। छं०; २९)

अर्थात् सभी लोगोंने विविध प्रकारके फूलोंकी वाटिकाएँ अनेक प्रकारके यत्न करके लगा रखी हैं। बहुत प्रकारकी सुहावनी ललित बेलें सदा वसन्तकी भाँति फूला करती हैं। नगरकी शोभाका जहाँ वर्णन नहीं किया जा सकता, वहाँ बाहर चारों ओरका दृश्य भी अत्यन्त रमणीय है। रामराज्यमें बावलियाँ और कूप जलसे भरे रहते थे, जलस्तर भी काफी ऊपर था। तालाब तथा कुओंकी सीढ़ियाँ भी सुन्दर और सुविधाजनक थीं। जल निर्मल था। अवधपुरीमें सूर्य-कुण्ड, विद्या-कुण्ड, सीता-कुण्ड, हनुमान्-कुण्ड, वसिष्ठ-कुण्ड, चक्रतीर्थ आदि तालाब थे; जो प्रदूषणसे पूर्णत: मुक्त थे। नगरके बाहर—अशोक, संतानक, मन्दार, पारिजात, चन्दन, चम्पक, प्रमोद, आम्र, पनस, कदम्ब एवं ताल-वृक्षोंसे सम्पन्न अनेक वन थे।

'गीतावली' में भी सुन्दर वनों-उपवनोंके मनोहारी दृश्यका वर्णन मिलता है—

बन उपबन नव किसलय, कुसुमित नाना रंग।
बोलत मधुर मुखर खग पिकबर, गुंजत भृंग॥

(उत्तरकाण्ड २१। ३)

अर्थात् अयोध्याके वन-उपवनोंमें नवीन पत्ते और कई रंगके पुष्प खिलते रहते थे, चहचहाते हुए पक्षी और सुन्दर कोकिल सुमधुर बोली बोलते और भौंरे गुंजार करते रहते थे।

रामराज्यमें जल अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध रहता था, दोषयुक्त नहीं। स्थान-स्थानपर पृथक्-पृथक् घाट बँधे हुए थे। कीचड़ कहीं भी नहीं होता था। पशुओंके उपयोगहेतु घाट नगरसे दूर बने हुए थे और पानी भरनेके घाट अलग थे, जहाँ कोई भी व्यक्ति स्नान नहीं करता था। नहानेके लिये राजघाट अलगसे थे, जहाँ चारों वर्णोंके लोग स्नान करते थे—

---

१. अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम्॥
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव। अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवा:॥
हर्षश्चाभ्यधिको राजञ्जनस्य पुरवासिन:। काले वर्षति पर्जन्य: पातयन्नमृतं पय:॥
वाताश्चापि प्रवान्त्येते स्पर्शयुक्ता: सुखा: शिवा:। ईदृशो नश्चिरं राजा भवेदिति नरेश्वर:॥
कथयन्ति पुरे राजन् पौरजानपदास्तथा। (वा०रा० ७। ४१। १८—२२)

उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर॥
दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥

(रा०च०मा० ७। २८; २९। १-२)

रामराज्यमें शीतल, मन्द तथा सुगन्धित वायु सदैव बहती रहती थी—

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर॥

(रा०च०मा० ७। २८। ३)

पक्षी-प्रेम रामराज्यमें अद्वितीय था। पक्षीके पैदा होते ही उसका पालन-पोषण किया जाता था। बचपनसे ही पालन करनेसे दोनों ओर प्रेम रहता था। बड़े होनेपर पक्षी उड़ते तो थे किंतु कहीं जाते नहीं थे। पक्षियोंको रामराज्यमें पढ़ाया और सुसंस्कारित किया जाता था—

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक॥

(रा०च०मा० ७। २८। ७)

रामराज्यकी बाजार-व्यवस्था भी अतुलनीय थी। राजद्वार, गली, चौराहे और बाजार स्वच्छ, आकर्षक तथा दीप्तिमान् रहते थे। विभिन्न वस्तुओंका व्यापार करनेवाले कुबेरके समान सम्पन्न थे। रामराज्यमें वस्तुओंका मोलभाव नहीं होता था। सभी दूकानदार सत्यवादी एवं ईमानदार थे—

बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।

(रा०च०मा० ७। २८)

रामराज्यमें तो यहाँतक ध्यान रखा जाता था कि जो पौधे चरित्र-निर्माणमें सहायक हैं, उनका रोपण अधिक किया जाना चाहिये। पर्यावरण-विशेषज्ञों तथा आयुर्वेदशास्त्रकी मान्यता है कि तुलसीका पौधा जहाँ सभी प्रकारसे स्वास्थ्यके लिये उपयोगी है वहाँ चरित्र-निर्माणमें भी सहायक है। यही कारण है कि रामराज्यमें ऋषि-मुनि नदियोंके तथा तालाबोंके किनारे तुलसीके पौधे लगाते थे—

तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई॥

(रा०च०मा० ७। २९। ६)

रामराज्यमें सब लोग सत्साहित्यका अनुशीलन करते थे। चरित्रवान् और संस्कारवान् थे। सबके घरोंमें सुखद वातावरण था और सभी लोग शासनसे संतुष्ट थे। जहाँ राजा अपनी प्रजाका पालन पुत्रवत् करता हो वहाँका समाज निश्चित ही सदा प्रसन्न एवं समृद्ध रहता है। उन अवधपुरवासियोंकी सुख-सम्पदाका वर्णन हजार शेषजी भी नहीं कर सकते, जिनके राजा श्रीरामचन्द्रजी हैं—

सब कें गृह गृह होहिं पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥
अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥

(रा०च०मा० ७। २६। ७-८; २६)

इस प्रकार रामराज्यमें किसी भी प्रकारका दूषित परिवेश नहीं था। राजा तथा प्रजामें परस्पर अटूट स्नेह, सम्मान और सामञ्जस्य था। मनुष्योंमें जहाँ वैरभाव नहीं रहता वहाँ पशु-पक्षी भी अपने सहज वैरभावको त्याग देते हैं। हाथी और सिंह एक साथ रहते हैं—परस्पर प्रेम रखते हैं। वनमें पक्षियोंके अनेक झुण्ड निर्भय होकर विचरण करते हैं। उन्हें शिकारीका भय नहीं रहता। गौएँ कामधेनुकी तरह मनचाहा दूध देती हैं।

रामराज्यमें पृथ्वी सदा खेतीसे हरी-भरी रहती थी। चन्द्रमा उतनी ही शीतलता और सूर्य उतना ही ताप देते थे जितनी जरूरत होती थी। पर्वतोंने अनेक प्रकारकी मणियोंकी खानें प्रकट कर दी थीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल, स्वादिष्ठ और सुख देनेवाला जल बहाती थीं। जब जितनी जरूरत होती थी, मेघ उतना ही जल बरसाते थे—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥
लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥

(रा०च०मा० ७। २३। १—३, ५; २३)

रामराज्यका वर्णन करते हुए गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने सूत्ररूपमें यह संकेत दिया है कि समाजके पर्यावरण-संतुलन तथा पर्यावरण-प्रबन्धनमें शासक और प्रजाका संयुक्त उत्तरदायित्व होता है। दोनोंके परस्पर सहयोग, स्नेह, सम्मान, सौहार्द तथा सामञ्जस्यसे ही समाज एवं राष्ट्रको दोषमुक्त किया जा सकता है। पर्यावरण-चेतनाका शासक और प्रजा दोनोंमें पर्याप्त विकास होना चाहिये। राज्यकी व्यवस्थामें प्रजाका पूर्ण सहयोग हो और प्रजाकी सुख-सुविधाका शासक पूरा-पूरा ध्यान रखे—यही रामराज्यका संदेश है॥

विदुरनीति

पाँचवाँ अध्याय

[गताङ्क पृ०-सं० ६८१ से आगे]

विदुर उवाच

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।
वैचित्रवीर्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः॥ १॥
दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत्।
अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णतस्तथा॥ २॥
यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद्
यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम्।
स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमश्नुते
यश्चायाच्यं याचते कत्थते च॥ ३॥
यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं
यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति
यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र॥ ४॥
वध्वावहासं श्वशुरो मन्यते यो
वध्वा वसन्नभयो मानकामः।
परक्षेत्रे निर्वपति स्वबीजं
स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम्॥ ५॥
यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीति वादी
दत्त्वा च यः कत्थति याच्यमानः।
यश्चासतः सत्त्वमुपानयीत
एतान् नयन्ति निरयं पाशहस्ताः॥ ६॥
यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥ ७॥
जरा रूपं हरति धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा
क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः॥ ८॥

विदुरजी कहते हैं—राजेन्द्र! विचित्रवीर्यनन्दन! स्वायम्भुव मनुजीने कहा है कि नीचे लिखे सत्रह प्रकारके पुरुषोंको पाश हाथमें लिये यमराजके दूत नरकमें ले जाते हैं—जो आकाशपर मुष्टिसे प्रहार करता है, न झुकाये जा सकनेवाले वर्षाकालीन इन्द्रधनुषको झुकाना चाहता है, पकड़में न आनेवाली सूर्यकी किरणोंको पकड़नेका प्रयास करता है, शासनके अयोग्य पुरुषपर शासन करता है, मर्यादाका उल्लङ्घन करके संतुष्ट होता है, शत्रुकी सेवा करता है, रक्षणके अयोग्य स्त्रीकी रक्षा करनेका प्रयत्न करता तथा उसके द्वारा अपने कल्याणका अनुभव करता है, याचना करनेके अयोग्य पुरुषसे याचना करता है तथा आत्मप्रशंसा करता है, अच्छे कुलमें उत्पन्न होकर भी नीच कर्म करता है, दुर्बल होकर भी बलवान्से वैर बाँधता है, श्रद्धाहीनको उपदेश करता है, न चाहने योग्य (शास्त्रनिषिद्ध) वस्तुको चाहता है, श्वशुर होकर पुत्रवधूके साथ परिहास पसन्द करता है तथा पुत्रवधूसे एकान्तवास करके भी निर्भय होकर समाजमें अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, पर-स्त्रीमें अपने वीर्यका आधान करता है, आवश्यकतासे अधिक स्त्रीकी निन्दा करता है, किसीसे कोई वस्तु पाकर भी 'याद नहीं है', ऐसा कहकर उसे दबाना चाहता है, माँगनेपर दान देकर उसके लिये अपनी डींग हाँकता है और झूठको सही साबित करनेका प्रयास करता है॥ १—६॥ जो मनुष्य अपने साथ जैसा बर्ताव करे उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये—यही नीति-धर्म है। कपटका आचरण करनेवालेके साथ कपटपूर्ण बर्ताव करे और अच्छा बर्ताव करनेवालेके साथ साधु-भावसे ही बर्ताव करना चाहिये॥ ७॥ बुढ़ापा रूपका, आशा धैर्यका, मृत्यु प्राणोंका, असूया धर्माचरणका, काम लज्जाका, नीच पुरुषोंकी सेवा सदाचारका, क्रोध लक्ष्मीका और अभिमान सर्वस्वका ही नाश कर देता है॥ ८॥

धृतराष्ट्र उवाच

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना॥ ९॥

धृतराष्ट्रने कहा—जब सभी वेदोंमें पुरुषको सौ वर्षकी आयुवाला बताया गया है, तब वह किस कारणसे अपनी पूर्ण आयुको नहीं पाता?॥ ९॥

विदुर उवाच

अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्॥ १०॥

एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते॥ ११॥

विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत॥ १२॥

आदेशकृद् वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः।
एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः॥ १३॥

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः
शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान्॥ १४॥

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ १५॥

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्॥ १६॥

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥ १७॥

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि॥ १८॥

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥ १९॥

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन्
नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य
न रोचते तव वैचित्रवीर्य॥ २०॥

विदुरजी बोले—राजन्! आपका कल्याण हो। अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्यागका अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालनेकी चिन्ता और मित्रद्रोह—ये छः तीखी तलवारें देहधारियोंकी आयुको काटती हैं। ये ही मनुष्योंका वध करती हैं, मृत्यु नहीं॥ १०-११॥ भारत! जो अपने ऊपर विश्वास करनेवालेकी स्त्रीके साथ समागम करता है, जो गुरुस्त्रीगामी है, ब्राह्मण होकर शूद्रकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखता है, शराब पीता है तथा जो बड़ोंपर हुक्म चलानेवाला, दूसरोंकी जीविका नष्ट करनेवाला, ब्राह्मणोंको सेवाकार्यके लिये इधर-उधर भेजनेवाला और शरणागतकी हिंसा करनेवाला है—ये सब-के-सब ब्रह्महत्यारेके समान हैं; इनका सङ्ग हो जानेपर प्रायश्चित्त करे—यह वेदोंकी आज्ञा है॥ १२-१३॥ बड़ोंकी आज्ञा माननेवाला, नीतिज्ञ, दाता, यज्ञशेष अन्नका भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थकारी कार्योंसे दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान् स्वर्गगामी होता है॥ १४॥ राजन्! सदा प्रिय वचन बोलनेवाले मनुष्य तो सहजमें ही मिल सकते हैं, किंतु जो अप्रिय होता हुआ हितकारी हो, ऐसे वचनके वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं॥ १५॥ जो धर्मका आश्रय लेकर तथा स्वामीको प्रिय लगेगा या अप्रिय—इसका विचार छोड़कर अप्रिय होनेपर भी हितकी बात कहता है; उसीसे राजाको सच्ची सहायता मिलती है॥ १६॥ कुलकी रक्षाके लिये एक मनुष्यका, ग्रामकी रक्षाके लिये कुलका, देशकी रक्षाके लिये ग्रामका और आत्माके कल्याणके लिये सारी पृथ्वीका त्याग कर देना चाहिये॥ १७॥ आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करे, धनके द्वारा भी स्त्रीकी रक्षा करे और स्त्री एवं धन दोनोंके द्वारा सदा अपनी रक्षा करे॥ १८॥ पहलेके समयमें जूआ खेलना मनुष्योंमें वैर डालनेका कारण देखा गया है, अतः बुद्धिमान् मनुष्य हँसीके लिये भी जूआ न खेले॥ १९॥ प्रतीपनन्दन! विचित्रवीर्यकुमार! राजन्! मैंने जूएका खेल आरम्भ होते समय भी कहा था कि यह ठीक नहीं है, किंतु रोगीको जैसे दवा और पथ्य नहीं अच्छे लगते, उसी तरह मेरी वह बात भी आपको अच्छी नहीं लगी॥ २०॥

काकैरिमांश्चित्रबर्हान् मयूरान्
पराजयेथाः पाण्डवान् धार्तराष्ट्रैः।
हित्वा सिंहान् क्रोष्टुकान् गूहमानः
प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र॥ २१॥

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं
भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति
न चैनमापत्सु परित्यजन्ति॥ २२॥

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन
राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम्।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः
स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः॥ २३॥

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वा-
ण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम्।
संगृह्णीयादनुरूपान् सहायान्
सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि॥ २४॥

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः
सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः
शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः॥ २५॥

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः
प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी
त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः॥ २६॥

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं
सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं
दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम्॥ २७॥

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे
गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो
न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत॥ २८॥

न निह्नवं मन्त्रगतस्य गच्छेत्
संसृष्टमन्त्रस्य कुसङ्गतस्य।
न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति
सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात्॥ २९॥

नरेन्द्र! आप कौओंके समान अपने पुत्रोंके द्वारा विचित्र पङ्खवाले मोरोंके सदृश पाण्डवोंको पराजित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं; सिंहोंको छोड़कर सियारोंकी रक्षा कर रहे हैं; समय आनेपर आपको इसके लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा॥ २१॥ तात! जो स्वामी सदा हितसाधनमें लगे रहनेवाले अपने भक्त सेवकपर कभी क्रोध नहीं करता, उसपर भृत्यगण विश्वास करते हैं और उसे आपत्तिके समय भी नहीं छोड़ते॥ २२॥ सेवकोंकी जीविका बंद करके दूसरोंके राज्य और धनके अपहरणका प्रयत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि अपनी जीविका छिन जानेसे भोगोंसे वञ्चित होकर पहलेके प्रेमी मन्त्री भी उस समय विरोधी बन जाते हैं और राजाका परित्याग कर देते हैं॥ २३॥ पहले कर्तव्य, आय-व्यय और उचित वेतन आदिका निश्चय करके फिर सुयोग्य सहायकोंका संग्रह करे; क्योंकि कठिन-से-कठिन कार्य भी सहायकोंद्वारा साध्य होते हैं॥ २४॥ जो सेवक स्वामीके अभिप्रायको समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्योंको पूरा करता है, जो हितकी बात कहनेवाला, स्वामिभक्त, सज्जन और राजाकी शक्तिको जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर उसपर कृपा करनी चाहिये॥ २५॥ जो सेवक स्वामीके आज्ञा देनेपर उनकी बातका आदर नहीं करता, किसी काममें लगाये जानेपर इनकार कर जाता है, अपनी बुद्धिपर गर्व करने और प्रतिकूल बोलनेवाले उस भृत्यको शीघ्र ही त्याग देना चाहिये॥ २६॥ अहङ्काररहित, कायरताशून्य, शीघ्र काम पूरा करनेवाला, दयालु, शुद्धहृदय, दूसरोंके बहकावेमें न आनेवाला, नीरोग और उदार वचनवाला—इन आठ गुणोंसे युक्त मनुष्यको 'दूत' बनानेयोग्य बताया गया है॥ २७॥ सावधान मनुष्य विश्वास करके असमयमें कभी किसी दूसरे अविश्वस्त मनुष्यके घर न जाय, रातमें छिपकर चौराहेपर न खड़ा हो और राजा जिस स्त्रीको ग्रहण करना चाहता हो, उसे प्राप्त करनेका यत्न न करे॥ २८॥ दुष्ट सहायकोंवाला राजा जब बहुत लोगोंके साथ मन्त्रणासमितिमें बैठकर सलाह ले रहा हो, उस समय उसकी बातका खण्डन न करे; 'मैं तुमपर विश्वास नहीं करता' ऐसा भी न कहे, अपितु कोई युक्तिसङ्गत बहाना बनाकर वहाँसे हट जाय॥ २९॥

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः
पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा।
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव
व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते॥ ३०॥
अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥ ३१॥
एतान् गुणांस्तात महानुभावा-
नेको गुणः संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं
सर्वान् गुणानेष गुणो बिभर्ति॥ ३२॥
गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते
बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च
श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः॥ ३३॥
गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते
आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं
न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति॥ ३४॥
अकर्मशीलं च महाशनं च
लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम्।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेष-
मेतान् गृहे न प्रतिवासयेत॥ ३५॥
कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च
वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम्।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्न-
मेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत्॥ ३६॥
संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं
नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च।
विसृष्टरागं पटुमानिनं चा-
प्येतान् न सेवेत नराधमान् षट्॥ ३७॥
सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः।
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिद्ध्यतः॥ ३८॥
उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा
वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय काञ्चित्।
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा
अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत्॥ ३९॥

अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र, भाई, छोटे बच्चोंवाली विधवा, सैनिक और जिसका अधिकार छीन लिया गया हो, वह पुरुष—इन सबके साथ लेन-देनका व्यवहार न करे॥ ३०॥ ये आठ गुण पुरुषकी शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, शास्त्रज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, पराक्रम, अधिक न बोलनेका स्वभाव, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता॥ ३१॥ तात! एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणोंपर हठात् अधिकार कर लेता है। राजा जिस समय किसी मनुष्यका सत्कार करता है, उस समय यह गुण (राजसम्मान) उपर्युक्त सभी गुणोंसे बढ़कर शोभा पाता है॥ ३२॥ नित्य स्नान करनेवाले मनुष्यको बल, रूप, मधुर स्वर, उज्ज्वल वर्ण, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दरी स्त्रियाँ—ये दस लाभ प्राप्त होते हैं॥ ३३॥ थोड़ा भोजन करनेवालेको निम्नाङ्कित छः गुण प्राप्त होते हैं—आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं, उसकी संतान सुन्दर होती है तथा 'यह बहुत खानेवाला है' ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते॥ ३४॥ अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, सब लोगोंसे वैर करनेवाले, अधिक मायावी, क्रूर, देश-कालका ज्ञान न रखनेवाले और निन्दित वेष धारण करनेवाले मनुष्यको कभी अपने घरमें न ठहरने दे॥ ३५॥ बहुत दुःखी होनेपर भी कृपण, गाली बकनेवाले, मूर्ख, जंगलमें रहनेवाले, धूर्त, नीचसेवी, निर्दयी, वैर बाँधनेवाले और कृतघ्नसे कभी सहायताकी याचना नहीं करनी चाहिये॥ ३६॥ क्लेशप्रद कर्म करनेवाला, अत्यन्त प्रमादी, सदा असत्यभाषण करनेवाला, अस्थिर भक्तिवाला, स्नेहसे रहित, अपनेको चतुर माननेवाला—इन छः प्रकारके अधम पुरुषोंकी सेवा न करे॥ ३७॥ धनकी प्राप्ति सहायककी अपेक्षा रखती है और सहायक धनकी अपेक्षा रखते हैं। ये दोनों एक-दूसरेके आश्रित हैं, परस्परके सहयोग बिना इनकी सिद्धि नहीं होती॥ ३८॥ पुत्रोंको उत्पन्न कर उन्हें ऋणके भारसे मुक्त करके उनके लिये किसी जीविकाका प्रबन्ध कर दे, फिर कन्याओंका योग्य वरके साथ विवाह कर देनेके पश्चात् वनमें मुनिवृत्तिसे रहनेकी इच्छा करे॥ ३९॥

हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम्।
तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये॥ ४०॥

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च।
व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः॥ ४१॥

पश्य दोषान् पाण्डवैर्विग्रहे त्वं
यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः।
पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो
यशःप्रणाशो द्विषतां च हर्षः॥ ४२॥

भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्रकल्प
द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य।
उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः
श्वेतो ग्रहस्तिर्यगिवापतत् खे॥ ४३॥

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः।
पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम्॥ ४४॥

धार्तराष्ट्रा वनं राजन् व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः।
मा वनं छिन्धि सव्याघ्रं मा व्याघ्रान् नीनशन् वनात्॥ ४५॥

न स्याद्वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम्।
वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् रक्षति काननम्॥ ४६॥

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान्।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः॥ ४७॥

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्॥ ४८॥

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या॥ ४९॥

यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति॥ ५०॥

संनियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति॥ ५१॥

जो सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये हितकर और अपने लिये भी सुखद हो, उसे ईश्वरार्पणबुद्धिसे करे, सम्पूर्ण सिद्धियोंका यही मूल मन्त्र है॥ ४०॥ जिसमें बढ़नेकी शक्ति, प्रभाव, तेज, पराक्रम, उद्योग और निश्चय है, उसे अपनी जीविकाके नाशका भय कैसे हो सकता है?॥ ४१॥ पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेमें जो दोष हैं, उनपर दृष्टि डालिये, उनसे संग्राम छिड़ जानेपर इन्द्र आदि देवताओंको भी कष्ट ही उठाना पड़ेगा। इसके सिवा पुत्रोंके साथ वैर, नित्य उद्वेगपूर्ण जीवन, कीर्तिका नाश और शत्रुओंको आनन्द होगा॥ ४२॥ इन्द्रके समान पराक्रमी महाराज! आकाशमें तिरछा उदित हुआ धूमकेतु जैसे सारे संसारमें अशान्ति और उपद्रव खड़ा कर देता है, उसी तरह भीष्म, आप, द्रोणाचार्य और राजा युधिष्ठिरका बढ़ा हुआ कोप इस संसारका संहार कर सकता है॥ ४३॥ आपके सौ पुत्र, कर्ण और पाँच पाण्डव—ये सब मिलकर समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन कर सकते हैं॥ ४४॥ राजन्! आपके पुत्र वनके समान हैं और पाण्डव उसमें रहनेवाले व्याघ्र हैं। आप व्याघ्रोंसहित समस्त वनको नष्ट न कीजिये तथा वनसे उन व्याघ्रोंको दूर न भगाइये॥ ४५॥ व्याघ्रोंके बिना वनकी रक्षा नहीं हो सकती तथा वनके बिना व्याघ्र नहीं रह सकते; क्योंकि व्याघ्र वनकी रक्षा करते हैं और वन व्याघ्रोंकी॥ ४६॥ जिनका मन पापोंमें लगा रहता है, वे लोग दूसरोंके कल्याणमय गुणोंको जाननेकी वैसी इच्छा नहीं रखते, जैसी कि उनके अवगुणोंको जाननेकी रखते हैं॥ ४७॥ जो अर्थकी पूर्ण सिद्धि चाहता हो, उसे पहले धर्मका ही आचरण करना चाहिये, जैसे स्वर्गसे अमृत दूर नहीं होता, उसी प्रकार धर्मसे अर्थ अलग नहीं होता॥ ४८॥ जिसकी बुद्धि पापसे हटाकर कल्याणमें लगा दी गयी है, उसने संसारमें जो भी प्रकृति और विकृति है—उन सबको जान लिया है॥ ४९॥ जो समयानुसार धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी धर्म, अर्थ और कामको प्राप्त करता है॥ ५०॥ राजन्! जो क्रोध और हर्षके उठे हुए वेगको रोक लेता है और आपत्तिमें भी धैर्यको खो नहीं बैठता, वही राजलक्ष्मीका अधिकारी होता है॥ ५१॥

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते॥ ५२॥

अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः॥ ५३॥

यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम्।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम्॥ ५४॥

येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत।
यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते॥ ५५॥

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्॥ ५६॥

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति॥ ५७॥

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तो-
श्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममन्त्रा न च मङ्गलानि
नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः॥ ५८॥

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः॥ ५९॥

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु।
न चोपयुङ्क्ते तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः॥ ६०॥

स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते।
तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा॥ ६१॥

एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते॥ ६२॥

लताधर्मा त्वं सपुत्रः शालाः पाण्डुसुता मताः।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता॥ ६३॥

वनं राजंस्तव पुत्रोऽऽम्बिकेय
सिंहान् वने पाण्डवांस्तात विद्धि।
सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत्
सिंहा विनश्येयुर्ऋते वनेन॥ ६४॥

राजन्! आपका कल्याण हो, मनुष्योंमें सदा पाँच प्रकारका बल होता है, उसे सुनिये। जो बाहुबल नामक बल है, वह कनिष्ठ बल कहलाता है; मन्त्रीका मिलना दूसरा बल है; मनीषी लोग धनके लाभको तीसरा बल बताते हैं; और राजन्! जो बाप-दादोंसे प्राप्त हुआ मनुष्यका स्वाभाविक बल (कुटुम्बका बल) है, वह 'अभिजात' नामक चौथा बल है। भारत! जिससे इन सभी बलोंका संग्रह हो जाता है तथा जो सब बलोंमें श्रेष्ठ बल है, वह पाँचवाँ 'बुद्धिका बल' कहलाता है॥ ५२—५५॥ जो मनुष्यका बहुत बड़ा अपकार कर सकता है, उस पुरुषके साथ वैर ठानकर इस विश्वासपर निश्चिन्त न हो जाय कि मैं उससे दूर हूँ (वह मेरा कुछ नहीं कर सकता)॥ ५६॥ ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो स्त्री, राजा, साँप, पढ़े हुए पाठ, सामर्थ्यशाली व्यक्ति, शत्रु, भोग और आयुपर पूर्ण विश्वास कर सकता है?॥ ५७॥ जिसको बुद्धिके बाणसे मारा गया है, उस जीवके लिये न कोई वैद्य है, न दवा है, न होम है, न मन्त्र है, न कोई माङ्गलिक कार्य, न अथर्ववेदोक्त प्रयोग और न भलीभाँति सिद्ध जड़ी-बूटी ही है॥ ५८॥ भारत! मनुष्यको चाहिये कि वह साँप, अग्नि, सिंह और अपने कुलमें उत्पन्न व्यक्तिका अनादर न करे, क्योंकि ये सभी बड़े तेजस्वी होते हैं॥ ५९॥ संसारमें अग्नि एक महान् तेज है, वह काठमें छिपी रहती है; किंतु जबतक दूसरे लोग उसे प्रज्वलित न कर दें, तबतक वह उस काठको नहीं जलाती॥ ६०॥ वही अग्नि यदि काष्ठसे मथकर उद्दीप्त कर दी जाती है, तो वह अपने तेजसे उस काष्ठको, जंगलको तथा दूसरी वस्तुओंको भी जल्दी ही जला डालती है॥ ६१॥ इसी प्रकार अपने कुलमें उत्पन्न वे अग्निके समान तेजस्वी पाण्डव क्षमाभावसे युक्त और विकारशून्य हो काष्ठमें छिपी अग्निकी तरह शान्तभावसे स्थित हैं॥ ६२॥ अपने पुत्रोंसहित आप लताके समान हैं और पाण्डव महान् शालवृक्षके सदृश हैं, महान् वृक्षका आश्रय लिये बिना लता कभी बढ़ नहीं सकती॥ ६३॥ राजन्! अम्बिकानन्दन! आपके पुत्र एक वन हैं और पाण्डवोंको उसके भीतर रहनेवाले सिंह समझिये। तात! सिंहसे सूना हो जानेपर वन नष्ट हो जाता है और वनके बिना सिंह भी नष्ट हो जाते हैं॥ ६४॥ [क्रमशः]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

मानस-सिद्ध-मन्त्र

(एक रामायणप्रेमी)

मेरे स्वर्गवासी पिताजीने श्रीरामायणजीके १००८ पारायण किये थे। सब गाँववाले रात्रिके दस बजे जमा हो जाते थे और एक बजेतक रामायण सुनते थे। पिताजीकी पढ़नेकी शैली इतनी सुन्दर और आवाज इतनी तेज होती थी कि मुहल्लेभरकी स्त्रियाँ अपने-अपने घरोंमें ही मजेसे रामायण सुना करती थीं। पिताजी चौपाई पढ़ते समय कभी रो पड़ते और कभी हँसने भी लगते थे। मेरे पूज्य पिताजीने रामायणके सिवा कभी कोई दूसरी पुस्तक छूईतक नहीं। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा—'इस रामायणमें हिंदीकी चौपाइयाँ नहीं हैं, सिद्ध मन्त्र हैं!'

मैंने पूछा—सो कैसे?

पिताजी—एक बार अकबर बादशाहके पास सूरदासजी बैठे थे।

बादशाहने उनसे पूछा कि 'कविता आपकी श्रेष्ठ है या तुलसीदासजीकी?'

सूरदासजीने उत्तर दिया कि 'कविता मेरी श्रेष्ठ है।' बादशाहने पूछा कि 'तो क्या तुलसीदासजीकी कविता उत्तम नहीं है?' सूरदासजीने हँसकर कहा—'तुलसीदासजीने कविता नहीं बनायी है, हिंदीमें मन्त्र बना दिये हैं!'

मैं—किस कामके लिये कौन-सी चौपाई काम आती है।

पिताजी—यह प्रश्न मैंने पैंतालीस सालमें हल कर पाया है।

मैं—कैसे?

पिताजी—संत, योगी, विद्वान् और रामायणके प्रेमियोंकी सत्सङ्गतिसे और उनकी सेवासे मुझे उन सिद्ध चौपाइयोंका पता लगा है।

मैं—आपने कभी उनकी परीक्षा भी की थी?

पिताजी—मुझे अबतक इक्यावन प्रयोगोंके लिये ऐसी चौपाइयाँ मिली हैं, जो मन्त्रका काम करती हैं। परंतु ये ही सब नहीं हैं। इनके अतिरिक्त और भी मन्त्ररूपा चौपाइयाँ श्रीरामायणजीमें बहुत अधिक हैं।

मैं—आपने क्या इन सब चौपाइयोंकी स्वयं परीक्षा की है?

पिताजी—तीसकी परीक्षा मैंने स्वयं की है। बाकीकी परीक्षा मैंने अपने मित्रोंद्वारा करवायी है। सब सच्ची हैं।

मैं—तो क्या मन्त्रकी तरह मन्त्र-चौपाई भी सिद्ध करनी पड़ती है?

पिताजी—चौपाई-मन्त्रका विधान यह है कि रातमें दस बजेके बाद अष्टाङ्गहवनकी सामग्री और एक माला लेकर एकान्तमें बैठ जाना चाहिये। अपना मुख काशीजीकी ओर कर लेना चाहिये। एक बार चौपाई पढ़कर हवन करे और मालाका एक मनका पीछे करे। इस प्रकार एक सौ आठ बार मन्त्रोच्चारणके साथ हवन करता जाय। बस, मन्त्र सिद्ध हो गया। फिर जब जिस कार्यके लिये आवश्यकता हो, इनका श्रद्धापूर्वक जबतक कार्य सिद्ध न हो, नित्य जप करते रहना चाहिये।

मैं—ये रामायणी मन्त्र किस दिन पढ़ने चाहिये?

पिताजी—सातों दिन। रामायणके सात काण्ड हैं। अतः प्रतिदिन जप किया जा सकता है।

मैं—मुख काशीजीकी ओर ही क्यों?

पिताजी—काशीवासी शङ्करभगवान्ने रामायणकी चौपाइयोंको मन्त्रशक्ति प्रदान की है। अतः उनको साक्षी बनाकर इन्हें पढ़ना चाहिये।

मैं—अब आप पैंतालीस सालकी यह कमाई पैंतालीस मिनटमें मुझे सौंप दीजिये।

पिताजी—तुम लिख लोगे?

मैं—जी हाँ और 'कल्याण' में प्रकाशित कराऊँगा।

पिताजी—ठीक है। समस्त रामायणप्रेमियोंके सामने यह महाप्रसाद रख देना। विश्वासके साथ कोई भी व्यक्ति इनमेंसे चाहे जिस 'मन्त्र-चौपाई' से लाभ उठा सकता है। श्रद्धा-विश्वास होगा तो भगवान् शिवजी उसकी इच्छा अवश्य पूर्ण करेंगे।

× × ×

पिताजीने वे चौपाइयाँ लिखवा दीं। मैंने वह कागज रख लिया और आज 'कल्याण' द्वारा उसे प्रकाशित करवा रहा हूँ। इन चौपाइयोंसे लाभ उठानेवाले सज्जनोंको चाहिये

कि वे अपना अनुभव 'कल्याण-सम्पादक' गोरखपुरको लिख भेजें।

संस्कृतके मन्त्र कठिन होते हैं, इससे हर एकको उनके उच्चारणमें सुगमता नहीं होती। इसलिये जापकका मन उनमें पूरा नहीं लगता। साबर-मन्त्र रूखे और अंटसंट शब्दावलीसे भरे होते हैं। उनमें भी मन नहीं लगता; परंतु रामायणके ये मन्त्र सरल, सरस और सार्थक हैं। जापक इनमें तन्मय हो जाता है। इच्छाशक्ति तल्लीन हो जाती है। सुरतिमें निरति मिल जाती है और नियति बदल जाती है।

रक्षा-रेखा

मन्त्र सिद्ध करनेके लिये या किसी संकटपूर्ण जगहपर रात्रि व्यतीत करनेके लिये अपने चारों ओर रक्षाकी रेखा खींच लेनी चाहिये। लक्ष्मणजीने सीताजीकी कुटीके आसपास जो रक्षा-रेखा खींची थी, उसी लक्ष्यपर रक्षा-मन्त्र बनाया गया है। इसे एक सौ आठ आहुतिद्वारा सिद्ध कर लेना चाहिये—

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥

१-विपत्ति-नाशके लिये—

राजिवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुख दायक॥

२-संकट-नाशके लिये—

जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥
जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

३-कठिन क्लेश-नाशके लिये—

हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू॥

४-विघ्न-विनाशके लिये—

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥

५-खेद-नाशके लिये—

जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥

६-महामारी, हैजा और मरीका प्रभाव न पड़े इसके लिये—

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥

७-विविध रोगों तथा उपद्रवोंकी शान्तिके लिये—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

८-मस्तिष्ककी पीड़ा दूर करनेके लिये—

हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥

९-विष-नाशके लिये—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

१०-अकाल-मृत्यु-निवारणके लिये—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

११-भूतको भगानेके लिये—

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

१२-नजर झाड़नेके लिये—

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी॥

१३-खोयी हुई चीज पुनः प्राप्त करनेके लिये—

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥

१४-जीविका-प्राप्तिके लिये—

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥

१५-दरिद्रता दूर करनेके लिये—

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

१६-लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये—

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

१७-पुत्र-प्राप्तिके लिये—

प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान॥

१८-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये—

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं॥

१९-ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करनेके लिये—

साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥

२०-सब सुख-प्राप्तिके लिये—

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नई॥

२१-मनोरथ-सिद्धिके लिये—

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥

२२-कुशल-क्षेमके लिये—

भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥

२३-मुकदमा जीतनेके लिये—

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥

२४-शत्रुके सामने जाना हो, उस समयके लिये—

कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा॥

२५-शत्रुको मित्र बनानेके लिये—

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

२६-शत्रुता-नाशके लिये—

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

२७-शास्त्रार्थमें विजय पानेके लिये—

तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥

२८-विवाहके लिये—

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै॥

२९-यात्राकी सफलताके लिये—

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥

३०-परीक्षामें पास होनेके लिये—

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥

३१-आकर्षणके लिये—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

३२-स्नानसे पुण्य-लाभके लिये—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥

३३-निन्दा-निवृत्तिके लिये—

रामकृपाँ अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी॥

३४-विद्या-प्राप्तिके लिये—

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

३५-उत्सव होनेके लिये—

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥

३६-यज्ञोपवीत धारण करके उसे सुरक्षित रखनेके लिये—

जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥

३७-प्रेम बढ़ानेके लिये—

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

३८-कातरकी रक्षाके लिये—

मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥

३९-भगवत्स्मरण करते हुए आरामसे मरनेके लिये—

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥

४०-विचार शुद्ध करनेके लिये—

ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥

४१-संशय-निवृत्तिके लिये—

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥

४२-ईश्वरसे अपराध क्षमा करनेके लिये—

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥

४३-विरक्तिके लिये—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥

४४-ज्ञान-प्राप्तिके लिये—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

४५-भक्तिकी प्राप्तिके लिये—

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥

४६-श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न करनेके लिये—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

४७-मोक्ष-प्राप्तिके लिये—

सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा॥

४८-श्रीसीतारामजीके दर्शनके लिये—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥

४९-श्रीजानकीजीके दर्शनके लिये—

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की॥

५०-श्रीरामचन्द्रजीको वशमें करनेके लिये—

केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥

५१-सहज स्वरूप-दर्शनके लिये—

भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

अष्टाङ्ग-हवनकी सामग्री—

(१) चन्दनका बुरादा, (२) तिल, (३) शुद्ध घी, (४) शक्कर, (५) अगर, (६) तगर, (७) कपूर, (८) शुद्ध केशर, (९) नागरमोथा, (१०) पञ्चमेवा, (११) जौ और (१२) चावल।

आशा है कि हमारे पाठक उपर्युक्त चौपाई-मन्त्रोंकी सहायतासे अपने दुःखोंको दूर करेंगे।

गिरिधरकी कुण्डलियाँ

(डॉ० श्रीसत्येन्द्रजी चतुर्वेदी)

गिरिधररचित नीतिकी कुण्डलियाँ ग्राम-ग्राममें प्रसिद्ध हैं। अनपढ़ लोग भी दो-चार चरण जानते हैं। इनकी सर्वप्रियताका कारण है बिलकुल सीधी-सादी भाषामें तथ्यका कथन। घर-गृहस्थीके साधारण व्यवहार, लोक-व्यवहार आदिका बड़े स्पष्ट शब्दोंमें इन्होंने कथन किया है। यही स्पष्टता गिरिधरकी सर्वप्रियताका एकमात्र कारण है।

सुबोध लोकभाषामें लोक-व्यवहारकी नीति बतानेवाले कवियोंमें गिरिधर कविरायका विशिष्ट स्थान है। न केवल व्यावहारिक नीति, अपितु अध्यात्मज्ञानपरक कुण्डलियोंकी भी इन्होंने रचना की है, इनके द्वारा रचित कुण्डलियोंकी संख्या ४५६ मानी जाती है।

गिरिधरकी कुण्डलियाँ और अन्योक्तियाँ लोककी कण्ठहार हैं। इनमें सम्यक् जीवन-यापनके गुर, कण्टकाकीर्ण जीवन-यात्राको सफल बनानेके विधि-निषेध सटीक दृष्टान्तोंसहित लक्षित होते हैं। इनकी लोकनीतिपरक ये कुण्डलियाँ व्यक्तिको प्रमाद, स्खलन और जगत्-व्यवहारके कुचालोंके विरुद्ध सावधान करती हैं और उसे सत्पथका निर्देश भी करती हैं। जीवनमें क्या काम्य-अकाम्य, वाञ्छनीय-अवाञ्छनीय, श्रेयस्कर एवं त्याज्य है; गिरिधरकी कुण्डलियाँ इनकी निर्दर्शिका हैं। उदाहरणार्थ कुछ कुण्डलियाँ प्रस्तुत हैं—

साईं बैर न कीजिये, गुरु पंडित कवि यार।
बेटा बनिता पँवरिया, यज्ञ करावनहार॥
यज्ञ करावनहार राजमंत्री जो होई।
विप्र, परोसी, वैद्य आपको तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय, युगनते यह चलि आई।
इन तेरहसों तरह दिये बनि आवै साईं॥

इन तेरह लोगोंसे कभी वैर नहीं बाँधना चाहिये—गुरु, विद्वान्, कवि, संगी-साथी, पुत्र, पत्नी, द्वारपाल, यज्ञ करानेवाला पुरोहित, राजमन्त्री, ब्राह्मण, पड़ोसी, वैद्य और रसोई बनानेवाला।

संसार इतना खुदगर्ज, काम-से-काम रखनेवाला हो गया है कि यहाँ निष्काम-प्रेमके दर्शन कहीं नहीं होते, देखिये गिरिधरका मन्तव्य—

साईं सब संसारमें मतलबका व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठमें, तब लग ताको यार॥
तब लग ताको यार संगही सँगमें डोलैं।
पैसा रहा न पास यार मुखसे नहिं बोलैं॥
कह गिरिधर कविराय जगत यहि लेखा भाई।
बिनु बेगरजी प्रीति यार विरला कोई साईं॥

दुनियामें सारा व्यवहार मतलबका है। मित्र तभीतक साथ देता है और पीछे-पीछे घूमता है, जबतक उसका मतलब सधता है। पैसा पास न रहनेपर वह मुँहसे भी नहीं बोलता। दुनियाका यही नियम है। निःस्वार्थ प्रीति करनेवाला तो कोई बिरला ही देखा गया है।

जहाँ कुपात्र एवं अनधिकारीकी पूजा हो, वहाँका वास हितकारी नहीं; वहाँसे तत्काल प्रस्थान कर देना चाहिये—

साईं घोड़े आछतहि गदहन आयो राज।
कौआ लीजै हाथमें दूरि कीजिये बाज॥
दूरि कीजिये बाज राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिये कैद स्यार गजराज चढ़ायो॥
कह गिरिधर कविराय जहाँ यह बूझि बधाई।
तहाँ न कीजै भोर साँझ उठि चलिये साईं॥

क्या जमाना आया है कि घोड़ोंके होते हुए गधे राज कर रहे हैं। कौएको पाल लिया और बाजको निकाल बाहर कर दिया गया। सिंहको कैद कर लिया और सियारको हाथीपर सवार करा दिया गया। जहाँ ऐसी उलटी समझ हो, यानी अन्धेर हो, वहाँसे साँझ होते ही चल देना चाहिये।

जीवनमें जो बिना सोच-विचारके चाहे जो कुछ कर बैठता है, उसकी कैसी दुर्गति होती है—

बिना बिचारे जो करै, सो पीछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जगमें होत हँसाय॥
जगमें होत हँसाय चित्तमें चैन न पावै।
खान पान सन्मान राग रँग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जियमाहिं कियो जो बिना बिचारे॥

जो मनुष्य पहलेसे बिना विचार किये कोई काम कर बैठता है, उसे बादमें पछताना पड़ता है। वह अपना काम तो बिगाड़ ही लेता है, दुनिया भी उसपर हँसती है। चित्त बेचैन रहता है, खाना-पीना सुहाता नहीं और मन राग-रंगमें

लगानेपर भी नहीं लगता। बिना विचार किये कामका दुःख मनमें सदा सालता रहता है।

इसी तरह कविराय ऐसे लोगोंको भी चेताते हैं, जो आगे (भविष्य)-की ओर न देख अतीत-चिन्तनमें ही उलझे रहते हैं—

बीती ताहि बिसारि दे आगेकी सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहजमें, ताहीमें चित देइ॥
ताहीमें चित देइ बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसै न कोइ, चित्तमें खता न पावै॥
कह गिरिधर कविराय यहै करु मन परतीती।
आगेको सुख समुझि होइ बीती सो बीती॥

जो बीत चुका उसे भूल जाओ, आगे जो काम करना है, उसका ध्यान रखो। सहजभावसे जो बन पड़े, उसीमें अपना चित्त लगा दो। इससे तुम्हारे विरोधी तुमपर हँसेंगे नहीं और तुम्हारी कुछ हानि भी होनेकी नहीं। भरोसा रखो कि जो होना था, वह तो हो चुका, अब आगेका ध्यान रखना है।

जबतक कार्यसिद्धि न हो जाय, अपने मनकी योजना किसीको बतानी नहीं चाहिये, अपनी रणनीति उजागर नहीं करनी चाहिये। गिरिधरका सत्परामर्श है—

साईं अपने चित्तकी भूलि न कहिये कोइ।
तब लग मनमें राखिये, जब लग कारज होइ॥
जब लग कारज होइ भूलि कबहूँ नहिं कहिये।
दुरजन हँसै न कोय आप सियरे ह्वै रहिये॥
कह गिरिधर कविराय बात चतुरनकी ताईं।
करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साईं॥

अपने मनकी बात भूलकर भी नहीं कहनी चाहिये। जबतक काम पूरा न हो जाय, तबतक उसे मनमें ही रखना चाहिये। विरोधी भले ही हँसी उड़ाये, अपनेको तो शान्त ही रहना चाहिये। बखान करना बेकार है, तुम्हारी करनी तो खुद ही बता देगी। चतुरजनोंका यही स्वभाव है।

धनके सदुपयोगके बारेमें उनकी कितनी नेक एवं श्रेयस्कर सलाह है—

पानी बाढ़ो नावमें, घरमें बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥
यही सयानो काम रामको सुमिरण कीजै।
परस्वारथके काज शीश आगे धरि दीजै।
कह गिरिधर कविराय बड़ेनकी याही बानी।
चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी॥

सयानापन इसीमें है कि जब नावमें पानी भर गया हो और घरमें दौलत बढ़ गयी हो तो पानीको हाथसे बाहर उलीच देना चाहिये और दौलतको बाँट देना चाहिये, नहीं तो नाव डूब जायगी और स्वसुखाय दौलत भी नहीं बचेगी। ऐसी घड़ीमें रामको याद किया जाय और दूसरोंकी खातिर अपना सिर भी आगे रख दिया जाय। बड़ोंके स्वभावमें यही नीति होती है कि चाल नेक चली जाय और अपनी लाजको बचा लिया जाय।

इस प्रकार गिरिधर कविरायकी कुण्डलियाँ जीवनमें सफलता एवं सिद्धिके व्यवहारपरक नीति-सिद्धान्तोंको उजागर करती हैं। इनमें निहित शिक्षाएँ मानवके लिये हितकारी हैं।

एक प्रेरक प्रसंग

मलिक मुहम्मद जायसी (सन् १४७५—१५४२ ई०) भक्तिकालीन हिन्दी-साहित्यके महाकवि थे। वे निर्गुण भक्तिकी प्रेममार्गी शाखाके सूफी कवि थे। उन्होंने कई ग्रन्थोंकी रचना की। अवधी भाषामें लिखा हुआ उनका 'पद्मावत' नामक ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। उन्होंने जगत्के समस्त पदार्थोंको ईश्वरीय छायासे उद्भासित माना है। उनकी मान्यता थी कि इस सृष्टिमें जो भी रूप दिखायी देता है, वह परमात्माका ही है। परंतु दुर्भाग्यवश वे स्वयं कुरूप एवं एकाक्ष (काने) भी थे।

एक बार वे दिल्लीके तत्कालीन बादशाह शेरशाह सूरीसे मिलनेके लिये उनके दरबारमें गये। ज्यों ही वे दरबारमें पहुँचे, उनकी चाल-ढाल, रूप-रंग और कुरूपताको देखकर सारे दरबारी ठठाकर हँसने लगे। इस अप्रत्याशित ठहाकेको सुनकर उनके पाँव ठिठक गये। उन्होंने दरबारियोंपर एक विहंगम दृष्टि डाली और शान्तभावसे बोले—'किसपर हँस रहे हो, मुझपर या मुझे बनानेवालेपर?' उनके इस प्रश्नसे सभी दरबारी स्तब्ध रह गये। उनके सिर लज्जासे झुक गये।

महाकवि जायसीने अपने एक ही प्रश्नसे दरबारियोंको बता दिया कि किसीकी कुरूपतापर हँसना मनुष्यके निर्माता भगवान्पर ही हँसना है। उनके इस प्रश्नने सबको निरुत्तर कर दिया।

(डॉ० श्रीरामानन्दजी तोष्णीवाल, विशारद, एम्०ए०, एम्०फिल्०, पी-एच्०डी०)

नीतिके आख्यान— [१]

पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही सुख-दुःख प्राप्त होता है

किसी नगरमें सोमिलक नामका एक जुलाहा रहता था। वह राजाओंके पहनने योग्य सुन्दर वस्त्रोंके बुननेमें प्रवीण था, परंतु भोजन-वस्त्र आदिकी प्राप्तिसे अधिक धन नहीं जुटा पाता था; जबकि मोटा कपड़ा बुननेवाले मामूली जुलाहे सम्पन्न थे। इस कारण सोमिलकके मनमें विषाद रहता था। एक दिन उसने अपनी पत्नीसे कहा—'प्रिये! देखो, ये मामूली कपड़ा बनानेवाले कितने सम्पन्न हैं और सुन्दर, कलात्मक तथा मनोहर वस्त्रोंको बनाकर भी मैं विपन्न ही हूँ। इसीलिये मैं यहाँ रहकर व्यवसाय करना ठीक नहीं समझता हूँ, अब मैं अन्यत्र जाकर अपना व्यवसाय करूँगा।' इसपर उसकी पत्नीने उसे समझाते हुए कहा—स्वामिन्! धन एवं सुख तो भाग्यके अनुसार ही मिलते हैं और भाग्य पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार बनता है, इसलिये स्थान-परिवर्तनसे सुखकी आशा करना उचित नहीं। कहा भी गया है कि जो होनेवाला नहीं है, वह नहीं होता। जो होनेवाला है, वह बिना किसी यत्नके ही पूरा हो जाता है और जो नहीं प्राप्त होनेवाला है, वह हाथमें आकर भी नष्ट हो जाता है—

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनाऽपि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य हि भवितव्यता नास्ति॥

—इसलिये यहींपर रहकर व्यवसाय करें।

इसपर सोमिलकने कहा—प्रिये! तुमने भाग्यकी बात कही है, सो तो ठीक है। परंतु बिना उद्योग किये कर्म (भाग्य) भी फल नहीं देता। भोजनके समय पूर्वकर्मके कारण प्राप्त हुआ भी भोजन हाथकी चेष्टाके बिना मुखमें प्रविष्ट नहीं हो सकता। उद्योगी पुरुषसिंहको ही लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। कायर पुरुष ही दैव-दैव पुकारते हैं। दैवको छोड़कर शक्तिभर पुरुषार्थ करना चाहिये। यत्न करनेपर भी यदि सिद्धिकी प्राप्ति न हो तो समझना चाहिये कि यत्न करनेमें ही कोई त्रुटि रह गयी है। इसलिये पुनः-पुनः पूर्णरूपसे प्रयत्नशील होना चाहिये—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥

—देवि! कार्य उद्योगसे ही सफल होते हैं, केवल मनोरथोंसे नहीं, सोये हुए सिंहके मुखमें मृग प्रवेश नहीं करते। प्रयत्न किये बिना इच्छाओंकी सिद्धि भी नहीं होती। आलसी पुरुष ही भाग्यके भरोसे बैठे रहते हैं। इसलिये हे प्रिये! मैं परदेश जाकर धनोपार्जन करूँगा।

ऐसा निश्चयकर सोमिलक वर्धमानपुर जाकर अपना व्यवसाय करने लगा। वहाँ तीन वर्षमें तीन सौ सोनेकी मुहरें कमाकर वह अपने घरके लिये चला, पर सूर्यास्त होते-होते आधा रास्ता ही तय कर पाया। उस समय वह एक घने जंगलके बीचमें था, जो भयानक और हिंसक जंगली पशुओंका निवासस्थान था। उनसे बचनेके लिये वह बरगदके एक मोटे वृक्षपर चढ़कर विश्राम करने लगा और उसे नींद भी आ गयी। आधी रातको उसने स्वप्नमें दो भयंकर आकृतिवाले पुरुषोंकी बातचीत सुनी। उनमेंसे एक बोला—'हे कर्तः! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि इस सोमिलकके भाग्यमें खाने-पहननेसे अधिक सम्पत्ति नहीं है, फिर क्यों तुमने इसे तीन सौ सोनेकी मुहरें दे दीं?' इसपर दूसरेने उत्तर दिया—'हे कर्मन्! मैं उद्योगी पुरुषोंको उनके परिश्रमके अनुसार फल अवश्य दूँगा, पर इससे उन्हें सुख मिल पाना या न मिल पाना मेरा विषय नहीं है, यह तुम्हारे अधीन है।'

सोमिलककी नींद खुल गयी, स्वप्नकी बातोंका ध्यानकर उसने अपनी वह गठरी खोली, जिसमें उसने तीन सौ मुहरोंको बाँधा था। उसने देखा कि गठरी खाली पड़ी है और मुहरें गायब हैं। दुःखी हो अपने भाग्यको कोसता हुआ वह पुनः वर्धमानपुरको चल पड़ा। वहाँ एक वर्षतक कठोर परिश्रम करके उसने पाँच सौ सोनेकी मुहरें अर्जित कीं और अपने घरकी ओर चला। इस बार तेजीसे

चलते हुए उसने जंगल पार किया। रात हो जानेपर भी वह रुका नहीं, अपितु चलता ही रहा। रास्तेमें उसे पुनः वही दो पुरुष दिखायी दिये जिन्हें उसने स्वप्नमें देखा था। उनमेंसे एकने कहा—'हे कर्तः! तूने इसे पाँच सौ मुहरें क्यों दीं? क्या तुम्हें यह मालूम नहीं कि इसके भाग्यमें भोजन और वस्त्रके अलावा कुछ नहीं है।' इसपर दूसरेने उत्तर दिया—'हे कर्मन्! मुझे उद्योगी पुरुषोंको उनके परिश्रमका फल अवश्य ही देना है, अतः सोमिलकको पाँच सौ मुहरें देनेमें मेरा दोष नहीं है। हाँ, उस धनसे उसे कितना सुख मिलना है, यह निश्चित करना तुम्हारा काम है।' यह सुनकर जब सोमिलकने अपनी पोटली देखी तो फिर उसे खाली पाया। निराश होकर वह प्राण त्यागनेके लिये उद्यत हो गया। फाँसी लगाकर ज्यों ही उसने फन्दा खींचना चाहा त्यों ही कर्मन् (भाग्य-पुरुष) प्रकट होकर कहने लगा—सोमिलक! ऐसा दुःसाहसपूर्ण कार्य न करो; क्योंकि तुम्हारे भाग्यमें भोजन-वस्त्रसे अधिक कुछ नहीं है। तुम्हारा पूर्वजन्मका कर्म ही तुम्हारे आजके जीवनको प्रभावित कर रहा है।

नीतिशास्त्रमें कहा भी गया है—

यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पुराकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥

अर्थात् जिस प्रकार बछड़ा हजारों गायोंमें अपनी माताको पा लेता है। उसी प्रकार पूर्वजन्ममें किया हुआ कर्म करनेवालेके पीछे-पीछे जाता है।

इसलिये व्यक्तिको चाहिये कि वह सदा सत्कर्मोंका ही अनुष्ठान करे।

(पञ्चतन्त्र, मित्रसम्प्राप्तिः)

[२]

लोभसे विनाश

किसी गाँवमें हरिदत्त नामका एक ब्राह्मण रहता था। वह जीविकोपार्जनके लिये कृषिकार्य करता था, परंतु इसमें उसे कभी लाभ नहीं होता था। एक दिन दोपहरमें धूपसे पीड़ित होकर वह अपने खेतके पास स्थित एक वृक्षकी छायामें विश्राम कर रहा था। सहसा उसने देखा कि एक भयानक सर्प उसके पास ही वल्मीक (बाँबी)-से निकलकर फन फैलाये बैठा है। हरिदत्त आस्तिक और धर्मात्मा प्रकृतिका सज्जन व्यक्ति था। उसने विचार किया कि ये नागदेव अवश्य ही मेरे खेतके देवता हैं, मैंने कभी इनकी पूजा नहीं की, लगता है इसीलिये मुझे खेतीसे लाभ नहीं मिला। यह सोचकर वह वल्मीकके पास जाकर बोला—'हे क्षेत्ररक्षक नागदेव! मुझे अबतक मालूम नहीं था कि आप यहाँ रहते हैं, इसलिये मैंने कभी आपकी पूजा नहीं की, अब आप मेरी रक्षा करें।' ऐसा कहकर एक कसोरेमें दूध लाकर नागदेवताके लिये रखकर वह घर चला गया। प्रातःकाल खेतमें आनेपर उसने देखा कि कसोरेमें एक स्वर्णमुद्रा रखी हुई है। अब हरिदत्त प्रतिदिन नागदेवताको दूध पिलाता और बदलेमें उसे एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त होती। यह क्रम बहुत समयतक चलता रहा। हरिदत्तकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति बदल गयी थी। अब वह धनाढ्य हो गया था।

एक दिन हरिदत्तको किसी कार्यवश दूसरे ग्राम जाना था। अतः उसने नित्यप्रतिका यह कार्य अपने पुत्रको सौंप दिया। पुत्र हरिदत्तके विपरीत लालची और क्रूर स्वभावका था। वह दूध लेकर गया और सर्पकी बाँबीके पास रखकर लौट आया। दूसरे दिन जब कसोरा लेने गया तो उसने देखा कि उसमें एक स्वर्णमुद्रा रखी है। उसे देखकर उसके मनमें लालच आ गया। उसने सोचा कि इस बाँबीमें बहुत-सी स्वर्णमुद्राएँ हैं और यह सर्प उसका रक्षक है। यदि मैं इस सर्पको मारकर बाँबी खोदूँ तो मुझे सारी स्वर्णमुद्राएँ एक साथ मिल जायँगी। यह निश्चयकर उसने सर्पपर प्रहार किया, परंतु भाग्यवश सर्प बच गया एवं क्रोधित हो अपने विषैले दाँतोंसे उसने उसे काट लिया। इस प्रकार वह ब्राह्मणपुत्र लोभवश मृत्युको प्राप्त हुआ। अतः लोभ करना ठीक नहीं।

(पञ्चतन्त्र, काकोलूकीयम्)

विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र—

दया-नीतिके आदर्श

[१]

दयामूर्ति परोपकारी राजा

एक पुण्यात्मा राजाको किसी कारणसे देवदूत नरकके मार्गसे ले जाने लगे तो राजाके शरीरको छूकर आये हुए वायुके स्पर्शसे नरकोंकी भयानक यन्त्रणा भोगते हुए दीन-दुःखी आर्त प्राणियोंकी व्यथा दूर होने लगी और उन्होंने पुकार-पुकारकर राजासे ठहर जानेको कहा। तब राजा वहीं ठहर गये और देवदूतोंसे बोले—'भाई! मेरे शरीरको स्पर्श करनेवाले वायुसे यदि इन प्राणियोंको सुख पहुँचा हो तो मुझे वहीं ले चलो जहाँ ये आर्त प्राणी हैं। संसारमें वे ही सुकृती पुरुष हैं जो परहितके लिये पीड़ित रहते हैं। वे ही संत हैं जो दूसरोंके दुःख दूर करते हैं और दुःखीजनोंके पीड़ाविनाशके लिये अपने प्राणोंको तृणके समान समझते हैं। ऐसे परहित-निरत संतोंसे ही इस पृथ्वीका धारण हो रहा है, केवल अपने मनका सुख तो नरकके समान है। इस संसारमें आर्त प्राणियोंका दुःख नाश किये बिना यदि सुखकी प्राप्ति होती हो तो उसकी अपेक्षा मर जाना—नरकमें गिरना अच्छा है। जिसका मन संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी रक्षा करनेमें नहीं लगता—उसके यज्ञ, दान और तप इहलोक तथा परलोकमें भी कल्याणके साधक नहीं होते।'

इसपर देवदूतोंने कहा—'महाराज! आप बड़े पुण्यात्मा हैं। अभी आपको लेनेके लिये स्वयं धर्मराज और इन्द्र आ रहे हैं, आप उनके साथ चले चलिये।'

धर्मराजने आकर कहा—'राजन्! अब आप इस विमानपर शीघ्र चलिये।' राजा बोले—'यहाँ नरकमें हजारों प्राणी कष्ट भोग रहे हैं और मुझे लक्ष्य करके आर्तभावसे त्राहि-त्राहि पुकार रहे हैं, इन्हें छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा। आप मुझमें यदि बहुत पुण्य मानते हैं तो मेरा जो कुछ पुण्य है, उसके द्वारा ये यातनामें पड़े हुए सब पातकी प्राणी नरकसे छुटकारा पा जायँ।' (मार्कण्डेयपुराण १५। ७६)

इन्द्रने कहा—'राजन्! आपके इस पुण्यदानरूप उदार कर्मसे आपका पुण्य और बढ़ गया तथा आपने और भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया। देखिये, ये पापी जीव नरकसे मुक्त हो गये।' इसी समय राजापर पुष्पवृष्टि होने लगी और स्वयं भगवान् विष्णु उन्हें विमानमें बैठाकर दिव्य धाममें ले गये—'**विमानं चाधिरोप्यैनं स्वलोकमनयद्धरिः।**' और जितने भी पापी जीव थे, वे सब भी नरकयन्त्रणासे छूटकर चले गये। अस्तु—

न दयासदृशो धर्मो न दयासदृशं तपः।
न दयासदृशं दानं न दयासदृशः सखा॥
दुःखितानां हि भूतानां दुःखोद्धर्ता हि यो नरः।
स एव सुकृतिर्लोके ज्ञेयो नारायणांशजः॥
न स्वर्गे नापवर्गेऽपि तत्सुखं लभते नरः।
यदार्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमिति नो मतिः॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड ९८। १५, १७, २३)

दयाके समान न धर्म है, न दयाके समान तप है, न दयाके समान दान है और न दयाके समान कोई सखा है। जो मनुष्य दुःखी जीवोंका उद्धार करता है, वही संसारमें सुकृती—पुण्यात्मा है, उसको नारायणके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये। हमलोगोंकी ऐसी धारणा है कि मनुष्य आर्त प्राणियोंके दुःख दूर करनेपर वह सुख प्राप्त करता है, जिसके सामने स्वर्ग तथा मोक्षसम्बन्धी सुख कुछ भी नहीं है।

[२]

राजा भोजके राजकवि

गरमीके दिन थे, प्रचण्ड सूर्य अग्निवर्षा कर रहा था! पृथ्वी तप्त तवेके समान जल रही थी। राजा भोजके राजकवि ऐसी दोपहरीमें किसी आवश्यक कार्यसे पैदल ही निकल पड़े थे। धारा नगरीके राजपथपर घरकी ओर लौटते समय उन्होंने एक दुर्बल व्यक्तिको लड़खड़ाकर चलते देखा। उसके पैरोंमें छाले पड़ चुके थे। वह नंगे पैर चल रहा था। बार-बार दौड़नेका प्रयत्न कर रहा था।

कोमलहृदय कविसे यह देखा नहीं गया। वे उसके समीप गये और अपने पैरोंका जूता उन्होंने उसे दे दिया। राजकविका सुकुमार शरीर, कोमल चरण; किंतु अपने कष्टका उन्हें ध्यान ही नहीं आया।

उधरसे महावत राजाके हाथीको ला रहा था। महाकविको उसने देखा तो हाथीपर चढ़ा लिया। संयोगसे राजा भोज भी रथपर बैठे मार्गमें मिल गये। उन्होंने हँसीमें पूछा—'आपको! यह हाथी कैसे मिल गया?' कविने उत्तर दिया—

'राजन्! मैंने अपना पुराना, फटा जूता दान कर दिया, उस पुण्यसे हाथीपर बैठा हूँ। जो धन दान नहीं किया गया, उसे व्यर्थ समझो।' राजाने वह हाथी उन्हें दे दिया।

व्रतोत्सव-पर्व

आषाढ़ कृष्णपक्ष (२५-६-२००२ से १०-७-२००२ तक) सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	भौम	मूल	२५ जून	मूल नक्षत्र दिन १०-३३ बजेतक, प्रतिपदा तिथि रात्रि २-०१ बजेतक, मृत्युबाण रात्रि ३-५७ बजेसे
द्वितीया	बुध	पू०षा०	२६ ,,	मकरके चन्द्रमा सायं ५-०४ बजे, मृत्युबाण रात्रि शेष ५-०१ बजेतक
तृतीया	गुरु	उ०षा०	२७ ,,	यायिजययोग दिन ११-४१ बजेतक, भद्रा दिन २-०९ बजसे रात्रि २-२२ बजेतक
चतुर्थी	शुक्र	श्रवण	२८ ,,	कुम्भके चन्द्रमा रात्रि १-५६ बजे, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ९-५३ बजे, स्थायिजययोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग दिन १-०२ बजेतक, श्रवण नक्षत्र दिन १-०२ बजेतक, पञ्चक आरम्भ रात्रि १-५६ बजेसे
पञ्चमी	शनि	धनिष्ठा	२९ ,,	यायिजययोग दिन २-४९ बजेतक, धनिष्ठा नक्षत्र दिन २-४९ बजेतक, पञ्चमी तिथि रात्रि शेष ५-४० बजेतक
षष्ठी	रवि	शतभिषा	३० ,,	रवियोग सायं ५-०२ बजेसे, शतभिषा नक्षत्र सायं ५-०१ बजेतक
षष्ठी	सोम	पू०भा०	१ जुलाई	मीनके चन्द्रमा दिन १२-५१ बजे, रवियोग रात्रि ७-२९ बजेतक तदुपरि यायिजययोग, भद्रा प्रात: ६-२४ बजेसे रात्रि ७-२१ बजेतक, षष्ठी तिथि प्रात: ६-२३ बजेतक
सप्तमी	भौम	उ०भा०	२ ,,	यायिजययोग रात्रि १०-०६ बजेतक, सप्तमी तिथि दिन ८-२० बजेतक
अष्टमी	बुध	रेवती	३ ,,	मेषके चन्द्रमा रात्रि १२-४२ बजे, श्रीशीतलाष्टमीव्रत, शीतलाजीका दर्शन-पूजन एवं बासी भोजन करना, गुरुवार्द्धक्यारम्भ दिन ८-०३ बजे, रेवती नक्षत्र रात्रि १२-४२ बजेतक, पञ्चक समाप्त रात्रि १२-४२ बजे
नवमी	गुरु	अश्विनी	४ ,,	सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ३-०६ बजेतक, भद्रा रात्रि १-२० बजेसे
दशमी	शुक्र	भरणी	५ ,,	भद्रा दिन २-२१ बजेतक, मृत्युबाण दिन ३-३८ बजेसे, भरणी नक्षत्र रात्रि शेष ५-११ बजेतक, दशमी तिथि दिन २-२१ बजेतक
एकादशी	शनि	कृत्तिका	६ ,,	वृषके चन्द्रमा दिन ११-३६ बजे, योगिनी एकादशीव्रत (सबका), गुरु अस्त दिन ८-०३ बजे, पुनर्वसु नक्षत्रके सूर्य सायं ४-५७ बजे (सुवृष्टियोग), मृत्युबाण सायं ४-५७ बजेतक, त्रिपुष्करयोग दिन ३-१३ बजेसे
द्वादशी	रवि	कृत्तिका	७ ,,	कृत्तिका नक्षत्र प्रात: ६-५० बजेतक, त्रिपुष्करयोग प्रात: ६-५० बजेतक, प्रदोषव्रत, यायिजययोग सायं ४-०३ बजेसे
त्रयोदशी	सोम	रोहिणी	८ ,,	मिथुनके चन्द्रमा रात्रि ८-२२ बजे, मासशिवरात्रिव्रत, यायिजययोग दिन ८-०२ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग, भद्रा सायं ४-२० बजेसे रात्रि शेष ४-१५ बजेतक
चतुर्दशी	भौम	मृगशिरा	९ ,,	सर्वार्थसिद्धियोग दिन ८-४२ बजेतक, चतुर्दशी तिथि सायं ४-०९ बजेतक
अमावास्या	बुध	आर्द्रा	१० ,,	कर्कके चन्द्रमा रात्रि २-४० बजे, स्नान-दान-श्राद्धकी अमावास्या, अमावास्या तिथि दिन ३-३९ बजेतक

आषाढ़ शुक्लपक्ष (११-७-२००२ से २४-७-२००२ तक) सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	गुरु	पुनर्वसु	११ जुलाई	चन्द्रदर्शन, यायिजययोग दिन ८-३६ बजेतक तदुपरि सर्वार्थामृतसिद्धियोग, पुंनर्वसु नक्षत्र दिन ८-३६ बजेतक
द्वितीया	शुक्र	पुष्य	१२ ,,	पुष्य नक्षत्र प्रात: ७-५५ बजेतक, द्वितीया तिथि दिन १२-४५ बजेतक, रथयात्रा (पुरी), श्रीरामबलरामरथोत्सव
तृतीया	शनि	अश्लेषा	१३ ,,	सिंहके चन्द्रमा प्रात: ६-५३ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, यायिजययोग प्रात: ६-५३ बजेतक, भद्रा रात्रि ९-४८ बजेसे
चतुर्थी	रवि	मघा	१४ ,,	भद्रा दिन ८-४३ बजेतक, मघा नक्षत्र प्रात: ५-३५ बजेतक तदुपरि पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र रात्रि शेष ४-०४ बजेतक, यायिजययोग रात्रि शेष ४ बजे
पञ्चमी	सोम	उ०फा०	१५ ,,	कन्याके चन्द्रमा दिन ९-४० बजे, स्कन्दषष्ठीव्रत, कुमारषष्ठीव्रत, यायिजययोग प्रात: ६-२३ बजेतक, रवियोग रात्रि २-२७ बजेतक। पञ्चमी तिथि प्रात: ६-२३ बजेतक तदुपरि षष्ठी तिथि रात्रि ३-५५ बजेतक
षष्ठी	षष्ठी	तिथिका क्षय		
सप्तमी	भौम	हस्त	१६ ,,	विवस्वतसप्तमी, विवस्वत सूर्यपूजा, द्विपुष्करयोग रात्रि १२-४६ बजेसे रात्रि १-२६ बजेतक, भद्रा रात्रि १-२७ बजेसे
अष्टमी	बुध	चित्रा	१७ ,,	भद्रा दिन १२-१३ बजेतक, तुलाके चन्द्रमा दिन ११-५६ बजे, परशुरामाष्टमी (उड़ीसा), सायन कर्कराशिके सूर्य प्रात: ६-०६ बजे (पुण्यकाल सायं ६-४३ बजेतक), घृत-धेनु-दान, मन्दाकिनीमें स्नान, **याम्यायन (दक्षिणायन)**, दैत्योंका दिन और देवताओंकी रात्रि, **वर्षा-ऋतु**, मनसादेवी अष्टनागपूजा आरम्भ (बंगाल), खर्चीपूजा (त्रिपुरा), रवियोग रात्रि ११-०८ बजेसे
नवमी	गुरु	स्वाती	१८ ,,	सौर श्रावणमास आरम्भ, रवियोग तथा यायिजययोग रात्रि ८-४२ बजेतक
दशमी	शुक्र	विशाखा	१९ ,,	वृश्चिकके चन्द्रमा दिन २-४० बजे, मन्वादि दशमी, सोपपदा दशमी, वेदारम्भानध्याय, गिरिजापूजा दशमी, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ८-२२ बजेसे
एकादशी	शनि	अनुराधा	२० ,,	विष्णुशयनी एकादशीव्रत (सबका), श्रीविष्णुशयनोत्सव, पुष्य नक्षत्रके सूर्य सायं ६-२४ बजे (खण्डवृष्टियोग), सर्वार्थसिद्धियोग सायं ४-५५ बजेतक, रवियोग सायं ६-२४ बजेसे रात्रि ७-२१ बजेतक, भद्रा प्रात: ५-४० बजेसे सायं ४-४५ बजेतक
द्वादशी	रवि	ज्येष्ठा	२१ ,,	धनुके चन्द्रमा सायं ६-४१ बजे, द्वादशी तिथि दिन ३-१६ बजेतक, संगवकाल आ जानेके कारण प्रात: ७-४० बजेसे दिन १०-४० बजेतक पारण नहीं करना चाहिये अर्थात् प्रात: ५-२० बजेसे प्रात: ७-३९ बजेतक अथवा दिनमें १०-४१ बजेके बाद द्वादशी तिथिमें पारण करें, प्रदोषव्रत, चातुर्मास्य व्रत-यम-नियम आरम्भ, शाकत्यागव्रत आरम्भ, द्वादशी तिथिमें वामनपूजन
त्रयोदशी	सोम	मूल	२२ ,,	श्रावणमास प्रयुक्त सोमवारव्रत आरम्भ, मूल नक्षत्र सायं ६-२५ बजेतक
चतुर्दशी	भौम	पू०षा०	२३ ,,	मकरके चन्द्रमा रात्रि १२-५० बजे, श्रीशिवशयनोत्सव, कोकिला पूर्णिमाव्रत, व्रतकी पूर्णिमा, राष्ट्रिय श्रावणमास, सायन सिंहराशिके सूर्य सायं ४-५५ बजे, भद्रा दिन १-३५ बजेसे रात्रि १-३० बजेतक
पूर्णिमा	बुध	उ०षा०	२४ ,,	स्नान-दानकी पूर्णिमा, गुरु पूर्णिमा (व्यासपूजा), कर्णघण्टा तथा कनखलमें स्नान, पूर्णिमा तिथि दिन १-२६ बजेतक

साधनोपयोगी पत्र

(१)

दु:खकी स्थितिमें भी उद्विग्न न हों

प्रिय बहिनजी, सप्रेम हरिस्मरण! आपने लिखा कि आपके पतिका १९९० ई०में देहान्त हो गया और आपके ससुर भी सन् १९९१ ई०में स्वर्ग चले गये। आपके परिवारमें सास और जेठ हैं, आपको घरका सारा काम करना पड़ता है। उनकी बातें भी सुननी पड़ती हैं, घरमें दो समय पेट भरनेके लिये भोजनमात्र मिलता है। इस प्रकार प्रतिकूलताका जीवन बिताना पड़ता है।

जीवनमें प्रतिकूलता स्वयंके पापोंके कारण ही आती है। ये पाप पूर्वजन्मके भी हो सकते हैं और इस जन्मके भी। इसलिये प्रतिकूल वातावरणमें भी भगवान्की कृपाकी अनुभूति होनी चाहिये। यह भावना करनी चाहिये कि परमात्मप्रभु हमें दु:खकी परिस्थितियाँ प्रदानकर हमारे पापोंको नष्ट कर रहे हैं और मुझे निर्मल बना रहे हैं, ऐसी भावना करनेसे एक बात तो होगी ही कि परिवारमें किसीके प्रति आपके मनमें द्वेषभाव नहीं आयेगा।

दु:खोंसे छुटकारा पानेका एक अमोघ उपाय है—एकान्तमें भगवान्से प्रार्थना। प्रार्थनामें बड़ा बल है। आप अपने मनकी व्यथा एकान्तमें सर्वव्यापक प्रभुसे निवेदन करें और यह प्रार्थना करें कि वे परिवारके लोगोंको सद्बुद्धि दें। जिससे उनके मनमें आपके प्रति दया एवं करुणाका भाव जाग्रत् हो; साथ ही आपको भी वे दु:ख और प्रतिकूलता सहन करनेकी क्षमता प्रदान करें, जिससे आप उद्विग्न न हों तथा आपका मन शान्त रहे। वास्तवमें यदि आप हृदयद्वारा भगवान्से प्रार्थना करेंगी और उन्हें ही अपना मानकर निरन्तर उनको याद रखेंगी तो वे आपकी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे और आपके पारिवारिक जनोंकी भावना भी आपके प्रति बदल जायगी।

दूसरी बात—घरमें जो भी काम आपको करना पड़ता है, उसे आप पूरे मनसे करें और भगवान्की सेवा मानकर करें। प्रतिकूल वातावरणमें भी किसीके प्रति बिना द्वेष-भावके भगवान्की सेवा मानकर कर्तव्यभावसे यदि आप करेंगी भी तो यह एक प्रकारसे आपका तप होगा, जिसका पुण्य मिलेगा और उस पुण्यसे आपकी प्रतिकूलता अनुकूलतामें बदल सकती है।

दु:खोंसे निजात पानेका एक विशिष्ट साधन है—चलते-फिरते, उठते-बैठते तथा काम करते—हर समय भगवान्के नामका जप करना तथा उन्हें स्मरण रखना।

वास्तवमें भगवान् ही आपके हैं। संसारका कोई दूसरा व्यक्ति अपना नहीं है। यह संसार प्रभुकी लीलामात्र है। उनकी इस लीलामें अनुकूल या प्रतिकूल जो भी परिस्थिति जिस व्यक्तिको प्राप्त है, उसीमें प्रसन्न रहकर अपने कर्तव्यका पालन करते रहना—यही कल्याणका प्रशस्त मार्ग है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

आडम्बरपूर्ण खर्चीले जीवनसे हानि

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। उत्तरमें देर हो गयी, इसके लिये क्षमा करें। आपने अपनी परिस्थिति लिखते हुए अभावोंका और उनके कारण होनेवाले कष्टोंका विस्तारसे उल्लेख किया, सो बिलकुल ठीक है। धनियोंकी देखा-देखी समाजमें प्रशंसा पानेका एक विलक्षण मोह जाग उठा है, जिसके कारण जीवनकी व्यर्थ आवश्यकताएँ बढ़ गयी हैं। खान-पान, कपड़े-लत्ते, जूते-चप्पल, तेल-साबुन, मोटर-विमान, सिनेमा-टी०वी०, उच्च श्रेणियोंमें रेलयात्रा, क्लब-पार्टी, बढ़िया मकान, पल-पलमें छायाचित्र लेनेकी प्रवृत्ति, उच्चस्तर (?)-का रहन-सहन आदिमें मानो होड़ लगी हुई है। धनियोंमें परस्पर प्रतियोगिता है ही; गरीब-असमर्थ लोग भी इसी चक्करमें पड़े हैं। इससे इतना दु:ख बढ़ गया है, जिसकी कोई सीमा नहीं है और वह अभी बढ़ता ही जा रहा है! चोरी-डकैती, लूट-पाट हत्या आदिका भी यही कारण है।

पहले साधारण गृहस्थ-जीवनमें लोग अपनी हैसियतके अनुसार पूजा-पर्वका महोत्सव, अथितिसेवा, अपने जाति-समाजके अपनेसे गरीब भाइयोंकी सेवा-सहायता आदि करते थे। अधिक सम्पन्न लोग कुआँ, धर्मशाला आदि

बनवाते थे। उसमें भी खर्च होता था; पर उससे लोकोपकार होता था, भूखोंको अन्न मिलता था, गरीबोंको आश्वासन मिलता था और देवपूजादिसे मनमें पवित्रता आती थी। उससे भोगप्रवृत्ति या विलासिताको आश्रय नहीं मिलता था। निजका खर्च कम-से-कम करनेमें और दूसरोंकी सेवामें अधिक-से-अधिक खर्च करनेमें प्रतियोगिता होती थी, जो हानिकारक नहीं थी। पर अब तो उच्चस्तरके जीवनमें इतने अभाव बढ़ गये हैं कि उनकी पूर्तिमें जीवनकी सारी कमाई ही पूरी नहीं हो पाती, ऋणभार भी बढ़ जाता है। इसीलिये नाना प्रकारके छल-कपट, चोरी-बेईमानी, झूठ-दगा करके धन कमानेकी चेष्टा होती है। अतिथिसेवा और परार्थ धन लगानेके लिये तो अवकाश ही नहीं रह गया है। अपना ही खर्च नहीं चलता, तब दूसरेकी सेवा कोई कैसे करे?

प्राचीन समाज-व्यवस्थाके शिथिल हो जानेसे सब ओर मनमानी हो रही है और व्यर्थकी बाबूगिरीमें व्ययभार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। एक ओर श्रमकी महिमा गायी जा रही है, दूसरी ओर पीढ़ियोंके श्रमिक लोग भी श्रम छोड़कर कलम पकड़नेमें गौरव मानने लगे हैं। शारीरिक श्रम मानो अप्रतिष्ठाका स्वरूप समझा जाने लगा है। सिनेमा तथा टी०वी० आदिमें काफी रुपये खर्च हो रहे हैं और उससे समाजमें सदाचारका बड़ी बुरी तरहसे नाश हो रहा है। परंतु आवश्यक आमोद-प्रमोद और धनोत्पादक धंधेके नामपर उसकी पतनकारिणी प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। भोगका आडम्बर, विलासकी लालसा और झूठी शौकीनी बढ़ रही है!

कुछ लोग मानते हैं कि समाजमें विलासिताकी वृद्धि अथवा उच्चस्तरका जीवन हमारी धनवृद्धिका लक्षण है, पर वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। धन नहीं बढ़ा है—बढ़ा है आडम्बर, बढ़ी है सादगीमें शर्म, बढ़ा है अनाचार-मिथ्याचार और कदाचारका व्यसन, बढ़ी है उच्छृङ्खलता और शौकीनी तथा झूठे दिखावेकी बेबसी, बढ़ा है आलस्य-प्रमाद और मोह तथा बढ़ी है अविवेकशीलता एवं स्वेच्छाचारिता! पहले जो धन सर्वसाधारणके लिये खर्च होता था, अब वह व्यक्तिगत भोगमें खर्च होता है। पहले धनसे व्यापक किसीका भला होता था, अब उससे किसीका भला तो होता ही नहीं, अपनी भी हानि होती है। अधिकांश शहरोंमें रहनेको स्थान नहीं है, बड़े-बड़े महल झुक रहे हैं, मोटरोंके मारे रास्ता नहीं मिलता, सिनेमाके संगीतोंसे आकाश भरा रहता है, चारों ओर बिजलीकी रोशनी जगमगाती है, खान-पानमें अनाप-शनाप व्यय होता है। इस प्रकार विलास और आडम्बरके समुद्रमें डूबे रहनेपर भी प्राय: किसीको भी सुख-शान्ति नहीं है। कुछ लोगोंको छोड़कर (वे कुछ लोग भी दूसरी तरहके दु:खोंसे पीड़ित हैं) शेष सभी अभावग्रस्त एवं दु:खी हैं। कहीं घरमें बीमारी है पर दवाके लिये दाम नहीं है, कहीं नौकरी नहीं है, कहीं व्यापार नहीं चलता, कहीं बड़ी कन्याके विवाहकी चिन्ता है, कहीं बालककी शिक्षाका भार वहन करना कठिन हो रहा है। जीवन कष्टों और दु:खोंका भण्डार बन रहा है, इतनेपर भी विलासिता और आडम्बरका खर्च तो करना ही पड़ेगा; क्योंकि जीवनके उच्चस्तरको कायम रखना है! कैसी विडम्बना है!

इस दशामें अभावका नाश कैसे होगा और अभाव रहते दु:ख कैसे मिटेगा? महँगीकी राक्षसी तो मुँह बाये खड़ी ही है; पर इसमें भी यदि जीवन आडम्बरहीन, सादा हो तो अपेक्षाकृत बहुत कम खर्चमें काम चल सकता है और जीवनका दु:खभार बहुत कुछ हलका हो सकता है, पर इस ओर प्रवृत्ति नहीं है।

आपकी परिस्थितिपर आप स्वयं ध्यान देकर देखिये—आपको यथार्थ अभाव कितना है और आडम्बरके लिये कल्पित अभाव कितना है। आपकी जितनी आमदनी है, यद्यपि आजकल समय बहुत कठिन है; पर यदि आप आडम्बर छोड़ दें और समाजकी मिथ्या प्रशंसाका मोह अथवा इज्जत घटनेका भय त्यागकर अनावश्यक खर्चोंको कम कर दें तो मैं जोरके साथ कह सकता हूँ कि उतनेमें आपका काम मजेमें चल सकता है। आपकी दृष्टिमें इसीलिये कोई-सा भी खर्च अनावश्यक नहीं है कि आप झूठी तारीफके लोभमें उसको अपनाये हुए हैं। चार नौकरोंकी जगह एक नौकर रखें, मोटर निकाल दें, कम भाड़ेका छोटा मकान ले लें, सादे तथा सीधी सिलाईके आपके पहनें साफ-सुथरी साड़ियाँ लेकर घरके

लोग काम चलायें, तेल-साबुन आदि कम कर दें, सिनेमा और टी०वी०को तो बिलकुल ही त्याग दें, मित्रोंको कभी दावत न दें, कुछ बचाकर उससे ऋणका भार कम करें, जिससे ब्याजका नुकसान कम हो जाय—इस प्रकार सब ओर कोर-कसर करनेसे खर्च घट सकता है और आप सुखी हो सकते हैं। यह दु:ख तो आपका अपना ही खरीदा हुआ है, जो आपके ही कोशिशसे मिट सकता है। साथ ही आतुर होकर विश्वासके साथ आप भगवत्प्रार्थना करें। प्रार्थनाकी शक्ति अमोघ है। सच्ची विश्वासभरी प्रार्थना धैर्यके साथ निरन्तर होनेपर आपको भगवान्‌की ओरसे सद्बुद्धि, शक्ति, सम्पत्ति और सहज स्थिति अवश्य प्राप्त होगी। शेष भगवत्कृपा।

(३)

परमार्थके लिये धर्मपर चलना उत्तम है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके प्रश्नोंका उत्तर नीचे लिखा जा रहा है—

(१) सच्चा संन्यासी ऐश्वर्य, सुख-भोग और कीर्तिकी कामना नहीं कर सकता। संन्यासीका अर्थ ही है—सब कुछका सब प्रकारसे त्याग करनेवाला। जिसके मनमें सुख-भोग और कीर्तिकी कामना है, वह सर्वत्यागी—यानी संन्यासी ही नहीं है। संन्यासी साधक यदि ऐसी कामना करता है तो उसका पतन होता है। योगी सिद्धियोंके द्वारा सुख-भोग प्राप्त कर सकता है, परंतु वह परमात्मप्राप्तिके मार्गमें विघ्न ही है। परमात्माको प्राप्त योगीमें ऐसी इच्छा नहीं होती। भगवत्प्राप्त भक्त या योगी भगवान्‌के इच्छानुसार तो सब कुछ कर सकते हैं। पर वह करना भी न करना ही है।

(२) परमार्थके लिये धर्मपथपर चलना और परमार्थके लिये ही योगसाधन करना सर्वोत्तम है।

(३) एक ही पुरुष समस्त जगत्‌का सुधार कर सकता है, यदि भगवान् उसे ऐसी शक्ति और मति दे दें।

(४) भगवान् रामकी भाँति पापियोंको मारनेका अधिकार भगवान् रामको ही है। वे साक्षात् परमात्मा हैं। उनकी देखा-देखी किसीको मारनेकी बात सोचना भी पाप ही है। हमें तो यही भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और यही भावना करनी चाहिये कि भगवान् सबको सद्बुद्धि प्रदान करें, सभी धर्मके पवित्र मार्गपर चलें, सभी सबका हित करें, सभी सुखी हों, सभी कल्याणको प्राप्त हों और सभी भगवान्‌की कृपा प्राप्त करें। इसीमें अपना तथा सबका कल्याण है। शेष भगवत्कृपा।

(४)

मैत्रीभावना कीजिये

प्रिय महोदय! आपका पत्र मिला। आपने कई स्थान बदल लिये। अब आप अपने स्वर्गीय पिताजीके घरमें रहते हैं; पर जहाँ जाते हैं, वहीं आपके प्रति सबका दुर्भाव हो जाता है। सभी आपको तंग करते हैं और अकारण ही लोग शत्रु बन जाते हैं। यह अवश्य बहुत दु:खकी बात है। पर इसमें आपकी गरीबी कारण नहीं है। गरीब तो बहुत लोग हैं और सभी रहते भी हैं। पर सब लोग उनके शत्रु नहीं बनते। आप ढूँढ़िये, कहीं—आपसे ही तो ऐसी कोई भूल नहीं होती है जो कहीं भी आपको मित्र नहीं प्राप्त होने देती। मेरी समझसे, ऐसी कोई बात अवश्य होनी चाहिये। आप मनमें ऐसे विचारोंको लाइये और उनका पोषण कीजिये कि 'आज जहाँ रहते हैं, वहाँ आपके बहुत-से मित्र हैं, हितैषी हैं, आपका हित चाहनेवाले हैं।' आपका ऐसा निश्चय होगा तो आपके व्यवहार-बर्तावमें कुछ ऐसी विलक्षण वस्तु आ जायगी जो आपके शत्रुओं और विरोधियोंकी संख्या घटाकर उत्तरोत्तर मित्रों तथा हितैषियोंकी संख्या बढ़ा देगी एवं वह बढ़ती रहेगी। ज्यों-ज्यों मित्र अधिक दिखायी देंगे—त्यों-ही-त्यों आपकी मैत्रीभावनामें और भी दृढ़ता आयेगी और ज्यों ही आप अपनेको अधिकाधिक लोगोंका मित्र बना लेंगे—त्यों ही आपको भी सर्वत्र मित्र-ही-मित्र दिखायी देंगे तथा आपका चारों ओरसे हित होगा। आप ऐसी दृढ़ भावना करके देखिये।

बहुत बार हम-आप ही अपनी संदेहभरी वृत्तिसे सबको संदेहकी आँखोंसे देखकर उनके मनोंमें भी संदेहकी सृष्टि कर देते हैं और फलतः द्वेषका अङ्कुर उत्पन्न हो जाता है। यदि हम मैत्रीभावना करके अपने प्रति लोगोंका विश्वास उत्पन्न करा दें तो लोग भी हमारे लिये विश्वासपात्र और हितैषी बन जायँगे। शेष भगवत्कृपा।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

श्यामसुन्दरकी अनुपम कृपाका अनुभव

बात सन् १९७०-७१ ई० की है। मैं भरतपुर आई० टी० आई०से रेडियो-टेलीविजनकी पढ़ाई कर रहा था। वहाँपर मेरा परिचय करणसिंहजीसे हो गया। हम दोनों सहपाठी थे। हमारी मित्रता भ्रातृवत् प्रगाढ़ हो गयी।

मेरे मित्र प्रत्येक पूर्णिमाको गिरिराजजी महाराजकी साढ़े सात कोसी परिक्रमा करते रहते थे। शरत्पूर्णिमाके अवसरपर उन्होंने मुझे भी साथ ले लिया, जबकि दूसरे दिन हमारी आई०टी०आई०की परीक्षा भी थी। पूर्णिमाके दिन हम दोनों मित्र अलग-अलग साइकिलों द्वारा दोपहरको रवाना हुए और शामको लगभग साढ़े चार बजे गिरिराजजी पहुँच गये। वहाँ साइकिलका एक दूकानदार मेरे मित्रका पुराना परिचित था, वहींपर साइकिलें एवं जूते रख दिये तथा पहले गिरिराजजी महाराजके दर्शन करके हमलोग परिक्रमा करने चले गये। मैंने जीवनमें पहली बार ही व्रजभूमिका दर्शन किया था, मुझे बड़ा आनन्द आया। रास्ता कच्चा तथा धूलभरा था, परंतु आस-पासका दृश्य बड़ा ही मनोहारी था, थकान बिलकुल भी नहीं हुई। रात्रि लगभग ८.३० बजे साढ़े सात कोसी परिक्रमा सम्पूर्ण हो गयी।

तदनन्तर हमने मानसी गङ्गामें स्नान किया तथा पान-बतासे लेकर गिरिराजजी महाराजका दर्शन करके प्रसाद ग्रहण किया। मनको ऐसा संतोष मिला कि कुछ समय और रुककर उनके चरणोंको देखनेकी इच्छा होने लगी, लेकिन हमें उसी रात्रिको वापस भरतपुर भी आना था, कारण कि दूसरे दिन १० बजेसे परीक्षा देनी थी। अतः हम बाजार आ गये, हमने थोड़ा-सा नाश्ता किया। फिर साइकिलवालेका हिसाब करके अपनी-अपनी साइकिलें सँभालकर भरतपुरके लिये रवाना हो गये। हम मुश्किलसे आधा किलोमीटर ही चले होंगे कि साइकिलके एक टायरकी हवा निकल गयी। वापस पैदल चलकर दूकानपर आये। पर टायरमें कोई पंक्चर नहीं मिला। दूकानदारने ट्यूब-टायर अच्छी तरहसे देखकर यह बात हमें बतायी और साइकिल वापस कर दी। हम दोनों पुनः भरतपुरके लिये चले। लेकिन आधे किलोमीटरके लगभग ही चले होंगे कि फिर उसी टायरकी हवा निकल गयी। हम पुनः उसी दूकानपर आये। दूकानदारने कहा कि रातमें पंक्चर नहीं दीखता, इसलिये कल सुबह देखकर ठीक कर दूँगा। अब हमारे पास वहाँ रुकनेके अलावा कोई चारा न रहा। साइकिलमें हवा भरकर उसे वहीं दूकानमें रख दिया तथा दूकानदारसे सुबह जल्दी ही दूकान खोलनेके लिये कह दिया।

गिरिराजजीकी मोड़पर बायीं तरफ मिडिल स्कूलमें उस रात रासलीला चल रही थी। हम वहाँ आकर रासलीलाका आनन्द लेने लगे, पर मनमें चिन्ता भी हो रही थी कि अब कल परीक्षा नहीं दे पायेंगे। रात्रि एक बजेके लगभग रासलीला समाप्त हो गयी। सब दर्शकगण अपने-अपने स्थानपर चले गये। हम दोनों रात्रि गुजारनेके लिये मन्दिर चले आये। उस समय भी यात्री दर्शन कर रहे थे तथा कुछ भजन-कीर्तन कर रहे थे। एक-डेढ़ घंटेके बाद हमें सर्दी लगने लगी। सर्दी मिटानेके लिये हम टहलने लगे। एक दूकानकी भट्ठीमें कुछ आग नजर आ गयी, हम दोनों वहींपर बैठकर बातें करने लगे। हमारी आवाज सुनकर दूकानदारने हमें टोका कि यहाँपर कौन है? मेरे मित्रने व्रजभाषामें ही परिचय दिया। दूकानदारको जब हमारी लाचारीका आभास हुआ तब उसने दूकान खोलकर दस-पंद्रह लकड़ियाँ भट्ठीके पास डाल दीं। हमने लकड़ियाँ डालकर आग जला दी। थोड़ी देर बाद वह दूकानदार भी वहींपर आ बैठा तथा चाय बनाने लगा। उसने स्वयं चाय पी तथा हमें भी पिलायी। कुछ समय बाद हमारी ही तरहके दो-तीन यात्री वहाँपर और भी आ गये। चायवालेकी दूकान भी चलती रही एवं गिरिराज महाराजकी कृपासे हमारी रात्रि भी सकुशल बीत गयी।

प्रातःकाल होते ही हम पुनः दूकानपर आ गये। थोड़ी

देर बाद दूकानदार भी आ गया। साइकिलका टायर देखकर हम दंग रह गये। उसमें तिलमात्र भी हवा कम नहीं हुई थी। हम अपनी-अपनी साइकिलें लेकर शीघ्र ही भरतपुरके लिये रवाना हो गये। गोवर्धनजीसे दस-पन्द्रह किलोमीटर दूर एक स्थानपर वटका पेड़ एवं कुआँ नालेके पास है। उसीके समीप हम पहुँचे थे कि वहाँपर पुलिसकी कई गाड़ियाँ दिखीं। पुलिसवाले लोगोंसे पूछताछ कर रहे थे। कौतूहलवश हम भी रुक गये। मालूम हुआ कि यहाँपर रात दस-साढ़े-दस बजेके करीब लूट-खसोटकी घटना हुई थी, जिसमें एक यात्रीकी हत्या भी हो गयी। यह देख-सुनकर हमारे तो रोंगटे खड़े हो गये। उस समय हम दोनोंके मुखसे एक साथ यही बात निकली कि अगर साइकिलकी हवा नहीं निकलती तो हम भी उस समय लगभग यहींपर होते और जो घटना इनके साथ हुई थी, वह हमारे साथ भी हो सकती थी। इसे गिरिराजकी कृपा समझते हुए हमलोग पुनः घरकी ओर चल पड़े।

घर आकर यह घटना हमने घरवालोंको सुनायी तो उन्होंने इसे गोवर्धन महाराजकी कृपा बताते हुए कहा कि तुमलोग सकुशल आ गये, वरना जिस साइकिलकी हवा दो बार निकल गयी हो, बिना पंक्चर बनवाये उसी साइकिलसे भरतपुर आ पाना कैसे सम्भव हो सकता है! यह तो भगवान् श्यामसुन्दरके दर्शन और गिरिराजकी प्रदक्षिणाका ही फल है। हमें घर पहुँचनेमें थोड़ी देर भी हो गयी थी लेकिन पता चला कि परीक्षाका समय भी १ बजेसे हो गया। यह देख-सुनकर हमें बड़ा रोमाञ्च हुआ, हम दोनों गिरिराजकी कृपाका धन्यवाद देने लगे।

प्रेमसे बोलो गिरिराज महाराजकी जय!

—नारायण सिंह हाड़ा

(२)

भगवान्ने बचाया

जीवन आज अत्यधिक गतिशील हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति शीघ्रातिशीघ्र अपने गन्तव्यपर पहुँचनेकी होड़में है। इसीमें कभी कोई दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है तो कभी भगवान् किसीकी रक्षा करनेकी युक्ति बता देते हैं। पिछली जुलाईमें मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ।

मैं गत जूनमें सेवानिवृत्त हो गया था। तदनन्तर अपनी भविष्यनिधिकी धनराशि तथा पेंशन प्राप्त करनेके लिये जनपद-मुख्यालय प्रतापगढ़की ओर चल पड़ा। मेरे आवाससे यह स्थान लगभग ७५ किलोमीटर दूर है। यहाँ पहुँचनेके लिये प्रायः दो बार वाहन बदलनेकी आवश्यकता पड़ती है। जनपदके तहसील-मुख्यालय कुण्डातक मैं एक जीपसे पहुँचा और वहाँसे जनपद-मुख्यालयके लिये पुनः दूसरी जीपसे चल पड़ा। लगभग ४० किलोमीटर चलकर यह जीप भी डेरवा नामक स्थानपर रुक गयी। मुझे और आगे जाना था।

इसके पश्चात् मैं प्रतापगढ़ जानेके लिये साधन ढूँढ़ने लगा। एक जीप दिख गयी जिसमें दो-तीन लोग बैठे थे। ड्राइवर अन्य सवारियोंकी प्रतीक्षा करने लगा। मैं भी जीपके अगले भागमें पैर टेककर बैठ गया।

इसी बीच सवारियोंसे भरी एक जीप पीछेसे आयी और कुछ आगे जाकर रुक गयी। उसमेंसे कुछ लोग उतर गये। इससे उसमें जगह खाली हो गयी। जीपका कण्डक्टर और लोगोंके आनेकी प्रतीक्षामें इधर-उधर देखने लगा। उसने मुझे देखा और बिना आवाज दिये इशारा करके मुझे बुलाने लगा। इससे पहले वह जीप जा रही है और प्रतापगढ़ पहले पहुँचेगी, इस भावनाने मुझको प्रलोभनमें डाल दिया। मैं संकल्प-विकल्पमें पड़ गया। कुछ निश्चित नहीं कर पा रहा था। कभी होता कि इसी जीपमें बैठा रहूँ और कभी होता अगर उस जीपसे चला जाऊँ तो जल्दी पहुँच जाऊँगा। कण्डक्टरने कई बार संकेत किया, किंतु न जाने कौन प्रेरणा थी जो मुझे रोके हुए थी। अतः अपनी इस जीपको छोड़नेका विचार मेरे मनमें न आया। मैं जहाँ था, वहीं रह गया और वह जीप चली भी गयी।

लगभग पाँच मिनटमें इस जीपमें भी सवारियाँ पूरी हो गयीं और यह भी चल पड़ी। मुझे भी इन्तजारसे राहत मिली। जुलाईका महीना, बादलोंकी उमड़-घुमड़, कुछ बूँदाबाँदी भी हो रही थी, अचानक बूँदाबाँदी जोरकी बारिशमें बदल गयी। चालक सँभालकर गाड़ी चला रहा

था और हमलोग अपने गन्तव्यपर सकुशल पहुँचनेकी प्रार्थना भगवान्‌से कर रहे थे। घरसे प्रस्थान करते समय प्रायः मैं भगवान्‌का स्मरण करके ही कदम बढ़ाता हूँ। आज तो विशेष स्थिति थी। इसलिये बराबर भगवत्स्मरण चल रहा था। साथ ही किसी अनहोनी घटनाकी आशङ्कासे घबराहट-सी भी हो रही थी। भगवान्‌का सहारा लिये मैं आगे जा रहा था।

रास्तेमें सराय आनादेव नामक एक स्थान पड़ता है। उससे लगभग एक किलोमीटर पहले मैंने देखा कि सड़कपर भीड़ जमा है; लोगोंने हमारी जीपके चालकको जीप रोकनेका संकेत दिया। जीप धीरे-धीरे सड़कके बीचमें रुक गयी।

सामनेकी ओर निगाह पड़ी तो भयानक दृश्य दिखायी पड़ा। टूटी-फूटी-सी एक जीप सामने पटरीपर गिरी पड़ी थी। उस जीप-चालकके परिचितोंने बताया कि अभी दस मिनट पहले यह जीप सड़कसे फिसलकर गड्ढेमें जा गिरी और अनेक लोग घायल हो गये। घायलोंको उपचारहेतु प्रतापगढ़ भेज दिया गया है। यह वही जीप थी जिसपर चाहते हुए भी मैं नहीं चढ़ा था। दुर्घटनाकी कल्पनासे शरीरमें सिहरन-सी पैदा हो गयी।

मैंने उन भगवान्‌को पुनः स्मरण किया, जिन्होंने दुर्घटनामें पड़नेसे मुझे बचा लिया था और उन्हीं भगवान्‌से यह प्रार्थना भी करने लगा कि घायल व्यक्ति शीघ्र ही बिना किसी कष्टके स्वास्थ्यलाभ प्राप्त करें। मुझे आज यह भी अनुभव हुआ कि पद-पदपर भगवान्‌के स्मरण करनेका कितना बड़ा लाभ है! मुझे यह विश्वास हो गया कि मैंने अपने यात्राकालमें निरन्तर उन्हें स्मरण किया और उन्हीं प्रभुने मुझे इस भीषण दुर्घटनासे बचाया।

—कृष्णकुमार लाल

(३)

मुसलमान युवककी युक्तिसे गोमाताकी प्राण-रक्षा

फरवरी सन् २००२ ई० के अन्तिम सप्ताहकी घटना है, मैं अपने पतिदेवके साथ कुछ आवश्यक खरीदारीके लिये बाजार निकली। मुहल्लेकी गलीसे होकर हम गुजर रहे थे। एक नालेके पुलके पास कुछ लोगोंको इकट्ठा देखकर हमें भी कौतूहल हुआ। वहाँ पहुँचकर हम ठिठक गये। मेरी तो साँस ही रुक-सी गयी। हमने देखा कि एक गाय नालेके पुल और उससे लगभग सटी दीवारके बीच बुरी तरह फँसकर जीवनके लिये संघर्ष कर रही थी। उसके दोनों पिछले पैर नीचे नालेमें लटके हुए थे, जिससे वह और भी विवश हो गयी थी।

उपस्थित लोग भरपूर प्रयास करके भी गायको उस संकटसे उबार नहीं पा रहे थे। हमें वहाँ आया देखकर लोगोंने मेरे पतिसे भी सहयोग करनेके लिये कहा। तब पतिदेव भी उन लोगोंके साथ जुट गये और मैं सजल नेत्रों एवं भरे हृदयसे उन गोमाताकी प्राणरक्षाके निमित्त त्राणदाता प्रभुसे प्रार्थना करने लगी।

भीड़ धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार लोग तरह-तरहके उपाय सोच रहे थे और कर भी रहे थे। उधर गाय पल-प्रतिपल सुस्त पड़ती जा रही थी। अचानक भीड़मेंसे एक युवक चिल्लाया कि आपलोग तनिक ठहरिये, मैं रस्सा लेकर आता हूँ, गायके शरीरमें उसे लपेटकर हमलोग खींचें। सम्भवतः सफलता मिल जाय। इतना कहकर वह भागता हुआ गया और अगले ही क्षण एक मोटा रस्सा लेकर उपस्थित हुआ। एक बार फिर सब लोगोंने रस्सेके सहारे मिलकर जोर लगाया और गायका शरीर एकाएक उस संकीर्ण स्थलसे सड़कपर आ गिरा। कुछ ही देरमें गाय धीरे-धीरे उठकर चलने लगी। हम सबकी जान-में-जान आयी। उपस्थित लोगोंकी बातोंसे पता चला कि वह युवक जातिका मुसलमान था। गायको ऐसी स्थितिमें सर्वप्रथम उसीने देखा, लोगोंको इकट्ठा किया और अन्ततः उसीकी युक्तिसे गायकी प्राणरक्षा भी सम्भव हो सकी। धन्य है परमात्म-प्रभुकी अहैतुकी कृपा। धन्य है वह मुसलमान युवक और धन्य है उसकी मानवता।

—सरिता शुक्ल

मनन करने योग्य

(१)

अनुभवोंका खजाना

बाबू दीनदयालजीका लड़का अशोक अपना परीक्षा-परिणाम सुनकर विद्यालयसे घर लौटा तो उसके साथ उसका मित्र गीतेन्द्र भी था। उन्होंने उनसे उनके परीक्षा-परिणामके बारेमें पूछा।

'मेरी अंग्रेजीमें सप्लीमेंट्री है और इसकी फर्स्ट पोजीशन है।' अशोकने अपने पिताजीको अपने और अपने मित्रकी परीक्षाके परिणामके बारेमें बताया। सुनकर वे गीतेन्द्रकी ओर देखने लगे तो गीतेन्द्र उनसे बोला—'चाचाजी! यह सब मेरे दादाजी और दादीजीके आशीर्वादका ही फल है। वे मुझे दिन-रात पढ़ाते हैं और अच्छी-अच्छी बातें बताते हैं। दादाजीने खेलोंमें भी मुझे होशियार कर दिया है। उनके अनुभवोंका लाभ उठाकर बड़ा होकर मैं महान्-से-महान् कार्य कर सकूँगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

बालक गीतेन्द्रसे उसके दादा और दादीजीकी प्रशंसा सुनकर बाबू दीनदयालजी सोचने लगे कि मैंने तो कभी अपने माँ-बापके अनुभवोंका लाभ उठानेके बारेमें सोचा ही नहीं था। मैंने तो अपने माँ-बापको बूढ़ा और अकर्मण्य-सा समझकर गाँवमें ही अकेला छोड़ रखा है। यह मैंने अच्छा नहीं किया, मुझे उन्हें गाँवसे बुलाकर अपने साथ रखना चाहिये ताकि भावी पीढ़ीका सुधार हो सके और उन्हें भी कोई कष्ट न हो। यह सोचकर बाबू दीनदयाल अपने पुत्र अशोकसे बोले—'बेटा! अब तुम भी अच्छे डिवीजनसे अपनी परीक्षा उत्तीर्ण करोगे—मैं कल ही गाँव जाकर तुम्हारे दादाजी और दादीजीको यहाँ ले आऊँगा। वे अब हमारे साथ ही यहाँ रहेंगे।' यह सुनकर उनका पुत्र अशोक खुशीसे मुसकराता हुआ सोचने लगा कि अब वह भी अपने मित्र गीतेन्द्रकी भाँति अपने दादाजी और दादीजीसे अपनी पढ़ाई और दूसरे कामोंमें सहयोग लेकर उनके अनुभवोंका लाभ उठायेगा।

बड़े-बुजुर्गोंके पास अनुभवोंका ऐसा अनमोल खजाना होता है, जिसका लाभ उठाकर उनके परिवारके लोग अपने जीवनको सुखी, सुसंस्कृत और सम्पन्न बना सकते हैं।

—ओ०पी० राजकुमार

(२)

स्वावलम्बनकी शिक्षा

गुजरातके खेड़ा जिलेके 'वल्लभ-विद्यालय'की बात है। नवशिक्षकोंको वहाँ शिक्षण भी दिया जाता था।

शिक्षकोंका शिक्षणवर्ष शुरू होनेवाला था। सभी शिक्षक लोग आ चुके थे, केवल एक शिक्षक भाई शामकी गाड़ीसे आनेवाले थे।

विद्यालय स्टेशनके समीप ही था। गाड़ीसे उतरकर उस शिक्षक भाईने सोचा कि विद्यालय दूर होगा; अतः अपने बिस्तरको उठानेके लिये वे मजदूरकी खोजमें इधर-उधर देखने लगे। उस समय विद्यालयके प्रधानाचार्य वहाँ घूमनेके लिये आये हुए थे। उनके सादे वेशसे नवागन्तुक शिक्षक उन्हें पहचान न सके। प्रधानाचार्यने सामने आकर पूछा—'सामान उठाना है क्या?'

शिक्षक उन्हें पहचान न पाये। उन्होंने सोचा—'यह मजदूर है; मजदूरी करना चाहता है।' उनसे पूछा—'बोलो, क्या लोगे? यह बिस्तर उठाकर विद्यालयमें पहुँचा देना है।'

'आप जो भी देंगे, ले लूँगा'—कहकर प्रधानाचार्यजीने बिस्तर उठा लिया और नवागत शिक्षकको विद्यालयमें पहुँचाकर चल पड़े। शिक्षकने कहा—'अरे भाई! तुम्हारे पैसे…।'

'मुझे नहीं चाहिये'—कहकर प्रधानाचार्यजी चल दिये।

दूसरे दिन शिक्षणके प्रारम्भकी प्रार्थनामें उन प्रधानाचार्यजीको देखकर शिक्षक घबरा गये और प्रार्थना पूरी होनेके बाद उनके कमरेमें जाकर वे क्षमा-याचना करने लगे। प्रधानाचार्यजी बोले—'इतने छोटे-से बिस्तरको उठानेके लिये आप मजदूर क्यों खोजते रहे? मजदूर आपसे दुबला-पतला होनेपर भी सामानको उठा सकता है और आप इतने भले-चंगे होकर भी उसे नहीं उठा सकते?'

शर्मके मारे नीचा मुँह किये शिक्षक बोले—'महाशयजी! आजसे मैं यथाशक्य अपना बोझ अपने ही हाथोंसे उठाऊँगा।'

(अखण्ड आनन्द)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वर्ष ७६

गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, अगस्त २००२ ई०

संख्या ८

पूर्ण संख्या ९०९

'दै दरसन अब करौ निहाल'

जय नँद-नंदन प्रेम-बिवर्धन सुषमा-सागर नागर स्याम।
जय कांता-पट-कांति-कलेवर मन्मथ-मन्मथ रूप ललाम॥
जय गोपीजन-मन-हर मोहन राधा-बल्लभ नव-घनरूप।
जय रस-सुधा-सिंधु सुचि उछलित रास-रसेस्वर रसिक अनूप॥
जय मुरली-धर अधर गान-रत, जय गिरिवर-धर, जय गोपाल।
मग जोहत बीतत पल जुग सम, दै दरसन अब करौ निहाल॥

(पदरत्नाकर)
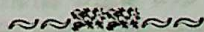
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, अगस्त २००२ ई०

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

कल्याण

याद रखो—तुम्हारे न मानने या न स्वीकार करनेसे सत्यस्वरूप भगवान्‌की सत्ताका अभाव नहीं हो सकता। हाँ, तुम अपनी ओरसे उनकी सत्ता स्वीकार करके उनके आराधन-पूजनसे जो सीधा परम लाभ उठा सकते, उससे वञ्चित हो जाओगे। इसी प्रकार परलोक और कर्मफलको अपने अहंकारके कारण या भ्रान्त बहुमतसे अस्वीकार कर देनेपर भी न तो परलोक मिटेगा और न कर्मफलसे ही छुटकारा मिलेगा। अतएव बुद्धिमानी इसीमें है कि भगवान्‌को, परलोकको और अवश्यम्भावी कर्मफलको स्वीकार करो।

याद रखो—भगवान्‌को स्वीकार करनेपर भगवान्‌की सहायता प्राप्त करनेके लिये शुभ कर्म होंगे, परलोकको तथा कर्मफलको माननेपर पापके परिणामरूप घोर दुःखकी सम्भावनासे पाप-कर्मसे बचकर तुम पुण्य-कर्मोंमें लगोगे। भगवान्, परलोक और कर्मफलकी सत्ता यदि न भी हो तो भी तुम्हें लाभ ही होगा; क्योंकि तुम शुभ कर्मोंके द्वारा सुख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त करोगे। हानि तो कुछ भी होगी ही नहीं; परंतु यदि तुम इनको नहीं मानोगे तो इस लाभसे भी वञ्चित रह जाओगे और यदि भगवान्, परलोक तथा कर्मफलकी सत्ता है, तब तो इनके न माननेपर तुम स्वेच्छाचारी और दुष्कर्म करनेवाले बनकर अपना इहलोक-परलोक सभी बिगाड़ लोगे, तुम्हारी महती हानि होगी।

याद रखो—असली बात तो यह है कि भगवान्, परलोक तथा कर्मफल सत्य हैं ही। इन्हें मानकर इनका यथायोग्य सेवन करके तुम स्वयं तो परम लाभके भागी होओगे ही—अपने आचरणोंसे, अपने जीवनसे, अपने आदर्शसे दूसरोंको भी इस ओर लगानेमें समर्थ होओगे। वे अपने आदर्श आचरणसे दूसरोंको लगायेंगे, अतएव तुम विशुद्ध भगवद्भावके प्रचार-प्रसारमें सफल निमित्त बननेका पुण्य और सौभाग्य प्राप्त करोगे।

याद रखो—जो स्वयं भगवान्‌की सेवामें लगा है तथा अपने आचरणसे दूसरोंको लगाता है, वह बड़ा भाग्यवान् है और वही प्राणियोंकी सच्ची सेवा करनेवाला है।

याद रखो—तुम यदि किसीको ऐसी मीठी चीज खिलाते हो—जिससे वह बीमार होकर मर जाता है तो तुम उसका उपकार-सेवा न करके अपकार तथा कष्टदान ही करते हो। भोग सुखरहित, दुःखालय और दुःखोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं (**'असुखम्', 'दुःखालयम्', 'दुःखयोनयः'**—गीता)। अतएव जो भी व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति मनुष्यको परमानन्दस्वरूप भगवान्‌से हटाकर भोगोंमें लगाती है, वह उसके पतन, भयानक कष्ट, नरकप्राप्ति और आत्मविनाशमें कारण बनकर उसके साथ शत्रुताका काम करती है। अतः यदि तुम किसीको भगवान्‌में लगाते हो तो उसकी परम सेवा करते हो; क्योंकि इसीसे उसका भविष्य सुख-सौभाग्यमय, पवित्र, उन्नत होगा और वह अविनाशी पदको प्राप्त होगा। एवं यदि तुम भगवान्‌से हटाकर भोगोंमें लगाते हो तो तुम उसके प्रति बहुत बड़ा अपराध करते हो; क्योंकि भोगासक्ति मनुष्यके सब प्रकारसे पतनका कारण है। इतना ही नहीं, यदि तुम अपनी चित्तवृत्तिको भी भगवान्‌से हटाकर भोगोंमें लगाते हो तो अपने साथ भी शत्रुताका ही बर्ताव करते हो; क्योंकि तुम ऐसा करके आप ही अपनेको पतन तथा विनाशके पथपर बढ़ाये ले जाते हो। अतः सावधानीके साथ ऐसा आचरण करो, जिससे तुम स्वयं भोगोंकी ओर न लगकर भगवान्‌की ओर अग्रसर हो सको और दूसरोंको भी भगवान्‌की ओर लगा सको। इसीमें तुम्हारा सौभाग्य है और इसीमें सच्ची लोकसेवा है।

याद रखो—भगवान्, परलोक तथा कर्मफलकी सच्ची सत्ताको स्वीकार करनेसे भगवान्‌में वृत्ति सुगमतासे लगती है, अतएव इन्हें स्वीकार करके इनसे लाभ उठाओ और अपना जीवन सफल करो। —**'शिव'**

सब प्रकारकी उन्नति

(परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति करे। अतएव पहले यह विचार करना है कि उन्नति क्या वस्तु है और उसका प्राथमिक और अन्तिम स्वरूप क्या है तथा संक्षेपमें उसके कितने प्रकार हैं? हमारे शास्त्रकारोंने यह निर्णय किया है कि एक धर्म ही समस्त उन्नतियोंका केन्द्र है। इसीलिये संक्षेपमें धर्मका लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

(वैशेषिकदर्शन)

'जिससे अभ्युदय (सर्वविध उन्नति) और निःश्रेयस (परम कल्याण—मोक्ष)-की सिद्धि हो, वह धर्म है।' इससे यह सिद्ध होता है, लौकिक उन्नतिसे लेकर पारमार्थिक उन्नतितक सभी इस धर्मके अन्तर्गत हैं। अब यहाँ संक्षेपसे उसके प्रकारोंपर विचार करें। मेरी समझसे आरम्भसे अन्ततक इसके दस प्रकार बताये जा सकते हैं—

१-शारीरिक उन्नति।

२-भौतिक उन्नति।

३-ऐन्द्रिर्यिक उन्नति।

४-मानसिक उन्नति।

५-बौद्धिक उन्नति।

६-सामाजिक उन्नति।

७-व्यावहारिक उन्नति।

८-नैतिक उन्नति।

९-धार्मिक उन्नति।

१०-आध्यात्मिक उन्नति।

अलग-अलग प्रकार बतलानेपर भी यह तो मानना ही होगा कि इन सबका सम्बन्ध यथार्थ आत्मकल्याणसे ही होना चाहिये। जिससे आत्माका यथार्थ कल्याण न होकर पतन या अहित होता है, वह तो उन्नति ही नहीं है। अब इनपर अलग-अलग विचार करें।

'शारीरिक उन्नति' का यह अभिप्राय नहीं कि केवल शरीरमें खूब बल हो, शरीर खूब मोटा-ताजा हो और वह विषयोपभोगसे न थकता हो। इस प्रकारकी शारीरिक स्थिति तो असुरों और राक्षसोंको भी प्राप्त थी। वे नित्य भोगपरायण रहते थे और अपने सबल और सुपुष्ट शरीरसे अन्यान्य प्राणियोंके साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार करते, उन्हें कष्ट पहुँचाते और उन्हें मार-काटकर अपने शरीरका पोषण और सुख-सम्पादन करते थे। यह वस्तुतः शारीरिक उन्नति नहीं, यह तो पतन है। शारीरिक उन्नति तो उसको कहते हैं, जिसमें शरीर स्वस्थ हो, नीरोग हो, परिश्रमशील हो, दूसरोंकी सेवा करनेमें सदा तत्पर हो, सेवासे कभी थकता न हो और दुःखियोंका दुःख दूर करनेमें समर्थ हो तथा ऐसे सात्त्विक शुद्ध पदार्थोंसे ही जिसका संरक्षण और भरण-पोषण होता हो, जो अन्तःकरणकी शुद्धिमें सहायक हों, इन्द्रियोंमें सात्त्विकता पैदा करनेवाले हों, सात्त्विक मन और बुद्धिका निर्माण और वृद्धि करनेवाले हों एवं सात्त्विक बल, तेज, ओज और आरोग्य बढ़ानेवाले हों। भगवान्ने ऐसे सात्त्विक पदार्थोंका गीतामें दिग्दर्शन कराया है। वे कहते हैं—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

(१७।८)

'आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।'

इस प्रकार शरीरको उन्नत बनाना चाहिये। वस्तुतः वही यथार्थ उन्नति है, जो परमात्माकी प्राप्तिमें सहायक हो। शरीरकी जिस उन्नतिमें जीवोंकी हिंसा हो, अपवित्र वस्तुओंका सेवन होता हो, वह तो तामसिक है, वह तो हमारा पतन है।

'भौतिक उन्नति' शारीरिक उन्नतिसे भिन्न है। भौतिक उन्नति व्यापक है। जैसे आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी—इन पाँच भूतोंको अधिक-से-अधिक प्राणियोंके लिये उपयोगी बनाना—यह वास्तविक भौतिक उन्नति कहलाती है। वर्तमानमें जिसे 'भौतिक विज्ञान' या 'फ़िज़िकल'

कहते हैं, जिससे आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वीसे नयी-नयी चीजोंका आविष्कार किया जाता है, वह वास्तविक भौतिक उन्नति नहीं है। इस विज्ञानके जानकार वैज्ञानिक महानुभाव कहते हैं कि हम बड़ी उन्नति कर रहे हैं; किंतु वस्तुतः उनकी यह उन्नति आंशिक उन्नति ही है। पूर्वके लोगोंमें भौतिक उन्नति प्रकारान्तरसे इसकी अपेक्षा बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। आजकल हम साधारण-सी ऐसी उन्नतिको देखकर चकाचौंधमें पड़ जाते हैं; किंतु थोड़ी गम्भीरतासे विचार करके देखिये। आज एक छोटे-से वायुयानको देखकर हम आश्चर्य करने लगते हैं कि देखो, ये आकाशमें उड़ने लगे! किंतु वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज लङ्काविजय करके जिस पुष्पकविमानसे अयोध्या आये थे; वह इतना विशाल था कि उसमें उनकी करोड़ों संख्यावाली सारी वानरी सेना बैठकर आयी थी। अब आप विचार करें। आज दुनियाके सारे वायुयान इकट्ठे किये जायँ तो भी वानरोंकी उतनी बड़ी सेनाको शायद ही उनमें ले जाया जा सके।

त्रेताकी बात छोड़िये। आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व एक शाल्व नामके राजा थे। उनके पास 'सौभ' नामक विमान था, जिसे 'सौभनगर' कहते थे। वह कभी आकाशमें उड़ा करता, कभी पृथ्वीपर आ जाता, कभी पहाड़ोंकी चोटियोंपर चढ़ जाता और कभी जलमें तैरने लगता तथा कभी सबमैरीनकी भाँति जलमें प्रवेश कर जाता। उसमें समस्त सेना रहा करती थी, वह बहुत ही बड़ा था। उस वायुयानको लेकर राजा शाल्वने द्वारकापर चढ़ाई की थी और उसने वहाँ वीर यादवोंके छक्के छुड़ा दिये थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने बाणों और गदाके द्वारा उसको छिन्न-भिन्न करके समुद्रमें गिराया था। सोचिये, कितनी भारी शक्ति उस एक वायुयानमें थी। एक ही वायुयानमें वहीं न्यायालय हो, वहीं युद्धकी सारी सामग्री हो, आरामके सारे सामान मौजूद हों और प्रजा भी उसमें बसती हो—यह कितने आश्चर्यकी बात है। ऐसा वायुयान आज संसारमें देखनेमें नहीं आता।

दूसरी बात लीजिये। आज एटम या हाइड्रोजन बमकी बात देख-सुनकर लोग चकित हो रहे हैं, एटम बम आदिके द्वारा हजारों-लाखों निर्दोष प्राणियोंको एक साथ मार दिया जाता है; किंतु आप हमारे इतिहासकी ओर थोड़ा ध्यान दें। महाभारतके वनपर्वमें लिखा है कि एक समय अर्जुनके साथ शिवजीका युद्ध हुआ था, उस युद्धसे शिवजी प्रसन्न हो गये। शिवजीने अर्जुनसे कहा कि 'तुम वरदान माँगो।' अर्जुनने कहा कि 'आप पाशुपत-अस्त्र मुझे दे दें।' शिवजीने पाशुपतास्त्र दे दिया और कहा कि 'इसे सहसा तुम चलाना मत। तुम इसे अपने पास रखना अपनी आत्माकी रक्षाके लिये। यदि इसे चला दोगे तो तीनों लोक भस्म हो जायँगे।'

कला-कौशल भी उस समय उच्च शिखरपर पहुँचा था। त्रिपुरासुर नामके तीन असुर थे। उन्होंने तीन पुर बसाये थे—एक पृथ्वीपर, एक स्वर्गमें और एक आकाशमें। उन तीनों पुरोंका कोई एक बाणसे नाश करे, तब वे असुर मरें—यह वरदान उन्हें मिला हुआ था। शिवजीने पाशुपतास्त्र चलाकर उन तीनों पुरोंका नाश किया था। एक तो आकाशमें पुर बसाना आश्चर्यकी बात है और दूसरे एक ही बाणसे तीनोंको नष्ट कर डालना यह और भी आश्चर्यकी बात है।

महाभारतके द्रोणपर्वमें लिखा है कि जब द्रोणाचार्य मर गये थे, तब उनका पुत्र अश्वत्थामा बहुत भयंकर क्रोध करके पाण्डवोंपर टूट पड़ा था। उस समय उसने 'नारायणास्त्र' चलाया था। नारायणास्त्रकी बड़ी भारी शक्ति है। उसका प्रयोग करते ही आकाशसे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी। पाण्डव एकदम घबरा गये। पाण्डवोंके नाकमें दम आ गया। पाण्डवोंकी सेनाका बुरी तरह संहार होने लगा। भगवान् श्रीकृष्णजी जानते थे कि यह नारायणास्त्र है। बिना मारे नहीं छोड़ेगा। सारी सेनाको नष्ट कर डालेगा। पर वे उसके निवारणका उपाय भी जानते थे। उन्होंने कहा—'इसका एक ही उपाय है—आत्मसमर्पण कर देना। हथियार छोड़कर जमीनपर खड़े हो हाथ जोड़कर स्थित हो जाना। फिर इसका असर तुमलोगोंपर नहीं होगा।' पाण्डवोंने ऐसा ही किया। अस्त्र तुरंत शान्त हो गया। दुर्योधनने अश्वत्थामासे कहा—'अश्वत्थामा! तुमने बड़ा प्रभावशाली अस्त्र चलाया। एक

बार इसको फिर चलाओ।' अश्वत्थामा बोला—'मैं अब इसे दुबारा नहीं चला सकता। नारायणास्त्रका प्रतीकार है आत्मसमर्पण। आत्मसमर्पण करनेवालेपर यदि कोई इस अस्त्रका पुन: प्रयोग करता है तो उस प्रयोग करनेवालेको ही यह अस्त्र मार डालता है।' आप विचार कीजिये; अस्त्रोंमें कितना विज्ञान था। एक अस्त्रको चलानेसे चाहे पाँच करोड़ सेना हो; चाहे दस करोड़ सब नष्ट हो जाती थी। पर ऐसे अस्त्रोंका प्रयोग होता था युद्ध करनेवाली सेनापर, न कि निरपराधी, निरीह नर-नारियों और बाल-वृद्धोंपर। हमारे देशकी ओर ध्यान दीजिये। नारायणास्त्र किसका? श्रीविष्णुका। पाशुपतास्त्र किसका? शिवजीका। ब्रह्मास्त्र किसका? ब्रह्माजीका। ऐसे महान् अस्त्र थे हमारे देशमें।

हमारे यहाँ पाँच भूतोंकी बड़ी भारी उन्नति हो गयी थी। आठ प्रकारकी सिद्धियोंका वर्णन मिलता है, जिनमें चार मनसे सम्बन्ध रखनेवाली मानसिक सिद्धियाँ हैं और चार भूतोंसे सम्बन्ध रखनेवाली भौतिक सिद्धियाँ हैं। इन भौतिक सिद्धियोंके नाम हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा। मानसिक सिद्धियोंके नाम हैं—प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व। अणिमाका अभिप्राय है—अणुके समान छोटा बन जाना। हनुमान्‌जी जब लङ्कामें प्रवेश करते हैं, तब मच्छर-जैसा रूप बना लेते हैं; यह 'अणिमा' सिद्धिका प्रभाव था और जब हनुमान्‌जी लङ्काको जा रहे थे, तब समुद्रको लाँघनेके समय उन्होंने महान् स्वरूप धारण कर लिया था। यह 'महिमा' सिद्धि केवल हनुमान्‌जीमें ही नहीं थी, सिंहिका नामकी राक्षसीमें भी थी और भी राक्षसोंमें थी। घटोत्कचमें भी थी। जब घटोत्कच मरने लगा, तब वह अपने शरीरको बढ़ाने लगा। उसने सोचा कि जब मैं मरूँगा तो जितनी कौरवोंकी सेना है, सबको दबाकर मरूँगा। उस समय उसने इतना बड़ा शरीर धारण किया कि उसके गिरनेपर एक अक्षौहिणी कौरव-सेना उसके नीचे दबकर मर गयी। ऐसी-ऐसी विद्याएँ तो राक्षसोंमें थीं। मेघनादके युद्धमें देखा जाता है कि एक समय मेघनाद आकाशमें शिलाकी वर्षा कर रहा है, वह दीखता नहीं, अन्तर्धान हो रहा है। एक समय देखा जाता है कि चारों ओर मेघनाद-ही-मेघनाद हैं। यह भी एक अद्भुत सिद्धि ही थी। ऐसी-ऐसी सिद्धियाँ थीं! इस प्रकार अणुके समान शरीर बना लेना 'अणिमा', महान् रूप धारण कर लेना 'महिमा', भारी रूप धारण कर लेना 'गरिमा' और हलका रूप धारण कर लेना 'लघिमा' सिद्धि है। ये चारों भौतिक सिद्धियाँ हैं। मानसिक सिद्धियाँ चार हैं—जिस चीजकी इच्छा करे, वही प्राप्त हो जाय, यह 'प्राप्ति' सिद्धि है। जिस समय यह कामना करे कि अमुक शत्रु मर जाय, उसी समय उसका मर जाना, यह 'प्राकाम्य' सिद्धि है। ईश्वरके समान सृष्टिकी रचना कर लेना 'ईशित्व' है, जैसे विश्वामित्रजीने अपने तपके बलसे रचना करना आरम्भ कर दिया था। किसीको अपने वशमें कर लेना, अधीन कर लेना 'वशित्व' सिद्धि है। इसके सिवा और भी अनेक सिद्धियोंकी बात आती है।

आप श्रीरामचरितमानसके अयोध्याकाण्डमें देखिये। जब भरतजी महाराज चित्रकूट जा रहे थे और रास्तेमें उन्हें भरद्वाज ऋषिके यहाँ ठहरना पड़ा, तब श्रीभरद्वाज ऋषिने सिद्धियोंको बुलाकर क्षणमात्रमें सबके खाने-पीनेके लिये सारी सामग्री और रहनेके लिये मकान रच दिये। उनका पूरा आतिथ्य सिद्धियोंके द्वारा करवाया। आज संसारमें ऐसी सिद्धियाँ देखनेमें नहीं आतीं।

ध्यान दीजिये, युद्ध हो रहा है कुरुक्षेत्रमें और हस्तिनापुरमें बैठा हुआ संजय श्रीवेदव्यासजीकी दी हुई दिव्य दृष्टिके प्रभावसे युद्धकी क्षुद्र-से-क्षुद्र घटनाको प्रत्यक्षवत् देख-सुनकर धृतराष्ट्रको सारी बातें बता रहा है। उसे वहाँकी सारी चीजें दीख रही हैं। वहाँ आपसमें जो बातें करते हैं, उन्हें भी संजय सुन रहा है और किसीके मनमें भी जो बात आती है, उसे भी संजय जान लेता है। उसका मन दिव्य हो गया, इन्द्रियाँ दिव्य हो गयीं। आप सोचिये, वह कैसी अद्भुत विद्या थी! इससे मालूम होता है कि उस समय भौतिक उन्नति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी।

हमलोगोंको भौतिक उन्नति भी वही करनी चाहिये, जिसमें किसीकी हिंसा न हो, किसीका अहित न हो।

बम चलाकर निरपराध मनुष्योंको मार डालना यह कोई भौतिक उन्नतिकी महिमा नहीं है। भौतिक उन्नति वह होनी चाहिये, जिस उन्नतिसे सबकी सेवा बने, सब प्राणियोंका हित हो, सबको सुख मिले। जैसे भरद्वाज ऋषिने भौतिक उन्नतिसे सबकी सेवा की, इसी प्रकार भौतिक उन्नतिको काममें लाना चाहिये।

हमारी इन्द्रियोंमें अनेक दोष भरे हुए हैं; जैसे वाणीमें कठोरता, मिथ्या-भाषण, व्यर्थ बकवाद, अप्रिय वचन, अहितकर वचन आदि। इसी प्रकार कानोंमें परनिन्दा सुनना, व्यर्थ वचन सुनना। जिह्वामें स्वादकी और त्वचामें स्पर्शकी लोलुपता, नेत्रोंमें परस्त्रीको देखना, दूसरेके दोष देखना एवं इन्द्रियोंके भोगोंमें राग-द्वेष आदि दोष भरे पड़े हैं—उनसे इन्द्रियोंको रहित करना, विषयोंसे इन्द्रियोंका संयम करना, उन्हें शुद्ध और दिव्य बनाना, विषयोंसे इन्द्रियोंकी वृत्ति हटाकर अपने वशमें करना—यह 'ऐन्द्रियिक उन्नति' है।

अब 'मानसिक उन्नति'के विषयमें विचार करें। मानसिक उन्नतिका अर्थ है—मनको उन्नत करना। सिद्धिके द्वारा दूसरेके मनकी बात जान लेना, यहाँ बैठे हुए ही सारे संसारकी बातोंको सिद्धियोंके द्वारा समझ लेना, दूरसे आग बुझा देना, मनोबलके द्वारा दूर बैठे ही रोग नाश कर देना, विष उतार देना, शत्रुता मिटा देना, मैत्री उत्पन्न कर लेना, मनके संकल्पका सत्य हो जाना, मनको अपने वशमें करना, मनको एकाग्र करना तथा संसारके पदार्थोंसे रोकना, मनके भीतर जो बहुत-से दुर्गुण, दुर्व्यसन और पाप हैं उनको धो डालना, दया, करुणा, मैत्री, प्रेम, विराग, शान्ति आदि सद्भावों और सद्विचारोंसे युक्त होना, मनका विषय-चिन्तनसे रहित होकर आत्मचिन्तन या भगवच्चिन्तन-परायण होना आदि यह सब मानसिक उन्नति है। इस प्रकार हमें मानसिक उन्नति करनी चाहिये। मानसिक उन्नति वस्तुतः हमें यहाँतक करनी चाहिये जिससे हमारी वास्तविक उन्नति होकर हमें परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। जिसमें आत्माकी महान् उन्नति हो, जो परमात्माकी प्राप्तिमें परम सहायक हो, वही वास्तविक मानसिक उन्नति है। जो मानसिक उन्नति प्राणियोंको कष्ट देनेवाली हो, दूसरेके हितका नाश करनेवाली हो, जिसमें आत्माका पतन हो, वह मानसिक उन्नति नहीं, अवनति है।

इसी प्रकार हमें 'बौद्धिक उन्नति' करनी चाहिये। हमारी बुद्धि तीक्ष्ण होनी चाहिये। हमारी बुद्धि शुद्ध, सात्त्विक और स्थिर होनी चाहिये। बुद्धिपर जो आवरण है, वह दूर होकर यथार्थ और सात्त्विक ज्ञान होना चाहिये। हमारी बुद्धिमें ज्ञानका इतना प्रकाश होना चाहिये जिससे हम परमात्माके स्वरूपको यथार्थतः समझ जायँ, बुद्धिके द्वारा जाननेयोग्य तत्त्व-पदार्थको जान जायँ; यह बौद्धिक उन्नति है। बौद्धिक उन्नति असली वही है, जिससे परमात्माके विषयका निर्भ्रान्त बोध हो, जिससे हमारे आत्माका कल्याण हो। आत्माके कल्याणमें सहायता देनेवाली बौद्धिक उन्नति ही यथार्थ बौद्धिक उन्नति है। जिस बौद्धिक उन्नतिसे संसारके पदार्थोंको जानकर प्राणियोंको कष्ट दें, जिस बुद्धिके द्वारा लोगोंपर अनुचित शासन करें और स्वयं ऐश-आराम करें, वह बुद्धिकी उन्नति नहीं, अवनति है। वह तो वस्तुतः पतन है। इसलिये हमें बुद्धिको सूक्ष्म और तीक्ष्ण बनाना चाहिये, जिससे हम परमात्माको जान सकें—

दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।

(कठ० १।३।१२)

'सूक्ष्मदृष्टिवाले पुरुषोंद्वारा सूक्ष्म और तीक्ष्ण बुद्धिसे परमात्मा देखा जाता है।'

गीतामें भगवान् कहते हैं—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

(६।२१)

'इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्मबुद्धि-द्वारा ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित वह योगी परमात्माके स्वरूपसे विचलित होता ही नहीं।' ऐसी जो हमारी बौद्धिक उन्नति है, वह कल्याण करनेवाली है। इस प्रकार हमें बौद्धिक उन्नति करनी चाहिये। (**क्रमशः**)

हरिकथामृतसिन्धुके दस बिन्दु

(डॉ० श्री ए० कमलनाथजी 'पंकज')

(१) हरिकी कथाका अर्थ है हरिके गुणोंका वर्णन। भगवान्‌में विश्वास रखनेवाले भक्तोंके लिये यह अमृतके समान है। हरिकथामृतका पान मोक्षका सुलभ सोपान है। हरिकी मङ्गल-कथाका श्रवण मनको आनन्द प्रदान करता है, भवजनित दुःखोंको दूर करता है और परम कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर देता है। अतः श्रद्धापूर्वक हरिकथाका श्रवण अवश्य करना चाहिये।

(२) वर्षाका पानी जब गलियोंमें बहता है, तब उस पानीका उपयोग कोई नहीं करता। वही पानी जब गङ्गाजीमें जा मिलता है तब उसमें सब स्नान करते हैं, उसी प्रकार चाहे जैसे बन पड़े वैसे ही यदि हरिका गुणगान करे तो श्रीहरिमहिमाके कारण वह मान्य बन जाता है।

(३) भक्त यदि परमादरसे श्रीहरिकी स्तुति करे, संकीर्तन करे, गान करे तो भगवान् उसके पास बैठकर सुनते हैं, नाचने लगते हैं और उसपर कृपाकी वर्षा करते हैं। भक्तोंके लिये भगवान् सुलभ हैं। वे पलभर भी अपने भक्तोंसे दूर नहीं रहते। पामरजन उनकी कृपाका खयाल न कर भवमें भटकते रहते हैं।

(४) जिस प्रकार शरीरके साथ छाया सदा रहती है, उसी प्रकार हरि भी सदैव हमारे साथ रहते हैं। वे आधे पलके लिये भी हमें नहीं छोड़ते। सदा हमारे साथ रहकर हमें पापोंसे बचाते रहते हैं। वे भक्ताधीन हैं। भक्तोंको संतुष्ट करते रहते हैं।

(५) भगवान् सबमें व्याप्त रहकर विविध कर्म करते रहते हैं। श्रीहरि कर्ता भी हैं, क्रिया भी हैं, द्रष्टा भी हैं और भोक्ता भी हैं। वे नट भी हैं, नाटक करानेवाले भी हैं। सृष्टिकी सारी क्रियाओंमें वे व्याप्त रहते हैं। वे समस्त लोकोंमें व्याप्त होकर भी उन सबसे अलिप्त रहते हैं। वे सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं।

(६) जब बालक अपनी माँको पासमें न पाकर उसकी यादमें रोने लगता है, तब माँ दौड़कर उसके पास आती है और बालकको छातीसे लगाकर उसका दुःख दूर कर उसे संतुष्ट करती है। भक्त तथा भगवान्‌का सम्बन्ध भी इसी प्रकारका है, बल्कि इससे भी विलक्षण है। जब भक्त भगवान्‌को पुकारता है तब भक्तवत्सल भगवान् उसके उद्धारार्थ दौड़कर उसके पास आ जाते हैं।

(७) बालककी प्यारी तोतली बातोंसे, उसके सरल व्यवहारसे जिस प्रकार माँ सुख पाती है उसी प्रकार भगवान् अपने भक्तोंके भावमय सरल वचनोंसे और सरल व्यवहारसे बहुत प्रसन्न होते हैं। भगवान्‌को अन्तःकरणकी निर्मलता बहुत भाती है। जब पुण्डरीकने भावविह्वल होकर एक ईंट रखकर भगवान्‌को उसपर बैठनेको कहा तब भगवान् प्रसन्न होकर उस ईंटपर विट्ठल बनकर बैठ गये। गरीब सुदामाने जब मुट्ठीभर चिउड़े भगवान्‌को दिये तब उसके बदले श्रीहरिने उन्हें सकल सम्पदा प्रदान कर दी। भगवान्‌की भक्तवत्सलताका वर्णन कोई कहाँतक करे।

(८) जो श्रीहरिका स्मरण करते हैं, श्रीहरि उनके अपराधोंका विस्मरण कर देते हैं। देवताओंने उन्हें कूर्म बनाकर उनकी पीठपर मन्दर पर्वत रखा, पर कृपालु भगवान्‌ने उनपर क्रोध न करके उन्हें अमृत पिलाया। भृगु ऋषिने उनके वक्षःस्थलपर चरणप्रहार किया, पर करुणानिधि हरि उनके चरण सहलाने लगे कि कहीं चोट तो नहीं लग गयी। धन्य है प्रभो! आपकी लीला! शिशुपालने भगवान् कृष्णके प्रति दुर्वचन कहे, पर उन्होंने उसका उद्धार कर दिया। कुरुक्षेत्रमें भीष्मने कृष्णपर बाणोंकी बौछार की, पर भगवान्‌ने उसपर ध्यान न देकर उन्हें सद्गति प्रदान की।

(९) धनका संरक्षण करनेवाला सर्प जिस प्रकार उस धनका न स्वयं भोग करता है और न दूसरोंको उसे लेने देता है, केवल उसे देख-देखकर सुख पाता है, उसी प्रकार लक्ष्मीरमण श्रीहरि अपनी शरणमें आये भक्तोंकी रक्षा करते हैं। यदि कोई भक्तोंकी निन्दा करता है तो वे सहन नहीं करते। उन्हें दुर्जनोंकी सेवा नहीं भाती। उन्होंने विदुरके घर साग-पात ग्रहण कर उनकी भक्तिको पुरस्कृत किया, पर दुर्योधनके आतिथ्यका तिरस्कार कर उसका मान-मर्दन किया।

(१०) श्रीहरिके चरणोंसे निकली पावन गङ्गा जब तीनों लोकोंके पापोंको धो डालती हैं तब उनके अङ्ग-अङ्गमें व्याप्त गुणोंको बतानेवाले दिव्य नामोंके उच्चारणसे भक्तजन पावन बन जायँ तो इसमें क्या आश्चर्य! जिस प्रकार फूलोंमें सुगन्ध, अरणिकाष्ठमें अग्नि निहित रहती है उसी प्रकार श्रीहरि प्रकट-अप्रकटरूपमें सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। उनकी कृपा पानेके लिये अनुदिन उनके नामोंका गुणगान करना चाहिये।

सर्वत्र भगवत्-दर्शन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[चैत्र कृष्ण ३ सं० १९९३ दिनाङ्क ३० मार्च १९३७, मंगलवारकी घटना है—उन दिनों गीतावाटिका, गोरखपुरमें अखण्ड संकीर्तन चल रहा था। अनेक साधुगण एवं साधक लोग घास-फूँसकी कुटियोंमें रह रहे थे। उस दिन रात्रिके करीब ग्यारह बजे कुटिया नं० १८ में एक लटकती हुई लालटेनसे घासने आग पकड़ ली और कुछ ही क्षणोंमें कुटी नं० ८ से कुटी नं० २२ तककी १५ कुटियोंको एक साथ ही प्रचण्डरूपसे भीषण अग्निदेवने भस्मसात् कर दिया। श्रद्धेय भाईजीने उन अग्निदेवको साक्षात् भगवान्के रूपमें प्रकट समझकर घृत एवं बूरा (चीनी)-से आहुतियाँ दीं।

उन १५ कुटियोंमें कई साधु एवं साधक सोये हुए थे। कुछ लोग अपने-आप कुटियोंसे बाहर आ गये, कइयोंको निकाला गया। परंतु एक भी व्यक्तिको तनिक भी आगकी लपट नहीं लगी; न किसी व्यक्तिको तनिक चोट ही आयी परंतु १५ कुटियाँ तत्काल राखके ढेरमें परिणत हो गयीं। दूसरे दिन सभामें श्रद्धेय भाईजीने इस घटनाके तात्पर्यको इस प्रकार बताया—]

कल रात ग्यारह बजे आग लगी और पीछेकी १५ कुटियाँ एक साथ जल गयीं। उस समय हममेंसे कुछ लोगोंने कहा कि अच्छा हुआ भीतर कोई आदमी नहीं था। इससे यह स्पष्ट होता है कि आग लगना तो अच्छा नहीं हुआ, कोई व्यक्ति नहीं जला, यही अच्छा हुआ।

गीताजीका जो तात्पर्य है उसके अनुसार हमें इस घटनाके विषयमें विचार करना है। साधकोंके लिये दो ही दृष्टियाँ हैं—एक ज्ञानीकी और दूसरी भक्तकी। ज्ञानीकी दृष्टिमें तो एक आनन्दको छोड़कर दूसरी वस्तु है ही नहीं। अतः वह चाहे आगके रूपमें हो, चाहे किसी और रूपमें, है आनन्द ही। भक्तकी दृष्टिमें सब भगवान्की लीला ही है। भगवान्की लीलामें कभी अमङ्गल हो ही नहीं सकता; भले ही वह लीला हमें अच्छी न दीख पड़े, परंतु मङ्गलमयका कोई भी विधान अमङ्गलमय नहीं हो सकता।

भक्तोंके भी कई दर्जे होते हैं। एक भक्त थे नामदेव। उनकी कुटीमें आग लगी। आधी कुटी जल जानेपर जब आग शान्त होने लगी तो वे बोले—'भगवन्! यह क्या, आप आधे ही घरमें पधारे?' ऐसा कहकर वे कुटीका बचा हुआ सामान भी उसमें डालने लगे। यह ठीक है कि सब भक्तोंका ऐसा ही भाव नहीं होगा और अन्य भाव होनेमें कोई दोष भी नहीं है।

जनकजी परम ज्ञानी थे। याज्ञवल्क्यजी उनसे वेदान्तचर्चा किया करते थे। उनका प्रवचन सुननेके लिये बहुत-से लोग आते थे, परंतु जबतक जनकजी नहीं आते थे, तबतक वे कथा आरम्भ नहीं करते थे। इससे अन्य श्रोताओंको कुछ असंतोष रहने लगा और वे ऐसा समझने लगे कि जनकजीके प्रति उनका कुछ मोह है। याज्ञवल्क्यजी योगी भी थे। उन्होंने एक लीला की। उन्होंने अपने योगबलसे नगरमें आग लगा दी; अब लोगोंको मालूम हुआ तो उन्हें यह चिन्ता हुई कि हमारे पड़ोसमें तो आग नहीं आ गयी है और वे तरह-तरहके बहानेसे कथामेंसे उठकर जाने लगे।

धीरे-धीरे वह कथामण्डप बिलकुल खाली हो गया; बस, याज्ञवल्क्यजी कथा सुना रहे थे और जनकजी सुन रहे थे। इतनेहीमें एक आदमी आया और उसने कहा—महाराज! सारी मिथिलापुरी जल चुकी है और अब राजमहलमें भी आग लगनेवाली है। इसी प्रकार एकके पीछे दूसरा और तीसरा कई आदमी आये, परंतु महाराजा जनक सर्वथा निश्चिन्तभावसे पूर्ववत् कथा-श्रवण करते रहे। याज्ञवल्क्यजीने कहा—'राजन्! महलमें आग लग गयी है।' जनकने कहा—'महल क्या शरीर जल जाय तब भी मेरी क्या हानि?' यह है ज्ञानीकी दृष्टि।

अब तीसरी दृष्टि है—कर्मकी। उस दृष्टिको लेकर यह विचार करना चाहिये कि आग लगी क्यों? संसारमें जो कुछ होता है हमारे कर्मका फल है और यह सम्भव नहीं कि कर्म पीछे हो और फल पहले मिले। प्रारब्धके तीन भेद हैं—परेच्छा, स्वेच्छा और अनिच्छा। यदि इसी प्रकार अनिच्छासे हमें किसी कर्मका फल मिल गया तो अच्छा ही है, हमारा कर्म कट गया। किसी पापकर्मका कट जाना तो आनन्दकी ही बात है। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों ही दृष्टियोंसे इस घटनामें अमङ्गलकी सम्भावना नहीं है।

एक साधकने मुझसे कहा था, 'हमारे कृष्ण (चित्रपट) जल गये।' कृष्ण कभी नहीं जलते। मैं निराकार परमात्मा या ब्रह्मकी बात नहीं कहता। भगवान्का साकार विग्रह भी कर्मवश उत्पन्न नहीं होता, वह तो चिन्मय है। भगवान् भक्तोंपर

अनुग्रह करनेके लिये अपनी इच्छासे ही शरीर धारण करते हैं। वे देह धारण करते हुए भी देहहीन हैं, आँखोंवाले होकर भी नेत्रहीन हैं, हाथ-पाँववाले दिखायी देनेपर भी कर-चरणादिसे शून्य हैं। भगवान्‌के विषयमें ऐसी विपरीत बातें कही जाती हैं, गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

(रा०च०मा० १। ११८। ५-६)

सारे नेत्र उन्हींके नेत्र हैं, सारे हाथ उन्हींके हाथ हैं, सारे चरण उन्हींके चरण हैं और सारे मुख उन्हींके मुख हैं। उनका देह दिव्य और चिन्मय होता है। इसलिये उसमें कोई अमङ्गलकी बात नहीं है।

इसके सिवा एक दूसरी बात है। इस आगके द्वारा भगवान्‌ने यह शिक्षा दी है कि साधकको इस प्रकार सर्वस्व स्वाहा कर देना होगा। भगवान् कहते हैं—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' (गीता १८। ६६)

भगवान्‌ने सभी धर्मोंको त्याग करके अपनी शरणमें आनेके लिये कहा है। यदि हमने कुछ भी अपने लिये बचाकर रख लिया तो सर्वस्व-समर्पण नहीं होगा। बंगालमें एक कहावत है—

जे करे आमारी आश। तार करि सर्वनाश॥

जबतक सर्वनाश नहीं होता, तबतक भगवान् नहीं मिलते। इसके लिये तो तन, मन, धन—सभी भगवान्‌पर निछावर कर देना होगा। जबतक ऐसा भाव रहेगा कि 'यह शरीर मेरा है', तबतक भगवान् नहीं मिलेंगे।

भगवान्‌ने कहा है—**'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय'** (गीता १२। ८)। मन और बुद्धि भी भगवान्‌को सौंप दो। ये भगवान्‌में ही लगे रहें। किस भगवान्‌में लगे रहें? यह बात भी भगवान् ही समझा देंगे। जो बुद्धि मायासे आवृत रहती है वह भगवान्‌को नहीं जान सकती। यदि सर्वथा भगवान्‌पर ही अवलम्बित रहा जायगा तो वे स्वयं अपना ज्ञान दे देंगे। भगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १०। ९—११)

बुद्धियोग तो मैं दे दूँगा। तुम केवल इतना करो कि मन भगवान्‌में ही लगा रहे, प्राण भगवान्‌में ही लगा रहे, प्राण भगवान्‌में ही रहे, ऐसा निश्चय करो कि हम निरन्तर भजन करते रहेंगे। भगवान् कैसे हैं?—यह बात तो भगवान् स्वयं समझा देंगे।

भगवान्‌के स्वरूपके विषयमें अनेक मत हैं और अपनी-अपनी दृष्टिसे वे सभी ठीक हैं। 'गीता' पर महापुरुषोंके जितने भाष्य हैं वे सब यथार्थ ही हैं। गीता एक ग्रन्थ है, उसमें जिसके लिये जो बात उपयुक्त हो उसे ही वह ले ले। सारे चश्मे चश्मे ही हैं, परंतु उनमें जो जिसकी आँखपर लग जाय उसके लिये वही उपयोगी है। इसी प्रकार अधिकारी-भेदसे शास्त्र भी भिन्न-भिन्न रूपसे सबके लिये उपयोगी हैं। मनुष्य जब कोई रंगीन चश्मा लगा लेता है तो उसे वह पदार्थ उसी रंगका दिखायी देने लगता है। जिस चश्मेमें कोई रंग नहीं होता उसीसे वस्तुका यथार्थ रूप देखा जा सकता है। जीवकी दृष्टि संकुचित है, उससे वस्तुका यथार्थ ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है। इसलिये अपनी बुद्धिको अलग रखकर सब प्रकारसे केवल भगवान्‌पर ही अवलम्बन करना चाहिये। भगवत्कृपासे कोई भी बात दुःसाध्य नहीं है। भगवान् कहते हैं—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

(गीता १८। ५८)

बस, मेरा चिन्तन करते रहो, तर जाओगे। भगवान्‌की कृपाका जो बल है वह अन्य किसी भी साधनमें नहीं है। भगवान्‌का दर्शन होनेपर ध्रुव घबड़ा गया, वह यह नहीं समझ सका कि मैं किस प्रकार भगवान्‌की स्तुति करूँ! वह भक्त था, तपस्वी था, परंतु ज्ञानी नहीं था। भगवान् उसके भावको समझ गये। उन्होंने उसके कपोलसे अपने शङ्खका स्पर्श करा दिया। बस, स्पर्श होते ही ध्रुवको ज्ञान हो गया। जो ज्ञान भगवान्‌की कृपासे हो, उसमें क्या कमी रह सकती है? आत्मबल भी भगवान्‌का ही बल है, परंतु हम बहुत बार उनके नामपर शारीरिक बल और बुद्धिबलका ही आश्रय ले लेते हैं। अहंकार तो अनात्मा ही है, यह तो आसुरी प्रकृतिके पुरुषोंमें ही देखा जाता है—**'अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः'** (गीता १६। १८)। जो लोग

आसुरी प्रकृतिके होते हैं, उन्हें अपने तुच्छ बलका अभिमान होता है जिससे विमोहित होकर वे किसीको कुछ नहीं समझते और ऐसा मानते हैं कि—

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी॥

(गीता १६। १४)

अर्थात् मैं ईश्वर और ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूँ तथा मैं सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ एवं बलवान् और सुखी हूँ।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।

(गीता १६। १५)

अर्थात् मैं बड़ा धनवान् और बड़े कुटुम्बवाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है?

ये सब आसुरी बल हैं, इन्हें छोड़कर हमें उस बलका आश्रय लेना चाहिये जो भगवान्‌का बल है। उस बलके प्राप्त होनेपर न जाने क्या हो जाय?

जब जनकजीके यहाँ धनुष-यज्ञमें आये हुए सब राजालोग हार गये और रावण तथा बाणासुर-जैसे योद्धा भी उसे प्रणाम करके चले गये तो जनकजीको बड़ा दुःख हुआ। उनके मुखसे सहसा निकल पड़ा—

'बीर बिहीन मही मैं जानी' (रा०च०मा० १। २५२। ३)

जनकजीकी यह बात लक्ष्मणजीको अच्छी नहीं लगी। भला, जहाँ उनके इष्टदेव रघुकुलभूषण भगवान् राम विद्यमान हों, वहाँ ऐसी निराशापूर्ण बात वे कैसे सुन सकते थे? वे जनकजीकी उक्तिसे रोषमें भरकर बहुत-सी बातें कह गये—

जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

(रा०च०मा० १। २५३। ४-५, ८)

सुमेरु पहाड़को मूलीकी तरह तोड़ दूँ, ब्रह्माण्डको कच्चे घड़ेकी भाँति फोड़ डालूँ, धनुषको कमलनालकी तरह चढ़ा दूँ इत्यादि। परंतु फिर उन्होंने सोचा यह तू क्या कह रहा है? तुझे किसका बल है? तब वे विवेक-दृष्टिसे बोले—

'तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।'

(रा०च०मा० १। २५३)

हे नाथ! इस धनुषको मैं बरसाती छत्रकके डंठलकी तरह तोड़ सकता हूँ। किसका बल पाकर तोड़ सकते हो? *'तव प्रताप बल'*—आपके प्रतापके भरोसे। जिस समय लक्ष्मणजीने कोपमें भरकर *'तव प्रताप बल नाथ'* ऐसा कहा उस समय—*'डगमगानि महि दिग्गज डोले।'* पृथ्वी डगमगाने लगी और दिग्गज अपने स्थानोंसे विचलित हो गये, क्योंकि अब उन्होंने भगवान्‌के बलका भरोसा—आश्रय ले लिया।

बहुत बार हमलोग अहंकार और मोहसे समझ लेते हैं कि हम वह कार्य कर लेंगे। परंतु यह हमारा मोह ही है, बिना भगवान्‌का बल प्राप्त किये हम कुछ भी नहीं कर सकते।

अर्जुनपर भगवान्‌का बड़ा स्नेह है। भगवान् कहते हैं—मैं पुरुषोत्तम हूँ; पुरुष और प्रकृति ये दोनों ही मेरी प्रकृति हैं। ये दोनों ही भगवान्‌से अभिन्न हैं, परंतु अभिन्न होनेपर भी उनके कर्म भिन्न-भिन्न हैं। यह ज्ञान देकर वे पुरुषोत्तम कहते हैं—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥

(गीता १८। ६३)

अर्जुन! मैंने तुझे यह गुह्यसे भी गुह्यतर ज्ञान बतला दिया, इसे अच्छी तरह विचारकर और तुझे जो अच्छा लगे वह कर। —यह बात भगवान्‌ने गैर पुरुषोंकी-सी कह दी है। किंतु इसके पश्चात् वे पुनः कहते हैं—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥

(गीता १८। ६४)

अर्थात् हे महाबाहो! मेरी एक बहुत अच्छी बात और सुन। तू मुझे अत्यन्त प्रिय है; इसलिये मैं तेरे हितकी बात कहता हूँ। ऐसा कहकर भगवान् अपने ऊपर कहे हुए और आगे कहे जानेवाले शब्दोंमें अन्तर दिखलाते हैं। कोई भी भला आदमी अन्य पुरुषोंके सामने यह नहीं कहता कि मैं यह बहुत अच्छी बात कहता हूँ। ऐसा तो वहाँ कहा जाता है जहाँ अत्यन्त अन्तरङ्गता होती है। अर्जुनपर भगवान्‌का अत्यन्त स्नेह है। अर्जुनके लिये ही भगवान्‌ने खाण्डव-दाह कराया। उसके बाद जब इन्द्र उनके पास आये तो भगवान्‌ने उनसे यही माँगा कि अर्जुनके साथ मेरी सर्वदा मैत्री बनी रहे। जिस समय उत्तराके गर्भसे मरा हुआ बालक उत्पन्न हुआ, उस समय भगवान्‌ने शपथ करके यह कहा था कि 'यदि अर्जुनमें मेरी निष्कपट मैत्री रही हो तो यह बालक जी उठे।'

इस प्रकार अर्जुनके प्रति भगवान्‌के घनिष्ठ प्रेमके बहुत-से प्रमाण हैं। अतः यहाँ भी भगवान् उसे अपना अत्यन्त प्रेमी स्वीकार करके उसे—**'सर्वधर्मान् परित्यज्य'**

इत्यादि श्लोकसे सर्वधर्मपरित्यागपूर्वक शरणागतिका ही उपदेश करते हैं। इस श्लोकके बहुत-से अर्थ हैं और वे सभी ठीक हैं। यदि कहा जाय कि इसमें इन्द्रियके धर्मोंका त्याग बतलाया गया है तो अर्जुन फिर भी इन्द्रियोंसे उनके विषय ग्रहण करता ही था। यदि कहा जाय कि सर्व-कर्म-संन्यासकी बात कही गयी है तो अर्जुनने वैसा भी किया नहीं। यदि कहा जाय कि यह बात अर्जुनके लिये नहीं कही गयी, अपितु उन्हें लक्ष्य करके अन्य सब मुमुक्षुओंके लिये कही गयी थी तो भगवान् स्वयं ही ऐसा क्यों कह रहे हैं कि मैं तेरे अत्यन्त हितकी बात करता हूँ।

अतः ऐसा कहकर भगवान्ने शरणागतिकी ही बात कही है। इसमें सारे धर्मोंको त्यागकर केवल वही धर्म रहता है जो भगवान् कहें। भगवान् कहते हैं कि सारे धर्मोंका आश्रय छोड़कर मेरे ही शरण हो जा, फिर तेरे सारे पाप-पुण्योंकी जिम्मेवारी मेरे ऊपर है। शरणागत होनेपर तो कोई पाप रहता नहीं, क्योंकि तब तो सारी क्रियाएँ भगवान्के लिये ही की जाती हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९।२७)

जो सारे काम भगवान्के लिये ही करता है, भगवान्के लिये ही भोजन करता है, भगवान्के लिये ही हवन करता है और भगवान्के लिये ही दान तथा तप करता है—इस प्रकार जिसकी सारी चेष्टाएँ भगवदर्थ ही होती हैं, उसे कोई पाप कैसे लग सकता है? जब हम अपना घर किसी दूसरे व्यक्तिको दान कर देते हैं तो उसकी मरम्मतका भार भी उसीपर आ जाता है। भाव रहना चाहिये सर्वार्पणका। सर्वार्पणमें कोई शर्त नहीं रहनी चाहिये। भगवान् हमें मोक्ष दे दें, स्वर्ग दे दें, अमुक वस्तु दे दें—ऐसा कहना बहुत कुछ अपने लिये रखकर कहना होता है। वहाँ सर्व-समर्पण नहीं है। ये अहंकारकी बातें हैं। जहाँतक अहंकार है वहाँतक सर्वस्व-समर्पण नहीं है। इसमें यह कहनेकी भी गुंजाइश नहीं है कि हमने अर्पण किया। सर्व-समर्पण हो जानेपर तो हम भगवान्के हो जाते हैं, भगवान्मय हो जाते हैं और वही हो जाते हैं। जिस प्रकार पतिव्रता पत्नीपर पतिका पूर्ण अधिकार रहता है, पतिका गोत्र ही उसका गोत्र हो जाता है, उसी प्रकार शरणागत भक्तपर भगवान्का पूर्ण अधिकार हो जाता है—भगवान्का गोत्र ही उसका गोत्र है। इसीसे भगवद्धर्मकी दीक्षा लेनेपर कम-से-कम निम्न चार बातें अवश्य होनी चाहिये—

(१) कुछ भी न चाहे—मुक्तिकी भी इच्छा न करे।
(२) भगवान्के प्रत्येक विधानमें आनन्द माने।
(३) भगवान्के किसी विधानमें विरोध न हो।
(४) निरन्तर भगवत्स्मरण रहे।

भगवान् ही अब भी सब कुछ करते हैं, परंतु हम उसकी जिम्मेवारी अपने ऊपर लिये रहते हैं। इसीलिये हमें अपने कर्तव्यका अभिमान रहता है और हमें उसका फल भी भोगना पड़ता है। अतः हमें यह सोचनेका कोई हक नहीं है कि भगवान् ऐसा करें—वे ऐसा करते तो अच्छा होता। वे जैसा करें हमें उसीमें प्रसन्न रहना चाहिये। गीताका पर्यवसान प्रपत्तिमें ही है।

अर्जुन जन्मभर श्रीकृष्णके साथ रहे; किंतु जब उन्होंने कहा—**'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'** (गीता २।७) तो भगवान्ने उनका सारा मोह नष्ट कर दिया और जब अन्तमें अर्जुनने कहा—

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।'

(गीता १८।७३)

तो बस, गीता समाप्त हो गयी। इस प्रकार हमें चाहिये कि यह जो आग लगी है, इससे भगवान्के प्रति सर्वस्व-समर्पणका भाव जाग्रत् करें उसमें जो चीजें जल गयी हैं, उनके लिये क्षोभ न करके उन्हें भगवान्को समर्पण हुई ही समझें। यदि हम मृत्युको निर्वाण मानें तो हमारा निर्वाण हो सकता है। इसी प्रकार यदि हम इसे भगवत्समर्पण मानेंगे तो यह सब भगवान्को ही समर्पण हो जायगा। गीतामें भगवान्ने कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(८।५)

अर्थात् जो पुरुष अन्तिम समयपर मेरा स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करके जाता है, वह मेरा चिन्तन करनेके कारण मेरे ही स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। अतः हमें निश्चिन्त रहना चाहिये। भगवान्का स्मरण करते हुए जिस समय भी हमारी मृत्यु होगी, हम भगवान्को ही प्राप्त होंगे।

(श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीकी डायरीसे)

श्रीरामचरितमानसकी दैनिक जीवनमें उपयोगिता

(डॉ० श्रीरामचन्द्रामजी त्रिपाठी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

सनातन संस्कृति और धर्मके संरक्षक प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजीका आविर्भाव परम पावन भारतभूमिपर उस समय हुआ, जिस समय यवनोंके प्रभुत्वसे हिंदूधर्मका विनाश हो रहा था। जन-मानसमें त्राहि-त्राहि मची हुई थी, मन्दिरोंकी मर्यादा नष्ट हो रही थी। हिंदूजन मौन होकर इस अत्याचारको सहन करनेके लिये विवश थे। उनकी विवशताकी वेदना करुण होकर पुकार रही थी—

'किं करोमि क्व गच्छामि को मे रक्षां करिष्यति।'

ऐसी महाविपत्तिके समय भगवान्‌की असीम कृपासे पूज्यपाद गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसकी रचना करके भारतके कोने-कोनेमें ज्ञानमय भक्तिकी अमृतमयी सरस धारा बहाकर संत्रस्त जन-मानसको जीवनीशक्ति प्रदान की। तुलसीदासजीने अपने मानसमें **'नानापुराणनिगमागमसम्मत'** के निश्चयके अनुसार संस्कृति और धर्मसंरक्षणके लिये जीवनके सभी आवश्यक तत्त्वों तथा ज्ञान, कर्म और उपासना आदिका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। उनकी भक्ति भक्त और भगवान्‌के बीचकी अभेद्य कड़ी है। उनकी ज्ञानमयी भक्तिमें लोककी महान् समन्वयकारिणी भावना प्रतिष्ठित है। मानसमें लोक-परलोकका, अन्तर-बाह्यका, राग-वैराग्यका, ज्ञान-भक्तिका, साधना और कर्मका, उपासना तथा योगका, जड़ और चेतनका महान् मङ्गलकारी समन्वय निहित है।

वास्तवमें महात्मा तुलसीदासजीने कलियुगमें प्राणियोंके परित्राणके लिये अमोघ उपायके रूपमें भगवान् श्रीरामकी भक्तिको अपनाया, जिसमें श्रीसीतारामकी अभिन्नता है। उनकी अमृतमयी भक्तिकी धारामें लोककल्याण और लोकमङ्गलकी भावना अनवरत प्रवाहित हो रही है, जिसमें विश्वबन्धुत्वकी स्थापना और भागवद्धर्मकी प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। धर्मके व्यापक स्वरूपको परिभाषित करते हुए उन्होंने श्रीरामचरितमानस (२। ९५। ३, ५)-में लिखा है कि—

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥
सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥

इस प्रकार श्रीरामचरितमानसका मूल धर्म सनातन सत्यसे साक्षात्कार करानेवाला है। परमपावन भारतभूमिके महापुरुषोंने करोड़ों कष्ट सहन करके परम मङ्गलमय धर्मकी रक्षा की और सत्-तत्त्व प्राप्त करके वे कृतकृत्य हुए। संतशिरोमणि गोस्वामीजीके मानसमें परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीरामने 'शब्दावतार' के रूपमें प्रवेश किया, जिससे गोस्वामी तुलसीदासजीकी सम्पूर्ण आध्यात्मिक रचना-प्रक्रिया इस लोकमें सरिताके जलकी तरह प्रवाहित हुई—

चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥

(रा०च०मा० १। ३९। ११)

गोस्वामीजीने 'लोकमानस' की रचना करके लोककल्याणके लिये लोकनायक भगवान् श्रीरामको प्रतिष्ठित किया। उनके श्रीराम अनादि, अनन्त, अव्यक्त, अज्ञात, निराकार होते हुए भी अखिल ब्रह्माण्डके नायक हैं। वे भक्तकी आर्त पुकारपर अपना 'दिव्य धाम' छोड़कर लोकमें आकर लोककी तरह आचरण करते हैं। श्रीरामकी सम्पूर्ण क्रियाओंमें लोककल्याण निहित है। संतका जीवन भी लोकमङ्गल और लोककल्याणके ही लिये होता है—

संत बिटप सरिता गिरि धरनी । पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥

(रा०च०मा० ७। १२५। ६)

सचमुच संतका जीवन परहितके लिये ही होता है। श्रीगोस्वामीजीकी सम्पूर्ण रचना-प्रक्रियामें और उनके सत्-काव्यमें लोकका परम मङ्गल निहित है। उन्होंने इसलिये रचना नहीं की कि उनका नाम लोकमें आदरके साथ लिया जाय या फिर अमर हो जाय। इस प्रकारकी कोई सांसारिक मान-बड़ाईकी भावना उनके अंदर नहीं थी। उनके ग्रन्थोंकी भाषा और उनके शब्दोंमें चैतन्य शक्तिका इतना विलास है कि मानो स्वयं ब्रह्म ही प्रस्फुटित हो प्रेरणा कर रहे हों और उनकी परम मङ्गलकारी ध्वनिकी अनुगूँज सम्पूर्ण लोकमें गूँज रही हो।

भगवान् श्रीरामका जीवन इस लोकमें 'कर्मयोगी' का था; जिसमें त्याग, पवित्रता, सत्य और तपस्या आदि पवित्र भावोंका संनिवेश है। देव-तुल्य अयोध्याके राजसिंहासनके अधिकारी भगवान् श्रीराम माता-पिताके आदेशसे, त्याग और तपस्यासे भरे हुए वनगमनका जीवन हर्षके साथ स्वीकार करते हैं—

भगवान् श्रीराम लोकके प्राणियोंको सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि 'हे भाई! माता-पिताका आदेश पुत्रके लिये परम मङ्गलकारी होता है।' वनगमनके आदेशसे

प्रसन्नचित्त और प्रसन्नवदन भगवान् श्रीरामके मनकी उपमा देते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥

(रा०च०मा० २। ५१)

हाथीके बच्चेकी तरहसे भगवान् श्रीरामका मन है। जिस तरह हाथीके बच्चेके पैरसे जंजीर छूट जाय और वह हर्षके साथ जंगलकी तरफ भागता है, उसी प्रकारसे भगवान् श्रीरामका मन वनगमनके आदेशसे उल्लसित हो रहा है; क्योंकि उनके मनसे राजरूपी अलान टूट गयी। श्रीरामके वनगमनके समय पूरा लोक उनके साथ हो गया। सम्पूर्ण प्रकृति उनके साथ हो गयी। यह सब त्याग और तपस्याका परिणाम है। वास्तवमें लोकमें श्रीरामका श्रीरामत्व वनगमनमें ही तपता है। जंगलके सभी प्राणी अपने बीच शक्ति, शील, सौन्दर्यसे युक्त व्यक्तित्वको देखकर अपनेको सुरक्षित महसूस करते हैं और कहते हैं—

अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय॥

(रा०च०मा० २। १३५)

जंगलमें भगवान् श्रीरामको देखकर जंगलके सभी प्राणियोंका भय दूर हो जाता है। वे निर्भय हो जाते हैं। जंगलमें श्रीरामकी सहजताको परिभाषित करते हुए पूज्य गोस्वामीजी लिखते हैं—

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥

(रा०च०मा० २। १३६)

इस प्रकार गोस्वामीजीके श्रीराम अलौकिक होते हुए भी लौकिक हैं। उनका परम पावन मङ्गलकारी कथा-चरित्र विश्वका कल्याण करनेवाला है। इसी पावन कथाको माता पार्वती विनयपूर्वक भगवान् शङ्करसे पूछती हैं—

कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥

(रा०च०मा० १। १०७। ६)

सचमुच भगवान् श्रीरामकी कथामें विश्वबन्धुत्वकी भावना, विश्वका कल्याण और परम मङ्गल निहित है। अतः इसे अपने दैनन्दिन चर्यामें उतारना चाहिये। इससे इसकी उपयोगिता हस्तामलकवत् स्पष्ट उजागर हो जायगी।

'एक ही ध्येय है एक ही धारणा'

(श्रीरामनारायणजी वर्मा)

जन्मसे मृत्युतक बस, यही कामना, एक भी क्षण न जाय बिना साधना॥
श्वाससे नाभितक नाम चलता रहे, ध्यानमें रूपका सिन्धु हिलता रहे।
चाहमें चन्द्रका बिम्ब पलता रहे, इष्ट-पग प्राणका दीप जलता रहे।
पाँवड़ोंपर प्रणति-छंद है छापना, एक भी क्षण न जाय बिना साधना॥ १॥
पर न कोई उदय पुण्य अबतक हुआ, सेमरा-सा कुसुम गंधके बिनु जिया।
चाह है अब क्षणोंमें वही सब मिले, नादमें, ज्योतिमें, प्राण-शतदल खिले।
द्वन्द्वकी दाह किञ्चित नहीं तापना, एक भी क्षण न जाय बिना साधना॥ २॥
अब मुझे ग्राह-गजकी कथा चाहिये, अब मुझे द्रौपदीकी व्यथा चाहिये।
उक्त क्षणके लिये मैं जिऊँगा बहुत, उक्त क्षणके लिये मैं तपूँगा बहुत।
चाहे मन्वन्तरोंसे पड़े सामना, एक भी क्षण न जाय बिना साधना॥ ३॥
मैं नहीं चाहता कि विषय-विष पिऊँ, मैं नहीं चाहता कि निरर्थक जिऊँ।
मन-कमलपर कृपाकी किरणको धरूँ, मार्गके कंटकोंसे न किञ्चित डरूँ।
एक ही ध्येय है एक ही धारणा, एक भी क्षण न जाय बिना साधना॥ ४॥
जो मिला जन्म-जन्मोंसे अर्पित तुम्हें, भार ढोया बहुत अब समर्पित तुम्हें।
पुण्य, यश और बल, अर्थ अर्पित तुम्हें, नाव हलकी रहे संतरण है तुम्हें।
दृष्टिमें ध्रुव-किरणकी अटल भावना, एक भी क्षण न जाय बिना साधना॥ ५॥

साधकोंके प्रति—

सच्ची बात

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक साधकका प्रश्न आया है कि सब कुछ भगवान् ही हैं—यह बात बुद्धिसे तो समझमें आती है, पर इसका स्वयंसे अनुभव कैसे हो? स्वयंसे अभी अनुभव न हो तो कोई बात नहीं, चिन्ता मत करो। बुद्धिसे भी समझमें आये या न आये, आप इतना मान लो कि बात यही सच्ची है। हमारे अनुभवमें नहीं आयी, समझमें नहीं आयी तो भी बात तो यही है। हमारी समझमें कमी है, तत्त्वमें कमी नहीं है। इसलिये सच्ची बात अवश्य बैठेगी, हटेगी नहीं और किसीके कहनेसे माननेमें न आये तो मेरे कहनेसे मान लो। इसमें अभ्यास नहीं है। अभ्याससे अनुभव नहीं होता; क्योंकि अभ्यास जड़से होता है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धिके बिना अभ्यास नहीं होता। जड़से चेतनकी प्राप्ति नहीं होती। चेतनकी प्राप्ति चेतनसे ही होती है। जड़से सांसारिक काम होता है। परमात्माको तो केवल मानना है, स्वीकार करना है; क्योंकि वह तो है ही ऐसा! यह गङ्गाजी हैं—इसमें अभ्यास क्या है? पहले हम इसको एक नदी मानते थे। अब किसीने बता दिया कि यह गङ्गाजी हैं तो माननेमें क्या जोर आया? ऐसे ही मान लो कि यह सब परमात्मा है। हमें अनुभव हो या न हो, बुद्धिमें आये या न आये, पर सच्ची बात तो सच्ची ही रहेगी। उसको कोई झूठी कर सकता ही नहीं। कम-से-कम सत्संग करनेवाले भाई-बहन तो इस बातको मान ही सकते हैं।

सब कुछ भगवान् ही हैं—इसको स्वीकार कर लो, बस, और कुछ नहीं करना है। स्वीकार करनेमात्रसे काम हो जायगा; क्योंकि बात है ही ऐसी। यह किसीकी बनायी हुई नहीं है। यह सब परमात्मा है—यह कच्ची बात नहीं है, पक्की बात है। इसलिये इसमें संदेह, संशय करनेकी जरूरत नहीं है। इसको एक बार मान लिया तो बस, मान ही लिया! मनुष्य अग्निकी साक्षीमें विवाह करता है। ब्राह्मण कन्यासे कह देता है कि बेटी! तेरे पति ये हैं तो बस, वह उसको सदाके लिये अपना पति मान लेती है। अपना पति मानते ही उसका गोत्र बदल जाता है। फिर वह माँ बन जाती है, दादी बन जाती है, परदादी बन जाती है। पोते-परपोतेकी छोरी आती है तो दादीजी कहती हैं—***'घर खोयो पराई जायी'*** इस परायी जायी (पराये घरमें जन्मी) छोकरीने मेरा घर खो दिया, घर बिगाड़ दिया! अब उस दादीजीसे पूछो कि माँजी! आप तो घरजायी हो? दादीजीको याद ही नहीं है कि मैं भी परायी जायी हूँ! वह तो यही देखती है कि मैं दादी-परदादी हूँ और यह मेरा पोता-परपोता है, यह मेरा कुटुम्ब है! इसी तरह आप सच्ची बातको स्वीकार कर लो, फिर सब कुछ हो जायगा। भीतरसे स्वीकार कर लो कि यह सब कुछ भगवान् ही हैं। स्वीकृति करनेमें शरीरकी कोई जरूरत नहीं है। शरीर बीमार हो या स्वस्थ, स्वीकृति करनेमें कोई बाधा नहीं लगती। सब कुछ परमात्मा ही हैं—यह स्वीकार कर लो तो 'संसार है'—यह भावना मिट जायगी और परमात्मा ही रह जायँगे, जो कि वास्तवमें हैं।

एक कहानी है। एक लड़का मुम्बईमें रहता था। उसके पिताजी दूर गाँवमें रहते थे। एक बार वह लड़का बीमार हो गया। पिताको बीमारीका समाचार मिला तो विचार किया कि चलो, जाकर मिल आयें। दैवयोगसे वे जिस धर्मशालामें ठहरे थे, उनका लड़का भी उसी धर्मशालामें पासवाले कमरेमें ठहर गया। लड़केको बड़ी खाँसी आ रही थी। पिताने आदमीको बुलाया और उससे कहा कि पासवाले कमरेमें कोई व्यक्ति खाँस रहा है, जिससे मेरेको नींद नहीं आती, इसको यहाँसे निकालो। वहाँके आदमीने उस लड़केको निकाल दिया। दूसरा कोई कमरा खाली था नहीं। अतः वह लड़का बेचारा बाहर जाकर बैठ गया। सुबह होनेपर पिता बाहर निकला। बाहर लड़केको बैठा हुआ देखा तो बोला, अरे! यह तो मेरा बेटा है! वह उसको अपने कमरेमें ले गया। जो लड़का पड़ोसमें

नहीं सुहाता था, उसको अब वह अपने कमरेमें ले गया! पहले पता नहीं था कि यह मेरा ही बेटा है, अब पता लग गया तो इसमें क्या देरी लगी? क्या अभ्यास करना पड़ा? ऐसे ही आप मेरे कहनेसे मान लो कि यह सब परमात्मा ही हैं।

गेहूँके खेतमें अनजान आदमीको घास दीखती है, पर जानकार आदमीको गेहूँ दीखता है। कारण कि मूलमें वह गेहूँ ही था और अन्तमें उसमेंसे गेहूँ ही आयेगा। ऐसे ही इस सृष्टिके आरम्भमें भी परमात्मा ही थे और अन्तमें भी परमात्मा ही रहेंगे, फिर बीचमें दूसरी चीज कहाँसे आयी? एक परमात्मा ही अनेक रूपोंसे प्रकट हुए हैं। इसलिये मन भी वही है, बुद्धि भी वही है, प्राण भी वही है, इन्द्रियाँ भी वही है, शरीर भी वही है। स्थूलशरीर भी वही है, सूक्ष्मशरीर भी वही है और कारण-शरीर भी वही है। सब कुछ वह परमात्मा ही है। दूसरा कोई है ही नहीं। आपको दीखे या न दीखे, केवल यह मान लें कि परमात्मा ही हैं। फिर दीखने लग जायगा; क्योंकि वास्तवमें है ही वही। इसमें कोई असत्य नहीं है, ठगाई नहीं है, धोखा नहीं है। बिलकुल सच्ची बात है। साक्षात् परमात्मा-ही-परमात्मा हैं। भगवान्‌ने सृष्टि बनायी तो कहींसे बिल्टी नहीं मँगायी, कहींसे वस्तुएँ नहीं मँगायीं। आप ही आपमेंसे बन गये। एक ही अनेकरूपसे प्रकट हो गये—'**सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति**' (तैत्तिरीय० २।६)। वे एक भगवान् इतने रूपोंमें हो गये कि उनकी गणना नहीं कर सकते—

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

(मानस, बाल० २०१)

हरि की लीला बड़ी अपार।
बन गये आप अकेले सब कुछ, नाम धरा संसार॥
मात पिता गुरु स्वामी बनकर, करे डाँट फटकार।
सुत दारा अरु सेवक बनकर, खूब करे सतकार॥ १॥
कभी रोग का रूप बनाकर, बनते आप बुखार।
कभी वैद्य बन दवा खिलाते, आप करे उपचार॥ २॥
कभी भोग सुख मान बड़ाई, हाजिर में नर नार।
कभी दुखों का पहाड़ पटकते, मचती हाहाकार॥ ३॥
कभी संत बनकर जीवों पर, कृपा दृष्टि निहार।
अगनित जनमों का दुख संकट, छन महँ देवे टार॥ ४॥
कभी धरनि पर संतन के हित, धर मानुष अवतार।
अजब अनोखी लीला करते, सुमिरत हो भव पार॥ ५॥
अगनित स्वाँग रचाते हरदम, धन्य बड़े सरकार।
ऐसे परम कृपालू प्रभू को, बिनवउँ बारम्बार॥ ६॥

भगवान् ही अनेक रूपोंमें लीला कर रहे हैं। न मैं है, न तू है, न यह है, न वह है। एक भगवान् ही हैं। मैं भी वही है, तू भी वही है, यह भी वही है, वह भी वही है। उनके सिवाय दूसरा कहाँसे आये? कैसे आये? दूसरा कोई है ही नहीं।

एक साधु थे। वे कहीं जा रहे थे। रास्तेमें लघुशंका करनेके लिये वे एक खेतमें बैठ गये। खेतके मालिकने देखा कि जो हमारे खेतसे मतीरा चुराता है, वह यही है। उसने आकर पीछेसे लाठी मार दी। जब देखा कि ये तो बाबाजी हैं तो माफी माँगने लगा। बाबाजी बोले कि तुमने मेरेको मारा ही नहीं, तुमने तो चोरको मारा है। वह बोला—अब क्या करूँ महाराज! बाबाजी बोले—अब तेरी जैसी मरजी! वह बाबाजीको गाड़ीमें बिठाकर शहरमें ले गया। उनकी मलहम-पट्टी करायी। बादमें एक दूसरा आदमी दूध लेकर आया और बोला कि महाराज! दूध पी लो। बाबाजी बोले—तू बड़ा अजीब है! कभी लाठी मारता है, कभी दूध लाता है! तेरी लीला विचित्र है! वह आदमी बोला कि नहीं महाराज! मैंने लाठी नहीं मारी! बाबाजी बोले कि तू बता, दूसरा आया कहाँसे? तू ही था, मैं जानता हूँ! वह आदमी घबड़ा गया कि बाबाजी मेरेको पकड़ा देंगे, फँसा देंगे। वह बार-बार कहे कि महाराज! मैंने नहीं मारा, पर बाबाजी उसकी बात माननेको राजी नहीं थे। बाबाजी यही कहते कि मैं जानता हूँ, तू ही था! यह सब तेरा ही काम है। बाबाजीकी दृष्टि भगवान्‌पर थी। भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई कहाँसे आये?

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—यह 'अपरा प्रकृति' है और जीव 'परा प्रकृति' है। ये दोनों प्रकृतियाँ भगवान्‌का स्वभाव होनेसे भगवत्स्वरूप ही हैं। इसलिये सब रूपोंमें भगवान्‌को देखकर मस्त हो जाओ! हरदम मौजमें रहो, आनन्दमें रहो! वाह, प्रभु वाह!

आनन्द हो गया, कृपा हो गयी कि सब जगह, सब समय आपके ही दर्शन हो रहे हैं! पहले हम इस बातको जानते नहीं थे, अब आपकी कृपासे यह बात मिल गयी! अब पता लग गया कि प्रभो! आप ही हो, आप ही हो, आप ही हो! जड़ भी आप ही हो, चेतन भी आप ही हो। स्त्री भी आप ही हो, पुरुष भी आप ही हो। माँ भी आप ही हो, बाप भी आप ही हो। दादी भी आप ही हो, दादा भी आप ही हो। हमारे सब कुटुम्बी आप ही हो। पशु भी आप ही हो, पक्षी भी आप ही हो। जलचर-नभचर-थलचर भी आप ही हो। उद्भिज्ज-स्वेदज-अण्डज-जरायुज भी आप ही हो। आप ही नदी हो, आप ही पहाड़ हो, आप ही समुद्र हो। आप ही सूर्य हो, आप ही चन्द्रमा हो, आप ही तारा हो। आप ही मनुष्य हो, आप ही असुर हो। आप ही भूत-प्रेत हो, आप ही राक्षस हो, आप ही देवता हो। मैं भी आप ही हूँ, तू भी आप ही हो, यह भी आप ही हो, वह भी आप ही हो। ऊपर भी आप ही हो, नीचे भी आप ही हो। पूर्वमें भी आप ही हो, पश्चिममें भी आप ही हो, उत्तरमें भी आप ही हो, दक्षिणमें भी आप ही हो। ईशानमें भी आप ही हो, नैर्ऋत्यमें भी आप ही हो, आग्नेयमें भी आप ही हो, वायव्यमें भी आप ही हो। भूतकाल भी आप ही हो, वर्तमानकाल भी आप ही हो, भविष्यकाल भी आप ही हो। कालसे अतीत भी आप ही हो। जंगल भी आप ही हो, मैदान भी आप ही हो। इस मण्डप (पण्डाल)-के रूपमें भी आप ही हो। बत्ती भी आप ही हो, पंखा भी आप ही हो। खम्भा भी आप ही हो, वृक्ष भी आप ही हो। मकानरूपमें भी आप ही हो। जो दीखता है, वह भी आप ही हो और जो नहीं दीखता है, वह भी आप ही हो। सिंहरूपमें भी आप ही हो, रीछरूपमें भी आप ही हो, बन्दररूपमें भी आप ही हो। साधुरूपमें भी आप ही हो, गृहस्थरूपमें भी आप ही हो। अन्नरूपमें भी आप ही हो। तरह-तरहके फलोंके रूपमें भी आप ही हो। भूखमें भी आप ही हो, प्यासमें भी आप ही हो। सोते हुए भी आप ही हो, बैठे हुए भी आप ही हो।

तरह-तरहके रूपोंमें आप ही हो। आपके सिवाय कोई है ही नहीं, हुआ ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं। सब रूपोंमें केवल आप-ही-आप हो। राग-रागिनी भी आप ही हो। ताल-स्वर भी आप ही हो। बाजा भी आप ही हो। गानेवाले भी आप ही हो, सुननेवाले भी आप ही हो। वक्ता भी आप ही हो, श्रोता भी आप ही हो। गाँव भी आप ही हो, घर भी आप ही हो। मिट्टी भी आप ही हो, बर्तन भी आप ही हो। अस्त्र-शस्त्र भी आप ही हो। खेल भी आप ही हो, खेलनेवाले भी आप ही हो, खिलौने भी आप ही हो। हे प्रभो! आपने कैसे-कैसे रूप धारण किये हैं! कितने-कितने रूप धारण किये हैं! अनन्त-अनन्त रूपोंमें केवल आप ही हो! आप ही हो!

खाली हाथ कैसे लौटा दे

एक बार महाराजा रणजीत सिंह कहीं जा रहे थे कि सामनेसे एक ईंट आकर उन्हें लगी। सिपाहियोंने चारों ओर नजर दौड़ायी तो एक बुढ़िया दिखायी दी। उसे गिरफ्तार करके महाराजके सामने हाजिर किया गया। बुढ़िया महाराजको देखते ही डरके मारे काँप उठी। बोली—सरकार! मेरा बच्चा कलसे भूखा था, घरमें खानेको कुछ न था, पेड़पर पत्थर मार रही थी कि कुछ बेर तोड़कर उसे खिलाऊँ, किंतु वह पत्थर भूलसे आपको आ लगा। मैं बेगुनाह हूँ, सरकार! मुझे क्षमा किया जाय। महाराजने कुछ देर सोचा और कहा—वृद्धाको एक हजार रुपया देकर ससम्मान छोड़ दिया जाय। यह सुनकर सारे कर्मचारी स्तम्भित रह गये। आखिर एकने पूछ ही लिया—महाराज! जिसे दण्ड मिलना चाहिये, उसे रुपये दिये जायँगे?

रणजीत सिंह बोले—'यदि निर्जीव वृक्ष पत्थर लगनेपर मीठा फल देता है तो पंजाबका महाराजा उसे खाली हाथ कैसे लौटा दे!'

—मुकेशमोहन तिवारी

सत्य जो सरिता बन गया

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

गौ-यूथपति 'नन्द' ने गायोंको रुकने हेतु तेज ध्वनिमें संकेत किया 'रुक रुक' और विशाल गौसमूहके सर्वदा आगे-आगे चलनेवाली सुघड़ देहयष्टियुत, हृष्ट-पुष्ट, सदा संतुष्ट और परितृप्त दिखनेवाली गौ 'नन्दा' (यही नाम रखा था उसके स्वामी नन्दने उसका) ने कान पीछे किये और रुक गयी। एक गम्भीर गिराका संक्षिप्त हुंकार उसके मुखसे निकला—जैसे सभीको रुकनेका आदेश दे रही हो। विशाल गौ-समूह रुक गया।

नन्दसहित सभी गोप इसी स्थलपर पड़ावके पक्षमें थे। पर्याप्त गोचर भूमि, हरित दूर्वाका विशाल मैदान और सरस्वती सरिताका तट। विश्रामकी दृष्टिसे गौ-समूहके लिये बाड़ा बना दिया गया। ग्वालोंने भी समीप ही घास-फूँसकी कुटियाएँ बनाकर आवास-व्यवस्था पूर्ण कर ली। सम्पूर्ण वनप्रान्त गौओंके रँभानेकी कर्णप्रिय ध्वनिसे निनादित हो उठा।

नन्दा विशेष प्रसन्न थी। अभी आठ दिन पूर्व ही उसने माँ बननेका प्रथम सौभाग्य प्राप्त किया था। उसका अङ्ग-सौष्ठव देखते ही बनता था। स्फटिक-सदृश श्वेतवर्णी स्थूल देह। प्रतिदिनकी भाँति सदा झुण्डसे आगे-आगे चलनेवाली नन्दा निर्भीकतापूर्वक नीचे मुँह किये घास चरती बढ़ी जा रही थी। दूर्वाका मैदान पार कर अकेली ही पहाड़ीकी तलहटीतक निकल आयी थी। उसने मुँह उठाकर देखा, झुण्ड कहीं नजर नहीं आ रहा था। सम्भवतः वह झुण्डसे बिछुड़ गयी है। दूर बहुत दूर मद्धिम स्वरमें गायोंके गलेमें बँधी घंटियोंकी टुन-टुन सुनायी दे रही थी। वह शीघ्रतापूर्वक उस ओर भागनेको उद्यत हुई, परंतु अभी उसने उस दिशामें मुँह मोड़ा ही था कि सामने विशालकाय व्याघ्रको देखकर चकित रह गयी। उसने अपनी जीभ निकालकर गर्दन झुका दी। चन्द्रमाके समान कान्तिवाले अपने बछड़ेका स्मरणकर उसका गला भर आया। गद्गद स्वरमें पुत्रके लिये हुंकार करने लगी। आँखोंसे अश्रुधारा बह निकली, पर विवश थी, निष्ठुर व्याघ्र समक्ष खड़ा था जो किसी भी क्षण जीवन-लीला समाप्त करनेको आतुर वह्नि-नयनोंसे निहार रहा था।

—'अरी गाय! मैं तुझे तेरे समूहसे अलगकर घसीटकर यहाँ नहीं लाया हूँ। तू स्वयं यहाँ आयी है। इससे स्पष्ट है कि संसारके सभी प्राणी कर्मोंके वशीभूत हैं, अतः तेरी मृत्यु भी आज ही नियत है। शोक और रुदन करना व्यर्थ है।'
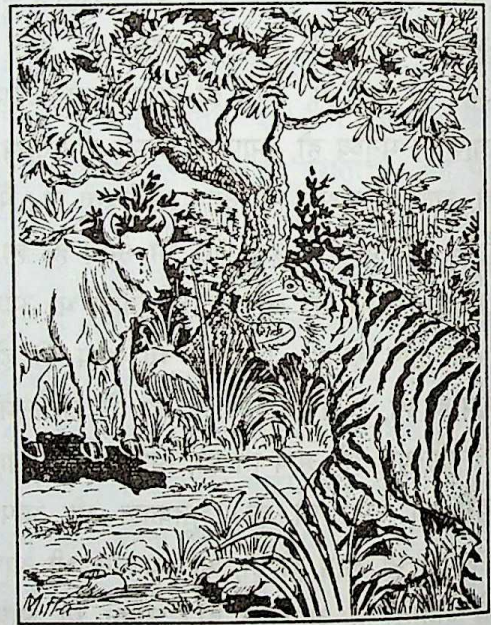
व्याघ्रका कथन सुनकर नन्दाने विनम्रतासे कहा—'वनराज! तुम्हें नमस्कार है। मैं जानती हूँ कि तुम्हारे सम्मुख आये प्राणीकी रक्षा असम्भव है। मुझे अपने जीवनकी चिन्ता नहीं है। मृत्यु तो अवश्य होगी ही, किंतु मृगेन्द्र! अभी नयी अवस्थामें ही मैंने एक बछड़ेको जन्म दिया है। पहली बियानका बच्चा होनेसे वह मुझे बहुत प्रिय है। अभी उसने घास चरना नहीं सीखा है। दूध ही एकमात्र उसका जीवन-सम्बल है। इस समय गोष्ठमें बँधा वह मेरी बाट निहारकर जोर-जोरसे 'मा-मा' कहकर मुझे पुकार रहा होगा। भूखसे पीड़ित मेरी राह देख रहा होगा। बन्धन छुड़ानेको आतुर होगा। मेरे न रहनेपर वह कैसे जीवित रहेगा? पुत्र-स्नेहके वशीभूत मैं उसे दूध पिलाना चाहती हूँ। मुझे अल्प अवधिके लिये जाने दो। मैं उसे दूध पिलाकर,

उसका शरीर चाटकर अपनी सखियोंकी देखरेखमें उसे सौंपकर तुम्हारे पास लौट आऊँगी। मैं शपथपूर्वक तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि अगर मैं न लौटूँ तो मेरी वही गति हो जो ब्राह्मण तथा माता-पिताका वध करनेवालेकी, विष देनेवालेकी, कथामें विघ्न डालनेवालेकी और घर आये मित्रको निराश लौटा देनेवालेकी होती है।'

सिंहने शपथपर विश्वासके स्वरमें सहमति प्रकट करते हुए कहा—'तुम सत्य और धर्मकी दुहाई दे रही हो अतः मैं तुम्हें अपने बछड़ेसे मिलनेहेतु मुक्त करता हूँ। आशा है अपने वचनोंका पालनकर शीघ्र लौट आओगी। जाओ, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।'

पुत्र-वत्सला धेनु नन्दा शीघ्रतापूर्वक अपने सुतके पास आयी। उसका समस्त शरीर कम्पायमान हो रहा था। वह शोक-सागरमें डूबी दीनभावसे बार-बार डँकारती थी। गोष्ठमें बछड़ेकी पुकार सुनकर वह उस ओर दौड़ी। निकट पहुँचकर नेत्रोंसे आँसुओंकी धार फूट पड़ी। माताको इस तरह संतप्त देख बछड़ेने पूछा—'मा! आज तुम्हें क्या हो

गया है? बहुत भयभीत हो। किसीने कुछ कह दिया है क्या? या कोई झगड़ा हो गया? पर मेरी प्यारी मा! तुम तो सभीकी प्रिय हो! बताओ न मा, क्या हो गया है?'

'बेटा! स्तनपान करो। यह हमारी अन्तिम भेंट है। आजसे तुम्हें माताका दर्शन दुर्लभ हो जायगा। कलसे किसका दूध पियोगे पुत्र!' और नन्दाने सिंहको दिये वचनसहित समस्त विवरण कह सुनाया।

सुनकर बछड़ेने कहा—'मा! तुम्हारे अभावमें मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं है। अतः मैं भी तुम्हारे साथ अवश्य चलूँगा। मातासे बिछुड़े बालकके जीवनका क्या प्रयोजन? यदि व्याघ्र तुम्हारे साथ मुझे भी मार डालता है तो मुझे मातृभक्तोंकी उत्तम गति प्राप्त होगी।'

नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमं सुखम्॥
नास्ति मातृसमो देव इहलोके परत्र च।
एनं वै परमं धर्मं प्रजापतिविनिर्मितम्।
ये तिष्ठन्ति सदा पुत्रास्ते यान्ति परमां गतिम्॥

(१८। ३५३-३५४)

—माताके समान रक्षक, आश्रयप्रदाता, स्नेहदाता तथा सुख देनेवाला कोई नहीं। इहलोक या परलोकमें माताके समान कोई देवता नहीं। ब्रह्माजीद्वारा प्रस्थापित इस परम धर्मका पालन उत्तम गतिको देनेवाला है।

नन्दाने अपने प्रिय वत्सको अनेक प्रकारसे सान्त्वना दी और यह चेतावनी भी कि बेटा! लोभ, प्रमाद तथा अपरिचितपर विश्वास—इन तीनों कारणोंसे जगत्का नाश होता है, अतः इन दोषोंसे बचते रहना। तथा—

नखिनां च नदीनां च शृंगिणां शस्त्रधारिणाम्।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च॥

(१८। ३६३)

—तीक्ष्ण नाखूनोंवाले जीवोंका, सरिताओंका, सींगवाले पशुओंका, शस्त्रधारियोंका, कुलटा स्त्रियोंका तथा दूतोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। मैं अब जाती हूँ। बेटा! मेरी मृत्युसे घबराना मत, क्योंकि एक दिन सभीको कालके गालमें जाना ही है—

यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य तिष्ठति।
विश्रम्य च पुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः॥

(१८। ३६८)

—जैसे कोई पथिक छायाका आश्रय लेकर बैठ जाता है और विश्रामकर वहाँसे चल देता है, उसी प्रकार प्राणियोंका समागम होता है। इस प्रकार अनेकविध समझा-बुझाकर नन्दा पुनः उस स्थलपर जा पहुँची, जहाँ तीखी

दाढ़ों एवं भयंकर आकृतिवाला व्याघ्र मुँह बाये बैठा था। अभी नन्दा पहुँची ही थी कि बछड़ा भी अपनी पूँछ उठाये दौड़कर रँभाता हुआ अपनी मा और व्याघ्रके मध्य आकर खड़ा हो गया।

नन्दाने कहा—वनराज! मैं तुम्हारे समक्ष उपस्थित हूँ अब तुम अपनी काङ्क्षानुरूप क्षुधा-तृप्ति करो!

व्याघ्र इस असम्भव घटनाको देखकर आश्चर्यचकित था। उसने कहा—'कल्याणि! मैं तो स्वप्नमें भी ये नहीं सोच सकता था कि तुम पुनः लौटकर भी आओगी। तुमने मेरे ज्ञानचक्षु खोल दिये हैं। सत्यका आश्रय लेनेवालोंका कभी अमङ्गल नहीं होता। इसी सत्यके प्रभावसे मैंने तुम्हें अभयदान दिया। आजसे तुम मेरी बहिन और तुम्हारा यह पुत्र मेरा भानजा हो गया। शुभे! मुझे अपने किये पापोंपर पश्चात्ताप हो रहा है। बहिन! मुझे बताओ कि अपनी शुद्धिके लिये मैं कौन-सा प्रायश्चित्त करूँ?'

नन्दाने कहा—'भ्रातः! सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान तथा द्वापरमें यज्ञकर्म ही उत्तम प्रतिपादित किये गये हैं; परंतु कलियुगमें एकमात्र दान ही श्रेष्ठ है और दानमें भी सर्वश्रेष्ठ दान है—'अभयदान'।

यथा हस्तिपदे ह्यन्यत्पदं सर्वं प्रलीयते।
सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्र प्रतीयन्ते ह्यहिंसया॥

(१८।४४१)

—'बन्धु व्याघ्र! जैसे गजराजके पदचिह्नमें सभी प्राणियोंके पदचिह्न समा जाते हैं, उसी प्रकार अहिंसाद्वारा सभी धर्म प्राप्त हो जाते हैं। तुम सम्पूर्ण वन प्रदेशके एकच्छत्र अधिपति हो अतः ये बातें तुम भलीभाँति जानते हो पर केवल मुझसे पुष्टि करवा रहे हो।'

व्याघ्रने कहा—'बहिन! मैं पूर्वजन्ममें प्रभञ्जन नामक प्रतापी नरेश था। एक बार मृगयाके समय मैंने एक मृगीको जो नीचा मुँह किये अपने नन्हे शिशुको दुग्धपान करा रही थी, अपने तीक्ष्ण बाणसे बींधकर उसे मौतके घाट उतार दिया। उस हरिणीके शापसे मैं यह व्याघ्र-योनि भोग रहा हूँ। कल्याणि! तुम्हारा नाम क्या है?'

—'नन्दा'

नन्दाका नाम कानोंमें पड़ते ही व्याघ्र शापमुक्त होकर बल और रूपसे सम्पन्न पुनः प्रभञ्जन नरेशके रूपमें आ गया। इसी समय साक्षात् धर्म वहाँ प्रकट हुए और बोले—'नन्दे! सत्य-पालनका अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुतकर तुमने जो आदर्श प्रस्थापित किया है उसे जन-जनमें प्रतिष्ठित करने हेतु मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि इस स्थलपर बहनेवाली पुण्य-सरिता सरस्वतीका नाम आजसे नन्दा होगा।'

तीर्थराज पुष्करके समीप बहनेवाली नन्दा आज भी **'धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः'** का उद्घोष कर रही है।

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ७७१ से आगे]

एक अपु बीती घटना सुनाऊँ—इनकूँ (मेरे श्रीसद्‌गुरु भगवान् कूँ) चार वर्ष पीछैं पतौ परी कि, पण्डित जी हमकूँ गुरु मानैं हैं। यहाँ हमारे एक गुरु भाई श्रीगनेशीलालजी आये और कह रहे कि, बाबाने मोकूँ यौं साधन दियौं, यौं बतायौ, यह दियौ, वह दियौ! तब मैंनें कही कि, हमें नहीं खबर कि, मैंनें कबहूँ सम्मुख परिकैं कछु पूछ्यौ होय। पूज्य श्रीबाबा वहाँ, और मैं यहाँ। मैंने तौ सब कछु यहीं पाय लियौ।

श्रद्धाकी जितनी परिभाषाएँ हैं, उनमें सर्वोत्तम परिभाषा है कि ये (श्रीसद्‌गुरुदेव) हमसौं का चाहते? काहे कि करिवे में प्रसन्न और काहे के करवे में अप्रसन्न होते? जो इनकूँ रुचै, वही करनौं, जो आज्ञा करिदैं वही करनौं। और जो इनकूँ न रुचतौ होय, वह प्राण रहते कदापि नहीं करनौं। इनकी आज्ञा-पालनमें अपने कूँ पूर्णरूपेण झौंकि दैनौं, यही समर्पण है। यही है श्रद्धा। आगे जो होयगौ सौ है जायगौ, हमें तो आज्ञा सौं प्रयोजन।

हम जब हाथरस रहते, एकादशी करते। एक दिन बुद्धि ने सुझायौ कि आज व्रत है—परनिन्दा, परचर्चा, राजनीति, व्यर्थ-भाषण, कटु-भाषण का, ये सब व्रत में हैं?

वा दिन सौं नियम ही बनि गयौ कि या तौ मौन रहैंगे अथवा कोई आयकै बैठ्यौ कि श्रीभगवत्-चर्चा प्रारम्भ करि दई। जब तक वह रह्यौ, तब तक बकते ही रहे।

एक वाक्य मिल्यौ—तुमने जो लक्ष्य बनायौ है, का वह दृढ़तम है? का वा की निष्ठा है? यदि हाँ, तौ जितने कार्य करौगे, वे सब साधन ही माने जायँगे। यदि लक्ष्य में दृढ़ता है तो।

एक ने श्रीभगवान् बुद्ध की परीक्षा लैनी चाही। वह एक बिल्ली और चूहा पकरि कैं लायौ। श्रीभगवान् बुद्ध के सामने छोड़े। बिल्ली ने चूहा कूँ उठाय कैं छाती सौं लगाय लियौ। ये है श्रीप्राणनाथ के लगे भये प्रेमी की पहिचान। यदि तुम्हारौ श्रीप्राणनाथ के साथ प्रेम है गयौ है तौ संसार की सब वस्तुन के साथ तुम्हारौ प्रेम होयगौ ही। समस्त संसार तुम्हें प्रेममय दिखायी दैवे लगैगौ ही।

एक ही बात हाथ परी कि—इतने स्वार्थी बनौ कि अपने स्वार्थ के अतिरिक्त और कछु सूझै ही नहीं। अपनौं स्वार्थ है भजन करनौं। यद्यपि यह पथ सबसौं निरालौ है तथापि अपने कूँ सबसौं कछु-न-कछु सीखिवें कूँ मिलै है। चाहैं वह सकामी होय, चाहैं निष्कामी। या पथ में कर्तव्य-पालन ही मुख्य है। अपने काम शौच, स्नान, भोजन, शयन, सब जब चाहैं तब प्रेम सौं है जायँ हैं। किंतु इनके (श्रीभगवान्‌के) कार्य सब इनकी कृपा पै ही छोड़ि दिये जायँ हैं।

हम जा दरबार के हैं, वहाँ यह बात नहीं मानी जाय है। वहाँ तौ कर्तव्य-पालन पै ही जोर है। तुम्हें ही सब कुछ करनौं परैगौ। चाहै अब करौ, चाहै कोटिन जन्मन में करौ। करनौं सब तुमकूँ ही है। कृपा पै छोड़िकैं निश्चिन्त है जानौ, वहाँ नहीं मान्यौ जाय है। याकौ अर्थ यह नहीं कि कृपा कूँ भूलि जायँ। साधक इनकी कृपा कूँ न भूलै। जो कुछ मेरे द्वारा है रह्यौ है, वह सब आपकी कृपा ही तो कराय रही है। या प्रकार अपने कूँ अहंकार की शिकार है वे सौं बचातौ रहै। यदि कहुँ अभिमान करि बैठ्यौ कि मैं त्यागी हूँ, वैरागी हूँ, तपस्वी हूँ तौ याद राखौ कि आई भई कृपा फट् सौं लौटि जायगी और पतन है जायगौ।

जहाँ ताँईं संसारी लोगन सौं सम्पर्क है, अशान्ति-खेद तौ रहौगौ ही। जीव की परिभाषा है फैलाव। जीव जब श्रीभगवद्‌की ओर बढ़िवे लगै है, तब संकोच प्रारम्भ होय है। ईश्वर में तौ कोई कामना है नहीं। जब जीव हूँ कामना-रहित बनैगौ, तब ही मिलन सम्भव है। यह जीव के वश की बात नहीं, इतनौ बनि जानौं। अपने-आप जितनौं वैराग्य

कौ स्वाँग सजैगौ, उतनौं ही फँसैगौ। अपने-अपने बिचार हैं। हमारे बिचार सौं हृदय इनके ताँईं, यह प्रथमावस्था है। जो बस्तु इनसौं (प्रभुसौं) बचाय लई जायगी बाकूँ माया पकरि लेगी।

यह देह काहू कूँ दुखद न बनैं—यह उपाय है देहाध्यास छुड़ायवे कौ। काहू कौ अपमान न करै। नहीं तौ प्रेत बननौं परैगौ। प्रेत कौ सुभाव है—दूसरे कौ अपमान करनौं, दुख दैनौं। यदि काहू के सुख कूँ देखिकैं आँखिन में प्रसन्नता के आँसू आय जायँ, तो देव बनि जाओगे।

श्रीभगवत्-कृपा कोई वस्तु है। सब कछु करते भये अवलम्ब केवल श्रीभगवत्-कृपा कौ ही रहै। अर्थात् सब कछु करते भये अन्तर में भाव रहैं कि, सब आपकी कृपा ही तौ है, मैं का करिवे के लायक हूँ? तथापि अपने करिवे में किंचित हू प्रमाद नहीं।

प्रेमी कौ एक ही काम है, इनसौं दृढ़-सम्बन्ध, दृढ़-संकल्प, दृढ़-सान्निध्य बनायै राखनौं। और इनकौ एक ही काम है, उनकूँ पूर्ण करनौं। परन्तु सावधान! इतर-संकल्प न उठन पावैं। प्रेम-पथ में प्रधान है—चिन्तन। याकी बड़ी ही आवश्यकता है। साधक कौ परम कर्तव्य है सबसौं मैत्री। हृदय मृदु। रूक्षता न बनन पावै।

आज एक बात याद आई। है तो आत्मश्लाघा ही, पर है बड़े ही कामकी।

हम जहाँ पढ़े, जहाँ नौकरी करी, हाथरस में जहाँ रहे, प्रारम्भ में श्रीमिर्ची महाराजकी तिवारी पै रहे, और यहाँ हू यह बल्लभकुली मन्दिर है। जहाँ-जहाँ हू रहे, वहाँके ही लोग चाहते रहे कि पण्डितजी सब दिन हमारे यहाँ ही रहैं। अपने या अनुभव के आधार पै ही हमारी तुमसौं कहनौं है कि अपनी रहनी ऐसी बनावैं कि जहाँ रहैं वहाँ के लोगन कूँ प्रसन्न राखैं। सबकौ प्रिय बनिकैं ही रहे। ***'सबके प्रिय सबके हितकारी'*** या की बड़ी ही आवश्यकता है। और यासौं बहुत ही लाभ होय है। हमें यासौं बहुत ही लाभ मिल्यौ है। यासौं हम तुम सब सौं यह कह रहे हैं।

स्वयं कूँ निर्दोष समझनौं, यासौं बड़ौ कोई पाप नहीं।

गृहस्थ की रहनी—माता-पिता में पूरी श्रद्धा है और श्रीसद्गुरु में पूरी श्रद्धा है, तौ चाहै जहाँ रहै, वहीं भजन बन जायगौ। कुसंग सौ बचै, कामना कोई हो न। पवित्रतम जीवन होय, पत्नी के ताँईं पति ही ईश्वर है। पतिव्रत-धर्म कौ पालन होय। पति के ताँईं एक पत्नी व्रत-पालन होय। सतोगुणी (सात्त्विकी) आहार पाये, श्रीरामायणजी कौ पाठ होय। भजन-कीर्तन होय, साधु-सेवा होय। छोटे-बड़ेन कौ सम्मान करैं। बड़े-छोटेन पै प्यार करैं। यह सब काहू सन्त की आज्ञा सौं ही होय। उनके श्रीचरणन में पूर्ण श्रद्धा होय। कलह, क्रोध, विरोध काहू सौं होय न। जो कछु परिस्थिति आवै बाकूँ श्रीभगवत्-कृपा मानकैं सह लें। एक दूसरे सौं प्रेम होय, ऐसौ मानिकैं कि, यह मेरे बाबा कौ (या श्रीभगवान् कौ) है। इतनौं करि लेउगे तौ सुख, शान्ति, आनन्द इतनौं आवैगौ कि अकुताय जाओगे। झेल नहीं पाओगे। तुम करि सकौ हौ। वह घर वैकुण्ठ बनि जायगौ। यह रहनी एक नव विवाहिता दम्पति कूँ आशीर्वाद के रूप में गृहस्थ में प्रवेश करिवे सौं पूर्व आदेश करी।

श्रीगोविन्ददासजी ने कही कि बाबा अब आपके पीछैं कोई ऐसौ मार्गदर्शक नहीं रह जायगौ, जौ सही-सही मार्ग सुझाय सकै। इनकी बात सुनिकै उत्तर में इनसौं तौ कछु नहीं बोले, परंतु अपने निकट बैंठे एक बालक सौं बोले कि सुन रहे हौ? ये का कह रहे हैं? सावधान! समय बहुत ही दुस्तर है, कारण कि साधक पहिलें तौ चलै है श्रीसद्गुरु के अवलम्ब सौं। परंतु पीछैं चलिकैं अपने त्याग वैराग कौ बल है जाय है। श्रीसद्गुरु कौ अवलम्ब ही एक या पथ कौ आधार है। वह छूट्यौ और माया कूँ अवसर मिल गयौ। वह तौ अवसर देखती ही रहै है। फिर तौ जो कुछ होय है, वह सब देखते ही बनै है। यासौं दृढ़ श्रद्धा। दृढ़ अवलम्ब।

मृत्यु की अन्तिम स्वाँस तक अवलम्ब न छूटन पावै। फिर तौ यह पथ अति सरल-सुगम है जाय है। यह खबर ही नहीं चल पावै कि मंजिल कब पूरी है गयी। इतनौं सरल है जाय है यह पथ। यदि काहू सन्त की दृढ़ अवलम्ब होय तौ। पर यह बनि नहीं पावै। यासौं आज की बात ध्यान रखियौं। सावधान! सतत सावधान!! हमें तुमसौं पूरी-पूरी आशा है। जैसें पुत्र कूँ देखिकैं लोग पिता की याद करि लेंयँ हैं, छोरा फलाने कौ है का रे! ऐसैं ही तुमकूँ देखि कैं, लोग हमारी याद करिलें कि तुम पण्डितजी के पुत्र हौ का? पण्डितजीके लाड़िले हौ का? ऐसी रहनी सौं रहियौं। (**क्रमशः**)

श्रेयका प्रथम सोपान—नीति

(श्रीनिजानन्दजी सरस्वती, एम्०ए०, मानस-भूषण)

जिस आचरणसे हमारा उत्थान हो और दूसरेका भी अहित न हो उस मानवीय व्यवहारको सामान्यरूपसे नीति कहा जा सकता है। आज हम अपनी इन्द्रियोंसे वह काम नहीं लेते, जो उनके शुभ, समृद्धि तथा विकासका हेतु है। विश्वनियन्ताने अपनी असीम कार्यकुशलताका जो प्रदर्शन मानव-शरीरके निर्माणमें प्रकृतिद्वारा किया है, वह आश्चर्यमय है। जिन भाग्यशालियोंको यह उपलब्ध है, स्वर्गनिवासी उनकी ओर आकर्षित होते हैं, अपना वैभव उन्हें फीका लगता है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(रा०च०मा० ७।४३।७)

अविवेक, प्रमाद, मद, मत्सरमें डूबकर इस ईश्वरीय उपहारका सदुपयोग करके जो लाभ न उठाये तो उससे बड़ा अभागा, आत्मघाती कौन होगा—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

आज हमारे ऊपर पश्चिमी सभ्यताका घना कोहरा छा गया है। वह हमें दिग्भ्रमित कर रहा है। हम अन्धकारमें, प्रमादमें डूब गये हैं। इस अज्ञानजन्य कोहरेका आकर्षक रूप हमारे प्रकाश-पथकी दीवाल बन गया है। इसे तोड़ना आज हमें अच्छा नहीं लगता। इसकी चपेटमें हमारी बुद्धि भी चौपट हो गयी है। डारविन, फ्रायड, कार्ल मार्क्स-जैसे पाश्चात्य मनीषियोंके विकासवाद-कामवाद आदि सिद्धान्तोंने हमारे वाल्मीकि, व्यास, शंकर तथा तुलसी-जैसे महामनीषियोंके सुधासारको हमसे छीन लिया है। क्षणभंगुर सुखकी अनुभूति करानेवाले पश्चिमी भ्रान्त विचारोंने घोर नारकीय जहरका पान करना सिखाकर हमारा पतन प्रारम्भ कर दिया है। सँभल जाओ अभी भी समय है। फ्रायडके कामतुष्टिपथका जरा गीतासे मिलान करो—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(५।२२)

जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

भारतीय मनीषियोंके अमृतभरे अनुपम सिद्धान्त जिनपर चलना हमारे सहज स्वरूपकी प्राप्तिके लिये परमावश्यक है, जो हमें अजर-अमरस्वरूप प्रदान करते हैं उन्हें अपनाओ।

आओ हम विचार करें कि किस प्रकार अपने उस सहज स्वरूपकी प्राप्ति हो सकती है! इसकी खोज हम नीति-पथमें प्रवेशकर करें, प्रवेशसे पूर्व हम अपने सम्बलको समझें, विवेकको अपनायें जिससे पथ आसान बने। शरीररूपी रथमें इन्द्रियरूप अश्व जुते हैं, मनरूपी लगाम बुद्धिरूपी सारथि थामे है। अश्व चञ्चल तो नहीं हैं, नेत्र किसी रूपसीको काम-वासनाकी पूर्तिका साधन तो नहीं समझ रहे? यदि ऐसा है तो उनकी लगाम खींचो नहीं तो समझो कि रथ खड्डमें जा रहा है, जहाँ वह चकनाचूर हो जायगा। सँभल जाओ, सारथिको सावधान करो। हाथ किसीका अधिकार तो नहीं छीन रहे, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदिकी ओर तो हम नहीं मुड़ रहे हैं? यदि ऐसा है तो सँभल जाओ। विवेकका आश्रय लो, ठहर जाओ। हम अपने धर्मग्रन्थों, धर्मगुरुओंकी ओर झुकें, वहाँ अवश्य प्रकाश, विश्राम मिलेगा। समझो इसे—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥

इस रसायनका सेवन करो, इसके पानका व्रत लो। धीरे-धीरे इस पथपर अपनी डगमगायी आस्थाको दृढ़ करो। भौतिकताका लिबास उतार डालो, वह मीठा जहर मत पियो जो बेहोशीकी मौत दे। शीघ्र सँभलो, अमृत-पानकी कठिनाई साहससे पार करो। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कितनी ऊँची बात कहते हैं। उसे समझो, घबराओ नहीं योगेश्वरने बड़ा ही आसान पथ दिखाया है। यथा—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३।३४)

'इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये, क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं।' तात्पर्य यह है कि इन्द्रियोंके भोगोंमें राग-द्वेष हो जाना ही बन्धन है, इससे बचो, ये दोनों विकार हैं। ये ही सहज स्वरूपका मार्ग रोकते हैं, अन्धकारकी

ओर ले जाते हैं। यह सुनकर तुम चिन्तामें पड़ गये न? पथकी कठिनताका भूत तुम्हारे सामने आ गया न? भाई मेरे! इसका भी समाधान खोजो, सब कुछ प्राप्त करनेकी क्षमता तुम्हारे अन्दर है, उसको प्राप्त करो, धैर्यका सम्बल सँभालो, कठिनाई दूर भाग जायगी। ये सब प्रमादवश तुम्हें परेशान करते हैं। गीतामें उत्थान-पथपर बढ़नेकी क्रियाका दिग्दर्शन कराया गया है—

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥
(६।२५)

'क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे।' अतः क्रम-क्रमसे अभ्यास करो, ऊपर उठो, जल्दी मत करो, मनको उसी प्रभुमें लगा दो, नटवरके अतिरिक्त कहीं मत देखो, बस पहुँच गये अपनेमें। तुम्हारा अहं ही तुम्हारे रूपको ढके है, उसे समझ लो। बस, यही तो मुकाम है।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता मैं दो न समाहिं॥

विकारोंसे छूटनेके उपाय

(श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

सभी मार्गोंसे चलनेवाले साधकोंके लिये विकारोंसे बचनेके कुछ उपाय निवेदित हैं। जिन्हें जो अनुकूल पड़े, अपनाना चाहिये—

(१) शरीरको मेरा, मेरे लिये तथा मैं न मानना (जानना)।

(२) राग-द्वेषको अपनेमें न मानना अर्थात् आने-जानेवाला मानना।

(३) अपने सुख-दुःखका कारण दूसरोंको न मानना।

(४) सभीको अपना मानना—प्रभुके नाते या जगत्‌के नाते।

(५) शरीरसहित संसारमें किसीको भी अपना न जानना।

(६) सबमें भगवान्‌को देखना तथा भगवान्‌में सबको देखना।

(७) करनेमें सावधान तथा होनेमें प्रसन्न रहना।

(८) बुराईरहित होना—(क) किसीको भी बुरा न समझना, (ख) किसीका भी बुरा न चाहना, (ग) किसीका भी बुरा न करना, (घ) किसीसे भी सुखकी आशा न करना।

(९) विवेकका आदर तथा बलका सदुपयोग।

(१०) अनुकूलताके प्रलोभन तथा प्रतिकूलताके भयका त्याग—अनुकूलताके प्रलोभनके त्यागसे विवेकका आदर होता है तथा प्रतिकूलताके भयके त्यागसे बलके सदुपयोगकी सामर्थ्य आती है।

(११) चुप साधन अर्थात् मूक-सत्संगको अपनाना। प्रत्येक कार्यके आदि तथा अन्तमें और सोनेसे पहले तथा जगनेके बाद शान्त रहना।

(१२) राग-द्वेष उत्पन्न होनेपर भी उनके वशमें होकर कार्य न करना बल्कि शास्त्र, भगवान् तथा सन्तोंके आज्ञानुसार ही करना।

(१३) भगवान्‌का होकर भगवान्‌के नामका जप करना।

(१४) अहंता-परिवर्तन—मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं। मैं शरीर-संसारका नहीं हूँ, शरीर-संसार मेरे नहीं हैं। इस प्रकार भगवान्‌में ही अपनापन करना।

(१५) श्रीभगवान्‌को सभी यज्ञों तथा तपोंका भोक्ता स्वीकार करते हुए उन्हें सबका परम सुहृद् तथा सब लोकोंका ईश्वर जानना (मानना)।

(१६) भगवान् ही सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिके कारण हैं और उनसे ही सब हो रहा है, इस प्रकार समझकर श्रद्धा और भक्तिसे भजन करना।

(१७) जो-जो भी विभूतियुक्त, ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको प्रभुके तेजके अंशकी अभिव्यक्ति मानना।

(१८) सभी प्राणी, पदार्थोंको भगवान्‌का स्वरूप मानकर बार-बार नमस्कार करना।

(१९) इन्द्रिय-ज्ञानमें सद्भाव करके प्रभुकी अहैतुकी कृपामें विकल्प न करना।

(२०) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँ भगवान्‌को विराजमान मानकर भगवान्‌का ही चिन्तन करना।

(२१) कर्मयोग ज्ञानयोग तथा भक्तियोग आदि साधनोंमें

किसीको भी छोटा-बड़ा न मानना, अपितु दूसरोंके साधनका आदर करते हुए अपने साधनमें तत्परतासे लगे रहना।

(२२) जो अपने प्रति नहीं चाहते वह दूसरोंके प्रति न करना अपितु जो अपने प्रति चाहते हैं, दूसरोंके प्रति वही करना।

(२३) पर दोष-दर्शनका त्याग तथा अपने गुण-दर्शनका त्याग।

(२४) जो अपने प्रति वैरभाव रखता हो, उसकी प्रतिदिन सुबह-शाम मन-ही-मन परिक्रमा करके उसे दण्डवत् प्रणाम करना। ऐसा करनेसे कुछ ही दिनोंमें वैरभाव मिट जाता है।

(२५) शरीर-संसारको भगवत्प्राप्तिमें सहायक तथा बाधक न मानना। शरीर-संसारके साथ माने हुए सम्बन्धको ही बन्धनका कारण जानते हुए इस सम्बन्धका त्याग।

(२६) अपने अधिकारका त्याग तथा दूसरोंके अधिकारोंकी रक्षा करना।

(२७) अपने कर्तव्यका पालन तथा दूसरोंके कर्तव्यको न देखना।

(२८) प्रार्थना करना—थोड़ी-थोड़ी देरमें कहते रहना कि—हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं।

(२९) भगवान्‌को साधन न मानकर साध्य मानना।

(३०) अपनी जानकारीमें असत्‌के संगका त्याग करना।

(३१) अपनी वास्तविक आवश्यकताको अनुभव करना।

(३२) प्रभुके नाते सभीको प्यारसे देखना, प्यारसे सुनना, प्यारसे मिलना, प्यारसे बोलना। इस तरह प्रत्येक क्रियामें प्रेमका पुट लगानेसे प्रेम प्रकट हो जाता है और राग-द्वेषका नाश हो जाता है।

(३३) जीवनके सर्वोच्च लक्ष्यकी प्राप्तिका निर्णय अर्थात् भगवत्प्राप्ति ही एकमात्र जीवनका लक्ष्य होना।

(३४) आत्मनिरीक्षण अर्थात् प्राप्त-विवेकके प्रकाशमें अपने दोषोंको देखना।

(३५) की हुई भूलको पुनः न दोहरानेका व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना।

(३६) विचारका प्रयोग अपनेपर और विश्वासका दूसरोंपर अर्थात् न्याय अपनेपर और प्रेम तथा क्षमा अन्य-पर करना।

(३७) दूसरोंके कर्तव्यको अपना अधिकार, दूसरोंकी उदारताको अपना गुण और दूसरोंकी निर्बलताको अपना बल न मानना।

(३८) पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावनाके अनुरूप ही पारस्परिक सद्भाव तथा सम्बोधन अर्थात् कर्मकी भिन्नता होते हुए भी स्नेहकी एकता रखना।

(३९) निकटवर्ती जन-समाजकी यथाशक्ति क्रियात्मक रूपसे सेवा करना।

(४०) सिक्केसे वस्तु, वस्तुसे व्यक्ति, व्यक्तिसे विवेक तथा विवेकसे सत्यको अधिक महत्त्व देना।

(४१) शारीरिक हितकी दृष्टिसे आहार-विहारमें संयम तथा दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन रखना।

(४२) व्यर्थ चिन्तनका त्याग तथा वर्तमानके सदुपयोगद्वारा भविष्यको उज्ज्वल बनाना।

(४३) जीवन्मुक्त महात्माओंका संग करना। उनके अनुकूल बनना। उनके सिद्धान्तोंका हृदयसे आदर करना।

(४४) अपनी वस्तुस्थितिका अध्ययन करना तथा प्राप्त योग्यता, परिस्थिति और रुचिके अनुसार साधनका निर्माण करना।

(४५) सुखियोंको देखकर प्रसन्न होना तथा दुःखियोंको देखकर करुणासे द्रवित होना।

(४६) शरीरको श्रमी, मनको संयमी, बुद्धिको विवेकवती, हृदयको अनुरागी तथा अहम्‌को अभिमानशून्य करके अपनेको सुन्दर बनाना।

(४७) कुसंगका त्याग—जिनका अपने कर्तव्यमें, अपने स्वरूपमें तथा भगवान्‌में विश्वास नहीं है, ऐसे नास्तिक लोगोंके संगका त्याग कर देना।

(४८) भगवान्‌के लिये ही सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको करना, भगवान्‌के ही परायण होना, भगवान्‌का ही भक्त होना, आसक्तिरहित होना तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें वैरभावसे रहित होना।

(४९) भगवान्‌को अजन्मा, अविनाशी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर मानना।

(५०) असाधनरूप मान्यताओंका त्याग।

(५१) संयोगमें वियोगका दर्शन। **(क्रमशः)**

विदुरनीति

सातवाँ अध्याय

[गताङ्क पृ०-सं० ७७९ से आगे]

धृतराष्ट्र उवाच

अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे
सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोऽयं
तस्माद् वद त्वं श्रवणे धृतोऽहम्॥ १॥

विदुर उवाच

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत॥ २॥

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः॥ ३॥

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह॥ ४॥

उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन्
दुर्योधनं त्यज पुत्रं त्वमेकम्।
तस्य त्यागात् पुत्रशतस्य वृद्धि-
रस्यात्यागात् पुत्रशतस्य नाशः॥ ५॥

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत्॥ ६॥

न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।
क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत्॥ ७॥

समृद्धा गुणतः केचिद् भवन्ति धनतोऽपरे।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय॥ ८॥

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम्।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः॥ ९॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! यह पुरुष ऐश्वर्यकी प्राप्ति और नाशमें स्वतन्त्र नहीं है। ब्रह्माने धागेसे बँधी हुई कठपुतलीकी भाँति इसे प्रारब्धके अधीन कर रखा है; इसलिये तुम कहते चलो, मैं सुननेके लिये धैर्य धारण किये बैठा हूँ॥ १॥

विदुरजी बोले—भारत! समयके विपरीत यदि बृहस्पति भी कुछ बोलें तो उनका अपमान ही होगा और उनकी बुद्धिकी भी अवज्ञा ही होगी॥ २॥ संसारमें कोई मनुष्य दान देनेसे प्रिय होता है, दूसरा प्रिय वचन बोलनेसे प्रिय होता है और तीसरा मन्त्र तथा औषधके बलसे प्रिय होता है, किंतु जो वास्तवमें प्रिय है, वह तो सदा प्रिय ही है॥ ३॥ जिससे द्वेष हो जाता है, वह न साधु, न विद्वान् और न बुद्धिमान् ही जान पड़ता है। प्रियतमके तो सभी कर्म शुभ ही प्रतीत होते हैं और दुश्मनके सभी काम पापमय॥ ४॥ राजन्! दुर्योधनके जन्म लेते ही मैंने कहा था कि केवल इसी एक पुत्रको तुम त्याग दो। इसके त्यागसे सौ पुत्रोंकी वृद्धि होगी और इसका त्याग न करनेसे सौ पुत्रोंका नाश होगा॥ ५॥ जो वृद्धि भविष्यमें नाशका कारण बने, उसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये और उस क्षयका भी बहुत आदर करना चाहिये, जो आगे चलकर अभ्युदयका कारण हो॥ ६॥ महाराज! वास्तवमें जो क्षय वृद्धिका कारण होता है, वह क्षय ही नहीं है, किंतु उस लाभको भी क्षय ही मानना चाहिये, जिसे पानेसे बहुत-से लाभोंका नाश हो जाय॥ ७॥ धृतराष्ट्र! कुछ लोग गुणके धनी होते हैं और कुछ लोग धनके धनी। जो धनके धनी होते हुए भी गुणोंके कंगाल हैं, उन्हें सर्वथा त्याग दीजिये॥ ८॥

धृतराष्ट्रने कहा—तुम जो कुछ कह रहे हो, परिणाममें हितकर है, बुद्धिमान् लोग इसका अनुमोदन करते हैं; यह भी ठीक है कि जिस ओर धर्म होता है, उसी पक्षकी जीत होती है तो भी मैं अपने बेटेका त्याग नहीं कर सकता॥ ९॥

विदुर उवाच

अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते॥ १०॥

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः॥ ११॥

सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद् भयम्।
अर्थादाने महान् दोषः प्रदाने च महद् भयम्॥ १२॥

ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः॥ १३॥

युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत्।
निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति॥ १४॥

या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत् सुखम्।
यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये॥ १५॥

अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति।
तादृशैः संगतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः॥ १६॥

निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान् दूराद् विवर्जयेत्।
यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम्॥ १७॥

स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते।
ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम्॥ १८॥

कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात् साधु समाचर।
श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम्॥ १९॥

विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणः॥ २०॥

प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते।
दीयन्तां ग्रामकाः केचित् तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर॥ २१॥

एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप।
वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम्॥ २२॥

विदुरजी बोले—जो अधिक गुणोंसे सम्पन्न और विनयी है, वह प्राणियोंका तनिक भी संहार होते देख उसकी कभी उपेक्षा नहीं कर सकता॥ १०॥ जो दूसरोंकी निन्दामें ही लगे रहते हैं, दूसरोंको दुःख देने और आपसमें फूट डालनेके लिये सदा उत्साहके साथ प्रयत्न करते हैं, जिनका दर्शन दोषसे भरा (अशुभ) है और जिनके साथ रहनेमें भी बहुत बड़ा खतरा है, ऐसे लोगोंसे धन लेनेमें महान् दोष है और उन्हें देनेमें बहुत बड़ा भय है॥ ११-१२॥ दूसरोंमें फूट डालनेका जिनका स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखनेके अयोग्य—निन्दित माने गये हैं॥ १३॥ उपर्युक्त दोषोंके अतिरिक्त और भी जो महान् दोष हैं, उनसे युक्त मनुष्योंका त्याग कर देना चाहिये। सौहार्दभाव निवृत्त हो जानेपर नीच पुरुषोंका प्रेम नष्ट हो जाता है, उस सौहार्दसे होनेवाले फलकी सिद्धि और सुखका भी नाश हो जाता है। फिर वह नीच पुरुष निन्दा करनेके लिये यत्न करता है, थोड़ा भी अपराध हो जानेपर मोहवश विनाशके लिये उद्योग आरम्भ कर देता है। उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। वैसे नीच, क्रूर तथा अजितेन्द्रिय पुरुषोंसे होनेवाले सङ्गपर अपनी बुद्धिसे पूर्ण विचार करके विद्वान् पुरुष उसे दूरसे ही त्याग दे। जो अपने कुटुम्बी, दरिद्र, दीन तथा रोगीपर अनुग्रह करता है, वह पुत्र और पशुओंसे समृद्ध होता और अनन्त कल्याणका अनुभव करता है। राजेन्द्र! जो लोग अपने भलेकी इच्छा करते हैं, उन्हें अपने जाति-भाइयोंको उन्नतिशील बनाना चाहिये; इसलिये आप भलीभाँति अपने कुलकी वृद्धि करें। राजन्! जो अपने कुटुम्बीजनोंका सत्कार करता है; वह कल्याणका भागी होता है॥ १४—१९॥ भरतश्रेष्ठ! अपने कुटुम्बके लोग गुणहीन हों तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिये। फिर जो आपके कृपाभिलाषी एवं गुणवान् हैं, उनकी तो बात ही क्या है॥ २०॥ राजन्! आप समर्थ हैं, वीर पाण्डवोंपर कृपा कीजिये और उनकी जीविकाके लिये कुछ गाँव दे दीजिये॥ २१॥ नरेश्वर! ऐसा करनेसे आपको इस संसारमें यश प्राप्त होगा। तात! आप वृद्ध हैं, इसलिये आपको अपने पुत्रोंपर शासन करना चाहिये॥ २२॥

मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम्।
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ॥ २३॥

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन॥ २४॥

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च॥ २५॥

सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान् प्रति मानद।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि॥ २६॥

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति।
दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति॥ २७॥

पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति।
तान् वा हतान् सुतान् वापि श्रुत्वा तदनुचिन्तय॥ २८॥

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति॥ २९॥

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात्।
शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति॥ ३०॥

दुर्योधनेन यद्येतत् पापं तेषु पुरा कृतम्।
त्वया तत् कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर॥ ३१॥

तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः।
भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम्॥ ३२॥

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति॥ ३३॥

असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम्॥ ३४॥

भरतश्रेष्ठ! मुझे भी आपके हितकी ही बात कहनी चाहिये। आप मुझे अपना हितैषी समझें। तात! शुभ चाहनेवालेको अपने जाति-भाइयोंके साथ कलह नहीं करना चाहिये; बल्कि उनके साथ मिलकर सुखका उपभोग करना चाहिये॥ २३॥ जाति-भाइयोंके साथ परस्पर भोजन, बातचीत एवं प्रेम करना ही कर्तव्य है; उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिये॥ २४॥ इस जगत्में जाति-भाई ही तारते और डुबाते भी हैं। उनमें जो सदाचारी हैं, वे तो तारते हैं और दुराचारी डुबा देते हैं॥ २५॥ राजेन्द्र! आप पाण्डवोंके प्रति सद्व्यवहार करें। मानद! उनसे सुरक्षित होकर आप शत्रुओंके आक्रमणसे बचे रहेंगे॥ २६॥ विषैले बाण हाथमें लिये हुए व्याधके पास पहुँचकर जैसे मृगको कष्ट भोगना पड़ता है, उसी प्रकार जो जातीय बन्धु अपने धनी बन्धुके पास पहुँचकर दुःख पाता है; उसके पापका भागी वह धनी होता है॥ २७॥ नरश्रेष्ठ! आप पाण्डवोंको अथवा अपने पुत्रोंको मारे गये सुनकर पीछे संताप करेंगे; अतः इस बातका पहले ही विचार कर लीजिये॥ २८॥ इस जीवनका कोई ठिकाना नहीं है। जिस कर्मके करनेसे अन्तमें खाटपर बैठकर पछताना पड़े, उसको पहलेसे ही नहीं करना चाहिये॥ २९॥ शुक्राचार्यके सिवा दूसरा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो नीतिका उल्लङ्घन नहीं करता, अतः जो बीत गया सो बीत गया। अब शेष कर्तव्यका विचार आप-जैसे बुद्धिमान् पुरुषोंपर ही निर्भर है॥ ३०॥ नरेश्वर! दुर्योधनने पहले यदि पाण्डवोंके प्रति यह अपराध किया है तो आप इस कुलमें बड़े-बूढ़े हैं, आपके द्वारा उसका मार्जन हो जाना चाहिये॥ ३१॥ नरश्रेष्ठ! यदि आप उनको राजपदपर स्थापित कर देंगे तो संसारमें आपका कलङ्क धुल जायगा और आप बुद्धिमान् पुरुषोंके माननीय हो जायँगे॥ ३२॥ जो धीर पुरुषोंके वचनोंके परिणामपर विचार करके उन्हें कार्यरूपमें परिणत करता है, वह चिरकालतक यशका भागी बना रहता है॥ ३३॥ कुशल विद्वानोंके द्वारा भी उपदेश किया हुआ ज्ञान व्यर्थ है, यदि उससे कर्तव्यका ज्ञान न हुआ अथवा ज्ञान होनेपर भी उसका अनुष्ठान न हुआ॥ ३४॥ (क्रमशः)

एक मिनटमें २८ गायोंकी हत्या

(श्रीमुजफ्फरहुसैनजी)

भारतको गायों और गोपालकोंका देश कहा जाता है। जिस देशकी अर्थव्यवस्था पशुपालनपर निर्भर है और जिसके संविधान और धर्ममें गो-रक्षणकी जिम्मेदारी मुख्यत: सरकारपर नियत की गयी है, उस देशमें कुछ समयके बाद गायको दुर्लभ प्राणी घोषित कर दिया जाय तो लेशमात्र भी आश्चर्यकी बात न होगी!

हमारे देशमें हिंदुओंका बहुमत होनेपर भी द्रुत गतिसे गायके निकन्दनकी क्रियामें जो वृद्धि हो रही है, उसकी आश्चर्यकारक संख्या किसी शाकाहारका आन्दोलन चलानेवाले साधु अथवा मुनिके द्वारा नहीं, अपितु स्वयं भारत सरकारद्वारा प्रस्तुत की गयी है। स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके बाद समग्र देशमें सबसे अधिक समयतक चलाया गया कोई आन्दोलन यदि है तो वह 'गाय बचाओ' आन्दोलन ही है।

गायोंको बचाना राज्य और केन्द्रकी सरकारोंका परम धर्म है। ऐसा संविधानमें भी उल्लिखित है। गायके विषयमें न जाने कितने कानून बनाये गये हैं और न जाने कितने ही केस सुप्रीम कोर्टमें पहुँचे हैं। उनके परिणामस्वरूप अदालतके निर्णय तो गायको बचानेकी वकालत करते हैं किंतु गायके हत्यारोंके हाथ इतने लम्बे हैं कि भारतवर्षका यह भोला तथा उपयोगी प्राणी कसाईकी छूरीका भोग बननेसे नहीं बच पाया है।

सरकार तो ठीक है, लेकिन जिस देशकी जनता अपनी माँके रक्त और मांसका सौदा करती हो, उसकी हत्याके लिये विदेशसे मशीनोंका आयात करती हो तथा जिसका मांस विदेशमें निर्यात करके विदेशी मुद्रा कमाती हो; उसके उन हत्यारे सन्तानोंको सम्बोधित करनेके लिये कोशमें कोई शब्द ही नहीं है। जन्म देनेवाली माता तो प्रसूतिकी पीडा कुछ घंटोंके लिये ही सहन करती है, किंतु भारतीयोंको जीवन देनेवाली यह गौमाता तो सदियोंसे पीडा भोग रही है। जबसे इस माताके पुत्र आज़ाद हुए हैं तबसे तो इसकी हालत और अधिक नाजुक हो गयी है। यहाँ अनिच्छासे भी यह बात अवश्य कहनी होगी कि विदेशी शासकोंके समयमें तो सिर्फ व्यक्तिगत रीतिसे और किसी कसाई तथा खाटकीके घरमें ही इस माताकी निर्मम हत्या की जाती थी, किंतु स्वतन्त्रताके बाद तो उसकी निकम्मी और निर्लज्ज सन्तानोंने उसकी सामूहिक हत्याके लिये आधुनिकतम मशीनोंकी व्यवस्था कर ली है।

२६ जनवरी सन् १९५०से भारतीय संविधानका देशमें अमल शुरू कराया गया। संविधानकी ४८वीं कंडिकामें स्पष्ट निर्देश किया गया है कि गायें, उनके बछड़े तथा अन्य दूध देनेवाले पशु और जो कृषिके उपयोगमें आनेवाले पशु हैं उनकी हत्या न हो, यह देखनेकी जिम्मेदारी सरकारकी होगी। सभी नेताओंने और मांसका व्यवसाय करनेवालोंने इस ४८वीं कंडिकाका अर्थ अपनी निजी रीतिसे लगाया। संविधानके इस आदेशको हमारी सरकारोंने भी गम्भीरतासे नहीं लिया है, जिसका परिणाम यह आया कि गो-हत्या रोकनेकी बात कानूनी भूलभुलैयामें फँस गयी। आज भी वह फँसी ही हुई है। किसी एक ऐतिहासिक दिन जब यह देश माताके प्राण बचानेकी सौगंध लेगा तबतक न जाने कितनी ही माताओंको मौतके घाट उतार दिया जायगा। सरकार इस विषयमें तो निष्क्रिय ही प्रतीत होती है।

भारत सरकारके लेखपत्रोंसे उपलब्ध आँकड़े भारतमें हो रही गो-हत्याका स्पष्ट निर्देश करते हैं। घड़ीमें जब बड़ी सूई एक चक्कर पूरा करती है अर्थात् एक मिनटकी अवधिमें करीब २८ गायें कत्ल की जा चुकी होती हैं। इसके मुताबिक कैलेण्डरका एक पन्ना पलटनेपर चालीस हजार गायें स्वधाम पहुँच जाती हैं। सरकारी आँकड़ोंके अनुसार सन् १९८१ ई० में ३०, ८०९ टन मांसका निर्यात भारतसे हुआ था। किंतु आज तो अकेले गोमांसहीका निर्यात १०,११२ टनके समीप पहुँच गया है। इस संख्यामें बकरीके मांसकी गिनती नहीं की गयी है। १८ यान्त्रिक कत्लगृह चौबीसों घण्टे धड़ल्लेसे चल रहे हैं। पारम्परिक रूपसे चलनेवाले कत्लस्थानोंकी संख्या इसके साथ मिलायी जानेपर तो यह संख्या ३६०५० तक पहुँच जाती है। विशेषमें भारत सरकार शीघ्र ही २७ कत्लगृहोंका शुभारम्भ करनेवाली है। कृषिमन्त्रालयके दूध और पशुपालन-विभागके परिपत्र ३-३४/९५—एफ०आई०एन० में आठवीं पञ्चवर्षीय योजनाके अन्तर्गत देशके विभिन्न शहरोंमें ११ स्थानोंको पसंद किया

गया है, जहाँ यान्त्रिक कत्लखानोंकी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। सेण्ट्रल सेक्टर योजनाके अनुसार नगरपालिकाओं, महापालिकाओं और अन्य अर्धस्वायत्त संस्थानोंको उपर्युक्त कत्लखानोंको संचालित करनेके लिये शत-प्रतिशत अनुदान दिये जायँगे। 'फोरेन ट्रेड' नामक बुलेटिनमें फरवरी १९९४ ई० में ऐसी जानकारी दी गयी थी कि इन कत्लखानोंके माध्यमसे देश प्रतिवर्ष २३० करोड़ रुपयोंका मांस निर्यात कर रहा है। शताब्दीके अन्ततक एक हजार करोड़ रुपयेके वार्षिक लक्ष्याङ्कको प्राप्त करनेका सरकारका लक्ष्य है। नये कत्लखाने शुरू होनेपर प्रति वर्ष पैंतीस लाख टन गो-मांस निर्यात करनेकी सरकारकी योजना है। यदि ये सब धारणाएँ सफल होंगी तो गो-मांसके निर्यातमें भारत सबसे बड़ा और अव्वल नम्बरका देश बन जायगा। हास्यास्पद बात तो यह है कि कत्लखानोंका उद्योग हमारी सरकार कृषि-मन्त्रालयके अन्तर्गत चला रही है। उसका नाम 'पशुपालन' दिया गया है, किंतु यहाँ पालनेका नहीं अपितु मारनेका व्यवसाय चल रहा है। कृषिके लिये उपयोगी बैलोंको और बछड़ोंको काटकर सरकार कृषि-विकासकी बात कर रही है। यह जनताके साथ कितनी बड़ी वञ्चना (धोखेबाजी) है। यदि सरकार मांसका निर्यात ही करना चाहती है तो फिर उद्योग मन्त्रालयके अन्तर्गत उसको 'मटन-इण्डस्ट्रीज' का नाम क्यों नहीं दे दिया जाता?

आश्चर्यकारक घटना तो यह है कि सरकार अपने पशुओंके मांसका तो निर्यात करती ही है; साथ ही यहाँ मांसाहारी लोगोंकी सेवा करनेके लिये मांसका आयात करनेमें भी लज्जित नहीं होती। उदारीकरणका अर्थ ही 'लेना-देना' होता है—'हम तुम्हें गायोंका मांस देंगे, तुम हमें मुर्गी, बतक, खरगोश इत्यादिका मांस दो।' अमेरिकन सरकारके वाणिज्य विभागके सचिव सूसान इमर्सनने १६ दिसम्बर १९९९ के दिन भारतके वाणिज्य मन्त्रालयके सचिव ए०एम०खन्नाको एक पत्र लिखकर निर्देश दिया था कि दिनाङ्क २८-१२-१९९९ तक वे निश्चित मात्रापरका प्रतिबन्ध उठा लेनेके लिये तैयार हैं। इस पत्रके साथ १४२९ चीजोंकी सूची भी भेजी गयी थी, जिन्हें भारत सरकार किसी भी हालतमें अमेरिकासे खरीदनेके लिये बाध्य हो है। उन चीजोंमें क्रमाङ्क १ से ३९ तथा ५७१ से ५८१ तकका सम्बन्ध मृत पशुओंके फ्रिजमें रखे हुए मांसके साथ है, जिसमें गो-मांस, मरी—मसालायुक्त मांस, फ्राईड—भुना हुआ मांस और उससे बनी हुई विविध सामग्रियोंका समावेश है। उन मांसके टुकड़ोंको मुर्गी, बकरी, बतक और खरगोशके शरीरोंसे उपलब्ध किया जाता है। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि उसमें सुअरके मांसका भी समावेश किया गया है। उसके अतिरिक्त मछलियाँ, अण्डे, घी, पनीर और मक्खन-जैसी चीजोंके आयातके लिये भी भारत सरकारको बाँध लिया है।

गायों और सुअरोंकी चर्बीसे युक्त कारतूस खोलनेकी घटनाने भारतमें १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्रामको जन्म दिया था। आज पुनः वैसी ही हालत है। भारतमें आज एक ओरसे माता मानी जानेवाली पूजनीया गायकी हत्या करके और गो-मांसका आयात करके हिन्दुओंकी भावनाको ठेस पहुँचायी जा रही है, तो दूसरी ओर मुस्लिमोंको वह मांस खिलाया जा रहा है जिसे शरीयतमें 'हराम' घोषित किया गया है। दीर्घकालपर्यन्त फ्रिजमें रखी हुई मुर्गीकी टाँगोंको भारतमें जब लाया जायगा तब उन्हें निश्चित ही होटलवालोंको सप्लाई किया जायगा। मुर्गी, बतक, मछली और खरगोशके मांसके साथ सुअरके मांसको भी रखनेकी क्रियाको कोई भी मुस्लिम कैसे सहन कर सकता है? किंतु जो सरकार उदारीकरणके नामपर धर्मको भ्रष्ट करनेमें लगी हुई है उसके लिये क्या कहा जाय? क्या मुस्लिम बिरादर उसका जाहिरमें विरोध नहीं कर सकते हैं? अपनी शरीयतको बचानेके लिये यदि मुस्लिम समाज आन्दोलन चलाता है तो यह भी शरीयतका एक हिस्सा ही है न? मुस्लिम-संगठन इस मामलेमें स्पष्टीकरण क्यों नहीं माँगते हैं? और सरकारसे ऐसे बासी और सड़े हुए मांसका आयात करनेके विषयमें आपत्ति क्यों नहीं प्रदर्शित करते हैं? यह बात सिर्फ धर्म और शरीयतकी नहीं, अपितु यहाँ तो स्वास्थ्यका भी प्रश्न है। सालोंतक बर्फमें रखी हुई ये चीजें कितनी बीमारियाँ फैलायेंगी उसका भान हमारे शासनको होना चाहिये। शीत देशकी फ्रिज की गयी चीजें भारत-जैसे उष्ण

जलवायुयुक्त देशमें मँगाकर खिलायी जायँगी!

अमेरिका जिस मालका निर्यात करेगा वह कितना शुद्ध होगा, यह भी एक प्रश्न है। गत दिनों इंग्लैण्डमें जो 'मैड काउ' नामक बीमारी फैली थी उससे समग्र दुनिया काँप उठी थी। ज्यादा दूध प्राप्त करनेके लिये गायोंको गो-मांसके अंशोंसे बनायी गयी खाद्य चीजें खिलायी गयी थीं। परिणामतः दूध तो ज्यादा मिला, परंतु बादमें ये गायें पागल हो गयीं। ग्रेट ब्रिटेनमें ऐसी ४३ लाख गायोंको मार डालना पड़ा। शाकाहारी पशुको यदि मांसाहारी बनाया जाय तो उसका नतीजा क्या होगा, यह कहना मुश्किल है। बाजारमें आज 'एनिमल्स फीड' मिलते हैं। उनमें सूखी मछलियों और हड्डियोंके पाउडरका समावेश किया जाता है। मुर्गियोंको वह खिलाया जाता है। मुर्गियाँ अपने आहारमें कीड़े-मकोड़ोंको भी खाती हैं। इसलिये उनके ऊपर इतनी जल्दीसे उसका विपरीत असर नहीं होता है। किंतु जब मुर्गियोंको उन्हींका सूखा हुआ मांस खिलाया जायगा अथवा मछलियोंको जब उन्हींका पाउडर भोजनके रूपमें नदी-तालाबोंमें फेंका जायगा तब क्या परिणाम आयेगा यह एक विचारणीय प्रश्न है।

भारतके पशु-चिकित्सक इतने ईमानदार नहीं हैं कि वे अस्वस्थ और विकलाङ्ग पशुओंको कत्लगृहोंमें न जाने दें। ऐसे अर्धमृत बने हुए प्राणियोंका मांस खाकर भारतीय मांसाहारी कहाँ जायँगे? विदेशोंमें दूधका व्यवसाय और मांसका व्यवसाय बिलकुल अलग है। किंतु भारतमें ऐसा नहीं है। भारतमें तो दूध देनेवाले पशुओंको भी कत्लखानोंमें भेज दिया जाता है और बीमार पशुओंका दूध भी लोगोंको पिलानेमें स्वल्पांशमें भी संकोच नहीं किया जाता। भारत सरकार सिर्फ एक ही दृष्टिसे विचारती है कि बस हमारा माल विदेशमें जाना चाहिये और विदेशी माल भारतमें आना चाहिये।

भारतसे निर्यात किये गये मांसकी जाँच करनेके लिये विदेशोंमें तो अनेक परीक्षाएँ की जाती हैं। किंतु भारत सरकारके द्वारा एकमात्र परीक्षा ही पूरी की जाती है और वह है पैसा! वे उदारीकरणके नामपर अमेरिकाको खुश करना चाहते हैं। दीर्घसमयतक रखी हुई सब्जी भी सूख जाती है, परंतु वह सड़ती नहीं। लेकिन उसकी तुलनामें तो मांस थोड़े ही घंटोंमें सड़ जाता है। उसको चाहे कितने ही वातानुकूलित भण्डारमें क्यों न रखा जाय! उसकी भी एक सीमा तो होती ही है न? उदारीकरणके नामपर आयात किये जाते उस सड़े हुए और गंदे मालका विरोध करना सभी नागरिकोंका कर्तव्य है। [प्रेषक—कांतिलाल अजाविया]
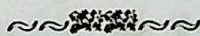
भारतमाता

गतवर्षके जनवरी माहमें गुजरातकी प्राकृतिक आपदाने समस्त भारतको झकझोर दिया। इस भयानक भूकम्पसे आज भी लोगोंका कलेजा थर-थर काँपने लगता है। भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायताके लिये हमारे नगरका छात्र-शिक्षक-दल दान और राहत-सामग्री एकत्रित करनेके लिये निकल पड़ा। खट्टे-मीठे अनुभव भी हुए। दिनभरके अथक परिश्रम और दौड़-धूपके कारण हम थक गये थे। थोड़ा-सा भी चलना दूभर था। फिर भी छात्रों और शिक्षकोंमें उत्साहकी कमी न थी।

मैं तीन-चार छात्रोंको लेकर गाँवके सुदूर सीमावर्ती क्षेत्रमें पहुँचा, जहाँ आदिवासियोंकी अभावग्रस्त बस्ती है। हमने सहयोगके लिये गुहार लगायी। ७५ वर्षकी एक वृद्धा माताने जब यह बात सुनी कि गुजरातमें भूकम्प आया है, तो वह एक कटोरा चावल और चाँदीका तमगा लेकर बाहर निकली और हमें वह सब सौंप दिया। हमने कहा—माँजी! आपके पास तो कुछ बचा ही नहीं? वृद्धाने हँसते हुए कहा—बेटा! मेरे पतिको मरे अरसा हो गया और बेटा कारगिल-युद्धमें शहीद हो गया। बस, यही एकमात्र यादगारी मेरे पास रह गयी है। गुजरातमें हजारों मरे, हजारों घायल और बे-घर हो गये। बेटा! मेरी यह छोटी-सी सौगात स्वीकारना, तभी मेरे बेटे और पतिकी आत्माको चिरशान्ति मिलेगी।

घटना छोटी हो या बड़ी, जो आनन्द हजारों रुपयोंकी दान-प्राप्तिमें नहीं हुआ; वह उस बुढ़ियाद्वारा दिये गये सर्वस्व दानकी प्राप्तिमें हमें हुआ। अनुभव अपूर्व था। हमारा मस्तक उस माताके सामने झुक गया। उस पल तो हमें ऐसा ही लगा कि सचमुच वह भारतमाता ही इस वृद्धाके रूपमें हमारे सामने है, हमारा सिर श्रद्धासे पुनः झुक गया।

—प्रवीण राय एस० शाह

'वही मनुष्य है कि जो मनुष्यके लिये मरे'

(डॉ० श्रीगोपीनाथजी केसरवानी)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्तने कहा है—

'यही पशुप्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे
वही मनुष्य है कि जो मनुष्यके लिये मरे।'

जिस मनुष्यमें दया, परोपकार, उदारता, ममता, मानवता तथा सहनशीलता आदि भाव नहीं होते, वह तो साक्षात् पशुके समान है। मनुष्यका कर्तव्य है कि वह केवल अपने विषयमें न सोचे वरन् परहितके लिये भी कार्य करे।

दूसरोंकी भलाई करना परोपकार कहलाता है। इसमें स्वार्थकी भावना नहीं होती। प्रत्युत परहित-चिन्तनका भाव प्रतिष्ठित रहता है। इसे परम धर्म अर्थात् सर्वोपरि धर्म कहा गया है—

श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
(रा०च०मा० १।८४।१)

वेद-उपनिषद् आदि सभी धर्मग्रन्थोंका मूल तथ्य यही है कि मनुष्य परोपकारमें संलग्न रहे।

दूसरोंकी भलाई करनेके समान कोई धर्म नहीं है। परोपकारी व्यक्ति परोपकार करते समय अपने-परायेका भेद नहीं करता। दूसरोंको पीडा पहुँचाना पाप है और परोपकार करना पुण्य है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
(रा०च०मा० ७।४१।१)

रहीमजीने भी कहा है—

जो रहीम सुख होत है उपकारीके संग।
बाँटन वारे को लगै ज्यों मेंहदीके रंग॥

कबीरदासजी कहते हैं—

वृक्ष कबहु नहिं फल भखै नदी न संचै नीर।
परमारथके कारने साधुन धरा सरीर॥

जिस प्रकार नदियाँ अपना जल स्वयं काममें नहीं लेतीं वरन् खेतोंकी सिंचाईकर उन्हें धन-धान्यसे परिपूर्ण कर देती हैं। वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते, दूसरोंको दान कर देते हैं। उसी प्रकार परहितपरायण व्यक्ति अपने लिये नहीं वरन् दूसरोंके लिये जीवित रहता है।

आचार्य भर्तृहरिजीने पुरुषोंकी चार कोटियाँ गिनायी हैं। यथा—(१) सत्पुरुष, (२) सामान्य, (३) असुर और (४) अतिनिन्द्य।

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥
(नीतिशतक ७५)

(१) सत्पुरुष—पहली कोटिके वे व्यक्ति हैं जो स्वार्थरहित होकर अपने हितोंका परित्यागकर मात्र निःस्वार्थ एवं निष्काम भावसे दूसरोंकी सेवाको ही अपना मुख्य धर्म समझते हैं, ऐसे पुरुष उत्तम पुरुष कहलाते हैं।

(२) सामान्य—दूसरी कोटिके वे व्यक्ति हैं जो अपना भी भला चाहते हैं और दूसरेका भी भला चाहते हैं। ऐसे पुरुष मध्यम कोटिके हैं।

(३) असुर—तीसरी कोटिके वे व्यक्ति हैं जो अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरेका भी अकल्याण करते नहीं चूकते, ऐसे विचारशून्य व्यक्ति मनुष्योंमें राक्षसतुल्य हैं।

(४) अतिनिन्द्य—चौथी कोटिके वे व्यक्ति हैं जो निरर्थक, निष्प्रयोजन दूसरेके अहित-चिन्तनमें ही लगे रहते हैं, ऐसे नरपशु किस श्रेणीमें हैं, कौन जान सकता है?

परोपकारी मनुष्य निःस्वार्थ भावसे सभीका कल्याण चाहते हैं। अतः वे सत्पुरुष कहलाते हैं। परोपकारमें ही उन्हें परम सुख मिलता है।

सेवा, परोपकार, दया, ममता और उदारतासे युक्त व्यक्तिकी ही लोकमें प्रतिष्ठा होती है और उसकी कीर्ति भी अमर हो जाती है। अतः परहितचिन्तनको कर्तव्य समझकर अपना जीवन सफल बनाना चाहिये।

यह परहितचिन्तन प्रत्येक प्राणीमें व्याप्त नारायणकी ही आराधनरूप है—

परपीडा से छलक उठे मन, यह छलकन ही गंगाजल है।
दुख हरनेको पुलक उठे मन, यह पुलकन ही तुलसीदल है॥
जो अभावमें भाव भर सके, वाणीसे रस धार झर सके।
जनहिताय अर्पित जो जीवन, यह अर्पण ही आराधन है॥

'ऐसो को उदार जग माहीं'

(श्रीनरेन्द्रदेवजी उबाना)

मानव-शरीर माता-पिताके रज-वीर्यसे निर्मित होता है और उन्हींके संरक्षणमें बालकका पालन-पोषण होता है तथा उसे शिक्षा मिलती है। माता-पिता वात्सल्यस्नेहसे भावित होकर कष्ट सहते हुए भी अपनी संतानका निर्वाह करते हैं। अत: संतानका भी कर्तव्य है कि वह माता-पिताकी सेवा करे और उनके प्रति श्रद्धासिक्त भावसे कृतज्ञ रहे। फिर जो सबके माता-पिता हैं। हमें जन्म देनेवाले माता-पिताके भी माता-पिता हैं, सबके परमपिता हैं उनके प्रति कितना कृतज्ञ रहना चाहिये, यह विचार करनेकी बात है। उनका ही संरक्षण हर क्षण हमें उपलब्ध रहता है और उनके अनुदानोंसे हमारा रोम-रोम उपकृत होता रहता है।

मानवीय कलेवर भ्रूण-जैसी अत्यधिक कोमल और संवेदनशील स्थितिमें माताके गर्भमें जन्म लेता है। उसे वायु-ताप और अन्य विषम परिस्थितियाँ गर्भमें ही नष्ट कर डालतीं, यदि कृपालु ईश्वर उसके लिये गर्भाशयके रूपमें ऐसा सुरक्षित और अनुकूल स्थान न बनाता। इतना ही नहीं परम प्रभुने जन्मसे पूर्व ही उसके लिये माँके दूध-जैसा संतुलित आहार उपलब्ध कराकर कैसी करुणा दर्शायी है!

परंतु कितने आश्चर्यकी बात है कि दूसरोंके सहारे बढ़ा—विकसित हुआ मनुष्य न केवल अपने कर्तव्योंके प्रति कृतघ्नताका परिचय देने लगता है, अपितु अपने परम पिताको, अपनी मूल सत्ताको ही भुला बैठता है। इस विस्मरण या कृतघ्नतासे भी वह दयालु सत्ता अप्रसन्न नहीं होती, वरन् अपनी कृपाशक्तिका सहज क्रम जारी रखती है।

विजातीय तत्त्वोंके आक्रमणसे उत्पन्न स्वास्थ्य-संकटसे जूझनेवाली रोग-निरोधकी क्षमता और प्रतिकूलताओंसे अपनेको बचानेकी जन्मजात सुविधाएँ भी परमेश्वरकी कृपासे ही मनुष्यको प्राप्त हैं। देखनेके लिये आँखें, सुननेके लिये कान, विचारनेके लिये उन्नत मस्तिष्क-जैसी अनुपम शक्तियाँ उसी विधाताकी देन हैं।

आँखका रेटिना, कान-जैसा पर्दा, गुर्दे-सरीखा सफाईका उपक्रम, हृदय-जैसा पोषण-संस्थान, हाथ-पाँव-जैसा काम करनेका चलने-दौड़ने, उछलने-कूदनेका साधन—सब प्रभुकी देन है। ऐसा अवदान मानवीय बौद्धिक क्षमता एवं कल्पनासे भी परेकी वस्तु है। प्रत्येक कला-कौशलका ज्ञाता, सर्वनिष्णात, सर्वप्रभुतासम्पन्न, सर्वशक्तिमान् प्रभुकी मायाका ही यह विलास है।

यह तो शरीररूपमें जीवात्माको प्राप्त हुए एक दुर्ग भरकी चर्चा हुई। यदि उस दुर्गकी रचना-प्रक्रियाको देखा जाय तो और भी विस्मय-विमुग्ध हो जाना पड़ता है। इस दुर्गका निर्माण बहुत ही छोटे-छोटे घटकोंसे हुआ है। मानव-शरीर छोटी-छोटी कोशिकाओंसे मिलकर बना है जो आँखोंसे दिखायी नहीं देतीं। ये कोशिकाएँ अरबों-करोड़ोंकी संख्यामें विद्यमान हैं, जो शरीरके एक-एक कोनेमें घूमती रहती हैं। जहाँ-कहीं भी पूर्तिकी आवश्यकता हुई हजारों कोशिकाएँ वहाँ पहुँचकर अपने प्राण गँवाती हैं। वहीं इनका स्थान लेनेवाली नयी कोशिकाएँ तुरंत उत्पन्न हो जाती हैं। बिना देर किये ये कोशिकाएँ अपना उत्तरदायित्व सँभाल लेती हैं। यह परमात्माकी ही कृपा और अनुकम्पा है कि शरीर-दुर्गके रूपमें जीवात्माके रहनेहेतु इतना सुन्दर सुसज्जित और सुरक्षित आवास प्राप्त हुआ है।

ईश्वरीय अनुदान यहीं समाप्त नहीं होते, उसने अग्निमें चिनगारी, पदार्थमें परमाणु और सूर्यमें किरणोंकी तरह मनुष्यकी अन्तर्गुहामें स्वयं बैठकर उसे हर क्षण आत्मोत्कर्षकी प्रेरणा देनेका दायित्वपूर्ण कार्य भी सँभाला है। गलत मार्गपर चलनेके पहले ही वह उसे रुकनेकी प्रेरणा देता है। पर मनुष्य अन्त:करणकी पुकारको सुनकर भी अनसुनी करता हुआ यदि स्वेच्छाचारिता बरतता है तो उसका दण्ड रोग, शोक, क्लेश, कलह, मानसिक संताप आदिके रूपमें वह भुगतता रहता है और मायासे मूढ़ बना भ्रम-जालमें पड़कर जीवनके बहुमूल्य क्षण मिट्टीके मोल नष्ट करता रहता है।

ईश्वर एक विराट् शक्ति है और प्राणिमात्रके प्रति वात्सल्यभावसे पूरित है। क्योंकि वह समय-समयपर विपत्तिके रूपमें अथवा पुण्यफलका प्रलोभन देकर मनुष्यको

बुराइयोंसे बचाता है और अच्छाइयोंकी ओर प्रोत्साहित करता है। सदाचारके नैतिक नियमोंका उल्लंघन करनेपर भय उत्पन्न होता है, जबकि हम उनका पालन करने या न करनेके लिये स्वतन्त्र रहते हैं। यह भय हृदयमें विराजमान ईश्वरद्वारा ही बजायी गयी खतरेकी घण्टी होती है। जो उसे सुनकर सतर्क हो जाता है उसका कल्याण होता है और न सुननेवालोंका तो अमङ्गल निश्चित है।

जन्मके पूर्वसे लेकर जीवनसत्ताके अस्तित्वमें आने, परिपक्व होने, क्रियाशील और समर्थ बननेतक परमात्मा जीवको गोदीमें खिलाता, आपदाओंसे बचाता, समझदार होनेपर गलतियाँ न करनेके लिये समझाता तथा डरातातक है। इतना करुणावान् सत्ताका संरक्षण वास्तविक अभिभावकके रूपमें हम सभीको उपलब्ध है, किंतु हम इसका तनिक भी ख्याल नहीं करते। परम प्रभुने हमें यहाँ इसीलिये भेजा है कि हम अपने-अपने कर्तव्योंका निर्वाह करते हुए परम प्रभुकी कृपालुता, दयालुता, उदारताका ख्याल करते रहें और उनसे सच्चा नाता जोड़कर अपना जीवन सफल बना लें। वे तो इतने उदार हैं कि बिना सेवाके भी द्रवित होते रहते हैं, अकारण करुणा बरसाते रहते हैं। उनके जैसा और कोई दूसरा है ही नहीं, इसीलिये संत श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं॥

(विनय-पत्रिका १६२)

यह सब समझते हुए उन करुणासिन्धुकी शरण ग्रहण करनी चाहिये, क्योंकि उनकी शरण गये बिना कल्याण होना सम्भव नहीं। साथ ही कल्याणका दूसरा कोई और मार्ग भी नहीं दिखता—'**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**'

नीतिके आख्यान—

कलहवाले स्थानपर नहीं रहना चाहिये

किसी नगरमें चन्द्र नामका एक राजा राज्य करता था। उसकी पशुशालामें हाथी, घोड़े, ऊँट, गाय, बैलके अतिरिक्त बन्दर और भेड़ भी थे। राजकुमारोंको बन्दरोंकी चञ्चलता बहुत अच्छी लगती थी। इसलिये वे उनमें बहुत रुचि लेते थे तथा मीठे-मीठे फल एवं अन्य खाद्य सामग्रियाँ उन्हें खिलाया करते थे।

पशुशालाके भेड़ोंमें एक भेड़ बहुत लालची थी। वह प्रायः अपनी जिह्वाके स्वादकी चपलतावश रसोईघरमें घुस जाया करती थी और जो भी सामग्री पाती, खाने लगती थी। रसोईघरके भण्डारी उस भेड़से बहुत परेशान रहा करते थे। भेड़को देखते ही वे जो भी वस्तु हाथमें होती उसीसे उसपर प्रहार करते थे। परंतु मार खानेपर भी भेड़की आदत छूटती नहीं थी। इस प्रकार भेड़ और भण्डारियोंका यह कलह प्रतिदिन चलता रहता था।

इस कलहको देखकर बन्दरोंके मुखियाको बहुत चिन्ता होती थी। वह नीतिशास्त्रका महान् ज्ञाता था। एक दिन उसने सभी वानरोंको एकान्तमें ले जाकर नीतिशास्त्रकी हितकारी बात बताते हुए कहा—

तस्मात् स्यात् कलहो यत्र गृहे नित्यमकारणः।
तद्गृहं जीवितं वाञ्छन् दूरतः परिवर्जयेत्॥

अर्थात् जिस घरमें प्रतिदिन व्यर्थका कलह होता रहता हो, उस घरको जीवित रहनेकी इच्छावाले व्यक्तिको तत्काल छोड़ देना चाहिये। इसपर वानरोंने पूछा—हे कपिश्रेष्ठ! हमलोगोंका तो किसीसे कलह है नहीं, हमें तो राजकुमारोंसे प्रतिदिन स्नेहपूर्वक मीठे फल, विविध प्रकारके व्यञ्जन और भोग-सामग्रियाँ मिलती हैं। फिर भण्डारियों और भेड़ोंके कलहसे हमारा क्या मतलब? और उससे हमारे विनाशका क्या प्रयोजन?

वानरोंके मुखियाने उन्हें समझाते हुए कहा—ये भण्डारीलोग भेड़को रसोईघरके बर्तनों, लकड़ी आदि जो कुछ पाते हैं उसीसे मारते हैं। किसी दिन क्रोधमें आकर जब ये चूल्हेकी जलती लकड़ीसे भेड़को मारेंगे तो उसके शरीरके बालोंमें आग लग जायगी और तब

वह अपनी आग बुझानेके लिये घुड़सालमें घुसकर लोटने लगेगी, जिससे वहाँकी घासमें भी आग लग जायगी और जब घासमें आग लगेगी तो घुड़सालमें बँधे घोड़े जल जायँगे। ये घोड़े राजाको बहुत प्रिय हैं अतः राजा अश्व-चिकित्साके विशेषज्ञ वैद्योंको बुलाकर उपचार पूछेगा। इतना कहकर मुखिया मौन हो गया और उसके चेहरेपर भय एवं विषादकी रेखाएँ उभर आयीं।

वानरोंने पूछा—कपिवर! इतनी बातोंमें तो बन्दरोंके अनिष्टकी कोई बात नहीं आयी है, फिर आप चिन्तित क्यों हैं तथा आपके सहसा मौन एवं विषादग्रस्त हो जानेका क्या कारण है? मुखिया बोला—आचार्य शालिहोत्रद्वारा रचित अश्व-चिकित्साके ग्रन्थमें लिखा है कि घोड़ोंके जलनेका दाह वानरोंकी चर्बीसे उसी प्रकार ठीक हो जाता है, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार।

इसलिये घोड़ोंके जल जानेकी स्थितिमें चर्बी-प्राप्तिके लिये राजा हम सबको मरवा देगा; क्योंकि घोड़े उसे बहुत प्रिय हैं। अतः अपनी जीवन-रक्षाके लिये हमलोगोंको तत्काल इस कलहवाले स्थानको छोड़ देना चाहिये।

मुखियाकी बात सुनकर सभी बन्दर हँसने लगे। उन्होंने कहा कि लगता है आपकी मति वृद्धावस्थाके कारण भ्रमित हो गयी है जो ऐसे निरापद और सुविधासम्पन्न स्थानको छोड़कर आप जानेकी बात कह रहे हैं, फिर आपकी सलाह भी एक काल्पनिक सम्भावनापर आधारित होनेके कारण अविश्वसनीय ही है।

वानरोंके इस निर्णयसे दुःखी होकर मुखिया कहने लगा—अरे मूर्खो! इस सुस्वादु भोजनका लोभ तुम्हें विनाशकी ओर ही ले जायगा। मैं अपनी आँखोंसे तुम सब कुटुम्बियोंकी मृत्यु नहीं देख सकता, अतः स्वयं ही यहाँसे चला जा रहा हूँ। ऐसा कहकर मुखिया दूसरे स्थानको चला गया।

मुखियाके चले जानेपर भी बन्दरोंको चेत नहीं हुआ। वे सुस्वादु फलों और भोज्य पदार्थोंके लोभमें रुके रहे। वे यही कहते कि मुखिया स्वयं तो मतिभ्रमित है ही हम सबको भी संकटमें डालना चाहता था। कुछ दिन ऐसे ही बीते। एक दिन वही हुआ जिसकी आशंका मुखियाने व्यक्त की थी। भेड़ जब रसोईघरमें घुसी तो भण्डारीने क्रुद्ध होकर उसे जलती लकड़ीसे मार दिया। बालोंके जलनेसे भेड़ चिल्लाती हुई घुड़सालमें घुस गयी और वहाँ लोटने लगी। देखते-ही-देखते घुड़सालकी घासने भी आग पकड़ ली और प्रचण्डरूप धारण कर लिया, जिससे घुड़सालमें बँधे घोड़े भी जलने लगे। कुछ घोड़े तो जलकर मर गये पर कुछ अपना बन्धन छुड़ाकर आगकी लपटोंसे झुलसकर इधर-उधर दौड़ने लगे।

राजाको जब घोड़ोंके जलनेकी बात पता चली तो उसने अश्व-चिकित्साके विशेषज्ञ वैद्योंसे उनकी चिकित्साके विषयमें परामर्श किया। वैद्योंने कहा—महाराज! घोड़े अच्छे हो सकते हैं, यदि उनके जले हुए घावोंमें बन्दरोंकी चर्बीका लेप किया जाय। इसके अतिरिक्त और कोई औषधि नहीं है। यह सुनकर राजाने घोषणा करा दी कि राज्यके सारे बन्दरोंको पकड़कर मार दिया जाय, जिससे उनकी चर्बीसे घोड़ोंका उपचार हो सके। फिर क्या था! बन्दरोंपर लाठी डण्डों, पत्थरों और हथियारोंसे प्रहार होने लगे। थोड़े ही दिनोंमें सारे बन्दर मार डाले गये। अपने मुखियाकी बात न मानकर बन्दर कालके गालमें चले गये।

इस प्रकार कलहपूर्ण स्थानपर रहनेके कारण बन्दरोंका विनाश हो गया। अतः मनुष्यको चाहिये कि ऐसे स्थानपर रहे जहाँ शान्ति हो। कहा भी गया है—

कलहान्तानि हर्म्याणि कुवाक्यान्तं च सौहृदम्।
कुराजान्तानि राष्ट्राणि कुकर्मान्तं यशो नृणाम्॥

अर्थात् प्रतिदिनके कलहसे अच्छे-अच्छे घर नष्ट हो जाते हैं। कटुवाक्योंके प्रयोगसे सुदृढ़ मित्रता भी टूट जाती है। कुराजाके कारण राज्यका विनाश हो जाता है और व्यक्तिका यश दुष्कर्म करनेसे समाप्त हो जाता है।

(पञ्चतन्त्र, अपरीक्षितकारक)

विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र—

दाननीतिके आदर्श दैत्यराज बलि

आचार्य शुक्र अपने महामनस्वी शिष्य बलिपर परम सुप्रसन्न थे। उन्होंने सर्वजित् यज्ञ कराया था और उस यज्ञमें अग्निदेवने प्रकट होकर बलिको रथ, अश्व, धनुष, अक्षय तरकश तथा अभेद्य कवच दिये थे। इन दिव्य उपकरणोंसे संनद्ध बलिने असुर-सेनाके साथ जब स्वर्गपर आक्रमण किया, तब देवताओंको अपना घर-द्वार छोड़कर भाग जाना पड़ा। इन्द्र उस समय तेजःसम्पन्न बलिके सामने पड़नेका साहस नहीं कर सकते थे।

शतक्रतु इन्द्र होता है, यह सृष्टिकी मर्यादा है। सौ अश्वमेध यज्ञ किये बिना जो शक्तिके बलसे अमरावती अधिकृत कर लेगा, सृष्टिका संचालक उसे वहाँ टिकने नहीं देगा। बलिने स्वर्गपर अधिकार कर लिया तब शुक्राचार्यको अपने शिष्यका वैभव स्थायी बनानेकी चिन्ता हुई। स्वर्गलोक कर्मलोक नहीं है। अतः बलिको एवं समस्त परिकरोंको साथ लेकर आचार्य नर्मदाके उत्तर तटपर आये और उनसे अश्वमेध यज्ञ कराना प्रारम्भ किया। निन्यानबे अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो गये और अन्तिम सौवाँ यज्ञ चलने लगा।

इसी कालमें देवमाता अदितिकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उनके यहाँ वामनरूपसे अवतार ग्रहण किया। उपनयन सम्पन्न हो जानेपर मौञ्जी-मेखला पहने, छत्र, दण्ड तथा जलपूर्ण कमण्डलु लिये भगवान् वामन बलिकी यज्ञशालामें पधारे। उन सूर्योपम तेजस्वीको देखकर सब ब्राह्मण तथा असुर उठ खड़े हुए। बलिने उनको आसन देकर चरण पखारे और चरणोदक मस्तकपर चढ़ाया। पूजाके अनन्तर बलिने कहा—'विप्रकुमार! मुझे लगता है कि ऋषियोंकी सम्पूर्ण तपस्या आपके रूपमें मूर्तिमान् होकर मुझे सनाथ करने आज मेरे यहाँ आयी है। आप अवश्य किसी प्रयोजनसे पधारे हैं। अतः जो इच्छा हो, बिना संकोचके माँग लें।'

वामनने बलिके कुल-पुरुषोंके शौर्य-पराक्रम, दानशीलताकी प्रशंसा करके अन्तमें कहा—'विरोचन-नन्दन! जिसकी भूमिपर कोई तप-साधनादि करता है, उस भूमिके स्वामीको भी उस तप आदिका कुछ भाग प्राप्त होता है। इसलिये मैं अपने लिये अपने पैरोंसे तीन पदमें जितनी भूमि माप सकूँ, उतनी भूमि आपसे चाहता हूँ।'

बलि हँसे। नन्हेसे वामन, नन्हे-नन्हे सुकुमार चरण। बलिको लगा कि ये भला, भूमि कितनी माप सकेंगे! वे बोले—'आप अभी बालक हैं, भले ही आप कितने भी विद्वान् हों। मैं त्रिलोकीका स्वामी हूँ। मेरे पास आकर आपको भूमि ही माँगनी है तो कम-से-कम इतनी भूमि लीजिये कि उससे आपकी आजीविका भली प्रकार चल सके।'

वामन बड़ी गम्भीरतासे बोले—'राजन्! तृष्णाका पेट भरा नहीं करता। मैं यदि थोड़ी भूमिपर संतोष न करूँ तो सप्तद्वीपवती पृथ्वी तो दूर, त्रिलोकी भी क्या तृष्णाको तुष्ट कर सकेगी? अतः अपने प्रयोजनसे अधिक मुझे नहीं चाहिये।'

'अच्छा! जितनी चाहते हैं, उतनी भूमि दूँगा।' बलिने कहा और भूमिदानके लिये संकल्प करनेको कमण्डलु उठाया।

'ठहरो!' शुक्राचार्य इतने समयतक बड़े ध्यानसे वामनको देख रहे थे। उनकी दृष्टिने श्रीहरिको इस छद्मरूपमें भी पहचान लिया। अतः वे बोले—'बलि! मुझे तो लगता है कि दैत्यकुलपर महान् संकट आ गया है। ये विप्रकुमार नहीं, साक्षात् विष्णु हैं। यदि तुमने दानका संकल्प किया तो पृथ्वी इनके एक पदकी होगी। दूसरा पद ब्रह्मलोक पहुँचेगा और तीसरे पदको स्थान ही नहीं होगा। अपनी जीविकाका उच्छेद करके दान नहीं किया जाता। तुम इन्हें यह भूमि-दान मत करो।'

'आपकी बात मिथ्या नहीं हो सकती।' दो क्षण सोचकर बलिने कहा—'परंतु यज्ञके द्वारा जिन यज्ञपुरुषकी आराधना आप मुझसे करा रहे हैं, वे ही मेरे यहाँ भिक्षुक बनकर पधारें तो क्या मैं उन्हें निराश कर

दूँ?... दूँगा, प्रह्लादका पौत्र अस्वीकार कर दे, यह नहीं होगा। सत्पात्रके आनेपर उसे अर्थदान न करना युद्धमें प्राण देनेसे भी कठिन है। ये कोई हों और कुछ भी करें, मैं इन्हें कृपण बनकर दानसे वञ्चित नहीं करूँगा।'

'तू अब भी मेरी बात नहीं मानता, इसलिये तत्काल ऐश्वर्यभ्रष्ट होगा।' क्रोधमें आकर शुक्राचार्यने शाप दे दिया; किंतु बलिको उससे दुःख नहीं हुआ। उन्होंने प्रसन्न मनसे वामनको भूमिदानका संकल्प कर दिया। संकल्प लेते ही भगवान् वामनने विराट्रूप धारण कर लिया।

'तुझे गर्व था कि तू त्रिलोकीका स्वामी है। पृथ्वी मेरे एक पदसे तेरे सामने माप ली गयी और मेरा दूसरा पद तू देखता है कि ब्रह्मलोकतक पहुँच गया है।' विराट्स्वरूप भगवान्ने कृत्रिम क्रोध दिखलाते हुए कहा—'अब मैं तीसरा पद कहाँ रखूँ? तूने मुझे ठगा है। जितना तू दे नहीं सकता, उतनेका तूने संकल्प कर दिया। अतः अब तुझे कुछ काल नरकमें रहना होगा।'

'देव! सम्पत्तिसे सम्पत्तिका स्वामी बड़ा होता है। यदि आप समझते हैं कि मैंने आपको ठगा है तो यह ठीक नहीं। मैं अपना वचन सत्य करता हूँ। यह मेरा मस्तक है। आप अपना तीसरा पद इसपर रखें!' स्वस्थ, प्रसन्न एवं दृढ़ स्वरमें बलिने कहा और मस्तक झुका दिया।

भगवान्ने बलिके मस्तकपर अपना पद रखा। बलि निहाल हो गये। बलिके न चाहनेपर भी असुरोंने वामनपर आक्रमण करनेकी चेष्टा की; किंतु भगवान्के पार्षदोंने उन्हें मारकर भगा दिया। भगवान्के संकेतपर गरुड़ने बलिको बाँध दिया। प्रह्लादजी पधारे और उन्होंने बलिके ऐश्वर्यध्वंसको भगवत्कृपा माना; वे बोले—'प्रभो! धन तथा पदके मोहसे विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं। आपने इसके धन-वैभवको छीनकर इसका महान् उपकार किया है।'

किंतु सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी व्याकुल हो गये। उपस्थित होकर, हाथ जोड़कर उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की—

'प्रभो! बलिको बन्धन प्राप्त होगा तो धर्मकी मर्यादा नष्ट हो जायगी। आपके श्रीचरणोंमें श्रद्धापूर्वक चुल्लूभर जल तथा दो तुलसीदल देनेवाला आपका धाम प्राप्त कर लेता है और बलिने तो आपको शत्रुपक्षका जानकर भी अव्यग्रचित्तसे त्रिलोकीका राज्य आपके चरणोंमें चढ़ा दिया है।'

'ब्रह्माजी! प्रह्लादका यह पौत्र मुझे बहुत प्रिय है।' भगवान्ने कहा—'मैं जिसपर कृपा करता हूँ, उसका धन-वैभव छीन लिया करता हूँ; क्योंकि जब मनुष्य धनके मदसे मतवाला हो जाता है, तब मेरा तथा सब लोगोंका तिरस्कार करने लगता है। जिसको कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदिका घमंड न हो, समझना चाहिये कि उसपर मेरी बड़ी कृपा है। यह बलि मेरा ऐसा ही कृपापात्र है। गुरुके शाप देने, धन छीने जाने और मेरे द्वारा कृत्रिम रोषसे आक्षेप किये जानेपर भी यह विचलित नहीं हुआ। धर्मकी यह दृढ़ता इसे मेरे अनुग्रहसे प्राप्त है। अब यह सुतलका राज्य करेगा और अगले मन्वन्तरमें मैं इसे इन्द्र बनाऊँगा। तबतक सुतलमें इसके द्वारपर गदा लिये मैं स्वयं द्वारपाल बनकर उपस्थित रहूँगा।'

'प्रभो! दयाधाम! मुझ अधम असुरपर यह अनुग्रह!' बलिका कण्ठ गद्गद हो गया—'मुझसे कहाँ आपकी अर्चना हुई? मैंने तो केवल आपके चरणोंमें प्रणाम करनेका प्रयत्नमात्र किया था।' 'आपके शिष्यके यज्ञमें जो दोष रह गये, जो त्रुटि है, उसे अब आप दूर करा दें।' भगवान्ने शुक्राचार्यको आदेश दिया।

'जहाँ स्वयं यज्ञपुरुष संतुष्ट होकर विराजमान हैं, वहाँ त्रुटि कैसी? यज्ञिय त्रुटि तो आपके नामकीर्तनमात्रसे दूर हो जाती है। फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।' शुक्राचार्यने यज्ञका अपूर्ण कार्य यह कहकर सम्पूर्ण कराया।

बलि असुरोंके साथ सुतल चले गये। इन्द्रको स्वर्गका राज्य मिला। बलिके इस महादानके कारण संसारमें उत्कृष्ट त्यागको 'बलिदान' कहा जाने लगा।

परिवारमें कैसे रहें ?

माता-पिताकी सेवा—सबसे श्रेष्ठ साधन

(आदर्श पुत्र मूक चाण्डाल)

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

बचपनमें ही मूक चाण्डालको सिखाया गया था कि मनुष्य-जन्मका एकमात्र लक्ष्य है—ईश्वरको पाना। ईश्वरको पानेके लिये उनको स्नान कराना, चन्दन लगाना, नैवेद्य चढ़ाना आदि सेवा करनी पड़ती है। किंतु ईश्वर निराकार रूपमें सर्वत्र विराजमान हैं तो यह सेवा हो कैसे? इसीलिये मूर्ति बनाकर उसमें ईश्वरको प्रतिष्ठित करके यह सेवा की जाती है और इसे भगवान् स्वीकार कर लेते हैं। भगवान्ने पुत्रोंको यह विशेष सुविधा दी है कि उनके लिये वे माता-पिताके ही रूपमें आ जाते हैं और माता-पिताकी सेवाको अपनी पूरी पूजा मान लेते हैं। यह जानकर बालक मूक बचपनसे ही माता-पिताकी सेवामें लगा रहता था।

जाड़ेके दिनोंमें वह अपने माता-पिताको स्नानके लिये गरम जल देता था। स्नानसे पूर्व उनके शरीरमें तेल मलता था, तापनेके लिये अंगीठी देता और उन्हें प्रेमसे भोजन कराता था। उनकी सेवामें भिन्न-भिन्न भोगसामग्रियाँ प्रस्तुत करता रहता था। इस तरह बालक मूक मातृ-पितृरूपमें भगवान्की ही पूजा कर रहा था और इसी पूजामें उसे आनन्द आ रहा था।

उन्हीं दिनों नरोत्तम नामके एक ब्राह्मण थे, जिन्होंने माता-पिताकी सेवारूप महान् साधनको नहीं जाना था और वे माता-पिताका अनादरकर तीर्थसेवन करने चले गये थे। तीर्थोंके सेवनसे उनमें एक चमत्कार यह आ गया था कि नहानेके बाद उनके वस्त्र स्वयं आकाशमें उड़कर सूखने लगते थे। इसे देखकर नरोत्तमके मनमें अहंकार हो गया था। वे सोचते थे कि मेरे समान कोई पुण्यात्मा नहीं है। एक दिन आकाशकी ओर देखकर जब वे यह बात कह रहे थे तो एक बगुलेने उनके मुँहपर बीट कर दी। अब क्या था? नरोत्तमको क्रोध आ गया, उन्होंने बगुलेको शाप दिया जिससे वह जलकर भस्म हो गया। अब तो नरोत्तम और भी अहंकारी हो गये। पर इस शापके प्रभावसे उनका वस्त्र आकाशमें न तो ठहरता था और न सूखता ही था। नरोत्तम बहुत दुखी हुए। यह देख आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मण! तुम धर्मात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ, वहाँ जानेसे तुम्हें धर्मका वास्तविक ज्ञान होगा, तब तुम्हारा कल्याण होगा।

आकाशवाणी सुनकर नरोत्तम मूक चाण्डालके पास पहुँचे। उन्होंने देखा कि मूक अपने माता-पिताकी सेवामें तत्पर है। ईश्वरकी तरह उनका सम्मान कर रहा है और
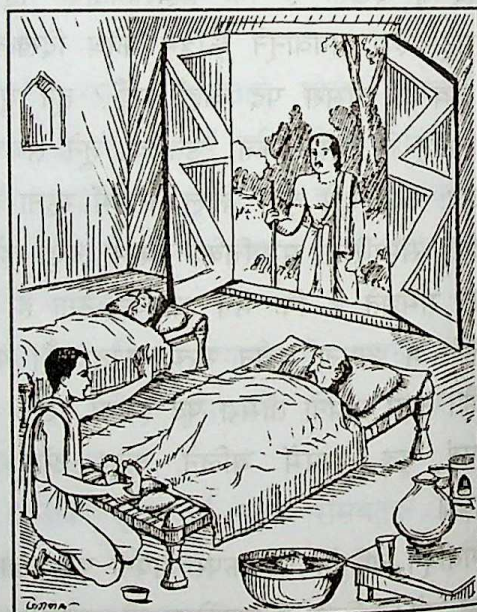
उनकी हर आज्ञाका पालन करता हुआ उनकी थकावट और कष्टका निवारण कर रहा है। ब्राह्मणने एक आश्चर्य यह देखा कि मूकका घर बिना किसी आधारके आकाशमें ठहरा है। उसने यह भी देखा कि वहाँ एक ब्राह्मणदेव निवास कर रहे हैं। उन ब्राह्मणके तेजसे उस घरकी शोभा बढ़ रही है। यह देखकर नरोत्तमको बड़ा विस्मय हुआ।

नरोत्तमने मूकसे कहा कि तुम मेरे पास आओ और धर्मका तत्त्व बताओ।

मूकने कहा, 'महाराज! इस समय मैं माता-पिताकी सेवामें लगा हूँ, इनकी सेवा छोड़कर मैं आपके पास कैसे

आऊँ? आप थोड़ी देर मेरे द्वारपर ठहर जायँ, मैं इनकी सेवा पूर्ण करके आपका आतिथ्य करूँगा।'

नरोत्तममें तो अहंकार भरा ही था, वे क्रोधसे बोलने लगे। मूकने कहा, 'महाराज! आप व्यर्थ कोप न करें, मैं वह बगुला नहीं हूँ जो आपके क्रोधसे भस्म हो जाऊँ! अब आपकी धोती न आकाशमें सूखती है न ठहरती ही है। आकाशवाणीने आपको मेरे पास भेजा है। आप थोड़ी देर रुकें तो मैं आपकी सेवा कर सकता हूँ। अन्यथा आप पतिव्रता स्त्रीके पास जायँ, वहाँ आपका अभीष्ट सिद्ध होगा।'

मूकके इतना कहनेके बाद उनके घरमें स्थित ब्राह्मणदेवता जो वस्तुतः स्वयं भगवान् विष्णु थे नरोत्तमके पास आये और बोले—'द्विजश्रेष्ठ! मैं आपको पतिव्रताके घर ले चलता हूँ, चलिये।' नरोत्तमके मनमें बड़ा विस्मय हो रहा था कि एक ब्राह्मण चाण्डालके घरमें क्यों रह रहा है! उसने भगवान्से पूछा—'हे ब्राह्मणदेव! आप इस चाण्डालके घरमें जहाँ स्त्रियाँ रहती हैं, क्यों रहते हैं?'

ब्राह्मणरूपधारी भगवान् विष्णुने कहा, 'विप्रवर! इस समय तुम्हारा हृदय शुद्ध नहीं है, पतिव्रता आदि कुछ महापुरुषोंके दर्शन कर लोगे तो मुझे ठीक-ठीक पहचान लोगे।'

इसके बाद भगवान्ने नरोत्तमको पतिव्रता आदि महापुरुषोंका दर्शन कराया। अन्तमें उन्होंने परम महाभागवतका दर्शन कराया। परम महाभागवतने नरोत्तमसे कहा कि यदि तुम भगवान् विष्णुका दर्शन करना चाहते हो तो इस मन्दिरमें चले जाओ। नरोत्तमने मन्दिरमें गर्भगृहस्थित कमलके आसनपर उन्हीं ब्राह्मणदेवको प्रतिष्ठित देखा, जो मूक चाण्डालके घरमें रहते थे। ब्राह्मणने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और दोनों चरण पकड़कर कहा, 'भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न होइये, पहले मैं आपको न पहचान सका, अब पहचान गया हूँ। अब कृपा करके मुझे अपना स्वरूप दिखलाइये।' भगवान् बोले, 'विप्रवर! तुम सत्यवादी, धर्मनिष्ठ हो इसलिये मैं तुमपर स्नेह करता हूँ। इसीलिये जब तुमने बगुलेको मृत्युका शाप दिया था तो उस पापके छुटकारेके लिये मैंने ही आकाशवाणी की थी कि तुम पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ और तीर्थस्वरूप महात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ। वहाँ पहुँचकर तुमने देखा कि वह अपने माता-पिताकी कितनी लगनसे सेवा कर रहा था। अब तुम जो चाहो, मुझसे माँग लो।'

ब्राह्मणने कहा, 'भगवन्! मेरा मन सर्वथा आपके ही ध्यानमें रहे।' भगवान् बोले, 'तुम मेरे धाममें आकर दिव्य भोगोंका उपभोग करोगे, किंतु यह तब सम्भव है जब तुम अपने माता-पिताकी सेवा करो। अभी वे तुमसे आदर नहीं पा रहे हैं। अतः तुम पहले अपने माता-पिताकी सेवा करो फिर मेरे स्वरूपको प्राप्त कर सकोगे। इस समय तुम्हारे माता-पिताके दुःखपूर्ण उच्छ्वास और क्रोधसे तुम्हारी सारी साधना नष्ट हो रही है। इस तथ्यको तुम नहीं जान रहे थे, अब जान लो कि जिस पुत्रपर माता-पिताका सदा कोप रहता है उसको नरकमें पड़नेसे मैं, ब्रह्मा तथा महादेवजी भी नहीं बचा सकते।* इसलिये तुम माता-पिताके पास जाओ और यत्नपूर्वक उनकी सेवा करो। फिर उन्हींकी कृपासे तुम मेरे पदको प्राप्त करोगे। तुमने देखा ही कि मूक चाण्डाल सदा अपने माता-पिताकी भक्तिपूर्वक सेवा करता है, यही कारण है कि मैं उसके घरके ऊपर आकाशमें सदा आनन्दपूर्वक निवास करता हूँ। मेरे साथ लक्ष्मी और सरस्वतीजी भी वहाँ विद्यमान रहती हैं। मूक चाण्डाल माता-पिताकी भक्तिमें सदा संलग्न रहता है। इसी कारणसे वह और उसका पूरा परिवार अभी-अभी मेरे धामको प्राप्त करेंगे।' इतना कहते ही एक दिव्य विमान आया और नरोत्तमके देखते-देखते पूरे परिवारसहित मूक चाण्डाल विमानपर बैठकर परम धाम चला गया। उस समय देवता, सिद्ध और महर्षिगण 'धन्य-धन्य' करते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। देवताओंके नगाड़े बजने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

---

* मन्युर्निपतते यस्मिन् पुत्रो पित्रोश्च नित्यशः। तन्निरयं न बाधेऽहं न धाता न च शङ्करः॥ (पद्मपु० सृष्टि०)
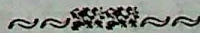
साधनोपयोगी पत्र

ईश्वरको माननेमें लाभ

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी बातोंका उत्तर इस प्रकार है—

१-ईश्वरवादीमात्र यही मानते हैं कि संसारकी रचना ईश्वरने ही की है, बल्कि अधिकांश अनुभवी महात्माओंने तो संसारके उपादान और निमित्त—दोनों कारण ही ईश्वरको माना है। जो लोग ईश्वरको नहीं मानते, उनसे किसीका कोई आग्रह नहीं है कि वे ईश्वरको मानें ही। यद्यपि माननेमें लाभ है; परंतु सर्वथा पराधीन और स्वल्प सामर्थ्यवाला मनुष्य-प्राणी, जो अपनी शक्तिसे एक मच्छर या चींटीतकको नहीं बना सकता—कहे कि 'ईश्वरको हमने बनाया है' तो इससे बढ़कर असत्य, दम्भ और मिथ्या अभिमान और क्या हो सकता है? ईश्वरका अर्थ ही है सबका स्वामी, सबका शासक, सब कुछ करने-न-करनेमें पूर्ण समर्थ। कोई भी मानव-प्राणी क्या कभी ऐसी सर्वसमर्थ प्रभु-सत्ताका निर्माण कर सकता है?

आप बड़े गर्वसे लिखते हैं, 'मैं ईश्वरको नहीं मानता' न मानें। पर आपने कभी सोचा भी है कि ईश्वरको न माननेसे क्या हानि होती है? मान लीजिये—ईश्वर नहीं है और आपने उसको माना तो आपको कोई नुकसान नहीं होगा। ईश्वरको माननेवाला ईश्वरके भयसे पापकर्मसे दूर रहता है, ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिये सत्कर्म करता है। बुरे कर्मको बुरा और सत्कर्मको अच्छा आप मानते ही हैं। यह आपका लाभ हुआ। क्योंकि जगत्में तो आपकी कीर्ति होगी ही। ईश्वरकी उपासनाके लिये आपने कुछ समय दिया—मान लीजिये, वह व्यर्थ गया। पर क्या आपके सारे समयका सदुपयोग ही होता है? क्या वह अपने और समाजके अहितकर और व्यर्थ कार्योंमें नहीं लगता? यदि लगता है तो फिर यदि थोड़ा-सा समय भगवदुपासनामें लग गया तो क्या हानि है? आपने इतनी खोज तो की ही नहीं है कि जिसके बलपर आप यह कह सकें कि 'निश्चय ही ईश्वर नहीं है, हमने इस प्रकार खोज करके इसका भलीभाँति पता लगा लिया है।' मान लीजिये—यदि ईश्वर हुए और आपने उनको नहीं माना और उपासना नहीं की तो आपका जीवन स्वेच्छाचारी तथा उच्छृङ्खल तो होगा ही, परमात्माकी प्राप्तिसे आप वञ्चित रह जायँगे और ईश्वरको मानकर उपासना करनेवाला ईश्वरको प्राप्त कर लेगा। अतएव ईश्वरको माननेमें ही लाभ है। उसमें कुछ बिगड़ता तो है ही नहीं। ईश्वरको हृदयसे मानकर यदि आप अपना कुछ समय—जो व्यर्थके हँसी-मज़ाक, सैर-सपाटे या सोये रहनेमें बिता देते हैं, ईश्वरकी उपासनामें लगा देंगे तो आपको दुःखोंमें आश्वासन, हृदयमें शान्ति और जीवनमें सत्य तथा सदाचार आदिकी पवित्र प्रेरणा मिलेगी। ईश्वरको न माननेवालेपर भी दुःख तो आते ही हैं, पर उसे उसमें आश्वासन और धैर्य कहींसे भी नहीं मिलता।

ईश्वरके अस्तित्वके प्रमाण पद-पदपर मिलते हैं। जगत्की सुशृङ्खला, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादिका नियमित कार्य आदि इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। फिर एक बड़ा प्रबल प्रमाण यह है कि ईश्वरको प्राप्त करनेके जो उपाय शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं, उनका ईमानदारीसे सेवन करके ऐसा एक भी मनुष्य आजतक संसारमें नहीं हुआ, जो यह कहता हो कि मुझे ईश्वरकी प्राप्ति नहीं हुई। अवश्य ही ईश्वर तर्कसे सिद्ध होनेवाला तत्त्व नहीं है। जो समष्टि बुद्धिका भी कारण है, उसे नगण्य व्यष्टि बुद्धिसे सिद्ध करनेका प्रयत्न करना तो हास्यास्पद ही है। इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाणके बिना ईश्वरको स्वीकार न करना भी वैसी ही वातुलता है, जैसी प्रत्यक्ष प्रमाणके अभावमें माताके कहनेपर भी पिताको अस्वीकार करना! पिताके होनेमें जैसे माताके वचन प्रमाण हैं, वैसे ही ईश्वरके होनेमें शास्त्र तथा भगवत्प्राप्त महापुरुषोंके वचन—आप्तवाक्य ही प्रमाण हैं।

(२) धर्मकी शिथिलता होनेपर भी संसारका कार्य चलता है सो तो ठीक ही है। पर संसारका जिस किसी तरह कार्य चलना ही यथार्थ चलना नहीं है, सुव्यवस्थित रूपसे—सबके लिये कल्याणकारी तथा सुखकारी होकर चलना ही यथार्थ चलना है। जिन सरकारी विभागोंमें घूसखोरी, छल, कपट तथा बेईमानीकी भरमार है, वे विभाग भी तो चल ही रहे हैं। किसी कार्यका केवल चलना एक बात है और आदर्श तथा मङ्गलमय रूपमें चलना दूसरी। हमारी वर्णाश्रम-व्यवस्थामें जबतक दोष नहीं आये थे, तबतक हमारा समाज जिस आदर्शरूपमें चलता था, अबतकके विश्वके इतिहासने वैसी आदर्श व्यवस्थासे पूर्ण

सुसम्पन्न समाज कहीं दिया ही नहीं है। कर्मोंका सम्यक् विभाजन, वंशपरम्परासे चली आती हुई रक्तमज्जागत विशेष्यताका पूर्ण उपयोग, सबका पारस्परिक सहयोग और अपने-अपने कर्मद्वारा एक-दूसरेका जीवन सुगम बनानेकी स्वाभाविक चेष्टा तथा आदर्श स्वार्थ-त्यागका ऐसा भव्य एवं सुन्दर सामञ्जस्य अन्यन्त्र कहीं मिलता ही नहीं। वर्णव्यवस्थाके सुदृढ़ दुर्गने ही अनेकों भीषण-भीषण आक्रमणोंसे आर्यजातिकी संस्कृतिको सुरक्षित रखा, जब कि अन्यान्य अनेकों सभ्यताएँ, संस्कृतियाँ विजेताके प्रभावमें आकर नष्ट हो गयीं। कर्म छोटा-बड़ा नहीं, यह तो आप मानते ही हैं। वंशपरम्परासे जिस कुलमें जो कर्म स्वाभाविक चले आ रहे हों, वे ही उस कुलके बालकके लिये सुसाध्य होते हैं— यह एक अनुभूत सत्य है। अब ब्राह्मणके जो स्वभाव, त्याग आदि गुण कहे गये हैं, जरा सोचकर बताइये—वे सब श्लाघ्य और आदरणीय हैं या नहीं? धर्मके क्षेत्रमें जहाँ ब्राह्मणको जन्मजात पूज्य माना जाता है, वहाँ परलोक और पुनर्जन्मकी सत्ता मानकर ही ऐसा व्यवहार होता है। यदि आप धर्म और पुनर्जन्म तथा परलोकको मानते हैं तब तो पुण्यके प्रारब्धसे प्राप्त ब्राह्मणयोनिमें जन्म लेनेवाला जन्मत: पवित्र है ही और धर्मके क्षेत्रमें उसकी पवित्रताका माना जाना उचित ही है। हाँ, यदि आप पुनर्जन्म, परलोक और धर्मको नहीं मानते हैं तब तो अवश्य ही आपकी समझमें आर्य-संस्कृतिकी यह जन्मगत पवित्रताकी मान्यता नहीं आ सकती।

(३) चोरी, हिंसा तथा परस्त्रीगमन आदि पापोंमें सारा दोष प्राय: इन पापोंको करनेवालेका ही है। इसके लिये समाज, शासनप्रणाली या शासनतन्त्रको दोष देना अनुचित है। कोई भी अच्छा समाज या शासनप्रणाली इन कामोंके लिये कभी प्रोत्साहित नहीं करती, वह तो इनको दण्डनीय ही मानती है। पाप होते हैं—वस्तुत: हमारी विषयकामनासे— इन्द्रियसुखकी लालसासे। आप पूर्ति चाहते हैं अपनी कामनाकी, तृप्ति चाहते हैं अपनी इन्द्रियोंकी और इसके लिये दोषी ठहराना चाहते हैं किसी दूसरेको। यह तो स्पष्ट ही अपने ही मनका अपने-आपको धोखा देना है। जो कर्म करता है, वही उसका उत्तरदायी भी होता है।

(४) यह सत्य है कि आर्थिक दृष्टिसे भी गोवध बंद होना चाहिये; परंतु धार्मिक कारण बतलाना अन्धविश्वास है, यह बात कदापि नहीं है। वरं इसका कोई धार्मिक पक्ष नहीं है, यह दुराग्रह स्वयं ही एक अन्धविश्वास है। आपने ऐसे कितने और कौन-कौनसे प्रयोग किये हैं तथा कौन-कौनसे कितने प्रमाण प्राप्त किये हैं, जिनके बलपर पुनर्जन्म, परलोक और धर्म आदिको असिद्ध बतलाते हैं। सुनी-सुनायी अप्रामाणिक बातोंको मान लेना ही अन्धविश्वास है। वैज्ञानिकोंसे भी भूल सम्भव है; क्योंकि वैज्ञानिक अभी अन्वेषणके मार्गमें हैं। वे अभी सिद्ध गन्तव्य स्थलतक नहीं पहुँच पाये हैं। इस अवस्थामें इन अधूरी खोजोंपर और मनकी कल्पनाओंपर दुराग्रह करना अन्धविश्वास है या शास्त्रोंपर—जो महान् तपस्वी त्रिकालज्ञ ऋषियोंके अनुभूतिपूर्ण वचन हैं तथा जिनमें भ्रम-तुष्टि एवं संदेहको स्थान ही नहीं है—आस्था रखनेवालोंका उनपर अपनी मान्यता स्थिर करना अन्धविश्वास है?

हमारा धर्म बलात् किसीके स्वत्वको छीनना नहीं चाहता; किंतु अव्यावहारिक मन:कल्पित कुतर्कोंको भी वह स्वीकार नहीं करता। गोपालन करके बछड़ेके जीवननिर्वाहार्थ पर्याप्त दूध देकर, उसके पालन-पोषण-रक्षण-संवर्धनकी पूरी व्यवस्था करके गौका दूध लेना भी स्वत्वहरण है— ऐसा जो लोग कहते हैं, वे केवल कुतर्क ही करते हैं। फिर तो तमाम पेड़ोंके फलोंपर पक्षियोंका स्वत्व एवं खेतोंकी सारी उपजपर या अन्नमात्रपर पशुओंका ही स्वत्व मानना चाहिये। ऐसे कुतर्क इसीलिये उठाये जाते हैं कि शास्त्रीय परम्पराके सामने सिर झुकाते आजके लोगोंके गर्वपर ठेस-सी लगती है और बिना आधारका तर्क तो मनुष्यको भ्रममें ही डालता है। मनुष्य भलीभाँति गोपालन करके जो दूध लेता है, खेतों और वृक्षोंसे जो धान्य तथा फल लेता है, वह उसका स्वत्व ही है; क्योंकि वह उसके श्रम और सेवाका पुरस्कार है।

(५) किसी भी संस्थाको भला-बुरा बतलानेसे पहले उसके उद्देश्य, नियम तथा कार्यप्रणालीको भलीभाँति देखना-समझना आवश्यक है। देख-समझकर ही आलोचना करनी चाहिये। व्यक्ति तो सभी जगह अच्छे-बुरे हो सकते हैं। पाँचों अँगुलियाँ समान नहीं होतीं।

उपर्युक्त उत्तर बहुत संक्षेपमें लिखनेपर भी पत्र बड़ा हो गया है। आपका इससे कुछ समाधान हुआ तो आनन्दकी बात है, न हुआ तो भी आनन्द ही है। अपने विचारमात्र व्यक्त किये गये हैं। शेष भगवत्कृपा।

मेरे विचार

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

वर्तमान समयकी आवश्यकताको देखते हुए मैं अपने कुछ विचार प्रकट कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि अगर कोई व्यक्ति मेरे नामसे इन विचारों, सिद्धान्तोंके विरुद्ध आचरण करता हुआ दीखे तो उसको ऐसा करनेसे यथाशक्ति रोकनेकी चेष्टा की जाय।

मेरे दीक्षागुरुका शरीर शान्त होनेके बाद जब वि०सं० १९८७ में मैंने उनकी बरसी कर ली, तब ऐसा पक्का विचार कर लिया कि अब एक तत्त्वप्राप्तिके सिवाय कुछ नहीं करना है। किसीसे कुछ माँगना नहीं है। रुपयोंको अपने पास न रखना है, न छूना है। अपनी ओरसे कहीं जाना नहीं है, जिसको गरज होगी, वह ले जायगा।

मैंने किसी भी व्यक्ति, संस्था, आश्रम आदिसे व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं जोड़ा है। यदि किसी हेतुसे सम्बन्ध जोड़ा भी हो तो वह तात्कालिक था, सदाके लिये नहीं। मैं सदा तत्त्वका अनुयायी रहा हूँ, व्यक्तिका नहीं।

मेरा सदासे यह विचार रहा है कि लोग मुझमें अथवा किसी व्यक्तिविशेषमें न लगकर भगवान्‌में ही लगें। व्यक्तिपूजाका मैं कड़ा निषेध करता हूँ।

मेरा कोई स्थान, मठ अथवा आश्रम नहीं है।

मेरी कोई गद्दी नहीं है और न ही मैंने किसीको अपना शिष्य, प्रचारक अथवा उत्तराधिकारी बनाया है। मेरे बाद मेरी पुस्तकें ही साधकोंका मार्ग-दर्शन करेंगी।

मैं अपना चित्र खींचने, चरण-स्पर्श करने, जय-जयकार करने, माला पहनाने आदिका कड़ा निषेध करता हूँ।

मैं प्रसाद या भेंटरूपसे किसीको माला, दुपट्टा, वस्त्र, कम्बल आदि प्रदान नहीं करता। मैं खुद भिक्षासे ही शरीर-निर्वाह करता हूँ।

सत्संग-कार्यक्रमके लिये रुपये (चन्दा) इकट्ठा करनेका मैं विरोध करता हूँ।

मैं किसीको भी आशीर्वाद, शाप या वरदान नहीं देता और न ही अपनेको इसके योग्य समझता हूँ।

मैं अपने दर्शनकी अपेक्षा गङ्गाजी, सूर्य अथवा भगवद्विग्रहके दर्शनको ही अधिक महत्त्व देता हूँ।

रुपये और स्त्री—इन दोके स्पर्शका मैंने सर्वथा त्याग किया है।

जिस पत्र-पत्रिका अथवा स्मारिकामें विज्ञापन छपते हों, उनमें मैं अपना लेख प्रकाशित करनेका निषेध करता हूँ। इसी तरह अपनी दूकान, व्यापार आदिके प्रचारके लिये प्रकाशित की जानेवाली सामग्री (कैलेण्डर आदि)-में भी मेरा नाम छापनेका मैं निषेध करता हूँ।

मैंने सत्संग (प्रवचन)-में ऐसी मर्यादा रखी है कि पुरुष और स्त्रियाँ अलग-अलग बैठें। मेरे आगे थोड़ी दूरतक केवल पुरुष बैठें। पुरुषोंकी व्यवस्था पुरुष और स्त्रियोंकी व्यवस्था स्त्रियाँ ही करें। किसी बातका समर्थन करने अथवा भगवान्‌की जय बोलनेके समय केवल पुरुष ही अपने हाथ ऊँचे करें, स्त्रियाँ नहीं।

कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनोंमें मैं भक्तियोगको सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ और परमप्रेमकी प्राप्तिमें ही मानवजीवनकी पूर्णता मानता हूँ।

जो वक्ता अपनेको मेरा अनुयायी अथवा कृपापात्र बताकर लोगोंसे मान-बड़ाई करवाता है, रुपये लेता है, स्त्रियोंसे सम्पर्क रखता है, भेंट लेता है अथवा वस्तुएँ माँगता है, उसको ठग समझना चाहिये। जो मेरे नामसे रुपये इकट्ठा करता है, वह बड़ा पाप करता है। उसका पाप कभी क्षमा नहीं होगा।

व्रतोत्सव-पर्व

भाद्रपद कृष्णपक्ष (२३-८-२००२ से ७-९-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	शुक्र	धनिष्ठा	२३ अगस्त	भाद्रपदमें दही वर्जित (तक्र आदि नहीं), राष्ट्रिय भाद्रपदमास, सायन कन्याराशिके सूर्य रात्रि २-३६ बजे, धनिष्ठा नक्षत्र प्रातः ५-४१ बजेतक
द्वितीया	शनि	शतभिषा	२४ ,,	मीनके चन्द्रमा रात्रि ३-२८ बजे, अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ७-३४ बजे, विन्ध्याचल माताकी जयन्ती, त्रिपुष्करयोग प्रातः ७-४३ बजेसे
द्वितीया	रवि	पू०भा०	२५ ,,	द्वितीया तिथि प्रातः ५-४२ बजेतक, विशालाक्षीयात्रा, कज्जली (कजरी)-के निमित्त रतजग्गा, यायिजययोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग दिन १०-०५ बजेसे, भद्रा रात्रि ६-४२ बजेसे
तृतीया	सोम	उ०भा०	२६ ,,	भद्रा प्रातः ७-४१ बजेतक, कज्जली (कजरी) तीज, गोपूजा, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ८-३५ बजे, यायिजययोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग प्रातः ७-४१ बजेतक
चतुर्थी	भौम	रेवती	२७ ,,	मेषके चन्द्रमा दिन ३-१५ बजे, सर्वार्थामृतसिद्धियोग दिन ३-१६ बजेसे, पञ्चक समाप्त दिन ३-१५ बजे
पञ्चमी	बुध	अश्विनी	२८ ,,	चन्द्रषष्ठीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ९-३७ बजे, रक्षापञ्चमी (उड़ीसा), रवियोग सायं ५-४७ बजेसे
षष्ठी	गुरु	भरणी	२९ ,,	वृषके चन्द्रमा रात्रि २-२७ बजे, हलषष्ठी (ललही छठ)-व्रत, षष्ठी तिथि दिन १-२७ बजेतक, रवियोग रात्रि ८ बजेतक, यायिजययोग दिन १-२८ बजेसे रात्रि ८ बजेतक, भद्रा दिन १-२८ बजेसे रात्रि २-१८ बजेतक
सप्तमी	शुक्र	कृत्तिका	३० ,,	सप्तमी तिथि दिन २-४९ बजेतक, कृत्तिका नक्षत्र रात्रि ९-५० बजेतक, आधी रातमें अष्टमी तिथि और रोहिणी नक्षत्रके योगसे आज ही श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत (सबका), चन्द्रोदय रात्रि १०-४८ बजे, श्रीकृष्णावतार अष्टमी, स्थायिजययोग दिन २-५० बजेसे रात्रि ९-५० बजेतक
अष्टमी	शनि	रोहिणी	३१ ,,	सूर्योदयमें अष्टमी तिथि और रोहिणी नक्षत्रके योगसे श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत (वैष्णव), अष्टमी तिथि दिन ३-४४ बजेतक, रोहिणी नक्षत्र रात्रि ११-१६ बजेतक, गोकुलाष्टमी (नन्दोत्सव), श्रीजयन्ती (रामानुज), यायिजययोग तथा सर्वार्थामृतसिद्धियोग दिन ३-४५ बजेसे रात्रि ११-१६ बजेतक, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके सूर्य दिन २-१३ बजे (सुवृष्टियोग)
नवमी	रवि	मृगशिरा	१ सितम्बर	मिथुनके चन्द्रमा दिन ११-४४ बजे, भद्रा रात्रि शेष ४-०७ बजेसे
दशमी	सोम	आर्द्रा	२ ,,	भद्रा दिन ४-०३ बजेतक, यायिजययोग रात्रि १२-३६ बजेसे
एकादशी	भौम	पुनर्वसु	३ ,,	कर्कके चन्द्रमा सायं ६-३१ बजे, जया एकादशीव्रत (सबका), त्रिपुष्करयोग तथा स्थायिजययोग दिन ३-२८ बजेसे रात्रि १२-३० बजेतक
द्वादशी	बुध	पुष्य	४ ,,	प्रदोषव्रत, पर्युषणपर्व आरम्भ (जैन), पुष्य नक्षत्र रात्रि ११-५९ बजेतक
त्रयोदशी	गुरु	अश्लेषा	५ ,,	सिंहके चन्द्रमा रात्रि ११-०८ बजे, मासशिवरात्रिव्रत, अघोरचतुर्दशी, यायिजययोग दिन १२-५५ बजेतक, भद्रा दिन १२-५६ बजेसे रात्रि १२ बजेतक
चतुर्दशी	शुक्र	मघा	६ ,,	कुशोत्पाटिनी अमावास्या, चतुर्दशी तिथि दिन ११-०७ बजेतक, 'ॐ हुँ फट्' इस मन्त्रसे कुशग्रहण, श्राद्धकी अमावास्या, स्थायिजययोग दिन ११-०७ बजेतक, मघा नक्षत्र रात्रि ९-५५ बजेतक
अमावास्या	शनि	पू०फा०	७ ,,	कन्याके चन्द्रमा रात्रि २-०६ बजे, स्नान-दानकी अमावास्या, जैन उत्सव, यायिजययोग रात्रि ८-३१ बजेसे, अमावास्या तिथि दिन ९-०२ बजेतक

भाद्रपद शुक्लपक्ष (८-९-२००२ से २१-९-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	रवि	उ०फा०	८ सितम्बर	चन्द्रदर्शन, पौराणिक अगस्त्योदय दिन १२-२४ बजे, श्रीशंकरदेव तिथि (असम), त्रिपुष्करयोग प्रातः ६-४७ बजेसे सायं ६-५५ बजेतक, यायिजययोग प्रातः ६-४६ बजेतक
द्वितीया	द्वितीया तिथिका क्षय			प्रतिपदा तिथि प्रातः ६-४६ बजेतक तदुपरि द्वितीया तिथि रात्रि शेष ४-२१ बजेतक
तृतीया	सोम	हस्त	९ ,,	तुलाके चन्द्रमा रात्रि शेष ४-२२ बजे, मन्वादि तृतीया, वाराहावतार (दोपहर), हरितालिकाव्रत (तीज), यायिजययोग सायं ५-१४ बजेतक तदुपरि रवियोग
चतुर्थी	भौम	चित्रा	१० ,,	वरद श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध, चन्द्रास्त रात्रि ८-४० बजे, विनायक चतुर्थी (तमिलनाडु), रवियोग दिन ३-३१ बजेतक, भद्रा दिन १२-४३ बजेसे रात्रि ११-३० बजेतक
पञ्चमी	बुध	स्वाती	११ ,,	ऋषिपञ्चमीव्रत, दोपहरमें सप्तर्षिपूजा, रक्षापञ्चमी (बंगाल), गुरुपञ्चमी (उड़ीसा), सांवत्सरी जैन, रवियोग दिन २-०२ बजेसे
षष्ठी	गुरु	विशाखा	१२ ,,	वृश्चिकके चन्द्रमा प्रातः ६-५८ बजे, श्रीलोलार्कषष्ठीव्रत, काशीमें भदैनी स्थित लोलार्ककुण्डमें पुत्रकी प्राप्ति-हेतु स्नान, सूर्यषष्ठीव्रत, देवषष्ठी, स्वामिकार्तिकेय दर्शन, विशाखा नक्षत्र दिन १२-३६ बजेतक तदुपरि अनुराधा नक्षत्रमें ज्येष्ठादेवीका आवाहन, रवियोग दिन १२-३६ बजेतक, यायिजययोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ७-०८ बजेसे
सप्तमी	शुक्र	अनुराधा	१३ ,,	मुक्ताभरण सप्तमी, संतान सप्तमी, अपराजिता सप्तमी, स्थायिजययोग सायं ५-०८ बजेसे, दोपहरमें ज्येष्ठादेवीका पूजन, भद्रा सायं ५-१८ बजेसे रात्रि शेष ४-३२ बजेतक
अष्टमी	शनि	ज्येष्ठा	१४ ,,	धनुके चन्द्रमा दिन १०-३७ बजे, ज्येष्ठा नक्षत्र दिन १०-३७ बजेतक, मूल नक्षत्रमें ज्येष्ठादेवीका विसर्जन, महालक्ष्मीव्रतका आरम्भ सोलह दिनतक, श्रीलक्ष्मीकुण्डमें स्नानारम्भ, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रका सूर्य दिन ८-२४ बजे (स्वल्पवृष्टियोग), हिन्दी दिवस, राधाष्टमी, नन्दानवमी (पूर्वविद्धा बंगाल, उड़ीसा)
नवमी	रवि	मूल	१५ ,,	मूल नक्षत्र दिन १०-०९ बजेतक, श्रीचन्द्र-जयन्ती (श्रौतशाखा उदासीन), महारविवारव्रत, सर्वार्थसिद्धियोग दिन १०-०९ बजेतक तदुपरि रवियोग
दशमी	सोम	पू०षा०	१६ ,,	मकरके चन्द्रमा दिन ४-१४ बजे, दशावतार दशमीव्रत, रवियोग सायं ६-०६ बजेतक, भद्रा रात्रि २-०१ बजेसे
एकादशी	भौम	उ०षा०	१७ ,,	भद्रा दिन १-५६ बजेतक, पद्मा एकादशीव्रत (सबका), विश्वकर्मापूजा, कर्मा एकादशी, श्रवणद्वादशी (विष्णु शृंखल योग), श्रीविष्णु परिवर्तनोत्सव, वामन द्वादशीव्रत, वामनावतार, कन्याराशिके सूर्य सायं ६-३१ बजे, आज ही पुण्यकाल दोपहरके बाद, गृह-वस्त्रका दान, गोदावरीमें स्नान, 'शरद्-ऋतु' रवियोग दिन १०-३५ बजेतक, स्थायिजययोग दिन १-५७ बजेसे
द्वादशी	बुध	श्रवण	१८ ,,	कुम्भके चन्द्रमा रात्रि १२-१७ बजे, एकादशीव्रतका पारण दिन ११-१० बजेके बाद, दहीका दान, दुग्धत्याग व्रतारम्भ, प्रदोषव्रत, पञ्चक आरम्भ रात्रि १२-१७ बजेसे, श्रवण नक्षत्र दिन ११-०९ बजेतक
त्रयोदशी	गुरु	धनिष्ठा	१९ ,,	यायिजययोग दिन १-०२ बजेतक तदुपरि रवियोग, धनिष्ठा नक्षत्र दिन १-०२ बजेतक
चतुर्दशी	शुक्र	शतभिषा	२० ,,	अनन्त चतुर्दशीव्रत, श्रीशिवपरिवर्तनोत्सव, व्रतकी पूर्णिमा, रवियोग दिन २-५६ बजेतक, स्थायिजययोग दिन २-५७ बजेसे सायं ४-३५ बजेतक, चतुर्दशी तिथि सायं ४-३५ बजेतक, भद्रा सायं ४-३६ बजेसे रात्रि शेष ५-२६ बजेतक
पूर्णिमा	शनि	पू०भा०	२१ ,,	मीनके चन्द्रमा दिन १०-३८ बजे, स्नान-दान आदिकी पूर्णिमा, लोकपालपूजा, उमामहेश्वरव्रत (अनन्तव्रतकी तरह), नान्दीमातामह श्राद्ध, इन्द्रगोविन्दपूजा (उड़ीसा), नारायण गुरु समाधि दिवस (केरल), यायिजययोग सायं ५-१३ बजेसे, पूर्णिमा तिथि सायं ६-१८ बजेतक

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईमानदारीका फल

घरमें स्त्रीको टी०बी० हो रही थी। छोटे एकमात्र बच्चेको भयानक कुकुर-खाँसी। न दवाके लिये पैसे थे न पथ्यके लिये। मगनलाल बीस रुपये महीनेकी नौकरी करता था। डॉक्टरने कहा था कि वह सौ रुपयेकी व्यवस्था कर सके तो उसके स्त्री-बच्चेके लिये दवा तथा पथ्यकी व्यवस्था हो सकती है और दोनोंके प्राण बच सकते हैं। डॉक्टर अपनी फीस नहीं लेगा, पर दवा तथा पथ्यकी व्यवस्था तो मगनलालको ही करनी पड़ेगी।

मगनलालका बुरा हाल था। कहाँसे पैसे मिलें? उसके मालिक भी बहुत धनी नहीं थे। मामूली व्यापार करते थे। उनके दो लड़के बाहर पढ़ते थे तथा बूढ़े माँ-बाप देशमें रहते थे। दोनों जगह पचास-पचास रुपये वे प्रतिमास भेजा करते थे। उन्होंने दो मनीऑर्डर पचास-पचास रुपयेके लिखकर मगनलालको सौ रुपये दिये और डाकमें लगानेको भेजा।

मगनलालको स्त्री-बच्चेकी जान बचानेके लिये सौ रुपयेकी ही जरूरत थी और ये सौ रुपये ही थे। स्त्री-बच्चेकी करुण दशा, उनकी रोनी सूरत और रुपयोंकी व्यवस्था होनेपर उनकी जान बचनेकी पूरी आशा। मगनलालका मन विचलित होने लगा। बार-बार संघर्ष हुआ, पर आखिर स्त्री-बच्चेके मोहने विजय पायी। मगनलाल मनीऑर्डर न लगाकर शामको रुपये घर ले गया। पर उसका मन बड़ा खिन्न था। चेहरा अत्यन्त उदास। वह पश्चात्तापकी आगमें जल रहा था। घर जाकर उसने पत्नीसे कहा बड़ी हिम्मत बटोरकर कि वह सौ रुपये लाया है—दवा-पथ्यादिके लिये। पत्नीने उसके चहरेको उदास तथा आँखोंमें छलकते आँसुओंको देखा। पूछा, 'कहाँसे कैसे लाये हैं?' उसने सारी बातें बता दीं। पत्नीने कहा—'आपने मोहमें पड़कर यह क्या किया? मान लीजिये मेरे तथा बच्चेके प्राण नहीं बचेंगे; पर कौन कह सकता है कि अगले जन्ममें हमलोगोंका फिर मिलाप नहीं होगा। पर खोया हुआ ईमान, गँवायी हुई सचाई कहाँसे वापस मिलेगी? आप भगवान्‌पर भरोसा कीजिये और कल ही दोनों मनीऑर्डर लगा दीजिये तथा हिम्मत करके अपना यह अपराध मालिकको बता दीजिये। हो सकता है वे आपकी एक बार नीयत बिगड़ी जानकर आपको निकाल दें; पर भगवान् आपके योगक्षेमको निबाहेंगे। आप भगवान्‌पर पूरा भरोसा कीजिये।'

मगनलालका मन तो दुविधामें था ही। दो प्रकारके पापी होते हैं। एक तो वे—जिनको परिस्थितिके वश होकर मानसिक कमजोरीके कारण पाप करने पड़ते हैं, पर वे पाप उनके हृदयमें शूलकी तरह चुभते रहते हैं। दूसरे वे, जो पाप करके अपनेको बुद्धिमान् मानते तथा गौरवका अनुभव करते हैं। ऐसे पापियोंका उद्धार बड़ा ही कठिन होता है। पर मगनलालका वह पाप परिस्थितिवश हुआ था, उसके मनमें पश्चात्ताप था। उसको पत्नीकी पवित्र प्रेरणासे अपनी भूल स्पष्ट हो गयी। दूसरे ही दिन उसने मनीऑर्डर लगा दिये और मनीऑर्डर लगाकर कल वापस न लौटनेकी, मोहवश रुपये रख लेनेकी, अपने मनकी बिगड़ी हालतकी तथा पत्नीके साथ हुई बातचीतकी सारी कथा रोते-रोते मालिकको सुना दी और कहा कि 'मुझसे यह अक्षम्य अपराध हो गया है, आप मुझे निकाल दीजिये।'

मालिक बड़े नेक तथा सहृदय थे। वे मगनलालकी स्त्रीकी बीमारीका हाल कुछ सुन चुके थे। मगनलालने तो कभी विशेष बताया नहीं था। इसलिये वे समझते थे—अच्छी हो गयी होगी। आज सब बातें सुनकर उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये और सहानुभूति जाग उठी। उन्होंने मगनलालका वेतन बीससे पैंतालीस कर दिया। ऐसे ईमानदार आदमी मासिक पैंतालीसपर मिल जायँ तो बड़े सस्ते मिले। सौ रुपये नगद उसी समय दे दिये और कह दिया कि 'पत्नी तथा बच्चेके लिये दवा-पथ्यमें जो खर्च लगे, सब दूकानसे ले लिया करो।'

मगनलाल और उसकी पत्नीकी ईमानदारीका फल हाथों-हाथ मिला। पत्नी और बच्चा दोनों अच्छे हो गये। आगे चलकर तो मालिकने मगनलालको अपनी दूकानमें बराबरका हिस्सेदार बना लिया।

—रामजीवन चौधरी

(२)

श्रीराधेरानी भाभी बनीं

भगवान् अन्तर्यामी हैं। वे घट-घटवासी हैं। यद्यपि आजका विलासी मनुष्य इन बातोंपर विश्वास नहीं करता। यदि कोई कहता है कि भगवान्‌की कृपासे मेरा मनोरथ पूरा

हुआ, मुझे अमुक वस्तु प्राप्त हुई, मेरा अमुक कार्य सिद्ध हुआ तो उसकी हँसी उड़ायी जाती है, वह मूर्ख कहलाता है। समाजका एक ऐसा वर्ग है जो पश्चिमी सभ्यताका पुजारी है, होटलों, क्लबोंमें खाने-पीने तथा नाचनेवाला है। ये लोग क्या जानें कि भगवान् भी हैं! ये लोग अध्यात्मको क्या जानें! मन्दिर जाना, मूर्तिपूजा सब उनके लिये हास्यास्पद है। दूसरी ओर एक और भी वर्ग है जो मन्दिर जाता है, धार्मिक स्थानोंमें, तीर्थोंमें जाता है, शास्त्रसम्मत बातोंपर विश्वास करता है और पूर्ण समर्पण करता है अपने इष्टदेवके प्रति। आज भी भगवान् उनसे दूर नहीं हैं। वे उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं और उनके विश्वासको दृढ़ करते हैं।

ऐसी ही आश्चर्यचकित करनेवाली मेरे जीवनकी एक सच्ची घटना है। राधा-कृष्ण मेरे इष्टदेव हैं, मेरे सर्वस्व हैं। मैं इन्हें भाई एवं भाभी मानती हूँ। जबसे मेरे लौकिक भाईका देहान्त हुआ है, मैं वृन्दावनमें अनन्तश्रीविभूषित बिहारीजीको प्रतिवर्ष रक्षाबन्धनपर राखी भेजती हूँ, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे इसे सहर्ष स्वीकार करते हैं। इससे मुझे बहुत शान्ति एवं आनन्दका अनुभव होता है। मैं श्रीराधारानीको अपनी भाभीके रूपमें देखती हूँ।

श्रावणकी तीज थी। इसे हमारे समाजमें लड़कियोंका बहुत बड़ा त्यौहार माना जाता है। उस दिन न जाने क्यों मैं श्रीराधारानीको इस प्रकार उलाहना दे बैठी—'तुम मेरी कैसी भाभी हो, जो आजतक मुझे बरसाने भी न बुलाया? कल तीज है, तुम्हारे लिये कुछ असम्भव नहीं है। जबतक माँ तथा भाभी थीं, बुलाती थीं, नाना प्रकारके पकवान, पूरी, कचौड़ी, कई प्रकारकी मिठाइयाँ इत्यादि बनाती थीं, बड़े प्रेमसे खिलाती थीं। आज मुझे कोई बुलानेवाला नहीं है; क्योंकि मेरे मायकेका परिवार समाप्तप्राय ही है।' रातका समय था, ऐसे ही ध्यान करते-करते, अपनेसे बात करते-करते न जाने मैं कब सो गयी।

दूसरे दिन प्रात:काल जिनके यहाँ मैं सत्संगमें जाती थी, उनका फोन आया, हम बरसाने जा रहे हैं। आज तीज है, वहाँ बड़ा उत्सव होता है, तुम्हें चलना है क्या? मैंने कहा—हाँ, मैं भी चलूँगी। मैं उन सबके साथ बसद्वारा बरसाने चली गयी। गर्मी बहुत थी, मुझे उच्च रक्तचाप रहता है। हमारे साथीलोग तो परिक्रमा लगाने चले गये पर मैं उच्च रक्तचापके कारण अधिक चलने-फिरनेमें असमर्थ थी। अत: ऊपर मन्दिरमें जाकर श्रीजीके सामने दालानमें बैठ गयी। भीड़ बहुत थी, सारा आँगन खचाखच भरा था, खूब झूलेके गीत और मल्हारें गायी जा रही थीं। मैं एक ओर बैठी हुई थी, इतनेमें एक साँवला-सा लगभग १२ या १४ सालका लड़का अपने हाथमें बाँसकी एक टोकरी लेकर मेरे पास आया और बोला—'ले, जीजी! तेरे काजे राधेरानीने भेजो है।' मैं चुप बैठी रही, उसने फिर उसी प्रकार कहा। मैंने उससे कहा—'भैया! मैंने तो अभी राधारानीकी न्योछावर भी नहीं की है, किसी औरके लिये प्रसाद भेजा होगा।' इस बार उसने जरा जोर देकर कहा—'ले, चौं नाय राधेरानीने तेरे ही ताईं भेजो है।' मैंने ले लिया। मैं उस लड़केके केवल चरण-दर्शन ही कर पायी, मुखारविन्दके दर्शनसे वञ्चित रह गयी। मेरे हाथमें टोकरी देकर वह चलता बना। जब टोकरीको देखा तो मैं दंग रह गयी, उसमें अनेक प्रकारके पकवान थे, जिनके नाम मैंने रातको लिये थे अपने मनमें। कोई चीज कम न थी बल्कि ज्यादा ही थी। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, आँखोंसे अश्रुपात हो रहा था। यह सब क्या हो गया? मैं इस योग्य तो नहीं हूँ! मैंने क्यों अपने जरा-से सुखके लिये उन्हें कष्ट दिया? सोचा, वह लड़का और कोई नहीं, मेरा साँवला-सलोना अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका रचयिता कृष्ण ही था।

उस टोकरीमेंसे एक-दो पदार्थ—पूरी-सब्जी, मिठाई, खाकर देखा तो उनका स्वाद अनुपम था, कोई उपमा नहीं दे सकती, स्वाद नहीं बता सकती, ऐसे जैसे गूँगेके लिये गुड़का स्वाद हो।

इतनेमें मेरे सब सत्संगी साथी आ गये, मेरे हाथमें टोकरी देखकर बोले, देखो कितना प्रसाद लिये बैठी है। खूब रुपये चढ़ाये होंगे, इसीलिये इतना प्रसाद मिला है। पर वास्तविकता तो कुछ और ही थी। उन सबको भी उसमेंसे प्रसाद दिया, वह तो महाप्रसाद था। थोड़ा-सा घर भी ले आयी। किसीको कुछ बताया नहीं। वहाँसे आकर दो-तीन दिनतक बौराई-सी रही। मनमें विश्वास ही नहीं होता था कि यह सब क्या है, मेरा सपना तो नहीं है; लेकिन फिर राधेरानीकी करुणाका ख्यालकर सब कुछ सच्चा लगता है और मेरा मन विभोर-सा होकर नाच उठता है।

प्रत्येक वर्ष तीज आती है, मेरे मानसपटलपर उस घटनाका चित्र-सा खिंच जाता है। फिर सोचती हूँ, मेरे कारण श्रीराधेरानीको भाभी बनना पड़ा और श्यामसुन्दरको भैया।

—श्रीमती भगवती गोयल

मनन करने योग्य

काँटेके बदले फूल

रविवार संध्याका समय था। डॉक्टर क्लब जानेकी तैयारीमें थे। इतनेमें एक वृद्धने दीनतासे कहा—'डॉक्टर साहेब! मेरा बच्चा मर रहा है।'

'कल सबेरे आना।'

'साहेब! छः तो चले गये, यह अन्तिम भी चला जायगा। कृपा करो····'

सुनी-अनसुनी करके डॉक्टर मोटरमें बैठ गये। वृद्ध निराश मुँह वापस लौट गया। उसी रात्रिको उसका सात वर्षका लड़का संसारसे कूच कर गया!

कुछ वर्ष बीत गये इस बातको। डॉक्टरने बड़ा यश कमाया। उन्होंने अपने इकलौते बेटेको खूब पढ़ाया।

एक दिन वह मित्रोंके साथ सैरको गया था। उसके पैरके नीचे कोई चीज दबी, देखा तो काला नाग था। घर लानेपर तो उसे देखकर डॉक्टर व्याकुल होकर रो पड़े। ओझा आया, लेकिन लड़केकी प्रतिक्षण बिगड़ती हालतको देखकर मन्त्र पढ़नेकी उसकी हिम्मत ही नहीं हुई। डॉक्टर निराश हो गये!

शहरके किनारे नन्हीं-सी झोंपड़ीमें बूढ़ा-बूढ़ी आग ताप रहे थे। इतनेमें बाहरसे आवाज आयी—'भगत! जाग रहे हो क्या? डॉक्टरके बच्चेको साँपने काट खाया है!'

'किसको? डॉक्टरके लड़केको? वह डॉक्टर जो छावनीके बँगलेमें रहता है?'

'हाँ, हाँ, वही। चलते हो? बड़ी भलाईका काम होगा।'

भगतने कठोरतासे सिर धुना—'जाय मेरी बला! अब उसे पता लगेगा कि बेटेके मरनेका दुःख कैसा होता है।'

बुढ़िया बड़बड़ाई, 'इतनी रातको इस कड़ाकेकी सर्दीमें कौन जाय?'

'अरे, दुपहरी होती और मोटर लेकर आया होता तो भी मैं नहीं जाता। मेरे मंगल बेटेका मुँह अब भी मेरे सामने तैर रहा है। बच्चेका मरना कितना दुःखदायी होता है! दुनिया मुझे भले ही निर्दयी कहे।' भगतने कहा।

भगतके लिये किसीको साँप काटनेकी खबर सुनकर न जाना—यह उसके जीवनमें पहला ही प्रसंग है।

चारपाईपर पड़े-पड़े उसने कितनी ही करवटें बदलीं, पर नींद नहीं आयी, उसने दरवाजा खोला।

'कहाँ जा रहे हो?' बुढ़ियाने पूछा।

'कहीं नहीं, यह तो देख रहा था कि कितनी रात बाकी है। नींद नहीं आ रही है।'

'कहाँसे आती? तुम्हारा मन तो चला गया है उस डॉक्टरके यहाँ, पर गये तो देखना····।'

'नहीं भाई, मैं मूर्ख नहीं हूँ जो काँटेके बदलेमें फूल दूँ।'

परंतु न जाने क्यों उसका हृदय मान नहीं रहा था। एक पलका विलम्ब भी सहन नहीं हो रहा था। उसने धीरेसे दरवाजा खोला। राह चलते चौकीदारसे पूछा—'कै बजे हैं?' 'एक बजा है भगत! उस डॉक्टरका बेटा मर रहा है। सुना है वह बचानेवालेको दस हजार रुपये देगा।'

भगत बड़बड़ाया—'दस लाख क्यों नहीं देता?'

चौकीदार चल दिया। पीछे-पीछे भगत खिंचे-से चले।

आधे रास्ते पहुँचकर भगत रुके। 'इस कड़ाकेकी सर्दीमें मुझे मरनेकी क्या जरूरत थी? आरामसे सोया क्यों नहीं? नींद न आती तो दो-चार भजन ही गा लिये जाते। यह व्यर्थकी दौड़-धूप किसलिये? दुनियामें ऐसे तो कितने मरते हैं····ना-ना, जाऊँगा तो जरूर। देखना है बड़े आदमी भी छोटोंकी तरह ही रोते-पीटते हैं क्या?'

और वह आगे बढ़े। भगतकी चाल तेज हो गयी। कुछ ही क्षणमें तो वे मुट्ठी बाँधकर दौड़ने लगे। इतनी उम्रमें कभी ऐसे नहीं दौड़े।

हाँफते-हाँफते डॉक्टरके घर पहुँचे। दो मिनटतक शून्यमनस्क-भावसे बच्चेकी तरफ देखते रहे। फिर बोले—'झटपट पानी भरकर लाओ'। पता नहीं, कितने घड़े पानी भगतने बच्चेके सिरपर उँड़ेले। मन्त्र पढ़े, जड़ी-बूटी सुँघायी और उषाके आगमनके साथ-साथ बच्चेने आलस मरोड़ा। डॉक्टर तो आनन्दके अतिरेकमें कुछ बोलचाल ही नहीं सके। बातको हवा उड़ा ले गयी—'डॉक्टरके मरते बच्चेको भगतने बचा दिया।'

भगतको सब ढूँढ़ रहे थे, पर वे तो गायब! जिस तेजीसे दौड़े आये थे, उससे भी ज्यादा तेजीसे दौड़ चले थे। बुढ़ियाके जगनेसे पहले ही उन्हें चारपाईपर जो पहुँच जाना था।

—कान्ति शाह

'अखण्ड आनन्द'

भारतीय संस्कृति और परिवार-नियोजन

पिछले कई वर्षोंसे भारत सरकार परिवार-नियोजनपर अत्यधिक जोर दे रही है, इसके लिये कई प्रकारके कार्यक्रम भी चलाये जा रहे हैं। विभिन्न स्थानोंपर सरकारकी ओरसे परिवार-नियोजनके केन्द्र खोले गये हैं। यहाँ कृत्रिमरूपसे जनसंख्या रोकनेका प्रयास किया जाता है, इसके लिये नयी-नयी दवाओंका तो आविष्कार हुआ ही है, साथ ही ऑपरेशन आदिके द्वारा प्रजनन-शक्तिको समाप्त कर दिया जाता है। इतना ही नहीं, जनसंख्या रोकनेके लिये गर्भपात और भ्रूणहत्याको भी वैध घोषित किया गया है, जो सदियोंसे तथा अंग्रेजोंके समय भी कानूनद्वारा अवैध था और जिसे एक दण्डनीय अपराध माना जाता था। इसे अब वैध बना दिया गया तथा इस कार्यके लिये केन्द्रोंमें विशेष सुविधा प्रदान की जाती है।

अपने शास्त्रोंके अनुसार कोई निषिद्ध कार्य करनेसे पाप लगता है और पापका परिणाम है—नरक अथवा दुःखकी प्राप्ति अर्थात् सामान्यतः कोई व्यक्ति गर्हित कर्म करता है तो वह पापका भागी होता है और इसके परिणामस्वरूप उसे नरक या दुःख भोगना ही पड़ता है। यह तो हुई सामान्य पापकी स्थिति, इसके साथ ही पाँच महापाप बताये गये हैं—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥

(मनुस्मृति ११।५४)

ब्रह्महत्या, मदिरापान, स्वर्णकी चोरी तथा गुरुपत्नीगमन—ये चार महापाप तो गिनाये गये। इन चारोंमेंसे किसी एकके भी साथ सम्पर्क रखनेवाला व्यक्ति पाँचवाँ महापापी माना गया है। सामान्य पापकी अपेक्षा महापापमें स्वाभाविक रूपसे विशेष प्रायश्चित्त है। इसलिये प्रायः विचारवान् लोग महापापसे तो पूरी तरह बचनेका प्रयास करते हैं। पर वास्तविकता यह है कि धर्मकी दृष्टिसे भ्रूणहत्या अथवा गर्भपात करनेमें महापापसे भी दुगुना दोष है—

यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते॥

(पाराशरस्मृति ४।२०)

—ऐसा करनेवाला महा-महापापी है। उसे बड़े-से-बड़ा दण्ड तो भुगतना ही पड़ेगा इसके साथ ही वह अगले जन्ममें निःसंतान भी हो सकता है। धर्म-शास्त्रोंमें तो यहाँतक लिखा है कि जिसने भ्रूणहत्या कर ली, उसके दृष्टिपातसे भी अन्न अशुद्ध हो जाता है—

भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया।
पतत्रिणाऽवलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च॥

(मनुस्मृति ४।२०८)

भ्रूणहत्या करनेवालेके देखनेमात्रसे, रजस्वलाके स्पर्शमात्रसे, पक्षीके द्वारा जूठा कर देनेसे तथा कुत्तेके छूनेमात्रसे अन्न दूषित हो जाता है।

आजकल एक नयी बात और हो गयी है—आधुनिक विज्ञानके विकासके कारण अल्ट्रासाउण्ड आदि कुछ ऐसी मशीनोंका आविष्कार हो गया है जिससे यह मालूम हो जाता है कि गर्भमें लड़का है या लड़की। कुछ लोग जो संतानके रूपमें पुत्री नहीं चाहते, वे खासकर लड़की होनेकी जानकारी मिलनेपर गर्भपात करा देते हैं। इस प्रकारकी घटनाएँ निरन्तर होने लगी हैं—यह कितना अमानवीय जघन्य कृत्य है! बुद्धिजीवियोंके विरोधके कारण यद्यपि सरकारने भी इस प्रकारकी जानकारीको अवैध घोषित कर दिया है, परंतु यह कितने आश्चर्यकी बात है कि परिवार-नियोजनकी दृष्टिसे गर्भपातको कानूनसे वैध मान लिया गया तथा इस कार्यको प्रोत्साहित करनेके लिये विभिन्न सुविधाएँ प्रदान की जाने लगीं। पर वास्तविक बात तो यह है कि गर्भपात एक हत्या है, जिसे भ्रूणहत्या कहा जाता है। मानव-योनिमें

जीव संसारमें पदार्पण करना चाहता ही है कि उसके पूर्व ही गर्भमें उसकी हत्या कर दी जाती है। उसे मानव-जीवन प्राप्त करनेसे वञ्चित कर दिया जाता है, जबकि हिन्दू-संस्कृतिमें प्राणी चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद मनुष्य-योनि प्राप्त करता है। इस प्रकार भ्रूणहत्या एक जघन्य कृत्य है, जो भारतमें सर्वदा नियम एवं कानूनसे सर्वथा प्रतिबन्धित था।

एक आश्चर्यकी बात और है कि परिवार-नियोजनके सारे नियम-कानून, प्रचार-प्रसार—ये मुख्यरूपसे हिन्दुओंको ही प्रभावित करते हैं। इसके कारण अन्य समुदायके मुकाबले हिन्दुओंकी जनसंख्याका प्रतिशत लगातार घटता जा रहा है। कुछ दिनों पूर्व 'विश्वकी इस्लामी जनसंख्या' की रिपोर्ट समाचार-पत्रोंमें छपी है, जिसमें बताया गया है कि भारतमें १०१.८६ करोड़ आबादीमें २२.६४ करोड़ मुस्लिम जनसंख्या है जो देशकी पूरी जनसंख्याका लगभग २२ प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त २ प्रतिशत ईसाई आदि अन्य समुदाय भी हैं। सन् १९९१ में हिन्दुओंकी जनसंख्याका प्रतिशत भारतमें ८५ प्रतिशत था जो घटकर सन् २००२ में ७६ प्रतिशत रह गया है।

सन् १९४७ में मुसलमानोंकी संख्या केवल २५ प्रतिशत होनेपर ही भारतका विभाजन हो गया और पाकिस्तान बन गया जो आजतक सिरदर्द बना है। विशेषज्ञोंका मानना है कि हिन्दुओंकी आबादी और तेजीसे घट सकती है; क्योंकि मुस्लिम समुदाय मज़हबी कारणोंसे परिवार-नियोजनका बहिष्कार करता है, जिसके कारण वर्तमानमें लगभग १ करोड़की संख्या प्रतिवर्ष उनकी बढ़ रही है, जो देशकी जनसंख्याका प्रायः एक प्रतिशत है। इस प्रकार हिन्दुओंकी जनसंख्याका अनुपात दिनोंदिन गिरता जा रहा है, जो भविष्यके लिये एक महान् संकटकी स्थिति है।

आज देशमें प्रजातान्त्रिक व्यवस्था है, जिसके वोट अधिक होंगे उसीकी सरकार बनेगी। इसीलिये देशके अधिकांश राजनीतिक दल दूसरे समुदायके वोट-बैंकको सुरक्षित रखनेके लिये उनकी तरफदारी करनेका प्रयास करते हैं, इतना ही नहीं उन्हें प्रसन्न करनेके लिये भारतीय संस्कृतिके विपरीत कार्य करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। जबसे भारत स्वतन्त्र हुआ तबसे आजतक देशमें कितने सत्याग्रह और आन्दोलन हुए—गोहत्या बंद करनेके लिये, परंतु यह काला-कलंक आजतक मिटा नहीं, केवल इसलिये कि एक समुदाय शायद नाराज न हो जाय और स्वार्थी राजनीतिक दलोंको उनके वोटसे कहीं वञ्चित न होना पड़े। परिवार-नियोजनकी जो वर्तमान अवस्था है वह भविष्यके लिये भयावह स्थिति उत्पन्न कर सकती है, यह सवाल हिन्दू संस्कृति और देशकी अस्मितासे जुड़ा है।

जहाँतक परिवार-नियोजनकी बात है तो हमारे धर्मशास्त्रोंने इसके लिये मार्ग प्रशस्त करते हुए विश्व-समुदायको यह संदेश प्रदान किया है कि अपने जीवनको समुन्नत बनानेके लिये प्रत्येक मनुष्यको संयम-नियम और ब्रह्मचर्य-पालनकी परम आवश्यकता है। वास्तवमें अपनी कुल-परम्पराको अक्षुण्ण रखनेके लिये संतानकी आवश्यकता होती है। भोग-विलासकी दृष्टिसे स्वेच्छाचार—कामवासना व्यक्ति या समाजको पतनके गर्तमें ले जानेवाली है, इसलिये लक्ष्यकी पूर्ति होनेपर मनुष्यको कृत्रिम साधनोंकी अपेक्षा अपने जीवनको संयमित करते हुए अपने ऋषि-महर्षियोंद्वारा निर्देशित मार्गका अनुसरण करना चाहिये। इससे परिवार-नियोजनकी समस्याका समाधान तो होगा ही, साथ-ही-साथ लोक और परलोक दोनों सुधर सकेंगे और व्यक्ति कल्याणका भागी बन सकेगा।

—राधेश्याम खेमका

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वर्ष ७६ गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, सितम्बर २००२ ई० संख्या ९

पूर्ण संख्या ९१०

हर हर हर महादेव!

सत्य, सनातन, सुन्दर, शिव! सबके स्वामी। अविकारी, अविनाशी, अज, अन्तर्यामी॥ हर०॥
आदि, अनन्त, अनामय, अकल, कलाधारी। अमल, अरूप, अगोचर, अविचल, अघहारी॥ हर०॥
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, तुम त्रिमूर्तिधारी। कर्ता, भर्ता, धर्ता, तुम ही संहारी॥ हर०॥
रक्षक, भक्षक, प्रेरक, प्रिय औढरदानी। साक्षी, परम अकर्ता, कर्ता, अभिमानी॥ हर०॥
मणिमय-भवन-निवासी, अति भोगी, रागी। सदा श्मशानविहारी, योगी, वैरागी॥ हर०॥
छाल-कपाल, गरल-गल, मुण्डमाल, व्याली। चिताभस्मतन, त्रिनयन, अयनमहाकाली॥ हर०॥
प्रेत-पिशाच-सुसेवित, पीत जटाधारी। विवसन विकट रूपधर रुद्र प्रलयकारी॥ हर०॥
शुभ्र, सौम्य, सुरसरिधर, शशिधर, सुखकारी। अति कमनीय, शान्तिकर, शिव-मुनि-मन-हारी॥ हर०॥
निर्गुण, सगुण, निरञ्जन, जगमय, नित्य प्रभो। कालरूप केवल हर! कालातीत विभो॥ हर०॥
सत्, चित्, आनँद, रसमय, करुणामय धाता। प्रेम-सुधा-निधि, प्रियतम, अखिल विश्व-त्राता॥ हर०॥
हम अतिदीन, दयामय! चरण-शरण दीजै। सब विधि निर्मल मति कर अपना करि लीजै॥ हर०॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, सितम्बर २००२ ई०

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

कल्याण

याद रखो—भगवान् मङ्गलमय हैं, उनका प्रेम अहैतुक है, उनकी दया सहज सर्वत्रव्यापिनी है, वे सर्वशक्तिमान् हैं, वे सर्वज्ञ हैं तथा नित्य निर्भ्रान्त हैं। तुम्हारे लिये जो कुछ भी विधान है, सब उनकी मङ्गलमयी इच्छारहित इच्छासे ही सम्पन्न होता है, अतएव उनकी इच्छा ही तुम्हारे लिये सदा-सर्वदा कल्याणकारिणी है।

याद रखो—तुम न सर्वज्ञ हो, न दूरदर्शी हो, न अपने यथार्थ कल्याणके स्वरूप तथा साधनको ही निर्भ्रान्तरूपसे वास्तविक जानते हो; अतएव तुम अपने लिये जो कुछ सोचते हो, जो कुछ कल्याणका साधन निश्चय करते हो, वह ठीक वैसा ही है, यह निश्चित नहीं है। तुम्हारी भूल हो सकती है। हो सकता है तुम अपनी राग-द्वेषमयी अदूरदर्शिनी दृष्टिसे अहितको हित, अमङ्गलको मङ्गल, अकल्याणको कल्याण और असत्यको सत्य मानकर उसीकी इच्छा करके अपने ही हाथों अपना अनिष्ट कर लेते हो या करने लगते हो।

याद रखो—तुमसे भूल हो सकती है, भगवान्‌से नहीं; तुम भ्रमसे अपना अमङ्गल सोच या कर सकते हो, पर भगवान् कभी तुम्हारा अमङ्गल न सोच सकते हैं न कर सकते हैं। तुम किसी बातमें अपना हित समझकर भी सीमित शक्ति होनेके कारण उसे नहीं कर सकते, पर असीमशक्ति भगवान्‌के लिये सभी कुछ सहज सम्भव है। तुम्हारी इच्छा बदल भी सकती है, पर भगवान्‌की मङ्गलमयी इच्छा नित्य है। अतएव तुमको यही चाहिये कि तुम सब प्रकारसे, सब ओरसे, सभी कार्योंमें अपने परम सुहृद् श्रीभगवान्‌की इच्छापर अपनेको छोड़कर निश्चिन्त हो जाओ।

याद रखो—भगवान्‌की इच्छापर अपनेको न छोड़कर यदि तुम अपनी स्वतन्त्र इच्छाके अनुसार भगवान्‌से काम कराना चाहते हो या करते हो तो इससे सिद्ध होता है कि भगवान्‌की सर्वज्ञता, सौहार्द तथा मङ्गलमयतापर तुम्हें विश्वास नहीं है और अपनी स्वतन्त्र इच्छाका उपयोग करके तुम अपने परम मङ्गल परिणाममें—जो भगवान्‌की मङ्गलमयी इच्छाके अनुसार होनेवाला था—बाधक होते हो और अपने-आप ही अपना अमङ्गल करते हो।

याद रखो—भगवान्‌की अहैतुकी प्रीति, सौहार्द, सर्वज्ञता आदिपर विश्वास करके तुम अपनी स्वतन्त्र इच्छाको छोड़कर भगवान्‌की इच्छापर निर्भर करते हो तो अपना सहज मङ्गल करते हो। अतएव सदा यही चाहो कि भगवान्‌की इच्छा पूर्ण हो। यह विश्वास रखो—देखनेमें कहीं भयानक या विनाशक होनेपर भी भगवान्‌की इच्छासे होनेवाला परिणाम, तुम्हें मिलनेवाला फल निश्चय ही तुम्हारे लिये परम कल्याणरूप होगा।

याद रखो—अनिच्छा या परेच्छासे जो कुछ भी फल तुम्हें प्राप्त होता है, वह भगवान्‌के मङ्गलविधानसे ही होता है। उसके विपरीत कभी इच्छा न करो, उसमें कभी असंतुष्ट मत होओ। वरं भगवान्‌का मङ्गल प्रसाद समझकर उसे सिर चढ़ाओ। भगवान्‌से कभी कोई माँग करनी हो, कुछ चाहना हो तो बस, यही माँगो, यही चाहो कि मङ्गलमय भगवन्! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। तुम्हारी इच्छाके विपरीत मेरी कभी कोई इच्छा हो ही नहीं और कदाचित् कभी कुछ हो जाय तो उसे कभी पूरी मत करना।

याद रखो—भगवत्सेवाकी बुद्धिसे, भगवान् जब जैसी सद्बुद्धि दें, वैसा आचरण करो और फल केवल भगवान्‌की इच्छापर छोड़ दो। इससे तुम्हें सुख-शान्ति तो मिलेगी ही, भगवत्कृपासे भगवत्प्रेमकी प्राप्ति भी हो जायगी। तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा।—'शिव'

सब प्रकारकी उन्नति

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गताङ्क पृ०-सं० ८०३ से आगे]

हमलोगोंको अपनी 'सामाजिक उन्नति' करनी चाहिये। हमारे समाजका पतन होता जा रहा है। आज यदि किसीके तीन-चार लड़कियाँ हो जाती हैं तो दहेजकी कुप्रथाके कारण उनका विवाह होना कठिन होता है। कलकत्ताके हंसपुखरियामें एक लड़की सोलह वर्षकी हो गयी, उसके माता-पिताके पास दहेजके लिये रुपये नहीं थे; इस कारण लड़कीका विवाह न हो सका; अतः वे लड़कीके साथ ही विष खाकर मर गये। ऐसी हत्याओंका पाप लगता है दहेज लेकर विवाह करनेवाले लड़केके अभिभावकोंको। हमारे देशमें दहेजकी प्रथा इस समय इतनी बुरी हो गयी है कि जिनके दो-चार लड़कियाँ होती हैं, वे प्रायः रात-दिन रोते हैं और लड़की भी माता-पिताके दुःखको देखकर रोती है। कोई-कोई लड़की तो माता-पिताके दुःखको देखकर आत्महत्यातक कर लेती है। कितनी लज्जा और दुःखकी बात है। आजकल हम जो रुपये लेकर लड़केको ब्याहते हैं, इसका मतलब यह कि हम लड़केको बेचते हैं।

हमारे यहाँ एक दिखावा होता है, उससे बड़ी हानि होती है। दूसरे लोग उसको देखकर उससे अधिक रुपया लगाते हैं, इससे खर्चकी वृद्धिमें प्रोत्साहन मिलता है। लड़का पैदा होता है, उस समय भी लोग बहुत फ़जूल खर्च कर देते हैं। विवाह-शादीमें जो बुरे गीत गाये जाते हैं, अनुचित दावतें दी जाती हैं, होटलोंमें पार्टी दी जाती है, आडम्बरपूर्ण सजावट की जाती है, हजारों रुपये व्यर्थ खर्च किये जाते हैं, अपवित्र तथा हिंसायुक्त वस्तुओंका व्यवहार किया जाता है—यह सभी सामाजिक पतन है। इस तरहकी बहुत-सी फ़जूलखर्ची और कुरीतियाँ हैं, जिनका सुधार करना परम आवश्यक है।

इसी प्रकार हमलोगोंको 'व्यावहारिक उन्नति' करनी चाहिये। व्यवहारमें—व्यापारमें जो झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी, दगाबाजी करते हैं, लोगोंको धोखा देते हैं—यह हमारा 'व्यावहारिक पतन' है। हमें सचाई और समताके साथ न्याययुक्त त्यागपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। इससे हमारे व्यवहारकी उन्नति होती है। दूसरोंके साथ व्यवहार करनेमें हमें स्वार्थका त्याग करना चाहिये। त्यागसे हमारी यथार्थ व्यावहारिक उन्नति होगी और सच्चा सुधार होगा।

पराये धन, परायी स्त्री, परायी यश-कीर्तिको हड़पनेका विचार तथा प्रयत्न करना, अपनी सुख-सुविधाके लिये अन्यायपूर्वक दूसरेकी सुख-सुविधाको नष्ट करना—यह सब 'नैतिक पतन' है। इससे हटकर हमें न्यायपूर्वक अपनी वस्तुपर ही दृष्टि रखनी चाहिये। हमारा नैतिक स्तर इतना ऊँचा होना चाहिये कि जिसमें अनैतिकताको कहीं जरा-सा भी स्थान हो ही नहीं। वरं हमारा न्याय वही हो, जिसमें दूसरेके अधिकारकी तथा हितकी रक्षा सावधानीसे होती हो। यही 'नैतिक उन्नति' है। हम अपनी चीज दूसरोंको दें नहीं और दूसरेकी चीज लें नहीं, ठीक अपने न्यायपर रहें तो भी दोष नहीं है।

'धार्मिक उन्नति' इससे भी उच्चकोटिकी है। श्रीमनुजीने ये साधारण धर्मके दस लक्षण बतलाये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(मनु० ६।९२)

१-धैर्य रखना, भारी आपत्ति आनेपर भी धैर्यका त्याग न करना। २-क्षमा करना, दूसरेके अपराधका बदला नहीं लेना। ३-मनको वशमें रखना। ४-चोरी-डकैती नहीं करना। ५-हृदयको शुद्ध बनानेके लिये बाहर-भीतरकी पवित्रता रखना। ६-इन्द्रियोंको वशमें रखना। ७-सात्त्विक बुद्धि। ८-सात्त्विक ज्ञान। ९-सत्य वचन बोलना। १०-क्रोध न करना—ये सामान्य धर्मके दस लक्षण हैं। यह सामान्य धर्म है। यह मनुष्यमात्रमें होना चाहिये और विशेष धर्मकी बातें मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंमें बतलायी गयी हैं, उन्हें देख लेना चाहिये। इस प्रकार अपने धर्मकी उन्नति करना 'धार्मिक उन्नति' है। इस धार्मिक उन्नतिको निष्कामभावसे करनेपर आत्माका कल्याण हो सकता है।

इसी प्रकार हमें 'आध्यात्मिक उन्नति' करनी चाहिये। आध्यात्मिक उन्नति वह है, जिससे परमात्माकी प्राप्ति हो, जिससे हमें परमात्माके तत्त्वका ज्ञान हो, हम यह समझ जायँ कि परमात्मा क्या वस्तु है। ईश्वरकी भक्ति अध्यात्मविषयका एक खास अङ्ग है। इसलिये हमको ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये। जैसे धर्मके दस लक्षण

बतलाये, वैसे ही भक्तिके भी नौ भेद बतलाये गये हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भा० ७।५।२३)

भगवान् विष्णुके नाम, गुण, प्रभाव, तत्त्वकी बातोंको सुनना श्रवणभक्ति, वर्णन करना कीर्तनभक्ति और उनका मनसे चिन्तन करना स्मरणभक्ति है। भगवान्के चरणोंकी सेवा करना पादसेवन-भक्ति, भगवान्के मानसिक या मूर्ति-विग्रहकी पूजा करना अर्चनभक्ति और भगवान्को नमस्कार करना वन्दनभक्ति है। प्रभु हमारे स्वामी, हम प्रभुके सेवक—यह दास्यभाव है। भगवान् हमारे सखा—यह सख्यभाव है और अपने आत्माको सर्वस्वसहित उनके समर्पण कर देना—यह आत्मनिवेदन है।

इस प्रकार आत्माके कल्याणके लिये जो ज्ञानयोग, अष्टाङ्गयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदि अनेक प्रकारके साधन बतलाये गये हैं, उनका अनुष्ठान करना—आध्यात्मिक उन्नति है। आध्यात्मिक उन्नतिका अन्तिम फल परमात्माकी प्राप्ति है। जिसने परमात्माकी प्राप्ति कर ली, उसीने वस्तुतः अपने अध्यात्मविषयकी उन्नति की।

अतः हमलोगोंको धार्मिक उन्नति भी परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही करनी चाहिये। फिर वह धार्मिक उन्नति भी आध्यात्मिक उन्नतिमें सम्मिलित हो जाती है। वास्तवमें अध्यात्मविषयमें जो सहायक हो, वही धार्मिक उन्नति है। जो इसमें सहायक नहीं है, वह तो उन्नति ही नहीं है। ऊपर जितनी बातें बतायी गयीं, वे यदि आध्यात्मिक विषयमें सहायक हैं, तभी उन्नति है।

अब व्यावहारिक उन्नतिके विषयमें फिर संक्षेपसे कुछ विचार किया जाता है। हमारा व्यवहार यदि सात्त्विक हो जाय तो केवल व्यवहारसे ही हमारा कल्याण हो सकता है। जैसे तुलाधार वैश्य थे और उनका व्यवहार बहुत उच्चकोटिका था। उस व्यावहारिक उन्नतिसे ही वे परमधामको चले गये। पद्मपुराणमें लिखा है कि तुलाधार वैश्य जो व्यापार करते थे, उसमें उनका स्वार्थका त्याग था, सचाईका व्यवहार था, सबके साथ सम बर्ताव था। इसीके प्रतापसे वे भगवान्के परमधाममें चले गये। इसी प्रकार शौचाचार-सदाचार है। उसे निष्कामभावसे संसारके हितके लिये करें तो उससे भी हमारा कल्याण हो सकता है। सबके हितका व्यवहार करें, सबके साथ अच्छा बर्ताव करें तो केवल हमारे उस बर्तावसे आत्मा शुद्ध होकर कल्याण हो सकता है। अतः केवल स्वार्थका त्याग होना चाहिये। स्वार्थका त्याग ही वास्तवमें मुक्ति देनेवाला है। भगवदर्थ अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मका पालन करनेसे भी कल्याण हो सकता है। भगवान् स्वयं गीतामें कहते हैं—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८।४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।' पूजा कैसी? सबमें भगवद्बुद्धि करके सबका हित करना। सबका सब प्रकारसे हित हो, इस प्रकारका भाव हृदयमें रखकर निष्काम प्रेमभावसे उनकी सेवा करना—यही कर्मोंके द्वारा भगवान्की पूजा करना है। इस प्रकारकी पूजासे मनुष्यका उद्धार हो सकता है।

भगवान्ने गीताके अठारहवें अध्यायके ४२वें श्लोकमें ब्राह्मणका, ४३वेंमें क्षत्रियका और ४४वेंमें वैश्य और शूद्रका स्वाभाविक धर्म बतलाया है। ऊपर जो ४६वाँ श्लोक लिखा है, इसमें भगवान्ने कहा है कि ये लोग उपर्युक्त प्रकारसे अपने-अपने धर्मका पालन करें तो उससे इनका कल्याण हो सकता है।

इसी प्रकार हमारी धार्मिक क्रिया भी मुक्ति देनेवाली हो सकती है। पर वह मुक्ति देती है निष्कामभावसे करनेपर। हम जो यज्ञ, दान, तप और वर्णाश्रम-धर्मका पालन करते हैं, उससे भी हमारी मुक्ति हो सकती है, यदि उसमें हमारा निष्कामभाव हो। उसमें स्वार्थका तथा आसक्ति, अहंकार, ममता और कामनाका त्याग होना चाहिये, जैसा कि भगवान्ने बतलाया है—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २।७१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है।'

इसका अभिप्राय यही है कि हमारी सारी क्रिया

स्वार्थरहित हो, हमारी क्रियाओंमें किसी प्रकारका अहंकार, स्वार्थ, ममता और आसक्ति न हो। तब वह क्रिया हमें मुक्ति देनेवाली हो जाती है। इसीका नाम 'कर्मयोग' है। निष्काम-भाव आ जानेसे यह अध्यात्मविषयका खास साधन बन जाता है।

हम यदि यज्ञ, दान, तप, सेवा सकामभावसे करते हैं तो वे सब राजसी हो जाते हैं। वह धर्म तो है, पर सकाम धर्म है और सकाम धर्मके पालनसे कामनाकी पूर्ति होती है, स्वर्गादि मिलते हैं; किंतु उससे मुक्ति नहीं होती। इसलिये हमें धर्मका पालन भी निष्कामभावसे करना चाहिये। आध्यात्मिक विषय तो स्वरूपसे ही निष्काम है। यदि उसमें सकामभाव हो तो उसका नाम ही अध्यात्मविषय नहीं हो सकता। असली अध्यात्मविषय वही है कि जिसमें अपने आत्मा और परमात्माका ज्ञान हो जाय। उससे निश्चय ही कल्याण हो जाता है।

अध्यात्मज्ञानके लिये हमको नित्य भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये, भगवान्‌का भजन-ध्यान करना चाहिये। परमात्माकी प्राप्तिके लिये दूसरा उपाय यह है कि वास्तवमें परमात्मा क्या वस्तु है—इसे जानना। इसके लिये हमको परमात्माके विषयका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। उस ज्ञानको हम महात्माओंके पास जाकर, सत्सङ्ग करके भी प्राप्त कर सकते हैं। गीतामें बतलाया है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(४।३४)

'उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।'

यह ज्ञानयोगका साधन है। इसके आगे ३५वें श्लोकमें इसका फल बतलाया है। अतएव हमें ज्ञानी महात्माओंके पास जाकर ज्ञानकी शिक्षा लेनी चाहिये। इस प्रकार ज्ञानयोगसे भी हमारे आत्माका उद्धार हो जाता है।

श्रद्धासे भी ज्ञानकी प्राप्ति होकर परमात्मा मिल जाते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४।३९)

'हे अर्जुन! जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।'

इसी प्रकार भगवान्‌की भक्ति करनेसे भी ज्ञानकी प्राप्ति होकर मुक्ति हो जाती है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०।१०)

'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।'

इस प्रकार कर्मयोग, सत्सङ्ग, श्रद्धा और भक्तिके द्वारा भी परमात्माके तत्त्वका ज्ञान हो जाता है और स्वाध्यायके द्वारा भी हो जाता है।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥

(गीता ४।२८)

'कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करनेवाले हैं (इससे वे परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं)।'

इसी प्रकार बहुत-से उपाय परमात्माकी प्राप्तिके लिये बतलाये गये हैं। उनमेंसे एकका भी साधन करके हम परमात्माको प्राप्त कर लें तो हमारा जीवन सफल हो सकता है। यह अध्यात्मविषय है।

अध्यात्मविषयमें प्रधान बात है—पात्र बनना। वास्तवमें पात्र बननेमें ही विलम्ब होता है, परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता। जिस प्रकार बिजली जब फिट हो जाती है और शक्तिकेन्द्रसे उसका सम्पर्क हो जाता है तो स्विच दबानेके साथ ही रोशनी हो जाती है; जो कुछ विलम्ब है वह बिजलीके फिट करनेमें तथा सम्पर्क जोड़नेमें ही है, स्विच दबानेमें नहीं; इसी प्रकार मनुष्य जब परमात्माकी प्राप्तिका पात्र बन जाता है तो उसे तुरंत परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

पात्र बननेके लिये सबसे उत्तम उपाय है—हम सारे संसारको परमात्मस्वरूप समझें और सारी चेष्टाको परमात्माकी लीला समझें अर्थात् पदार्थमात्रको परमात्माका स्वरूप और

चेष्टामात्रको परमात्माकी लीला समझें। इससे बहुत शीघ्र भाव सुधरकर कल्याण हो जाता है। हमको ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि जहाँ हमारे मन और नेत्र जायँ, वहीं हम परमात्माका दर्शन करें। जैसे—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।'

इस प्रकार अभ्यास करते-करते सर्वत्र भगवद्बुद्धि हो जाती है। जैसा कि भगवान्ने गीताके सातवें अध्यायके १९वें श्लोकमें कहा है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

'बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष 'सब कुछ वासुदेव ही है'—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।'

इसीके अनुसार हमको साधन करना चाहिये अर्थात् सिद्ध महात्मा पुरुषोंकी यह जो वास्तविक स्थिति है, उसको लक्ष्यमें रखकर उसके अनुसार हमको साधन करना चाहिये। सबमें भगवद्बुद्धि करके सबमें भगवद्दर्शन करना चाहिये। जहाँ हमारी बुद्धि जाय, जहाँ मन जाय, जहाँ नेत्र जायँ, वहीं हम भगवान्के स्वरूपका दर्शन करें और चेष्टामात्रको भगवान्की लीला समझें तो आत्माकी शुद्धि होकर परमात्माकी प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है।

जैसे कोई मनुष्य जब नेत्रोंपर हरे रंगका चश्मा चढ़ा लेता है, तब सारा संसार उसे हरे रंगका दीखने लगता है, इसी प्रकार हमें हरिके रंगका चश्मा अपनी बुद्धिपर चढ़ा लेना चाहिये। अपने अन्तःकरणपर हरिके रंगका यानी हरिके भावका चश्मा चढ़ा लेना चाहिये। हम इस प्रकार सबमें परमात्मभाव करें कि सब परमात्माका स्वरूप है। यह एक प्रकारका उत्तम भाव है। हृदयमें हम इस भावको दृढ़ कर लें, यह चश्मा चढ़ा लें, फिर यह भाव करें कि सर्वत्र भगवान् विराजमान हो रहे हैं तो बहुत शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है और सर्वत्र भगवद्दर्शन होने लगते हैं। सब जगह एक परमात्माके सिवा फिर हमारी दृष्टिमें और कोई पदार्थ रहता ही नहीं। यह सबसे बढ़कर साधन है। **[समाप्त]**

हमारे दुःखोंका मूल कारण क्या है ?

(श्री जय जय बाबा)

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।

(पातञ्जलयोगसूत्र २। १७)

द्रष्टा और दृश्यका संयोग ही सब दुःखोंका कारण है। वास्तविक बात तो यह है कि द्रष्टा और दृश्य—ये दोनों एक-दूसरेसे विरुद्ध धर्मवाले होनेके कारण इन दोनोंका संयोग बन ही नहीं सकता। द्रष्टा चेतन है, दृश्य जड़ है; द्रष्टा स्थिर है और दृश्य चञ्चल है, द्रष्टा शुद्ध और निर्विकार है; दृश्य विकारी है; अतः इन दोनोंका संयोग हो ही नहीं सकता। परंतु अज्ञानके कारण यह संयोग होना प्रतीत हो रहा है। इसीलिये आगे कहा गया है—

तस्य हेतुरविद्या। (योगसूत्र २। २४)

इस संयोगका कारण भी अविद्या अर्थात् अज्ञान ही है। द्रष्टा कौन है? अपनी आत्मा, जिसको सांख्यशास्त्रमें पुरुष नामसे कहा गया है, वही द्रष्टा है।

दृश्य कौन है? मनसे आरम्भ करके सारी स्थूल प्रकृति ही दृश्य है। मनुष्यके सारे दुःख इन द्रष्टा और दृश्यके माने हुए संयोगके कारण हो रहे हैं।

माता देवहूतिने भगवान् कपिलदेवसे पूछा—भगवन्! जिनके आश्रयसे अकर्ता पुरुषको यह कर्मजनित बन्धन प्राप्त हुआ है, उन प्राकृतिक गुणोंके रहते हुए उस पुरुषको कैवल्यपद कैसे प्राप्त हो सकता है?

इसपर भगवान् कपिलदेवने उत्तर दिया—माताजी! जिस प्रकार अग्निका उत्पत्तिस्थान अरणि अपनेसे ही उत्पन्न अग्निसे जलकर भस्म हो जाती है, उसी प्रकार निष्काम भावसे स्वधर्मपालनके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जानेसे बहुत समयतक भगवत्कथा-श्रवणद्वारा पुष्ट हुई मेरी तीव्र

भक्तिसे, तत्त्वसाक्षात्कार करानेवाले ज्ञानसे, प्रबल वैराग्यसे, व्रत, नियमादिसहित किये हुए ध्यानाभ्याससे और चित्तकी प्रगाढ़ एकाग्रतासे पुरुषकी प्रकृति (अविद्या) दिन-रात क्षीण होती हुई धीरे-धीरे लीन हो जाती है। भगवान् कपिलदेवने फिर कहा—

भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः।
नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च॥

(श्रीमद्भा० ३। २७। २४)

फिर नित्यप्रति दोष देखनेसे भोगकर त्यागी हुई यह प्रकृति अपने स्वरूपमें स्थित स्वतन्त्र (बन्धनमुक्त) हुए उस पुरुषका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। जैसे सोये हुए पुरुषको स्वप्नमें कितने ही अनर्थोंका अनुभव करना पड़ता है, किंतु जाग पड़नेपर उसे स्वप्नके उन अनुभवोंसे किसी प्रकारका मोह नहीं होता। इसी प्रकार जिसे तत्त्वज्ञान हो गया है और जो निरन्तर मुझमें ही मन लगाये रहता है, उस आत्माराम मुनिका प्रकृति कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। जब मनुष्य अनेक जन्मोंमें बहुत समयतक इस प्रकार आत्मचिन्तनमें ही निमग्न रहता है, तब उसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सभी भोगोंसे वैराग्य हो जाता है।

मेरा वह धैर्यवान् भक्त मेरी ही महती कृपासे तत्त्वज्ञान प्राप्त करके आत्मानुभवके द्वारा सारे संशयोंसे मुक्त हो जाता है और फिर लिङ्गदेहके नाश होनेपर एकमात्र मेरे ही आश्रित अपने स्वरूपभूत कैवल्यसंज्ञक मङ्गलमय पदको सहज ही प्राप्त कर लेता है, जहाँ पहुँचनेपर योगी फिर इस संसारमें लौटकर नहीं आता।

भगवान् कपिलदेव आगे कहते हैं—माताजी! यदि योगीका चित्त योगसाधनासे बढ़ी हुई मायामयी अणिमादि सिद्धियोंमें जिनकी प्राप्तिका योगके सिवाय दूसरा कोई साधन नहीं है, उनमें नहीं फँसता तो उसे मेरा वह अविनाशी पद प्राप्त होता है, जहाँ पहुँचनेपर मृत्युकी भी कोई दाल नहीं गलती—

यदा न योगोपचितासु चेतो
मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽङ्ग।
अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्याद-
दात्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः॥

(श्रीमद्भा० ३। २७। ३०)

एक आवश्यक बात यह है कि मुमुक्षु साधकको प्रकृति और पुरुष—इन दोनोंका लक्षण जान लेना बहुत ही आवश्यक है।

सारी क्रिया किसमें है? पुरुष तो स्वभावसे ही अकर्ता है, उसमें कोई क्रिया नहीं है। अतः क्रियामात्र प्रकृतिमें हो रही है और उस क्रियाका आरोपण पुरुष अहंकारद्वारा स्वयं अपनेमें कर लेता है, यहींपर गलती हो रही है। दूसरोंके किये हुए कर्मोंका बोझ अपने ऊपर लेना कोई बुद्धिमानी नहीं है।

जिस प्रकार रात्रिके समय कोई व्यक्ति जलती हुई टॉर्च किसी दीवारपर घुमावे और वह दीवार अज्ञानसे यह समझ ले कि मैं ही घूम रही हूँ। इसलिये पहले यह लक्षण समझना अत्यन्त आवश्यक है कि पुरुष अकर्ता है। उसमें तीनों कालोंमें भी कोई क्रिया नहीं होती। क्रिया मात्र प्रकृतिमें ही है।

भिक्षुगीतमें यह विषय और अधिक स्पष्ट करके समझाया गया है—

अनीह आत्मा मनसा समीहता
हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे।
मनः स्वलिङ्गं परिगृह्य कामा-
ञ्जुषन् निबद्धो गुणसंगतोऽसौ॥
दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च
श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः
परो हि योगो मनसः समाधिः॥

(श्रीमद्भा० ११। २३। ४५-४६)

मन ही समस्त चेष्टाएँ करता है, उसके साथ रहनेपर भी आत्मा निष्क्रिय ही है। वह ज्ञानशक्तिप्रधान है, मुझ जीवका सनातन सखा है और अपने अलुप्त ज्ञानसे सब कुछ देखता रहता है। मनके द्वारा ही उसकी अभिव्यक्ति होती है। जब वह मनको स्वीकार करके उसके द्वारा विषयोंका भोक्ता बन बैठता है, तब कर्मोंके साथ आसक्ति हो जानेसे वह उनसे बँध जाता है। दान देना, अपने धर्मोंका पालन करना, नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ व्रत—इन सबका अन्तिम फल यह है कि मन एकाग्र होकर भगवान्‌के भजनमें लग जाय। मनका समाहित हो जाना ही परम योग है।

साम्यवाद और समता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक प्रश्न है कि सर्वत्र भगवान्‌को देखते हुए समताका व्यवहार कैसे किया जाय? संक्षेपमें इसका उत्तर है कि समता मनमें रहती है, व्यवहारमें नहीं, जैसे अपना शरीर है और इसमें पैरसे लेकर चोटीतक सब जगह समान आत्मभावना है। अपने शरीरके सम्बन्धमें हमारे मनमें कहीं भी किञ्चिन्मात्र भी विषमताका भाव नहीं है। अगर पैरमें चोट लगेगी तो हमें लगेगी, सिरपर लगेगी तो हमें लगेगी, हम पैरसे लेकर सिरतक सबको बचाना चाहेंगे। सबकी रक्षा समानरूपसे करना चाहेंगे। किसीकी भी अवहेलना नहीं करेंगे, किसीके लिये लापरवाही नहीं करेंगे। किसी भी अङ्गको जानबूझकर हम दुःख नहीं देंगे। एक अङ्गपर विपत्ति पड़नेपर सारे अङ्गोंको उसके ठीक होनेमें लगा देंगे। यह शरीर-शास्त्रका नियम है कि शरीरमें कहीं भी कमी आ जाय तो शरीरके सारे अङ्ग अपने-आप उस अङ्गको ठीक करनेमें लग जाते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसलिये हमारे शरीरमें कहीं भी विषमताका भाव नहीं है, परंतु क्या हम व्यवहार एक समान कर सकते हैं? जो कार्य जिस अङ्गसे होना नियत है उसीसे होना है, दूसरे अङ्गसे नहीं हो सकता और यदि कोई करता है तो या तो वह मूर्ख है, पागल है या किसी बीमारीसे ग्रस्त है। यदि कोई हाथसे चलना चाहे अथवा पैरसे लेन-देन करना चाहे तो यह मूर्खता नहीं तो और क्या है? लोग कहेंगे कि यह पशुवत् व्यवहार करता है। अङ्गोंमें आत्मभावमें कहीं कोई भेद नहीं, परंतु हाथका काम हाथसे। हमारे हिन्दूशास्त्रोंमें तो व्यवहारमें दायें-बायें हाथमें भेद है। बायें हाथसे हम भोजन नहीं करते और शौच जाकर दायें हाथसे धोते नहीं। शौच जाकर हम धोयेंगे बायें हाथसे और खायेंगे दायें हाथसे, परंतु क्या हाथमें चोट लगनेपर दर्द होनेमें या उसकी रक्षा करनेमें कहीं दायें-बायेंका भेद होता है? इसलिये समता व्यवहारमें नहीं हो सकती है।

एक बात बहुत महत्त्वपूर्ण एवं ध्यानमें रखनेकी है कि जगत्‌की उत्पत्ति तब होती है जब प्रकृतिमें विषमता आती है। यह सृष्टिका तत्त्व है कि जहाँपर प्रकृति साम्य है अर्थात् जब उसके तीनों गुण साम्यावस्थामें हो गये तो वहाँ महाप्रलय हो जायगा। प्रकृति रहेगी नहीं और यह संसार रहेगा नहीं। संसार तब उत्पन्न होता है जब प्रकृतिमें विक्षोभ होकर विषमता होती है। गर्भाशयमें कोई क्षोभ न हो तो बच्चा नहीं पैदा होगा। गर्भाधान होनेपर उसमें विक्षोभ होता है, विकार पैदा होता है तब उसमें बच्चा बनता है। **'तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्'** (गीता १४।३)। भगवान्‌ने कहा कि मैं अपने संकल्पसे प्रकृतिमें गर्भकी स्थापना करता हूँ। जब भगवान् संकल्प करते हैं कि यह जगत् बने, सृष्टिका निर्माण हो तब भगवान्‌का यह संकल्प प्रकृतिमें विक्षोभ पैदा करता है। फिर विषमता आती है तब जगत् बनता है। इसलिये जबतक प्रकृति है और जबतक जगत् है तबतक हम चाहे किसी अंशमें अर्थसाम्य कर दें, परंतु पूर्णतः सबको समान नहीं कर सकते हैं।

आज जो संसारमें एक लहर चली है कि सबमें अर्थसाम्य हो और वर्ग या श्रेणी न रहे तो हालाँकि ऐसा होना असम्भव है, फिर भी इसपर विचारके लिये अगर कल्पना कर लें कि ऐसा हो तब क्या सभी हुकूमत कर सकते हैं? सभीमें शासन-प्रशासन करनेकी बुद्धि नहीं है, बल नहीं है, विज्ञान नहीं है। यदि हम मान लें कि आदमी-आदमी सब एक समान और सबका समान अधिकार है और न्यायालयमें किसी जजके स्थानपर किसी मूर्खको बैठा दिया जाय तब वह क्या करेगा? इसका परिणाम अकल्याणकारी और भयावह होगा।

जगत्‌में सभीकी बुद्धि एक-सी नहीं, सभीके विचार एक-से नहीं, सभीके शरीरकी, मनकी शक्ति एक समान नहीं, सबका कद एक-सा नहीं, सबके खान-पानकी रुचि एक-सी नहीं है। यह जगत्‌का जो वैचित्र्य है वह लीलामय भगवान्‌का लीलाक्षेत्र है। इसमें एक चीज भी ऐसी नहीं है जो दूसरेसे पूरी-पूरी समान रूपसे मिलती हो। यह जगत्‌की जो विषमता है हमारे सामने नाच रही है। कोई आदमी जो जगत्‌की विषमताको मिटाना चाहे वह पागल है। जगत्‌की विषमता मिट ही नहीं सकती, यह बनी रहेगी। सब बातोंमें जगत् समान हो ही नहीं सकता। अर्थसाम्य किसी अंशमें

हो जाय और वह होना बहुत अंशमें ठीक भी है।

जब समाजमें, राष्ट्रमें इस प्रकारकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि किसी एक श्रेणी या वर्गके लिये बहुत धन इकट्ठा हो जाता है और दूसरा वर्ग—बड़ा समुदाय जब अर्थहीन हो जाता है तब समाजमें क्रान्ति उत्पन्न होती है। यह आजकी बात नहीं है, हमेशासे ऐसा होता आया है। हमारे यहाँ श्रीमद्भागवतमें इतना बढ़िया साम्यवाद है, जो कहीं किसी कम्युनिज्ममें आजतक नहीं हुआ। नारदजीके वचन हैं कि—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(७।१४।८)

इसका शब्दार्थ यह है कि मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपना मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये। अब इससे उत्तम साम्यवाद क्या होगा? आजका समाजवाद कहता है कि किसी व्यक्तिके पास जो अधिशेष है वह समाजका है, किंतु हमारे यहाँ तो प्राचीनकालसे सिद्धान्त है कि भूखोंको देनेके बाद जितनेसे पेट भरे उतनेपर ही तुम्हारा अधिकार है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३।१३)

अर्थात् 'यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग केवल अपना शरीर-पोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं। यहाँ यज्ञका व्यापक अर्थ क्या है? यह जो व्यापक विश्व है, समस्त जीव-जगत्, इन जीवोंको तृप्त करनेकी जो चेष्टा है उसका नाम यज्ञ है। हमारे हिन्दूशास्त्रके अर्थशास्त्रमें बड़ी ऊँची बात है—प्रतिदिन यज्ञ करना। इन पञ्चमहायज्ञोंकी बड़ी सुन्दर वैज्ञानिक अवधारणा है जिसमें देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और इतर प्राणियोंको तृप्त करनेकी बात है।

आजका मानव तो भूल गया है, वह कहता है कि केवल मानवका हित हो भले ही गाय मारी जाय। जब कि हमारे पूर्वजोंने बताया है कि पहले देवताओंको दो, ऋषियोंको दो, पितरोंको दो, मनुष्योंको दो, सारे प्राणियोंको दो और जो अवशेष हो उसे खाओ। देवता यदि कार्य करना छोड़ दें, ठीक समयपर बरसात न हो, सूर्यके तेजमें न्यूनता या अधिकता हो जाय, चन्द्रमा ठीक न उगें, बाढ़ आने लगे, आँधी-तूफान आने लगे, आग लगने लगे तो देवताओंको फिक्र न हो तो क्या हो जाय? इसलिये सर्वप्रथम देवताओंको खुश रखें, यह प्रथम यज्ञ है। दूसरी बात, जो ऋषि जीवनपर्यन्त ज्ञानार्जन करके ज्ञान-दान देते हैं, उन ऋषियोंकी सेवा करे—ऐसा विधान है, इसे ऋषियज्ञ कहते हैं। तीसरा है पितृयज्ञ। इसमें जिन माता-पिताने हमें पाला, जिनके स्नेहसे हम इतने बड़े हुए, जिससे हम संसारमें जी सके, उन माता-पिताकी जो मर चुके तथा जीवित हैं उन सबकी सेवा करो। चौथा है मनुष्ययज्ञ। कोई मनुष्य यह नहीं कह सकता कि मैं अकेला जीवित रह सकता हूँ। सभी मनुष्योंको सहयोगकी आवश्यकता है। सभी प्रकारके काम करनेवाले आदमी आवश्यक हैं। इसलिये जब कार्यमें सबका सहयोग है तो सबका परस्पर पेट भरना है। सभीको सबका हिस्सा देना है। यह मानवयज्ञ है। पाँचवाँ है भूतयज्ञ। इसमें दूसरे प्राणियोंकी सेवाका विधान है। इसको हमने त्याग दिया है।

एक बड़े अच्छे वैज्ञानिकने यह बात लिखी है कि यदि जगत्में साँप न होते तो विषैली गैस इतनी फैल जाती कि सारे जनसमूह नष्ट हो जाते। साँप विषैली गैस पीते हैं। जितनी विषैली गैस पैदा हुई, सब साँप पी गये। हमलोगोंको साँपके समान बुरा जीव कोई नहीं दिखायी देता है। ज्यों ही वह दिखायी देता है हम मारने दौड़ते हैं। परंतु वह साँप जगत्में रहकर विषैली गैसोंका पान करके हमारी प्राणरक्षा करता है, इसीलिये हमारे यहाँ कहा गया है कि भूतयज्ञमें प्राणियोंकी सेवा करो। कोई भी प्राणी तुम्हारी सेवासे बचे नहीं।

अतः देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और सारे प्राणियोंको समान हिस्सा देना ही यज्ञ है। इन सभीको इनका हिस्सा देकर जो बच जाय उसे प्रसादरूपमें खाना ही यज्ञावशेष भोजन है, इससे पापका नाश होता है तथा जो स्वयं अपने लिये कमाता है और विलासमें खर्च करता है, भोग करता है, वह पाप खाता है। इसे भगवान्ने स्वयं गीतामें कहा है। अब इतना महान् और सुन्दर साम्यवाद कहाँ होगा? मेरा मत तो ऐसा है कि सुखियोंके पास जो सुख है वह दुःखियोंसे उधार लिया हुआ है। इसलिये सुखियोंको चाहिये कि अपना सुख दुःखियोंको ब्याजसहित बाँटते रहें।

तभी सबका सुख रहेगा और यदि हम केवल अपना सुख चाहें—हम सुख भोगें और जगत् सब दुःखी हो जाय तो हम अकेले सुख कभी नहीं भोग सकते। इससे हमारेपर दुःख आयेगा और हमें बड़ी बुरी हालतमें डाल देगा। यह बात उचित है कि हम सबकी सेवा करें, सबका हिस्सा दें, परंतु यदि चाहें कि सब बातोंमें हम सबको समान कर देंगे तो यह असम्भव बात है। इसे आजतक कोई नहीं कर सका है। रूसमें क्या आज शान्ति है? जहाँ पूर्ण साम्यवाद माना जा रहा था उसकी क्या दशा हुई? वहाँके जननेताओंकी क्या दशा हुई? स्टालिनके मरनेके बाद उसका नामतक लेनेवालोंपर मुकदमा हुआ। ऐसा इसलिये कि राग-द्वेष है, समता नहीं है। समता तो होती है मनमें।

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार॥

(दोहावली ९४)

तुलसीदासजी कहते हैं कि सारे संसारमें समता करो। परंतु समता किस प्रकार करें? समता होगी आत्मभावनासे। सब-के-सब भगवान्के रूप हैं, यह समझकर सबके साथ व्यवहार करें। फिर भी व्यवहारमें विषमता आयेगी। यदि हमारे सामने माँ आये और साथ ही स्त्री आये तो दोनोंमें भगवान् समझें, दोनोंमें भगवान् हैं। दोनोंके अङ्ग एक-से, अवयव एक-से हैं। परंतु हम सभी जानते हैं कि माँको देखकर क्या भाव आता है और पत्नीको देखकर क्या भाव आता है। दोनों स्त्रियाँ हैं, दोनोंके समान अङ्ग हैं, समान अवयव हैं, परंतु भावमें विषमता क्यों है? हममें ज्ञान है, विवेक है, हम पशु नहीं हैं, इसलिये यह व्यवहारका भेद आवश्यक है। जैसे सोनेका भाव एक है। किसीके पास सोनेकी कण्ठी तथा कड़ा है। कड़े और कण्ठीमें एक समान-मात्रामें सोना है तो दोनोंकी कीमत समान होगी; क्योंकि दोनोंके तत्त्वमें समता है, परिमाणमें समता है; परंतु कोई कहे कि हाथके कड़ेको गलेमें पहन ले तो गलेमें फँस जायगी और पहननेवाला मर जायगा तथा कोई कहे कि गलेकी कण्ठी हाथमें लटकाये फिरे तो लोग कहेंगे पागल हो गया है। सोनेकी मात्रा, भाव और कीमतमें समता है, परंतु व्यवहारमें समता नहीं है। इसी प्रकार लोटा और थाली दोनों एक ही धातुकी है, परंतु कोई कहे कि शौचमें थाली ले जायँगे तो लोग हँसेंगे। दोनोंकी धातु एक-सी, कीमत एक-सी, तत्त्व एक, परंतु व्यवहार होगा आकार-प्रकारके अनुसार।

जगत्में ममता करेंगे तो समता नहीं रहेगी। यह मेरा, यह पराया—समता नहीं है। इसलिये जगत्में समता करें और ममता रामसे। *'तुलसी ममता राम सों समता सब संसार'* जहाँ ऐसा होगा वहाँ राग-द्वेष नामक दो दोष स्वतः नष्ट हो जायँगे। राग और द्वेषको ही लेकर सारे-के-सारे अनर्थ और पाप होते हैं। रागसे काम तथा द्वेषसे क्रोध उत्पन्न होता है। रागसे सेवा होती है तथा द्वेषसे आगे चलकर द्रोह होता है। इसीलिये राग-द्वेष बन्धनकारक हैं। यह सुनिश्चित है कि जहाँ राग-द्वेष रहेंगे वहाँ समता नहीं रहेगी। अपने-परायेका भाव विद्यमान रहेगा। किसीके पास कोई अच्छी वस्तु है तो अपना हो जानेकी लालसा होगी, भले ही उसका अहित हो जाय और यदि बुरी बात है तो हम भयभीत होंगे कि कहीं हमारेपर न आ जाय। यदि अपने मकानके आगे जगह कम है और दूसरेकी जगह बड़ी अच्छी तो छल-बल-कौशलसे येन-केन-प्रकारेण अपना बनानेकी युक्ति सोचेंगे। कल्पना करेंगे कि भगवान् इसका घाटा हो जाय यह अर्थसंकटमें पड़ जाय ताकि इसे मकान बेचना पड़े और हम खरीद लें। अनेक बार हम ऐसा सोचते हैं, भले ही वाणीसे अभिव्यक्त न करें, परंतु मनसे ऐसा करते हैं। जब समता रहेगी तब यह भाव नहीं होगा। तब इसका मकान इसका और मेरा मकान मेरा, न हम रहेंगे न यह रहेगा। मरनेपर दोनोंसे छूट जायँगे। इसलिये जहाँ समता रहेगी वहाँ राग नहीं होगा—*'राग न रोष न दोष दुख।'* दोष कहते हैं पापको, बुरे आचरणको, दूषित कर्मको और दुःख होता है पापसे। द्वेष नहीं होगा तो दुःख नहीं होगा।

इसलिये ममता करे रामसे और समता करे संसारमें। इसके फलस्वरूप राग-द्वेष नहीं रहेंगे तथा इनके न रहनेसे पाप नहीं होगा और पाप न होनेसे दुःख नहीं आयेंगे। दुःख नहीं आयेंगे तो भवसागरसे पार हो जायँगे। सारांशतः सबमें भगवान्को देखनेपर ही समताका व्यवहार होगा अन्यथा नहीं। जहाँतक अपने-परायेकी दृष्टि है वहाँ समता नहीं होगी। सबमें आत्मभाव होगा, सबमें भगवान्के दर्शन करेंगे वहाँ समता स्वतः आ जायगी। (कै० सं० १३५)।

[प्रेषक—श्रीव्रजदेवजी दुबे]

'सीय राममय सब जग जानी'

(श्रीकैलासजी त्रिपाठी)

उन्मीलन और निमीलन—क्रियादिसहित समस्त इन्द्रियाँ अपने अर्थोंमें बरत रही हैं—**'उन्मिषन्निमिषन्नपि, इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्'** (गीता ५।९)। सम्पूर्ण गुण गुणोंमें बरत रहे हैं—**'गुणा गुणेषु वर्तन्ते'** (गीता ३।२८)। समस्त पुरुष प्रकृतिजनित गुणोंद्वारा परवश होकर कर्म करनेके लिये बाध्य हैं—**'कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः'** (गीता ३।५)। श्रीभगवान्‌द्वारा दिये गये उक्त संकेतोंसे स्पष्ट है कि आँखोंका खोलना और बंद होना इत्यादि समस्त क्रियाएँ गुणोंसे सम्पादित हैं। मानवयोनि रजोगुणप्रधान होते हुए भी प्रत्येक मनुष्यका त्रिगुण-संयोग भिन्न-भिन्न है। त्रिगुण-संयोगकी इसी भिन्नतासे प्रत्येक व्यक्तिके आकार, स्वरूप, वर्ण, स्वर तथा दृष्टिमें भिन्नता है। प्रत्येक व्यक्तिकी दृष्टि उसके अपने त्रिगुण-संयोगानुसार होनेसे पृथक्-पृथक् होती है।

दृष्टिका गुणोंसे सम्बन्ध मानते हुए इन दृष्टियोंको तमकी प्रधानतासे तामसी, रजकी प्रधानतासे राजसी, सत्त्वकी प्रधानतासे सात्त्विकी और गुणोंसे अप्रभावित रहनेपर गुणातीत माना जा सकता है। मनुष्यमें तीनों गुण न्यूनाधिक किसी-न-किसी अनुपातमें विद्यमान होनेसे दृष्टि भी किसी एक गुणपर आधारित न होकर सत्त्व-रज-तममिश्रित होती है। एक ही व्यक्तिकी दृष्टि कभी सत्त्वकी प्रबलतासे सात्त्विक, कभी रजकी बहुलतासे राजसिक तथा कभी तमकी अधिकतासे तामसिक हो जाती है। जिस गुणमें व्यक्तिकी स्थिरता सर्वाधिक रहती है, उसकी दृष्टि उसी गुणपर आधारित माननी चाहिये। जिसके त्रिगुण-संयोगमें तमोगुणकी प्रधानता है, वह तमोगुणके प्रभावसे दूसरेमें ईर्ष्या-द्वेषादियुक्त दोष-ही-दोष देखेगा। मानसमें तामसी-दृष्टि-सम्बन्धी गोस्वामी तुलसीदासजीका संकेत इस प्रकार है—

जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥

(रा०च०मा० १।३।४, ११)

इस प्रकारके व्यक्तियोंका सत्त्वगुण अति न्यून होनेसे इन्हें दूसरेके गुण दिखायी ही नहीं देते, बल्कि तमोगुणी मूढ़तासे ये अपने अवगुणोंको ही सद्‌गुण मान लेते हैं। इनके द्वारा सृष्टिको एक ही आत्मतत्त्वके रूपमें अथवा ईश्वरमय नहीं देखा जा सकता। रजोगुणकी अधिकतासे व्यक्ति दूसरेके गुण और दोष दोनों देखता है। कभी तम बढ़नेसे दोष अधिक दिखायी देते हैं, कभी रजमिश्रित सत्त्वके प्रभावसे गुण अधिक दिखायी देने लगते हैं। रजोगुणी दृष्टिके कारण यह सम्भव ही नहीं है कि यह दूसरेके केवल सद्‌गुण ही देखे। अवगुण देखना इसकी रजोगुणी बाध्यता है। अतः रजोगुणी व्यक्ति भी जगत्‌को *'सीय राममय'* कैसे देख सकता है?

जिस व्यक्तिके त्रिगुण-संयोगमें सत्त्वगुणकी प्रधानता है, ऐसा सात्त्विक व्यक्ति अपने त्रिगुणसंयोगजनित स्वभावसे दूसरेमें सद्‌गुण ही देखता है; क्योंकि सत्त्वगुणके प्रभावसे दूसरेके दोष उसे दिखायी ही नहीं देते। ऐसा सात्त्विक पुरुष कभी-कभी सम्पूर्ण सृष्टिको एक ही आत्मतत्त्वके रूपमें, ईश्वररूपमें अथवा अपने इष्टके रूपमें देखता है। उस समय वह गुणातीत स्थितिमें होता है। अति सात्त्विक व्यक्ति इस प्रकार बार-बार कुछ देरके लिये गुणातीत स्थितिमें पहुँचते रहते हैं और पुनः सात्त्विक स्थितिमें आ जाते हैं। जब गुणातीत अवस्थामें स्थिरता बढ़ती है और साधक प्रायः गुणातीत अवस्थामें ही बना रहने लगता है, तब उसकी दृष्टि गुणातीत हो जाती है। गुणातीत दृष्टिवाला व्यक्ति समस्त सृष्टिको एक ही आत्मतत्त्वके रूपमें—ब्रह्म, ईश्वर या अपने इष्टके रूपमें ही देखता है।

गोस्वामी तुलसीदासजीकी दृष्टि सत्त्व-रज-तमसे परे गुणातीत है। अपनी इसी गुणातीत दृष्टिके अनुरूप श्रीरामचरितमानसके प्रारम्भ (बालकाण्ड, दोहा ७ ग)-में वे लिखते हैं—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

संसारमें जड़ अथवा चेतन जितने भी जीव हैं, सबको श्रीराममय जानकर मैं उन सबके चरण-कमलोंकी सदा दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ।

गोस्वामीजी अपनी इसी गुणातीत दृष्टिके कारण पुनः आगे कहते हैं—

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रा०च०मा० १।८।१-२)

चार प्रकारके जीव चौरासी लक्ष योनियोंमें जल, पृथ्वी और आकाशमें रहते हैं। सब जगत्‌को सीताराममय जानकर

मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

सारा जगत् सीताराममय है। इसकी पुष्टि गीताके दसवें अध्यायके बीसवें श्लोकसे होती है। श्रीभगवान् कहते हैं—हे अर्जुन! मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त मैं ही हूँ—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि सीयराममय होते हुए भी इस सत्यकी स्वानुभूति गुणातीत दृष्टिके बिना सम्भव नहीं है। श्रीरामचरितमानसके बालकाण्ड (१।६)-में गोस्वामीजी त्रिगुणमय संसारमें संतोंकी सात्त्विक स्थितिका वर्णन करते हुए कहते हैं—

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

गुणातीत दृष्टिसे ही सम्पूर्ण जगत्को *'सीय राममय'* देखा जा सकता है, तामसी-राजसी दृष्टियोंसे नहीं। गुणातीत दृष्टिको दिव्यदृष्टि कह सकते हैं क्योंकि तामसी, राजसी और सर्वश्रेष्ठ सात्त्विक दृष्टियोंसे परे गुणातीत दृष्टि ही विशिष्ट एवं अलौकिक है। गुणातीत दृष्टि प्राप्त करनेके सम्बन्धमें गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि 'श्रीसद्गुरुचरण-नखरूप मणियोंकी ज्योतिका स्मरण करनेसे यह दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है—'

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥

(रा०च०मा० १।१।५, ७)

'उघरहिं बिमल बिलोचन ही के' यही गुणातीत दृष्टिका प्राप्त होना है। गुणातीत दृष्टिसे ही गुणाबद्ध सांसारिक दोष और उनसे उत्पन्न दुःख स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

जब सत्त्वगुणको दबाकर रजोगुण और तमोगुण बढ़ते हैं, तब विवेकका अभाव हो जाता है। विवेक न रहनेसे रज्जुमें सर्प प्रतीत होने-जैसी दृष्टिभ्रमकी स्थितियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। गोस्वामीजी राजसी और तामसी दृष्टिवालोंको अन्धा बताते हुए कहते हैं कि राजसी और तामसी दृष्टिसे किसी भी रूपमें भगवान्का दर्शन नहीं हो सकता तो फिर राजसी-तामसी दृष्टिसे पुरुष समस्त जगत्को *'सीय राममय'* कैसे देख सकता है?—

अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥

(रा०च०मा० १।११५।१-२, ४)

श्रीसद्गुरुचरणोंकी रजके कोमल और सुन्दर अञ्जनसे नेत्रोंके रजोगुणी एवं तमोगुणी दोष समाप्त हो जाते हैं, जिससे भ्रमको मिटानेवाली दोषरहित विवेकयुक्त गुणातीत दृष्टि प्राप्त होती है—

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। (रा०च०मा० १।२।१-२)

दोषरहित गुणातीत दृष्टि प्राप्त होते ही रामचरित्ररूप मणिमाणिक्य गुप्त या प्रकट जो जिस खानमें हैं, दिखायी देने लगते हैं। वास्तवमें *'सीय राममय'* संसारका होना भी भगवान्की गुप्त लीला ही है, जो गुणातीत दृष्टिसे ही दिखायी देगी।

सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

गुणातीत दृष्टि गुणातीत पुरुषोंकी कृपासे भी प्राप्त होती है। तुलसीदासजी गुणातीत संतोंसे उनके गुणातीत लक्षणोंकी ओर संकेत करते हुए उनकी कृपाकी अपेक्षा करते हैं—

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥
संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा रामचरन रति देहु॥

(रा०च०मा० १। दोहा ३ क, ख)

श्रीरामचरितमानसके सुन्दरकाण्ड (४८।६-७)-में भगवान् श्रीराम विभीषणके प्रति गुणातीत पुरुषके लक्षणोंकी ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि जैसे लोभीको धन प्रिय है उसी प्रकार हमें गुणातीत पुरुष प्रिय हैं—

समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

तामसी, राजसी, सात्त्विकी और गुणातीत पुरुषोंके लक्षण आदिका वर्णन गीता (अध्याय १४)-में विस्तृतरूपसे मिलता है। हम रज-तमादि गुणोंसे आबद्ध रहते हुए वाणीसे *'सीय राममय सब जग जानी'* की बात कहते हैं, वस्तुतः गुणातीत अवस्थामें पहुँचकर गुणातीत दृष्टिसे ही समस्त जगत्को *'सीय राममय'* देखा जा सकता है। अन्यथा हम वाणीसे कहेंगे—*'सीय राममय सब जग जानी'* और देखेंगे दूसरेके अवगुण तथा दोष। *'सीय राममय सब जग जानी'* पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजीकी गुणातीत अवस्थाकी गुणातीत दृष्टि है। इस गुणातीत दृष्टिको भगवान्में अनन्य भक्ति होने तथा श्रद्धा और भावके सहित परम प्रेमसे निरन्तर उनका चिन्तन-भजन करनेसे ही प्राप्त किया जा सकता है। यह भक्तियोग सहज और सुगम साधन है।

साधकोंके प्रति—

सब कुछ परमात्माका है

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें भगवान्ने कहा है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(७।४-५)

'पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये पञ्चमहाभूत और मन, बुद्धि तथा अहंकार—यह आठ प्रकारके भेदोंवाली मेरी अपरा प्रकृति है। हे महाबाहो! इस अपरा प्रकृतिसे भिन्न जीवरूप बनी हुई मेरी परा प्रकृतिको जान, जिसके द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है।'

सृष्टिमात्रमें इन आठ चीजोंके सिवाय कुछ नहीं है। ये आठों परमात्माकी प्रकृति (स्वभाव) होनेसे परमात्माका ही स्वरूप हैं। पञ्चमहाभूतोंसे बना हुआ शरीर और मन, बुद्धि तथा अहंकार भी भगवान्के ही हुए। इनको हम अपना मान लेते हैं—यही गलती है। जीव भी परमात्माकी प्रकृति होनेसे परमात्माका ही स्वरूप हुआ। आप विचार करें, आठ प्रकारकी अपरा प्रकृति, जीव और परमात्मा—इन दसके सिवाय और क्या है? सब कुछ परमात्मा ही हुए—'सब जग ईश्वररूप है', **'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७।१९)।

शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि—सब-के-सब परमात्माके हैं। इनको अपना मानकर ही हम बन्धनमें पड़े हैं। इनको अपना मत मानो तो आपको बन्धन बिल्कुल नहीं होगा। आप मनको सर्वथा भगवान्का ही मान लो तो मनके विकार आपको नहीं लगेंगे। मनके सुख-दुःख आपको नहीं लगेंगे। जब सब कुछ भगवान्का ही है, आपका कुछ है ही नहीं, फिर आपका किसीसे क्या लेना-देना? आपका काम यही है कि भगवान्की प्रकृतिको अपना मत मानो। मनको अपना मत मानो, बुद्धिको अपना मत मानो, अहंकारको अपना मत मानो। यह काम आप चाहे अभी करो, चाहे वर्षोंके बाद अथवा जन्मोंके बाद करो। इन वस्तुओंको अपना मानते ही आपपर आफ़त आयेगी! नहीं तो कुत्तेके मनका विकार आपको लगता है क्या? मनको अपना मानते ही विकार लगता है। इतनी ही बात आपको समझनी है! मैं आपको यही बात कहना चाहता हूँ कि सम्पूर्ण जगत् परमात्माका स्वरूप है। इसलिये शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंकारको आप अपना मत मानो। इनको भगवान्के अर्पित करनेमें क्या बाधा है? किंचिन्मात्र भी बाधा नहीं है; क्योंकि सब वस्तुएँ हैं ही भगवान्की। उनको अपना मानना ही गलती है, जिसके फलस्वरूप पाप-पुण्य तथा जन्म-मरण होते हैं। उनको अपना मत मानो तो कोई बन्धन नहीं रहेगा, कल्याण हो जायगा।

किसीको अपना मानने या न माननेमें मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र है, परतन्त्र है ही नहीं। आप धर्मशालामें रहते हैं, सब काम करते हैं, पर भीतरसे मानते हैं कि यह मेरा नहीं है। राजकीय वस्तुको कोई अपनी मान लेता है तो उसको दण्ड मिलता है। उसको अपनी न मानकर उचित व्यवहार करे तो दण्ड क्यों मिलेगा? अगर आपको अपना कल्याण करना है, जन्म-मरणमें नहीं जाना है तो इतनी-सी बात मान लो कि सब वस्तुएँ भगवान्की हैं, मेरी नहीं हैं। भगवान् भी कहते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

(गीता ७।७)

'हे धनंजय! मेरे सिवाय इस जगत्का दूसरा कोई किंचिन्मात्र भी (कारण तथा कार्य) नहीं है।'

अगर अपना उद्धार करना हो तो सच्ची बातको स्वीकार कर लो कि सब कुछ भगवान्का है। स्वीकार करना या न करना आपकी मरजीके अधीन है। शरीरको आपने अपना मान लिया, पर यह आपका है नहीं। एक दिन शरीर छूट जायगा, मर जायगा और लोग इसको जला देंगे। जैसे मरनेके समय यह आपके साथ नहीं रहेगा, ऐसे अब भी यह आपके साथ नहीं है। इतनी-सी बात आप स्वीकार कर लो तो सब काम ठीक हो जायगा। आप कह

सकते हैं कि हमारेसे स्वीकार नहीं होता। परंतु यह बात आपके भीतर खटकनी चाहिये कि स्वीकार क्यों नहीं होता! इसपर आपका वश चलता है क्या? इसका रात-दिन विचार होना चाहिये। फिर स्वीकार हो जायगा। कारण कि सच्ची बात मिट नहीं सकती। दो और दो चार ही होंगे, तीन या पाँच नहीं हो सकते। आप मकानको अपना मानते हो, पर जब उसको बेच देते हो, तब उसको अपना मानते हो क्या? आप खुद विचार करो कि कौन-सी बात सच्ची है! सच्ची बातको स्वीकार करनेमें बाधा क्या है? आपके मनमें उत्कण्ठा होनी चाहिये कि अब तो मैं सच्ची बात मानूँगा। चाहे आज मानो, चाहे वर्षोंके बाद मानो, चाहे जन्मोंके बाद मानो, कभी-न-कभी सच्ची बातको मानना ही पड़ेगा। जबतक सच्ची बातको नहीं मानोगे, तबतक सुखी नहीं हो सकते। दुःख पाना ही पड़ेगा। सच्ची बातको माने बिना पिण्ड नहीं छूटेगा। जब सच्ची बात माने बिना कभी शान्ति मिलेगी नहीं तो फिर झूठी बात क्यों मानें? जब कभी कल्याण होगा तो सच्ची बातको माननेसे ही होगा।

रामानंद आनंद से सिंवरया सरसी काज।
भावे सिंवरो काल ही, भावे सिंवरो आज॥

यह आपके कल्याणकी बात है, इसलिये आपके हितके लिये ही कहता हूँ। आप मान लोगे तो मेरेको क्या मिल जायगा? आप नहीं मानोगे तो मेरेको क्या घाटा पड़ जायगा? मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप सच्ची बात मान लो। सच्ची बातको पहले स्वीकार कर लो, फिर वह वैसी ही दीखने लग जायगी। मन-बुद्धि आदि सबको भगवान्‌का मान लो तो आपका सांसारिक व्यवहार भी बढ़िया होगा। किसी प्रकारका कोई नुकसान नहीं होगा। अगर आपको विश्वास न होता हो तो मेरेसे सौदा कर लो, जो नफ़ा होगा, वह आपका और जो नुकसान होगा, वह मेरा! आप यह तो कह सकते हैं बात हमारे माननेमें नहीं आती, पर बात यह सच्ची है, यह तो आप स्वीकार कर ही सकते हैं। स्वीकार करनेमें क्या नुकसान है?

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ (७।१९)

अर्थात् 'सब कुछ परमात्मा ही हैं'—ऐसा अनुभव करनेवाला महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। दुर्लभ होनेके कारण यह बात हमारे माननेमें नहीं आती तो कोई हर्ज नहीं। आपके भीतर यह इच्छा जाग्रत् रहनी चाहिये कि यह बात हमारे माननेमें कैसे आये! एकान्तमें, अकेले बैठकर विचार करो। सच्ची बातको स्वीकार कर लो तो जिसको भगवान्‌ने दुर्लभ महात्मा कहा है, वह महात्मा आप बन जाओगे। सच्ची बातको काटनेकी चेष्टा न करके जाननेकी चेष्टा करो। आपका व्यवहार भी ठीक हो जायगा, परमार्थ भी ठीक हो जायगा। सच्ची बातको स्वीकार कर लो तो वह माननेमें आ ही जायगी, चाहे आज आ जाय या दिनोंके बाद, महीनोंके बाद अथवा वर्षोंके बाद! सच्ची बात अनुभवमें आयेगी ही—यह नियम है। इसलिये सच्ची बातको आज ही और अभी स्वीकार कर लो।

सब कुछ परमात्मा ही हैं—इस बातको स्वीकार करना है। सच्ची बातको स्वीकार करनेमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिये। आप मानो चाहे नहीं मानो, सच्ची बात अन्तमें सच्ची ही रहेगी। अगर आप मान लो तो बड़ा भारी लाभ है। अगर आज मान लो और आज ही मृत्यु हो जाय तो भी मानी हुई बात नष्ट नहीं होगी। सच्ची बातकी जितनी स्वीकृति हो गयी, उतनी स्वीकृति किसी भी जन्ममें मिटेगी नहीं। किसी भी जन्ममें जाओ, वहीं तैयार मिल जायगी—**'पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः'** (गीता ६।४४)। सच्ची बात आपने जितनी स्वीकार कर ली, उतनी आपके पास पूँजी हो गयी। अब वह कभी मिटेगी नहीं। सत्संगके संस्कार कभी मिटते नहीं। आप चाहें तो इसी जन्ममें सच्ची बातकी स्वीकृति हो जायगी। सच्ची बात कभी मिटती नहीं और झूठी बात टिकती नहीं। हरदम इस बातका मनन करो कि सच्ची बात यही है तो चट काम हो जायगा। जैसे दूर कोई मन्दिर हो और वहाँ जानेका सीधा रास्ता हो तो हम वहाँ पहुँच ही जायँगे। ऐसे ही हमें **'वासुदेवः सर्वम्'** (सब कुछ परमात्मा ही हैं)—यहाँतक पहुँचना है। कारण कि अन्तिम, सर्वश्रेष्ठ और सच्ची बात यही है। यह भगवान्‌के वचन हैं। भगवान्‌के समान हमारा सुहृद् कोई है नहीं, हो सकता नहीं। इसलिये इस बातको आप सरलतासे, सच्चे हृदयसे अभी स्वीकार कर लो।

परिवारमें कैसे रहें ?

माता-पिताकी उपेक्षा न करें

[कौशिक ब्राह्मणकी कथा]

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

कौशिक नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मणकुमार था, अपने समयमें वह तपस्वी, धर्मात्मा और वेदका प्रतिष्ठित विद्वान् माना जाता था। एक दिन वह किसी वृक्षके नीचे बैठकर वेदपाठ कर रहा था और वृक्षके ऊपर बैठी हुई एक बगुलीने उसपर बीट कर दी। यह देख ब्राह्मणको क्रोध हो आया। उसने क्रोधपूर्ण भावसे बगुलीको देखा। उसके अनिष्ट-चिन्तनसे बेचारी बगुली पृथ्वीपर गिर पड़ी। जब कौशिकने बगुलीको मृत देखा तो उसका हृदय दयासे भर उठा और उसे अपने कुकृत्यपर बहुत पश्चात्ताप हुआ। इसके बाद भिक्षाका समय समझकर वह भिक्षाके लिये चला।

एक घरपर पहुँचकर उसने आवाज दी—भिक्षा दो, घरके भीतरसे किसी स्त्रीकी आवाज आयी, 'ठहरिये, अभी लाती हूँ।' वह एक पतिव्रता थी, जो जूठे बर्तन साफ कर रही थी। ठीक उसी समय उसके पतिदेव घरपर आये, वे भूखसे अत्यन्त पीड़ित थे। पतिव्रता झट विनीतभावसे पतिसेवामें लग गयी। वह जानती थी कि हमारा विशेष धर्म पतिसेवा है। उसने पतिके हाथ-मुँह धुलाये, स्वयं उनका पैर धोया, बैठनेके लिये आसन दिया और स्वादिष्ट भोजन परोसकर उन्हें भोजन कराने लगी। वह पतिव्रता पतिको भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करती थी। पतिकी सेवा करते समय उसे भिक्षाके लिये बाहर खड़े ब्राह्मणकी याद आयी। अपनी भूलसे वह बहुत लज्जित होती हुई भिक्षा लेकर बाहर आयी। ब्राह्मणने कहा—तुम्हारा व्यवहार अच्छा नहीं, जब तुम्हें देर करनी थी तो ठहरो क्यों कहा? जाने क्यों नहीं दिया? इतना कहकर कौशिक क्रोधसे संतप्त हो उठा, उसे इस तरह क्रुद्ध देखकर पतिव्रताने शान्तिसे उत्तर दिया—विद्वान् ब्राह्मण! मुझे क्षमा कर दीजिये। मेरे लिये सबसे बड़े देवता पति हैं, वे भूखे और थके हुए घरपर आये थे, मैं उन्हें भूखा और थका छोड़कर कैसे आती? मैं उनकी सेवामें लग गयी, इस कारण देर हो गयी। ब्राह्मण बोला—तुम्हारे लिये ब्राह्मण बड़े नहीं हैं, तुमने पतिको ही सबसे बड़ा बना दिया। गृहस्थधर्ममें रहकर भी तुम ब्राह्मणका अपमान करती हो। तुम्हें ब्राह्मणके महत्त्वका ज्ञान नहीं है क्या?

पतिव्रताने नम्रतासे जवाब दिया—तपस्वीजी! आप क्रोध न करें, मैं बगुली नहीं हूँ, जो आपकी क्रोधभरी दृष्टिसे जल जाऊँगी। मैं ब्राह्मणोंका अपमान नहीं करती, तपस्वी ब्राह्मण तो देवताके समान होते हैं। हाँ, मुझसे जो अपराध हो गया है, उसे क्षमा करें। मैं ब्राह्मणोंके तेज और महत्त्वको जानती हूँ। विप्रवर! मेरे लिये तो पतिकी सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। मैं उसी पतिसेवारूप धर्मका पालन करती हूँ। पतिसेवाके फलको आप प्रत्यक्ष देख लीजिये कि आपने क्रोध करके बगुलीको जलाया था, जिसे मैं जान गयी हूँ। धर्मकी गति सूक्ष्म होती है, आप भी धर्मज्ञ हैं और पवित्र हैं, लेकिन मेरा विचार है कि आपको धर्मका यथार्थ ज्ञान नहीं है, इसलिये मेरा अनुरोध है कि आप धर्मके तत्त्वको जाननेके लिये मिथिलापुरीमें जायँ। वहाँ धर्मव्याधके पास जाकर धर्मका तत्त्व पूछें। मिथिलामें रहनेवाला वह व्याध माता-पिताका सेवक है और माता-पिताकी सेवासे उसे धर्मका सब रहस्य ज्ञात है। आपका मङ्गल हो, आप उसीके पास जायँ। आपका कल्याण होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। हाँ, अन्तमें मेरी प्रार्थना है कि मेरे मुखसे कुछ अनुचित बातें निकल गयी हों तो मुझे क्षमा करें। ब्राह्मणने कहा—शुभे! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। मेरा सारा क्रोध दूर हो गया है, तुमने मुझे जो उलाहना दिया है, वह अनुचित नहीं है। कल्याणि! धन्य हो, अब मैं तुम्हारे कथनानुसार धर्मव्याधके पास मिथिला जाता हूँ।

कौशिक अनेक जंगलों, गाँवोंको पार करता हुआ मिथिला पहुँचा, वहाँ उसने धर्मव्याधका पता पूछा, ब्राह्मणोंने धर्मव्याधका पता बता दिया। कौशिकने वहाँ जाकर देखा कि धर्मव्याध कसाईखानेमें बैठकर भैंसों आदि पशुओंका मांस बेच रहा है, वहाँ ग्राहकोंकी भीड़ लगी है, अतः कौशिक एकान्तमें खड़ा हो गया। व्याध नम्रताके साथ कौशिकके पास पहुँचा और बोला—भगवन्! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, आपका स्वागत है। मैं ही वह व्याध हूँ जिसके पास पतिव्रता स्त्रीने आपको भेजा है। आप किस उद्देश्यसे आये हैं, यह मुझे ज्ञात है। यह बात सुनकर कौशिकको बड़ा आश्चर्य हुआ, वह सोचने लगा कि यह दूसरा आश्चर्य दृष्टिगोचर हुआ है। इसके बाद व्याधने प्रार्थना

की—यह स्थान आपके ठहरने योग्य नहीं है, आप मेरे घरपर चलें। ब्राह्मण व्याधके साथ उसके घरपर पहुँचा। वहाँ व्याधने ब्राह्मणको आदरके साथ आसनपर बैठाया, अर्घ्य देकर पूजा की। तब ब्राह्मणने व्याधसे कहा—तात! यह मांस बेचनेका काम तुम्हारे योग्य नहीं है। व्याधने कहा—मैं व्याधजातिमें उत्पन्न हूँ, इसलिये यह मेरा सहज कर्म और विशेष कर्म है। इसलिये इसे छोड़ना अधर्म होगा।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता:॥

(गीता १८। ४८)

अर्थात् भगवान्‌ने बताया है कि जिस जातिमें जो उत्पन्न होता है, उसका कर्म भी उसके साथ ही उत्पन्न होता है। वह कर्म सदोष हो तो भी उसे नहीं छोड़ना चाहिये।

मैं व्याधजातिमें उत्पन्न हूँ और मेरी जातिका काम है—मांस बेचना। यह काम मेरे बाप-दादोंके समयसे चला आ रहा है, इसलिये इस सहज कर्मको मैं नहीं छोड़ रहा हूँ। हाँ, मैं हिंसा नहीं करता। दूसरोंके मारे हुए सुअर और भैंसोंका मांस बेचता हूँ। मैं मांस खाता भी नहीं हूँ। केवल जातिगत धर्म समझकर मांस बेचता हूँ।

इसके बाद धर्मव्याधने हिंसा और अहिंसाका विवेचन किया और धर्मके मर्मकी बातें बतायीं, जो महाभारतके अनेक अध्यायोंमें विस्तारसे वर्णित हैं। अन्तमें व्याधने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने जैसा सुना है, सब कुछ संक्षेपमें सुना दिया। अब क्या सुनोगे?

कौशिक बहुत विस्मित हुआ और बोला—तात! तुमने जो कुछ कहा है वह सब न्याययुक्त है, मैं तो ऐसा समझता हूँ कि धर्मकी ऐसी कोई बात नहीं है, जो तुम्हें ज्ञात न हो। तब व्याधने कहा—विप्रवर! मेरा जो प्रत्यक्ष धर्म है, जिसके प्रभावसे मुझे यह सब सिद्धि प्राप्त हुई है, उसका भी आप दर्शन कर लें।

ऐसा कहकर धर्मव्याध उस ब्राह्मण कौशिकको अपने घरके भीतर ले जाकर अपने माता-पितासे मिलाया। ब्राह्मण कौशिकने देखा कि वह घर बहुत साफ-सुथरा है, दीवारोंपर चूनेसे सफेदी की हुई है, वहाँ धर्मव्याधके माता-पिता खा-पीकर बहुत आरामसे बैठे हैं। वहाँ धूप, केसर, चन्दन आदिकी उत्तम गन्ध फैल रही है। धर्मव्याधने पुष्प, चन्दन आदिसे उनकी पूजा की थी। धर्मव्याधने वहाँ जाकर माता-पिताके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। माता-पिताने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि बेटा! तुम धर्मके जानकार हो, तुम्हारी सेवासे हम बहुत प्रसन्न हैं। तुम्हारी आयु बढ़े, तुमने इस घरमें हमें इस प्रकार सुखसे रखा है, मानो हमलोग देवलोकमें रह रहे हों। तुम्हारे लिये हम दोनोंके सिवा और देवता नहीं है, इसलिये तुम्हारी इस पूजासे हमारे पिताके पितामह, प्रपितामह आदि सभी प्रसन्न रहते हैं।

धर्मव्याधने अपने माता-पितासे कौशिक ब्राह्मणका परिचय कराया, तब उन्होंने स्वागतपूर्वक ब्राह्मणका पूजन किया। कौशिकने भी उनका कुशलक्षेम पूछा। इसके बाद धर्मव्याधने कौशिकसे कहा कि माता-पिता ही मेरे प्रधान देवता हैं, देवताओंके लिये जो कुछ करना चाहिये, वह मैं इन दोनोंके लिये करता हूँ। मेरे प्राण, स्त्री, पुत्र और सुहृद् सब इन्हींकी सेवाके लिये हैं। द्विजश्रेष्ठ कौशिक! उस पतिव्रता देवीने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है। वे महान् महिला हैं, वे पातिव्रत्यके प्रभावसे सब कुछ प्रत्यक्ष कर लेती हैं।

अब मैं आपके हितकी कुछ बात कहने जा रहा हूँ। हे द्विजश्रेष्ठ! आपने अपने माता-पिताकी उपेक्षा की है। वेदाध्ययन-जैसा पवित्र कार्य तो आपने किया है, परंतु आपको चाहिये था कि इस कार्यके लिये अपने माता-पितासे आज्ञा ले लें। उनसे आज्ञा न लेनेसे उनकी उपेक्षा हो गयी है। इसलिये आपके द्वारा अनुचित कार्य हो गया। यद्यपि आप वेदाध्ययन-जैसे उत्कृष्ट कार्यके लिये घरसे निकले हैं, किंतु आपकी उपेक्षासे वे दोनों बूढ़े एवं अंधे हो गये हैं। आप उन्हें प्रसन्न करनेके लिये घर जाइये, तब आपका कल्याण होगा। यह मैं जानता हूँ कि आप महात्मा हैं, तपस्वी हैं और सदा धर्मकार्यमें लगे रहते हैं, फिर भी आपने माता-पिताको संतुष्ट नहीं किया है। इसलिये आपके सभी पुण्यकर्म व्यर्थ हैं। अत: आप घर जाकर अपने माता-पिताको प्रसन्न करें। आप मेरी बातपर श्रद्धा रखें, इसके विपरीत कार्य न करें।

हे विप्रवर! आप देवताओंके समान हैं; क्योंकि आपने सनातन धर्ममें मन लगाया है। पुत्रके लिये माता-पिताकी सेवासे बढ़कर और कोई कार्य मैं नहीं देखता। इसलिये आप माता-पिताके पास शीघ्र जाइये और आलस्यरहित होकर उनकी सेवामें लग जाइये। इसपर कौशिक ब्राह्मणने कहा—नरश्रेष्ठ! मेरा बड़ा भाग्य है कि आपका संग प्राप्त हो गया। मैं नरकमें गिर रहा था, आपने मेरा उद्धार कर दिया। आपके उपदेशके अनुसार मैं माता-पिताकी पूर्ण सेवा करूँगा। (महा० वनपर्व)

हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

सबसे बड़ी विपत्ति—आर्थिक नुकसान हो जाना, अपने तथा स्वजनोंके शरीरमें असाध्य रोग पैदा हो जाना, अपने प्यारे परिवारजनोंका सदैवके लिये वियोग हो जाना, अपनी मृत्यु हो जाना, दूसरोंके द्वारा भीषण अपमान, तिरस्कार, निन्दा, आलोचना किया जाना आदि वास्तवमें विपत्ति नहीं है। इन सबको विपत्ति मानना भूल है। सचाई यह है कि परमात्माको भूल जाना, उनकी स्मृति न रहना, उनका भजन न होना ही सबसे बड़ी विपत्ति है। श्रीरामचरितमानसमें भक्तवर श्रीहनुमान्‌जीके वचन हैं—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

(५।३२।३)

हनुमान्‌जीने कहा—हे प्रभो! विपत्ति तो वही है जब आपका भजन-स्मरण न हो।

वास्तविकता यह है कि यदि परमात्माकी स्मृति बनी रहे तो संसारकी दृष्टिमें कही जानेवाली घोर विपत्तियोंमें भी विपत्तिका अनुभव नहीं होगा। भगवान् श्रीरामके अमृत-वचन हैं—

बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥

(रा०च०मा० ५।३२।२)

(भगवान् श्रीरामने श्रीहनुमान्‌जीसे कहा—) मन, वचन और शरीरसे जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय या मेरी ही स्मृति) है, उसे क्या स्वप्नमें भी विपत्ति हो सकती है?

सबसे बड़ी साधना—उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि दुःख-निवृत्ति और प्रभु-प्राप्तिकी सबसे बड़ी साधना है—परमात्माको न भूलना। न भूलनेका आशय है—आप किसी भी अवस्थामें हों, आपके सामने कैसी भी परिस्थिति हो, आप कहीं भी रहें और कुछ भी करें—आपको परमात्माकी स्मृति बनी रहे।

स्मृतिका परिणाम—परमात्माकी स्मृतिमात्रसे आप पलभरमें भयंकर-से-भयंकर दुःख, चिन्ता, भय, मानसिक तनाव, निराशा, क्रोध, राग, द्वेष, मोह, ममता आदि विकारोंसे सदैवके लिये सर्वांशमें मुक्त हो जायँगे और आपका हृदय स्मृतिजनित दिव्य, चिन्मय, अलौकिक आनन्दसे भर जायगा।

स्मृतिके तीन चरण—परमात्माकी स्मृतिके तीन चरण हैं—(१) परमात्माको याद करना, (२) परमात्माकी याद आना और (३) परमात्माकी याद रहना। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा बाह्य सामग्रीके माध्यमसे आप जप, तप, पूजा, पाठ, भजन, कीर्तन, सत्-चर्चा, सत्-चिन्तन, सत्-कार्य जैसे—व्रत, उपवास, यज्ञ, दान आदिके रूपमें प्रभुको याद करते हैं। प्रभुको याद करना अत्यन्त उत्तम कार्य है। लेकिन इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि एक सीमाके बाद थकान आ जाती है, याद करना स्वतः बंद हो जाता है। बीमारी, वृद्धावस्था, असमर्थता और मृत्युके क्षणोंमें 'याद करना' अत्यन्त कठिन है। याद करनेमें कठिनाई आये, इसके पहले ही आपको याद आनेकी अवस्थामें प्रवेश कर लेना चाहिये। याद आनेका आशय है—शरीरादिके द्वारा बिना कुछ किये अपने-आप परमात्माकी याद आना। विचार करनेपर आपको साफ-साफ अनुभव होगा कि परिवारके किसी प्यारे सदस्यकी मृत्यु हो जानेपर उसकी याद अपने-आप आती है। याद आनेमें भी यह कठिनाई है कि याद निरन्तर नहीं आती है, हो सकता है कि आप निद्रा अथवा अत्यधिक सुखके क्षणोंमें प्रभुको भूल जायँ। इसलिये याद रहना सबसे अच्छी अवस्था है। आपको परमात्मा सदैव, सभी परिस्थितियोंमें याद रहते हैं। याद रहना ही वास्तवमें स्मृति है।

स्मृतिका स्वरूप—आपके जीवनमें विभिन्न परिस्थितियाँ आयेंगी। किस परिस्थितिमें परमात्माकी स्मृति किस रूपमें रहे, इस सम्बन्धमें निम्नलिखित बातोंको गम्भीरतासे समझिये—

निवृत्ति एवं प्रवृत्ति—प्रतिदिन आपके पास चौबीस घंटेका समय रहता है। आप इस समयको दो प्रकारसे व्यतीत करते हैं—

(क) निवृत्तिमें—जिस समय आपके सामने कोई भी कर्म (कार्य) नहीं रहता है; आप शरीर, परिवार, समाज, संसार, व्यापार, नौकरी आदिका कोई भी कार्य नहीं करते हैं, उस समयको निवृत्तिकाल कहते हैं।

(ख) प्रवृत्तिमें—जिस समय आप अपने शरीर, घर-परिवार, व्यापार, नौकरी, ऑफिस, समाज आदिके सांसारिक कार्य करते हैं, उस समयको प्रवृत्तिकाल कहते हैं।

जिस समय आप शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा बाहरी सामग्रीके सहयोगसे जप, तप, पूजा, पाठ, भजन,

कीर्तन, स्वाध्याय आदिके रूपमें परमात्माको याद करते हैं, उस समयको 'प्रवृत्तिमें निवृत्ति'का समय कहते हैं। यह भी निवृत्तिकाल ही है।

निवृत्तिकालमें स्मृतिका स्वरूप—यह समय विशेषरूपसे अपने परम प्रेमास्पद प्रभुका स्मरण, चिन्तन करते हुए उनके प्रेममें डूबे रहनेका है। इस समय आपको प्रभुकी स्मृति इस रूपमें रहनी चाहिये कि मैं परमात्माका अंश हूँ, परमात्मा ही मेरे अपने हैं, मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है, इस जगत्के मालिक परमात्मा हैं। इस जगत्की केवल तीन चीजें परमात्माने मुझे सौंपी हैं—पहली शरीर; दूसरी स्वजन जैसे—माता-पिता, पत्नी, संतान, भाई आदि और तीसरी सम्पत्ति जैसे—जमीन, मकान, दूकान, जेवर आदि उपभोगकी चीजें। ये तीनों मुझे मेरी चीजें मालूम होती हैं, लेकिन वास्तवमें इनके मालिक मेरे परमात्मा हैं, ये चीजें मेरी नहीं हैं, मेरे प्रभुकी हैं। मुझे अपने प्रभुकी हर चीज सँभालकर रखनी है, उनका हितभावसे सदुपयोग करना है, शरीर तथा स्वजनोंको अपने प्रभुका मेहमान मानकर उनको अपार प्रसन्नता देनी है, उनकी सेवा करनी है।

वास्तवमें यह विशाल जगत् मेरे प्रभुका ही प्रकट स्वरूप है। मेरे प्रभु ही जगत्का रूप धारण करके मेरे सामने पधारे हैं—मुझे अपने साकार स्वरूपका प्रेम देनेका सुअवसर प्रदान करनेके लिये। मुझे अपने प्रभुके इस रूपको प्रेम देना है। प्रेम देनेसे मेरे प्रभु मेरे सामने उसी वेश और रूपमें प्रकट हो जायँगे, जिस रूपमें मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ। भगवान् शङ्करने इस सत्यको अपने श्रीमुखसे बताया भी है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(रा०च०मा० १। १८५। ५)

इसका आशय है—'मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं।'

शरीर, घर, परिवार, व्यापार, नौकरी एवं समाजके सब कार्य मेरे प्यारे प्रभुके कार्य हैं। मुझे ये सब कार्य प्रभुकी प्रसन्नताके लिये करने हैं।

मेरे प्रभुका प्रत्येक विधान मेरे लिये परम हितकारी होता है, चाहे मेरी अल्प दृष्टि और अल्प बुद्धिसे बाह्य स्तरपर वह कितना ही प्रतिकूल क्यों न दिखायी दे। अपनी तरफसे पूरी सावधानीके साथ कार्य करनेपर भी मेरे सामने स्वतः अथवा किसीके माध्यमसे जिस प्रतिकूल परिस्थितिका निर्माण हो जाता है, उसीका नाम है—प्रभुका विधान। जिस अनुकूल परिस्थितिकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की, जिसकी तुलनामें मेरे प्रयास अत्यन्त अल्प रहे, उस स्वतः अथवा किसीके माध्यमसे निर्मित अनुकूल परिस्थितिका नाम भी प्रभुका विधान ही है।

मेरे प्रभु समर्थ हैं, सदैव हैं, सबके हैं, सबमें हैं, सर्वत्र हैं, सर्वज्ञ हैं, परम सुहृद् हैं, पतितपावन हैं, अधम-उद्धारक हैं, क्षमासिंधु हैं, दीनबंधु हैं, दीनानाथ हैं। उनका आश्रय लेकर मुझे अपने जीवनमें निश्चिन्त, निर्भय, निडर, निर्मल, निर्विकार, निर्मम, निष्काम, निर्वैर, निरभिमान, परम प्रसन्न तथा पूर्ण आनन्दमें रहना है।

मेरे व्यक्तित्वमें जितने गुण हैं, वे मेरे प्रभुकी देन हैं और अवगुण मेरी भूलसे पैदा हुए हैं। इसलिये मुझे गुणोंका अभिमान नहीं करना है और अवगुणोंको मिटानेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर प्रयास करना है।

सब कुछ प्रभुका है, इसलिये उनके नाते सभी मेरे अपने हैं, अपने होनेसे अत्यन्त प्रिय हैं। मुझे उन्हें अपार प्रेम देना है।

निवृत्तिकालमें उपर्युक्त भावनाएँ रखें। इन सब बातोंका सजीव चिन्तन करें। जबतक आपकी भावना प्रबल न बने, तबतक इन बातोंको अपनी वाणीसे बोलें और ध्यानपूर्वक अपने कानोंसे सुनें। बोलने-सुननेसे ये बातें आपको स्वतः याद रहने लगेंगी और आपकी भावनामें सजीवता आ जायगी।

प्रार्थना—निवृत्तिकालमें प्रभुसे यह प्रार्थना करें—नाथ! मुझपर ऐसी कृपा कर दो कि मैं इन भावनाओंके अनुरूप ही प्रवृत्तिकालमें रहूँ, मेरी भावनाके अनुरूप ही मेरे कर्म हों ताकि प्रवृत्तिकालमें भी मुझे आपकी स्मृति बनी रहे।

प्रवृत्तिकाल—आपके दैनिक जीवनका ज्यादा समय प्रवृत्तिमें व्यतीत होता है। दिनभर आप कुछ-न-कुछ करेंगे। आप जो कुछ करेंगे, उसके प्रमुख अङ्ग इस प्रकार हैं—

(क) विभिन्न कार्य—प्रातः उठनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक प्रायः आप निम्नलिखित कार्य करते हैं—अपने शरीरके कार्य जैसे—शौच, स्नान, व्यायाम, टहलना, शरीरको नाश्ता-भोजन देना, आराम करवाना आदि; घर-परिवारके कार्य जैसे—सफाई, भोजन बनाना, बालकोंका लालन-पालन करना, उन्हें पढ़ाना, बड़ों तथा बीमार परिवारजनोंकी सेवा करना; अपने व्यापार, ऑफिस, नौकरीके कार्य,

समाजके कार्य, वस्तुओं तथा सम्पत्तिकी देख-रेख-सम्बन्धी कार्य आदि। इन सब कार्योंको करते समय आपको प्रभुकी स्मृति इस रूपमें रहनी चाहिये कि ये सब कार्य मेरे प्रियतम प्रभुके कार्य हैं और प्रभुके कार्योंको करनेसे मेरे प्रभुको बड़ी प्रसन्नता मिलेगी। ऐसा सोचकर प्रभुके प्रत्येक कार्यको अपना पूरा समय, शक्ति, बुद्धि, योग्यता तथा अनुभव लगाकर पूर्ण उत्साह, धैर्य और सावधानीके साथ जिस ढंगसे उसे करना चाहिये, वैसे ही करें। उसमें लेशमात्र भी लापरवाही, आलस्य एवं जल्दबाजी न करें, उसे बोझ समझकर किसी भी तरहसे पूरा करनेका प्रयास न करें। कार्य करनेके पहले यह अवश्य सोच लें कि उससे किसीका अहित तो नहीं होगा, किसीका अधिकार तो नहीं छिन जायगा। इस सच्ची बातको भलीभाँति याद रखें कि जो कार्य भगवान्के नाते उनका कार्य समझकर उनकी प्रसन्नताके लिये किया जाता है, वह वास्तवमें दुःखनिवृत्ति तथा प्रभुप्राप्तिकी साधना है। इसलिये छोटे-से-छोटा कार्य जैसे—झाड़ू लगाना, बर्तन साफ करना, कपड़े धोना, कमरा साफ करना आदि भी वैसी ही साधना है जैसी पूजा करना, माला फेरना, नित्य-कर्म करना आदि। प्रत्येक कार्यको प्रभुका कार्य समझकर करनेसे आपका हृदय प्रसन्नता तथा प्रेमसे भर जायगा, रोमाञ्च और अश्रुपात होने लगेगा एवं कार्य पूरा होनेके बाद आप प्रेममें डूब जायँगे। उस समय आपके हृदयमें किसी भी प्रकारका संकल्प-विकल्प नहीं रहेगा।

जब आपका कार्य पूरा हो जाय तब आप यही सोचना कि यह कार्य तो मेरे प्रभुने ही किया है। उनका स्वभाव ही है कि कार्य तो वे स्वयं करते हैं और सम्मान दूसरोंको दिलाते हैं। ऐसा सोचनेमात्रसे आप कर्तापनके अभिमान, फलासक्तिसे स्वतः बच जायँगे, कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायँगे। सत्य भी यही है कि आप जिस शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा बाह्य सामग्रीके सहयोगसे कार्य करते हैं, उन सबके मालिक तो प्रभु हैं।

जबतक आपको यह बात याद न रहे कि यह कार्य मेरे प्रभुका कार्य है तबतक प्रत्येक कार्यके आरम्भ, मध्य और अन्तमें कम-से-कम तीन बार, अपनी वाणीसे ये शब्द बोलते रहें—'मैं अपने प्रभुका कार्य कर रहा हूँ' और ध्यानपूर्वक इन शब्दोंको सुनते रहें। कुछ समय बाद यह बात आपको याद रहने लग जायगी।

(ख) दूसरोंके साथ व्यवहार—प्रवृत्तिकालमें आप अपने शरीर, परिवारके सदस्यों—पति, पत्नी, संतान, माता-पिता आदि, रिश्तेदारों, मित्रों, सम्पर्कमें रहने एवं आनेवाले व्यक्तियोंके साथ व्यवहार करते हैं। इनके साथ व्यवहार करते समय आपको परमात्माकी स्मृति इस रूपमें बनी रहनी चाहिये कि स्वयं परमात्मा ही यह वेश बनाकर मेरे सामने पधारे हैं। ऐसा मानकर आप अपने मनमें उनको प्रणाम करें और अपने प्रत्येक व्यवहारसे उन्हें सुख, सुविधा, सम्मान, प्रसन्नता तथा प्रेम दें; उनका हित सोचें, उनका हित करें, उनकी उन आवश्यकताओंको पूरी करें जो आपके विवेक और सामर्थ्यके अनुरूप हों। अपने किसी भी व्यवहारसे उन्हें दुःख न पहुँचायें, उनका अपमान न करें। यदि भूलसे उन्हें दुःख पहुँचा दें तो तत्काल क्षमा माँग लें।

यदि आप उन्हें साक्षात् प्रभुका स्वरूप माननेमें कठिनाई महसूस करें तो उन्हें अपने प्रभुका मेहमान मानकर उपर्युक्त व्यवहार करें। इस साधनाको अपने निकट परिवारजनोंसे आरम्भ करें। इसमें आपको सुविधा रहेगी और दूसरोंके साथ इसे करनेकी शक्ति स्वतः आ जायगी।

(ग) दूसरोंका आपके साथ व्यवहार—प्रवृत्तिकालमें आपके परिवारजन तथा अन्य व्यक्ति आपके साथ दो प्रकारका व्यवहार करेंगे—अनुकूल और प्रतिकूल। अनुकूल व्यवहारका आशय है—उनके द्वारा आपको सुख-सुविधा-सम्मान-प्रेम-प्रसन्नता दिया जाना, आपकी सेवा किया जाना, आपकी इच्छाओंको पूरी किया जाना, आपको सहयोग दिया जाना, आपके प्रति सद्भाव रखना। प्रतिकूल व्यवहारका आशय है—उनके द्वारा आपका अपमान-अनादर-तिरस्कार-निन्दा-आलोचना-निरादर-विरोध किया जाना, आपको दुःख दिया जाना, आपके कार्योंमें बाधाएँ पैदा करना, आपका असहयोग करना, आपकी आज्ञा न मानना। जब दूसरे व्यक्ति आपके साथ अनुकूल व्यवहार करें, तब आपको परमात्माकी स्मृति इस रूपमें बनी रहनी चाहिये कि मेरे प्रभु कितने दयालु हैं जो मुझ-जैसे तुच्छ और अवगुणोंसे भरे व्यक्तिका भी वे इतना ध्यान रखते हैं, उनकी कृपाका अनुभव करके आपका हृदय आनन्दसे सराबोर हो जाना चाहिये। इसके साथ उनकी स्मृति इस रूपमें भी बनी रहनी चाहिये कि दूसरोंके वेशमें मेरे प्रभु ही हैं। अनुकूल व्यवहार करके वे मुझे प्रेमका पाठ पढ़ा रहे हैं। वे मुझे संकेत दे रहे हैं—प्यारे! मैं तुम्हें जितनी प्रसन्नता दे रहा हूँ, क्या तुम मुझे वापस उतनी प्रसन्नता दे रहे हो? प्यारे! मैं तुम्हारे प्रेमका प्यासा हूँ, मुझे और अधिक प्रसन्नता

दो। तुम्हारा प्रेम पानेके लिये ही मैंने तुम्हारे परिवारजनों तथा अन्य व्यक्तियोंका वेश बनाया है। मुझे प्रेम दो, प्रेम दो, प्रेम दो। प्रेम देनेसे तुम्हारा हृदय आनन्दसे भर जायगा।

जब दूसरे व्यक्ति आपके साथ प्रतिकूल व्यवहार करें, तब आपको परमात्माकी स्मृति इस रूपमें बनी रहनी चाहिये कि मेरे प्रभु ही यह वेश बनाकर मेरे साथ प्रतिकूल व्यवहार कर रहे हैं। इस व्यवहारसे वे मुझे प्रेमकी शिक्षा-दीक्षा देकर प्रेमी बना रहे हैं। वे मुझे संकेत कर रहे हैं—प्यारे! क्या मेरे तनिक-से प्रतिकूल व्यवहारसे तू दुःखी, चिन्तित, परेशान और क्रोध तथा तनावसे ग्रसित हो गया? प्यारे! मेरा प्रतिकूल व्यवहार तुम्हारे दुःख, क्रोध आदिका कारण नहीं है, मुझे दोष मत दो, तुम्हारे दुःख, परेशानी, क्रोध तथा तनावका कारण तुम्हारी अपनी भूल है। उस भूलका एहसास करानेके लिये ही मैंने तुम्हारे साथ प्रतिकूल व्यवहार किया है। उस भूलके रहते तुम्हारे जीवनका दुःख कभी नहीं मिटेगा, तुम्हें कभी शान्ति नहीं मिलेगी, तुम सेवा तथा प्रेमकी साधना नहीं कर पाओगे। उस भूलका नाम है—पराधीनता। प्यारे! अपनी पराधीनताको मिटाओ, स्वाधीन हो जाओ और मुझे प्रेम दो, प्रेम दो, प्रेम दो। प्रेम देनेसे तुम्हारा हृदय आनन्दसे सराबोर रहेगा।

इस साधनाको अपने निकट परिवारजनोंसे आरम्भ करें, मानवमात्रको प्रेम देनेकी शक्ति आपमें स्वतः आ जायगी। फिर प्राणिमात्रमें आपको अपने प्यारे प्रभुके दर्शन होंगे। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शङ्करकी वाणी है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
(१।१८५।५)

अर्थात् मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं।

(घ) अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितिमें—प्रवृत्तिकालमें समय-समयपर आपके सामने दो परिस्थितियोंका निर्माण होगा—अनुकूल एवं प्रतिकूल। अनुकूल परिस्थितिका आशय है—सुख और प्रतिकूल परिस्थितिका आशय है—दुःख। जब आपके सामने अनुकूल परिस्थितिका निर्माण हो, तब आपको परमात्माकी स्मृति इस रूपमें बनी रहनी चाहिये कि मेरे प्रभु कितने दयालु हैं, जो वे मेरी प्रत्येक जरूरतका इतना अधिक ध्यान रखते हैं। इस स्मृतिके आनन्दसे आपका रोम-रोम विभोर हो जाना चाहिये। इस रूपमें भी प्रभुकी याद रहनी चाहिये कि जगत् मेरे प्रभुका ही प्रकट स्वरूप है, उन्होंने ही जगत्का रूप बनाया है। यह सुख-सामग्री देकर प्रभुने मुझे अपने विश्वरूपकी क्रियात्मक सेवा करनेका अवसर दिया है, अब मुझे अपने प्रभुकी सेवा करनी है, उन्हें प्रसन्नता देनी है। शरीर, परिवारजन, सम्पर्कमें आने तथा रहनेवाले व्यक्तियोंको प्रभु मानकर उन्हें प्रेम दीजिये।

जब आपके सामने प्रतिकूल परिस्थितिका निर्माण हो, तब आपको परमात्माकी स्मृति इस रूपमें बनी रहनी चाहिये कि इस परिस्थितिको मेरे प्यारे प्रभुने भेजा है। मैंने अपनी तरफसे तो किसी भी प्रकारकी असावधानी नहीं रखी है, फिर भी प्रतिकूल परिस्थिति आ गयी। यह तो निश्चय ही मेरे प्रभुकी इजाजतसे आयी है। यह मेरे प्यारे प्रभुका मेरे लिये अनुपम संदेश है। मैंने अपनी ही भूलसे शरीर तथा संसारमें सुख मान लिया, मैं संसारके क्षणिक सुखमें फँस गया, मैंने सांसारिक सुखको ही शान्ति मान लिया, मुझे परमात्माकी विस्मृति हो गयी, मैं उनसे विमुख हो गया। विस्मृति एवं विमुखताके कारण मैं दुःखमें फँस गया। दुःखसागरसे निकालकर अपने सम्मुख करके मुझे स्थायी प्रसन्नता, परम शान्ति एवं अलौकिक आनन्द प्रदान करनेके लिये ही प्रभुने इस प्रतिकूलताको भेजा है। ऐसा सोचते ही आप भाव-विभोर हो जायँगे, मनमें आयेगा कि मेरे प्रभु मेरा कितना ध्यान रखते हैं।

आपको इस रूपमें भी परमात्माकी स्मृति बनी रहनी चाहिये कि मेरा हृदय गंदगीसे भर गया था। प्रभु एक माँकी भाँति मेरी सफाई कर रहे हैं। जिस प्रकार माँ अपने बालकके रोनेकी कोई परवाह न करके रगड़-रगड़कर उसे स्नान करा देती है, उसी प्रकार प्रभु मेरी सफाई कर रहे हैं, मुझे स्वच्छ एवं पवित्र बना रहे हैं।

आपको इस रूपमें भी परमात्माकी स्मृति बनी रहनी चाहिये कि मेरी पराधीनता (कामना)-के कारण ही मुझे सुख-दुःखका अनुभव हो रहा है। प्रतिकूलता मेरे प्रभुद्वारा भेजा गया पराधीनताके नाशका निर्देश है।

आपको इस रूपमें भी परमात्माकी स्मृति बनी रहनी चाहिये कि अबतक प्रभु मेरी इच्छा पूरी करते रहे, अब वे अपनी इच्छा पूरी कर रहे हैं, अब मुझे वे अपना दिव्य प्रेम देनेवाले हैं, मुझसे मिलनेवाले हैं, मेरे जीवनको सफल बनानेवाले हैं। इस स्मृतिसे आप भाव-विभोर हो जायँगे।

परमात्माकी स्मृति ही सच्चा भजन है और यही इस जीवन की सफलता है।

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ८१८ से आगे]

कलियुगकौ इन तीनन पै पूरौ हाथ है—साधु, ब्राह्मण और स्त्री।

कलियुग कहै है कि तुम चाहैं जो कछु करिलेउ, पर नैंक दम्भ कूँ जगह दिये रहियौं और इनकौ (प्रभुकौ) स्वभाव है कि दम्भकौ चौरेमें भण्डा फोरैं हैं। **उदाहरण दियौ**—राजा भर्तृहरिके राज्यमें एक ब्राह्मण शिवभक्तकौ। जाकूँ शिवजीने फल दियौ हो कि याकूँ जो खावैंगौ वह अमर है जायगौ। ब्राह्मणके मनमें आयी कि मेरौ अमर है कैं का होयगौ? यदि हमारौ राजा अमर है जाय तौ अच्छौ रहैगौ। ऐसौ बिचारिकै वा ब्राह्मणने वह फल अपने राजाकूँ जाय दियौ। राजाकी आसक्ति रही अपनी रानीमें या कारण बाने बिचार कियौ कि यह फल यदि मेरी रानी खायले तौ अच्छौ रहैगौ। ऐसौ बिचारिकै राजाने वह फल अपनी रानीकूँ जाय दियौ। रानीकौ गुप-चुप प्रेम-सम्बन्ध रह्यौ सेनाध्यक्षसौं। बाने सोची कि यह फल यदि सेनापति खायले तौ अच्छौ रहैगौ। ऐसौ बिचारिकै बाने वह फल सेनापति कूँ दै दियौ। सेनापतिकौ सम्बन्ध नगरकी एक वेश्यासौं रह्यौ। बाने सोची कि यदि यह फल वह वेश्या खायले तौ अच्छौ रहैगौ। ऐसौ बिचारिकै बाने वह फल वेश्याकूँ दै दियौ। वेश्याने बिचार कियौ कि हमारौ राजा बहुत ही धर्मात्मा है। यदि वह याकूँ खायलेगौ तौ सदाँ-सदाँकूँ अमर है जायगौ और पूरे देशमें धर्मकौ साम्राज्य छायौ रहैगौ। ऐसौ बिचारिकै वेश्याने वह फल राजा कूँ जाय दियौ। जब लौटिकैं फल पुनः राजाके पास पहुँच्यौ, तब पोल खुली कि जा रानी पै मोकूँ इतनौं विश्वास और प्रेम है, वह हू धोखेबाज है? बस राजाकूँ वैराग्य है गयौ और संन्यास लै लियौ। यदि या समय कछु प्राप्त करनौं है तौ दम्भ न रहन पावै। भजन भले ही कम हो, पर दम्भ न रहन पावै। दम्भ करनौं परै है तब, जब पुजबायवेकी लालसा होय। यह न हौन पावै। सावधान! या पथके पथिककूँ विशेष आवश्यकता है, यासौं बचिवेकी। जो होय पूरी सत्यता सौं होय।

> **जानहुँ राम कुटिल करि मोही'''।**
> **सीता राम चरन रति मोरे'''।**
>
> (रा०च०मा० २। २०५। १-२)

ऐसी रहनी हो कि बस हम जानैं या हमारे प्रियतम जानैं। जो कुछ हो प्रियतमके ताँईं। आज सौं लाखन वर्षपूर्व जीवकूँ ईश्वरसौं बिमुख करायवेकी तीन बातें निश्चित करली गयीं—द्रव्य, स्त्री, पुजबायवेकी लालसा।

ये ही मूल हैं। जबतक संसारी लोगन सौं सम्पर्क रहैगौ तौ अशान्ति तौ रहैगी ही।

एक महा-महावाक्य मिल्यौ—कोई निन्दा करै अथवा प्रशंसा करै तौ ऐसौ समझै कि चिरैया चीं-चीं कर रही हौयँ। दोऊनकी उपेक्षा ही रहै। दोऊनकूँ मत सुनौं। कोई निन्दा करैगौ—कौनकी? शरीरकी। कोई प्रसंसा करैगौ—कौनकी? शरीरकी। मैं तौ अपने प्रियतमकौ हूँ। विशेष ध्यान रहै अपने लक्ष्यकौ।

संसारी लोगनके द्रव्यमें, संगमें, सेवामें रोग होय है और वह उनके सम्पर्क सौं साधकके जिम्मे परि जाय है और जितनी चिकित्सा होयगी उतनौं ही बढ़ैगौ। क्योंकि चिकित्सा होयगी उनके पैसा ही सौं। यासौं इनकौ सम्पर्क न बनन पावै। जितनी बनै तितिक्षा ही होय।

> **सुनैं न काहूँकी कही, कहै न अपनी बात।**
> **नारायण वा रूपमें, मगन रहै दिन-रात॥**

कलियुगकौ पूरौ हाथ—महद् अपराध कराय दैनौं।

सतयुगकौ पूरौ हाथ—श्रद्धा कराय दैनौं।

या समय जो कृपा है रही है, बाकी पूरी सँभारमें लगे

रहैं जीवनभर। जीवनकी अन्तिम साँसतक अपराध न बनन पावै। अपराध का है? अश्रद्धा।

प्रथम श्रद्धा ही ढीली परै है। फिर दोष-दुर्गुण दीखिवे लगैं हैं। बस, पतन प्रारम्भ है गयौ। सावधान! जो आज्ञा है जाय, बाकूँ पूरी श्रद्धा सौं, सप्रेम, आत्मीयता सौं, जीवनकी अन्तिम साँसतक पालन करते रहनौं। तब ही बचि पाओगे। सावधान! सावधान!! अपने मन, बुद्धि सौं काम नहीं लैनौं। अपने ताँईं कछु बचायकैं न राखैं। बस।

महापुरुष तौ कृपा करि देयँ हैं, परंतु पात्रता न हैवेके कारण बाकी सँभार नहीं ह्वै पावै है। दीखिवेमें एक पै पूरी कृपा है और दूसरे पै नहीं दीखै। किंतु बाकी सँभार नहीं है तौ वह काम नहीं करि पावैगौ तथा कछु लाभ हू नहीं मिल पावैगौ।

परंतु जापै कृपा नहीं दीखै है और बाकी पूरी श्रद्धा है, पूरी आत्मीयता है तथा जो कछु कृपा है बाकी पूरी सँभार है, तौ कृपा स्वतः ही मिलती चली जायगी। बाकौ परिणाम अति सुन्दर ही रहैगौ।

सावधान!

एकमात्र आश्रय ही रहै श्रद्धा कौ। जबतक अपने साधन, त्याग, वैराग कौ नैंकहू अहंकार है तौ कृपा ठहर ही नहीं सकै है। इनके सामने सदैव शिशुवत् ही बन्यौ रहै— सदैव विनम्रता, दीनता, सरलता। जा काहूने आजतक कछु पायौ है, वह शिशु बनिकैं ही पायौ है। इनकी ओर न देखै कि ये मोपै कितनी कृपा करि रहे हैं? अथवा कितने प्रसन्न हैं? यही सोचै कि हम इनकी ओर कितने झुके हैं? हमारौ जीवन इनके ताँईं कितनौं है? यही बात संतके विषयमें है, श्रीसंत और श्रीभगवान्—ये दो कब हैं? ये तौ एक ही हैं। सदैव अपनी पात्रताकी ओर ही देखै। अपने कूँ पात्र बनावै। श्रद्धा दृढ़ करै। कृपामें कमी नहीं है। यामें नैकहूँ संदेह न रहै । कदाचित् यह प्रतीति होय तौ यही समझै कि परीक्षा करिकैं, तपायकैं, पात्र बनाय रहे हैं।

कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥

(रा०च०मा० २। २०५। ५)

ये पात्र बनाय रहे हैं। याही सौं विलम्ब है।

अपनेमें निरहंकारिता लानौ ही अपने कूँ पात्र बनानौ है—

कृपाकी वर्षा तौ ह्वै ही रही है, किंतु ये कृपारूपी जल, निरहंकारिता (दैन्य)-रूपी गड्ढामें ही ठहरै है। आश्चर्य यह है कि कृपा दीखै ही नहीं है। कृपा-ही-कृपा है, किंतु कमी है अपनी। इनके यहाँ तौ चूक है ही नहीं।

—चाहैं संतके पास रहलेउ।

—चाहैं सेवा करिलेउ।

—चाहैं सत्संग करिलेउ, चाहैं सुनलेउ, किंतु संसार सौं पिण्ड नहीं छूटि सकै।

हम इतनौं, अनर्गल बनिक जायँ हैं, काहू कूँ सुनायवेके ताँईं नहीं। हमतौ अपनौं पाठ (याद करैं) दुहरावैं हैं। वामें सौं काहू कूँ कछु मिलि जाय, वह पकरि लेय तौ यह हमारी सेवा ह्वै गयी और बाकौ सौभाग्य।

—बड़े महापुरुष, संत जो आज्ञा दें, उनकौ प्राणपण सौं पालन बनै। उनके चरित्रनमें सौं कछुकौ अनुकरण कियौ जाय सकै है। सबकौ नहीं करि बैठे, वे सिद्ध हैं।

—साधक कूँ आज्ञा-पालन ही सब कुछ है। साधककी एक ही परिभाषा, एक ही लक्षण, एक ही स्वरूप है—जो आज्ञा महत् सौं प्राप्त भई है, वाकौ जीवनभर पालन।

स्वतन्त्र चलैगौ तौ साधककौ पतन है जायगौ। यासौं अपने मन सौं न चलै, केवल आज्ञा-पालन, बस। यही श्रीभगवत्प्राप्ति और परमपद-प्राप्तिकौ परम सूत्र है तथा अपने मन, बुद्धि सौं चलनौं, पतनकौ और विपत्तिनकौ आवाहन करनौं है। प्राण खोय दे, पर आज्ञाके विरुद्ध कोई काम न हौन पावै। तब तुम श्रीभगवान् कूँ मत ढूँढ़ौ, श्रीभगवान् तुम्हें ढूँढ़ि लैंगे।

साधकमें एक ही बात सबसौं ऊँची होय है कि इनके (श्रीभगवान्के) बिना एकहू क्षण व्यर्थ न जाय।

श्रीरामायणजी एवं श्रीभागवतजी इष्टस्वरूप ही हैं।

एक महा-महावाक्य यह है कि— श्रीरामायणजी सुननौं, पाठ करनौं, श्रीरघुनाथजीके समीप बैठनौं है। श्रीभागवतजीकौ पाठ सुननौं अथवा करनौं श्रीकृष्णके समीप बैठनौं है।

[क्रमशः]

विकारोंसे छूटनेके उपाय

(श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

[गताङ्क पृ०सं० ८२१ से आगे]

(५२) विकारोंके कारणकी खोज करना।

(५३) एक प्रभुसे भिन्न अन्यकी सत्ताकी अस्वीकृति।

(५४) परिस्थितियोंकी अनित्यताको जानना।

(५५) विवेक-विरोधी कर्म, सम्बन्ध तथा विश्वासका त्याग।

(५६) निषेधात्मक साधनके महत्त्वको स्वीकार करना।

(५७) करने, जानने, माननेकी शक्तियोंका यथायोग्य उपयोग अर्थात् करना दूसरोंके लिये, जानना अपनेको और मानना प्रभुको है—यह स्वीकार करना।

(५८) वस्तुओंके अस्तित्वकी अस्वीकृति।

(५९) सर्वहितकारी प्रवृत्ति तथा प्रवृत्तिका निवृत्तिमें विलय।

(६०) कर्तृत्व तथा भोक्तृत्वका अन्त।

(६१) चित्तकी महिमासे परिचित होना।

(६२) सुख-भोगकी आशाका त्याग।

(६३) व्यक्तित्वकी दासता तथा गुणोंके अभिमानका त्याग।

(६४) आस्तिकता—(१) सब कुछ भगवान्‌का है। (२) सबमें भगवान् हैं। (३) सब कुछ भगवान् हैं। इस सत्यको अपने योग्यतानुसार स्वीकार करना।

(६५) पञ्चामृतका सेवन करना—(१) हम भगवान्‌के ही हैं। (२) हम जहाँ भी रहते हैं, भगवान्‌के दरबारमें ही रहते हैं। (३) हम जो भी शुभ काम करते हैं, भगवान्‌का ही शुभ काम करते हैं। (४) शुद्ध सात्त्विक जो भी पाते हैं, भगवान्‌का ही प्रसाद पाते हैं। (५) भगवान्‌के दिये हुए प्रसादसे भगवान्‌के ही जनोंकी सेवा करते हैं।

(६६) मौतको निरन्तर याद रखना।

(६७) अपने लिये कुछ भी नहीं करना—(१) दूसरोंके हितके लिये करना। (२) भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये करना। (३) कामनानिवृत्तिके लिये करना।

(६८) अनन्यचित्त होकर प्रभुका निरन्तर स्मरण करना।

(६९) सम्पूर्ण धर्मोंका पालन करते हुए, धर्मके आश्रयका त्याग करते हुए, भगवान्‌की शरणागति स्वीकार करना।

(७०) कर्म करनेमें ही अपना अधिकार मानना, फलमें अधिकार न मानना तथा अकर्मण्य भी न होना।

(७१) प्रत्येक घटनामें प्रतिक्षण प्रभुकी कृपाको स्वीकार करते हुए प्रसन्न रहना।

(७२) शुभ संकल्पोंकी पूर्तिका सुख न लेना।

(७३) अधिकार-लालसाका त्याग।

(७४) सुख-लोलुपताका त्याग।

(७५) भगवान्‌में प्रेम बढ़ानेके लिये तथा विषयोंसे वैराग्यके लिये आपसमें सत्-चर्चा करना।

(७६) शरीरको मैं-मेरा मानकर भोजन लेनेवाला न बनना, अपितु शरीरको मैं और मेरा न मानकर इसको भोजन देनेवाला बनना।

(७७) साधनके लिये परिस्थिति-परिवर्तनकी चेष्टा न करते हुए परिस्थिति-परिमार्जन करना अर्थात् प्राप्त परिस्थितियोंमें साधनका निर्माण करना—प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग।

(७८) साधनमें समयका विभाजन न करना अर्थात् अमुक प्रवृत्ति तो साधन है अमुक नहीं। जैसे माला फेरना पूजा है तो शौच जाना भी पूजा है। सभी प्रवृत्ति एक भावसे करना।

(७९) अपनी बातको दूसरोंपर लादनेकी कोशिश न करना अर्थात् अपने सिद्धान्तको दूसरोंसे मनवानेके आग्रहका त्याग।

(८०) रुचि-अरुचिके द्वन्द्वका अन्त करना।

(८१) अस्वाभाविकताका त्याग।

(८२) इच्छाओं और आवश्यकताओंका विभाजन स्वीकार करना।

(८३) दीनता तथा अभिमानका त्याग।

(८४) शरीरके लिये परिवारको, परिवारके लिये समाजको और समाजके लिये विश्वको हानि न पहुँचाना।

(८५) बुराईको बुराई जानकर ही छोड़ना तथा भलाईको भलाई जानकर ही करना। किसी भय तथा प्रलोभनमें आबद्ध होकर बुराईका त्याग तथा भलाईको न करना।

(८६) जो कुछ हो रहा है, वह मङ्गलमय विधानसे ही हो रहा है—ऐसा मानकर निश्चिन्त हो जाना।

(८७) शरीर, प्राण आदि किसी भी वस्तुको अपनी न मानकर निर्भय हो जाना। जो 'है' वही मेरा अपना है—

इसमें आस्था करके प्रियताको उदय होने देना।

(८८) सावधान रहना—क्योंकि सावधानी ही साधना है।

(८९) किसी भी कार्यको छोटा-बड़ा न मानना। अपितु लक्ष्यपर दृष्टि रखते हुए भावकी शुद्धिसे प्रत्येक कार्यको करना।

(९०) विचारमें विश्वास तथा विश्वासमें विचार न करना।

(९१) सही करके, करनेका अन्त करते हुए 'न करने' में होना।

(९२) निश्चयात्मिका बुद्धि—भोग भोगना तथा संग्रह करना मेरे जीवनका उद्देश्य नहीं है—इस तरह निश्चय करके बुद्धिको निश्चयात्मिका बनाना।

(९३) स्वयंको व्यवसित करना—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९।३०)

—भगवान्‌के इन वचनोंका अर्थसहित बार-बार मनन करके मुग्ध होते रहना।

(९४) ज्ञानकी महिमासे परिचित होना—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥

(गीता ४।३६)

—भगवान्‌के इन वचनोंका बार-बार अर्थसहित मनन करके मुग्ध होते रहना।

(९५) मानवताके महत्त्वको जानना—अर्थात् मानव बलका दुरुपयोग न करके शान्ति प्राप्त कर सकता है, निज ज्ञानके आदरसे मुक्त हो सकता है और अपने श्रद्धा-विश्वासमें विकल्प न करके भक्ति (प्रेम) प्राप्त कर सकता है।

(९६) सीखने-सुनने तथा जानने-माननेका भेद स्वीकार करना।

(९७) सत्-चर्चा, सत्-कर्म तथा सत्-संगका भेद जानना।

(९८) साधनको कठिन माननेकी धारणाका त्याग।

(९९) करनेमें भगवान्‌की पूजा तथा होनेमें भगवान्‌की लीला स्वीकार करना।

(१००) शरीर-संसारकी एकता स्वीकार करना। शरीरको संसाररूपी वाटिकाकी खाद मानना।

(१०१) संग्रह की हुई सम्पत्तिको निर्धनोंकी धरोहर मानना। बलको निर्बलोंकी धरोहर मानना। योग्यताको अयोग्योंकी धरोहर मानना।

(१०२) देनेका भाव रखना अर्थात् (१) जो लेता-ही-लेता है वह जड़। (२) जो लेता है, देता है वह जड़चिद्-ग्रन्थि। (३) जो देता-ही-देता है, वह प्रभुका स्वभाव या सन्तोंका स्वभाव। (४) जो लेना छोड़नेके लिये और देनेके लिये तत्पर है, वह साधकका स्वभाव। अतः साधकको लेनेके लिये नहीं देना है। अपितु देनेके लिये ही लेना है।

(१०३) मोहयुक्त क्षमा तथा क्रोधयुक्त त्यागका त्याग।

(१०४) रागपूर्वक ग्रहण तथा द्वेषपूर्वक त्यागका त्याग।

(१०५) अपने सुधारद्वारा ही दूसरोंके सुधारमें आस्था रखना।

(१०६) संकल्प-निवृत्तिकी शान्तिको सुखसे अधिक महत्त्व देना।

(१०७) वैराग्यको अपनाना—(१) सुननेवालेकी प्रसन्नताके लिये बोलना। (२) बोलनेवालेकी प्रसन्नताके लिये सुनना। (३) खिलानेवालेकी प्रसन्नताके लिये खाना। (४) मिलनेवालेकी प्रसन्नताके लिये मिलना। जिसकी आँख रूपकी सार्थकताके लिये देखती है, उसकी सभी इन्द्रियोंका व्यवहार इसी न्यायसे होता है।

(१०८) शरीरके बने रहनेकी न सोचना।

(१०९) दुःखका भोग न करके दुःखके प्रभावको अपनाना।

(११०) मान्यताओंको कर्तव्यका प्रतीक मानना।

(१११) इन्द्रिय-ज्ञानके प्रभावका नाश एवं बुद्धिके ज्ञानका आदर।

(११२) निज दोष और दुःखका वास्तविक ज्ञान।

(११३) अपने सम्बन्धमें विकल्परहित निर्णय।

(११४) अपनी पसन्दको बदलना अर्थात् भगवान्‌को पसन्द करना और संसारके सुखोंको नापसन्द करना।

(११५) स्वाधीनताको पसन्द करना और पराधीनताको नापसन्द करना।

(११६) प्रतीतिको प्राप्त न जानना तथा प्राप्तको अप्राप्त न मानना।

(११७) वर्तमान अनित्य जीवनको नित्य जीवनकी लालसा मानना। (समाप्त)

हमारे परम सहायी—हमारे ठाकुर

(श्रीश्याम भाईजी)

[प्रस्तुति—महामहिम डॉ० श्रीसूरजभानजी, राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश]

हम सब लोग बहुत ही कष्ट और क्लेशभरे संसारमें रहते हैं। यहाँ अनेक तनाव हैं, अनेक समस्याएँ हैं। आकस्मिक दुर्घटनाएँ, प्राकृतिक प्रकोप, असाध्य रोग, असामयिक मृत्यु, निर्दयता, अन्याय एवं शोषण—ये सब मानो मानवका रक्तपान कर रहे हैं, जीवन दूभर लगने लगा है।

कहींसे इसका कुछ उपाय तो हो! गहराईसे विचार करें तो अचूक उपाय उपलब्ध है और वह है—भगवद्विश्वास। भगवद्विश्वासके दो अर्थ हैं—(१) भगवान्‌के अस्तित्वपर विश्वास एवं (२) भगवान्‌की कृपाशक्तिपर विश्वास। इस भगवद्विश्वासका सम्बल अर्जितकर अनेक विवेकवान् जनोंने वास्तविक सुख-शान्ति प्राप्त कर ली। उनके अनुभव और वाणीका लाभ उठाकर हम भी तनाव-मुक्त और सुखी रह सकते हैं। भारतमें तो अगणित ऐसे संत-महात्माओंके उदाहरण हैं ही, शेष संसारमें भी अभाव नहीं रहा। सहस्रों वर्ष पूर्व मूसा, ईसा एवं मुहम्मद हुए तो सैकड़ों वर्ष ही पूर्व चैतन्य, तुलसी, नानक एवं कबीर आदि। बादमें स्वामी रामकृष्ण एवं स्वामी दयानन्द आये तो तुरन्त पश्चात् थौरो तथा गाँधीजी। सम्भव है, वर्तमानमें आपके जीवनमें कोई भगवत्प्राप्त संत हों, तब तो उपर्युक्त उदाहरणोंकी भी अनिवार्यता नहीं।

'महाजनो येन गतः स पन्थाः'—बस, इन प्राप्त जनोंके अनुकूल हम अपना जीवन ढाल लें तो उनके समान निश्चिन्तता, शान्ति और वास्तविक सुख हमें भी प्राप्त हो सकते हैं। उनके दर्शाये गये मार्गका नाम भजन अथवा भक्ति-मार्ग है। ज्यों-ज्यों हम साधनाद्वारा भगवान्‌के समीप होते जायँगे, त्यों-त्यों हमें जीवनकी विषमताओंसे विश्राम मिलता जायगा। भगवान्‌का भजन-स्मरण करना ही सब समस्याओंका एकमात्र समाधान है।

भक्तिका अर्थ है भगवान्‌से प्रेम। भगवत्प्रेमका पहला सीधा रूप है सभी जीवोंके प्रति स्नेहभाव; क्योंकि वे सभी इन्हीं प्रभुकी सृष्टि हैं और इसलिये हमारे सगे-सम्बन्धी हैं। केवल पूजा-पाठ-तीर्थ-व्रत आदि पर्याप्त नहीं है। जीवमात्रके प्रति स्नेह एवं संवेदना होनेपर ही भक्ति तथा भजन फल प्रदान करते हैं और तब वह फल अमोघ होता है।

भक्ति या भजनके प्रधानतः तीन साधन हैं—(१) नाम-जप, (२) रूपका ध्यान और (३) प्रार्थना। ये साधन शास्त्रोंद्वारा निर्दिष्ट हैं एवं संतोंद्वारा अनुभूत हैं, इनकी साधनाके द्वारा हम भी उन-जैसा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं—

(१) नाम-जप—भगवान्‌के किसी भी (अपनेको अच्छे लगनेवाले) नाम या नामोंका बार-बार उच्चारण करें। नाम ले-लेकर उन्हें पुकारें, इस प्रक्रियाका नाम नाम-जप है। कोई व्यक्ति आपका नाम ले तो आपका ध्यान सहज ही उसकी ओर आकृष्ट होता है, इसी प्रकार हम भगवान्‌का नाम लें तो उनका ध्यान हमारी ओर आकृष्ट होगा और वे हमपर सहज ही दृष्टिपात करेंगे। उनके इस दृष्टिदानसे हमारा मन निर्मल होता जायगा। जैसे चिरकालसे बंद पड़े अँधेरे कमरेमें सूर्यकी किरण प्रविष्ट हो जाय तो कमरा आलोकित हो जाता है वैसे ही भगवान्‌की दृष्टि पड़नेसे हमारा मन-मन्दिर उज्ज्वल हो उठेगा, हमें ऐसा मनोबल प्राप्त होगा कि हम कठिन-से-कठिन कष्टों और क्लेशोंका सामना कर पायेंगे। नाम-जपका अभ्यास व्यक्तिको घरमें, यात्रामें एवं बाहर कहीं भी सुरक्षा प्रदान करता है।

यदि जप करते समय मन कहीं भागा फिरे तो भी जप करते रहना उपादेय है। कार्यालयमें निरत कर्मचारीका मन वहाँ लगे या न लगे, उपस्थिति होनेपर वेतन तो मिलेगा ही फिर भगवान् तो हमारे सदय स्वामी हैं, मन न लगनेपर भी नाम लेनेवालेको यह पारितोषिक प्रदान करते हैं कि उसका मन नामोच्चारणमें सुख पाने लगता है। बस, नाम-जपका अथक अभ्यास करते जाओ, प्रभुजीकी कृपाकी प्रतीक्षा करते रहो, एक-न-एक दिन वे अलौकिक आह्लाद प्रदान कर देंगे। नाम-जपको अपनी दिनचर्याका नियमित अङ्ग बना लेना चाहिये।

(२) रूपका ध्यान—आपने भगवान्‌के अनेक चित्र देखे हैं, अनेकों श्रीमूर्तियाँ देखी हैं—आँखें मीचकर या खुली आँखोंसे। भगवान्‌का जो रूप सुन्दर लगा हो उसका ध्यान करें, ध्यानमें देखें कि प्रकाशका एक गोलाकार मण्डल है, मध्यमें श्रीभगवान् खड़े मुसकरा रहे हैं, आपने अपना माथा उनके चरणोंमें टिका दिया, उन्होंने अपने करकमलोंसे आपको उठाया और अपना वरद-हस्त आपके सिर या कन्धेपर रख दिया। ध्यानमें प्राप्त इस दर्शनसे आपको चैन तो क्या, शब्दातीत सुख मिलेगा, स्वयं करके देखें और पायें, वञ्चित न रहें मेरे बन्धु!

भगवान्‌को निराकार मानें तो उनकी ज्योतिका ध्यान करें।

यह भी न सोचें कि यह ध्यान मेरी कल्पनामात्र है; कारण, भगवान् कल्पनामें भी सत्य हैं। दूसरी बात, उनकी इच्छाके बिना उनके रूपकी कल्पना भी अपनी शक्तिसे कोई नहीं कर सकता।

(३) प्रार्थना—दुःख-निवारण या सुख-प्राप्तिके लिये भी प्रार्थना करना उपादेय है, पर 'यदि मेरी कामना पूरी हो गयी तो मैं भोग लगाऊँगा'—यह स्थिति बहुत शोभनीय नहीं है, शोभनीय स्थिति तो भगवान्‌को ममतामयी माँ माननेमें है। यदि कामना-पूर्ति हमारे हितमें है तो वे इसे पूर्ण करेंगे ही, बादमें उल्लासके रूपमें भोग लगाना अच्छा है।

एक गृहस्थ भक्त थे, बालकके अनुत्तीर्ण हो जानेपर भी भोग लगाते थे, कहते थे कि भगवान्‌का प्रत्येक विधान हमारे कल्याणके लिये ही होता है। भला, ऐसे भक्तोंकी रक्षा भगवान् स्वयं क्यों न करेंगे? उनका अनुगत वह बालक जीवनमें बड़ा सफल रहा।

अपने सृजनकर्ता स्वामीकी शरण ग्रहण करना कष्ट-क्लेशोंके शमनका और मानसिक सुख-शान्ति प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है—

'सब रोगोंकी औषध नाम।'

आपके प्रिय बच्चे और आप—खान-पानमें कितने सावधान?

(प्रो० डॉ० के० जे० अजाबिया)

[मुम्बईकी एक सेवाभावी संस्था विनियोग-परिवारकी ओरसे 'आइसक्रीम-रोटी-ब्रेड-जिनेटिकके बारेमें सच्ची जानकारी' नामक पुस्तिकामें भिन्न-भिन्न प्रामाणिक लेखोंका संकलन किया गया है। उस संकलनके कुछ उपयोगी अंशोंका पुनः संकलन संक्षेपमें इस लेखमें किया गया है, इससे आप अनजानेमें ही हो जानेवाले मांसाहार और हिंसाके पापसे बच जायँगे।]

आइसक्रीम और उसके पदार्थ

आइसक्रीम जिस तरह बनता है वह प्रक्रिया यदि समझी जाय तो जीवनमें कभी उसे खानेकी इच्छा ही न होगी। एक आर्टिकलमें बताया गया है कि कितने ही आइसक्रीमोंमें हम ५५ प्रतिशत तो हवाके ही पैसे देते हैं तथा ३५ प्रतिशत गंदे और अपेय पानीके पैसे देते हैं। तात्पर्य यह है कि आइसक्रीममें ९० प्रतिशत तो प्रदूषित हवा एवं पानी ही होता है और शेष मांसाहारियोंके लिये भी अखाद्य अर्थात् जिसे मांसाहारी भी नहीं खाते, ऐसे पशुओंके नाक, कान और गुदाके भाग—जो कत्लखानोंकी फर्शपर दुर्गन्धयुक्त हालतमें पड़े हुए होते हैं उनसे आइसक्रीमका ऊपरी स्तर बनाया जाता है, जो मुँहमें डालनेके साथ ही आसानीसे गलेमें उतर जाता है।

आइसक्रीम—शाकाहारी खाद्य नहीं—उसी आर्टिकलमें इस प्रकार बताया गया है—

प्रथम बात तो यह है कि आइसक्रीम शाकाहारी खाद्य पदार्थ नहीं है।

यदि उसके ऊपर 'इसमें आमिष नहीं है'—ऐसा स्पष्टतः लिखा न हो तो आइसक्रीम बनानेकी शुरुआत चरबीके एक स्तरसे होती है। चरबीके स्तरको कड़क और रबर-जैसा छिद्रवाला बनाया जाता है ताकि उसके छिद्रोंमें ज्यादे हवाका समावेश हो सके। यह प्रक्रिया अतिशय

शीतल कमरेमें की जाती है। चरबीके ढेर (स्तर)-को काटते समय जो छोटे-छोटे टुकड़े जमीनपर गिर जाते हैं, उन्हें एकत्रित करके सुगन्धयुक्त बनाकर चॉकलेटके रूपमें बेचा जाता है ताकि जमीनपर गिरे हुए और मजदूरोंके पैरोंसे कुचले इन चरबीके टुकड़ोंमें जो स्वादविकृति आ जाती है वह दब जाय।

हवा और चरबीका यह मिश्रण नरम बने और चम्मचपर चिपक सके, इसलिये प्राणियोंके स्तन (Udder), नाक, पुच्छ और गुदाकी चमड़ी-जैसे अखाद्य अङ्गोंको उबालकर प्राप्त किया हुआ एक चिकना (Sticky; Greasy) पदार्थ उसमें मिला दिया जाता है। यह चिकना पदार्थ चरबीके प्रत्येक छिद्रमें फैल जाता है। उसी वजहसे आइसक्रीम जीभ और तालुके बीच दबाये जानेपर सरलतासे पिघल जाती है। यह जाननेपर भी क्या आपको आइसक्रीम खाना है? फलोंका रस तो अब पुराना माना जाने लगा है, किंतु जो आइसक्रीम शक्कर, अण्डे, चरबी, दूध और एसेंस--इन सबका अति जुगुप्साजनक मिश्रण है, उसे बड़े चावसे खाया जाता है।

आइसक्रीममें हानिकारक रसायनोंका मिश्रण—श्रीमती मेनका गाँधी आइसक्रीममें फ्लेवर (विशिष्ट प्रकारकी सुवास और विशिष्ट प्रकारके स्वाद)-के लिये विभिन्न प्रकारके हानिकारक रसायनोंके मिश्रणको स्पष्ट करती हुई बताती हैं—

यह मांसाहारी मिश्रण अनेक प्रकारके विषोंसे भरा हुआ है—

(१) डाई-एथिल ग्लुकोज—अण्डोंके स्थानपर उपयोगमें लिया जानेवाला यह सस्ता रसायन एण्टीफ्रीज दर्दनिवारक औषधियोंमें होता है।

(२) पेपरानोल—वेनिलाके स्थानपर आइसक्रीममें पेपरानोल प्रयुक्त किया जाता है, जिसका उपयोग जूँ अथवा लीखोंको मारनेके लिये भी किया जाता है।

(३) एल्डिहाईड—आइसक्रीममें विशिष्ट प्रकारका स्वाद और सुगन्ध लानेके लिये एल्डिहाईड सी-१७ नामका पदार्थ मिलाया जाता है, जिसका प्लास्टिक और रबरमें भी उपयोग किया जाता है।

(४) एथिल एसिटेट—आइसक्रीममें अनानासका स्वाद और उसकी सुगन्ध लानेके लिये एथिल एसिटेट मिलाया जाता है। वास्तवमें यह रसायन चमड़ों और कपड़ोंको साफ करनेके लिये उपयोगमें लाया जाता है। इसके धुएँसे फेफड़ों, लीवर और हृदयको सदाके लिये हानि पहुँचती है।

(५) ब्युटेल्डिहाईड—आइसक्रीममें मिलाया जानेवाला यह रसायन रबर और सीमेण्टमें प्रयुक्त होता है।

(६) एमिल एसिटेट—आइसक्रीममें केलेका स्वाद लानेके लिये एमिल एसिटेट मिलाया जाता है जो ऑयल पेन्टका द्रावक पदार्थ (Solvent) है।

(७) बेन्झिल एसिटेट—स्ट्रॉबेरीका स्वाद लानेके लिये यह मिलाया जाता है, जो एक प्रकारका नाइट्रेट सॉल्वेन्ट (द्रावक पदार्थ) है।

इस प्रकार अपने प्यारे लाड़लोंको आप अत्यन्त प्रेमसे आइसक्रीम नामक जो वस्तु खिलाते हैं, वह वास्तवमें प्राणियोंके अवयवोंसे उत्पन्न किया हुआ चिपचिपा, दुर्गन्धयुक्त जल, एन्टीफ्रीज, ऑयल पेन्ट, नाइट्रेट सॉल्वेन्ट, केशकीटोंको मारनेका रसायन और हवाका मिश्रण ही है।

अस्तु, घरपर पुरानी पद्धतिसे शरबत बनाओ और आइसक्रीम खाना हमेशाके लिये छोड़ दो।

कुछ आइसक्रीमोंमें अण्डोंका रस और जिलेटिन

आइसक्रीमोंमें अण्डे मिश्रित करनेकी कानूनने मंजूरी दे दी है, किंतु अण्डोंका रस यदि मिश्रित किया गया हो तो उसका विज्ञापन (Declaration) करनेका कोई नियम नहीं है। किसी भी शाकाहारीके लिये मांस जितना वर्ज्य है उतने ही अण्डे भी वर्ज्य हैं। यदि अण्डोंके मिश्रणका विज्ञापन अनिवार्य बनाया जाय तो भी कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि ऐसा विज्ञापन कौन पढ़ेगा? (छोटे अक्षरोंमें दिये गये) इस निवेदन या सूचनाके प्रति किसका ध्यान जायगा? जिलेटिन भी बेशक मांसाहारी पदार्थ है, जो प्राणियोंकी हड्डियों और टिस्सुओंसे बनाया जाता है। कई उत्पादक आइसक्रीममें जिलेटिन भी मिश्रित करते हैं।

आइसक्रीमके बारेमें इस जानकारीके बाद निष्कर्ष यह है कि—

(१) कुछ आइसक्रीम अण्डोंके रस, चरबी और

जिलेटिनसे युक्त होनेके कारण शाकाहारियोंके लिये त्याज्य हैं।

(२) अण्डे इत्यादिसे रहित और सिर्फ दूधसे ही बनायी गयी आइसक्रीममें भी यदि उत्पादकने प्राणिजन्य चिकने पदार्थोंका मिश्रण ज्ञात-अज्ञात रीतिसे, आइसक्रीम चम्मचपर चिपकी रहे इसलिये किया हो तो भी त्याज्य ही है।

(३) अण्डोंका उपयोग जिसमें नहीं किया गया हो, ऐसी आइसक्रीम भी त्याज्य है; क्योंकि अति उष्ण और अति शीत पदार्थोंका भोजन रोगकारक माना गया है। आइसक्रीम, बर्फ, फ्रिजमें रखे हुए शीतयुक्त पदार्थ—ये सब प्रदीप्त जठराग्निको नष्ट कर देते हैं।

तात्पर्य यह है कि शाकाहारियोंके आरोग्यके लिये हानिकारक तथा शंकास्पद इस आइसक्रीम नामके पदार्थसे दूर रहना ही हितकारी है।

चॉकलेट और बछड़ोंका मांस

'नेस्ले लिमिटेड'की किटकैट नामकी चॉकलेट आज बच्चोंमें बहुत प्रिय है और प्रायः शाकाहारियोंके घरोंमें भी बड़े पैमानेपर खायी जाती है। किटकैट छोटे-छोटे बछड़ोंको मारकर उनके शरीरमेंसे प्राप्त किये हुए रेनेटसे बनायी जाती है। 'नेस्ले यु०के० लिमिटेड'की न्यूट्रीशन ऑफिसर श्रीमती वाल एन्डरसनने एक पत्रके जवाबमें लिखा था कि 'किटकैटमें कोमल बछड़ोंका रेनेट (मांस) होनेसे शाकाहारियोंके लिये किटकैट अखाद्य पदार्थ है।' यह पत्र 'यंग जैन्स' नामके अन्ताराष्ट्रिय मैगजीनमें प्रकाशित हुआ है।

चॉकलेट, लॉलीपॉप, टॉफी और च्युईंगम

यदि आपको अपने बच्चे प्यारे हैं तो उन्हें कभी चॉकलेट, टॉफी आदि खानेके लिये मत देना। बालकोंको चॉकलेट, लॉलीपॉप, टॉफी और च्युईंगमकी भारी चाह होती ही है। किंतु इससे निम्नलिखित हानियाँ होती हैं—

(१) आहार कम हो जाता है—बालकोंके विकासके लिये पौष्टिक आहारकी आवश्यकता होती है, किंतु चॉकलेटमें सिर्फ केलरी ही होती है। चॉकलेट और टॉफीमें पूर्णतः शक्कर होती है। अतः स्वादके लिये सदा अधिक मात्रामें खानेसे बच्चोंका आहार कम हो जाता है, जिससे बच्चे विटामिन और प्रोटीनसे वञ्चित रह जाते हैं।

(२) दाँतोंको हानि—अधिक मात्रामें चॉकलेट खानेसे बच्चोंको दाँतकी तकलीफ भी होती है। दन्त-चिकित्सकोंके मतानुसार भोजनमें शक्करवाले पदार्थ खानेसे दाँतमें केविटी (छिद्र) हो जाती है। इस खोल (Cavity)-में मीठे पदार्थोंके सेवनसे सूक्ष्म जीवाणु बढ़ जाते हैं और जीवाणुओंके साथ शक्कर मिलनेसे एसिड बन जाता है जो दाँतोंके लिये अत्यधिक हानिकारक है।

(३) पाचनतन्त्रमें तकलीफ और स्वभावमें चिड़चिड़ाहट—चॉकलेट आदि खानेसे बच्चोंका पेट साफ नहीं रहता। वे सुस्त रहते हैं और चिड़चिड़े स्वभाववाले बन जाते हैं। इन सबका मूल कारण चॉकलेट ही है। बाजारमें बिकनेवाला हर माल अच्छा ही होता है, ऐसा माननेकी भूल कभी नहीं करनी चाहिये।

(४) हिंसा और समाजविरोधी व्यवहारोंमें वृद्धि—केलिफोर्नियामें ८०० प्रयोगोंके बाद सिद्ध हुआ है कि बाल अपराधियों और किशोर वयके अपराधियोंकी एक संस्थामें मिष्ट भोजन कम और चॉकलेट बिलकुल बंद कर देनेसे अपराधी बालकोंमें हिंसा और समाजविरोधी प्रवृत्तियाँ आधी हो गयीं।

चॉकलेटमें निकल (Nickel)—लखनऊकी पर्यावरण-प्रयोगशालामें वैज्ञानिक श्री०एस०सी० सक्सेनाद्वारा किये गये शोधसे ज्ञात हुआ है कि चॉकलेटमें ज्यादा निकल होनेसे बच्चोंको कैंसर भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त यकृत (Liver), पित्ताशयपर भी बहुत खराब असर होता है, चर्मरोग भी हो सकते हैं और बाल भी अकाल ही श्वेत हो जाते हैं। श्रीसक्सेना दावेके साथ कहते हैं कि भारतकी चॉकलेटोंमें अमेरिकी चॉकलेटोंकी अपेक्षा निकलकी मात्रा अधिक होती है। सामान्यतः ४० ग्रामकी चॉकलेटमें १६० माइक्रोग्राम निकल होना चाहिये, किंतु यहाँ तो ६०० से १३४० माइक्रोग्राम निकल देखनेमें आता है। संक्षेपमें कहा जाय तो चारसे दस गुना अधिक निकल होता है।

चॉकलेटमें ११ रंग और रसायन

टॉफियोंमें कृत्रिम रंगोंके रूपमें १-पोन सो, २-कार्मोसिन, ३-फ्रास्ट रेड ई, ४-अमारंध, ५-एरी प्रीसीन,

६-टाइड्राजीन, ७-सनसेट येलो, ८-ईंडिगो कारमीन, ९-लिंट ब्लू, १०-ग्रीन रस और ११-फास्ट ग्रीन मिलाये जाते हैं। इन ११ रंगोंके अतिरिक्त रंगोंका उपयोग गैरकानूनी माना जाता है। इन नियत किये गये रंगोंकी मात्रा भी एक किलोग्राम पदार्थमें ०.२ ग्रामसे अधिक नहीं होनी चाहिये। यद्यपि 'विश्व-स्वास्थ्य-संगठन' (डब्ल्यू०एच०ओ०)-ने अमारंध रंगको मान्य नहीं किया है तथापि आज इसका उपयोग ज्यादा हो रहा है। कनाडा, रूस और अमेरिकामें किये गये विश्लेषणसे ज्ञात हुआ है कि अमारंध रंग सिर्फ कैंसरकी उत्पत्ति ही नहीं, अपितु गर्भस्थ शिशुओंमें भी जन्मजात विकृति और न्यूनता उत्पन्न कर सकता है। इसी तरह जर्मनीमें वैज्ञानिक पद्धतिसे किये गये परीक्षणके अनुसार सनसेट येलोका अधिक सेवन अन्धत्व (Blindness) ला सकता है। ये रसायन बच्चोंके विकासमें बाधक बनते हैं। पाचनशक्ति भी मंद हो जाती है। फिर ऐसी हानिकारक रंग-बिरंगी टॉफियों और चॉकलेटोंका लुभावना विज्ञापन देकर बच्चोंको क्यों धोखेमें डाला जाता है? करीब ४० प्रतिशत बच्चे तो विज्ञापनोंसे आकृष्ट होकर ही इन्हें खरीदते हैं।

चरबीसे बनायी गयी कुछ चॉकलेटें

कुछ चॉकलेटें चरबीके गिरे हुए टुकड़ोंसे कैसे बनायी जाती हैं उसे श्रीमती मेनका गाँधीने भी स्पष्ट किया है (देखिये उनके लेखका प्रथम भाग)—

उपर्युक्त हकीकतोंसे स्पष्ट हो जाता है कि—

(१) कुछ चॉकलेटें चरबीजन्य होनेसे शाकाहारियोंको स्वयं तथा अपने बच्चोंको लेकर सावधान रहना चाहिये ताकि अनजानमें होनेवाले मांसाहारसे बचा जा सके।

(२) चॉकलेटोंमें उपयोगमें लाये जानेवाले निकल एवं रसायन वैज्ञानिक शोधोंके अनुसार हानिकारक हैं और कुछ खतरनाक तथा असाध्य रोग भी उत्पन्न कर सकते हैं।

(३) चॉकलेट आदि खानेवालोंके दाँत, पाचन, स्वास्थ्य और स्वभाव भी बिगड़ जाते हैं।

तो क्या आप मीठी चॉकलेटोंके कटु और हानिकारक परिणाम जाननेपर भी अपने बच्चोंको ये देंगे?

ब्रेड, बिस्किट और बच्चे

आप और आपके बच्चे बड़े चावसे स्वादिष्ट ब्रेड और बिस्किट खाते हैं। किंतु 'INTELLIGENT INVENTOR' में दिनाङ्क ९-८-२००० के अङ्कमें छपे हुए एक लेखमें निवेदिता मुकर्जी क्या कहती हैं, इसपर एक दृष्टिपात कीजिये—

आप अपने परिवारको गेहूँका जो तैयार आटा खिलाते हैं वह विषयुक्त होता है। 'THE CONSUMER EDUCATION AND RESEARCH' ने अभी समग्र देशमेंसे खरीदे हुए १३ प्रकारके आटोंके सेम्पलोंकी परीक्षा की थी और देखनेमें आया कि इन सभीमें डी०डी०टी० सहित लींडेन, एल्ड्रीन और इथोन-जैसे जन्तुनाशक रसायनोंके अंश मिले हुए थे।

ब्रेडके आटेमें डी०डी०टी० और लींडेन-जैसे जन्तुनाशक रसायन किस तरह आ गये, इसके बारेमें कौन नहीं जानता? क्योंकि फसल उगानेके समय इन द्रव्योंके उपयोगपर पाबंदी होनेपर भी इनका उपयोग किया जाता है।

ध्यान दीजिये कि—

(१) डी०डी०टी० मस्तिष्क और ज्ञानतन्त्रको हानि पहुँचाता है।

(२) एल्ड्रीनसे कैंसर होनेका भय होता है।

(३) इथोन-जैसे ऑर्गेनो फॉस्फेट्ससे श्वसन-तन्त्रके ऊपरवाले भागमें मवाद (Pus) हो जाता है, पेटमें पीड़ा उत्पन्न होती है, चक्कर आते हैं, वमन भी होता है, सिरमें झटके लगते हैं, अँधेरा-सा प्रतीत होता है और मनमें कमजोरी महसूस होती है।

ब्रेड किसके लिये भयावह है?

सी०ई०आर०सी०-की पत्रिका 'इनसाइट'की सम्पादिका प्रीति शाहने लिखा है—'एक प्रकारसे विचार करनेपर मालूम होता है कि विषयुक्त रसायनोंकी मिलावटसे अधिक भय तो छोटे बच्चोंको, गर्भवती स्त्रियोंको, वृद्ध व्यक्तियोंको और कम प्रतिकारक शक्तिवाले रोगियोंको बना रहता है।'

सी०ई०आर०सी-ने ब्रेडकी १३ ब्राण्डोंका नामोल्लेख भी किया है, जिनका परीक्षण किया गया था। यदि ऐसी प्रख्यात ब्राण्डोंमें भी ऐसे जहरीले रसायन हों तो यत्र-तत्र तैयार की जाती, सुन्दर और मनोहर पैकिंगवाली तथा आकर्षक विज्ञापनोंवाली दूसरी ब्रेडोंकी तो बात ही क्या करना? आप और आपके बच्चे पाव, ब्रेड और बिस्किट

खानेके पहले वे जिन चीजोंसे बनाये जाते हैं इसका विचार करें तो इनसे बच जायँगे।

बिस्किटके बारेमें यह भी विचारिये

खाद्य पदार्थ-मिलावट-प्रतिबन्धक नियम अ-१८। ०७ के अनुसार आइसक्रीमकी तरह बिस्किटमें भी अण्डोंका उपयोग करनेकी अनुमति दी गयी है, किंतु बिस्किटमें अण्डोंका मिश्रण करनेपर उसकी सूचना अथवा विज्ञापन भी जारी करना अनिवार्य नहीं है। अतः शाकाहारी लोग अपने बच्चोंको बड़े चावसे यदि बिस्किट खिलायें तो धोखेमें ही रहेंगे। बेबी फूड्सके बारेमें क्लोड अल्वारीस लिखते हैं कि 'बच्चोंको मार डालनेके लिये अनेक मार्ग हैं, बेबी फूड्स इनमेंसे एक है।' जो बात बेबी फूड्सके लिये सच है वही बात बिस्किट और आइसक्रीमके बारेमें भी उतनी ही सच है। आटा पचानेके लिये भी क्षमता नहीं रखनेवाले बच्चोंके पाचन-तन्त्रपर जब मैदेसे बनाये हुए बिस्किटोंका आक्रमण होता है, तब वे मर न जायँ तो भी बीमार तो हो ही जायँगे। वेजीटेबल घी और मैदेसे बनाये गये बिस्किटोंकी अपेक्षा शुद्ध देशी घी, गुड़ और गेहूँके आटेसे बनायी जानेवाली सुखड़ी कहीं सस्ती और अच्छी है।

बिस्किट और ब्रेडकी बलासे बचिये

'मुम्बई समाचार'के दिनाङ्क १६ जनवरी २००० के अङ्कमें डॉ० केतन झवेरी 'स्वस्थ जीवनशैली' में लिखते हैं कि 'यदि आप अपनी तन्दुरुस्ती बनाये रखना चाहते हैं तो बेकरीके उत्पादोंको दूरसे ही सलाम कर दें। मैदे और वनस्पति घीसे बनती प्रायः सभी खाद्य चीजों (ब्रेड, पाव, केक, बटरके स्तरवाली नानखटाई, टोस्ट, डोगी बिस्किट इत्यादि)-से दूर रहनेमें ही सलामती है।'

बेकरीके उत्पादोंमें हानिकारक पदार्थ

बेकरीके अधिकतम उत्पादोंमें मुख्यतया दो हानिकारक खाद्य पदार्थ होते हैं—(१) वनस्पति घी और (२) मैदा।

ये दोनों पदार्थ आपके स्वास्थ्यको हानि पहुँचाते हैं। बेकरीसे मिलती स्तरवाली बटर बिस्किटमें करीब आधा तो वनस्पति घी होता है। नान खटाईमें भी लगभग ३५ से ४० प्रतिशत वनस्पति घी, २० प्रतिशत शक्कर और शेष मैदा होता है। अधिकतर बेकरियोंमें तैयार किये जाते टोस्ट और कम घीवाले कहलाते डोगी बिस्किटमें भी प्रायः २० से २५ ग्राम वनस्पति घी डाला जाता है। 'इण्डियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च'के कुछ प्रयोगोंके अनुसार एक स्वस्थ भारतीय व्यक्तिको आहारमें प्रतिदिन घी, तेल इत्यादिके रूपमें २० से २५ ग्राम ही चरबी (चिकनाई) मिलनी चाहिये। इससे अधिक लेनेसे यह शरीरको हानि पहुँचाती है और हाई ब्लडप्रेशर, डायबिटीज, स्थूलता एवं हृदयरोग इत्यादिको आमन्त्रित करती है। अब यदि ५० ग्राम वजनके स्तरवाले बटर-बिस्किट या नानखटाई खानेसे ही आवश्यक चरबी शरीरमें पहुँच जाती है तो ऐसी स्थितिमें नित्य-प्रति रसोईमें उपयोगमें लिये जानेवाले घी और तेल इत्यादि आवश्यकतासे ज्यादा ही हो जाते हैं। ये मेदवृद्धिसे प्रारम्भ करके धमनियोंको कठिन और संकुचित बना देते और एथेरोस्क्लेरोसीसतककी अनेक तकलीफें शुरू कर देते हैं।

वनस्पति घीकी चरबी

वनस्पति घीमें कठिन की हुई चरबी होती है जो 'ट्रॉन्सफेटी एसिड'के नामसे विख्यात है। वनस्पति घीमें प्रायः ३० से ५० प्रतिशत ट्रॉन्सफेटी एसिड होता है। यह शरीरमें बहुत ही हानि पहुँचाता है। 'न्यू इंग्लैण्ड जर्नल ऑफ मेडिसिन'में प्रसिद्ध हुए एक प्रयोगके अनुसार आहारमें ट्रॉन्सफेटी एसिड लेनेसे रक्तमें हानिकारक (एल०डी०एल०) कोलेस्ट्रॉलकी मात्रा बहुत ही बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त यह हृदयरोगके लिये कारणभूत माने जानेवाले एल०बी० लाइपोप्रोटीनकी मात्राको भी बढ़ा देता है और शरीरके लिये लाभदायी एच०डी०एल० कोलेस्ट्रॉलकी मात्रा कम हो जाती है। इस तरह वनस्पति घीमें रहे हुए ट्रॉन्सफेटी एसिडसे तीन प्रकारका नुकसान होता है।

मैदेकी मर्मभेदकता

चरबीके अतिरिक्त बेकरीके उत्पादोंमें दूसरा हानिकारक पदार्थ है मैदा। मैदा गेहूँके आटेको रिफाइंड करनेसे अर्थात् गेहूँके तुष-भागको निकालकर बनाया जाता है। मैदा बनानेकी प्रक्रियामें गेहूँमें रहे हुए रेशे प्रायः निकाल दिये जाते हैं। रेशे मनुष्यको मलावरोधसे बचाते हैं। आँतोंके

सामान्य कार्यके लिये आहारमें रेशोंका होना अत्यन्त जरूरी है, जो आँतोंकी गति और मलके स्वरूपको भी अच्छी तरहसे निभाते हैं। रक्तके ग्लूकोज और कोलेस्ट्रॉलको नियन्त्रणमें रखनेके लिये भी रेशे आवश्यक हैं।

डायबिटीज और हृदयरोगके रोगियोंकी बीमारी ज्यादा कोलेस्ट्रॉलयुक्त मैदे-जैसे रेशाहीन आहारसे बहुत बढ़ जाती है। इसी तरह कब्जके मरीजोंके लिये भी मैदा बहुत हानि करता है और मलावरोधको बढ़ा देता है।

मेरे एक मित्रने मुझे लिखा था कि 'मैदा और काँच दोनों पाचनके लिये समान हैं।'

तात्पर्य यह है कि जैसे काँच खानेसे पेटमें भारी हानि होती है वैसी ही हानि मैदेकी चीजें खानेसे भी होती है।

स्वास्थ्यके लिये खतरनाक ये दो पदार्थ—वनस्पति और मैदा—जब एकत्रित हो जाते हैं तब स्वस्थ मनुष्यको भी रोगी बनानेका सामर्थ्य पा लेते हैं। नित्य सिर्फ ५० ग्राम बटरयुक्त बिस्किट खानेवाले मनुष्यके लिये हृदयरोग होनेका भय उसको नहीं खानेवाले (तथा अन्य किसी स्वरूपमें वनस्पति घी नहीं खानेवाले) आदमीकी अपेक्षा चौगुना अधिक रहता है।

मटनटेलो और फरसान!

आज बड़े चावसे और जान-अनजानमें भी घर-घर मांसभक्षण हो रहा है। कुछ समय पहले एक अँग्रेजी अखबारमें आये एक समाचारके अनुसार—वसईके नजदीक एक फैक्ट्रीमें मुम्बईके मरे हुए प्राणियोंका शव इकट्ठा करके उनकी चरबीको प्रोसेस करके उसमेंसे मटनटेलो बनाया जाता है। यह मटनटेलो १७ से २२ रुपयोंमें १ किलोग्राम बिकता है जो तेल और घीमें आसानीसे मिश्रित हो सकता है। एक किलो तेलका मूल्य ४० से ५० रुपये है। नित्य-प्रति वहाँ हजारों किलोग्राम मटनटेलोकी पहलेसे बुकिंग होती है। विनियोग-परिवारके अग्रणी कार्यकर्ताओंने जब उस फैक्ट्रीके मैनेजरसे पूछा कि आपकी फैक्ट्रीसे यह सब और इतना ज्यादा माल नित्य कौन ले जाता है। तब उन्होंने सच्चे भावसे निर्दोष उत्तर दिया था कि 'हमारे पाससे सब मटनटेलो मुम्बईके फरसानवाले और होटलवाले ले जाते हैं।'

बड़े शहरोंमें वेफर, फराली चिवड़ा, हलवे, सोनपपड़ी, गाँठिये, भजिये इत्यादि चीजोंका उपयोग करनेमें सावधान रहनेकी आवश्यकता है जिनमें तेल, वनस्पति घी आदिका उपयोग होता है।

उपसंहार

(१) आइसक्रीमके बारेमें उपर्युक्त प्रमाणभूत विचार और निरीक्षणको देखते हुए आप और आपके प्रिय बच्चे इससे दूर रहें, यही हितकारी है।

(२) आइसक्रीम पाचनतन्त्रको बिगाड़ देता है। फिर भी यदि लेना ही है तो आप फ्रिजमें दूध, मलाई, चीनी, बादाम, पिश्ता, केसर आदि मिलाकर रख दें। बाजारसे आइसक्रीम बनानेका जिलेटिनयुक्त पाउडर इत्यादि कुछ भी न डालें। जब तैयार हो जाय तब मर्यादित मात्रामें ही लें।

(३) डेरियोंमें अथवा अन्यत्र जहाँ आइसक्रीम बनाया जाता है और बेचा जाता है उसके बनानेवालोंको भी शायद मालूम न होगा कि वे कौन-सी चीज मिश्रित करते हैं। अतः उन्हें भी सावधान रहना चाहिये कि आइसक्रीम बनानेमें वे जो तैयार पाउडर अथवा अन्य कुछ बाजारसे लेकर मिश्रित करते हैं; उन चीजोंमें कोई चरबीजन्य पदार्थ अथवा ऐसा ही कोई प्रोसेस करके तैयार किया हुआ पदार्थ, रूपान्तरित जिलेटिन अथवा अण्डोंके रससे बनाये गये अन्य स्वरूपमें मिलते हुए पदार्थ जान-अनजानसे भी उपयोगमें न लें। ऐसे किसी भी पदार्थका उपयोग न करनेवाले उत्पादक भी जनसुरक्षाको ध्यानमें रखकर उपर्युक्त संकलनमें निर्दिष्ट हानिकारक रसायनोंका उपयोग न करें, यह आवश्यक है।

(४) चॉकलेट, ब्रेड, बिस्किट आदि चीजोंसे अहिंसा और कल्याणकी दृष्टिसे भी दूर रहना हितकर है।

(५) बाजारमें मिलनेवाली तली हुई चीजों और फरसानकी फराली चीजोंको छोड़कर घरपर बनायी गयी शुद्ध चीजोंका ही उपयोग करें और सम्बन्धियों, मित्रों आदिसे भी करायें।

विदुरनीति

सातवाँ अध्याय

[गताङ्क पृ०-सं० ८२४ से आगे]

पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्धते।
यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते।
अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते॥ ३५॥

मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत्।
अर्थसंततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः॥ ३६॥

मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम्।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि॥ ३७॥

द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप।
त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति॥ ३८॥

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा।
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि॥ ३९॥

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति।
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम्॥ ४०॥

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्पाद्य चासकृत्।
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत्॥ ४१॥

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥ ४२॥

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया।
परीक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च॥ ४३॥

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते।
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः॥ ४४॥

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम्।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत्॥ ४५॥

दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लङ्घयेत्।
धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनशताद् वरः॥ ४६॥

जो विद्वान् पापरूप फल देनेवाले कर्मोंका आरम्भ नहीं करता, वह बढ़ता है; किंतु जो पूर्वमें किये हुए पापोंका विचार करके उन्हींका अनुसरण करता है, वह खोटी बुद्धिवाला मनुष्य अगाध कीचड़से भरे हुए बीहड़ नरकमें गिराया जाता है॥ ३५॥ बुद्धिमान् पुरुष मन्त्रभेदके इन छः द्वारोंको जाने और धनको रक्षित रखनेकी इच्छासे इन्हें सदा बंद रखे—नशेका सेवन, निद्रा, आवश्यक बातोंकी जानकारी न रखना, अपने नेत्र, मुख आदिका विकार, दुष्ट मन्त्रियोंमें विश्वास और मूर्ख दूतपर भी भरोसा रखना॥ ३६-३७॥ राजन्! जो इन द्वारोंको जानकर सदा बंद किये रहता है, वह अर्थ, धर्म और कामके सेवनमें लगा रहकर शत्रुओंको वशमें कर लेता है॥ ३८॥ बृहस्पतिके समान मनुष्य भी शास्त्रज्ञान अथवा वृद्धोंकी सेवा किये बिना धर्म और अर्थका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता॥ ३९॥ समुद्रमें गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है, जो सुनता नहीं उससे कही हुई बात नष्ट हो जाती है; अजितेन्द्रिय पुरुषका शास्त्रज्ञान और राखमें किया हुआ हवन भी नष्ट ही है॥ ४०॥ बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिसे जाँचकर अपने अनुभवसे बारम्बार उनकी योग्यताका निश्चय करे, फिर दूसरोंसे सुनकर और स्वयं देखकर भलीभाँति विचार करके विद्वानोंके साथ मित्रता करे॥ ४१॥ विनयभाव अपयशका नाश करता है, पराक्रम अनर्थको दूर करता है, क्षमा सदा ही क्रोधका नाश करती है और सदाचार कुलक्षणका अन्त करता है॥ ४२॥ राजन्! नाना प्रकारकी भोगसामग्री, माता, घर, स्वागत-सत्कारके ढंग और भोजन तथा वस्त्रके द्वारा कुलकी परीक्षा करे॥ ४३॥ देहाभिमानसे रहित पुरुषके पास भी यदि न्याययुक्त पदार्थ स्वतः उपस्थित हो तो वह उसका विरोध नहीं करता, फिर कामासक्त मनुष्यके लिये तो कहना ही क्या है?॥ ४४॥ जो विद्वानोंकी सेवामें रहनेवाला, वैद्य, धार्मिक, देखनेमें सुन्दर, मित्रोंसे युक्त तथा मधुरभाषी हो, ऐसे सुहृद्की सर्वथा रक्षा करनी चाहिये॥ ४५॥ अधम कुलमें उत्पन्न हुआ हो या उत्तम कुलमें—जो मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता, धर्मकी अपेक्षा रखता है, कोमल स्वभाववाला तथा सलज्ज है, वह सैकड़ों कुलीनोंसे बढ़कर है॥ ४६॥

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति॥ ४७॥

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव।
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति॥ ४८॥

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः॥ ४९॥

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते॥ ५०॥

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद् दैवतान्यपि॥ ५१॥

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना॥ ५२॥

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते।
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम्॥ ५३॥

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते॥ ५४॥

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत्॥ ५५॥

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम्॥ ५६॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते॥ ५७॥

नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत् पथ्यतमं मतम्।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा॥ ५८॥

जिन दो मनुष्योंका चित्तसे चित्त, गुप्त रहस्यसे गुप्त रहस्य और बुद्धिसे बुद्धि मिल जाती है, उनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती॥ ४७॥ मेधावी पुरुषको चाहिये कि दुर्बुद्धि एवं विचारशक्तिसे हीन पुरुषका तृणसे ढके हुए कुएँकी भाँति परित्याग कर दे, क्योंकि उसके साथ की हुई मित्रता नष्ट हो जाती है॥ ४८॥ विद्वान् पुरुषको उचित है कि अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसिक और धर्महीन पुरुषोंके साथ मित्रता न करे॥ ४९॥ मित्र तो ऐसा होना चाहिये, जो कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ़ अनुराग रखनेवाला, जितेन्द्रिय, मर्यादाके भीतर रहनेवाला और मैत्रीका त्याग न करनेवाला हो॥ ५०॥ इन्द्रियोंको सर्वथा रोक रखना तो मृत्युसे भी बढ़कर कठिन है और उन्हें बिलकुल खुली छोड़ देना देवताओंका भी नाश कर देता है॥ ५१॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका भाव, गुणोंमें दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रोंका अपमान न करना—ये सब गुण आयुको बढ़ानेवाले हैं—ऐसा विद्वान्‌लोग कहते हैं॥ ५२॥ जो अन्यायसे नष्ट हुए धनको स्थिर बुद्धिका आश्रय ले अच्छी नीतिसे पुनः लौटा लानेकी इच्छा करता है, वह वीर पुरुषोंका-सा आचरण करता है॥ ५३॥ जो आनेवाले दुःखको रोकनेका उपाय जानता है, वर्तमानकालिक कर्तव्यके पालनमें दृढ़ निश्चय रखनेवाला है और अतीतकालमें जो कर्तव्य शेष रह गया है, उसे भी जानता है, वह मनुष्य कभी अर्थसे हीन नहीं होता॥ ५४॥ मनुष्य मन, वाणी और कर्मसे जिसका निरन्तर सेवन करता है, वह कार्य उस पुरुषको अपनी ओर खींच लेता है। इसलिये सदा कल्याणकारी कार्योंको ही करे॥ ५५॥ माङ्गलिक पदार्थोंका स्पर्श, चित्तवृत्तियोंका निरोध, शास्त्रका अभ्यास, उद्योगशीलता, सरलता और सत्पुरुषोंका बारम्बार दर्शन—ये सब कल्याणकारी हैं॥ ५६॥ उद्योगमें लगे रहना—उससे विरक्त न होना धन, लाभ और कल्याणका मूल है। इसलिये उद्योग न छोड़नेवाला मनुष्य महान् हो जाता है और अनन्त सुखका उपभोग करता है॥ ५७॥ तात! समर्थ पुरुषके लिये सब जगह और सब समयमें क्षमाके समान हितकारक और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनानेवाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है॥ ५८॥ (क्रमशः)

श्राद्धकी आवश्यकता

[श्राद्ध-विधि-निरूपण]

श्राद्धसे जगत्‌की तृप्ति

आज श्राद्धकर्मपर श्रद्धा कम होती जा रही है। कारण यह है कि शास्त्रसे जनताका सम्पर्क कम होता जा रहा है। आज आस्तिक जनता भी प्रायः इतना ही समझ पाती है कि श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति अपने मृत माता-पिता आदि सम्बन्धियोंको अन्न-पानी देकर तृप्त कर रहा है। यह कम लोग जानते हैं कि वह व्यक्ति अकेले अपने सगे-सम्बन्धियोंको ही नहीं, अपितु ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सभी प्राणियोंको तृप्त कर रहा है। ब्रह्मपुराणमें कहा गया है—

एवं विधानतः श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम्।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः॥

(चतुर्वर्गचिन्तामणि परि० ख० अ० १)

अर्थात् जो व्यक्ति अपनी सम्पत्तिके अनुसार शास्त्रीय विधिसे श्राद्ध करता है, वह [केवल अपने सगे-सम्बन्धियोंको ही नहीं, अपितु] सम्पूर्ण संसारको संतृप्त कर देता है।

श्राद्धसे पूजा भी हो जाती है

तृप्ति ही नहीं, उस व्यक्तिके द्वारा किये गये इस श्राद्धसे जगत्‌के पूज्योंकी पूजा भी हो जाती है। तीनों अग्नि, तीनों लोक, तीनों देव, चारों वेद, चारों आश्रम, चारों वर्ण, चारों पुरुषार्थ, चारों दिशाएँ, चारों युग और वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्धरूप चतुर्व्यूह भी पूजित हो जाते हैं—

तेषां त्रयः पूजिताश्च भविष्यन्ति तथाग्नयः।
पूजिताश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
पूजिताश्च भविष्यन्ति चतुरात्मा तथाप्यहम्॥

(वराहपुराण)

सबसे बढ़कर श्रेयस्कर कर्म

इस तरह श्राद्धसे एक ओर सम्पूर्ण जगत्‌को तृप्ति मिल जाती है और दूसरी ओर सभी पूज्यवर्ग भी पूजित हो जाते हैं। श्राद्धकी यह महनीय महिमा आँककर ही शास्त्रने घोषणा कर दी है कि श्राद्धसे बढ़कर और कोई श्रेयस्कर कर्म नहीं है—

श्राद्धात् परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद् विचक्षणः॥

(सुमन्तु)

श्राद्धकर्ताको भी लाभ

जो श्राद्ध सम्पूर्ण संसारको तृप्त कर सकता है, वह अपने अनुष्ठाताकी उपेक्षा कैसे कर सकता है? वह अनुष्ठाताकी आयुको बढ़ा देता है, पुत्र प्रदानकर वंश-परम्पराको अक्षुण्ण रखता है, धन-धान्यका अम्बार लगा देता है, शरीरमें बल-पौरुषका संचार करता है, पुष्टि प्रदान करता है और यशका विस्तार करता है—

आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

(यम-स्मृति)

जो श्राद्ध करनेकी सलाह देता है और जो श्राद्धका अनुमोदन करता है—उन सभीको श्राद्धका फल मिल जाता है।

श्राद्ध न करनेसे हानि-ही-हानि

किसी अत्यन्त उपादेय वस्तुके न करनेसे होनेवाली हानियोंका आँकना कठिन नहीं होता, किंतु शास्त्रने श्राद्धके न करनेसे होनेवाली जो हानियाँ बतायी हैं, उन्हें जानकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अतः श्राद्धतत्त्वसे परिचित होना और इसके अनुष्ठानके लिये तत्पर रहना अत्यन्त आवश्यक है।

शास्त्रसे यह सामान्य बात ज्ञात होती है कि मृत व्यक्तिका अपने पुत्र आदि सगे-सम्बन्धियोंसे इतना गहरा लगाव होता है कि इनके दिये बिना उसे न तो अन्न मिल सकता है और न पानी। जब मृत व्यक्ति इस महायात्रामें अपना स्थूल शरीर भी नहीं ले जा सकता है, तब अन्न और पानी कैसे ले जा सकेगा? इस समय उसके सगे-सम्बन्धी जो कुछ देते हैं, वही उसे मिलता है। इसलिये शास्त्रने मरनेके बाद सबसे पहले उसे स्नान कराकर वस्त्र आदिसे भूषित करके टिकठी उठानेके पहलेसे ही पिण्ड-पानीके रूपमें खाने-पीनेकी व्यवस्था कर दी है। रोना-धोना इसलिये मना कर दिया है कि दाहकर्मके पहले जो कुछ उसके सगे-सम्बन्धी देते हैं, वही उसे खाना-पीना पड़ता है। पिण्ड-पानी न देकर यदि आँसू और कफ देंगे तो इन्हें ही बेचारेको खाने-पीनेके लिये विवश होना पड़ता है।

यह तो मृत व्यक्तिकी इस महायात्रामें रास्तेके भोजन-

पानीकी बात हुई। परलोक पहुँचनेपर भी उसके लिये वहाँ न अन्न होता है और न पानी। यदि सगे-सम्बन्धी न दें तो भूख-प्याससे उसे वहाँ बहुत ही दारुण दुःख होता है—

लोकान्तरेषु ते तोयं लभन्ते नान्नमेव च।
दत्तं न वंशजैर्येषां ते व्यथां यान्ति दारुणाम्॥

(सुमन्तु)

यह तो हुई श्राद्ध न करनेसे मृत प्राणीके कष्टोंकी कथा। श्राद्ध न करनेवालेको भी पग-पगपर कष्टका सामना करना पड़ता है।

श्राद्ध न करनेवालेको कष्ट

मृत प्राणी बाध्य होकर श्राद्ध न करनेवाले अपने सगे-सम्बन्धियोंका रक्त चूसने लगता है—

श्राद्धं न कुरुते मोहात् तस्य रक्तं पिबन्ति ते।

(ब्रह्मपुराण)

साथ-ही-साथ वे शाप भी देते हैं—

पितरस्तस्याऽतृप्ताश्च शापं दत्त्वा प्रयान्ति च।

(नागरखण्ड)

फिर इस अभिशप्त परिवारको जीवनभर कष्ट-ही-कष्ट झेलना पड़ता है। उस परिवारमें पुत्र नहीं उत्पन्न होता, कोई नीरोग नहीं रहता, लम्बी आयु नहीं होती, किसी तरह कल्याण नहीं प्राप्त होता और मरनेके बाद नरकमें जाना पड़ता है—

(क) न तत्र वीरा जायन्ते नारोगा न शतायुषः।
न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम्॥

(हारीतस्मृति)

(ख) श्राद्धमेनं न कुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते।

(विष्णुस्मृति)

श्राद्ध न करनेवालेकी अकर्मण्यतासे सारा-का-सारा संसार ही तृप्तिके सुखसे वञ्चित हो जाता है।

ब्राह्मणोंके भोजनसे पितरोंकी तृप्ति

वेदने बताया है कि ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे वह पितरोंको प्राप्त हो जाता है।

मनुजीने कहा है—

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः॥

(१।९५)

अर्थात् जिस ब्राह्मणके मुखसे देवता 'हव्य' को और पितर 'कव्य' को खाते हैं, उस ब्राह्मणसे बढ़कर कौन होगा?

पितरोंको श्राद्धान्न मिलता कैसे है?

यहाँ ऐसी जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि 'श्राद्धमें दिये गये पदार्थ पितरोंको मिलते कैसे हैं?' क्योंकि कर्म भिन्न-भिन्न होते हैं और तदनुसार मरनेके बाद गतियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। कोई देवता, कोई पितर, कोई प्रेत, कोई हाथी, कोई चींटी, कोई वृक्ष और कोई तृण बन जाता है। इस छोटेसे पिण्डद्वारा हाथीका पेट भर सकता है क्या? चींटीपर वह पिण्ड पड़े तो चींटी दम ही तोड़ देगी। तृण उसे कैसे खा सकेगा? देवता अमृतसे तृप्त होते हैं, पिण्डसे उन्हें कैसे तृप्ति मिलेगी? इन प्रश्नोंका शास्त्रने बड़ा सुलझा समाधान कर दिया है।

विश्वनियन्ताने ऐसी व्यवस्था कर रखी है, जिसके अनुसार श्राद्धकी सामग्री उनके अनुरूप होकर उनके पास पहुँच जाती है। इस व्यवस्थाके अधिपति हैं—पितरों आदिके अधिष्ठाता अग्निष्वात्त आदि—**'अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः।'**

गोत्र और नामके उच्चारणके साथ जो अन्न-जल आदि सामग्री पितरोंको दी जाती है, उसकी अनुरूप-समुचित व्यवस्था अग्निष्वात्त आदि आजानज पितर करते रहते हैं। यदि पिता देवता बन गये हैं तो श्राद्धका अन्न उन्हें 'अमृत' के रूपमें परिणत होकर मिलता है और यदि गन्धर्व बन गये हैं तो वह अन्न नाना भोगोंके रूपमें प्राप्त होता है। यदि पशु बन गये हैं तो तृणके रूपमें मिलेगा। इसी तरह नागयोनिमें वह अन्न वायुरूपमें, राक्षसयोनिमें आमिषरूपमें, दानवयोनिमें मांसरूपमें, प्रेतयोनिमें रुधिररूपमें और मनुष्य बन जानेपर विविध प्रकारके भोग्य रसके रूपमें परिणत होकर मिलता है—

देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः।
तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति॥
गान्धर्वे भोग्यरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्।
श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति॥
पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम्।
दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरोदकम्।
मनुष्यत्वेऽन्नपानादि नानाभोगरसो भवेत्॥

(देवल, चतुर्वर्गचिन्तामणिधृत)

वार्षिक श्राद्धविधि

सामान्यतः कम-से-कम वर्षमें दो बार श्राद्ध करना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त अमावास्या, व्यतीपात, संक्रान्ति आदि पर्वकी तिथियोंमें भी श्राद्ध कर सकते हैं।

(१) क्षयाह-तिथि— जिस दिन व्यक्तिकी मृत्यु होती है, उस तिथिपर वार्षिक श्राद्ध करना चाहिये। शास्त्रोंमें क्षयाह-तिथिपर एकोद्दिष्टश्राद्ध करनेका विधान है (कुछ प्रदेशोंमें पार्वणश्राद्ध भी करते हैं)। एकोद्दिष्टका तात्पर्य है कि केवल मृत व्यक्तिके निमित्त एक पिण्डका दान तथा कम-से-कम एक ब्राह्मणको भोजन कराया जाय और अधिक-से-अधिक तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाय।

(२) पितृपक्ष—पितृपक्षमें मृत व्यक्तिकी जो तिथि आये, उस तिथिपर मुख्यरूपसे पार्वणश्राद्ध करनेका विधान है। यथासम्भव पिताकी मृत्यु-तिथिपर अवश्य करना चाहिये। पार्वणश्राद्धमें पिता, पितामह, प्रपितामह, सपत्नीक (पिता, दादा, परदादा। सपत्नीकका अर्थ है माता, दादी और परदादी।) इस प्रकार तीन चटमें छः व्यक्तियोंका श्राद्ध होता है। इसके साथ ही मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमातामह सपत्नीक (नाना, परनाना एवं वृद्ध परनाना सपत्नीक)। यहाँ भी तीन चटमें छः लोगोंका श्राद्ध सम्पन्न होगा। इसके समान एक चट और लगाया जाता है, जिसपर अपने निकटतम सम्बन्धियोंके निमित्त पिण्डदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त दो विश्वेदेवके चट लगते हैं। इस तरह नौ चट लगाकर पार्वणश्राद्ध सम्पन्न होता है। पार्वणश्राद्धमें नौ ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। यदि कम कराना हो तो तीन ब्राह्मणोंको ही भोजन कराया जा सकता है। यदि अच्छे ब्राह्मण उपलब्ध न हों तो कम-से-कम एक सन्ध्या-वन्दन आदि करनेवाले सात्त्विक ब्राह्मणको भोजन अवश्य कराना चाहिये।

ब्राह्मण-भोजनसे श्राद्धकी सम्पन्नता—किसी कारणवश एकोद्दिष्ट तथा पार्वणश्राद्ध कोई न कर सके तो कम-से-कम संकल्प करके केवल ब्राह्मण-भोजन करा देनेसे भी श्राद्ध सम्पन्न हो जाता है। इसलिये कई जगह मृत व्यक्तियोंकी तिथियोंपर केवल ब्राह्मण-भोजन करानेकी परम्परा है। यहाँ ब्राह्मण-भोजनके निमित्त सांकल्पिक श्राद्धकी विधि संक्षेपमें दी जा रही है—

वार्षिक तिथिपर श्राद्धके निमित्त ब्राह्मण-भोजनका संकल्प

पिता, पितामह, प्रपितामह आदिकी वार्षिक तिथिपर समयाभाव अथवा किसी कारणवश वार्षिक एकोद्दिष्टश्राद्ध न हो सके तो पूर्वाभिमुख होकर निम्नलिखित संकल्प करे—

ॐ अद्य विक्रमसंवत्सरे (अमुक) संख्यके (अमुक) मासे (अमुक) पक्षे (अमुक) तिथौ (अमुक) वासरे (अमुक) गोत्रस्य अस्मत्पितुः[१] (अमुक) सांकल्पिकश्राद्धं तथा पञ्चबलिकर्म च करिष्ये।

(पञ्चबलि नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ०-सं० १५३ के अनुसार करे)

तत्पश्चात् दक्षिणाभिमुख हो अपसव्य होकर मोटक-तिल-जल लेकर निम्नलिखित संकल्प करे—

ॐ अद्य (अमुक) गोत्राय पित्रे (अमुक) शर्मणे (वर्मणे/ गुप्ताय) सांकल्पिकश्राद्धे इदमन्नं परिविष्टं परिवेष्यमाणं ब्राह्मणभोजनतृप्तिपर्यन्तं सोपस्करं ते स्वधा। सव्य तथा पूर्वाभिमुख होकर आशीर्वादके लिये निम्नलिखित प्रार्थना करे—

ॐ गोत्रं नो वर्धतां दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्। वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्तु। अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि। याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन। एताः सत्या आशिषः सन्तु॥ फिर दक्षिणाका संकल्प इस प्रकार करे—

कृतैतच्छ्राद्धप्रतिष्ठार्थं दक्षिणाद्रव्यं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृजे। तदनन्तर निम्न प्रार्थना करे—

अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु पित्रादीनां प्रसादतः॥
प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥

किसी कारणवश ब्राह्मण-भोजन न करा सकें तो संकल्प करके केवल सूखे अन्न, घृत, चीनी, नमक आदि वस्तुओंको श्राद्ध-भोजनके निमित्त किसी ब्राह्मणको दे देवें। यदि यह भी सम्भव न हो तथा कोई सुपात्र ब्राह्मण न प्राप्त हो तो कम-से-कम दो ग्रास निकालकर गौको इस निमित्त खिला देना चाहिये।

नीतिके आख्यान—

(१)

निरपराध प्राणीको दुःख देनेसे अनर्थ होता है

[सारमेयकी कथा]

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'—यह नीति-वचन है कि जो अपने लिये प्रतिकूल हो—दुःखदायी हो, ऐसा व्यवहार किसी दूसरेके प्रति कभी भी न करे; क्योंकि ऐसा करनेसे स्वयंको महान् पापका भागी होना पड़ता है और दुःख उठाना पड़ता है। फिर जो निरपराध है, उसे अकारण कष्ट दिया जाय तो उससे महान् अनर्थ उपस्थित हो जाता है और वह अनर्थ विनाशका भी कारण बन जाता है। भगवान् वेदव्यास इसी तथ्यको बतानेके लिये एक नीति-कथा बताते हैं, जो इस प्रकार है—

एक बार महाराज परीक्षित्के पुत्र जनमेजय अपने तीनों भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रमें एक महान् यज्ञ कर रहे थे। संयोगसे उसी समय देवताओंकी कुतिया सरमाका पुत्र सारमेय (कुत्ता) उस यज्ञस्थलमें उपस्थित हुआ। जनमेजयके भाइयोंने कुत्तेको वहाँ देखकर उसे मारकर वहाँसे भगा दिया। कुत्ता रोता-चिल्लाता हुआ अपनी माँके पास पहुँचा। उसे रोता देखकर माताने उससे पूछा—'बेटा! तुम क्यों रोते हो, तुम्हें किसने मारा?'

इसपर कुत्तेने रोते-रोते बताया—'माँ! मैंने कोई अपराध नहीं किया, फिर भी जनमेजयके भाइयोंने मुझे मारा।'

माताने कहा—'बेटा! तुमने जरूर कोई अपराध किया होगा, अकारण वे तुम्हें क्यों मारेंगे?'

इसपर कुत्तेने कहा—'नहीं-नहीं माँ! मैं सत्य कहता हूँ, मैंने न तो उनके हविष्यकी ओर देखा और न ही कोई पदार्थ छुआ।'

यह सुनकर पुत्रके दुःखसे दुःखी हुई उसकी माता सरमा वहाँ पहुँची जहाँ यज्ञ हो रहा था। सरमाने क्रोध करते हुए उनसे पूछा—'मेरे पुत्रने न तो आपलोगोंका होमद्रव्य छुआ है और न उस ओर देखा ही है, फिर मेरे निरपराध पुत्रको आपलोगोंने क्यों मारा?'
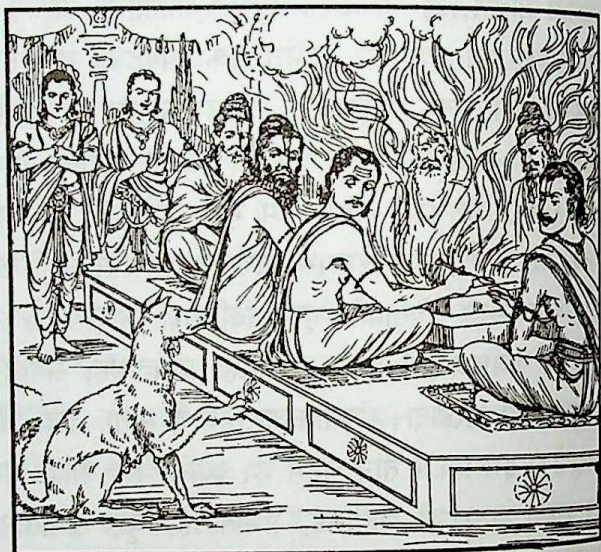
इसपर वे लोग कुछ न बोले। तब सरमाने उनसे कहा—'चूँकि मेरा पुत्र निरपराध है फिर भी आपलोगोंने इसे मारा है, अतः आपलोगोंपर अकस्मात् विपत्ति आयेगी और महान् दुःख भी उठाना पड़ेगा।'

इस शापको सुनकर जनमेजय आदि सभी बहुत घबड़ा गये। बादमें उन्हें पिता परीक्षित्की मृत्युका समाचार सुनना पड़ा और घोर कष्ट उठाना पड़ा।[१] (महा० आदि० अ० ३)

(२)

किसीकी हँसी उड़ाना उसे शत्रु बनाना है

[दुर्योधनका अपमान]

धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ समाप्त हो गया था। वे भूमण्डलके चक्रवर्ती सम्राट् स्वीकार कर लिये गये थे। यज्ञमें पधारे नरेश तथा अन्य अतिथि-अभ्यागत विदा हो चुके थे। केवल दुर्योधनादि बन्धुवर्गके लोग तथा श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रह गये थे।

राजसूय यज्ञके समय दुर्योधनने पाण्डवोंका जो विपुल वैभव देखा था, उससे उसके चित्तमें ईर्ष्याकी अग्नि जल उठी थी। उसे यज्ञमें आये हुए नरेशोंके उपहार स्वीकार करनेका कार्य मिला था। देश-देशके नरेश जो अकल्पित मूल्यकी अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ धर्मराजको देनेके लिये ले आये थे, दुर्योधनको ही उन्हें लेकर कोषागारमें रखना पड़ा। उनको देख-देखकर दुर्योधनकी ईर्ष्या बढ़ती ही गयी। यज्ञ समाप्त हो जानेपर जब सब अतिथि चले गये, तब एक दिन वह हाथमें तलवार लिये अपने भाइयोंके साथ पाण्डवोंकी राजसभामें कुछ कठोर बातें

१-यह कथा स्वल्प अन्तरसे ऋग्वेद १०।१०८ में आयी है।

कहता प्रविष्ट हुआ।

उस समय मय दानवद्वारा निर्मित राजसभामें धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा द्रौपदीके साथ बैठे थे। श्रीकृष्णचन्द्र भी उनके समीप ही विराजमान थे। दुर्योधनने मुख्य द्वारसे सभामें प्रवेश किया। शिल्पी मयने उस सभा-भवनको अद्भुत ढंगसे बनाया था। उसमें अनेक स्थानोंपर लोगोंको भ्रम हो जाता था। सूखे स्थल जलपूर्ण सरोवर जान पड़ते थे और जलपूर्ण सरोवर सूखे स्थल-जैसे लगते थे। दुर्योधनको भी उस दिन यह भ्रम हो गया। वैसे वह अनेक बार उस सभामें आ चुका था; किंतु आवेशमें होनेके कारण वह उन स्थलोंको पहचान न सका। सूखे स्थलको जलसे भरा समझकर उसने अपने वस्त्र उठा लिये। जब पता लगा कि वह स्थल सूखा है, तब उसे संकोच हुआ। लोग उसकी ओर देख रहे हैं, यह देखकर उसका क्रोध और बढ़ गया। उसने वस्त्र छोड़ दिये और वेगपूर्वक चलने लगा। आगे ही जलपूर्ण सरोवर था, उसे उसने सूखा स्थल समझ लिया और स्थलके समान ही वहाँ भी आगे बढ़ा। फल यह हुआ कि वह जलमें गिर पड़ा। उसके वस्त्र भीग गये।

दुर्योधनको गिरते देखकर भीमसेन उच्चस्वरसे हँस पड़े। राजरानियाँ तथा दूसरे नरपति भी हँसने लगे।

युधिष्ठिरने सबको रोका; किंतु हँसी उड़ायी जा चुकी थी और उसे दुर्योधनने देख लिया था। वह क्रोधसे उन्मत्त हो उठा। जलसे निकलकर भाइयोंके साथ शीघ्रगतिसे वह राजसभासे बाहर चला गया और बिना किसीसे मिले रथमें बैठकर हस्तिनापुर पहुँच गया।

इस घटनासे दुर्योधनके मनमें पाण्डवोंके प्रति इतनी घोर शत्रुता जग गयी कि उसने अपने मित्रोंसे पाण्डवोंको पराजित करनेका उपाय पूछना प्रारम्भ कर दिया। शकुनिकी सलाहसे जुएमें छलपूर्वक पाण्डवोंको जीतनेका निश्चय हो गया। आगे जो जुआ हुआ और जुएमें द्रौपदीका जो घोर अपमान दुर्योधनने किया, जिस अपमानके फलस्वरूप अन्तमें महाभारतका विनाशकारी संग्राम हुआ, वह सब अनर्थ उसी दिनके भीमसेन एवं रानियोंसहित द्रौपदीकी व्यंग्यपूर्ण हँसीका ही भयंकर परिणाम था।

(३)

बिना विचारे जो करे····

बहुत पुरानी बात है। उज्जयिनी नगरीमें एक ब्राह्मण-दम्पति रहा करते थे। ब्राह्मण देवताका नाम माधव था, वे निर्धन तो थे ही साथ ही सन्तानहीन भी थे, इसलिये वे दुःखी रहा करते थे। ब्राह्मणीने स्नेहवश एक नेवलेको पाल लिया था और उसीके प्रति पुत्रभाव रखती थी। कुछ समय बीतनेपर भगवान् महाकालकी कृपासे उनके घर भी एक पुत्रने जन्म लिया। ब्राह्मण-दम्पतिके हर्षका ठिकाना न रहा। अब गरीबीमें भी उनके दिन आनन्दपूर्वक बीत रहे थे।

एक दिन ब्राह्मणीने ब्राह्मणसे कहा कि 'आप पुत्रका ध्यान रखियेगा। मैं शिप्रामें स्नानकर भगवान् महाकालका दर्शन करने जा रही हूँ, यह पुत्र उन्हींका कृपाप्रसाद है, मैं शीघ्र ही लौट आऊँगी।' ब्राह्मणने पुत्रकी रक्षाका भार स्वीकार कर ब्राह्मणीको जानेकी अनुमति दे दी। किसी कारणवश ब्राह्मणीको लौटनेमें देर हो गयी। इधर ब्राह्मणके लिये राजाके यहाँसे पार्वणश्राद्ध करनेके लिये बुलावा आ गया। ब्राह्मण जन्मसे दरिद्र तो था ही उसने सोचा कि यदि मैं शीघ्र नहीं जाऊँगा तो कोई दूसरा ब्राह्मण आमन्त्रण ग्रहण कर लेगा।

अतः पुत्रके पास नेवलेको करके वह ब्राह्मण स्वयं राजाके यहाँ चला गया। ब्राह्मणके जानेके बाद नेवला वहीं बालकके पास बैठकर उसकी रक्षा करने लगा। अचानक उसने देखा कि एक काला सर्प बिलसे निकलकर बालककी ओर बढ़ रहा है। अपने प्रिय ब्राह्मणपुत्रके अनिष्टकी आशंका और सर्पके प्रति स्वाभाविक वैरसे क्रुद्ध हो नेवलेने उसपर आक्रमण कर दिया और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

अब विजयी नेवला प्रसन्नतापूर्वक द्वारके पास बैठकर ब्राह्मणकी प्रतीक्षा करने लगा। उसे आशा थी कि ब्राह्मण उसके द्वारा बालककी रक्षा देखकर प्रसन्न होगा और उससे खूब स्नेह करेगा। थोड़ी देरकी प्रतीक्षाके बाद ब्राह्मण राजाके यहाँसे वापस लौटा तो द्वारपर ही खूनसे मुँह-पैर भीगे नेवलेको देखकर उसको आशंका हुई कि इस दुष्टने मेरे पुत्रकी हत्या कर दी है। यह सोचकर उसने बिना पुत्रको देखे क्रोधमें आकर नेवलेपर ऐसा प्रहार किया कि वह बेचारा एक ही वारमें काल-कवलित हो गया। अंदर जाकर जब ब्राह्मणने बालकको आनन्दपूर्वक सोते और पासमें मृत सर्पको पड़े देखा तो उसे सारी बातका ज्ञान हो गया। दुःख और अपराधबोधसे उसने अपना सिर पीट लिया। पर अब क्या हो सकता था?

इसीलिये नीतिशास्त्रमें कहा गया है—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।

अर्थात् बिना विचारे एकाएक कोई काम नहीं करना चाहिये; क्योंकि अविवेक आपत्तियोंका मुख्य स्थान है।

(हितोपदेश, मित्रसन्धि)

विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र—

दान-नीतिके आदर्श—दैत्यराज विरोचन

दैत्यराज भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादके पुत्र थे विरोचन और प्रह्लादके पश्चात् ये ही दैत्योंके अधिपति बने थे। प्रजापति ब्रह्माके समीप दैत्योंके अग्रणीरूपमें धर्मकी शिक्षा ग्रहण करने विरोचन ही गये थे। धर्ममें इनकी श्रद्धा थी। आचार्य शुक्रके ये बड़े निष्ठावान् भक्त थे और शुक्राचार्य भी इनसे बहुत स्नेह करते थे।

अपने पिता प्रह्लादजीका विरोचनपर बहुत प्रभाव पड़ा था। इसलिये ये देवताओंसे कोई द्वेष नहीं रखते थे। संतुष्ट-चित्त विरोचनके मनमें पृथ्वीपर भी अधिकार करनेकी इच्छा नहीं हुई; फिर स्वर्गपर अधिकार करना भला, वे क्यों चाहते? वे तो सुतलके दैत्यराज्यसे ही संतुष्ट थे।

शत्रुकी ओरसे सावधान रहना चाहिये, यह नीति है और सम्पन्न लोगोंका स्वभाव है अकारण शङ्कित रहना। अर्थका यह दोष है कि वह व्यक्तिको निश्चिन्त और निर्भय नहीं रहने देता। असुरों एवं देवताओंकी शत्रुता पुरानी है और सहज है; क्योंकि असुर रजोगुण-तमोगुणप्रधान हैं और देवता सत्त्वगुणप्रधान। अतः देवराज इन्द्रको यह भय सदा व्याकुल रखता था कि यदि कहीं असुरोंने अमरावतीपर आक्रमण कर दिया तो परम धर्मात्मा विरोचनका युद्धमें सामना करना देवताओंकी शक्तिसे बाहर है, उस समय पराजय ही हाथ लगेगी।

शत्रु प्रबल हो, युद्धमें उसका सामना करना सम्भव न हो तो उसे नष्ट करनेका प्रबन्ध पहले ही कर देना चाहिये। इन्द्र आक्रमण करके अथवा धोखेसे विरोचनको मार दें तो शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्याके प्रभावसे उन्हें जीवित कर देंगे और आजके प्रशान्त विरोचन क्रुद्ध होनेपर देवताओंके लिये विपत्ति बन जायँगे। अतएव देवगुरु बृहस्पतिकी मन्त्रणासे इन्द्रने ब्राह्मणका वेष बनाया और सुतल पहुँचे।

विरोचनने अभ्यागत ब्राह्मणका स्वागत किया। उनके चरण धोये, पूजा की। इसके पश्चात् हाथ जोड़कर बोले—'मेरा आज सौभाग्य उदय हुआ कि मुझ असुरके सदनमें आपके पावन चरण पड़े। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

इन्द्रने विरोचनकी दानशीलताकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और विरोचनके आग्रहपर बोले—'मुझे आपकी आयु चाहिये।'

दैत्यराजका सिर माँगना व्यर्थ था; क्योंकि गुरु शुक्राचार्यकी संजीवनी विद्या कहीं गयी नहीं थी। किंतु विरोचन किंचित् भी हतप्रभ नहीं हुए। उन्होंने प्रसन्नतासे कहा—'मैं धन्य हूँ। मेरा जन्म लेना सफल हो गया। मेरा जीवन स्वीकार करके आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया।'

विरोचनने अपने हाथमें खड्ग उठाया और मस्तक काटकर दूसरे हाथसे ब्राह्मणकी ओर बढ़ा दिया। वह मस्तक लेकर इन्द्र भयके कारण शीघ्र स्वर्ग चले आये। विरोचनको तो भगवान्ने अपना पार्षद बना लिया।

'मानस-सिद्ध-मन्त्र'के सम्बन्धमें कुछ ज्ञातव्य बातें

कुछ वर्षों पहले 'कल्याण'-में 'मानस-सिद्ध-मन्त्र' नामक 'एक रामायणप्रेमी' सज्जनका लेख छपा था। उसमें लिखे प्रयोगोंसे बहुत लोगोंने विविध मनोरथोंमें सफलता प्राप्त की। उसे पुनः प्रकाशित करनेके लिये हमारे पास पाठकोंके बहुत-से पत्र आये, तदनुसार जून २००२ के अङ्कमें उसे पुनः प्रकाशित किया गया। इस सम्बन्धमें पाठकोंकी कई शंकाएँ आ रही हैं। जैसे—अष्टाङ्ग-हवन कैसे करें, माला दाहिने हाथमें लें तो आहुति कैसे दें तथा मन्त्रका जप कबतक करें इत्यादि। यहाँ कुछ जाननेयोग्य बातें दी जा रही हैं। आशा है, इनसे शंकाओंका समाधान हो जायगा—

मानस-सिद्ध-मन्त्रका विधान यह है कि पहले रातको दस बजेके बाद अष्टाङ्ग-हवनके द्वारा मन्त्र सिद्ध करना चाहिये। फिर जिस कार्यके लिये मन्त्र-जपकी आवश्यकता हो, उसके लिये नित्य जप करना चाहिये।

वाराणसीमें भगवान् शंकरजीने मानसकी चौपाइयोंको मन्त्रशक्ति प्रदान की है—इसलिये वाराणसीकी ओर मुख करके शंकरजीको साक्षी बनाकर श्रद्धासे जप करना चाहिये।

जिस उद्देश्यके लिये जो चौपाई, दोहा या सोरठा जप करना बताया गया है, उसको सिद्ध करनेके लिये अष्टाङ्ग-हवनकी सामग्रीसे उस चौपाई, दोहे या सोरठेके द्वारा १०८ आहुतियाँ देनी चाहिये। यह हवन केवल एक ही दिन करना है। इसके लिये कोई अलग अग्नि-कुण्ड बनानेकी आवश्यकता नहीं है। मामूली शुद्ध मिट्टीकी वेदी बनाकर उसपर अग्नि रखकर उसमें आहुति देनी चाहिये। प्रत्येक आहुतिके साथ चौपाई आदिके अन्तमें 'स्वाहा' बोल देना चाहिये। यह हवन रातको दस बजेके बाद ही करना होगा।

प्रत्येक आहुति लगभग पौन तोलेकी (सब चीजें मिलाकर) होनी चाहिये। इस हिसाबसे १०८ आहुतिके लिये एक सेर (८० तोले) सामग्री सब चीजें मिलाकर बना लेनी चाहिये। कोई चीज कम-ज्यादा हो तो कुछ आपत्ति नहीं। पञ्चमेवामें पिश्ता, बादाम, किसमिस (द्राक्षा), अखरोट और काजू ले सकते हैं। इनमेंसे कोई चीज न मिले तो उसके बदलेमें मिस्री मिला सकते हैं। केसर शुद्ध चार आने भर ही डालनेसे काम चल जायगा, अधिककी आवश्यकता नहीं है।

हवन करते समय माला रखनेकी आवश्यकता एक सौ आठकी संख्या गिननेभरके लिये है। इसके लिये दाहिने हाथसे आहुति देकर फिर दाहिने हाथसे ही मालाका एक मनका सरका देना चाहिये। फिर माला या तो बायें हाथमें ले लेनी चाहिये या आसनपर रख देनी चाहिये। फिर आहुति देनेके बाद उसे दाहिने हाथमें लेकर मनका सरका देना चाहिये। माला रखनेमें असुविधा हो तो गेहूँ, जौ या चावल आदिके १०८ दाने रखकर उससे गिनती की जा सकती है। बैठनेके लिये आसन ऊनका अथवा कुशका होना चाहिये। सूती कपड़ेका हो तो वह धोया हुआ—पवित्र होना चाहिये।

मन्त्र सिद्ध करनेके लिये यदि लङ्काकाण्डकी चौपाई या दोहा हो तो उसका हवन शनिवारको करना चाहिये। दूसरे काण्डोंके चौपाई-दोहे किसी भी दिन हवन करके सिद्ध किये जा सकते हैं। रक्षा-रेखाकी चौपाई एक बार बोलकर जहाँ बैठे हों, वहाँ अपने आसनके चारों ओर चौकोर रेखा जल या कोयलेसे खींच लेनी चाहिये। फिर उस चौपाईको भी ऊपर लिखे अनुसार एक सौ आठ आहुतियाँ देकर सिद्ध कर लेना चाहिये। पर रक्षा-रेखा न भी खींची जाय तो भी आपत्ति नहीं है। दूसरे कामके लिये दूसरा मन्त्र सिद्ध करना हो तो उसके लिये अलग हवन करना होगा।

एक दिन हवन करनेसे ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद जबतक कार्य सफल न हो, तबतक उस मन्त्र (चौपाई-दोहे आदि)-का प्रतिदिन कम-से-कम एक सौ आठ बार प्रातःकाल या रात्रिको, जब सुविधा हो, जप करते रहना चाहिये; अधिक कर सके तो अधिक उत्तम। कोई चाहें तो नियमित जपके सिवा दिनभर चलते-फिरते भी उस चौपाई या दोहेका जप कर सकते हैं। जितना अधिक जप हो, उतना ही उत्तम है।

कोई दो-तीन कार्योंके लिये दो-तीन मन्त्रोंका अनुष्ठान एक साथ करना चाहें तो कर सकते हैं। पर उन मन्त्रोंको पहले अलग-अलग हवन करके सिद्ध कर लेना चाहिये।

स्त्रियाँ भी इस अनुष्ठानको कर सकती हैं, परंतु रजस्वला होनेकी स्थितिमें जप बंद रखना चाहिये। हवन भी रजस्वला-अवस्थामें नहीं करना चाहिये।

जप करते समय मनमें यह विश्वास अवश्य रखना चाहिये कि भगवान् श्रीसीतारामजीकी अहैतुकी कृपासे मेरा कार्य अवश्य-अवश्य सफल होगा। विश्वासपूर्वक जप करनेपर सफलताकी पूरी आशा है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

एक ही परमेश्वरके अनेक स्वरूप हैं

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। धन्यवाद। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) महादेवजी, पार्वतीजी अथवा गणेशजी अनादिसिद्ध देव हैं। एक ही परमेश्वर सृष्टि, पालन और संहारके लिये विभिन्न गुणोंको आश्रय देकर विभिन्न नाम तथा रूपोंसे प्रसिद्ध हो रहे हैं। सृष्टिके रचयिताको ब्रह्माजी, पालकको भगवान् विष्णु तथा संहार-शक्तिको रुद्र या महादेव कहते हैं। जैसे परमेश्वर अनादि, अनन्त एवं सनातन हैं, वैसे ही ये महादेवजी आदि भी हैं। इनका न कभी जन्म होता है, न मृत्यु—ये सदा रहते हैं। जैसे अग्निके परमाणु सर्वत्र व्याप्त हैं। इस रूपमें अग्नि सदा मौजूद है। यह उसका अव्यक्त स्वरूप है। वही अग्नितत्त्व सूर्यके रूपमें हमें प्रत्यक्ष दीख पड़ता है तथा वही आगके रूपमें, दीपकके रूपमें घर-घरमें प्रज्वलित हो प्रकट दिखायी देता है। ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि सभी वस्तुतः एक ही ज्योतिर्मय महातत्त्वके विभिन्न स्वरूप हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य, काली, गणेश आदि एक ही परमात्माके तेजोमय स्वरूप हैं। जैसे आग बुझती है और जलती है, परंतु उसका अभाव नहीं होता, उसी प्रकार उक्त सभी स्वरूपोंका जगत्‌में आविर्भाव और तिरोभाव (प्रकट होने और छिपनेका भाव) होता है, परंतु उनका अभाव कभी नहीं होता।

इसीलिये उनके जन्म आदिकी कथा एक आरोप या लीलामात्र है। आविर्भाव और तिरोभाव कभी गिने नहीं जा सकते। महासागरमें अबतक कितनी लहरें उठीं और विलीन हुईं, इसे कौन बता सकता है? ये सब सनातन होते हुए भी लीलाके लिये प्रादुर्भूत और तिरोभूत होते रहते हैं। इनके जन्म-मरण नहीं होते। ये सदा सत्य हैं और भक्तजनोंको इनके दर्शन सदा ही हो सकते हैं।

श्रीमहादेवजी तो अजन्मा हैं ही, इनकी आह्लादिनी शक्ति महादेवी भी इनसे अलग नहीं होतीं। वे लीलाके लिये कभी दक्षकन्या सती होकर अपने प्रभुकी सेवामें रहती हैं और कभी गिरिराजनन्दिनी पार्वती होकर अपने प्रियतमकी आराधना करती हैं। प्रत्येक कल्पमें ऐसा होता आया है; इसलिये ये सती और पार्वती भी अनादि हैं, न जाने कबसे इनके प्रादुर्भाव और तिरोभावका क्रम चल रहा है, कौन कह सकता है? गणेशजी भी परमात्माके एक स्वरूप हैं। विघ्नहरण, मङ्गलकरण इनका कार्य है। किसी समय पार्वतीजी जब इनका स्मरण करती हैं, तब ये अव्यक्तसे व्यक्त हो जाते हैं; उनके पुत्ररूपमें साकार होकर लीलाएँ करने लगते हैं। इनके प्रादुर्भावका क्रम भी अनादि है। शिव-पार्वतीके विवाहकालमें इन्हीं अनादिसिद्ध विघ्नहरण-मङ्गलकरण गणेशतत्त्वका पूजन होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लोगोंकी शङ्काका निवारण करते हुए कहा है—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(२) एक समय शुम्भ-निशुम्भके अत्याचारसे पीड़ित देवतालोग भगवती विष्णुमायाकी स्तुति करने लगे। स्तुतिके अन्तमें भगवान्‌की योगमायास्वरूपा पार्वतीजी उनके सामने प्रकट हुईं। उन्होंने अपने-आप ही उनसे प्रश्न किया—'**भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।**' आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं? पार्वतीजीके शरीरसे एक तेजोमयी देवीने तत्काल प्रकट होकर उत्तर दिया—'ये लोग मेरी ही स्तुति करते हैं।' वह देवी शरीरकोशसे प्रकट हुई थीं, इसीलिये 'कौशिकी' कहलायीं। उन्हींको 'अष्टभुजा सरस्वतीजी' भी कहते हैं। कौशिकीके निकल जानेके बाद पार्वतीका रंग काला पड़ गया और वे हिमाचलपर 'काली'के नामसे प्रकट हुईं। यह कथा मार्कण्डेयपुराणमें है। इस प्रकार यद्यपि पार्वतीजी ही काली, कालिका, गौरी एवं सरस्वती हैं, काली और गौरी दोनों उन्हींके नाम हैं, तथापि जो महाकाली महादेवजीके वक्षःस्थलपर पैर रखे हुए दिखायी देती हैं, वे दूसरी ही हैं। तत्त्वतः या स्वरूपतः

सब एक हैं, तथापि लीलाके लिये कुछ भेद स्वीकार किया जाता है। कहते हैं—एक बार किसी असुरका संहार करके महादेवी दुर्गा बड़े क्रोधमें भर गयीं। उस समय उनके क्रोधको शान्त करनेमें कोई समर्थ न हो सका, ऐसा जान पड़ता था कि वे समस्त जगत्का संहार कर डालेंगी। वे उस समय विकराल महाकालीके रूपमें उपस्थित थीं। किसी देवताका भी उनके सामने जानेका साहस नहीं होता था, तब महादेवजीने एक युक्ति सोची। वे उनके सामने मुर्देकी तरह लेट गये। महाकालीजी क्रोधमें बढ़ी आ रही थीं। शिवजीकी छातीपर पैर रखते ही उनका ध्यान भङ्ग हुआ। वे क्रोधका आवेश कम करके नीचे देखने लगीं। देखा तो शंकरजी नीचे दबे हैं। यह देख उनके मनमें संकोचका उदय हुआ, वे लज्जासे जीभ निकालकर पीछे हट गयीं। उसी स्वरूपकी झाँकी देखनेमें आती है। मुण्डमाला असुरोंके मुण्डोंसे बनी है। उसमें कितने मुण्ड हैं इसकी गिनती नहीं।

(३) महादेवजीके गलेमें जो मुण्डमाला है, उसकी भी कहीं कोई गणना नहीं दी गयी है।

शेष भगवत्कृपा।

(२)

ईमानदारीका आदर्श

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपने जो कुछ लिखा, आजके पतित भारतवासीका ठीक यही चित्र है। हमारा आदर्श, हमारे उच्च भाव, हमारी सचाई और ईमानदारीका आदर्श, हमारे महान् त्यागकी भावना, समस्त भूतमात्रको अपना स्वरूप या भगवान् समझनेका सिद्धान्त केवल हमारे अध्यात्मग्रन्थोंमें रह गया है; हमारे जीवनमें वह ढूँढ़े भी नहीं मिलता। यह अत्यन्त ही परितापका विषय है। परंतु सचाई और ईमानदारीका आदर्श बिलकुल समाप्त हो गया हो,ऐसी भी बात नहीं है। कुछ समय पूर्वकी बात है—गत्तेके डिब्बे बनानेवाली एक ब्रिटिश फार्मने अपने ग्राहकोंको चार लाख पौण्डकी बड़ी रकम वापस दे दी। फार्मका अनुमान था कि गत्ते महँगे मिलेंगे, इससे उसने डिब्बोंके दाम ज्यादा रख दिये थे। ग्राहकोंने उसी दाममें डिब्बे स्वेच्छापूर्वक खरीदे थे; परंतु पीछे फार्मको यह पता लगा कि गत्ते सस्ते मिले हैं; इसका मुनाफा उसको करना नहीं था, इसलिये उसने अपने मुख्य ग्राहकोंको एक पौंडके पीछे दो शिलिङ्ग अर्थात् पूरी रकमका दसवाँ हिस्सा लौटा दिया।

कितना आदर्श व्यवहार है। आजके भारतीय व्यापारियोंमें तो शायद ही कोई ऐसा हो जिसके मनमें इस प्रकारका मुनाफा लौटानेकी कल्पना भी हो। हमें अंग्रेजोंसे इस विषयमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और इतना नहीं तो कम-से-कम व्यापारमें—कम तौलना, अधिक लेना, मिलावट करना, बढ़ियाके बदले घटिया माल देना, घाटा होनेपर स्वीकृत सौदेको अस्वीकार कर देना और छिपाव या चोरीसे ज्यादा रुपये ले लेना आदि—दोषोंका परित्याग तो करना ही चाहिये। उचित तो यह है कि जिसके साथ अपना व्यापार हो, उसे भगवान् मानें और उसकी सेवा, उसके हित और उसे सुख पहुँचानेके लिये ही उसके साथ व्यापार करें। याद रखना चाहिये, यों भगवत्पूजाके भावसे व्यापार करनेवाला व्यक्ति या फार्म परिणाममें घाटेमें तो रहेगा ही नहीं। उसे तो यहाँ भी आशातीत लाभ होगा और भगवत्पूजाके भावसे किया हुआ व्यापार परम साधन बनकर उसे भगवत्प्राप्ति भी करा देगा। भगवान्ने स्वयं कहा है—

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

अपने स्वाभाविक कर्मके द्वारा भगवान्की पूजा करके मनुष्य सिद्धिको—भगवान्को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकारकी चेष्टा करनी चाहिये। समाज न करे तो न सही, जिसकी समझमें यह तत्त्व आ जाय उसे तो अपने इहलोक-परलोकके हित और मानव-जन्मकी सफलताके लिये ऐसा करना ही चाहिये।

शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

आश्विन कृष्णपक्ष (२२-९-२००२ से ६-१०-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	रवि	उ०भा०	२२ सितम्बर	प्रतिपदाका श्राद्ध, प्रतिपदा तिथि रात्रि ८-१९ बजेतक, फसली १४१० वर्षारम्भ, श्रीनारायण गुरुदेव-जयन्ती, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ७-४४ बजेतक, यायिजययोग रात्रि ८-१९ बजेतक
द्वितीया	सोम	रेवती	२३ "	मेषके चन्द्रमा रात्रि १०-२२ बजे, राष्ट्रिय आश्विनमासारम्भ, द्वितीयाका श्राद्ध, अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ७-०७ बजे, सायन तुलाराशिके सूर्य रात्रि १२-५२ बजे, पञ्चक समाप्त रात्रि १०-२२ बजे
तृतीया	भौम	अश्विनी	२४ "	तृतीयाका श्राद्ध, ललितादेवी यात्रा, स्थायिजययोग रात्रि १२-२६ बजेसे रात्रि १२-५४ बजेतक, भद्रा दिन ११-२६ बजेसे रात्रि १२-२५ बजेतक
चतुर्थी	बुध	भरणी	२५ "	श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ८-१० बजे, चतुर्थीका श्राद्ध, भरणीश्राद्ध, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ३-१४ बजेसे
पञ्चमी	गुरु	कृत्तिका	२६ "	वृषके चन्द्रमा दिन ९-४३ बजे, पञ्चमीका श्राद्ध, रवियोग रात्रि शेष ५-१२ बजेसे, कृत्तिका नक्षत्र रात्रि शेष ५-११ बजेतक
षष्ठी	शुक्र	रोहिणी	२७ "	षष्ठीका श्राद्ध, चन्द्रषष्ठीव्रत, हस्त नक्षत्रके सूर्य रात्रि ११-४७ बजे (सामान्य वृष्टियोग), रवियोग रात्रि १२-०४ बजेतक, भद्रा रात्रि शेष ४-३७ बजेसे
सप्तमी	शनि	रोहिणी	२८ "	भद्रा सायं ४-५० बजेतक, मिथुनके चन्द्रमा रात्रि ७-१४ बजे, रोहिणी नक्षत्र प्रातः ६-४३ बजेतक, सप्तमीका श्राद्ध, रवियोग प्रातः ६-४४ बजेसे, द्विपुष्करयोग प्रातः ६-४४ बजेसे रात्रि शेष ५-०४ बजेतक
अष्टमी	रवि	मृगशिरा	२९ "	अष्टमीका श्राद्ध, जीवत्पुत्रिकाव्रत, महालक्ष्मीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ११-०३ बजे, लक्ष्मीकुण्ड-स्नान समाप्त, गया मध्याष्टमी, रवियोग प्रातः ७-४६ बजेतक
नवमी	सोम	आर्द्रा	३० "	कर्कके चन्द्रमा रात्रि २-१८ बजे, अन्वष्टकाश्राद्ध, मातृनवमी, दुर्गानवमी (महाराष्ट्र), यायिजययोग दिन ८-१७ बजेसे रात्रि शेष ४-२७ बजेतक
दशमी	भौम	पुनर्वसु	१ अक्टूबर	दशमीका श्राद्ध, पुनर्वसु नक्षत्र दिन ८-१९ बजेतक, भद्रा दिन ३-५८ बजेसे रात्रि ३-२५ बजेतक
एकादशी	बुध	पुष्य	२ "	एकादशीका श्राद्ध, पुष्य नक्षत्र प्रातः ७-५४ बजेतक, इन्दिरा एकादशीव्रत (सबका), गाँधी-जयन्ती, लाल बहादुर शास्त्री-जयन्ती
द्वादशी	गुरु	अश्लेषा	३ "	सिंहके चन्द्रमा प्रातः ७-०८ बजे, द्वादशीका श्राद्ध, अश्लेषा नक्षत्र प्रातः ७-०८ बजेतक तदुपरि मघा नक्षत्र रात्रि शेष ५-५९ बजेतक, संन्यासी-यति-वैष्णवका श्राद्ध, मघा श्राद्ध
त्रयोदशी	शुक्र	पू०फा०	४ "	त्रयोदशीका श्राद्ध, प्रदोषव्रत, स्थायिजययोग रात्रि १०-१२ बजेसे रात्रि शेष ४-३८ बजेतक, भद्रा रात्रि १०-१२ बजेसे
चतुर्दशी	शनि	उ०फा०	५ "	भद्रा दिन ९-०३ बजेतक, कन्याके चन्द्रमा दिन १०-१४ बजे, शस्त्रादिसे मरेका श्राद्ध (चतुर्दशीका श्राद्ध)
अमावास्या	रवि	हस्त	६ "	अमावास्या तिथि सायं ५-३२ बजेतक, स्नान-दान-श्राद्धकी अमावास्या, हस्त नक्षत्र रात्रि १-२५ बजेतक, हस्त नक्षत्रसे युक्त अमावास्या गजच्छायायोग, महालया अमावास्या, पितृविसर्जन, अज्ञात तिथिवालोंका श्राद्ध, यायिजययोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग सायं ५-३३ बजेसे रात्रि १-२५ बजेतक

आश्विन शुक्लपक्ष (७-१०-२००२ से २१-१०-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	सोम	चित्रा	७ अक्टूबर	चन्द्रदर्शन, तुलाके चन्द्रमा दिन १२-३६ बजे, शारदीय नवरात्र आरम्भ, प्रतिपदा तिथि दिन ३-०८ बजेतक, कलशस्थापन, ध्वजारोपण, अभिजित् मुहूर्त दिन ११-३७ बजेसे दिन १२-२४ बजेतक, मातामह (नाना)-का श्राद्ध, अग्रसेन-जयन्ती, यायिजययोग दिन ३-०८ बजेतक
द्वितीया	भौम	स्वाती	८ "	द्वितीया तिथि दिन १२-४६ बजेतक, स्वाती नक्षत्र रात्रि १०-०९ बजेतक, रवियोग रात्रि १०-१० बजेसे
तृतीया	बुध	विशाखा	९ "	वृश्चिकके चन्द्रमा दिन ३-०३ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, रवियोग रात्रि ८-४२ बजेतक तदुपरि सर्वार्थामृतसिद्धियोग, भद्रा रात्रि ९-२८ बजेसे, तृतीया तिथि दिन १०-३० बजेतक
चतुर्थी	गुरु	अनुराधा	१० "	भद्रा दिन ८-२६ बजेतक, उपाङ्गललिताव्रत, सर्वार्थामृतसिद्धियोग रात्रि ७-२८ बजेतक, रवियोग तथा यायिजययोग दिन ८-२७ बजेसे रात्रि ७-२८ बजेतक
पञ्चमी	शुक्र	ज्येष्ठा	११ "	धनुके चन्द्रमा सायं ६-३५ बजे, चित्राके सूर्यकी संक्रान्ति दिन १२-१७ बजे (स्वल्पवृष्टियोग), रवियोग दिन १२ बजेतक तदुपरि यायिजययोग सायं ६-३६ बजेसे, ज्येष्ठा नक्षत्र सायं ६-३५ बजेतक
षष्ठी	षष्ठी तिथिका क्षय			पञ्चमी तिथि प्रातः ६-३९ बजेतक तदुपरि षष्ठी तिथि रात्रि शेष ५-११ बजेतक
सप्तमी	शनि	मूल	१२ "	अन्नपूर्णापरिक्रमा रात्रि शेष ४-०७ बजेसे, रवियोग सायं ६-०१ बजेतक, मूल नक्षत्रमें सरस्वतीदेवीका आवाहन, मूल नक्षत्र सायं ६-०१ बजेतक, भद्रा रात्रि शेष ४-०७ बजेसे
अष्टमी	रवि	पू०षा०	१३ "	भद्रा दिन ३-४८ बजेतक, मकरके चन्द्रमा रात्रि ११-५५ बजे, महाष्टमीव्रत, महानिशापूजा बलिदान आदि, पू०षा० नक्षत्रमें सरस्वती-देवीकी पूजा, पूर्वाषाढ़ नक्षत्र सायं ५-५२ बजेतक, भवानी अन्नपूर्णापरिक्रमा रात्रि ३-३० बजेतक, यायिजययोग रात्रि ३-३१ बजेसे
नवमी	सोम	उ०षा०	१४ "	महानवमीव्रत, दुर्गानवमी, नवमी तिथिमें हवन करना चाहिये, नवमी तिथि रात्रि ३-१० बजेतक, नवमी तिथिमें उग्रचण्डीपूजा तथा बलिदान, रात्रिमें श्रवण नक्षत्रमें सरस्वतीदेवीका विसर्जन, उत्तराषाढ़ नक्षत्र सायं ६-१३ बजेतक, मन्वादि नवमी, यायिजययोग सायं ६-१३ बजेतक तदुपरि रवियोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग
दशमी	भौम	श्रवण	१५ "	नवरात्रव्रतका पारण, विजयादशमी, दशमीमें दुर्गादेवीका विसर्जन, जयन्तीग्रहण, अपराजिता-पूजन, विजययात्रा, शमी-पूजन, नीलकण्ठ-दर्शन, बौद्धावतार, जगद्गुरु माधवाचार्य-जयन्ती
एकादशी	बुध	धनिष्ठा	१६ "	कुम्भके चन्द्रमा प्रातः ७-४५ बजे, पञ्चक आरम्भ प्रातः ७-४५ बजे, पापांकुशा एकादशीव्रत (स्मार्त्त), भरतमिलाप, रवियोग रात्रि ८-२६ बजेतक, भद्रा सायं ४-१८ बजेसे रात्रि शेष ४-४५ बजेतक
द्वादशी	गुरु	शतभिषा	१७ "	एकादशीव्रतका पारण, पापांकुशा एकादशीव्रत (वैष्णव), पद्मनाभ द्वादशीव्रत, सायन तुलाके सूर्य रात्रि शेष ५-२७ बजे, दूसरे दिन पुण्यकाल, यायिजययोग तथा रवियोग रात्रि १०-१४ बजेतक, द्वादशी तिथि रात्रि शेष ६-०८ बजेतक, सूर्योदय प्रातः ६-१७ बजे
त्रयोदशी	शुक्र	पू०भा०	१८ "	मीनके चन्द्रमा सायं ५-५३ बजे, प्रदोषव्रत, सौर कार्तिकमासारम्भ, आज ही संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल दोपहरतक, गोरस आदिका दान, गोदावरी-स्नान, शुक्रवार्द्धक्यारम्भ रात्रि ३-३० बजे, रवियोग रात्रि १२-२७ बजेसे
त्रयोदशी	शनि	उ०भा०	१९ "	रवियोग रात्रि २-५५ बजेतक, यायिजययोग प्रातः ७-५५ बजेतक, त्रयोदशी तिथि प्रातः ७-५५ बजेतक
चतुर्दशी	रवि	रेवती	२० "	मेष राशिके सूर्य रात्रि शेष ५-३१ बजे, व्रतकी पूर्णिमा, शरत्पूर्णिमा, कोजागरी पूर्णिमा, रात्रिमें लक्ष्मी-इन्द्र-कुबेर आदिकी पूजा, यायिजययोग दिन ९-५६ बजेसे रात्रि शेष ५-३१ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग, पञ्चक समाप्त रात्रि शेष ५-३१ बजे, चतुर्दशी तिथि दिन ९-५५ बजेतक, भद्रा दिन ९-५६ बजेसे रात्रि १०-५८ बजेतक
पूर्णिमा	सोम	अश्विनी	२१ "	स्नान-दान आदिकी पूर्णिमा, महर्षि वाल्मीकि-जयन्ती, कार्तिक व्रत-स्नान-नियम आजसे, ओली समापन (जैन), शुक्रास्त पश्चिम रात्रि ३-३० बजे

पढ़ो, समझो और करो

(१)

'जैसी करनी वैसा फल'

सवाईमाधोपुर जिलेके गाँव मौरोजकी घटना है। वर्षाके दिनोंमें गाँवके पशु पहाड़के ऊपर जंगलमें चरनेके लिये चले जाते हैं। दो-तीन माह वहींपर रहते हैं। गाँवसे ५-७ किलोमीटर दूर होनेके कारण रात्रिमें दूध-दही जंगलमें ही रखना पड़ता है। कई व्यक्ति मिलकर रहते हैं। दूध निकालकर शामको ही गरम करके दही जमा देते हैं। उस जंगलसे एक किलोमीटर दूर भीमपुरा गाँव है। सभी ग्वाले, भैंसवाले रात्रिमें दूध या दहीको पत्थरोंसे ढककर निश्चिन्त होकर सो जाते हैं। इधर कुछ दिनोंसे पासके गाँव भीमपुरासे एक कुतिया आती और पत्थर हटाकर दूध-दहीको खा-पी जाती, गिरा देती, जूठा कर देती। ग्राम मौरोजके सब लोग परेशान हो गये। एक दिन सबने मिलकर कहा— देखो भाई, एक कुतियाने नाकमें दम कर दिया है। कहाँतक जागते रहें। दिनमें काम करते हैं, नींद तो आती ही है। नींद आते ही कुतिया दूध-दहीको खराब कर देती है। उनमेंसे धनजीलाल नामक एक व्यक्ति बोला, अब आजसे आप सब निश्चिन्त हो जाओ। कुतियाका यहाँ आना भुला दूँगा, यह मेरी जिम्मेदारी है। आप सभी निश्चिन्त होकर सो जाना, मैं जागता रहूँगा और आज रात्रिमें ही कुतियाको सबक सिखा दूँगा। सब निश्चिन्त होकर सो गये। धनजीलाल एक जगह छिपकर लाठी लेकर बैठा रहा। रात्रिके दस-ग्यारह बजे वही कुतिया चुपके-से आयी, पत्थर हटायी और आरामसे दूध पीने लगी। उसे क्या मालूम कि आज उसका दुश्मन छिपकर बैठा हुआ है। धनजीने देखा कुतिया चुपके-से दूध पी रही है। वह दबे पाँव गया और कुतियाकी पीठमें उसने पूरा जोर लगाकर लाठी मार दी। कुतिया कुछ देरके लिये उसी जगहपर बेहोश हो गयी। धनजीने सोचा—हे भगवन्! यह हत्याका कलंक लग गया।

दस-पन्द्रह मिनट बाद कुतिया उठ तो गयी, परंतु उसकी रीढ़की हड्डी एकदम टूट गयी। सुबह सबने देखा कि कुतियाकी रीढ़की हड्डी टूट गयी है। सब प्रसन्न होकर धनजीको धन्यवाद देने लगे। अब कुतिया गाँव भीमपुरामें ही पड़ी रहती। कमजोर हो गयी। वहाँ आना एकदम भूल गयी जहाँ दूध रखा जाता था। कुतियाकी हड्डी तोड़कर भी धनजी प्रसन्न रहता कि मैंने कितना बहादुरीका काम किया। लेकिन धनजीको क्या मालूम कि कर्मोंको देखनेवाला भी कोई है! मनुष्य जवानीके मदमें अन्धा हो जाता है। आगे-पीछे कुछ सोचता नहीं। मनमाने काम करता रहता है, पर समयपर उसे उसका फल भी मिल जाता है।

दिन बीतते गये, महीना बीता। दो महीने बाद एक दिन धनजी लकड़ियोंका भारी बोझ कन्धेपर रखकर अपने गाँव आनेके लिये पहाड़की घाटीसे उतर रहा था कि बीच घाटीमें उसका पैर फिसल गया और बोझसहित एक पत्थरसे उसकी पीठ टकरा गयी। रीढ़की हड्डी टूट गयी। जैसे-तैसे वह गाँव पहुँचा। दर्दके मारे उसका बुरा हाल था। जयपुरमें छः माह इलाज किया गया, परंतु रीढ़की हड्डी सही नहीं हो पायी। वह गाँवका नामी पहलवान् था, परंतु रीढ़की हड्डी टूटनेसे अपंग हो गया। मैंने धनजीके गाँव मौरोजमें ८ वर्षोंतक विद्यालयमें बालकोंको अध्ययन कराया, सो धनजी मुझसे प्रेम रखता है। श्रद्धा भी रखता है। एक रात्रिमें हम साथ-साथ विद्यालयपर ही रहे, तब धनजीने मुझसे यह सारी रामकहानी सुनायी। मुझसे उसने कहा—'मास्टरजी! भगवान्के घर देर तो है पर अँधेर नहीं है। मैंने कुतियाकी पीठ तोड़ी। रामजीने मेरी पीठ तोड़ दी। दो माहमें मुझे मेरे दुष्कर्मका फल मिल गया। कुतिया जीवनभर टूटी पीठसे रही, मुझे भी जीवन टूटी पीठसे ही पूरा करना पड़ेगा।'

इस घटनासे शिक्षा लेनी चाहिये कि कभी पापकर्म नहीं करे। किये हुए कर्मका फल तो जीवको भोगना ही पड़ता है। परंतु कभी-कभी यह दूसरे जन्ममें भी भोगा जाता है। भगवान् जिसपर विशेष कृपा करते हैं, उसे तत्काल उसी जन्ममें भुगता देते हैं जिससे उसका वह पाप उसी समय नष्ट हो जाता है। सभी जीव कर्मकी डोरीसे बँधे हुए हैं। कर्मोंके आधारपर ही जीवको सुख-दुःख मिलता है। अतः सावधान हो जाना चाहिये। परलोक न बिगड़ जाय, इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये। पढ़ी हुई विद्या, दिया गया दान और किया गया कर्म जीवको फल देनेके लिये पीछे-पीछे घूमते हैं। महाभारतमें लिखा है, जैसे बछड़ा हजारों गायोंमें अपनी माँको ढूँढ़कर दूध पीने लगता है, उसी प्रकार हमारे कर्म हमें ढूँढ़ लेते हैं। तभी तो कहा है—***जैसी करनी वैसा फल। आज नहीं तो निश्चय कल।***

—श्रीनारायणजी शर्मा

(२)

एक घटनाने मुझे आस्तिक बना दिया

मेरे जीवनमें एक ऐसी घटना घटी, जिससे मेरा ईश्वरके प्रति विश्वास बढ़ता ही चला गया।

नवम्बर सन् २००० की बात है। मैं इण्टरमीडियेट बोर्डकी परीक्षाकी तैयारी कर रहा था। उस समय मेरा ईश्वरके प्रति प्रेम नाममात्रको भी नहीं था। मैं भगवान् नामके किसी भी शब्दको माननेको तैयार नहीं था। यहाँतक कि भगवान्‌की चर्चा सुननेमात्रसे मैं उद्वेलित हो उठता था।

कुछ समय बाद मेरी अर्द्धवार्षिक परीक्षाएँ शुरू होनेवाली थीं कि तभी अचानक मेरी मूत्रेन्द्रियपर एक फोड़ा निकलना शुरू हो गया। पहले तो मैंने इसे ज्यादा विचारसे नहीं देखा; लेकिन धीरे-धीरे यह बड़ा होने लगा, जिससे मुझे उठने-बैठने-सोने तथा मल त्यागनेमें काफी पीड़ा होने लगी।

मैंने अपने परिवारजनोंको बताये बिना ही इसका इलाज डॉक्टरोंसे कराना शुरू कर दिया। लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। उलटे फोड़ा बढ़ता ही जा रहा था। इसी पीड़ाके कारण मेरी पढ़ाई चौपट हो गयी तथा मैं अर्द्धवार्षिक परीक्षामें भी न बैठ सका। इस वर्षकी सारी मेहनतके व्यर्थ जानेका भय मुझे सताने लगा। मैंने अपनी इस समस्याको अपने परिवारके किसी भी सदस्यको नहीं बताया। मेरे परिवारमें मुझे छोड़कर सभी धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति हैं।

मैंने यह समस्या अपने एक मित्रके पिताजीको बतायी जो कि आयुर्वेदिक औषधियोंसे इलाज करते हैं। वे बड़े ही सज्जन तथा धार्मिक व्यक्ति हैं।

उन्होंने मुझे श्रीरामचरितमानसकी कुछ पङ्क्तियाँ बतायीं, जिनसे नीरोग होकर मेरा जीवन उनका कृतज्ञ हो गया तथा मेरा ईश्वरके प्रति विश्वास एवं अनुराग भी बढ़ गया।

वे पङ्क्तियाँ इस प्रकार हैं—

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥
राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा॥
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

जब उन्होंने मुझे ये पङ्क्तियाँ बतायीं तो मुझे विश्वास नहीं हुआ कि इन पङ्क्तियोंके पाठसे मेरा इलाज हो जायगा; क्योंकि मैं ठहरा ईश्वरको न माननेवाला—निरा नास्तिक। डॉक्टरोंके चक्करमें मैं अपने सारे पैसे लुटा चुका था। अतः मैंने सोचा, चलो यह भी करके देख लेते हैं। वार्षिक परीक्षामें बैठनेसे वञ्चित न रह जाऊँ, इसलिये भी मैंने उसी दिनसे इन पङ्क्तियोंका पाठ करना शुरू कर दिया।

जब मैंने पहली बार इन पङ्क्तियोंका स्मरण किया तो मुझे कुछ ऐसा लगा कि दर्द कम-सा हो रहा है। पढ़नेमें भी मेरा अधिक मन लग रहा है। फिर तो मैं दिनभर जब भी समय मिलता तभी इन पङ्क्तियोंको स्मरण करने लगा, फल यह हुआ कि मेरा फोड़ा कुछ दिनों बाद ही ठीक हो गया तथा मेरा मन पढ़नेमें खूब लगने लगा। मैं पूरे उत्साहसे परीक्षामें बैठा और अच्छे नम्बरोंसे उत्तीर्ण भी हुआ।

आज भी जब कभी मेरे सामने कोई समस्या आती है या किसी रोगका इलाज नहीं मिलता है तो मैं इन्हीं पङ्क्तियोंको दुहराता हूँ। न जाने इन पङ्क्तियोंमें कैसा जादू है कि कैसी भी जटिल समस्या हो, उसका समाधान तुरंत मिल जाता है।

इस घटनाके बाद मेरा ईश्वरके प्रति प्रेम बढ़ गया तथा मैं ईश्वरको मानने लगा। मेरे परिवारजन भी अब मेरा बदला हुआ व्यवहार देखकर काफी प्रसन्न हैं।

—एक ईश्वरभक्त छात्र

(३)

भगवन्नाम-जपकी विलक्षण अनुभूति

घटना लगभग ५० साल पुरानी है। पुष्करराजसे उत्तरकी ओर लगभग तीन कोसपर हमारा गाँव मझेवला है। हमारे ही गाँवकी एक क्षत्रियवंशीय माताजीने अपनी पुत्रवधूको उसके पीहरसे लानेको मुझसे कहा। बहूका पीहर रेलवे स्टेशन निंवाईसे छः कोसकी दूरीपर कोटड़ा नामक गाँवमें था। उन दिनों आजकलकी तरह आने-जानेके लिये यातायातकी अन्य सुविधा नहीं थी। रेलगाड़ियोंसे सम्बन्धित स्टेशनोंतक तथा आगे ऊँटगाड़ियोंसे या पैदल आना-जाना पड़ता था। मैं अजमेरसे रेलमें बैठकर निंवाई स्टेशन करीब ५ बजे शामको पहुँचा। वहाँसे कोटड़ा लगभग छः कोस था। उन दिनों युवावस्था थी। अतः मैंने बेझिझक निंवाईसे कोटड़ातक पैदल जानेका मन बनाया।

लगभग तीन कोसतक दो छोटे-छोटे गाँवोंको पार किया। तबतक सूर्यास्त हो चुका था। दैवयोगसे उसी समय मुसलाधार बारिश शुरू हो गयी। आस-पास तथा रास्तेमें पानी बह रहा था। आगे जानेके लिये रास्ता भी नहीं दिखायी पड़ रहा था, लेकिन अनुमानसे चलनेका क्रम जारी रहा। चारों तरफ अँधेरा, जंगलमेंसे पैदल चलना, मुसलाधार बारिश और मार्गकी अनभिज्ञता—इन कारणोंसे हताश होकर मैंने मन-ही-मन *'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'* इस महामन्त्रका सच्चे हृदयसे जप करना शुरू कर दिया। हृदय भयभीत था, रास्तातक बतानेवाला कोई नहीं था। आगे कहाँ पहुँचूँगा, यह भी जानकारी नहीं थी। वर्षा लगातार हो रही थी। हृदयकी धड़कन तेज हो गयी। ऐसी विषम परिस्थितिमें भगवन्नाम ही मेरा सम्बल बना हुआ था, इतनेमें रास्तेके दायीं ओर कुछ ही दूरीपर एक दीपकका टिमटिमाता प्रकाश दिखायी दिया। मार्गसे हटकर उस छोटी-सी बस्तीमें पहुँचा तथा आवाज लगाकर वहाँके लोगोंसे पूछा कि भैया! यह कौन-सा गाँव है? एक आदमीने कहा कि यहाँ नजदीकमें कोई भी गाँव नहीं है, यह तो कंजरोंकी ढाँणी है। उन्होंने मुझसे पूछा कि आप कहाँसे आये हैं? मैंने पुलिस थाना निंवाईसे आनेकी बात बतायी और तुरंत वहाँसे लौटकर अपने द्वारा छोड़े गये मार्गपर पहुँचा और घबराकर पुनः 'हरे राम'का जप चालू किया। अब कहाँ जाऊँ, किधर जाऊँ, कुछ समझमें नहीं आ रहा था। वर्षाका क्रम चालू था। चलते-चलते एक जगह खड़ा होकर करुणासागरसे पथप्रदर्शक बननेके लिये प्रार्थना की। थोड़ी ही देरमें क्या देखता हूँ कि आकाशसे प्रकाशका एक पुञ्ज-सा नीचे आ रहा है जो पृथ्वीपर ठहर गया। उस पुञ्जके प्रकाशमें एक श्याम वर्णका बहुत बड़ा कुत्ता मुझे दिखायी दिया। मैं और अधिक भयभीत हुआ कि इस अँधेरी रातमें यह कुत्ता कहाँसे आ गया, लेकिन इसे प्रभुकी कृपा समझकर मैं थोड़ा आश्वस्त-सा हुआ, फिर मैंने उस कुत्तेसे प्रार्थना की कि श्वानके रूपमें आये मेरे मार्गदर्शक मुझ दिशाविहीनको दिशा प्रदान करें। हृदयमें नामोच्चारका क्रम चल ही रहा था। कुत्तेने एक ओर चलना प्रारम्भ कर दिया। मैं उसके पीछे-पीछे खिंचा हुआ-सा चलने लगा। लगभग १ मील चलनेके बाद अचानक कुत्ता गायब हो गया। घबराये हुए मैंने आगे बढ़नेका क्रम जारी रखा। कुछ ही दूर चलनेपर आगे एक बड़ा-सा नाला बहता हुआ दिखायी दिया। उस अनजान नालेको पार करना मेरे लिये मुश्किल था। फिर उस नालेके किनारे खड़े होकर करुणासिन्धुसे नालेको पार करानेके लिये मैंने प्रार्थना की। तबतक वर्षा थम गयी थी। नाम-जपका क्रम हृदयमें चालू था। इतनेमें नालेके दूसरे पारसे कुछ आदमियोंकी हलचल सुनायी दी। मैंने जोरसे आवाज लगाकर उनसे पूछा—भाइयो! आप कहाँके हैं, मुझे यह नाला पार करा दें। उनमेंसे एक सज्जनने मेरा नाम लेकर कहा कि आप घबरायें नहीं, हम आपके पास आ रहे हैं। हम दहलोत गाँवके रहनेवाले हैं। आपकी आवाजमात्रसे हमने आपको पहचान लिया है।

मुझे यह कल्पना भी नहीं थी कि कोटड़ासे चार कोस दूरीके इस गाँवमें मैं रास्ता भटककर पहुँच जाऊँगा। वे लोग खलिहानमें भीगे हुए अनाजको सँभालने वहाँ आये थे। उन्होंने मुझे नालेसे पार उतारा तथा वहाँसे एक मील दूर दहलोत गाँवके श्रवण सिंहके घर मैंने रात बितायी तथा उन्हें भी भगवन्नामकी महिमासे संकटमुक्तिकी आपबीती सुनायी। घटनाको बताते-बताते मुझे रोमाञ्च हो उठता था कि किस प्रकार एक प्रकाशज्योति चमकी और उसी उजालेमें मुझे एक कुत्ता दिखायी दिया तथा न जाने किस प्रेरणासे मैं उस कुत्तेके पीछे चलते-चलते नालेके पास पहुँचा। अचानक वह कुत्ता कहाँ गुम हो गया और ऐसी अँधेरी रातमें उन लोगोंका नालेके पास मिलना एवं मुझे पार उतारना—ये सब ऐसे प्रश्न थे जो मुझे विश्वास दिला रहे थे कि प्रभुके नाम-जपका ही यह सब प्रभाव था तथा आज उसी नाम-जपके प्रभावने किन-किन रूपोंमें भगवान्‌को अवतरितकर मेरी रक्षाके लिये बाध्य कर दिया। यह सब सोचते-सोचते कब मुझे निद्रा आ गयी, मैं जान न सका। दूसरे दिन प्रातः मैं प्रभुकी कृपाशक्तिका स्मरण करते हुए अपने गन्तव्यकी ओर चल पड़ा। —लादूसिंह राजपुरोहित

मनन करने योग्य

(१)

अच्छे धनकी अच्छी बरकत

'बेईमानी, चोरी तथा अन्य तरीकोंसे कमाये हुए धनकी बरकत भी वैसी ही होती है तथा सत्यता और ईमानदारीसे कमाया हुआ धन कभी घटता नहीं।' इस संदर्भमें स्वामी करपात्रीजी महाराजने पद्मपुराणकी एक कथा प्रस्तुत करते हुए कहा—'एक बार राघवेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रने अपनी अयोध्यामें ब्रह्मपुरीका आयोजन किया। ब्रह्मपुरीमें सम्मिलित होनेके लिये दूर-दूरसे ब्राह्मणोंकी टोलियाँ पधारने लगीं। भूतभावन भगवान् विश्वनाथको जब यह मालूम हुआ कि आज राघवेन्द्रने ब्रह्मपुरीका आयोजन किया है तो कौतूहलवश वे भी एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर किसी ब्राह्मणकी टोलीमें शामिल हो गये और भगवान् श्रीरामकी ब्रह्मपुरीमें पहुँच गये।

भगवान् राघवेन्द्र तो स्वयं अन्तर्यामी थे ही। उन्होंने उस बूढ़े ब्राह्मणको मनमें पहचान लिया तथा यह समझ लिया कि भगवान् सदाशिव मेरी परीक्षा करने यहाँ पधारे हैं। उन्होंने उस वृद्ध ब्राह्मणका विशेष ध्यान रखा। ब्रह्मपुरीकी पंगत पड़ी तो भगवान् राघवेन्द्रने स्वयं उस वृद्ध ब्राह्मणके पादपद्मोंका जलद्वारा अपने कोमल हस्त-कमलोंसे प्रक्षालन किया और एक अलग आसनपर उन्हें विराजमान कराया। भोजन-सामग्री परोसनेका कार्य प्रारम्भ हुआ। उस वृद्ध ब्राह्मणकी पत्तलमें सामग्री परोसते ही समाप्त हो जाती। कोई सामान बचता ही नहीं। सभी परोसनेवाले उस बूढ़े ब्राह्मणकी पत्तलको भरनेमें लग गये, पर पत्तल तो खाली-की-खाली ही नजर आती। यह सब देखकर भगवान् राघवेन्द्र चिन्तित हुए। महलमें चिन्ता व्याप्त हो गयी और यह समाचार भगवती जगज्जननी जानकीके पास अन्तर्महलमें पहुँचा कि एक ऐसे वृद्ध ब्राह्मण पधारे हैं, जिनकी पत्तलपर सामग्री परोसते ही साफ हो जाती है। यह भगवान् श्रीरामकी प्रतिष्ठाका प्रश्न बन गया। भगवती जानकी भी चिन्तित हो गयीं। परंतु जैसे भगवान् राघवेन्द्रके पास सदाशिव पधारे थे, वैसे ही पराम्बा भगवती जानकीके पास माँ अन्नपूर्णा भी बैठी थीं। श्रीजानकीजीने श्रीअन्नपूर्णासे अनुरोध किया—माँ! उन वृद्ध ब्राह्मणको आप स्वयं अपने हाथोंसे परोसें तभी प्रतिष्ठा बचेगी। सभी परोसनेवाले वहाँसे हटा दिये गये। माँ अन्नपूर्णाने स्वयं अपने हाथसे भगवान् विश्वनाथको परोसना प्रारम्भ किया। माँ अन्नपूर्णाने पत्तलमें एक लड्डू परोसा। भगवान् विश्वनाथ खाते-खाते थक गये, पर वह समाप्त नहीं होता था। श्रीअन्नपूर्णाजीने सभी मिठाइयाँ एक-एक परोसीं। भगवान् खाते-खाते अघा रहे थे। माँने दुबारा परोसना चाहा तो सदाशिवने स्पष्ट मना कर दिया। कारण, उनकी पत्तल खाली ही नहीं हो रही थी, वैसी ही भरी थी।'

महाराजने कहा कि जिस प्रकार भगवती अन्नपूर्णाद्वारा भगवान् सदाशिवकी पत्तलमें परोसी गयी मिठाई बार-बार खानेपर भी कभी घटती नहीं, उसी प्रकार अच्छी नीयतसे कमाया हुआ धन कितना भी खर्च करनेपर घटता नहीं और खराब नीयतसे अर्जित धन कभी ठहरता नहीं, साथ ही दुःखका कारण भी बनता है। इसलिये अच्छे धनकी अच्छी बरकत होती है।

(२)

भोग्य-लक्ष्मी और दृश्य-लक्ष्मी

लक्ष्मीका वर्णन करते हुए महाराजने एक दृष्टान्त सुनाया और कहा—'एक भक्तने लक्ष्मीकी उपासना प्रारम्भ की। कुछ समय पश्चात् भगवती लक्ष्मी प्रसन्न होकर प्रकट हो गयीं और बोलीं—वर माँगो। भक्तके मनमें लक्ष्मीकी कामना तो थी ही, उसने संकोचपूर्वक कहा—'मैं लक्ष्मी चाहता हूँ।' भगवतीने पुनः पूछा—'कौन-सी लक्ष्मी चाहते हो—दृश्य-लक्ष्मी या भोग्य-लक्ष्मी!' वह लक्ष्मीभक्त असमंजसमें पड़ गया, समझ नहीं पा रहा था कि किस लक्ष्मीका वरण करूँ। तब उसने कहा—'माँ! यह दृश्य-लक्ष्मी क्या है और भोग्य-लक्ष्मी क्या है?' इसपर भगवती श्रीने उत्तर दिया—'दृश्य-लक्ष्मी तो यह है कि तुम्हारे पास धनकी कोई कमी नहीं रहेगी, अपरिमित धन होगा, पर उस धनका तुम समुचित उपभोग नहीं कर सकोगे। वह धन केवल तुम्हारी संतुष्टि और दर्शनमात्रके लिये ही होगा।' यह सुनकर वह लक्ष्मी-अभिलाषी भक्त आश्चर्यचकित हुआ और उसने पूछा—'धन रहनेपर उपभोग क्यों नहीं कर सकूँगा?' भगवतीने कहा—'उपभोग न कर पानेकी विभिन्न परिस्थितियाँ तुम्हारे सामने स्वतः प्रकट हो जायँगी, चाहनेपर भी तुम्हारेमें उपभोगकी सामर्थ्य नहीं रहेगी और तुम लक्ष्मीका उपभोग भी न कर सकोगे।' भक्तने पुनः पूछा—'माँ! भोग्य-लक्ष्मी क्या है?' इसके उत्तरमें भगवती लक्ष्मीने कहा—'दृश्य-लक्ष्मीके न होनेपर भी समय-समयपर आवश्यकतानुसार उच्चकोटिके सभी पदार्थ उपभोगके लिये उपलब्ध रहेंगे। समयपर किसी भी वस्तुका अभाव नहीं होगा। संसारकी सभी भोग्य सामग्रियाँ भी उपलब्ध रहेंगी और उसे भोगनेका सामर्थ्य भी प्राप्त होगा—यही भोग्य-लक्ष्मी है।' यह सुननेके बाद भक्तने प्रार्थना की—माँ! मुझे तो भोग्य-लक्ष्मी और दृश्य-लक्ष्मी दोनों चाहिये।
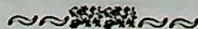
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण
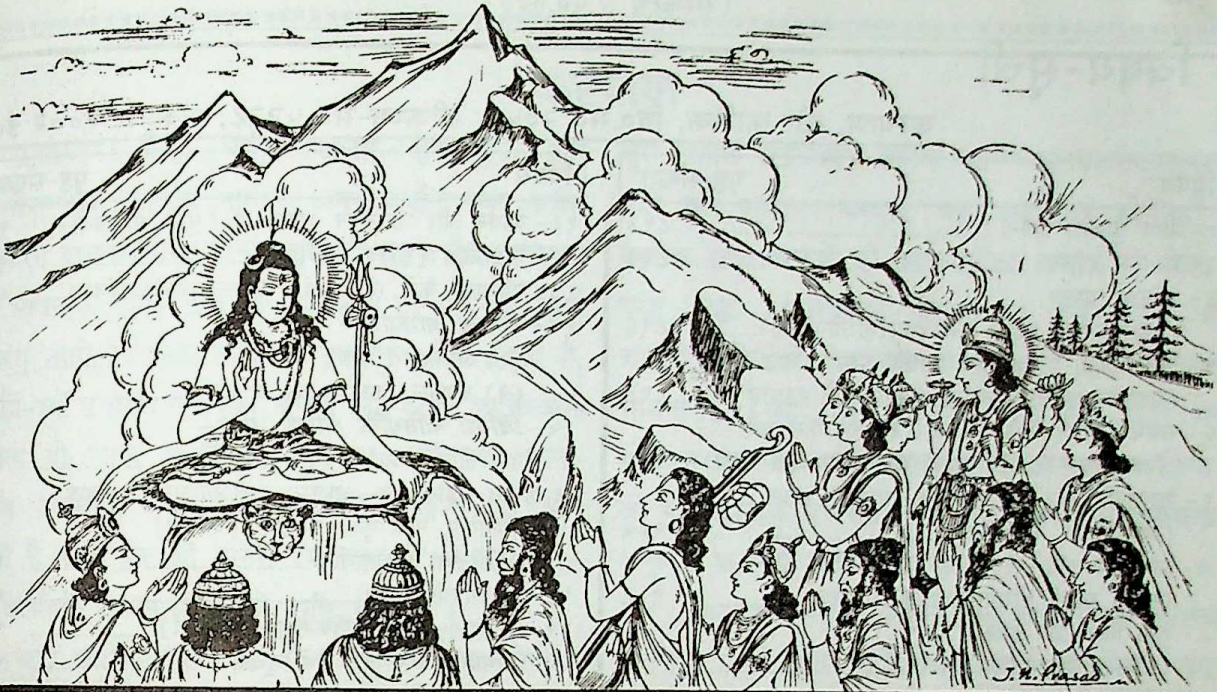
यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वर्ष ७६ | गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, अक्टूबर २००२ ई० | संख्या १०

पूर्ण संख्या ९११

दिव्य युगलसे प्रार्थना

श्रीराधा-माधव जुगल दिब्य रूप-गुन खान।
अबिरत मैं करतौ रहूँ प्रेम-मगन गुन-गान॥
'राधा-गोबिंद' नाम कौ करूँ नित्य उच्चार।
ऊँचे सुर तें मधुर मृदु, बहै दृगन रस-धार॥
करि करुना या अधम पै, करौ मोय स्वीकार।
पर्यौ रहूँ नित चरन-तल, करतौ जै-जैकार॥
मैं नहिं देखूँ और कौं, मोय न देखै और।
मैं नित देख्यौई करूँ, तुम दोउनि सब ठौर॥

—'भाईजी'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, अक्टूबर २००२ ई०

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

कल्याण

सावधान! कहीं धर्म, सदाचार, ईश्वरभक्ति और ज्ञान-वैराग्यके प्रचारके नामपर अपने व्यक्तित्वका प्रचार मत करने लगना। ऐसा होना बहुत ही सहज है। आरम्भमें शुद्ध भावनाके कारण प्रचारके विषयकी ही प्रधानता रहती है परंतु आगे चलकर ज्यों-ज्यों प्रचारका क्षेत्र बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों प्रचारके विषयकी गौणता और अपने व्यक्तित्वकी मुख्यता हो जाया करती है। भगवान्, धर्म और ज्ञान-वैराग्य आदिके स्थानपर प्रचारककी पूजा-प्रतिष्ठा होने लगती है और वह भी इसीमें रम जाता है। इसीसे नये-नये दलोंकी या सम्प्रदायोंकी सृष्टि होती है।

याद रखो—अवश्य ही जिस पुरुषके द्वारा लोगोंको लाभ होता है अथवा किसी हेतुसे भी लाभ होनेकी आशा या सम्भावना होती है, उसके व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा होती है और उसका प्रचार भी होता है। तथापि उसको तो सावधान रहना ही चाहिये। नहीं तो परिणाम यह होगा कि जिस विषयका प्रचार करनेके लिये उसने कार्यक्षेत्रमें पैर रखा था, उस विषयके प्रचारमें वह स्वयं ही बाधक हो जायगा और अपने व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठाके लिये लोकरञ्जनका अभिलाषी होकर अपने मूल उद्देश्यसे गिर जायगा।

याद रखो—शुद्ध भाव दीखनेपर भी, प्रचारक अपने मनमें मोहवश लोकरञ्जनकी आवश्यकताका अनुभव किया करता है। वह सोचता है कि भगवद्भक्ति आदिका प्रचार तभी होगा जब लोग मेरी ओर आकर्षित होकर मेरी बात सुनेंगे और लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये मुझे अपने रहन-सहनमें, कहनी-करनीमें, बोल-चालमें, व्यवहारमें, भाषामें, स्वरमें और भावभङ्गिमा आदिमें कुछ विशेषता लानी चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवद्भक्तोंके बाहर-भीतरके सभी आचरणोंमें साधारण लोगोंकी अपेक्षा ऐसी कुछ विलक्षणता अवश्य होनी चाहिये, जिससे उनके आदर्शके अनुसार अन्यान्य लोग अपना चरित्र-निर्माण कर सकें और भगवद्भक्तिका यथार्थ प्रचार हो। बुरे आचरणवाला भक्त, लोगोंके सामने बुरा आदर्श रखनेवाला होनेके कारण भगवद्भक्तिका प्रचार नहीं कर सकता। वस्तुतः वह भगवद्भक्त ही नहीं है; क्योंकि सच्चे भक्तमें बुरे आचरणोंका अभाव ही होता है। परंतु शुद्ध आचरणोंकी विलक्षणता स्वाभाविक होनी चाहिये, लोगोंको दिखानेके लिये नहीं। जहाँ दिखानेकी भावना है (वह एक प्रकारका दम्भ है), वहीं मनमें मोहवश गुप्तरूपसे व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठाका मनोरथ छिपा है जो भगवद्भक्तिके प्रचारके लिये लोकरञ्जनकी आवश्यकताका अनुभव करानेमें प्रधान हेतु होता है।

याद रखो—लोकरञ्जनकी इच्छावाला मनुष्य शुद्धाचारी ही हो, ऐसी बात नहीं है। उसको तो अपने बाहरी दिखावेपर अधिक ध्यान रखना पड़ता है, इसीसे वह सुन्दर स्वरमें गाना, मधुर भाषामें व्याख्यान देना, नाचना, लोगोंको हँसाने-रुलानेके उद्देश्यसे विभिन्न प्रकारके स्वरोंमें बोलना, भाव बताना, मुखाकृति बनाना, ध्यानस्थकी भाँति बैठना आदि न मालूम कितनी बातें करता है। उसका ध्यान रहता है कि मेरे गायन, भाषण, व्याख्यान, सत्सङ्गसे और मेरी ध्यानस्थ मूर्तिसे लोगोंका मेरी ओर खिंचाव हुआ या नहीं। गान, नृत्य, भावप्रदर्शन आदि चीजें कलाकी दृष्टिसे बहुत उपादेय हैं और किसी सीमातक प्रचारकी दृष्टिसे भी इनकी उपयोगिता है, परंतु जहाँ और जितने अंशमें इनका उपयोग केवल लोकरञ्जनके लिये होता है, वहाँ उतने अंशमें इस लोकरञ्जनके पीछे, किसी भी हेतुसे हो, अपने व्यक्तित्वके प्रचारकी वासना छिपी रहती है। तुम यदि साधक पुरुष हो अथवा अपना पारमार्थिक कल्याण चाहते हो तो ऐसी वासनाको मनद्वारा कहीं किसी कोनेमें भी मत रहने दो। भगवान्की भक्ति और सदाचारका प्रचार भगवत्सेवाके लिये ही करो।

याद रखो—सच्ची बात तो यह है कि भगवद्भक्ति, ज्ञान और वैराग्य प्रचारकी चीज है ही नहीं। योग्य अधिकारीके द्वारा ही योग्य अधिकारीको इनका उपदेश होता है और तभी अच्छा फल भी होता है। 'शिव'

भक्तिका प्रभाव*

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्‌की भक्तिकी बड़ी महिमा है। भक्तिका अन्तिम फल प्रेम है। भगवान्‌का नाम जपनेके समय स्वरूपका निरन्तर ध्यान करना चाहिये। निराकारके उपासकको यह खयाल रखना चाहिये कि परमात्मा निराकार आकाशकी भाँति सब भूतोंमें व्यापक है। जो साकारका उपासक है, वह सर्वशक्तिमान् परमात्माको अपने साथमें देखकर ध्यान करे। भक्तिसे सब दोषोंका नाश स्वत: ही हो जाता है—

जबहिं नाम हिरदे धर्‌यो भयो पाप को नाश।
जैसे चिनगी अग्निकी परी पुराने घास॥

× × ×

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥

(रा०च०मा० ७। १२०। ६, ९)

भीतरी और बाहरी दुष्ट उसके अंदर नहीं जाते। राज्यके सिपाही हमें तंग करते हैं, पर राज्यके हाकिमके सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। काकभुशुण्डिजीके आश्रममें चार योजनतक ये दोष नहीं आते थे। वहाँ माया और मायाका कटक पासमें नहीं जाता था। उनके आश्रमकी ऐसी महिमा थी।

गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥

(रा०च०मा० ७। १२०। ७)

भक्तिका ऐसा प्रभाव है। प्रह्लादके लिये विष अमृत बन गया। मीराबाईके लिये विष अमृत हो गया। इस कलिकालमें भक्तिका साधन सुगम और सरल है। सबको भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये। भक्तिमें '**भज्**' धातु है। '**भज्**' माने भजन करना। सेवा, पूजा सब भक्तिका अङ्ग है। भगवान्‌की आज्ञाका पालन करना सबसे बढ़कर भक्ति है। भगवान् कहते हैं—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥

(रा०च०मा० ७। ४३। ५)

अर्जुन भगवान्‌की आज्ञाका पालन करनेवाला था, तभी भगवान्‌ने '**भक्तोऽसि मे सखा चेति**' कहा। भगवान्‌ने पूछा—क्या तुम्हारा मोह नष्ट हुआ? अर्जुनने कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

(गीता १८। ७३)

हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अत: आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

'मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा' ऐसा कहा। यही सबसे बढ़कर भगवान्‌की भक्ति है। सेवा, आज्ञापालन, भगवान्‌के विग्रहका मानसिक पूजन करना—यह सब भक्तिका अङ्ग है।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

(गीता ९। ३४)

इस श्लोकार्धमें चार बातें हैं। मनसे भगवान्‌का ध्यान, वाणीसे भगवान्‌के नामका जप, हाथोंसे पूजा और शरीरसे साष्टाङ्ग प्रणाम—ये भक्तिके चार प्रधान अङ्ग हैं। जो ऐसा करता है वह निश्चय ही मुझे प्राप्त हो जाता है। इनका और अधिक विस्तार करें तो भक्तिके नौ अङ्ग हो जाते हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भा० ७। ५। २३)

'भगवान् विष्णुके नाम, रूप, गुण और प्रभावादिका श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान्‌की चरणसेवा, पूजन और वन्दन एवं भगवान्‌में दासभाव, सखाभाव और अपनेको समर्पण कर देना—यह नौ प्रकारकी भक्ति है।'

यह प्रह्लादजीने पिताके प्रति कहा था। इन सबका फल है भगवान्‌में प्रेम। भगवान् केवल प्रेम देखते हैं। बाहरका आडम्बर नहीं देखते। अतएव जिस किसी प्रकारसे हो, प्रेम होना चाहिये। प्रेममें दम्भ, कपट, पाखण्ड नहीं ठहरते। यदि ये हों तो दूर भाग जाते हैं। आसुरी सम्पदाके कोई लक्षण नहीं ठहर सकते। तुलसीदासजीने कहा है—

* प्रवचन—दिनाङ्क १९। ४। १९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
(रा०च०मा० ७। १३७। १)

'**भक्तिप्रियो माधवः**' भगवान् प्रेमसे मिलते हैं। प्रेम हो गया तो भगवान् उसके पीछे-पीछे फिरते हैं, भगवान् प्रेमीके अधीन हो जाते हैं—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
(रा०च०मा० १। २६। ६)

भगवान्‌का कथन है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
(गीता ४। ११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उन्हें उसी प्रकार भजता हूँ। भगवान् प्रेमसे वशमें हो जाते हैं और प्रेमसे मिलते हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
(रा०च०मा० १। १८५। ५)

हृदय दियासलाईकी पेटी है और भगवान्‌का नाम दियासलाई है। उसको घिसनेसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। एक वैधी भक्ति है और दूसरी प्रेमलक्षणा, इन सबका फल प्रेम है।

प्रेमरसमें मग्न होनेपर अपने-आपका होश नहीं रहता। ऐसे प्रेममें मस्त होकर प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद—तीनों एक हो जाते हैं। संसारका स्नेह प्रेम नहीं, आसक्ति, लगाव, लाग, राग है और वह प्रेम बिलकुल विशुद्ध है, अनन्य और पूर्ण है। प्रेमका स्वरूप उत्तरोत्तर बढ़ता है। प्रभुके गुण, प्रभाव, स्वरूपको देख-देखकर प्रेम बढ़ना चाहिये। सारे संसारको आह्लादित करनेवाले भगवान्‌को अपने आचरण, प्रेमके व्यवहारसे मुग्ध कर देना—यही भगवान्‌में रमण करना है। नेत्रोंसे देखना, हाथोंसे सेवा करना, वाणीसे गुणगान करना, कानोंसे उनके नाम, गुण, प्रभावको सुनना, बुद्धिसे उनका निश्चय करना, मनसे मनन करना—ये सब इन्द्रियोंद्वारा रमण है। उनके गुणोंको याद करके दर्शन, स्पर्श, भाषण, चिन्तन करना—ये सब अमृतमय हैं, उन्हें सुन-सुनकर मुग्ध होये। ऐसा माने, मानो अमृतका पान कर रहे हैं, ऐसा अनुभव करे यह रसास्वाद लेना है। भगवान्‌की गन्ध, दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप—ये सब अमृतमय हैं। भगवान् प्रेमकी मूर्ति हैं। प्रेमी, प्रेमास्पद और प्रेम; भक्ति, भक्त और भगवान्—तीनों एक हैं। जातिसे एक हैं और स्वरूपसे अलग-अलग हैं। तीनों ही चेतन हैं। पहले तो यह मानसिक होता है फिर असली प्राप्तिरूप फल प्राप्त हो जाता है। भगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
(गीता १०। ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भगवान्‌के भजनका फल है भगवान्‌की प्राप्ति। भगवान् मिल जाते हैं उस समय क्रीड़ा और भी अलौकिक हो जाती है। उस समय भगवान्‌की चेष्टा भक्तको आह्लादित करनेके लिये और भक्तकी चेष्टा भी भगवान्‌को आह्लादित करनेके लिये होती है। अतएव हमारी सब चेष्टा भगवान्‌को मुग्ध करनेवाली हो और भगवान्‌की सब चेष्टाओंको देख-देखकर हमें मुग्ध होना चाहिये।

भगवान्‌की शरण होना सबसे उत्तम बात है। भगवान्‌की शरण होनेपर सब क्रिया और अपने-आपका भगवान्‌के प्रति समर्पण होता है, फिर उसके द्वारा कोई पापकर्म क्रियामें नहीं आता। उसकी जानकारीमें कोई पापकर्म नहीं बनता। स्वभावदोषके कारण यदि पाप बन जायगा तो उसका दण्ड नहीं मिलता। उसके लिये भगवान्‌के यहाँ छूट है, अतएव हमें हर प्रकारसे भगवान्‌की शरण होना चाहिये।

दानव-देव, अहीस-महीस, महामुनि-तापस, सिद्ध-समाजी।
जग-जाचक, दानि दुतीय नहीं, तुम्ह ही सबकी सब राखत बाजी॥
एते बड़े तुलसीस! तऊ सबरीके दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज! भए हौ गरीबनेवाज गरीब नेवाजी॥

नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थके परम रहस्यज्ञ श्रीराम

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

वस्तुतः नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थके परम रहस्यको मात्र श्रीराम ही जानते हैं, अन्य कोई नहीं। यथा—

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु।

(रा०च०मा० २।२५४।५)

भगवती सीताके वनवासमें नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थका यथार्थ सामञ्जस्य हुआ है। लोकतन्त्रात्मक शासनकी यही विशेषता होती है कि शासनकी सम्पूर्ण गतिविधियाँ जनसमूहकी इच्छाका अनुसरण करनेवाली होनी चाहिये। अपने या भाई-भतीजोंके स्वार्थवश, शासन कभी जनसामान्यकी इच्छाको नहीं ठुकरा सकता। इस दृष्टिसे शासनकी सर्वोच्च सत्ता जनतामें निहित मानी जाती है। धर्मनियन्त्रित राजतन्त्रमें भी लोकतन्त्रके ये गुण बहुत उत्कृष्ट रूपमें व्यक्त होते हैं। भगवान् रामने अपनी प्रतिज्ञामें इन्हीं भावोंको व्यक्त किया है—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

'स्नेह, दया, सुख आदि, किंबहुना हृदयेश्वरी जनकनन्दिनीको भी लोकरञ्जनके लिये त्यागना पड़ेगा तो भी मुझे व्यथा न होगी। आत्मा या आत्मीय जनोंके स्वार्थवश अविवेकी शासक जनताकी भावनाओंकी उपेक्षा करते हुए अर्थदण्ड अथवा कारागारदण्डका विधान करते हैं। अस्त्र-शस्त्र एवं तोप-बन्दूक आदिके बलपर जनताका मुख बंद करनेका असफल प्रयत्न करते हैं, परंतु समझदार शासक जानता है कि मात्र दण्ड-विधानसे जनताका मुँह बंद नहीं किया जा सकता और यदि बलपूर्वक मुँह बंद करनेका प्रयत्न किया भी गया तो फिर हजारों-हजारों मुखोंसे विरोधी आवाजें ही निकलेंगी। अपनी दुर्नीति बदलकर ही जनताका मुँह बंद किया जा सकता है, दण्ड-भयसे नहीं।

यद्यपि महाराज्ञी श्रीजनकनन्दिनी सीताके विरोधमें बहुमत नहीं था, कुछ ही लोगोंको इस बातपर आपत्ति थी कि रावणकी लङ्कामें कई महीनोंतक रहनेवाली सीताको श्रीरामजीने राजमहलमें क्यों रख लिया, इस प्रकार तो हमारे घरकी स्त्रियाँ भी बाहर रहकर पुनः घरोंमें रहने लग जायँगी और इससे मर्यादा अवश्य ही भङ्ग हो जायगी। उनको यह नहीं विदित था कि श्रीसीताजी अनन्त ब्रह्माण्डोंकी जननी, आनन्दसिन्धु श्रीरामचन्द्रके माधुर्यसार-सर्वस्वकी अधिष्ठात्री महाशक्ति थीं। उन्होंने लङ्काका अन्न-जल-फल ग्रहण किये बिना ही, इन्द्रप्रदत्त विशिष्ट चरुको एक ही बार ग्रहणकर, लङ्कामें कालयापन किया था। वे भानुकी प्रभा, चन्द्रकी चन्द्रिका एवं गङ्गाकी पवित्रताके तुल्य आनन्दसिन्धु भगवान् श्रीरामकी माधुर्यसार-सर्वस्वरूपा ही थीं। पुनश्च देवताओं, ऋषियों, वानरों एवं राक्षसोंके सामने श्रीसीताजीने अग्नि-प्रवेश किया और सबके समक्ष साक्षात् वैश्वानर अग्निने उनके पावित्र्यको प्रमाणित किया था। श्रीब्रह्मा एवं श्रीशिवने उनके पावित्र्यको परिपुष्ट किया था; तथापि उनका वर्णन श्रीरामके पक्षकी ओरसे होनेमें शासकीय प्रचारमात्र समझा जा सकता था। अतः श्रीरामने बहुमत नहीं, वरन् अल्पमतका भी आदर करते हुए श्रीसीताको अरण्यवास दिया और निष्पक्ष वीतराग महर्षियोंको अवसर दिया कि वे दूध-का-दूध और पानी-का-पानीके समान अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा प्रजाके सम्मुख वस्तुस्थिति रखें और हुआ भी ऐसा ही। जिस वनमें सीताको निर्वासित किया था वहाँसे कुछ दूर महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम था। उनके कुछ ब्रह्मचारी छात्र समिधा, कुश आदि लेनेके प्रसङ्गसे उधर पहुँच गये और उन्होंने ही उस अलौकिक दिव्य महाशक्तिके दर्शन एवं रोदनकी सूचना महर्षिको दी। महर्षि प्राचेतस—वाल्मीकिने अपने ध्यानयोगसे वस्तुस्थितिको समझकर सीतासे कहा—'पुत्रि! तुम्हारे पिता जनक मेरे मित्र हैं, तुम्हारे श्वशुर चक्रवर्ती दशरथ भी मेरे शिष्य थे, अतः पितृगृहतुल्य मेरे आश्रममें चलकर रहो।' श्रीसीता महर्षिके पीछे-पीछे चलकर आश्रममें आयीं, महर्षिने आश्रमकी ऋषि-पत्नियोंको उनकी देख-रेख, रक्षण-पोषण आदिके लिये नियुक्त किया। वहींपर उनके लव और कुश नामक

दो पुत्ररत्नोंका जन्म हुआ, जिनका संस्कार, शिक्षण-रक्षण सब महर्षिकी ही देख-रेखमें हुआ।

धर्मधुरन्धर चक्रवर्ती नरेन्द्र राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रद्वारा निर्वासिता सीताको अपने आश्रममें प्रश्रय देते हुए महर्षिने अपने उत्तरदायित्वको खूब समझ लिया था और उस मिथ्याभिशापका समूलोन्मूलन कर देनेके लिये वे कृतसंकल्प थे। विश्वविधाता ब्रह्मा भी यह सब महर्षि वाल्मीकिके द्वारा ही कराना चाहते थे। तमसाके तटपर विहारपरायण क्रौञ्च-युग्ममेंसे व्याधद्वारा क्रौञ्चके मारे जानेपर क्रौञ्चीका करुण क्रन्दन सुनकर महान् क्लेशानुभूति करनेवाले महर्षिके सामने सीताके करुण क्रन्दनका दृश्य आ गया। पहलेसे ही करुणरसपूरित वाल्मीकिका हृदय इस दृश्यसे आहत होकर छलक पड़ा और वही शोक—करुणरस श्लोक बनकर महर्षिके मुखारविन्दसे विश्वकल्याणके लिये प्रस्फुटित हो आया—'**शोकः श्लोकत्वमागतः**' (वा०रा० १। २। ४०) शोक श्लोक बन गया।

श्लोक था—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

(वा० रा० १। २। २५)

भरद्वाज आदि शिष्योंने आदिकाव्यके इस प्रथम श्लोकको सुनकर धारण कर लिया। यह श्लोक लोकपितामह भगवान् ब्रह्माकी इच्छासे ब्राह्मी महाशक्ति सरस्वतीकी कृपासे व्यक्त हुआ था। श्लोकके ऊपरी अर्थमें तो निषाद (व्याध)-के लिये एक प्रकारका शाप ही है, यथा—'हे निषाद! तुम पुरुषायुष्यतक शान्ति या प्रतिष्ठा न प्राप्त कर सकोगे, क्योंकि तुमने क्रौञ्च-युग्ममेंसे एकको मार दिया है; परंतु अन्तरङ्ग अर्थ यह है कि रावण-मन्दोदरीरूप युग्म ही वे क्रौञ्चयुग्म थे। रामरूप लक्ष्मीपतिने ही रावणको मारा था। इस दृष्टिसे यह श्लोक आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण ही है, यथा—

हे मानिषाद अर्थात् लक्ष्मीपते! तुम '**शाश्वतीः समाः**' अनन्त कालतक प्रतिष्ठित रहो, क्योंकि तुमने रावण-मन्दोदरीरूप युग्ममेंसे एक रावणको मारकर वेद, धर्म, संस्कृति सबका ही रक्षण किया है।

अस्तु, महर्षिके हृदयमें उक्त दृश्यके कारण नितान्त क्षोभ था ही, आश्रममें लौट आनेपर भी वे उसी चिन्तामें निमग्न थे कि इतनेमें ही लोकपितामह ब्रह्माजी आश्रममें पधारे। महर्षिने पाद्य-अर्घ्य-मधुपर्कसे उनका पूजन किया और फिर रामवियुक्ता सीताके चिन्तनमें ही निमग्न हो गये।

ब्रह्माने बतलाया कि मेरी ही प्रेरणासे आदिकाव्य रामायणका यह प्रथम श्लोक आपके मुखसे प्रकट हुआ है। आप समाधिद्वारा राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, दशरथ, कौसल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा आदि सभीके हसित, भाषित, इङ्गित, चेष्टित आदिका प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर इसी प्रकारके श्लोकोंद्वारा राम-सीताके परम पवित्र चरित्रोंका वर्णन करें। मेरे प्रसादसे इस काव्यमें आपकी कोई भी वाणी अनृत न होगी—

'**न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥**'

इस प्रकार ब्रह्माकी प्रेरणासे महर्षिने समाधिजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा सीता एवं रामके सम्पूर्ण चरित्रका यथार्थ अनुभव कर दिव्य श्लोकोंमें शतकोटिप्रविस्तर रामायणका वर्णन किया। संवाददाताओं एवं टेलिप्रिंटरोंद्वारा भेजी गयी अथवा आँखों-देखी घटनाओंमें भी भ्रान्ति हो सकती है, परंतु ऋतम्भरा प्रज्ञाके द्वारा तो सर्वथा ऋत (सत्य)-का ही दर्शन होता है। और जगह तो काव्य-सौष्ठव आदिकी दृष्टिसे कुछ औपचारिक बातें भी लायी जाती हैं, परंतु यहाँ तो सीताचरित्र-वर्णनकी दृष्टिसे शुद्ध सत्यका ही वर्णन अपेक्षित था।

महर्षिने सीता-पुत्र लव और कुशका यथावत् संस्कार किया और वेद तथा धनुर्वेद, गान्धर्ववेद आदि उपवेदोंका भी उन्हें साङ्गोपाङ्ग शिक्षण दिया। तत्पश्चात् वेदोंके उपबृंहणके लिये ही रामायणका अध्यापन किया और तन्त्री (वीणा)-के ताल और स्वरके साथ संगीतरूपमें रामायणका अभ्यास कराया। वे दोनों ही बालक दीपसे उद्भूत दो दीपोंके समान ही सर्वथा श्रीरामके ही अनुरूप थे। सीताराममय दिव्य दम्पतिकी दिव्य दीप्ति एवं प्रभासे युक्त थे। अश्विनीकुमारद्वयसे भी अत्यधिक सुन्दर वे दोनों बालक जब स्वरसम्पदासे युक्त वीणा-वादनपूर्वक रामायणका गायन करते थे तो सभी मोहित हो जाते थे। अनेक बार उनका रामायण-गान सुनकर

ऋषिगण मन्त्रमुग्ध हो जाते एवं प्रेमविह्वल होकर कोई ऋषि अपना कमण्डलु तो कोई मेखला आदि पुरस्कारके रूपमें देने लगते थे।

श्रीरामके अश्वमेध यज्ञमें निमन्त्रित होकर महर्षि प्राचेतस—वाल्मीकि आश्रमवासियोंसहित नैमिषारण्य पधारे हुए थे। महर्षि दोनों बालकों (लव और कुश)-को फल-मूल भोजन कराकर कुछ साथके लिये भी दे देते थे और कहते कि जाकर अवधवासियोंको रामायण सुनाओ और भूख लगनेपर अपने ही फल खाना, प्यास लगनेपर अपने-आप ही नदी या कूपसे जल निकालकर पीना एवं किसीके कुछ देनेपर भी लेना नहीं। परंतु जो श्रद्धासे सुने उसे रामायण सुनाना।

महर्षिके आदेशानुसार दोनों बालकोंने अयोध्याकाण्डका ही प्रसङ्ग अवधवासियोंको सुनाना प्रारम्भ किया, जो भी इस प्रसङ्गको सुनता मन्त्रमुग्ध हो जाता। आँखों-देखी पुरानी घटनाओंका प्रत्यक्ष चित्र उनके सामने उपस्थित हो जाता था। कितना सुन्दर, सत्य, सरल एवं हृदयस्पर्शी था वह चरित्र-चित्रण, जिसे सुनकर सबको आश्चर्य हो जाता था! लोग बालकोंके गानसे प्रभावित होकर उन्हें बहुत कुछ देना भी चाहते थे, किंतु वे कुछ न लेते थे। यह समाचार रामदरबारमें भी गया। वहाँ भी सबको उस आश्चर्यजनक चरित्र-चित्रणके श्रवणद्वारा रसास्वादनकी उत्सुकता हुई। अश्विनीकुमारोंके तुल्य सुभग सीता-पुत्रोंने ऋषिकुमारोंके रूपमें, वहाँ भी अपने स्वर, संगीतसौष्ठव तथा सौम्य-सुन्दर-दिव्य आकृतिसे सबको प्रभावित कर दिया। उनके रामायण-गानसे राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, वसिष्ठादि महर्षि एवं अमात्यवर्ग आदि सभी मोहित हो उठे। श्रीरामचन्द्रने रामायण-गानके अन्तमें लक्ष्मणको आदेश दिया कि इन बालकोंको शतभार सुवर्ण एवं रत्न प्रदान किया जाय, परंतु उन्होंने तो परम निःस्पृहरूपसे स्पष्ट कहा कि हमलोग कन्दमूलफलाशी, वल्कलवसनधारी आश्रमवासी हैं, हमें आपके सुवर्ण-रत्नोंकी अपेक्षा नहीं। पुनश्च यदि आपलोगोंकी इच्छा हो तो हमलोग रामायण-श्रवण करा सकते हैं। विशेषरूपसे रामायण-श्रवणका प्रबन्ध किया गया। गण्यमान्य ऋषि, महर्षि, राजर्षि, चातुर्वर्ण्य प्रजाके विशेष प्रतिनिधि, देव, असुर, गन्धर्व सभी वहाँ उपस्थित हुए। उन दोनोंने लोकोत्तर सौन्दर्य, अद्भुत वेदवेदाङ्गपाण्डित्य, दिव्य वीणावादन और मनोहर स्वर, परम निःस्पृहता एवं अद्भुत त्यागसे सबके मनको वशमें कर लिया।

ऊँचे-से-ऊँचे गुण भी सस्पृहतासे फीके पड़ जाते हैं। सस्पृहकी अच्छी-से-अच्छी और सच्ची बातोंपर लोगोंको आदर एवं विश्वास नहीं होता, परंतु जो निःस्पृह एवं त्यागी होता है उसी वक्ताका जनतापर समुचित प्रभाव पड़ता है। फिर यहाँ तो कहना ही क्या? निःस्पृह परम विरक्त महर्षिकी ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा प्रत्यक्षदृष्ट **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** रामायण महाकाव्यका निःस्पृह ऋषिकुमारोंद्वारा गायन सुनकर सबको वर्णित घटनाके सम्बन्धमें पूर्ण विश्वास हो गया। स्थालीपुलाकन्यायसे सम्पूर्ण चरित्रकी सत्यतामें सबका विश्वास हो गया। अयोध्याकाण्डकी सत्य घटनाओंको सुनकर अरण्य, किष्किन्धा एवं लङ्काकाण्डके चरित्र-श्रवणकी सबको उत्कट उत्कण्ठा हुई। सीता-चरित्रकी जिज्ञासा भी जागरूक थी ही। सबने सत्य घटनाओंको मन्त्रमुग्धकी भाँति सुना और श्रद्धा तथा विश्वाससे भगवती सीताके परम पवित्र चरित्रकी प्रशंसा की। कुटिलोंको भी अपनी दुर्भावनापर पश्चात्ताप हुआ।

'सीतायाश्चरितं महत्' (वा० रा० १।४।७)-के अनुसार श्रीरामायणमें प्रधानरूपसे सीता-चरित्रका वर्णन था, परंतु पतिव्रता सीताका चरित्र तबतक अपूर्ण ही रहता जबतक उनके पति भगवान् रामके चरित्रका वर्णन न होता। अतः उसमें रामचरित्रका वर्णन भी किया गया।

यह वर्णन राजकीय प्रचारमात्र न था, किसी राजकीय कविकी काव्य-कल्पना न थी, किंतु यह थी राज्याश्रयसे दूर रहकर, राजान्नसे बचकर, कन्दमूल-फल तथा वल्कलवसनपर निर्भर, तपोनिष्ठ, समाधिसम्पन्न महर्षि प्राचेतस—वाल्मीकिकी समाधि-भाषा, जिसका गान कर रहे थे उन महर्षिके ही परम शिष्य, परम विद्वान्, परम त्यागी, वनवासी देवीके पुत्र लव और कुश। ऐसी स्थितिमें जनताका सुस्थिर विश्वास क्यों न होता और कुटिल हृदयोंके भी काले कल्मष उससे क्यों न धुल जाते! सभीके हृदय पिघल गये, कण्ठ गद्गद हो गये, अङ्ग रोमाञ्चकण्टकित

हो उठे, आँखोंसे आनन्दाश्रु एवं शोकाश्रुकी धाराएँ बह निकलीं। राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, माताएँ एवं परिवारके अन्य लोग भी प्रेम-समुद्रमें निमग्न हो गये। वसिष्ठादि ऋषिगण भी प्रेमोद्रेकमें अधीर हो उठे। महाशक्ति भगवती चिदानन्दस्वरूपा सीताके उज्ज्वल चरित्रने सबके अन्त:करण एवं अन्तरात्माको उद्द्योतित कर दिया। महर्षि वाल्मीकिके रामायण महाकाव्यसे सबको स्पष्ट विदित हुआ कि भगवती सीताके असाधारण तेजके सामने रावणका प्रभाव सर्वथा नगण्य था। श्रीसीता अपने अखण्ड पातिव्रत तेजके प्रभावसे रावणकी सत्तामें रहती हुई भी रावणको तृणतुल्य समझती थीं। उन्होंने कहा भी था—

'रे दुष्ट रावण! सावधान, मेरे भगवान् रामका संदेश एवं आदेश न होने और अपने तपस्या-पालनके अभिप्रायसे मैं तुझे अपने तेजसे भस्म नहीं कर रही हूँ। अन्यथा मैं क्षणभरमें तुम्हें अपने भस्माई तेजसे भस्म कर सकती हूँ।'

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥

(वा० रा० ५। २२। २०)

ऐसे अवसरोंपर रावणमें सीताजीके सामने स्थिर रहनेकी हिम्मत नहीं रहती थी। यह कोई कवि-कल्पना नहीं, अपितु महर्षिकी समाधि-भाषाकी सत्य वाणी है।

वहीं कुछ क्षणोंके पश्चात् जब राक्षसियोंने सीताको यह समाचार सुनाया कि 'सीते! जो वानर आपके पास आया था, वह पकड़ लिया गया और उसकी पूँछमें घृत एवं तेल-सने वस्त्र लपेटकर आग लगा दी गयी' तो उन्होंने अग्निसे कहा—'अग्ने! यदि मैंने समुचितरूपसे गुरुशुश्रूषा की है और ठीक तपस्या तथा पातिव्रत-धर्मका परिपालन किया है तो तुम हनुमान्के लिये शीतल हो जाओ—

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥

(वा० रा० ५। ५३। २७)

भगवती सीताके आदेशानुसार दहनशील अग्निदेव शीतल हो गये। श्रीहनुमान्को आश्चर्य हो रहा था कि मेरी पुच्छाग्निसे सम्पूर्ण लङ्का भस्मीभूत हो रही है, परंतु मेरी पूँछमें तो उष्णताका लेश भी नहीं प्रतीत हो रहा है। हनुमान्ने निश्चय किया था कि यह महाशक्ति सीताके तप एवं त्याग तथा पातिव्रतका ही प्रभाव है।

जो सीता अपने प्रभावसे अग्निको ठण्डा कर सकती थीं वे अवश्य ही अपने तेजसे रावणको भस्म कर सकती थीं, यह बात सरलतासे समझी जा सकती है।

सीताजीके विरोधी कुटिल समाजने भी उनका भक्त होकर पश्चात्तापकी अश्रुधाराओंसे अपने कल्मषोंको धो डाला। यह थी महर्षि वाल्मीकिकी लोकोत्तर सुमधुर कृतिकी कुशलता। वे अपने उद्देश्यमें पूर्ण सफल हुए और यह थी श्रीरामचन्द्रजीकी नीति, जिसके फलस्वरूप ये घटनाएँ घटित हुईं। जो काम किसी दण्डविधानसे कभी सम्भव नहीं था वह उनकी नीतिसे अनायास सुसम्पन्न हुआ। फिर तो वसिष्ठजीने भी अपनी तपस्या एवं योगबलके प्रभावसे सत्य वस्तुका साक्षात्कार करके जनताको सीताचरित्रकी निर्मलताका ज्ञान कराया। त्रिजटा एवं विभीषण-पत्नीने भी सीताके परम पवित्र चरित्रका बखान किया। अन्तमें परमानन्द सच्चिन्मयी पराम्बा सीताका अपने परम दिव्यरूपसे महामहिम वैभवशालिनी माधवी देवीके अङ्कमें प्रत्यक्ष प्राकट्य भी सबकी भ्रान्तियोंको मिटाकर उनकी परम उपास्यताका प्रमाण बना। (क्रमशः)

प्रेषक—श्रीबिहारीलालजी टाँटिया
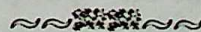
बरसत आनँद-रस कौ मेह।
स्यामा-स्याम दुहुन कौ बिगसित दिव्य मधुर रस नेह॥
सरस रहत सुचि दैन्य-भाव तैं कबहुँ न उपजत तेह।
निजसुख-त्याग परस्पर के हित, सब सुख साधन येह॥
भाव रहत नित बस्यौ रसालय, रस नित भाव-सुगेह।
नित नव-नव आनंद उदय, नहिं रहत नैक दुख-खेह॥

(पद-रत्नाकर)

सबमें भगवान् कैसे देखें और व्यवहार कैसे करें

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान् एक हैं, दो नहीं। सत्य एक है, दो नहीं। इस सत्यको प्राप्त करनेके विभिन्न मार्ग हैं और मार्ग अपनी-अपनी दिशासे अलग-अलग चलते हैं। मार्गोंकी एकता असम्भव है। कोई यह कहे कि रामेश्वरम्से ऋषिकेश आनेवाला और आसामसे ऋषिकेश आनेवाला एक मार्गसे आ जाय तो यह पागलपन है, यह कभी सम्भव ही नहीं। इसी प्रकार साधनमें भी एकता सम्भव नहीं। साधनमें एकता होती नहीं, होगी नहीं। विभिन्न रुचि है, विभिन्न अधिकार है, विभिन्न बुद्धिका स्तर है, अलग-अलग समझ है, किसीकी बुद्धिमें बड़ी सूक्ष्मता है, किसीकी बुद्धि स्थूल है, किसीका विचार-प्रधान जीवन है तो किसीका भाव-प्रधान। अतः सबके लिये साधन एक-सा नहीं हो सकता, परंतु साध्य एक होता है और परमार्थमें तो साध्य दो है ही नहीं।

इसलिये किसी भी दूसरेकी बातका खण्डन करे नहीं, उसे नीचा माने नहीं, अपनेको ऊँचा मानकर अभिमान करे नहीं, अलग माने नहीं और अपनेवालेको छोड़े नहीं। रामका उपासक यह माने कि शिवके नाम-रूपसे, विष्णुके नाम-रूपसे, देवीके नाम-रूपसे, सूर्यके नाम-रूपसे, ब्रह्मके अरूप-अनामसे, ईसाइयोंके Almighty God नामसे, मुसलमानोंके अल्लाह-खुदाके नामसे—एक ही सत्यका सब जगह पूजन होता है। अपनी आँखसे देखनेपर उसे सत्यके स्वरूपमें कहीं-कहीं अतारतम्य भले ही मालूम पड़े, परंतु वस्तुतत्त्व जो सत्य है वह दो नहीं है और उस सत्यको प्राप्त करनेके विभिन्न मार्ग हो सकते हैं। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जिस मार्गपर हमलोग चल रहे हैं उस मार्गपर चलनेमें हम कहीं गिर तो नहीं रहे हैं, उलटा मार्ग तो नहीं है। वस्तुतः उलटा मार्ग तो वही है जिससे हमारे जीवनमें आसुरी सम्पत्ति बढ़ने लगे। भोगोंकी अभिलाषा हो और उनमें अनुरक्ति बढ़ने लगे, बुरे कामोंमें प्रवृत्ति और उत्साह होने लगे, भगवान्से सम्पर्क हटने लगे, राग-द्वेष विशेष पुष्ट होने लगे तो समझना चाहिये कि कहीं-न-कहीं हमारे मार्गमें त्रुटि है, सुधार अपेक्षित है। हिमालयकी ओर चलें तो ठंडक मिलेगी ही। इसी प्रकार भगवान्की ओर चलते रहें तो धीरे-धीरे दैवी-सम्पत्तिके दर्शन होंगे ही। इतना-सा सावधान रहे फिर अपने मार्गपर चलता रहे। दूसरे मार्गकी ओर न देखे और न उसका खण्डन करे। यही सबसे अच्छी नीति है।

लोग भगवन्नाम-जपके लिये पूछते हैं कि नाम कौन-सा जपें? इसका उत्तर यही है कि जो अपनेको अच्छा लगे, वही जपें। अपने यहाँ हिंदू शास्त्रोंमें, हिंदू ग्रन्थोंमें नामकी बड़ी महिमा है और विभिन्न ग्रन्थोंमें भगवान्के सभी नामोंका यशोगान किया गया है। विष्णु, राम, शिव, हरि—न मालूम कितने भगवान्के नाम हैं, अनन्त। तुलसीदासजी महाराजने बड़ी सुन्दर बात बतायी है कि राम-नाम ही सर्वोपरि है। चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि श्रीकृष्ण-नाम सर्वोपरि तो निश्चित ही है। क्या हर्ज है? एकके अनेक नाम, जिसको जो प्रिय लगे उसके लिये वह सर्वोपरि और यह बात ठीक भी है। यही बात भगवान्के रूपके सम्बन्धमें भी है। भगवान् कृष्णका उपासक यह समझे कि शिवके उपासक, रामके उपासक, विष्णुके उपासक—ये सब मेरे ही कृष्णकी अन्य नामोंसे उपासना कर रहे हैं। उनका खण्डन नहीं करना चाहिये और अपने अभीष्ट देवको छोड़ना भी नहीं चाहिये। तुलसीदासजी महाराजने श्रीकृष्ण-गीतावलीमें श्रीकृष्णकी बाललीला और निकुञ्जलीलाके कुछ ऐसे सुन्दर पद लिखे हैं मानो दूसरे सूरदास बोल रहे हों। उनके मनमें श्रीकृष्ण और राममें कोई विरोध रहा हो, ऐसी बात नहीं है। किसी तत्त्वज्ञाताके मनमें विरोध रह ही नहीं सकता। पर तुलसीदासजी जब भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके श्रीविग्रहके सामने पहुँचे तब उनके त्रिभङ्गललित, मुरली-मनोहर मयूरमुकुटवाले स्वरूपको देखा और मुग्ध हो गये, प्रसन्न हो गये, बोले—

'कहा कहूँ छबि आजु की भले बने हो नाथ।'

हे नाथ! हे राघवेन्द्र! आजकी छवि क्या कही जाय।

यह तो नयी छवि देखनेमें आ रही है। धनुषके बदलेमें मुरली है और रत्नकिरीटके बदलेमें आपके मस्तकपर यह मयूरपिच्छ शोभा पा रहा है। उन सीधे-सादे खड़े तने हुए राजकुमारके बदलेमें यह त्रिभङ्गललित—तीन जगह टेढ़ लिये खड़े हुए हैं—बड़ा सुन्दर रूप है पर—

'तुलसी मस्तक तब नवे जब धनुष बाण हो हाथ॥'

महाराज! हैं तो आप वही, दूसरे नहीं हैं, बड़े सुन्दर हैं, परंतु नाथ! अगर मुझसे सिर झुकवाना है तो धनुष-बाण ले लो हाथमें। और तब—

'मुरली मुकुट दुराय के नाथ भये रघुनाथ।'

भक्त ऐसा कहते हैं, चाहे यह कल्पना हो पर सिद्धान्त सत्य है। भगवान्‌के किसी रूपमें परायापन न करे और जिस रूपकी उपासना करे उसे छोड़े नहीं। यह सिद्धान्तकी बात है। यदि बार-बार मनुष्य अपने साधनको बदलता रहेगा तो साधनामें वह सिद्ध नहीं हो सकता। यदि साधक बार-बार मार्ग बदलता है तो किसी भी मार्गपर आगे नहीं बढ़ सकता। मार्गका निश्चय करनेके समय ही साधक ठीक निश्चय कर ले और उस मार्गपर आगे बढ़ता रहे तो उसे मार्ग बतानेवाले मिलते रहेंगे एवं वह अग्रसर होता रहेगा।

भगवान्‌को प्राप्त करनेके अनेक मार्ग हैं—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

समुद्र एक ही है और नदियाँ विभिन्न मार्गोंसे समुद्रके अंदर अपनेको समा देनेके लिये—मिला देनेके लिये टेढ़ी-सीधी चली जा रही हैं। इसी प्रकार भगवान्‌की ओर सब चलते हैं, चलना चाहिये। किसीका विरोध न करे और अपनेवालेको छोड़े नहीं।

सर्वत्र भगवद्दर्शनके लिये तीन बातें हैं, सर्वोत्तम बात तो यह है कि सबमें अपने भगवान्‌को देखे—ब्राह्मण हो या चाण्डाल, पशु हो या पक्षी, जड़ हो या चेतन। यह एक सुन्दर साधन है, अगर हमलोग कर सकें तो बड़ा सुन्दर, दिनभर भगवान्‌की पूजा होगी। जितने लोगोंसे हमारा व्यवहार पड़े—कम-से-कम व्यवहारसे आरम्भ करें। घरमें शुरू कर दें। छोटा बच्चा सामने आया, माँके सामने आया, पिताके सामने आया तो उसके सामने आते ही मनमें यह धारणा कर ले, याद कर ले कि इस बच्चेके रूपमें मेरे प्रभु खड़े हैं। मन-ही-मन प्रभुको प्रणाम करे। मन-ही-मन बच्चेको प्रणाम करे और प्रणाम करके यह कह दे कि इस समय आप इस बच्चेके रूपमें हैं और मैं पिताके रूपमें हूँ। स्वाँगके अनुसार अभिनय होगा। मैं पिताके रूपमें व्यवहार करूँगा आपसे और आप पुत्रके रूपमें, परंतु नाथ! व्यवहार करते समय मैं भूलूँ नहीं कि इस रूपमें आप हैं। सफाई करनेवाली आ गयी तो उस रूपमें भगवान्‌को देखिये और हैं भगवान् निश्चित। उसके साथ खानेका आग्रह नहीं, पर उसको भगवान् समझनेका जरूर आग्रह है। उसे भगवान् मानिये और मन-ही-मन उसे प्रणाम कीजिये कि इस रूपमें नाथ! आप सामने खड़े हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अब आप सफाई करेंगे। इस समय आपका यह अभिनय है और मैं इस समय मालिक बनकर बैठा हूँ, पर इस कामको करते समय भी मैं पहचान सकूँ कि आप मेरे स्वामी हैं, दूसरे कोई नहीं। इससे उस सफाईवालेके साथ दुर्व्यवहार नहीं होगा। ऐसा नियम बना ले। इसको श्रीमद्भागवतमें 'मृत्युञ्जययोग' कहा गया है। एकादश स्कन्धके अन्तमें आया है कि गाय, गधा, सूअर, ऊँट—इन सबको दण्डवत् प्रणाम करे। हम चाहे शरीरसे दण्डवत् प्रणाम न करें, पर मानसिक रूपसे तो करें ही। महाराष्ट्रमें एक स्वामी हुए, उनका नाम था 'दण्डवत् स्वामी'। दण्डवत् स्वामी नाम इसीलिये पड़ा कि वे सबको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करते थे। दण्डकी भाँति—लकड़ीकी भाँति जमीनपर गिरकर प्रणाम करते थे। वैसा हम न करें परंतु यह अवश्य समझ लें, मान लें कि प्रत्येक रूपमें हमारे सामने भगवान् आते हैं, दूसरा कोई आता ही नहीं। इस भावसे हम घरमें व्यवहार शुरू करें तो वह बड़ी सुन्दर चीज होगी।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिनसे यह सब निकला और जो सबमें व्याप्त हैं—फैले हुए हैं—छाये हुये हैं, उन भगवान्‌का अपने कर्मके

द्वारा पूजन करे। तब घरमें, दूकानमें, कोर्टमें, गङ्गाजीके तीरपर, जंगलमें—जहाँ भी हम जायँगे वहाँ हमको भगवान् हमारे साथ और हमारी पूजा ग्रहण करनेके लिये तैयार मिलेंगे। हम निश्चय करें कि रातको सोते हुए नींदके द्वारा उनकी पूजा करेंगे। हम भोजन करते समय भोजन करनेकी क्रियाके द्वारा उनकी पूजा करेंगे। हम किसीसे बातचीत करते समय उस बातचीतके द्वारा भगवान्का पूजन करेंगे। बस, हमारा भाव स्वकर्मसे पूजा बन जाय और जिससे हम बात करें उसमें हमारी भगवत्-बुद्धि हो जाय। ऐसा यदि हो जाय तो दिनभर भगवान्के दर्शन, दिनभर भगवान्की पूजा, दिनभर भगवान्का संग प्राप्त होता रहेगा। दिनभर भगवान्की पूजाका यह एक सर्वोत्तम योग, तरीका, साधन है।

अतः सबमें भगवान्को देखें। यह अगर न हो तो दूसरा तरीका यह है कि सबमें अपने-आपको देखें। वह भक्तिकी भावना है और यह ज्ञानकी भावना कि सबमें अपनी आत्माको ही देखें—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता ६। २९)

आत्मामें समस्त प्राणी हैं। समस्त भूत आत्मामें और आत्मा समस्त भूतोंमें है। अन्वय-व्यतिरेकके द्वारा आत्मा ही ओत-प्रोत है। सारे प्राणियोंमें आत्मा भरी है और सारे प्राणी आत्मामें भरे हैं—इस प्रकार निरन्तर सबमें अपने-आपको देखें। इससे स्वाभाविक ही एक बड़ी सुन्दर चीज आयेगी जीवनमें—समस्त समता अपने-आप आ जायगी; चाहे व्यवहारमें भेद रहे और यह रहेगा भी। प्रायः यह कहा जाता है कि व्यावहारिक भेदको मिटा देना चाहिये, पर यह बात पागलपनकी है। पारमार्थिक भेद तो मिटाना आवश्यक है नहीं तो अज्ञान रहेगा। सोना सब समय सोना रहता है। गहना बना तब भी सोना और गहना गला दिया जायगा तब भी सोना, पर सोनेके बने हुए कंगन और हारमें नाम और रूपके अनुसार अगर भेद नहीं रखा जायगा तो लोग पागल कहेंगे और व्यवहार बनेगा नहीं। हाथके कंगन गलेमें नहीं आयेंगे और गलेका हार कोई हाथमें नहीं पहनना चाहेगा। एक-सा सोना अगर समान वजनका है तो एक दामका होगा। हमारे शरीरमें पैरसे लेकर चोटीतक आत्मा समान है। कहीं चोट लगी हमको लगी, कहीं दर्द हुआ हमको हुआ, कहीं सुख मिला हमको मिला। कोई बोले कि भई, जाड़ेमें सिर ढक लो, पैर मत ढको, पैर तो नीचे हैं, इन पैरोंको जाड़ेमें मरने दो। क्या हम इसके लिये तैयार हैं? पैर भी हम सिर भी हम। दोनोंमें आत्माकी समानता है, परंतु व्यवहारमें यहाँतक भेद होगा कि वक्तपर यदि कहीं गैगरीन हो जाय और ऊपरतक मवाद फैल जाय तथा डॉक्टर कहे कि पैर यहाँसे जरा काटना पड़ेगा तो हम कहेंगे कि भई, नहीं काटो। जहाँतक बने न काटो, परंतु अगर न काटनेसे ऊपरके सारे अंग सड़-गल जाते हों, नष्ट हो जाते हों तो काट दो। अपने पैरको हम अपने-आप कटाते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि इस पैरमें आत्मभावनामें कहीं कमी हो गयी। यह भेद होता है और व्यवहार-भेद तो होता ही है। पैरसे चलनेका काम होता है और मस्तिष्कसे सोचनेका काम। अब कहीं हम दिमागसे कह दें कि तुम पैरका काम करो और पैरसे कह दें कि तुम दिमागका काम करो तो दोनोंके काम बिगड़ जायँगे। काम होगा ही नहीं। आज भी साम्यवादी देशोंमें दिमागी काम करनेवाले वैज्ञानिक जो अन्वेषणकर्ता हैं क्या वे फावड़ा लेकर खेतोंमें जाते हैं? जायें तो काम हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार खेतोंके मजदूर, क्या वैज्ञानिक-आविष्कार कर सकते हैं? वे ऐसा नहीं कर सकते। रोटी सबको मिलनी चाहिये, कपड़े सबको मिलने चाहिये, सम्मान सबका बना रहना चाहिये, जिंदगी सबकी मूल्यवान् है, सबकी जिंदगीका पोषण होना चाहिये। ऐसा न करना पाप, घृणा करना पाप, नीचा समझना पाप; पर काम सबका एक-सा हो जाय, तब साम्यवाद आयेगा—यह कभी जगत्में आजतक आया नहीं, आयेगा नहीं, आ सकता नहीं। **[क्रमशः]**

~~~

जो मनुष्य ईश्वरके सिवा न किसीसे डरता है, न किसीकी आशा रखता है, जिसे अपने सुख-संतोषकी अपेक्षा प्रभुका सुख-संतोष अधिक प्रिय है, उसीका ईश्वरके साथ मेल है।

~~~

शरणागति और नाम-संकीर्तन—सर्वोपरि साधन

(श्रीहरिहरजी उपाध्याय)

भारतीय दर्शन पुनर्जन्मको मानता है। उसकी मान्यता है कि जीवको अपने शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है और इस प्रकार जन्म-मरणका चक्र तबतक चलता रहता है, जबतक जीवात्मा मुक्त नहीं हो जाता। सभी योनियोंमें जीवके साथ उसके पूर्वकृत कर्मोंका संचित संस्कार लगा रहता है, जिसे कर्मबन्धन कहा जाता है। मनुष्यको छोड़कर अन्य सभी योनियोंमें जीव अपने कर्मका फल भोगता है अर्थात् वे भोगयोनियाँ हैं, किंतु मनुष्य-शरीर मिलनेपर वह अपने सत्कर्मोंद्वारा अशुभ प्रारब्धोंमें परिवर्तन कर सकता है और नये शुभ संस्कारोंका निर्माण भी कर सकता है। इसीलिये कहा गया है कि मनुष्य-शरीर बड़े सौभाग्यसे मिलता है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥

(रा०च०मा० ७।४३।७-८)

इस सुरदुर्लभ मानव-शरीरको पाकर जिसने अपना परलोक नहीं बना लिया, उसके जैसा भाग्यहीन कौन होगा? यह मानव-शरीर जीवको कभी उसके कर्मके फलस्वरूप मिलता है और कभी-कभी ईश्वर अपनी अहैतुकी कृपासे उसे यह शरीर प्राप्त करा देते हैं। जिससे वह सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होकर अपना कल्याण कर सके—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(रा०च०मा० ७।४४।६)

जीवको यह देवदुर्लभ शरीर देकर परमेश्वर उससे यह अपेक्षा करते हैं कि वह इस अवसरका लाभ उठाकर अपना उद्धार करेगा और अपने पूर्वजन्मोंके संचित कषायकल्मषोंको धोकर अपने मूल (आत्म)-स्वरूपको प्राप्तकर परमात्मासे पुनः तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर लेगा, किंतु कितने लोग ऐसा कर पाते हैं? लाखोंमें कोई एक ऐसा अपवादस्वरूप होता है, जो अपने पुण्य-पुरुषार्थके बलपर परमार्थसिद्धि करनेमें सफल हो पाता है। अन्य मनुष्य-शरीरधारी तो इस जन्ममें भी परमात्मासे विमुख होकर और संसारके माया-मोहमें अहर्निश लिप्त रहकर अपने पापका बोझ ही बढ़ाते हैं। ऐसे मनुष्य इस जीवनमें भी नये कुसंस्कारोंका सृजन कर पुनः चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं।

इसका पहला कारण तो मनुष्यका अपना कुसंस्कार और कर्मजनित प्रारब्ध है, जो उसे सत्कर्म और धर्माचरणमें प्रवृत्त नहीं होने देता। दूसरा कारण देश-कालकी प्रतिकूल परिस्थितियाँ हैं, जो उसके सन्मार्गपर चलनेमें बाधक होती हैं। युगधर्म भी उसके विचार-आचरणको प्रभावित करता है। कलियुगमें सभी मनुष्योंके लिये कठोर साधना-उपासना और जप-तप करना सम्भव नहीं है। विकृत सामाजिक परिवेश भी इस कार्यमें बाधक हैं। कलियुगमें धर्मके चार चरणों (सत्य, शौच, दया और दान)-में प्रथम तीन चरण तो लुप्तप्राय हैं। चौथा चरण दान भी नाममात्रको ही रह गया है। सात्त्विक दानका सर्वथा अभाव है। राजस और तामस दान ही प्रचलित हैं। मनुष्यका मन सदा पापकर्मोंमें ही रत है। गोस्वामीजी लिखते हैं—

ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

(रा०च०मा० १।२७।३-४)

प्रथम (सत्य-) युगमें ध्यानसे, दूसरे (त्रेता-) युगमें यज्ञसे और द्वापरमें पूजनसे ईश्वरको प्रसन्न किया जाता था, किंतु कलियुग तो पापकी जड़ और मलिन है। इसमें मनुष्यका मन पापसे कभी अलग होना ही नहीं चाहता है। अतः ध्यान, यज्ञ और पूजन नहीं हो सकते हैं। ऐसी परिस्थितिमें विचारणीय यह है कि इस कलियुगमें मनुष्यका उद्धार कैसे हो? इस समस्यापर सम्यक्-रूपसे विचारकर संतोंने अत्यन्त सरल समाधान प्रस्तुत किया है, जिसका उल्लेख धर्मग्रन्थोंमें मिलता है।

कलियुगमें पापाचार-लिप्त मनुष्योंका उद्धार भगवान्के चरणोंमें शरणागति और भगवन्नामके जप (संकीर्तन)-से ही हो सकता है। ये दोनों ही साधन सर्वसुलभ, सरल और सुगम हैं। शरणागति भावनासे होती है। इसके लिये बाह्य औपचारिकता अनिवार्य नहीं है। दीन और आर्तभावसे ईश्वरकी शरणमें जाना ही शरणागति है। भगवन्नामके जप अथवा संकीर्तनमें अन्य मन्त्रोंकी भाँति न्यास और विनियोग

आदि विधि-विधान अपेक्षित नहीं हैं। भगवान्‌के किसी भी नामका जप कभी भी, किसी स्थानपर और किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। इसमें अधिकारी और अनधिकारीका भी प्रश्न नहीं है। सभी मनुष्य (पुरुष या स्त्री) ईश्वरके नामका संकीर्तन करनेके समानरूपसे अधिकारी हैं।

अब इन दोनों साधनोंपर संक्षिप्त विचार किया जाता है—

शरणागति

भगवान्‌के शरणागत हो जाना—यह सभी साधनोंमें श्रेष्ठ है। शरणागत भक्त अपने योगक्षेमके लिये पूर्णरूपसे ईश्वरपर आश्रित हो जाता है एवं उनके प्रत्येक विधानको अपने लिये हितकर तथा मङ्गलजनक मानकर उसे सहर्ष स्वीकार करता है। शरणागतिके छः लक्षण कहे गये हैं—

आनुकूल्यस्य संकल्पात्प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोमृत्वे वरणं तथा।
आत्मनिक्षेपः कार्पण्यः षड्विधा शरणागतिः॥

अर्थात् अपने इष्टदेवके प्रति सभी प्रकारकी प्रतिकूलताको त्यागकर सब प्रकारसे उनके अनुकूल रहनेका दृढ़ निश्चय, उनके रक्षाविधानमें पूर्ण विश्वास, कार्पण्य भावसे (अहंकार त्यागकर) उनके प्रति आत्मसमर्पण करना शरणागति है। शरणागतिमें अनन्यता और पूर्ण निर्भरता आवश्यक है। शरणागत भक्त अपने योगक्षेमके लिये स्वयं कोई चिन्ता नहीं करता है और न अपने प्रयत्न-पुरुषार्थपर भरोसा करता है। वह प्रत्येक कार्य ईश्वरप्रीत्यर्थ करता है और शुभाशुभ कर्मोंके फलाफल (पुण्य-पाप)-का भार भी ईश्वरपर छोड़ देता है। श्रीमद्भगवद्गीता (१८।६६)-में भगवान् श्रीकृष्णने पूर्ण शरणागतिकी व्याख्या करते हुए अर्जुनसे कहा था कि सभी धर्मोंका आश्रय छोड़कर तुम मेरी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें सभी पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तू शोक (चिन्ता) मत कर—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

इसी प्रकार भगवान् श्रीरामने भी शरणागत भक्तको सभी पापोंसे मुक्त कर देनेका संकल्प व्यक्त किया है—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
(रा०च०मा० ५।४४।२)

मनुष्य जब ईश्वरोन्मुख हो जाता है अर्थात् अनन्य-भावसे ईश्वरकी शरणमें चला जाता है तब उसके करोड़ों जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं (**कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः**) और साथ ही परम दयालु भी हैं। अतः जीवके जन्म-जन्मान्तरके पापोंको नष्टकर उसे शुद्ध कर देना उनके लिये सर्वथा सम्भव है। जैसे नालेका मैला पानी गङ्गाजीमें मिलते ही पवित्र होकर शुद्ध गङ्गाजल बन जाता है, वैसे ही जीव ईश्वरकी शरणमें जाते ही पाप-तापसे रहित हो जाता है। भगवान् भी गङ्गाजीकी भाँति समदर्शी और उदार हैं। वे शरणागत जीवके दोष और अवगुणपर विचार नहीं करते हैं। उनके चरणोंके स्पर्शसे जीव सर्वथा शुद्ध और परम पवित्र हो जाता है—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
(रा०च०मा० ७।१।६)

सारांश यह कि भगवान् शरणागत जीवके दोष-दुर्गुणपर विचार किये बिना उसे अपना लेते हैं और उसके सभी पाप-तापका शमन कर उसका उद्धार कर देते हैं। भगवान्‌की शरणमें जाकर पापी भी पुण्यात्मा बन जाता है। आवश्यकता इस बातकी है कि समर्पण पूर्णरूपसे और अनन्यभावसे हो तथा अहंकाररहित हो। भगवान् श्रीराम शरणागत विभीषणसे कहते हैं—

जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
(रा०च०मा० ५।४८।२-३)

भगवन्नाम-संकीर्तन

भगवान्‌के किसी भी नामका जप अथवा कीर्तन सबके लिये सुगम और सरल साधन है। कलियुगमें भजन-संकीर्तन ही आत्मकल्याणका एकमात्र साधन है। चैतन्य महाप्रभु आदि भक्तों तथा नारदादि ऋषियोंने भी नाम-संकीर्तनकी महिमाका बखान करते हुए इसे सर्वाधिक प्रभावकारी साधन माना है। 'नारदपुराण' में कहा गया है कि कलियुगमें कल्याणके लिये हरिनामके अतिरिक्त और कोई दूसरा साधन है ही नहीं—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

सत्ययुगमें भगवान्‌का ध्यान करनेसे, त्रेतामें बड़े-बड़े

यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधिपूर्वक उनकी पूजा-सेवासे जो फल मिलता था, वह कलियुगमें भगवन्नाम-कीर्तन करनेसे ही प्राप्त हो जाता है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(श्रीमद्भा० १२।३।५२)

भक्त-कवि तुलसीदासजीने राम-नामकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि अच्छे भाव (प्रेम)-से या बुरे भाव (वैर)-से, क्रोधसे या आलस्यसे अर्थात् किसी भी तरह नाम जपनेसे दसों दिशाओंमें (सर्वत्र) कल्याण होता है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(रा०च०मा० १।२८।१)

गोस्वामीजी मानते हैं कि कलियुगमें न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है। राम-नामका जप ही मनुष्यके कल्याणका एकमात्र आधार है—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

(रा०च०मा० १।२७।७)

श्रीराम-नामकी महिमाका वर्णन करनेमें वे स्वयंको असमर्थ मानते हुए यहाँतक कहते हैं कि उनके इष्टदेव श्रीरामजी भी नामके गुणगानमें समर्थ नहीं हैं—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

(रा०च०मा० १।२६।८)

भगवान्‌के नामका जप अथवा कीर्तनसे अनेक जन्मोंके संचित पाप नष्ट हो जाते हैं। विवश होकर भी नामोच्चारण करनेसे जन्म-जन्मान्तरके पाप जल जाते हैं और जीवका कल्याण हो जाता है—

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥

गोस्वामीजीने दोहावली (२२)-में यहाँतक कहा है कि नाम-जपसे जीवके मुक्त होनेमें क्षणभर भी देर नहीं होती है—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

अनेक जन्मोंके पाप-संचयके कारण बिगड़ी हुई स्थिति आज और अभी (इसी क्षण) सुधर जायगी। यदि हम कुसमाज (कुसंगति)-का त्यागकर और रामका होकर अर्थात् रामकी शरणमें जाकर नामका जप करें। इस दोहेमें शरणागति और नाम-जपके अटूट सम्बन्धका संकेत है। नामीके शरणागत होकर नाम-जप करनेसे उसका तत्काल प्रभाव होता है। अतः पूर्ण सफलता और सद्यः लाभके लिये नाम-जपके साथ शरणागतिकी भावना आवश्यक है।

श्रीमद्भागवत महापुराणको भगवान् श्रीकृष्णका वाङ्मय-विग्रह माना जाता है। इस महापुराणका प्रारम्भ और समापन नाम-संकीर्तनकी महिमासे होता है। श्रीमद्भागवतकी कथा वस्तुतः द्वितीय स्कन्धसे प्रारम्भ होती है। महर्षि श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षित्‌को भागवतकी कथा सुनायी थी। कथाके प्रारम्भमें वे कहते हैं—राजर्षे! निर्गुणस्वरूप परमात्मामें मेरी पूर्ण निष्ठा है। फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंने बलात् मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यही कारण है कि मैंने इस पुराणका अध्ययन किया। महर्षि शुकदेवजीका भी अभिमत यही है कि सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी भगवान्‌का नाम-संकीर्तन करना आवश्यक है—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥

(श्रीमद्भा० २।१।११)

अर्थात् जो लोग लोक या परलोककी किसी भी वस्तुकी कामना रखते हैं या इसके विपरीत संसारमें दुःखका अनुभव करके जो उससे विरक्त हो गये हैं और निर्भय मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकोंके लिये तथा योगसम्पन्न सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी समस्त शास्त्रोंका यही निर्णय है कि वे भगवान्‌के नामका प्रेमसे संकीर्तन करें।

इस महापुराणके अन्तिम श्लोकमें पूरी कथाका समापन करते हुए निष्कर्षरूपमें कहा गया है—

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

(श्रीमद्भा० १२।१३।२३)

जिन भगवान्‌के नामका संकीर्तन सभी पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिनके चरणोंमें प्रणति सभी प्रकारके दुःखोंको शान्त कर देती है, उन्हीं परम तत्त्वस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

उपर्युक्त श्लोकमें 'प्रणाम' शब्द शरणागतिका द्योतक है। सारांश यह है कि भगवान्‌के शरणागत होकर उनके नामके संकीर्तनसे मनुष्य सभी प्रकारके पाप-ताप और दुःख-शोकसे सदाके लिये सहज ही मुक्त हो जाता है।

साधकोंके प्रति—

अभ्याससे बोध नहीं होता

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हमलोगोंके भीतर एक बात जँची हुई है कि हरेक काम अभ्याससे होता है; अतः तत्त्वज्ञान भी अभ्याससे होगा। वास्तवमें तत्त्वज्ञान अभ्याससे नहीं होता। यह बड़ी मार्मिक और बड़ी उत्तम बात है। अभ्याससे एक नयी स्थिति बनती है, संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होता। यह बहुत मनन करनेकी बात है। यह बात आपको जँचा देना मेरे हाथकी बात नहीं है। परंतु यह मेरी अनुभव की हुई बात है। अभ्याससे एक स्थिति बनती है, बोध नहीं होता। अभ्यासमें समय लगता है, जबकि परमात्मप्राप्ति तत्काल होनेवाली वस्तु है। जैसे, रस्सेके ऊपर चलना हो तो तत्काल नहीं चल सकते, उसके लिये अभ्यास करना ही पड़ेगा। अभ्यास किये बिना आप रस्सेपर नहीं चल सकते। परंतु दो और दो चार होते हैं—इसमें अभ्यास होता ही नहीं। तत्त्वज्ञानमें समयकी अपेक्षा है ही नहीं। परंतु जिसके भीतर अभ्यासके संस्कार हैं, वह इस बातको जल्दी नहीं समझ सकता।

अभ्यास और अनुभवमें बड़ा अन्तर है। अभ्याससे अनुभव नहीं होता, प्रत्युत एक नयी स्थिति बनती है। परमात्मतत्त्व स्थितिसे अतीत है। वह स्थितिसे नहीं मिलता—यह बहुत मार्मिक बात है। परंतु जिन्होंने ज्यादा लोगोंका सत्संग किया है, ज्यादा पुस्तकें पढ़ी हैं, उनको यह बात समझनेमें कठिनाई होती है। इस बातका मैं भुक्तभोगी हूँ! मैंने काफी पढ़ाई की है और वर्षोंतक अभ्यास किया है, इसलिये मेरेको इस बातका पता है। मैंने योगका अभ्यास किया है, वेदान्तका किया है, व्याकरणका किया है, काव्यका किया है, साहित्यका किया है, न्यायका किया है! वेदान्तमें आचार्यतककी परीक्षाएँ दी हैं। यद्यपि मैं अपनेको विशेष विद्वान् नहीं मानता, तथापि विद्याका अभ्यास मेरा किया हुआ है। इसलिये मेरे-जैसे व्यक्तिका जल्दी कल्याण नहीं हुआ! जिसके भीतर यह बात जँची हुई है कि अभ्याससे कल्याण होता है, उसका जल्दी कल्याण नहीं होगा।

कल्याणके लिये तीन बातें मुख्य हैं—मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है। इसमें अभ्यास क्या करेंगे? अभ्यास करेंगे तो वर्ष बीत जायँगे, बोध नहीं होगा। अभ्यास न करें तो अभी इसी क्षण बोध हो सकता है, चाहे अन्तःकरण कैसा ही क्यों न हो! आप मानें अथवा न मानें, मेरा कोई आग्रह नहीं है। परंतु यह मेरी देखी हुई, समझी हुई बात है कि अभ्याससे तत्त्वज्ञान नहीं होता। अभ्याससे आप विद्वान् बन जाओगे, पर तत्त्वज्ञान नहीं होगा। कितना ही अभ्यास करो, पर 'मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है और शरीर मेरे लिये है'—ये तीन बातें भीतरसे निकलती नहीं हैं। स्वरूपका बोध अभ्याससे सिद्ध होनेवाली चीज है ही नहीं। अभ्याससे नयी स्थिति बनती है, जबकि तत्त्व स्थितिसे अतीत है। स्थितिमें तत्त्व नहीं होता और तत्त्वमें स्थिति नहीं होती। उसको सहजावस्था कहते हैं, पर वास्तवमें वह अवस्था नहीं है। तत्त्व अवस्थासे अतीत है। अवस्थासे अतीत तत्त्व अभ्याससे नहीं मिलता, प्रत्युत तत्काल मिलता है। जो वस्तु जैसी है, उसे वैसी ही जाननेमें अभ्यास नहीं है। अभ्यासमें मन-बुद्धि-इन्द्रियोंका सहारा लेना पड़ेगा। तत्त्वबोधमें मन-बुद्धि-इन्द्रियोंकी जरूरत है ही नहीं। तत्त्वबोध वृक्षके फलकी तरह नहीं है, जिसमें समय लगता है। समय स्थिति बननेमें लगता है। जब अन्तःकरण शुद्ध होगा, मल-विक्षेप-आवरणदोष दूर होंगे, तब बोध होगा—यह प्रक्रिया मेरी की हुई है। वास्तवमें तत्त्वबोधके लिये अन्तःकरण-शुद्धिकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत अन्तःकरणसे सम्बन्ध-विच्छेदकी जरूरत है। केवल तत्त्वप्राप्तिकी चाहना जोरदार बढ़ जायगी तो चट प्राप्ति हो जायगी।

अपने भीतर अभ्यासके संस्कार पड़े हुए हैं, इसलिये प्रत्येक व्यक्तिके भीतरसे यह प्रश्न उठता है कि अब क्या करें? 'आपने कहा, हमने सुन लिया, अब क्या करें?' —क्या करें? यह बाकी रहेगा। अगर तत्काल प्राप्ति चाहते हो तो 'मैं शरीर नहीं हूँ'—यह बात मान लो। एक आदमीने दूसरेसे कहा कि दो और दो कितने होते हैं—इसका सही उत्तर दोगे तो मैं तुम्हें सौ रुपये दूँगा। दूसरेने कहा—चार होते हैं। पहला आदमी बोला कि नहीं होते। वह बार-बार कहे कि दो और दो चार होते हैं, पर पहला आदमी बार-बार यही कहे कि नहीं होते! अब उसको कोई कैसे समझाये? वह समझना ही नहीं चाहता।

आपको इतनी ही बात समझनी है कि मैं शरीर नहीं हूँ। आप 'घड़ी मेरी है'—यह तो कहते हैं, पर 'मैं घड़ी हूँ'—यह नहीं कहते। परंतु शरीरके विषयमें आप 'शरीर मेरा है'—

यह भी कहते हैं और 'मैं शरीर हूँ'—यह भी कहते हैं। 'मैं शरीर हूँ'—यह शरीरके साथ अभेदभावका सम्बन्ध है और 'शरीर मेरा है'—यह शरीरके साथ भेदभावका सम्बन्ध है। आपको कोई एक बात कहनी चाहिये, चाहे अभेदभावका सम्बन्ध कहो, चाहे भेदभावका सम्बन्ध कहो। एक ही शरीरको 'मैं' भी कहना और 'मेरा' भी कहना गलती है।

प्राणी चौरासी लाख योनियोंमें जाता है तो एक शरीरको छोड़ता है, तभी दूसरे शरीरमें जाता है। जब चौरासी लाख योनियोंके शरीर हमारे साथ नहीं रहे तो फिर यह शरीर हमारे साथ कैसे रहेगा? वे शरीर हमारे नहीं हुए तो यह शरीर हमारा कैसे हो जायगा? शरीर तो छूटेगा ही। अतः सीधी-सरल बात है कि शरीर मैं नहीं हूँ। इसमें अभ्यासका काम नहीं है।

जबतक अहंभाव (मैंपन) रहेगा, तबतक बोध नहीं होगा। अहम् मिटनेपर ही ब्राह्मीकी स्थिति होती है—

निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

(गीता २।७१-७२)

अहंकार अपरा प्रकृति है और स्वयं परा प्रकृति है। परा प्रकृतिका सम्बन्ध परमात्माके साथ है, अपराके साथ नहीं। अहंकारको पकड़नेसे बोध कैसे होगा? बहुत वर्ष पहलेकी बात है। एक बार मैंने कहा कि **'अहं ब्रह्मास्मि'** (मैं ब्रह्म हूँ) कहना ठीक नहीं है; **'अहं ब्रह्मास्ति'** (मैं ब्रह्म है)—ऐसा कहना चाहिये। व्याकरणकी दृष्टिसे ऐसा कहना अशुद्ध है; क्योंकि **'अहम्'** के साथ **'अस्मि'** ही लगेगा, **'अस्ति'** नहीं। परंतु मेरे कहनेका तात्पर्य था कि **'अहम्'** साथमें रहेगा तो बोध नहीं होगा। **'अहं नास्मि, ब्रह्म अस्ति'** (मैं नहीं हूँ, ब्रह्म है)—ऐसा विभाग कर लो तो समझमें आ जायगा। **'अस्मि'** रहेगा तो अहंकार साथमें रहेगा ही। यह अहंकार अभ्याससे कभी छूटेगा नहीं, चाहे बीसों वर्ष अभ्यास कर लो। यह मार्मिक बात है।

यह सिद्धान्त है कि जो वस्तु मिलती है और बिछुड़ती है, वह अपनी नहीं होती। शरीर मिला है और बिछुड़ जायगा, फिर वह अपना कैसे हुआ? परमात्मा मिलने तथा बिछुड़नेवाले नहीं हैं। वे सदासे ही मिले हुए हैं और कभी बिछुड़ते ही नहीं। उनका अनुभव नहीं होनेका दुःख नहीं है, इसीलिये देरी लग रही है। उनकी असली चाहना नहीं है। असली चाहना होगी तो तत्काल प्राप्ति हो जायगी। परमात्मप्राप्ति शरीरादि जड़ पदार्थोंके द्वारा नहीं होती, प्रत्युत इनके त्यागसे होती है। मन-बुद्धिकी सहायतासे बोध नहीं होता। प्रत्युत इनके त्यागसे बोध होता है।

योगदर्शन (१।१३)-में अभ्यासका लक्षण बताया है—

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।

'किसी एक विषयमें स्थिति प्राप्त करनेके लिये बार-बार प्रयत्न करनेका नाम अभ्यास है।'

तत्त्वबोध किसी स्थितिका नाम नहीं है। जहाँ स्थिति होगी, वहाँ गति भी होगी—यह नियम है। तत्त्व स्थिति और गति—दोनोंसे अतीत है। तत्त्वमें न स्थिति है, न गति है; न स्थिरता है, न चञ्चलता है। जैसे भूख और प्यासके लिये अभ्यास नहीं करना पड़ता, ऐसे ही तत्त्वकी जिज्ञासाके लिये अभ्यास नहीं करना पड़ता। हमारी आदत अभ्यास करनेकी पड़ी हुई है, इसलिये अभ्यासकी बात ही हमें जँचती है।

अभ्यासका मैं खण्डन नहीं करता हूँ। अभ्यास करते-करते और नयी स्थिति होते-होते तत्त्वकी जिज्ञासा होकर उसकी प्राप्ति हो सकती है। परंतु यह बहुत लम्बा रास्ता है। कितने जन्म लगेंगे, इसका पता नहीं। अन्तमें भी जब अभ्यास छूटेगा अर्थात् जड़ता (शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि)-से हमारा सम्बन्ध छूटेगा, तब तत्त्वप्राप्ति होगी। तत्त्वप्राप्ति जड़ताके द्वारा नहीं होती, प्रत्युत जड़ताके त्यागसे होती है—यह सिद्धान्त है। जड़ताकी सहायताके बिना अभ्यास हो ही नहीं सकता। अतः अभ्यासके द्वारा जड़ताका त्याग नहीं हो सकता। जिसकी सहायतासे अभ्यास करेंगे, उसका त्याग अभ्याससे कैसे होगा? परंतु अभ्यासकी बात हरेक आदमीके भीतर जड़से बैठी हुई है, इसलिये बोध होनेमें कठिनता हो रही है। बोध होनेमें अभ्यासको हेतु माननेके कारण जल्दी बोध नहीं हो रहा है।

यद्यपि भगवन्नामका जप, कीर्तन, प्रार्थना भी अभ्यासके अन्तर्गत आते हैं, तथापि ये अभ्याससे तेज हैं। कारण कि अभ्यासमें अपना सहारा रहता है, पर जप, प्रार्थना आदिमें भगवान्‌का सहारा रहता है। 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' यह पुकार अभ्याससे तेज है। अभ्यासमें अपने उद्योगसे काम होता है, पर पुकारमें भगवान्‌की कृपासे काम होता है। आप अभी अभ्यासके राज्यमें ही बैठे हुए हैं, आपके संस्कार अभ्यासके हैं, इसलिये आप नाम जप, कीर्तन, प्रार्थनामें लग जाओ तो आपको बहुत लाभ होगा।

सुख किसे प्राप्त होता है ?

(डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत)

एक बार एक शिष्यने अपने गुरुजीसे प्रश्न किया—

'सुख किसे प्राप्त होता है ?'

'जिसका हृदय शान्त है।'

'हृदय किसका शान्त है ?'

'जिसका मन चञ्चल नहीं।'

'मन किसका चञ्चल नहीं ?'

'जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं।'

'अभिलाषा किसे नहीं ?'

'जिसकी किसी वस्तुमें आसक्ति नहीं।'

'आसक्ति किसे नहीं ?'

गुरुने शान्त स्निग्धमुद्रामें कहा—जिसकी बुद्धिमें मोह नहीं है।

मोह दूर करनेका एक ही उपाय है और वह यह कि वास्तविकताका बोध हो जाय। वास्तविकताका बोध होते ही यह विश्वास दृढ़ हुए बिना न रहेगा कि जितने भी सांसारिक सम्बन्ध हैं, सब स्वार्थकेन्द्रित हैं। मेरा असली साथी तो केवल वह है जिसे इनके लिये मैं भुला बैठा हूँ।

जब प्रभुकृपा होती है तभी इस वास्तविकताका बोध होता है। प्रभुकृपाके लिये आध्यात्मिक साधना करनी पड़ती है। आध्यात्मिक साधनासे आत्मबल मिलता है, उस सत्यका दर्शन होता है जो ज्ञानकी पराकाष्ठा है। इसीसे दैवी दयाका बोध होता है।

आध्यात्मिक साधनोंसे द्रवीभूत होकर चित्तकी वृत्तियोंका ईश्वरकी ओर प्रवाह होने लगता है और यह प्रवाह ही भक्ति है। भक्ति शब्दकी व्युत्पत्ति **'भज्'** धातुमें **'क्तिन्'** प्रत्ययके योगसे हुई है। **'भज्'** धातुका अर्थ है सेवा करना। अतः इसमें सेवासे सम्बद्ध श्रद्धा, अनुरक्ति, समर्पण आदि सभी भाव आ जाते हैं। इन सभी भावोंके मूलमें प्रेम किसी-न-किसी रूपमें विद्यमान रहता है। इसीलिये प्रेमको भक्तिका प्रेरक अथवा निष्पादक तत्त्व कहा गया है। महर्षि शाण्डिल्यने इसे ईश्वरके प्रति परानुरक्ति कहा है—**'सा परानुरक्तिरीश्वरे'**। नारदजी इस भक्तिको परमप्रेमरूपा बतलाते हैं—**'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा'** (नारदभक्तिसूत्र २)। श्रीमद्भागवतमें परानुरक्तिका तात्पर्य निर्हेतुक, निष्काम तथा निरन्तर प्रेम बतलाया गया है—**'अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे'** (३। २९। १२) ऋग्वेदसंहिता (१। ७१। ७)-में कहा गया है—**'अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्तयह्वीः'** जैसे गङ्गा आदि नदियाँ समुद्रकी ओर दौड़ती हुई उसमें विलीन हो जाती हैं, वैसे ही भगवद्भक्तोंके मनकी सभी वृत्तियाँ अनन्त दिव्य गुण-कर्मवान् परमेश्वरकी ओर जाती हुई, तदाकार होती हुई उसमें विलीन हो जाती हैं। श्रीमद्भागवत (३। २९। ११)-में यही बात इस रूपमें कही गयी है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥

अर्थात् सर्वव्यापी परमात्माके गुणश्रवणमात्रसे भक्तके चित्तकी गति भगवान्‌की ओर तैलधारावत् अविच्छिन्न रूपसे उसी प्रकार प्रवाहित होने लगती है, जैसे गङ्गाजीका जल समुद्रकी ओर प्रवाहित होता है। यही प्रणय है, प्रणति है, प्रेम है, प्रीति है। समस्त संतापोंका निवारण करके परमानन्द प्रदान करनेवाली है यह प्रीति।

कर्म, ज्ञान और योगसे भी यह श्रेष्ठ है; क्योंकि भक्ति इन सभीका फल है—**'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा॥ फलरूपत्वात्॥'** (नारदभक्तिसूत्र २५-२६)। तुलसीदासजी कहते हैं कि *'जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥'* (मानस ७। १२६। ७) अन्यत्र वे लिखते हैं—*'सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥'* (मानस ३। १६। ३)। भक्तिके अन्तर्गत ईश्वरकी महत्ता स्वीकृत है। साथ ही, भक्तका समर्पणभाव भी निहित है।

भक्ति दो प्रकारकी मानी गयी है—वैधी तथा रागानुगा। वैधी भक्तिमें विधि-विधानोंका विशेष महत्त्व है। रागानुगा भक्ति सहज, सरल तथा सुलभ है। लोकमें भगवद्गुणश्रवण, कीर्तन तथा वर्णन करनेसे यह प्राप्त होती है—**'लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात्'** (नारदभक्तिसूत्र ३७)। तुलसीदासजीके अनुसार भगवच्चर्चा ही भवरोगकी महौषधि है—*'हरन घोर त्रय सूल'* (मानस ७। १२४)। भगवान् श्रीरामके नाममें ऐसी शक्ति है कि चाहे जैसे भी उसका उच्चारण करो, कल्याण-ही-कल्याण है—*'बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥ सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥'* (मानस १। ११९। ३-४)। बरवै रामायण (संख्या ५८)-में उल्लेख है कि भगवान्‌का नाम पाप-ताप-दाहक, दुःख-दारिद्रय-विनाशक तथा सकलसुमङ्गलदायक है—*'दोष दुरित दुःख दारिद दाहक नाम। सकल सुमंगल दायक*

तुलसी राम'॥

नाममें तो इतनी शक्ति है कि उसके स्मरणमात्रसे ही भवसिन्धु सूख जाता है—*'नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं'* (मानस १। २५। ४)। कलियुगरूपी कालनेमिके लिये तो वह समर्थ हनुमान् ही है।

विश्रामसागरके रचयिता बाबा रघुनाथदासजीके अनुसार राम-नाम ऐसा मुक्ताहल है, जिसका आलोक त्रिभुवनमें व्याप्त है—*'राम नाम मुक्ता हल भाई। जासु आब त्रिभुवन महँ छाई॥'* जैसे एक जड़को सींचनेसे डाल-पत्ते सभी हरे हो जाते हैं, उसी प्रकार राम-नामके ध्यानसे सम्पूर्ण सृष्टिका ध्यान हो जाता है। राम-नामके प्रथम रकारसे नारायणका रूप, आकारसे महाविष्णु तथा मकारसे महाशम्भु हुए। राम-नामके भीतर ब्रह्म, जीव और तीनों लोक हैं। क्षितिज, बीज, नक्षत्र, आकाश, नगर, ग्रह आदि सब राम-नाममें ही अनुस्यूत हैं—

नारायणको रूप करि, जो है प्रथम रकार।
महाविष्णु आकार ते महाशंभु माकार॥
राम नामके भीतरै, ब्रह्म जीव त्रैलोक।
ज्यों क्षिति बीज नक्षत्र नभ, नगर माहिं गृह थोक॥
राम नामके ध्यानमें सृष्टि ध्यान होइ जात।
जिमि सींचे यक मूल के डार पात हरियात॥

(विश्रामसागर)

नामी नामके अधीन है। जब जीवके साथ भगवान्‌का बँटवारा हुआ, भगवान्‌ने कहा—'तुम हमारे सखा और हम तुम्हारे सखा'। जीवने कहा—'केवल सखा कहनेसे बात नहीं बनेगी, सब कुछ तो आपने अपने पास रखा है। कुछ हमें भी तो दो!' इसपर भगवान्‌ने कहा—हमारे पास दो ही तो चीजें हैं—एक नाम और दूसरा रूप। रूप हमारे पास रहने दो। इस प्रकार जीव और राममें आधा-आधा बँटवारा हो गया। इसपर भी भगवान्‌ने सोचा कि मैं तो बलवान् हूँ, जीव निर्बल है, इसलिये इसे थोड़ा और बल देना चाहिये। उन्होंने कहा—लो, जीव! मैं अपने रूपको नामके अधीन कर देता हूँ। जब तुम मेरा नाम लेकर पुकारोगे तो मैं आ जाऊँगा। इस प्रकार भगवान् तो नामके अधीन हैं। जब कोई उन्हें पुकारता है तो वे दौड़े चले आते हैं। वे स्मरणमें ही रमण, अनुगमन तथा पूर्ण चैतन्यभावसे विश्राम करते हैं। वे स्वयंमें एक रस हैं—रामानन्द तथा परमानन्दरस।

शास्त्रोंमें भगवान्‌से भी अधिक उनके राम-नामकी महिमा प्रदर्शित की गयी है। भगवान् शङ्कर 'स्कन्दपुराण'के नागरखण्डमें देवी पार्वतीजीको राम-नामकी महिमा बताते हुए कहते हैं*—

'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र जपनेपर समस्त पापोंका नाश करता है। चलते, खड़े हुए अथवा सोते (जिस किसी भी समय) जो मनुष्य राम-नामका कीर्तन करता है, वह यहाँसे कृतकार्य होकर जाता है और अन्तमें भगवान् श्रीहरिका पार्षद बनता है। 'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र शतकोटि मन्त्रोंसे भी अधिक महत्त्व रखता है। राम-नामसे बढ़कर जगत्‌में जप करनेयोग्य कुछ भी नहीं है। जिन्होंने राम-नामका आश्रय लिया है, उन्हें यमयातना नहीं भोगनी पड़ती। जो मनुष्य अन्तरात्मस्वरूपसे राम-नामका उच्चारण करता है, वह स्थावर, जंगम सभी भूतप्राणियोंमें रमण करता है। 'राम' यह मन्त्रराज है, यह भय तथा व्याधिका विनाश करनेवाला है। 'रामचन्द्र', 'राम', 'राम' इस प्रकार उच्चारण करनेपर यह दो अक्षरोंका मन्त्रराज पृथ्वीमें समस्त कार्योंको सफल करता है। गुणोंकी खान इस राम-नामका देवतालोग भी भलीभाँति गान करते हैं। अतएव हे देवेश्वरि! तुम भी सदा राम-नामका उच्चारण किया करो। जो राम-नामका जप करता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है।

तुलसीदासजीकी अभिव्यक्ति है—*'ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि'* (मानस १। २५)। वह ऐसा कल्पतरु है, जो *'कलि कल्यान निवासु'* है। अपने इस अभिमतकी सिद्धिमें वे विभिन्न दृष्टान्तोंके द्वारा नामको ब्रह्मसे श्रेष्ठ प्रमाणित करते हुए लिखते हैं—*राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥ भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥ निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥* (मानस १। २७)

---

* रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः। गच्छंस्तिष्ठञ्शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्। रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः॥
न रामादधिकं किञ्चित् पठनं जगतीतले। रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना॥
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च। अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते॥
रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिनिषूदकः। रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः॥
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि। देवा अपि प्रगायन्ति रामनामगुणाकरम्॥
तस्मात् त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद। रामनाम जपेद् यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

वे तो यहाँतक कहते हैं कि राम भी नामके गुणोंका बखान नहीं कर सकते—*'रामु न सकहिं नाम गुन गाईं॥'*

नाम-जपमें श्रद्धा, प्रीति तथा तन्मयता नितान्त आवश्यक है। **'भजतां प्रीतिपूर्वकम्'**, *'सादर सुमिरन जे नर करहीं।'*, *'साधक नाम जपहिं लय लाएँ'*—इन वाक्योंमें प्रीति, लय तथा सादर—ये शब्द सिद्ध कर रहे हैं कि श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक मन लगाकर नाम-जप करनेपर ही सिद्धिकी प्राप्ति होती है। पातञ्जलियोगसूत्रके समाधिपादके २८वें सूत्र **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'**-में भी स्पष्ट कहा गया है कि भगवन्नाम-जपके साथ उसके अर्थकी भावना भी करनी चाहिये।

भगवन्नाम-स्मरणकी यह तीसरी अवस्था है। इसमें जापक इष्टके स्वरूपका ध्यान करते हुए जप करता है। तुलसीदासजीकी ये उक्तियाँ इसी अवस्थाको व्याख्यायित करती हैं—*'मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर। जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर॥'* अथवा *'प्रीति प्रतीति सुदीति सों राम राम जपु राम। तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम॥'*

इसके पूर्वकी स्थितियाँ हैं प्रवेशिक अथवा प्रारम्भिक, जिसमें 'येन केन प्रकारेण'—भगवान्‌का नाम लेना होता है। *'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥'* *'बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥'* *'राम राम कहिं जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं॥'* आदि कथानक जपकी प्रारम्भिक अवस्थाका संकेत करते हैं। द्वितीय अवस्थामें निषेधपर बल रहता है—*'भजिअ राम सब काम बिहाई', 'अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल', 'करि बिचार, तजि बिकार, भजु उदार रामचंद्र'* आदि कथन इसी दूसरी अवस्थाके परिचायक हैं।

सर्वोत्कृष्ट अवस्था चतुर्थावस्था है। यह जापकका परिपूर्ण स्थिति है। *'जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहु पासा॥'* अथवा *'भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग। कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥'*—इन पंक्तियोंमें भरतका जापक रूप अपने पूर्ण वैभवके साथ मुखर है। भगवन्नाम-स्मरणकी यही परिपूर्ण अवस्था है।

ये चारों अवस्थाएँ उत्तरोत्तर उत्कर्षकी हैं। सच तो यह है कि भगवान्‌के नामका स्मरण प्रत्येक दशामें फलदायी है। महर्षि अत्रि अपनी स्मृतिके अन्तिम नवें अध्यायमें कहते हैं कि यदि विद्वेषभावसे वैरपूर्वक भी दमघोषके पुत्र शिशुपालकी तरह भगवान्‌का स्मरण किया जाय तो उद्धार होनेमें कोई संदेह नहीं, फिर यदि तत्परायण होकर अनन्य भावसे भगवदाश्रय ग्रहण कर लिया जाय तो परम कल्याणमें क्या संदेह—

विद्वेषादपि गोविन्दं दमघोषात्मजः स्मरन्।
शिशुपालो गतः स्वर्गं किं पुनस्तत्परायणः॥

वास्तवमें नाम-जपका सुख सात्त्विक सुख है। सात्त्विक सुख प्रारम्भमें तो विष-सा अरुचिकर ही होता है, परिणाममें ही हितकर होता है। अभ्यासद्वारा ही इसमें रमण अर्थात् रसास्वादन होता है, ऐसा गीता (१८।३६-३७)-में कहा गया है—**'अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति॥ यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्'**।

इसलिये प्रारम्भमें यदि नाम-जपमें मन न लगे तो घबराना नहीं चाहिये। मनका निग्रह धीरे-धीरे होता है, दीर्घकालीन अभ्याससे उसमें स्थिरता आती है। आलम्बनके प्रति प्रीति इसमें विशेषरूपसे सहायक सिद्ध होती है।

'करत-करत अभ्यास तें जड़ मति होत सुजान' का उद्घोष करनेवाले तुलसीदासजीकी भगवत्प्रीतिका ही यह चरमोत्कर्ष है कि उन्हें अन्धा होना स्वीकार है, किंतु वे ऐसी आँखें नहीं चाहते जो रामका यश सुनते ही प्रेमाश्रु नहीं बहातीं। श्रीरामके स्मरणसे जो हृदय पिघलता नहीं, तन रोमाञ्चित नहीं होता, वह काटने-जलाने योग्य है—*'हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम। द्रवहिं स्त्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥'*

स्मृतिकारका कथन है कि जो क्षण-मुहूर्त भगवच्चिन्तनके बिना व्यतीत हो, वह हानि, भ्रान्ति तथा विपत्ति-दायक है—

यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते।
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा भ्रान्तिः सा व्यतिक्रिया॥

इसीलिये श्रीवेदव्यासजी कहते हैं—

स्मर्तव्यः सततं विष्णुः विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाद्या एतयोरेव किङ्कराः॥

अर्थात् भगवान्‌का स्मरण सदा-सर्वदा करना चाहिये, भगवद्विस्मरण कभी नहीं हो, समस्त विधि-निषेध इन्हींके दास हैं। इसकी व्याख्या गोस्वामीजीने विनय-पत्रिका (६७)-में इस प्रकार की है—

राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे।
रामको बिसारिबो निषेध-सिरताज रे॥

भक्तकी यह जीवनचर्या यदि हमारी जीवनचर्या बन जाय तो उद्धार हुए बिना न रहे—

सुनु कान दिएँ, नितु नेमु लिएँ रघुनाथहिके गुनगाथहि रे।
सुखमंदिर सुंदर रूपु सदा उर आनि धरें धनु-भाथहि रे॥
रसना निसि-बासर सादर सों तुलसी! जपु जानकीनाथहि रे।
कर संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर, कुपंथ कुसाथहि रे॥

(कवितावली ७। २९)

निष्कर्ष यह कि—

'रामनाम सार है असार सृष्टि हीर हेम'।

मर्हर्षि वेदव्यासजीका यह डिण्डिम-घोष कभी विस्मृत न होने दें—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

साथ ही मनको प्रबुद्ध भी करते रहे इन शब्दोंमें—

राम ही राम रटे निशि याम न काम से काम रखे मन मेरे।
ध्यान सरोवर की बन मीन अदीन रहे न झखे मन मेरे॥
अन्तर लोचनसे दुख मोचन रूप अरूप लखे मन मेरे।
छोड़ जँजाल भरा दुख जाल सुधा नवधा की चखे मन मेरे॥

मन ईश्वरमें लगाओ, सुख-शान्ति पाओ

(श्रीनृसिंहदेवजी अरोड़ा)

इस संसारमें रहते हुए सब काम करना चाहिये, परंतु मन ईश्वरमें रखना चाहिये।

माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि सबके साथ रहते हुए सबकी सेवा करनी चाहिये, परंतु पारमार्थिक दृष्टिसे मनमें इस बातको, इस ज्ञानको दृढ़ रखना चाहिये कि ये हमारे नहीं हैं, भगवान्के ही हैं।

किसी धनीके घरकी दासी उनके घरका सारा काम करती है, परंतु उसका मन अपने गाँवके घरपर लगा रहता है। मालिकके लड़कोंका वह अपने पुत्रोंकी तरह लालन-पालन करती है, उन्हें 'मेरे मुन्ना, मेरे राजा' कहती है, पर मन-ही-मन खूब जानती है कि ये मेरे नहीं हैं। जैसे कछुआ रहता तो पानीमें है पर उसका मन रहता है किनारेपर, जहाँ उसके अण्डे रखे रहते हैं। इसी प्रकार संसारका काम करो, पर मन ईश्वरमें रखो। बिना भगवद्भक्ति प्राप्त किये यदि संसारमें रहोगे तो दिनों-दिन उलझनोंमें फँसते जाओगे और यहाँतक फँस जाओगे कि फिर पिण्ड छुड़ाना उसी प्रकार मुश्किल हो जायगा, जिस प्रकार मकड़ी अपने ही बुने हुए जालमें फँसी रहती है। रोग, शोक, ताप, मोह आदिके कारण अधीर हो जाओगे। विषय-चिन्तन जितना करोगे, आसक्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ेगी।

जैसे हाथोंमें तेल न लगाकर कटहल काटनेसे हाथोंमें उसका दूध चिपक जाता है, ऐसे ही, भगवद्भक्तिरूपी तेल हाथोंमें लगाकर संसाररूपी कटहलके लिये हाथ बढ़ाओ। यदि भक्ति पानेकी इच्छा हो तो संसारमें मन कम लगाओ और धीरे-धीरे मनको पूर्णरूपसे भगवान्में लगा दो, फिर संसारका काम तो अनायास होता रहेगा और धीरे-धीरे आसक्ति भी छूट जायगी। ईश्वरका चिन्तन करनेसे यह मन भक्ति, वैराग्य और ज्ञानका अधिकारी होता है। इस मनको यदि संसारमें डालकर रखोगे तो नीचेकी ओर ही ले जायगा। इस असार संसारमें कामिनी-काञ्चनके सिवा और है ही क्या?

संसार जल है और मन मानो दूध। यदि दूध पानीमें डाल देंगे तो वह (दूध) पानीमें मिल जायगा, पर उसी दूधको भजन या नाम-जपरूपी मक्खन बनाकर यदि पानीमें छोड़ोगे तो मक्खन पानीमें तैरता रहेगा। इस प्रकार साधनाद्वारा ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके यदि संसारमें रहोगे भी तो संसारसे निर्लिप्त रहोगे। विषय-भोगोंका रस फीका लगने लगेगा और उनके प्रति वितृष्णा और घृणाका भाव पैदा हो जायगा। साथ-ही-साथ यह विचार भी खूब दृढ़ करना होगा कि कामिनी और काञ्चन अनित्य हैं, एकमात्र ईश्वर ही नित्य है। रुपयेसे क्या मिलता है? रोटी, कपड़ा और मकान आदि बस यहींतक। रुपयेसे ईश्वर नहीं मिलता। इसलिये केवल रुपया ही जीवनका लक्ष्य नहीं हो सकता, जीवनका लक्ष्य तो प्रभु-प्राप्ति है। इसको सद्विचार कहते हैं।

अतः उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय ईश्वरको याद करते हुए जीवन जीना चाहिये। मनको ईश्वरमें लगाकर देखो, सुखद आनन्दकी अनुभूति होगी।

श्रीरमण महर्षिका कितना सुन्दर कथन है—'जबतक मनुष्यका हृदय भगवान्में रहता है तबतक वह संसाररूप भव-सागरमें नहीं डूब सकता।'

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ८६७ से आगे]

मरि जाय, परंतु प्राण रहते पाप न बनै।

गुरुजनन कौ सामनौं न करि बैठै, सह ले, कछु हो, पर आँख न उठै।

क्रोध न करै, जो जाय सो जाय, रहै सो रहै, पर क्रोध न करै।

अपमान सह ले, किंतु दूसरे कौ अपमान न करै।

स्त्री सौं सम्पर्क कैसें हूँ न बनै?

अपनी ओर सौं अखण्ड ब्रह्मचर्य कौ पालन करै **(रोग-विवशताकी बात अलग है।)**।

सत्यता कौ पूरौ पालन बनै।

कटुता, रूक्षता तथा ईर्ष्या—ये न हौन पावैं।

दम्भ, कपट, छल छू न जाय।

हमारी तौ दृढ़ धारणा है कि यदि एक ही जीवनमें पार हौनौं चाहै तौ—

सरल उपाय है—२४ घंटा केवल इनके ताँईं—एक हूँ क्षण व्यर्थ न जाय। खाय लेय, पीय लेय, सोय लेय, किंतु अन्य समय केवल इनके ही ताँईं। जो विचार बार-बार सुन्यौ जाय, कह्यौ जाय, पढ़्यौ जाय, वह कालान्तरमें स्वभाव बनि जाय है। यासौं एक नियम बनि जाय। **प्रतिज्ञा करि लेउ कि—**

—जो बोलैं इनके ताँईं।

—जो सुनैं इनके ताँईं।

—जो सोचै इनके ताँईं।

—जो छूबैं इनके ताँईं।

—जो करैं इनके ताँईं। केवल इनके ताँईं ही, व्यर्थ नहीं। संसारके विषय राग-द्वेष, पर-चर्चा, पर-निन्दा आदि प्रतिज्ञापूर्वक नहीं। अध्यात्म-पथके पथिक कौ परम कर्तव्य है कि वह सदैव ख्याल राखै कि हम या समय का करि रहे हैं? कौनके ताँईं करि रहे हैं? अपने ताँईं या इनके ताँईं?

श्रीहनुमान्‌जीने लङ्का जलायी—कौनके ताँईं? इनके ताँईं। जो होय इनके ताँईं ही होय।

प्रश्न—महत्ता कार्यकी है या लक्ष्यकी?

उत्तर—वास्तवमें महत्ता तौ लक्ष्यकी है। लक्ष्य यदि दृढ़ होय तौ कार्य तौ स्वत: हौयगौ ही। प्रधान तौ लक्ष्य ही है। ये लक्ष्य ही पुनर्जन्म कौ कारण बन्यौ भयौ है। यही पीछैं वासना बनि जाय है।

मन्दिरमें दो साधुन कूँ परस्पर लड़ते देखिकैं निज जनन सौं बौले कि ये दोऊ यहाँ आये ब्रजवास करिवे और आपसमें ऐसे लड़े कि यदि एक-दूसरेके पास आय जाते तौ एक-दूसरे कूँ चबाय जाते। याकूँ देखि कैं हमसौं शयनके समय कही कि लिख लीजौं। भजन-साधन भले ही कम बनै, पर यह न हौन पावै। सावधान! क्रोध-विरोध कूँ अवसर न दें।

सबरी त्रुटि एक साथ अध्यात्ममें ही प्रवेश करि गयी है।

—सत्यता, श्रद्धा, तत्परता—इनमें सौं एक हूँ नहीं हैं।

आजके दिन तीन बात पकरनी है—

—२४ घंटा केवल इनके ताँईं अर्थात् अपनौं सबरौ समय केवल इनके ताँईं।

—जीभ चलै—श्रीभगवत्-नामके ताँईं, पाठके ताँईं, सेवाके ताँईं।

—श्रवण—सत्संग सुनिवेके ताँईं, पाठ सुनिवेके ताँईं अर्थात् सुननौं-बोलनौं सब इनके ताँईं ही होय।

दो बात कबहूँ न भूलैं—

—कृपा कौ आभार।

—कृपाकी सँभार।

एक बात जीवनभर ध्यान रहै, सदैवके ताँईं? बड़े

गुरुजन कछु बात कह जायँ तौ बाकूँ मान लेय। नहीं तौ परिणाम ऐसौ होय है, जैसौ एक सतपथ बिमुख कौ होय है। गृहस्थ-संसारी लोग यदि कछु न करि पावैं तौ सम्भव है ईश्वर-ध्यान न दें, किंतु जिनकूँ खायवे, पीयवे, रहवे, पहिरवेकी व्यवस्था प्रभुने करी है; फिर मिल जायँ कहूँ श्रीसद्गुरु और तब वह चूकै तौ का ईश्वर बाकूँ क्षमा करि देगौ? सावधान! अब चूक न बनै। अवसर कूँ पूर्णरूप सौं सँभारि लेउ।

जो जहाँ है, वहाँ कौ कर्तव्य-पालन पूरौ करि लेय तौ आगे कौ मार्ग स्वतः सुलभ बनि जायगौ। पर यह बनि नहीं पावै।

कहूँ प्रेमिनकी चर्चा होय तौ मन ललचै कि मैं हूँ ऐसौ बनूँ। यही है सबकौ सार। याहीके ताँईं पूरौ प्रयत्न। अबतक जो संकल्प बने वही पायौ। अब संकल्प बनैं केवल इनके ताँईं ही।

राग-द्वेष सौं बचिवे कौ एक ही सर्वोत्तम उपाय है— सतत अपने साधनमें जुट्यौ रहै।

जीवन केवल इनके ताँईं बनै। इनके रिझायवेके ताँईं बनै और ठीक बनै। सत्यता सौं बनै। दम्भ न हो। संसार कूँ धोखौ न दे तौ एक ही जीवनमें बेड़ा पार।

साधन कियौ और ऊँची स्फुरणा न उठी तौ जान लेय कि साधन ठीक नहीं बन्यौ। कहूँ त्रुटि है, साधन ही आगे कौ मार्ग सुझाय देय है।

प्रेम-देवमें एक बड़ी गम्भीर बात है कि प्रेमके अतिरिक्त और कोई कामना न उठन पावै। प्रेम-पथमें हठ नहीं है। यहाँतक कि इनकूँ बुलायवेकी हूँ कामना न करै। अनुत्ताप होय केवल एक, हाय! हाय! इनने कितनी कृपा करी, किंतु मैं कछु नहीं करि पायौ। जहाँ हृदयमें संकीर्णता है, वहाँ श्रीभगवान् कौ कहा काम? वहाँ तौ कलियुग कौ ही निवास होयगौ।

श्रीमद्भागवतजीके एक श्लोक कौ भाव है—तुम्हारौ मन ही कह देय है कि तुम कहाँ सौं आये हो और कहाँ जाओगे। यह अपने मन सौं ही पूछौ।

पतिव्रता यदि भूल सौं हूँ घूँघटकी ओट सौं हूँ पर-पुरुष कूँ देखि लेय तौ पातिव्रत नष्ट है जाय। ऐसैं ही साधक कूँ चहिए कि भूल सौं हूँ मायाकी याद न बनै, विषय-विकारनमें चित्त न जाय। यही है अध्यात्म। सब कछु श्रीभगवान्के ताँईं। जबतक ऐसौ नहीं बनैगौ, तबतक उपासना करते भये हूँ कल्प-के-कल्प बीति जायँगे।

ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जग मैं रहैं, हरि को भूलत नाहिं॥

निरन्तर अविछिन्न तैल-धारावत् वृत्ति इनमें ही लगी रहै, यही उपासना है। यही करनौं परैगौ। यह जो सत्संग है न, समय बितायवेके ताँईं नहीं है। कुछ लैवेके ताँईं है। '*सतसंगति संसृति कर अंता* (रा०च०मा० ७। ४५। ६)।' इतनौं महत्त्व है याकौ। जाने पूरे मन सौं भजन कियौ है, वाही कूँ भजन न बनिवे पै दुःख होय है। श्रीकबीरदासजी सत्यके ग्राहक रहे। वे ऊपरी बातनमें संतोष नहीं मानते।

उनकौ सिद्धान्त है—जो कुछ होय इनके ताँईं और इनके समक्ष ही होय। आराधना ही जीवन बनि जाय, यह परम-कर्तव्य है। यह तब ही बनेगौ, जब जीवन पवित्रतम होयगौ। यदि जीवन पवित्रतम नहीं है तौ यह बनि नहीं पावैगौ।

प्रश्न—व्यर्थ चिन्तन न होय, याकौ कोई उपाय है?

उत्तर—दौ बातें हैं—

—अपनौं साधन इतनौं बढ़ाय देय कि समय ही न मिलै। या साधनके पश्चात् निरन्तर साधनकी ही चिन्ता लगी रहै।

—इनके प्रेममें डूबि जाय। तौ यह तौ अपने बसकी बात ही नहीं। करिवेकी बात है पहली।

तीन बातें हैं—साधन, साधनोपयोगी जीवन और साध्य। इनमें साधनोपयोगी जीवन आवश्यक है।

या पथमें दो बातनकी बड़ी सावधानी राखै—जो इनकी ओर चलि रह्यौ होय, बाकी तन-मन-धन सौं सहायता करि दे।

इनकी ओर लग्यौ भयौ होय, बाकूँ इनसौं अलग करिवेमें निमित्त न बनैं। **[क्रमशः]**

जीवन और जीवनधन अपनेमें हैं

(सुश्री अर्पिताजी)

आज जो जीवनमें समस्याएँ दिखायी देती हैं—चाहे संसारकी हों, चाहे आध्यात्मिक हों और चाहे आस्तिकताकी हों, उनका मूल कारण है कि हमने उनका ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझा, अपना दृष्टिकोण नहीं बदला।

सोचनेपर संसारकी समस्याएँ तो समझमें आती हैं कि जितना धन चाहते हैं मिल नहीं रहा, जैसा ऊँचा पद चाहते हैं नहीं मिला। कमर कसकर मेहनत भी की, पर सफलता नहीं मिली। बेटीका विवाह बढ़िया घर-वर देखकर करना चाहा, पर जितना संतोष मिलना चाहिये था मिला नहीं, आदि-आदि।

आध्यात्मिक समस्यापर विचार करें तो क्या हम नहीं जानते कि सम्पूर्ण सृष्टिमें मेरा व्यक्तिगत कुछ नहीं है और मेरे लिये भी नहीं है? जानते तो हैं पर मानते हैं क्या? यदि मान लिया होता, यह सत्य स्वीकार कर लिया होता तो क्या निर्ममता नहीं आ जाती? ममताके कारण विकारोंमें क्यों आबद्ध होते? दिनका चैन, रातकी नींद क्यों उड़ती? चिन्ता रहती क्या? क्या हमने अपने वृद्धजनोंसे नहीं सुना—चिता जलाये एक बार और चिन्तारूपी चिता दिन-रात जला रही है!

खूब सुना—'**ब्रह्मं सत्यं जगन्मिथ्या**' पर क्या देखे हुएका आकर्षण मिटा? कामनाएँ छूटीं? क्यों नहीं अध्यात्मका प्रभाव हुआ? क्योंकि ऐन्द्रिय दृष्टिके प्रभावको नहीं मिटाया। ऐन्द्रिय दृष्टिसे यह शरीर और संसार सत्य एवं सुखद प्रतीत होते हैं। पर क्या हम स्वयं नहीं देखते कि इसमें सतत परिवर्तन है, क्षणभंगुरता है? क्या हमारी बुद्धि-दृष्टि हमें सचेत नहीं करती? करती तो है, पर क्षणिक, ऐसा लगता है कि ये सभी घटनाएँ होती होंगी पर हम तो पूजा-पाठ करते हैं, हमने शास्त्र पढ़ा है, हमारे साथ कुछ नहीं होगा। टालते रहते हैं, मिथ्या समझते रहते हैं, अपनेको बहलाते रहते हैं और दुःखी होते रहते हैं। संसार तो प्रतिक्षण सचेत कर रहा है—'मेरी ओर मत देखो। मैं तुम्हारे काम नहीं आऊँगा। मैं तो प्यारे प्रभुका हूँ। तुम भी उन्हींको देखो। मैं तुम्हारी माँग पूरी नहीं कर सकता; क्योंकि मुझमें मेरा अस्तित्व है ही नहीं। मेरी स्वतन्त्र स्थिति नहीं है।'

जबतक शरीरके आधारपर—'मैं-मैं'—रहेगी तथा संसारके प्रभावसे मेरा-मेरा रहेगा, तबतक शान्ति मिलनेवाली नहीं है, चैन मिलनेवाला नहीं है। क्या हमने नहीं सुना कि जहाँ काम, तहाँ राम नहीं—***'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं। प्रेम गली अति साँकरी, ता मैं दो न समाहिं॥'*** अतः ज्ञानपूर्वक निर्णय करना ही होगा कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये। ममता गयी और कामना गयी तो मिला क्या, निर्ममतासे उदित निर्विकारता और निष्कामतासे उदित चिरशान्ति। निर्विकारता तथा निष्कामतासे संसारसे असंगकी सामर्थ्य आती है। संसारसे सम्बन्ध टूटता है और जो है उससे अपने-आप सम्बन्ध जुड़ता है। पर बड़े ही दुःखके साथ कहना पड़ता है कि ग्रन्थोंका पारायण किया बहुत, पर निर्मोहता, निष्कामताका जीवनमें दर्शन नहीं हुआ। निर्मोहता, निष्कामताके बिना असंगता कैसे आये? और अपने स्वरूपमें स्थित कैसे रहा जाय? आत्मसंतुष्टि, आत्मरति हो कैसे? ज्ञानका आदर करके अकिंचन-अचाह और अप्रयत्न हो जायँ तो संसारके प्रभावसे मुक्ति मिल जाय। सुखी हों, पर सुखकी दासतामें आबद्ध न हों। दुःख आये पर हम दुःखी न हों, दुःखका भय न सताये। बल्कि सुख-दुःखका सदुपयोग कर सुख-दुःखके बन्धनसे मुक्त हो जायँ।

आस्तिक-पथसे भी देखें हम अपने-आपको तो क्या मिलेगा? प्रभुकी चर्चा तो है, पर प्रभुके प्रति अपनापन नहीं है। प्रभुका चिन्तन भी है, पर साथमें संसारका चिन्तन ही अधिक होता है। अपनेको भगवद्भक्त भी कहते हैं, पर पता नहीं कितनोंके भक्त हैं। कथनी कुछ, करनी कुछ और जीवन कुछ। यही कारण है कि परमात्मा हर जगह मौजूद हैं, पर उनसे मिलन नहीं हो पाता।

ऐसा प्रतीत होता है कि कीर्तन करना सरल है, पूजा करना सरल है, तीर्थ करना सरल है; अनुष्ठान करना सरल

है, व्रत-उपवास करना सरल है, पर एकमात्र प्रभुमें विश्वास करना बड़ा ही दुर्लभ है। इसीलिये जीवनमें कभी संसार है, तो कभी परमात्मा। दस सम्बन्ध संसारके साथ हैं और एक सम्बन्ध परमात्मासे जोड़ लिया है तो परमात्माकी याद भी उतने ही हिस्सेमें आती है अर्थात् एक बटा ग्यारह। जीवनमें और पूजामें विभाजन है। दो घंटे पूजा और शेष घंटोंमें संसार। तो श्रीकबीरदासजीकी वाणीमें—

मेरो तेरो मनुआ कैसे एक होय रे?

श्रीमहाराजजी* साधकोंकी दशासे बड़े ही व्यथित होते और कहते—'भैया, जीवनके सत्यको स्वीकार करो, तुम्हारी सभी समस्याएँ हल हो जायँगी। तुम साधना करनेकी सोचते हो, मैं कहता हूँ, सत्संग करो। किया हुआ साधन जीवनका स्वरूप नहीं बनता, तुम्हें स्वाधीन नहीं बनाता। सदैव परिश्रम एवं पराश्रयमें आबद्ध रहते हो और क्या पाते हो? साधन बलपूर्वक करते हो और हो जाता है असाधन। करते हो साधन-चिन्तन और होता है व्यर्थ चिन्तन। करते हो सत्कर्म और विवेक-विरोधी कर्म कर बैठते हो। जो स्वत: होना चाहिये था उसे करनेकी सोचते हो और जो करना चाहिये था उसे कर नहीं पाते। इसलिये सत्संग करो, तो साधन तुममेंसे अभिव्यक्त होगा। जो अभिव्यक्त होगा, वह जीवनका स्वरूप बनेगा। विवेक-विरोधी कर्मका त्याग सत्संग है और कर्तव्यपरायणता साधन है। कर्तव्यपरायणता अर्थात् मिले हुएके सदुपयोगके द्वारा संसारका भी सम्बन्ध निभ जायगा। कुशलतापूर्वक और जिस भावसे कार्यमें प्रवृत्त होओगे, करनेके पश्चात् उसका प्रेम जीवनमें प्रकट होगा। सेवाके भावसे कार्य करोगे तो विश्वप्रेम प्राप्त होगा। अपने लिये संसारकी आवश्यकता नहीं रहेगी, योगमें प्रवेश होगा।'

विवेक-विरोधी सम्बन्धका त्याग सत्संग है और असंगता साधन है। संसारमें रहेंगे माली बनकर, मालिक बनकर नहीं। संसारमें रहते हुए ही ममता, कामना, तादात्म्य छूट जायँगे। यदि हम शरीरको 'मैं' और 'मेरा' मानना छोड़ देंगे तो वास्तवमें शरीरसे न हमारा नित्य सम्बन्ध है, न जातीय सम्बन्ध और न ही आत्मीय सम्बन्ध। असंगतासे संसारसे सम्बन्ध टूटता है और अविनाशीसे सम्बन्ध जुड़ जाता है। तब 'यह' और 'मैं' 'हैं' में विलीन हो जाते हैं।

विवेक-विरोधी विश्वासका त्याग सत्संग है और आत्मीयता साधन। जब जीवनमें वस्तु-विश्वास, व्यक्ति-विश्वास, धन-विश्वास, बल-विश्वास आदि नहीं रहते, तब प्रभु-विश्वास सजीव होता है, दृढ़ होता है। अन्य विश्वास और अन्य सम्बन्धने ही हमें अपने स्वरूपसे और अपने प्यारेसे विमुख किया है। प्रभु ही अपने हैं, पर आज उनकी स्मृति नहीं है। संसारकी सम्मुखतासे प्रभुसे विमुखता हो गयी।

श्रीमहाराजजीसे एक साधकने प्रश्न किया कि महाराजजी! आपके भगवान् कहाँ रहते हैं? श्रीमहाराजजीने उत्तर दिया कि भैया! तुम्हारे पीछे ही खड़े रहते हैं। उस साधकने पीछे मुड़कर देखा तो श्रीमहाराजजीने कहा—भैया! जिधर तुम्हारी पीठ हो गयी वे उधर ही मुड़ गये। साधकने कहा—महाराजजी! क्या पहेली बुझा रहे हैं? श्रीमहाराजजीने कहा—'भैया! परमात्मा किसी दिशा-विशेषमें थोड़े ही हैं। वे तो सर्वत्र हैं। कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ वे न हों। जब सर्वत्र हैं तो तुममें भी तो हैं। बाहर देखते हो, अपनेमें क्यों नहीं देखते? अपनेमें तो तब न दिखें जब संसारका दिखाना बंद हो! कैसी विचित्र बात है कि वे निरन्तर हमें देख रहे हैं और हम उनके बनाये खिलौनोंको लालचभरी दृष्टिसे देखते रहते हैं। जीवन और जीवनधन तुममें ही हैं। अब अपनी ओर निहारो। सत्संगके द्वारा वह दृष्टि खुल जायगी। दो बातें ज्ञानपूर्वक निर्णय कर लो—(१) मेरा अपना कुछ नहीं है, (२) मुझे अपने लिये कुछ नहीं चाहिये और दो बातें आस्थापूर्वक स्वीकार कर लो—(१) प्रभु अपने हैं और (२) उनका प्रेम ही मेरा जीवन है।'

सत्यकी स्वीकृतिमें जीवन है और जीवनधनकी स्वीकृतिमें उनकी प्राप्ति निहित है।

---

* स्वामी श्रीशरणानन्दजीद्वारा संस्थापित मानवसेवासंघकी महामन्त्री सुश्री अर्पिताजीका यह लेख है। यहाँ श्रीमहाराजजीके सम्बोधनसे स्वामी श्रीशरणानन्दजीका संकेत है—सं०।

विदुरनीति

सातवाँ अध्याय

[गताङ्क पृ०-सं० ८७८ से आगे]

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता॥ ५९॥

यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत्॥ ६०॥

दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः॥ ६१॥

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात् सव्यपत्रपम्।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः॥ ६२॥

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम्।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति॥ ६३॥

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते।
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते॥ ६४॥

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम्॥ ६५॥

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात्॥ ६६॥

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम्॥ ६७॥

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु॥ ६८॥

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम्॥ ६९॥

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ ७०॥

जो शक्तिहीन है, वह तो सबपर क्षमा करे ही; जो शक्तिमान् है, वह भी धर्मके लिये क्षमा करे तथा जिसकी दृष्टिमें अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिये तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है॥ ५९॥ जिस सुखका सेवन करते रहनेपर भी मनुष्य धर्म और अर्थसे भ्रष्ट नहीं होता, उसका यथेष्ट सेवन करे; किंतु मूढव्रत (आसक्ति एवं अन्यायपूर्वक विषयसेवन) न करे॥ ६०॥ जो दुःखसे पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहरहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मीका वास नहीं होता॥ ६१॥ दुष्टबुद्धिवाले लोग सरलतासे युक्त और सरलताके ही कारण लज्जाशील मनुष्यको अशक्त मानकर उसका तिरस्कार करते हैं॥ ६२॥ अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अतीव शूरवीर, अधिक व्रत-नियमोंका पालन करनेवाले और बुद्धिके घमण्डमें चूर रहनेवाले मनुष्यके पास लक्ष्मी भयके मारे नहीं जाती॥ ६३॥ राजलक्ष्मी न तो अत्यन्त गुणवानोंके पास रहती है और न बहुत निर्गुणोंके पास। यह न तो बहुत-से गुणोंको चाहती है और न गुणहीनताके प्रति ही अनुराग रखती है। उन्मत्त गौकी भाँति यह अन्धी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही ठहरती है॥ ६४॥ वेदोंका फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्राध्ययनका फल है सुशीलता और सदाचार, स्त्रीका फल है रति-सुख और पुत्रकी प्राप्ति तथा धनका फल है दान और उपभोग॥ ६५॥ जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे परलोकसाधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरनेके पश्चात् उसके फलको नहीं पाता; क्योंकि उसका धन बुरे रास्तेसे आया होता है॥ ६६॥ घोर जंगलमें, दुर्गम मार्गमें, कठिन आपत्तिके समय, घबराहटमें और प्रहारके लिये शस्त्र उठे रहनेपर भी सत्त्व (मनोबल)-सम्पन्न पुरुषोंको भय नहीं होता॥ ६७॥ उद्योग, संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मृति और सोच-विचारकर कार्यारम्भ करना—इन्हें उन्नतिका मूलमन्त्र समझिये॥ ६८॥ तपस्वियोंका बल है तप, वेदवेत्ताओंका बल है वेद, असाधुओंका बल है हिंसा और गुणवानोंका बल है क्षमा॥ ६९॥ जल, मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका वचन और औषध—ये आठ व्रतके नाशक नहीं होते॥ ७०॥

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते॥ ७१॥

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम्॥ ७२॥

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके॥ ७३॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम्॥ ७४॥

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः॥ ७५॥

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम्॥ ७६॥

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा॥ ७७॥

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम्॥ ७८॥

मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।
कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः॥ ७९॥

सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम्॥ ८०॥

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत्॥ ८१॥

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम्॥ ८२॥

सहस्त्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते॥ ८३॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति॥ ८४॥

राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा॥ ८५॥

जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके प्रति भी न करे। थोड़ेमें धर्मका यही स्वरूप है। इसके विपरीत जिसमें कामनासे प्रवृत्ति होती है, वह तो अधर्म है॥ ७१॥ अक्रोधसे क्रोधको जीते, असाधुको सद्व्यवहारसे वशमें करे, कृपणको दानसे जीते और झूठपर सत्यसे विजय प्राप्त करे॥ ७२॥ स्त्री, धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्वके अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिकका विश्वास नहीं करना चाहिये॥ ७३॥ जो नित्य गुरुजनोंको प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषोंकी सेवामें लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं॥ ७४॥ जो धन अत्यन्त क्लेश उठानेसे, धर्मका उल्लङ्घन करनेसे अथवा शत्रुके सामने सिर झुकानेसे प्राप्त होता हो, उसमें आप मन न लगाइये॥ ७५॥ विद्याहीन पुरुष, संतानोत्पत्तिरहित स्त्रीप्रसंग, आहार न पानेवाली प्रजा और बिना राजाके राष्ट्रके लिये शोक करना चाहिये॥ ७६॥ अधिक राह चलना देहधारियोंके लिये दुःखरूप बुढ़ापा है, बराबर पानी गिरना पर्वतोंका बुढ़ापा है, सम्भोगसे वञ्चित रहना स्त्रियोंके लिये बुढ़ापा है और वचनरूपी बाणोंका आघात मनके लिये बुढ़ापा है॥ ७७॥ अभ्यास न करना वेदोंका मल है, ब्राह्मणोचित नियमोंका पालन न करना ब्राह्मणका मल है, बाह्लीक देश (बलख-बुखारा) पृथ्वीका मल है तथा झूठ बोलना पुरुषका मल है, क्रीड़ा एवं हास-परिहासकी उत्सुकता पतिव्रता स्त्रीका मल है और पतिके बिना परदेशमें रहना स्त्रीमात्रका मल है॥ ७८-७९॥ सोनेका मल है चाँदी, चाँदीका मल है राँगा, राँगेका मल है सीसा और सीसेका भी मल है मल॥ ८०॥ सोकर नींदको जीतनेका प्रयास न करे, कामोपभोगके द्वारा स्त्रीको जीतनेकी इच्छा न करे, लकड़ी डालकर आगको जीतनेकी आशा न रखे और अधिक पीकर मदिरा पीनेकी आदतको जीतनेका प्रयास न करे॥ ८१॥ जिसका मित्र धन-दानके द्वारा वशमें आ चुका है, शत्रु युद्धमें जीत लिये गये हैं और स्त्रियाँ खान-पानके द्वारा वशीभूत हो चुकी हैं, उसका जीवन सफल है॥ ८२॥ जिनके पास हजार (रुपये) हैं, वे भी जीवित हैं तथा जिनके पास सौ (रुपये) हैं, वे भी जीवित हैं; अतः महाराज धृतराष्ट्र! आप अधिकका लोभ छोड़ दीजिये, इससे भी किसी तरह जीवन रहेगा ही॥ ८३॥ इस पृथिवीपर जो भी धान, जौ, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब-के-सब एक पुरुषके लिये भी पूरे नहीं हैं—ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता॥ ८४॥ राजन्! मैं आपसे फिर कहता हूँ, यदि आपका अपने पुत्रों और पाण्डवोंमें समानभाव है तो उन सभी पुत्रोंके साथ एक-सा बर्ताव कीजिये॥ ८५॥ **(क्रमशः)**

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

परिवारमें कैसे रहें ?

पत्नीका अनुरागमूलक साधन—पतिसेवा

[शैव्याकी कथा]

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

हमारे भगवान् बड़े दयालु हैं। उन्होंने अंशस्वरूप हम जीवोंको इतने स्वाभाविक सनातन विधान दिये हैं कि इन साधनोंके अनुष्ठानसे सुख भी मिलता रहे और सभी साधनोंसे श्रेष्ठ भी हों। जैसे बच्चोंको अपने माता-पितापर स्वाभाविक अनुराग होता है। शैशवावस्थामें तो वे इनके बिना रोते-चिल्लाते रहते हैं। इस स्वाभाविक स्नेहको भगवान्‌ने पुत्रके लिये सर्वश्रेष्ठ साधनके रूपमें दिया है, जिसकी चर्चा मूक चाण्डाल एवं सुकर्माके उपाख्यानोंमें की गयी है। इसी प्रकार पत्नीका अनुराग पतिमें होना स्वाभाविक है। भगवान्‌ने पत्नीको सर्वश्रेष्ठ साधनके रूपमें इसे प्रदान किया है।

पतिके सुखमें अपना सुख पत्नीके लिये स्वाभाविक है; क्योंकि प्रेमका स्वभाव ही होता है कि प्रेमी प्रेमास्पदके सुखको अपना सुख एवं उसके दुःखको अपना दुःख मानता है। इसलिये प्रेमी अपने प्रेमास्पदके हित-साधनमें सदैव तत्पर रहता है। इस तरह पत्नीका अपने पतिके लिये जो स्वाभाविक अनुराग है, उसीको भगवान्‌ने सर्वश्रेष्ठ साधनके रूपमें प्रदान किया है; जैसे सूर्यके उदयको रोक देना कोई साधारण सिद्धि नहीं है, किंतु पत्नी पतिकी सेवाकर यह सिद्धि भी सरलतासे प्राप्त कर लेती है। इसका सरस उदाहरण इतिहासके पृष्ठोंपर मिल जाता है।

मध्य देशमें एक नगरी थी। उसमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी रहती थी। उसका नाम शैव्या था। वह अपने पतिके प्रेममें सदैव डूबी रहती थी एवं उसके हितके साधनोंमें सदैव लगी रहती थी।

बचपनमें ही शैव्याको बता दिया गया था कि भगवान् दयाके सागर हैं। उन्होंने मनुष्य-जीवनको सार्थक करनेके लिये कुछ ऐसे विधान बना दिये हैं, जो स्वाभाविक अनुरागमूलक हैं। अनुरागमूलक होनेके कारण वे अत्यन्त सरस और सुगम हैं और उनका फल तपस्या आदि कष्टकर साधनोंसे मिलनेवाले फलसे कम नहीं अपितु अधिक ही है।

उनमें पुरुषोंके लिये साधन है—माता-पिताको भगवान्‌का प्रतीक मानकर उनकी पूजा करना। दूसरा साधन नारियोंके लिये है—पतिको भगवान्‌का प्रतीक मानकर उनकी पूजा करना। पुत्री शैव्या मातासे पतिसेवाकी बात सुनकर कुछ उत्सुक हो उठी। वह जानती थी कि उसका विवाह शीघ्र ही होनेवाला है। उसने माँसे पूछा—माँ! जिससे विवाह हो जाय, उस पतिकी पूजासे क्या लाभ होता है?

माँने कहा—तुम कुछ श्लोकोंको याद कर लो, इन श्लोकोंको तुम नित्य सुनती हो, जब मैं पाठ करती हूँ—

पतिव्रता च या नारी पत्युर्नित्यं हिते रता।
कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत्सा शतं शतम्॥

(पद्मपु० सृष्टि० ५२। ५२)

जो नारी पतिव्रता होती है, नित्य ही पतिके हितमें लगी रहती है; ऐसी पतिव्रता नारी अपने श्वशुरकुलकी सौ पीढ़ियोंको और माताकुलकी सौ पीढ़ियोंको तार देती है।

पुत्री शैव्याने कहा—माँ! दो कुलोंकी सौ-सौ पीढ़ियोंका उद्धार करना तो बहुत बड़ा फल है, किंतु मैं यह जानना चाहती हूँ कि पतिव्रताको निजी लाभ क्या मिलता है? माँने कहा—पतिव्रता नारी तो इतनी महान् हो जाती है कि मनुष्य तो क्या सभी देवताओं और मुनियोंकी भी पूज्य हो जाती है।

पतिव्रता और उसके पतिको यह लाभ है कि दोनोंको स्वर्गलोक मिलता है और तबतक वे स्वर्गलोकमें रहते हैं जबतक प्रलय नहीं हो जाता। सृष्टि-क्रममें वे दोनों पृथ्वीपर फिर जन्म लेते हैं और पतिव्रताका पति चक्रवर्ती सम्राट् बनता है। पुनः मृत्युके बाद वे स्वर्गके राजा होते हैं। इस प्रकार सौ जन्मोंके बाद वे मुक्त हो जाते हैं—

स्वर्गं भुनक्ति तावच्च यावदाभूतसम्प्लवम्।
स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्वास्याः सार्वभौमो नृपः पतिः॥
अस्यैव महिषी भूत्वा सुखं विन्देदनन्तरम्।
पुनः पुनः स्वर्गराज्यं तस्य तस्या न संशयः॥
एवं जन्मशतं प्राप्य अन्ते मोक्षो भवेद् ध्रुवम्॥

(पद्मपु० सृष्टि० ५२। ५३—५५)

पुत्री शैव्या माँकी बात बहुत ध्यान और नम्रतासे सुन रही थी, किंतु एक जिज्ञासाका भाव उसके मुखपर अंकित हो रहा था। माँने पूछा—बेटी! अभी तुम कुछ पूछना चाहती हो क्या? पूछो।

शैव्या और विनम्र होकर बोली—हाँ माँ, मैं पतिव्रताके इन फलोंको सुनकर विस्मित हूँ। पर इस जन्ममें उसका क्या फल मिलता है? माँने बेटीको अपनी गोदमें बैठाते हुए कहा कि तुहारे प्रश्नसे मैं अति प्रसन्न हूँ। किंतु इस प्रश्नका दर्शनसे सम्बन्ध है, इसलिये सावधान होकर सुनो—

ईश्वर न किसीको दुःख देता है, न सुख। इन दोनोंको देनेवाला कर्म होता है। पहले जन्ममें प्राणी अच्छा या बुरा जैसा कर्म करता है, उसीके आधारपर उसे सुख या दुःख प्राप्त होता है। पुत्रीने गम्भीर होकर पूछा—तो भगवान्के अतिरिक्त भी कोई कारण होता है क्या?

माँ बोली—हाँ बेटी! कारण दो प्रकारके होते हैं—साधारण और असाधारण। इसको दृष्टान्तसे समझो—जैसे प्रत्येक वृक्षके लिये साधारण कारण तो बीज होता है और असाधारण मेघका जल। नीमका बीज, नीबूका बीज, ईखका बीज और इमलीका बीज खेतमें छींट दिया जाय और यदि वृष्टिका जल न मिले तो कोई भी बीज न तो उग सकता है, न फल दे सकता है। इसी प्रकार भगवान् सभीके असाधारण कारण होते हैं। उनके बिना न तो किसीकी सृष्टि हो सकती है, न पालन और न ही संहार। बीजको साधारण कारण इसलिये माना जाता है कि नीममें जो कड़ुवापन, इमलीमें जो खट्टापन, मिर्चमें जो तीखापन और ईखमें जो मीठापन है वह बीजके ही कारण है, वृष्टिका जल तो एक ही है। इसलिये मनुष्यको अच्छे-बुरे कर्मोका फल सुख-दुःखरूपमें मिलता है। परंतु असाधारण कारण भगवान् इसकी व्यवस्था न करें तो केवल कर्म कुछ नहीं कर सकता। इसलिये हमें भगवान्को याद करना चाहिये और उनके प्रत्येक विधानमें प्रसन्न रहना चाहिये। मान लो, किसीने किसीकी हत्या कर दी है तो इस कर्मका परिणाम उसे भुगतना ही पड़ेगा। अगर इसे वह नहीं भोगेगा तो उसे नरक भोगना पड़ेगा। भगवान्की यह दया ही है कि वे प्राणीको नरकसे बचानेके लिये यहीं दुःख-रोग आदिके रूपमें उसे भोगनेकी व्यवस्था कर देते हैं। यह उनका अनुग्रह ही है।

विवाहके अनन्तर पूर्व जन्मके पापके अनुसार शैव्याका पति कुष्ठ-रोगसे ग्रसित हो गया था। उसके शरीरमें ऐसे घाव हो गये थे, जिनसे बराबर पीब आदि रिसते रहते थे। शैव्या अपने पतिकी सेवामें सदा संलग्न रहती थी। पतिके घावोंको धोती, पोंछती और दवा लगाती। पतिके मनमें जो-जो इच्छाएँ होतीं, उन्हें सदैव पूरी करनेकी कोशिश करती। एक दिन उसके पतिने सड़कपर जाती हुई एक परम सुन्दरी वेश्याको देखा। देखते ही वह उसपर अत्यन्त आसक्त हो गया। वेश्याके चले जानेपर उसके पतिको इतना कष्ट हुआ कि वह जोर-जोरसे साँसें लेने लगा। उसका उच्छ्वास सुनकर शैव्या बाहर निकलकर पतिके पास आयी और उससे पूछा कि स्वामी! आप लम्बी साँसें क्यों खींच रहे हैं? आप अपना प्रिय कार्य बताएँ, उसे अवश्य पूर्ण करनेका प्रयास करूँगी। क्योंकि आप मेरे प्रियतम हैं, आपकी खुशी ही मेरी खुशी है, आप मुझे आज्ञा दें।

कोढ़ी पतिने कहा कि अभी इस मार्गसे एक वेश्या जा रही थी। वह परम सुन्दरी है। उसके सौन्दर्यने मुझे अभिभूत कर दिया है। उसीके विरहमें मैं तड़प रहा हूँ। मैं कोढ़ी एवं निर्धन हूँ। मैं उसे कैसे प्राप्त कर सकूँगा और इस कार्यमें तुम मेरी क्या सहायता करोगी? पतिकी बात सुनकर पतिव्रता शैव्याने कहा कि स्वामी! इस समय आप धैर्य रखें, इस कार्यमें मैं आपकी पूरी सहायता करूँगी। पतिव्रता बुद्धिमान् थी, उसने एक उपाय ढूँढ़ निकाला। वह उषाकालमें उठकर गोबर एवं झाड़ू लेकर वेश्याके घरके पास जा पहुँची। उसने वेश्याके आँगन एवं गली-कूचोंको झाड़कर एवं गोबरसे लीप-पोतकर चमका दिया। किसीकी दृष्टि न पड़े, अतः वह शीघ्र ही घर लौट आयी। इस तरह शैव्या तीन दिनोंतक वेश्याके घरको लीप-पोतकर साफ करनेके साथ-साथ लोगोंसे दृष्टि बचानेमें भी सफल हो गयी।

पहले ही दिन अपने घरकी उत्तम सफाई देखकर वेश्याको बड़ा अच्छा लगा और विस्मय भी हुआ कि आज घरकी सफाई किसने की! वेश्याने अपने नौकरोंसे पूछा कि क्या तुममेंसे किसीने घरकी इतनी सुन्दर सफाई की? परंतु किसीने भी स्वीकार नहीं किया। लगातार तीन दिनोंतक यह कार्य देखकर उसके मनमें विचार आया कि मैं स्वयं देखूँगी कि यह कार्य कौन कर रहा है? जब चौथे दिन शैव्या फिर सफाई करने लगी तो वेश्या उसे देखकर पहचान गयी। वेश्याने उसके पैरोंपर गिरकर कहा—आप जैसी पवित्र महिलाके इस कार्यसे मैं घोर नरकमें पड़ूँगी। आप मुझसे क्या चाहती हैं? धन, रत्न, आभूषण जो भी आप चाहें, मैं देनेको तैयार हूँ। पतिव्रताने कहा—रूपश्री!

मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है। मुझे तो तुम्हींसे कुछ काम है, यदि तुम कहो तो मैं कहूँ। यदि तुम मेरे मनोरथको पूर्ण कर दोगी तो मेरा हृदय अत्यन्त संतुष्ट हो जायगा।

वेश्याने कहा कि आप अपने अभिलषित कार्यको बताएँ, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगी। पतिव्रताने अपने पतिकी अभिलाषाको कह सुनाया। सुनते ही वेश्या हतप्रभ हो गयी। दुर्गन्धयुक्त शरीरवाले कोढ़ी व्यक्तिसे संसर्गकी बात सोचकर उसके मनमें बहुत संताप हुआ। परंतु उसने पतिव्रतासे कहा कि ठीक है, मैं तुम्हारे पतिकी केवल एक दिन इच्छापूर्ति करूँगी।

पतिव्रताने कहा कि मैं आधी रातको अपने पतिको तुम्हारे पास लाती हूँ। वेश्याने स्वीकृति प्रदान कर दी। शैव्या प्रसन्न होकर घर आयी और अपने पतिसे कहा कि स्वामी! आपको आज ही उसके घर जाना है। शैव्याके पतिने कहा कि मुझसे चला नहीं जायगा, फिर मेरी इच्छा कैसे पूर्ण होगी? शैव्याने कहा कि मैं अपनी पीठपर बैठाकर आपको उसके घर ले जाऊँगी और मनोरथ सिद्ध हो जानेपर लौटाकर फिर वापस ले आऊँगी।

आधी रातमें शैव्या पतिको पीठपर बैठाकर वेश्याके घर चल पड़ी। घोर अन्धकार था, शैव्याको देखनेमें परेशानी हो रही थी, किंतु विद्युत्की चमक पाकर चल पड़ती थी। उस दिन राजाके सिपाहियोंने माण्डव्य ऋषिको चोर समझकर सूलीपर चढ़ा दिया था। सूली नीचेसे ऊपर-मस्तकके पार चली गयी थी। उसी रास्तेसे शैव्या

अपने पतिको लेकर वेश्याके घर जा रही थी। संयोगवश शैव्याके पतिका शरीर माण्डव्य ऋषिके शरीरसे टकरा गया। ऋषिकी समाधि भङ्ग हो गयी। उन्हें अत्यन्त पीड़ा होने लगी और उन्होंने शाप दे दिया कि जिसने मुझे इस पीड़ाकी अवस्थामें पहुँचा दिया है, वह सूर्योदय होते ही भस्म हो जायगा। यह शाप सुनते ही शैव्या पतिके भावी वियोगको सोचकर संतप्त हो उठी और बोली कि जाओ अब सूर्योदय ही नहीं होगा। इसका परिणाम यह हुआ कि तीन दिनतक सूर्य निकला ही नहीं, दुनियाके सारे जड़-चेतन व्याकुल हो उठे। देवताओंसे तीनों लोकोंका यह दुःख देखा न गया और उन्होंने पितामह ब्रह्मासे प्रार्थना की कि आप शीघ्र कुछ उपाय करें अन्यथा सारा विश्व नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। यह सुनते ही पितामह ब्रह्मा देवताओंके साथ विमानपर चढ़कर शैव्याके पास पहुँचे और कहा कि माता! सूर्योदयके विरुद्ध जो तुम्हारा
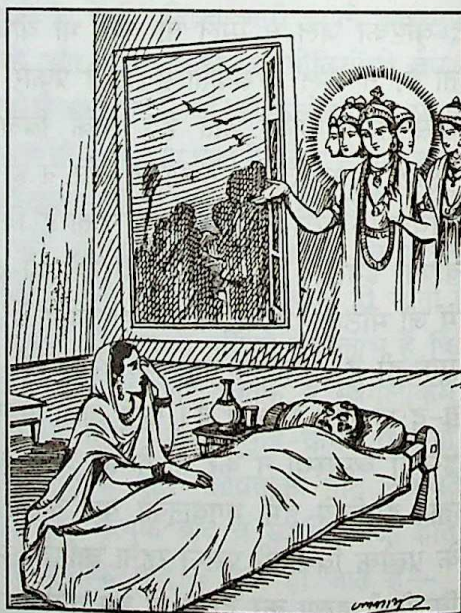
क्रोध है उसे त्याग दो, नहीं तो सारी दुनिया नष्ट हो जायगी। पतिव्रता शैव्याने कहा कि पति ही मेरे सब कुछ हैं। सूर्योदय होते ही ऋषिके शापसे इनकी मृत्यु हो जायगी। इसीलिये मैंने सूर्यको उदय होनेसे रोक रखा है। ब्रह्माने कहा कि तुम सूर्यको उगनेका आदेश दो। तुम्हारे पति शापवश भस्म हो जायँगे, परंतु मैं उन्हें जिला दूँगा और कामदेवके समान सुन्दर शरीर भी बना दूँगा। तब शैव्याने सूर्योदय होनेका आदेश दिया। शापवश उसका पति भस्म हो गया, परंतु ब्रह्माके कथनानुसार अत्यन्त

रूपवान् शरीर धारण कर पुनर्जीवित हो गया। ठीक उसी समय एक तेजस्वी विमान आया, जो साध्वी शैव्याको उसके पतिके साथ बैठाकर स्वर्गलोक ले गया (पद्मपुराण)।
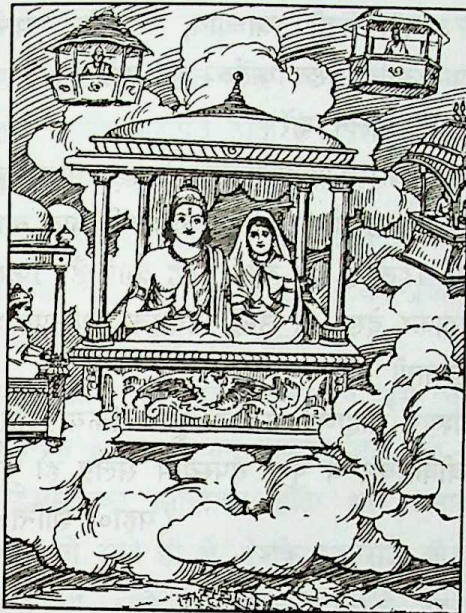
किसीके कहनेसे सूर्यका न उगना और आज्ञा पाकर उग जाना—यह अद्भुत चमत्कार है। इस चमत्कारको बड़े-बड़े साधक भी नहीं पा सकते। यह है पति-सेवाका सुप्रभाव।

स्कन्दपुराणके अनुसार ब्रह्माने पतिव्रताके महत्त्वको बतानेके लिये देवताओंको सती अनसूयाके पास भेजा। अनसूयाके द्वारा समझाये जानेपर शैव्याने सूर्योदय होने दिया। इसके बाद उसका पति मरकर फिर जीवित हो गया और कामदेवके समान सुन्दर शरीरवाला हो गया। उसका मन भी अपनी पत्नीमें लग गया। यह है पतिव्रताका सुप्रभाव।

अन्य पुराणोंमें पितामह ब्रह्माने सतीधर्मके महत्त्वको अधिक प्रख्यापित करनेके लिये देवताओंसे कहा—सतीको सती ही समझा सकती है। आपलोग महान् पतिव्रता अनसूयासे इस शैव्याको समझानेको कहें। महासती अनसूयाके समझानेसे सती शैव्याने आदेश दिया और सूर्य उदय हो गया। सूर्योदय होते ही शापवशात् शैव्याका पति भस्म हो गया, परंतु सती अनसूया और देवोंकी कृपासे वह तुरंत जी उठा तथा तन-मन दोनोंसे सुन्दर हो गया। वह कोढ़ी पति इतना सुन्दर हो गया जितना कि कामदेव। (गरुडपु० १। १४२, मार्कण्डेयपु० १६, स्कन्दपु० ५। ३। २६९—२७२) [क्रमशः]

नीतिके आख्यान—

(१)

आत्महत्या महान् पाप है

[काश्यप मुनि और गीदड़की कथा]

प्राचीन कालमें एक धन-सम्पन्न वैश्य रहता था। वह धनके मदमें सदा चूर रहा करता था। एक दिन वह अपने रथसे कहीं जा रहा था। उसी मार्गसे एक निर्धन, किंतु तपस्वी ऋषि-बालक काश्यप भी जा रहे थे। वैश्यने देखा कि ऋषि-बालक आगे-आगे जा रहे हैं। तब उस मदोन्मत्त वैश्यने अपने रथके धक्केसे उन ऋषि-बालकको गिरा दिया और आगे बढ़ गया। ऋषि-बालक पीड़ासे कराह उठे। उन्होंने मनमें यह विचार किया कि मेरी निर्धनताको देखकर ही धनके मदसे उन्मत्त इस वैश्यने मेरा यह अपमान किया है। वास्तवमें धनहीनता महान् दुःख है। निर्धन रहनेसे तो जगह-जगह अपमान ही होता है, अतः इस जीवनसे क्या लाभ! इससे तो मर जाना ही ठीक है। यह सोचकर उन्होंने आत्महत्याका निर्णय कर लिया।

उन ऋषि-बालककी धनके प्रति लालसा तथा आत्महत्याका संकल्प देखकर देवराज इन्द्र गीदडका रूप धारणकर उनके पास आये और कहने लगे—
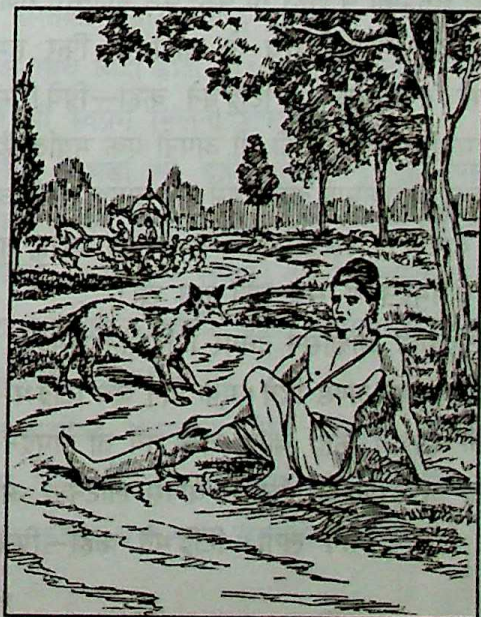
ऋषि-बालक! सभी प्राणी इस दुर्लभ मनुष्य-योनिकी प्राप्तिकी कामना करते रहते हैं, उसपर भी ब्राह्मणत्व और तपकी निष्ठा और भी अधिक दुर्लभ है, यह सब पाकर एवं एक श्रोत्रिय ब्राह्मण होते हुए भी आप उसपर दृष्टिदोष करके मृत्युका वरण करना चाहते हैं, यह तो सर्वथा अनुचित है। आप लोभके वशीभूत हो गये हैं, जो आप-जैसोंको शोभा नहीं देता। मेरी ओर देखिये—मैं तो गीदड़की कष्टप्रद पशुयोनिमें हूँ। आपसे अधिक दु:ख हमें होता है, किंतु फिर भी मैं जीवित रहना चाहता हूँ। फिर आप तो तपस्वी होते हुए भी धनकी लालसाके वशीभूत हो और मान-अपमानका ख़याल करते हुए आत्महत्या करना चाहते हैं, यह ठीक नहीं है। आत्महत्या महान् पाप है। धनसे कभी किसीको संतोष न हुआ है, न कभी होगा। अत: इस तृष्णाको सर्वथा छोड़ देना चाहिये। मनुष्य धनी होनेपर राज्य पाना चाहते हैं, राज्यसे देवत्वकी इच्छा करते हैं और फिर देवत्वसे इन्द्रपद प्राप्त करना चाहते हैं। यह धनकी अतृप्त परम्परा है, इससे प्रभावित हो आपको खिन्न नहीं होना चाहिये। आपके लिये स्वाध्याय, अग्निहोत्र, सत्यपालन, इन्द्रियसंयम आदि मुख्य कर्तव्य हैं। इसलिये आप अपने कर्तव्यका ही पालन करें।

यह सुनकर काश्यप ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ कि अहो! यह गीदड़ होकर भी तत्त्वज्ञानकी बात बतला रहा है, मालूम पड़ता है यह कोई सिद्ध ऋषि है। फिर उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो उन्हें गीदड़के स्थानपर शचीपति इन्द्र दिखलायी पड़े।

काश्यप ब्राह्मणने उनका पूजन किया और उनकी आज्ञा स्वीकारकर वे पुन: तपस्यामें संलग्न हो गये।

(महा०, शान्ति० १८०)

(२)

अपमान किसीका भी न करे

दक्षिणमें समुद्रके तटपर एक टिट्टिभ-दम्पति रहा करते थे। प्रसव-काल समीप देखकर टिट्टिभीने कहा—प्राणनाथ! मेरे प्रसवका समय निकट आ गया है, अत: कोई ऐसा सुरक्षित स्थान ढूँढ़ना चाहिये, जहाँ सुखपूर्वक अण्डोंको रखा जा सके। टिट्टिभने कहा—कल्याणि! यह समुद्र-तट अत्यन्त रमणीय है, यहीं प्रसव करो। टिट्टिभीने कहा—स्वामिन्! समुद्रकी ये लहरें तो बड़े-बड़े मदोन्मत्त गजराजों-तकको अपने गर्भमें खींच ले जाती हैं, फिर हम क्षुद्र पक्षियोंकी क्या बिसात! टिट्टिभने कहा—प्रिये! संसारमें सबकी मर्यादा है, समुद्रकी भी अपनी एक मर्यादा है; यदि वह उसका अतिक्रमण करके हमें क्षुद्र समझ हमारे अङ्गोंको बहा ले जायगा तो उसे उसका दण्ड भुगतना पड़ेगा, तुम भय न करो। समुद्रने ये सब बातें सुन लीं।

टिट्टिभके आश्वासन देनेपर टिट्टिभीने समुद्रके किनारे सुरक्षित स्थानपर अण्डे दिये। एक दिन जब टिट्टिभ-दम्पति भोजनकी खोजमें कहीं बाहर चले गये तो समुद्रने उनके अण्डोंका अपहरण कर लिया। वापस लौटनेपर अण्डोंको न देख टिट्टिभी रोने लगी। टिट्टिभने कहा—प्रिये! तुम चिन्ता न करो, समुद्रको इसका फल भुगतना पड़ेगा। यह कहकर टिट्टिभने पक्षिराज गरुडके पास जाकर प्रार्थना की—महाराज! समुद्र हमें क्षुद्र प्राणी समझकर अपमानित करता है, उसने मेरी टिट्टिभीके अण्डोंको चुरा लिया है। आप हम सब पक्षियोंके स्वामी हैं और समर्थ हैं, अत: आपको समुद्रकी इस धृष्टताके लिये उसे दण्ड देना चाहिये। गरुडने कहा—टिट्टिभ! समुद्रको भगवान् श्रीहरिका आश्रय प्राप्त है, अत: मैं उन्हीं श्रीहरिसे ही उसे दण्ड दिलाऊँगा। यह कहकर गरुड टिट्टिभको लेकर भगवान् नारायणके पास गये और समुद्रद्वारा की गयी धृष्टताकी बात उनसे कही। तब भगवान्‌की आज्ञा मानकर भयभीत समुद्रने टिट्टिभीके अण्डे वापस कर दिये।

अत: किसी क्षुद्र जीव-जन्तुका भी अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक प्राणीमें श्रीहरिका वास है। वे ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। किसीका भी अपमान उस जीवमें स्थित नारायणका ही अपमान है। इससे व्यक्तिको दण्डका भागी बनना पड़ता है।

(हितोपदेश, सुहृद्भेद)

विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र—

दान-नीतिके आदर्श—राजा हर्षवर्धन

तीर्थराज प्रयागमें गङ्गा-यमुनाके संगमपर पता नहीं कबसे जब बृहस्पति मिथुन राशिपर आते हैं (प्रायः बारहवें वर्ष), तब कुम्भ-महापर्व होता है। उससे आधे कालमें अर्धकुम्भका पर्व माना जाता है। यद्यपि कुम्भ-महापर्व भारतमें चार स्थानोंमें पड़ता है, किंतु अर्धकुम्भपर्व प्रयागमें ही माना जाता है। इस प्रकार प्रति छठे वर्ष प्रयागमें कुम्भ अथवा अर्धकुम्भका पर्व पड़ जाता है।

भारतसम्राट् शिलादित्य हर्षवर्धन इस कुम्भ या अर्धकुम्भपर्वके आनेपर प्रयाग अवश्य आते थे। सम्राट्की ओरसे मोक्षसभाका आयोजन होता था। सनातन-धर्मी विद्वान् साधु तो आते ही थे, देशके सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् तथा भिक्षु भी आते थे। सम्राट् सबके ठहरने और भोजनादिकी व्यवस्था करते थे। एक महीने निरन्तर धर्मचर्चा चलती थी।

यह स्मरण रखनेकी बात है कि हर्षवर्धनने अपनेको कभी राजा नहीं माना। वे अपनेको अपनी बहिन राज्यश्रीका प्रतिनिधि ही मानते थे। तपस्विनी राज्यश्रीका कहना था—'प्रयागकी यह पावन भूमि तो महादानकी भूमि है। इसमेंसे कुछ भी घर लौटा ले जाना अत्यन्त अनुचित है।'

वह मोक्षसभाका प्रथम आयोजन था। हर्षने सर्वस्व-दानकी घोषणा कर दी थी। राज्यश्रीने भी सब दान कर दिया था। धन, रत्न, आभूषण, वस्त्र, वाहन आदि सब कुछ दान कर दिया गया। शरीरपरके पहननेके वस्त्रतक राज्यश्रीने सेवकोंको दे दिये। परंतु उसे तब चौंकना पड़ा जब उसके भाई सम्राट् हर्ष केवल धोती पहने, बिना उत्तरीयके अनाभरण उसके सम्मुख आये और बोले—'बहिन! हर्ष तुम्हारा राज्य-सेवक है। यह अधोवस्त्र नापितको दे देनेका संकल्प कर चुका है। अपने इस सेवकको एक वस्त्र नहीं दोगी?'

राज्यश्रीके नेत्र भर आये। उसके शरीरपर भी एकमात्र साड़ी बची थी। उसने ढूँढ़ा तो एक पुराना वस्त्र शिबिरमें पड़ा मिल गया। वह इसलिये बच गया था कि फटकर चिथड़ा हो चुका था। किसीको देनेयोग्य नहीं रहा था। वह चिथड़ा हर्षने ले लिया और उसे लपेटकर धोती नापितको दे दी।
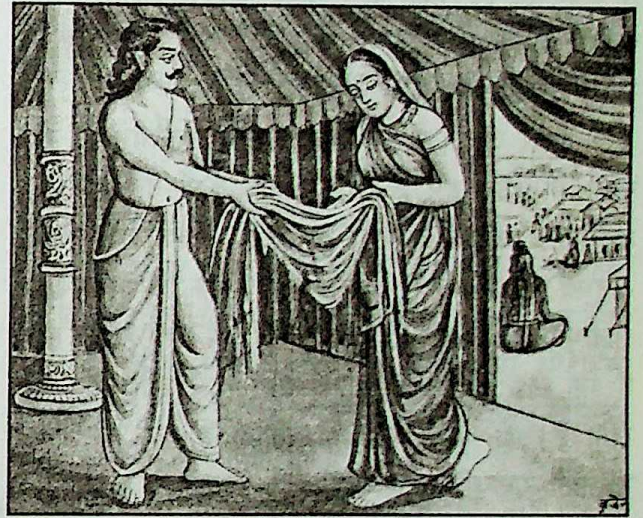
इसके पश्चात् तो यह परम्परा ही बन गयी। प्रति छठे वर्ष हर्षवर्धन सर्वस्व-दान करते थे और बहिन राज्यश्रीसे माँगकर एक फटा चिथड़ा लपेटते थे। कटिमें वह चिथड़ा लपेटे भारतका सम्राट् नग्नदेह कुम्भकी भरी भीड़में पैदल बहिनके साथ विदा होता था। उस महादानीकी शोभा क्या सुरोंको भी स्वप्नमें मिलनी शक्य है?

वह चिथड़ा भी हर्षके पास रह नहीं पाता था। प्रयागके उस संगम-क्षेत्रसे बाहर निकलते ही कोई-न-कोई नरेश आगे आ जाता—'सम्राट्! आपने सर्वस्व-दान किया है। आपका यह कटिवस्त्र पानेकी कामना लिये आया है यह आपका सेवक!'

राजाओंके स्नेहपूर्वक मिले उपहार तो सम्राट्को स्वीकार करने ही थे। वह कटिवस्त्र जिसे मिलता, वह अपनेको कृतार्थ एवं परम सम्मानित मानता।

हमारा महान् शत्रु—आलस्य

(श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।

अर्थात् मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु उसके शरीरमें स्थित आलस्य ही है। अपने इस जीवनमें भी हम प्रतिपल यह अनुभव करते हैं कि किसी भी कार्यकी सिद्धिमें आलस्य ही सबसे महान् बाधक है। उत्साहकी मन्दतासे प्रकृतिमें शिथिलता आती है। हमारे बहुत-से कार्य आलस्यवश सम्पन्न नहीं हो पाते। दो मिनटके कार्यके लिये आलसी व्यक्ति 'फिर करूँगा, कल करूँगा' करते-करते लम्बा समय यों ही बिता देता है।

हमारे जीवनका अधिकांश समय आलस्यमें ही बीत जाता है; यदि हम उतने समयतक कार्य-तत्पर रहें तो कल्पनासे अधिक कार्यकी सिद्धि हो सकती है। इसका अनुभव हम कार्यमें संलग्न रहनेवाले व्यक्तिके क्रियाकलापोंद्वारा भलीभाँति कर सकते हैं। बहुत बार हमें यह आश्चर्य होता है कि एक ही व्यक्ति इतना काम कब और कैसे कर लेता है। जो काम अभी हो सकता है, उसे घंटों बाद करनेकी मनोवृत्ति आलस्यकी ही निशानी है। एक-एक काम हाथमें लिया और करते चले गये तो बहुत-से कार्य हो जायँगे; पर बहुत-से काम एक साथ लेनेसे किसे पहले किया जाय, इसी उधेड़बुनमें समय बीत जाता है, एक भी काम पूर्णतया नहीं हो पाता। संत कबीरकी यह चेतावनी चिर ध्यातव्य है—

काल्ह करै सो आज करु, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब॥

दूसरी बात यह ध्यानमें रखनी है कि एक साथ अधिक कार्य न लिये जायँ; क्योंकि ऐसी स्थितिमें किसी भी कार्यमें पूरा मनोयोग और उत्साह न रहनेसे सफलता नहीं मिल सकेगी। अतः एक-एक कार्य किया जाय; अन्यथा सभी कार्य अधूरे रह जायँगे और किसी भी कार्यका फल नहीं मिल सकता। आलसी व्यक्ति पहले तो कार्य आरम्भ ही नहीं करता; यदि प्रारम्भ भी करता है तो उसे अधूरा छोड़ देता है।

जैन-ग्रन्थोंमें कार्योंमें बाधा देनेवाली तेरह बातोंको कठिनाइयोंकी संज्ञा दी गयी है। उसमें सर्वप्रथम 'आलस्य' ही है। बहुत बार बना-बनाया काम तनिक-से आलस्यके कारण ही बिगड़ जाता है। प्रातःकाल निद्रा भंग हो जाती है, पर आलस्यवश ही हम उठकर काममें नहीं लगते। इधर-उधर उलट-पलट करते-करते कामका समय खो बैठते हैं। जो व्यक्ति उठते ही काममें लग जाता है, वह हमारे उठनेके पहले ही बहुत-से काम कर लेता है। दिनमें भी आलसी विचारमें ही रह जाता है और आलस्यरहित व्यक्ति कमाई कर लेता है। अतः प्रत्येक समय किसी-न-किसी कार्यमें लगे रहना चाहिये। कहावत भी है कि *'ठाले बेगार भली।'*

मानव-जीवन दुर्लभ होनेके कारण उसका प्रत्येक क्षण अत्यन्त मूल्यवान् है। जो समय चला जाता है, वह वापस नहीं आता। प्रतिक्षण आयु क्षीण हो रही है। न मालूम जीवन-दीप कब बुझ जाय। अतः क्षणमात्र भी प्रमाद न करनेका उपदेश भगवान् महावीरने दिया है। महामना गौतम गणधरको सम्बोधित करते हुए उन्होंने उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है—**'समयं गोयम मा पमावार'** अर्थात् 'हे गौतम! क्षणमात्रका भी प्रमाद न कर।'

जैन-दर्शनमें प्रमाद* निकम्मेपनके ही अर्थमें नहीं है, परंतु समस्त पापाचरणके आसेवनके अर्थमें भी है। पापाचरण करके जीवनके बहुमूल्य समयको व्यर्थ न गँवाइये। आलसी आत्मशक्तिका उपयोग नहीं करता तो पापाचारी उसका दुरुपयोग करता है। दोनों ही ठीक नहीं।

कई लोग कार्योंकी अधिकतासे घबराते हैं और आराम नहीं मिलनेसे स्वास्थ्य नष्ट होनेकी आशङ्का करते हैं। पर आलस्यके त्यागद्वारा कार्यशक्ति बहुत बढ़ायी जा सकती है। अतः अपनेको अधिकाधिक कार्य कर सकनेके उपयुक्त बनानेका अभ्यास डालना चाहिये। शरीर-मन आदि जैसा अभ्यास किया जाता है, वैसे ही बन जाते हैं। कार्य करते रहनेसे शक्तियोंका विकास होता है।

* 'प्रमाद'का अर्थ किया गया है करनेयोग्य कार्यको—वैध कर्तव्यको न करना और न करनेयोग्य कर्मोंको करना।

आत्मा अनन्त शक्तिका भण्डार है, पर उसका भान न होनेसे ही हम उस शक्तिका अनुभव नहीं कर पाते। बहुत बार उससे काम न लेनेके कारण ही हमारी वह शक्ति कुण्ठित हो जाती है। विधिवत् उपयोग करते रहनेसे वह क्रमशः बढ़ती रहती है। हम दो-चार घंटे शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक श्रम करके थक जाते हैं एवं विश्रामके लिये आतुर हो उठते हैं; पर अभ्यासके बलपर जिन्होंने अपनी शक्तिको बढ़ा लिया है, वे पंद्रह-बीस घंटेतक काम करनेपर भी थकते नहीं। महात्मा गाँधी, पं० जवाहरलाल नेहरूके कार्योंको देखिये—उनका प्रतिपल कार्यसंलग्न है। एक बार नेहरूजी सिलहट पधारे, तो उनके एक ही दिनमें १००—१५० मीलके भ्रमणके साथ १०—२० कार्यक्रम थे; उन्होंने किसीको असफल नहीं होने दिया था। उनके एक-एक मिनटका कार्यक्रम बँधा हुआ था, स्थान-स्थानपर भाषण देना पड़ता था। लोग उनकी ऐसी कार्यशक्ति देखकर दंग रह जाते थे। गाँधीजीको भी अधिक-से-अधिक काम करने पड़ते थे, पर वे सबको नियमितरूपसे करते रहते थे—सैकड़ों व्यक्तियोंसे मिलना, सबकी बातें सुनना तथा संतोषप्रद उत्तर देना, सैकड़ों व्यक्तियोंके पत्रोंका उत्तर देना और साथ ही 'हरिजन' आदिके लिये लेख लिखना, प्रवचन देना, रोगियोंको सँभालना, चरखा कातना आदि कार्य अच्छी तरह करना और टहलने भी जाना। फिर भी उनके सब काम समयपर निपट जाते थे। वे कभी भी आजका कार्य कलपर नहीं छोड़ते थे।

आलस्यके कारण ही हम अपनी अन्तर्हित शक्तियोंका अनुभव नहीं कर पाते और शक्तिका उपयोग न करके उसे कुण्ठित कर देते हैं। किसी भी यन्त्र और औजारका उपयोग करते हैं तो वह ठीक और तेज रहता है। सत्कर्मोंमें तो आलस्य तनिक भी न करे; क्योंकि '**श्रेयांसि बहुविघ्नानि**'—अच्छे कामोंमें बहुत विघ्न आते हैं। आलस्य असत् कार्योंमें कीजिये, जिससे आपमें सद्बुद्धि उत्पन्न हो और कोई भी बुरा कार्य आपसे होने ही न पाये।

जहाँतक हम पुरुषार्थ नहीं करते, वहींतक कार्य कठिन लगता है। पुरुषार्थके सामने असम्भव कुछ भी नहीं, सभी काम सरल हो जाते हैं। लम्बा रास्ता आलसीके लिये है, चलनेवालेके लिये तो वह ज्यों-ज्यों कदम बढ़ायेगा, रास्ता तय होता जायगा और उत्साह बढ़नेसे छोटा-सा प्रतीत होगा। अतः हम आलस्यरूपी शत्रुको अपने पास ही न फटकने दें—पुरुषार्थी बनें।
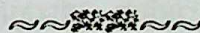
'भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई'

प्रेम भगति सुखदाई भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥
भगतबछल प्रभु दीनदयाला सुख दीनो कियो नाथ निहाला,
ऐ री सखि दधि माखन मिसरी प्रीत की रीत निभाई।
भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥
बाबा नंद की नौ लख गैया कौन कमी री बाघर गुइया,
दीन दयाल प्रेम के पाँछे बिसर गये ठकुराई।
भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥
नंदलला जसुमति को प्यारो मनमोहन चितचोर हमारो,
साँची प्रीत के आगे करे नित जन सेवकाई।
भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥
साँच कहूँ प्रभु जग उपजाओ सुर, नर, मुनि कोई पार न पाओ,
कहे 'बेताब' अरज मोरी सुनियो लाज राखो यदुराई।
भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥

—श्रीबेताब केवलारवी

साधनोपयोगी पत्र

(१)

चिन्ताका कारण—प्रभु-विश्वासमें कमी

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र प्राप्त हुआ। आपने पत्रमें जो बातें लिखी हैं, वे स्वाभाविक समस्याएँ हैं। भगवान्‌की कृपा सबपर है और निरन्तर है, परंतु प्रतिकूल परिस्थितिमें भगवान्‌की कृपाका जो अनुभव करता है वही वास्तवमें भगवद्विश्वासी है। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ अपने ही कर्मोंके अनुसार पाप और पुण्यके कारण आती हैं और ये टिकनेवाली नहीं होतीं। प्रतिकूल परिस्थिति जब आती है तो उसका प्रतिकार करते हुए धैर्यपूर्वक उसे सहन भी करना चाहिये तथा यह मानना चाहिये कि प्रभु हमारे पापोंको निवृत्त कर रहे हैं और हमें निर्मल बना रहे हैं। वास्तवमें यह उनकी कृपा ही है।

आपने चिन्ताकी बात लिखी, संसार तथा व्यवहारमें यद्यपि चिन्ता होना स्वाभाविक है, परंतु चिन्ताका मुख्य कारण है प्रभुविश्वासमें कमी। परिवारके सदस्योंको और अपने बाल-बच्चोंको जब हम अपना मानते हैं और उनमें ममता रहती है तो उनके प्रति चिन्ता रहना स्वाभाविक है। परंतु इन्हें प्रभुका मान लेनेपर धरोहर-रूपमें उनकी शिक्षा-दीक्षा, सेवा-शुश्रूषा अपना कर्तव्य समझकर करते रहनेपर हम चिन्तारहित हो सकते हैं। वास्तविकता भी यही है।

आपने लिखा—**'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'**। यहाँ बलका तात्पर्य आध्यात्मिक बलसे है शारीरिक बलसे नहीं। शास्त्रोक्त रीतिसे हम अपना जीवनयापन करेंगे तो आध्यात्मिक बल स्वतः बढ़ेगा।

आपने लिखा कि अन्तकालमें भगवान्‌के नामका स्मरण और चिन्तन कैसे हो सके—इसके लिये सबसे पहले तो आवश्यक है कि हम मानव-जीवनका परम उद्देश्य (भगवत्प्राप्ति) इसी जीवनमें सुदृढ़ कर लें—इसे निरन्तर ध्यानमें रखा जाय। उद्देश्यके सुदृढ़ होनेपर हमारे सभी क्रिया-कलाप भगवान्‌की प्राप्तिमें सहायक होंगे। इसके साथ ही **'मामनुस्मर युध्य च'** के अनुसार अपने शास्त्रों तथा संतोंने हम साधारण जीवोंके लिये एक अमोघ ओषधि बतायी है कि चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते—हर समय भगवन्नामका स्मरण-जप करते रहें। अन्तिम समयमें भगवत्स्मरण होगा या नहीं—इस बातकी चिन्ता न करके अपने कर्तव्यका पालन करते हुए स्वयंको प्रभुके शरणागत कर देना ही अपने कल्याणका परम साधन है।

आपने लिखा कि भगवान्‌की लीलाओंका ध्यान और चिन्तन करते समय संसार सामने आता है—इस बातकी परवाह न करते हुए यह भावना बनानी चाहिये कि मेरे तो केवल भगवान् हैं और मैं उन्हींका अंश हूँ। संसार अपना नहीं है और इसमें दिखायी पड़नेवाली बातें भी हमारी अपनी नहीं हैं, ये सब यहाँकी हैं और यहीं रह जायँगी, इसलिये इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरे अपने केवल प्रभु हैं और मेरा सम्बन्ध उन्हींसे है।

अपने यहाँ बहुत प्रकारके साधन हैं। वे सभी भगवत्प्राप्तिमें सहायक हैं। यथा—सत्संग, स्वाध्याय, नाम-जप, भजन-संकीर्तन, भगवान्‌की बाह्य-पूजा, मानसिक पूजा, लीला-चिन्तन, सेवा इत्यादि। एक साधनसे मन ऊबे तो दूसरा साधन शुरू किया जा सकता है।

आपने लिखा कि मैंने किसी सद्‌गुरुसे दीक्षा नहीं ली है। पारिवारिक संस्कारोंके अनुसार भगवान्‌का पूजन तथा शामको गीताका स्वाध्याय और मन्त्र-जप करता हूँ, यह बहुत अच्छी बात है। आजके समयमें यदि सद्‌गुरु उपलब्ध नहीं होते हैं तो श्रीकृष्णको अथवा सदाशिवको या श्रीहनुमान्‌जी आदि किन्हींको भी अपना सद्‌गुरु मान लेना चाहिये। इसके साथ ही किन्हीं एकके स्वरूपमें अपनी निष्ठा स्थापित कर उन्हें अपना इष्टदेव बना लेना चाहिये। उन प्रभुके साथ जो आपका सर्वप्रिय सम्बन्ध हो उसे स्थापित कर लेना चाहिये, जिससे उनके अपने बननेकी पूरी अनुभूति आपको हो सके। अपने इष्टदेवके नामका ही जप, ध्यान, चिन्तन और पूजन निरन्तर करना चाहिये।

जीवनमें कभी-कभी समस्याएँ, उलझनें और प्रतिकूलताएँ भी आती हैं, परंतु इनसे विचलित न होकर एकान्तमें अपने मनकी सारी बातें अपने प्रभुसे करनेपर वे अवश्य अपने शरणागत प्राणीको उबारते हैं और परिस्थितियोंको सहन करनेकी शक्ति भी प्रदान करते हैं। शेष भगवत्कृपा।

(२)

मन, बुद्धि आदिके स्वरूप

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। धन्यवाद! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) अन्तःकरणमें जो मनन या संकल्प-विकल्प करनेकी वृत्ति है, उसीका नाम मन है। मन संशयात्मक होता है; फिर

उस संशय या संकल्प-विकल्पपर विचार करके किसी निश्चयपर पहुँचानेवाली जो वृत्ति है, उसे बुद्धि कहते हैं। बुद्धि विचारपूर्वक निर्णय देती है। आत्मा इन दोनों वृत्तियोंका साक्षी अथवा द्रष्टा है। वह मन और बुद्धि दोनोंके कार्योंको तटस्थ रहकर देखता है। उसीके सहज प्रकाशसे मन, बुद्धि अपने कार्यमें समर्थ होते हैं। आत्मा मनका भी मन और बुद्धिकी भी बुद्धि है। यदि मन और बुद्धिको आत्माका आश्रय न प्राप्त हो तो वे सत्ताशून्यकी भाँति हो जाते हैं, फिर तो वे कुछ नहीं कर सकते। यही इन तीनोंका अन्तर है।

(२) मन जिस कार्यके लिये आज्ञा देता है, उसमें उसका कुछ राग या द्वेष अवश्य रहता है। वह प्राय: ऐसी प्रेरणाएँ देता है, जिनसे उसकी इच्छा पूर्ण हो। विषयसेवन या भोगसंग्रहकी प्रेरणा मनके द्वारा ही प्राप्त होती है। वह रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श—भोगोंके प्रति आसक्त होता है; अत: उनकी ओर वह आकृष्ट करना चाहता है। जीवको वह अपने पीछे चलाना चाहता है। किसी शत्रुसे बदला लेनेकी भावना भी मनमें होती है, अत: वैसे कार्य भी उसीकी प्रेरणासे होते हैं। इसमें द्वेष छिपा रहता है। राग और द्वेष ही काम और क्रोधके रूपमें परिणत होते हैं। इन्द्रिय, मन और बुद्धि—ये ही तीनों राग-द्वेष या काम-क्रोधके निवासस्थान हैं; अत: इनका प्रत्येक कार्य राग या द्वेषसे प्रेरित होता है। आत्मा इन सबसे ऊपर है, वह जबतक इनके मोहजालमें फँसकर अपने स्वरूपको भूला हुआ है, तभीतक मनके इशारेपर चलता है। 'मैं इन सबका स्वामी, शासक और इनसे सर्वथा विलक्षण हूँ। मैं सर्वत्र व्यापक एवं नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप हूँ।' यह ज्ञान होते ही वह इन मन आदिका शासक हो जाता है; फिर तो ये ही आत्माके अनुशासनमें चलते हैं। विशुद्ध आत्मासे प्रेरित होकर जो कार्य होगा, उसमें राग-द्वेषकी गन्ध भी नहीं होगी। सबके प्रति मैत्री, दया, परोपकार, सेवा, भगवद्भजन, सत्सङ्ग तथा सत्कर्म आदिके भाव मनमें तभी जगते हैं जब विशुद्ध आत्माकी प्रेरणा होती है। मन, इन्द्रिय आदि जब आत्माके अधीन होते हैं, तब इनके द्वारा कोई अशुभ कर्म नहीं होता। थोड़ेमें इतना ही समझ लें कि सद्धर्म एवं सद्भावपूर्ण कार्योंके लिये प्रेरणा आत्मासे मिलती है और राग-द्वेषपूर्ण कार्योंकी प्रेरणा मनकी ओरसे प्राप्त होती है।

जो कर्म राग-द्वेषरहित और वशमें किये हुए मन-इन्द्रियोंसे होते हैं, उनसे प्रसाद—चित्तकी निर्मलता-प्रसन्नता या भगवान्‌की कृपा प्राप्त होती है और उससे समस्त दु:खोंका नाश हो जाता है। भगवान् कहते हैं—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते।

(गीता २। ६४-६५)

(३) विशुद्ध आत्माका नाम ही परमात्मा है। इनमें कोई भेद नहीं है। इस आत्मा या परमात्माका कभी पतन नहीं होता। जैसे घटाकाश या महाकाशमें कोई अन्तर नहीं। वैसे ही शरीरान्तर्यामी आत्मा और परमात्मामें भी कोई अन्तर नहीं। मन, प्राण और सूक्ष्म इन्द्रियोंका समुदाय सूक्ष्म शरीर कहलाता है। यह स्थूल शरीरके भीतर रहता है। इसीकी प्रेरणाके अनुसार स्थूल शरीरद्वारा क्रियाएँ होती हैं। इस सूक्ष्म शरीरके साथ तादात्म्य हुए आत्माको जीव कहते हैं। इसी सूक्ष्म शरीरमें राग-द्वेषमूलक प्रवृत्ति होती है; अत: उसीका पतन होता है। वही नरकमें और वही स्वर्गमें भी जाता है। उसीका जन्म और उसीकी मृत्यु होती है। इस प्रकार आत्मा जबतक इस सूक्ष्म शरीरको अपना स्वरूप मानता है, तभीतक उसके सुख-दु:खसे वह सुखी-दु:खी होता है और विविध योनियोंमें भटकता रहता है।

पुरुष: प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

'प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक समस्त पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका सङ्ग ही जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है।' उस सूक्ष्म शरीरके ही पतनका आरोप लोग अज्ञानवश आत्मापर करते हैं। क्या घड़ेमें रखी हुई कीचड़का लेप आकाशमें भी लग सकता है? इसी प्रकार सूक्ष्म शरीरके दोष आत्माको छू भी नहीं सकते हैं। अत: सूक्ष्म शरीर या उसका अभिमानी जीव पतित होता है, आत्मा या परमात्मा नहीं।

(४) आत्मा या परमात्मा अनादि और अनन्त हैं। जन्म लेता है सूक्ष्म शरीर और वही मरता भी है। अज्ञानवश लोग आत्मापर उसका आरोप करते हैं। मनुष्य जन्म लेता है, इससे आत्माका जन्म लेना कैसे सिद्ध हुआ? एक विशेष प्रकारके शरीरको मनुष्य कहते हैं। आत्माका शरीरसे क्या सम्बन्ध? सूक्ष्म शरीरके द्वारा जो शुभाशुभ कर्म सम्पादित होते हैं, उन्हींके फलस्वरूप उसको मनुष्य आदि जीवोंके स्थूल शरीर प्राप्त होते हैं। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

कार्तिक कृष्णपक्ष (२२-१०-२००२ से ४-११-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	भौम	अश्विनी	२२ अक्टूबर	कार्तिकमें दालका त्याग, अश्विनी नक्षत्र दिन ८-०७ बजेतक, अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ६-१७ बजे, तुलसीदलसे श्रीविष्णु-पूजन आरम्भ, सर्वार्थामृतसिद्धियोग दिन ८-०७ बजेतक
द्वितीया	बुध	भरणी	२३ "	वृषके चन्द्रमा सायं ४-५६ बजे, राष्ट्रिय कार्तिकमास, सर्वार्थसिद्धियोग दिन १०-३० बजेसे, भद्रा रात्रि शेष ४-३९ बजेसे
तृतीया	गुरु	कृत्तिका	२४ "	भद्रा सायं ५-२३ बजेतक, करवा चौथ, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ७-२५ बजे, चन्द्रार्घदान, स्वाती नक्षत्रके सूर्य रात्रि ९-५६ बजे (मध्यमावृष्टि), सायन वृश्चिक राशिके सूर्यकी संक्रान्ति दिन ८-५० बजे, यायिजययोग दिन १२-३५ बजेसे सायं ५-२३ बजेतक, तृतीया तिथि सायं ५-२३ बजेतक
चतुर्थी	शुक्र	रोहिणी	२५ "	मिथुनके चन्द्रमा रात्रि २-४६ बजे, दशरथ चतुर्थी (बंगाल), स्थायिजययोग दिन २-१३ बजेसे सायं ६-२३ बजेतक
पञ्चमी	शनि	मृगशिरा	२६ "	पञ्चमी तिथि सायं ६-५३ बजेतक, मृगशिरा नक्षत्र दिन ३-२१ बजेतक
षष्ठी	रवि	आर्द्रा	२७ "	यायिजययोग तथा त्रिपुष्करयोग सायं ६-५३ बजेसे, रवियोग सायं ४-०१ बजेसे, भद्रा सायं ६-५३ बजेसे
सप्तमी	सोम	पुनर्वसु	२८ "	भद्रा प्रात: ६-३७ बजेतक, कर्कके चन्द्रमा दिन १०-०८ बजे, अहोई अष्टमीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि १०-५२ बजे, रवियोग तथा यायिजययोग सायं ४-१० बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग
अष्टमी	भौम	पुष्य	२९ "	श्रीराधाष्टमीव्रत, सूर्योदयके समय मथुरा (श्रीराधाकुण्ड)-में स्नान, कराष्टमी (महाराष्ट्र), स्थायिजययोग दिन ३-५१ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग
नवमी	बुध	अश्लेषा	३० "	सिंहके चन्द्रमा दिन ३-०९ बजे, नवमी तिथि दिन ३-५६ बजेतक, अश्लेषा नक्षत्र दिन ३-०९ बजेतक, सूर्योदय प्रात: ६-२६ बजे, सूर्यास्त सायं ५-३४ बजे, भद्रा रात्रि ३-०५ बजेसे
दशमी	गुरु	मघा	३१ "	भद्रा दिन २-१२ बजेतक, मघा नक्षत्र दिन २-०७ बजेतक
एकादशी	शुक्र	पू०फा०	१ नवम्बर	कन्याके चन्द्रमा सायं ६-२४ बजे, रम्भा एकादशीव्रत (सबका), गोवत्स द्वादशीव्रत (प्रदोषव्यापिनी), एकादशी तिथि दिन १२-१० बजेतक
द्वादशी	शनि	उ०फा०	२ "	द्वादशी तिथि दिन ९-५७ बजेतक, शनिप्रदोषव्रत, पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंके लिये व्रतका आरम्भ, अकाल मृत्युके निवारणार्थ सायंकाल घरके बाहर यमराजके लिये दीप-दान, धनतेरस, धनवन्तरि-जयन्ती, कामेश्वरी-जयन्ती, त्रिपुष्करयोग दिन ९-५७ बजेतक तदुपरि यायिजययोग
त्रयोदशी	रवि	हस्त	३ "	तुलाके चन्द्रमा रात्रि ८-४७ बजे, मासशिवरात्रिव्रत, नरक चतुर्दशीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि शेष ४-१० बजे, श्रीहनुमज्जन्म (प्रदोष), यायिजययोग प्रात: ७-३६ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग दिन ९-३८ बजेतक, भद्रा प्रात: ७-३७ बजेसे सायं ६-२४ बजेतक
चतुर्दशी	चतुर्दशी	तिथिका क्षय		त्रयोदशी तिथि प्रात: ७-३६ बजेतक तदुपरि चतुर्दशी तिथि रात्रि शेष ५-१२ बजेतक
अमावास्या	सोम	चित्रा	४ "	अमावास्या तिथि रात्रि २-४९ बजेतक, सोमवती अमावास्या, स्नान-दान-श्राद्ध आदिकी अमावास्या, दीपावली, प्रात: श्रीहनुमान्‌जीका दर्शन-पूजन, लक्ष्मी-इन्द्र-कुबेर आदिकी पूजा, सायंकाल दीप-दान, आधी रातमें महाकालीपूजा, शेष रात्रिमें दरिद्रानि:सारण, महावीर निर्वाण दिवस (जैन), शुक्रोदय पूर्वमें सायं ५-३१ बजे, चित्रा नक्षत्र प्रात: ७-५६ बजेतक तदुपरि स्वाती नक्षत्र प्रात: ६-१८ बजेतक

कार्तिक शुक्लपक्ष (५-११-२००२ से १९-११-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	भौम	विशाखा	५ नवम्बर	वृश्चिकके चन्द्रमा रात्रि ११-१२ बजे, अन्नकूट, काशीसे अन्यत्र गोवर्धनपूजा, बलिप्रतिपत्, रात्रिमें बलिपूजा, त्रिपुष्करयोग रात्रि १२-३७ बजेसे रात्रि शेष ४-४९ बजेतक
द्वितीया	बुध	अनुराधा	६ "	चन्द्रदर्शन, काशीमें गोवर्धनपूजा, यमद्वितीया, भ्रातृद्वितीया (भइया दूज), बहनके घर भोजन, वस्त्र आदिके द्वारा बहनकी पूजा, दूत चित्रगुप्तके साथ यमपूजा, दोपहरमें यमुनास्नान, मत्स्याधार (दवातपूजा) बिहार, यमपञ्चक निवृत्ति, विशाखा नक्षत्रके सूर्य रात्रि शेष ५-०९ बजे, रवियोग रात्रि ३-३३ बजेसे प्रात: ६-३८ बजेतक
तृतीया	गुरु	ज्येष्ठा	७ "	धनुके चन्द्रमा रात्रि २-३२ बजे, शुक्रबालत्व निवृत्ति (आवश्यक) सायं ५-३१ बजे, रवियोग रात्रि २-३३ बजेसे
चतुर्थी	शुक्र	मूल	८ "	रवियोग रात्रि १-५२ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, श्रीसूर्यषष्ठीव्रतारम्भ (तीन दिनतक), नागचतुर्थी, भद्रा दिन ८-०७ बजेसे रात्रि ७-२३ बजेतक
पञ्चमी	शनि	पू०षा०	९ "	श्रीसूर्यषष्ठीव्रत (दूसरा दिन), ज्ञानपञ्चमी (जैन), रवियोग रात्रि १-३८ बजेसे
षष्ठी	रवि	उ०षा०	१० "	मकरके चन्द्रमा प्रात: ७-४१ बजे, श्रीसूर्यषष्ठीव्रत (बिहारमें प्रसिद्ध), सायंकालका अर्घ्य, रात्रि शेष अरुणोदयके समय दूसरा अर्घ्यका दान, स्कन्दषष्ठी (तमिलनाडु), रवियोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि १-५१ बजेतक, यायिजययोग सायं ५-४९ बजेसे रात्रि १-५१ बजेतक, षष्ठी तिथि सायं ५-४८ बजेतक
सप्तमी	सोम	श्रवण	११ "	सूर्यषष्ठीव्रतका पारण, कल्पादि सप्तमी, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि २-३४ बजेतक, भद्रा सायं ५-४६ बजेसे रात्रि शेष ५-५९ बजेतक
अष्टमी	भौम	धनिष्ठा	१२ "	कुम्भके चन्द्रमा दिन ३-११ बजे, गोपाष्टमी सायंकाल गौओंका पूजन, अष्टमी तिथि सायं ६-१३ बजेतक तदुपरि नवमी तिथि, नवमी तिथिमें अयोध्या और मथुराकी परिक्रमा सायं ६-१४ बजेसे, रवियोग रात्रि ३-४९ बजेसे, पञ्चक आरम्भ दिन ३-११ बजेसे
नवमी	बुध	शतभिषा	१३ "	अक्षय नवमी, अयोध्या और मथुराकी परिक्रमा रात्रि ७-१२ बजेतक, श्रीजगद्धात्रीपूजा, त्रिपुरसुन्दरीपूजा (बंगाल), दुर्लभ सन्धिकरयोग रात्रि ७-१३ बजेसे रात्रि शेष ५-२० बजेतक, शतभिषा नक्षत्र रात्रि शेष ५-२९ बजेतक
दशमी	गुरु	पू०भा०	१४ "	मीनके चन्द्रमा रात्रि १-०३ बजे, मृत्युबाण रात्रि ३-३० बजेसे, रवियोग प्रात: ६-३७ बजेसे सायं ५-२४ बजेतक
एकादशी	शुक्र	पू०भा०	१५ "	मृत्युबाण रात्रि ३-०७ बजेतक, प्रबोधिनी एकादशीव्रत (सबका), ईखके रसका प्राशन, भद्राके बाद अर्थात् रात्रि १०-२७ बजेसे प्रबोधोत्सव, भीष्मपञ्चक आरम्भ, भद्रा दिन ९-३३ बजेसे रात्रि १०-२६ बजेतक, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र प्रात: ७-३६ बजेतक
द्वादशी	शनि	उ०भा०	१६ "	एकादशीव्रतका पारण दिन १० बजेतक, चातुर्मास्यव्रत समाप्त, द्विदलदान, सायन वृश्चिकके सूर्यकी संक्रान्ति रात्रि २-५७ बजे (दूसरे दिन पुण्यकाल), 'हेमन्त-ऋतु', कार्तिक पूजा (बंगाल)
त्रयोदशी	रवि	रेवती	१७ "	मेषके चन्द्रमा दिन १२-३६ बजे, सौरमार्गशीर्षमासारम्भ, प्रदोषव्रत, संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल दोपहरतक, पञ्चक समाप्त दिन १२-३६ बजे
चतुर्दशी	सोम	अश्विनी	१८ "	श्रीवैकुण्ठचतुर्दशीव्रत, श्रीकाशीविश्वनाथ प्रतिष्ठा-दिन, चौमासी चौदस (जैन), भद्रा रात्रि शेष ४-५४ बजेसे
पूर्णिमा	भौम	भरणी	१९ "	भद्रा सायं ५-३७ बजेतक, वृषके चन्द्रमा रात्रि १२-१० बजे, स्नान, दान, व्रत, आदिकी पूर्णिमा, गुरुनानक-जयन्ती, कार्तिकेयदर्शन, पुष्करमेला, रथयात्रा (जैन), भीष्मपञ्चक निवृत्ति, कार्तिक व्रत-यम-नियम आदि समाप्त।

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०५८ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०५९ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ४८, ८०, १०, ००० (अड़तालीस करोड़, अस्सी लाख, दस हजार)

(ख) नाम-संख्या ७, ८०, ८१, ६०, ००० (सात अरब, अस्सी करोड़, इक्यासी लाख, साठ हजार)

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर अमेरिका, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंजड़, अंजनवनी, अंता, अंधारकांच, अंधेरी, अंबाजोगाई, अंबाला छावनी, अंबाला शहर, अंबिकापुर, अकबरपुर, अकलतरा, अकलैरा, अकांवाली, अकोट, अकोदड़ा, अकोदिया, अगसौली, अगस्तमुनि, अगुआनी, अगोगी, अगौस, अचरोल, अचलपुर सिटी, अचौसा, अजनास, अजबपुरा, अजमतपुर, अजमेर, अजीतपुर, अथाईखेड़ा, अधोया, अनन्तपुर, अनूपपुर, अमगवाँ, अमझोर, अमनौर, अमरपुर कोंडला, अमरपुरा, अमरा, अमराई-नवादा, अमरोहा, अमायन, अमिला (नवकापुरा), अमिलिया, अमृतपुर, अमृतसर, अमौली, अरई, अरड़का, अरनेठा, अरनोदा, अरन्याँकलाँ, अरर, अररिया आर०एस०, अरिकन्न (सरैया), अरैला, अरोली, अर्कठिबरिया, अर्जुनपुर, अलकापुरी, अलवर, अलिपुरा, अलीगढ़, अलीपुर, अलीसरिया, अल्मोड़ा, अशोकनगर, असदपुर, असनावर, अहमदाबाद, अहिरुपुर, अहेरी, आँधी, आँवला, आऊबा, आकोदा, आगरा, आगरी (गणेश्वर), आटरगा, आजमगढ़, आजमपकरिया, आदर्शचवा, आदीपुर, आनन्दनगर (घोरेप), आनन्दनगर (फरेंदा), आभानेरी, आमगाँवबड़ा, आमामुडा, आमेट, आरा, आरामबाग, आर्वी, आलाउमरोद, आवाँ, आष्टा, आसनकुंडिया, आसी, आसैर, इंगोहटा, इंदवार, इंदवे, इंदौर, इगतपुरी, इचलकरंजी, इछापर, इज्जतनगर, इटवा, इटही, इटावा, इमामनगर (शिवमन्दिर टोला), इरोड, इलाहाबाद, इसुआ, इस्लामपुर, ईछापुरी, ईंटालीखेड़ा (रामनगर), ईटों, ईशाकचक, ईशागढ़, ईश्वरनगर, उछटी, उजैनीकलाँ, उज्जैन, उटकमंड, उत्तरपाड़ा, उदगवाँ, उदगीर, उदयपुर, उदयाखेड़ी, उन्हैल, उपरदाहा, उमरगा, उमरहा, उमरिया, उमरियापान, उरई, उरतुम, उस्मानाबाद, ऊँचिया, ऊँझा, ऊगू, ऊदपुर, ऊन, ऊना, ऊसरी, एतला, ऐंचाया, ओझापुरा, ओड़ेकेरा, ओबरा, औरंगाबाद, औरदा, औराही मोतीनगर, औरेई, औरैया, कंदकुर्ती, कंहौली, ककराला, ककरिया, कचंदा, कटक, कटघरी (बाड़ापारा), कटनी, कटरा, कटरा सलेहा, कटिहार, कठार, कठूया, कनानखर्क, कन्नौज, कपरपुरा, कप्तानगंज, कबिलपुर, कबूलपुर, कमलेवगला, कमासिन, कमोल, करजोदा, करटाह, करनमेया, करमाला, करम्मर, करवाड़, करसौत, करीमुद्दीनपुर, करेली, करौली, कर्वी, कलमेश्वर, कवर्धा, कशह, कसरावद, कसरावाँ, कसहा (पूर्व), कसोलर, कसौली, कस्बा शहर, काँके, काँगड़ा, काँगू, काँटाबाँजी, काँडे (देवीधुरा), काँदी, काँपा, काँसबहाल, काचरी, काछवा, काजली, काटोल, काठगोदाम, काठमाण्डू (नेपाल), कानपुर, कानिटोला, कामता, कामदेवपुर, कारंजा (रम०), कालपी, कालाझर, कालाडेरा, कालियागंज, कालूखांण, काशीपुर, कास्की (नेपाल), किरीबुरू टाउनशिप, किलोदा, किसरो पाण्डेडीह, कुंजी (भादरा), कुंडलपुर, कुंभराज,

कुंवरपुर, कुंवारिया, कुआहेड़ी, कुचामन सिटी, कुटिलिया, कुड़वार, कुनिहार, कुमले नगला, कुमाल्डीपैनो, कुम्हेर, कुरकुरी, कुरदा, कुरदा बाजार, कुरमाली, कुरवाई, कुरुक्षेत्र, कुलपटांगा, कुलियारा, कुल्लू, कुसैला, कृष्णनगर, केकड़ी, केरमेली, केवलबीघा, केसिंगा, कैथल, कैथी, कैनखोला, कैलारस, कोंडागाँव, कोटखानदा, कोटहा, कोटा, कोठी, कोडलहंगरमा, कोड़ातराई, कोड़ामार, कोडिया, कोदंडा, कोन्नगर, कोमना, कोयलादेवा, कोरबा, कोरोराघवपुर, कोलकाता, कोलहंटा-पटोरी, कोहिना, कौड़ीहार, कौहाकुड़ा (पिथौरा), खंडवा, खंभात, खकसीस, खगौल, खजूरी, खजूरीखास, खजूरी रूंडा, खटौराखुर्द, खड़गपुर, खड़हरा, खड़ात-तरतोली, खनीपुरा, खम्मम, खरकड़ीकलाँ, खरगोन, खरौदनगर (तिवारीपारा), खवासपुरा, खाईखेड़ी, खारीजामा, खारुपेटिया, खालवागाँव, खितौली, खिरनी, खिरिया बुजुर्ग (बम्हौरी), खिलचीपुर, खिवान्दी, खींवसर, खुँटपला, खुड़ीमोठ, खुरसीपार, खुरहंड रेलवे स्टेशन, खुरहानमिलिक, खूँटलिया, खूँटापाली, खेडका-गुजर, खेड़ापुर, खेड़ी, खेडी (खींवसी), खेतिया, खेमादेई, खेरली, खेलदेशपांडे, खैरखाँ, खैरथल, खैरथल (छाछरो), खैराचातर, खोक्सा, खोडी-टिहरी-गढ़वाल, खोपा, खोलीघाट-मुवाणा, खोल्सी (नेपाल), खौड, खौना, ख्यामई, गंगधार, गंगाखेड, गंगापुर सिटी, गंगौर, गजनेरगढ़ी, गड़सा, गढ़ उमरिया, गढ़बसई, गढ़सान, गढ़िया, गढ़ूका (मोंठ), गणकोट, गदरपुर, गदाईपुर, गनिपारी, गनेरी, गम्हरिया, गम्हरियाखुर्द, गया, गरनियाँ, गरसाहड़, गरोठ, गरौठ, गल्लाटोला, गहासाँड़, गांटोक, गाँधीनगर वलथरवा, गागोरनी (जीरापुर), गाजियाबाद, गाजीपुर, गाडरवारा, गाड़ाटेल, गायत्री निकुंज (नयापुरवा), गिरिजास्थान, गिरीडीह, गीदड़बाहा, गुंटूर, गुड़गाँव, गुड़ाकलाँ, गुड़ासूरसिंह, गुढ़ाकटला, गुतासी, गुतुरमा, गुमानीवाला, गुराड़ियाजोगा, गुलबर्गा, गुलाना, गूठगरसाड़ी, गोंडल, गोगराबस्ती, गोड़हिया नं० १, गोपालगंज, गोबरौरा, गोरखपुर, गोला-गोकर्णनाथ, गोलाघाट, गोवडीहा, गोविंदगढ़, गोविंदपुर, गोविंदपुर (तिवारीनवाला), गौरा, गौरा-बगनहा, गौल, ग्वालियर, घगोंट, घड़सीकनैता, घाटलोदिया, घाटाबिल्लोद, घाड़, घिंगोरुकोट (देवीधुरा), घुंसी, घुघली, घुटकूनवापारा, घुटनूनवापारा, घोड़ासदाँता, घोड़ेगाँव, घोसरामा, घौघरी (बम्हौरी देवपुर), चंगईपुर, चंडीगढ़, चंडेश्वर, चंदखुरी, चंदनकियारी, चंदनबिरही, चंदला, चंदेरी, चंद्रकुटीर हल्द्वानी, चंद्रपुर, चंद्रहटी, चंपखुरी, चंपावत, चंबा, चकमदारी, चकवाड़ा, चकसिगार, चक्रधरपुर, चखियारा, चटोल, चतरपुरा, चतुरताई, चनावग, चनौर, चमरौला, चमाला, चरखीदादरी, चरपोखरी, चलाखु टोल साँखु (नेपाल), चाँचौड़ा, चाँदपाली, चाँदपुराकलाँ, चाँदरानी (मानिकपुर), चाँदाडीह, चाईबासा, चारौत, चिंचोली, चिचोली, चिटगुप्पा, चितनगला, चितभवन, चित्तौड़गढ़, चित्रकूट, चिरई डोंगरी, चिरकुंडा, चिरचारी, चिराखान, चिलौली, चीपलाटा, चुखियारा, चुरिहारपुर, चेन्नई, चैनपुर, चैसार-मथुरा बाजार, चौक, चौखुटिया गनाई, चौटलाय, चौडागाँव, चौबयाना, चौली, छतरपुर, छपड़ा-धरमपुर-जदू, छपरा, छातना, छापड़ा, छापर, छिंदवाड़ा, छिउलहा, छिछोर, छिटेपुर, छींच, छोटालांबा, छोटी कसरावद, छोटी खाटू, जंगबहादुरगंज, जकड़पुरा (वृन्दावनटोला), जगतपुरा, जगदलपुर, जगदीशपुर, जगदीशपुर बघनगरी, जगदेवपुर, जगाधरी, जड़वा, जनकपुर, जनोटी पालड़ी, जबलपुर, जमुरवाँ (बसकटा), जमोड़ी-सेंधव, जम्मू, जयन्त, जयनगर, जयपुर, जरुड, जरौल, जरौली, जलगाँव, जलपाईगुड़ी, जलसैन, जलहल-कुकुरमुड़ा, जलाड़ी, जलालपुर बाजार, जवल, जवाहरसागर (कोटाडेम), जसरासर, जसवन्तगढ़, जसो, जहरमऊ, जहाँगीरपुर, जहाँगीराबाद, जहीराबाद, जाँता, जाखपन्त, जाखल, जाजपुर रोड, जाजोता, जानपुर (रानी नवादा), जानेफल, जामखेड़, जामपाली (छोटे), जालंधर, जालना, जावरा, जावली, जियाराम राघोपुर, जुलवानिया, जूना लखनपुर, जेवरा, जैतपुर (महोबा), जैतपुरा, जैतारण, जैपोर, जैसलमेर, जोजवा, जोधपुर, जोरी, जोलदापका, जोहाङ्ग, ज्वालापुर, झाँसी, झागरया, झालरापाटन, झिंगुरदा, झिंझाना, झिकटिया, झिकटिया-पोखरीपुर, झुँझुनू, झूँथरी, झूँसी, झूलाघाट, झोथराखेड़ा, टांट, टिकरिया (लाला), टिक्कर, टिलहार, टीकमगढ़, टी०पी० वनम्, टुंडी, टूडंला, टेंटरा, टेकापार, टेघरा, टेमरा, टेमाभेला, टोक, टोका, टोरोण्टो (कनाडा), टोला शिवनराय, ठंडोल, ठकठौलिया-शाहगंज, डकाचा, डबरेड़ा, डमक, डहरिया, डाबरा, डाबराक्षेत्रपाल, डाबोक, डिंगरी शाल्यो, डिंडौरी, डिगसारी, डिडवाड़ी, डिडवाना, डुगली, डुमरिया, डूँगरपुर,

डूँडलौद, डुमरियागंज, डुमाईगढ़, डेढ़गाँवा, डेलपुरा, डोंकर परासिया, डोंबिवली, डोकरबुड़ा (घरघोड़ा), डौंडी लोहारा, ढाँगू, ढेंकनाल, ढेबो, ढोलानाकलाँ, ढोसर, ढौर, तंवरा, तड़ोला, तरकेड़ी, तरोडारोड, तरौका, तलेगाँव ढमढेरे, तलोटी, तवड़ा, ताजनीपुर, ताल, तालबेहट, तालमेंढा, तालीकोटी, तालेड़ा, तालेड़ा-लालसोट, तितरा आशानंद, तिनसुकिया, तिरी, तिरुवण्णामलै, तिरोजपुर, तिलताली डोटी, तिलोबदार, तिवारीटोला बीरवा, तीतरड़ी, तीतरिया, तीसा, तुनि, तुसरा, तेंतरा, तेलीटोला (बांधा बाजार), तोपा कोलियरी, तोरना, तोरनी, तोला-चम्पावत, थाणें, थालनेर, थुम्मा, दतिया, दमक झापा (नेपाल), दमुहाँ, दमोह, दया छपरा, दरभंगा, दवतोरी, दसीयाँव, दहमी, दागे, दातारामगढ़, दामडी, दामनजोड़ी, दामापुर (छटन), दाहोद, दिगौड़ा, दिबियापुर, दिरखोला, दिलवाड़ी, दिल्ली, दीदारगंज, दुगाहाखुर्द, दुधरा, दुधवारा, दुधौरा, दुबवलिया, दुर्ग, दुर्गानगर बड़सेरवाँ, दुलचासर, दुलावनी, देरगाँव, देवकुली, देवकुली धाम, देवकुली (ब्रह्मपुर), देवखेड़ी, देवगढ़, देवगढ-मदारिया, देवतालाब, देवतोली (तल्ली), देवदरा, देवभोग, देवरिया, देवरीकलाँ, देवरीनाहरमऊ, देवरीबखत, देवला (माफी), देववरुणार्क, देवास, देवीपुर गम्हरिया, देवेन्द्रनगर, देहरादून, देहरी (बीना), दोरवाँ, दोहा-कटर, दौरई, दौलतगढ़, दौसा, धगोगी, धनकोंसा, धमतरी, धमौरा, धरगाँव, धरगुल्ली, धरणगाँव, धरमपुर जारंग, धरवार, धराकड़, धरौली, धलिगाँव, धामधार, धामंदा (खुजनेर), धामपुर, धार, धारखेड़ी, धावा, धावाबाद, धूरी, धोबघट (जमुई), धौलादेवी, ध्रांगध्रा, ध्रुवगढ़, नड्तड़ी, नगर (बैकुण्ठपुर), नगरिया देवधरापुर, नगरोटा बगवाँ, नगला कुंजल, नगला मूर्ली, नगावली, नबाबगंज, नयातिलकपुर, नयानगर, नयी दिल्ली, नरला, नरवन, नरसिंहपुर, नराँव, नरायनपुर, नरियाल गाँव, नरेत, नलवाड़, नलवाड़ा, नल्लजर्ला, नवलगढ़, नवसारी, नसीराबाद, नांदिया, नाकोट, नागपुर, नागिजुली, नाचनी, नाडोली, नापासार, नारनौल, नारायणगढ़, नारेपुर (पश्चिम), नारेहड़ा, नालामुर्ली, नावडीह, नावली-वृन्दावन (देवाला), नासिक, नाहरगढ़, निंबड़ी, निंबाका गाँव, निंबाहेड़ा, निजामाबाद, निटर्रा, निवाड़ी, निवादा, निवारी, नीदर (मंडरायल),

नूराबाद, नेपुरा, नेमाडियाँका खेड़ा, नेरी (रिहाड़ी), नेवरी, नेवारी (फुलवारी), नैकीना, नैनवाँ, नैल, नोधर-दिगोली, नोहर, नौगाँव (वृद्धकेदार), नौढ़िया, नौरोजाबाद, नौहाटगड़ी, न्याड़, न्यायकल, पंचकूला, पंचरूखी, पंचौरा, पंडरीरायपुर, पंढरपुर, पंत्यूड़ी, पकवलिया, पकवाइनांर, पखनपुर, पचगवाँ, पचपदरानगर, पचुआँ, पचोर, पचौरी, पटना, पटियाला, पटियाली, पट्टीततारपुर, पड़रीखुर्द, पड़रौना, पड़िहारा, पत्तेरापाली, पथरहा, परतला, परबतसर, परमानन्द गैतरा, परली वैजनाथ, परवानू, परसदा (तुरतुरिया), परसहर, परसाई पिपरिया, परसापाली, परासिया, परासी-चकलाल, पर्वती, पलवल, पलेई, पलेरा, पसपुला, पहाड़पुर, पाँच-पदरिया, पांचेत, पांडातराई, पांडुकेश्वर, पांडेडीह किसगो, पांडेय टोला, पाटन, पातल, पानसेमल, पानापूर, पानीगाँव, पायली, पालमपुर, पालवी, पावटा, पाहड़ा, पाहल, पिंडरई, पिंपरुड, पिंपलगाँव बसवंत, पिठौरा, पिपरा तहसील, पिपरा पांडे, पिपरिया गंगा, पिपला शिवनगर, पिपल्या बुजुर्ग, पिलखुवा, पिलानी, पीतमपुर, पीपरीगहरवार, पीपलपानी, पीपलरावाँ, पीपलवाड़ा, पीपल्या जोधा, पीपल्या मण्डी, पीलीभीत, पुखरायाँ, पुजारागाँव, पुणें, पुनहद, पुनहा, पुनाईचक, पुनाहना, पुनौर, पुरसंडा (अलीगंज), पुराना भोजपुर, पुराशाहगढ़, पुरुलिया, पुवायाँ, पूँछ, पूर्णियाँ, पेटरवार (मठटोला), पेटेरू, पेशोक टी०ई०, पैंची, पैगंबरपुर, पोखरभिंडा, पोखरैरा, पोटसो, पोर्टब्लेअर, पोलायकलाँ, पौना, प्रांहेड़ा, प्रीतमपुरी, फतेहपुर चौरासी, फरदफोड़, फरीदकोट, फरीदाबाद, फागा, फारबिसगंज, फार्मिंघम (यू०एस०ए०), फिरोजाबाद, फुलझर, फुलरूवा, फुलहर, फुलहर-१, फूलपुररामा, फूलबेहड़, फैजाबाद, फोर्ती (प्रेमगंज), बंका बाजार, बंधार, बंधुछपरा, बंबेली, बंसरामऊ, बक्सर, बगड़, बगरू, बगही, बगुई हाटी, बगुलिया, बचकोट पीपली, बछौर, बजरंगपुर नवागाँव, बजलपुर तेघड़ा, बजौरा, बटाला, बड़कागाँव, बड़गाँव, बड़नेर भोलजी, बड़पारी, बड़वानी, बड़सरा, बड़सू, बड़ागाँव, बड़ालू, बड़ीला, बड़ू, बडैहर (मेवा), बथुवाखास, बदनावर, बदायूँ, बदौसा, बनपुर, बनमनखी, बनवारी बसंत, बना, बनियागाँव, बनेड़िया, बमनाला, बमरोली, बमोरा, बम्हौरी

(देवपुर), बयाना, बरगदहीं बसन्तनाथ, बरगवाँ, बरघाट, बरड़ा (रावजी), बरदरी, बरनमहगवाँ, बरमसिया, बरवाही, बरही, बराकर, बरारी, बरीका नगला, बरुआसागर, बरेली, बरोरी, बरोहा, बलकुवा, बगल धरैहली, बलांगीर, बलिया, बलिया-नबाबगंज, बल्लूपुर, बशारतपुर, बसंत, बसंतपुर, बसवकल्याण, बसान, बसुआड़ा, बसेड़ी, बसोल, बसोहली, बस्ती, बहरोड़, बहादुरगढ़, बहादुरपुर (जागीर), बाँकी, बाँकूडीह, बांगरोद, बांदु, बांस तालेश्वर, बाकानेर, बागपशोग, बागर, बाग्लुङ्ग, बाजार अतरिया-कुसुमी, बाड़मेर, बाढ़, बाढ़ बाजार, बाबिना, बामनिया-कलाँ, बायतु, बाराकोट-बैतड़ी, बाराबंकी, बालपुर, बालसी, बालाघाट, बालू, बालू-१, बालेश्वर, बालोतरा, बालोद, बाल्को, बासुली कटिया, बिच्छीदौना, बिछड़ौद, बिजनौर, बिड़वीगाँव, बिनका, बिबरे खुर्द, बिरगवाँ, बिरनियाँ, बिरलाग्राम, बिरलाग्राम नागदा, बिरहा, बिलटिकुरी, बिलन्दपुर (दिग्विजय टोला), बिलारीपुरा, बिलाव, बिलौंद, बिशुनपुर, बिशुनपुर समथू, बिशुनपुर बघनगरी, विशुनपुरा बाजार, बिषाड़, बिसरा, बिसाऊ, बिसून्दनी, बिहटा, बिहारसरीफ, बिहारी (टोले-शिरोमण-पट्टी), बीकानेर, बीड, बीनागंज, बीरई, बीरई-जहानाबाद, बीरपुर, बीरमपुर-सौली, बीरवाँ (बाबू टोला), बीसलपुर, बीसापुरकलाँ, बुंडाराखुर्द, बुजुर्ग खिरिया, बुधनपुरवा, बुद्धिकामना, बुरदा, बुर्जवाजी, बूँदी, बूरमाजरा, बेगूँ, बेगूसराय, बेतिया, बेनाचट्टी, बेनियाँका बास, बेनोडा (शहीद), बेरछामंडी, बेरलीकलाँ, बेरली खुर्द, बेलरगाँव, बेलसार, बेला, बेलागंज बाजार, बेलापुर, बेल्लोर, बेलौनाकलाँ, बेलौनाकलाँ (कोटिया), बैका विष्णुपुर, बैगनी, बैजनाथ, बोकारो, बोकारो स्टील सिटी, बोखड़ी (आमला), बोटाद, बोतराई, बोदवड, बोबाड़ी, बोरनार, बोरावड़, बोरीवली, बोलुँग, बौरहर, बौलाई, ब्यावर, ब्रजराजनगर, ब्रह्मपुर, ब्रह्मावली, ब्राह्मणी, भंजनगर, भंदेमऊ, भखराईन, भगवानपुर, भटकटिया (जोशी), भटली, भटवाड़ा, भट्टूकलाँ, भदवर, भद्रक, भमावद, भरथुआ, भरदा, भरपूरा, भरुच, भरेह, भर्थना, भरींटोला, भलुहा-रामनई, भवनाथपुर, भवानीपुर, भाऊगढ़, भागलपुर, भाटापारा, भादरा, भरौली खुर्द, भालूई, भिंभौरी, भिलाई, भिवंडी, भिवानी, भीखनीडीह-पांडेडीह, भीखनीडीह-पीपराडीह, भीमगढ़, भीमताल, भीलटका रेलगाँव, भीलवाड़ा, भुईली, भुवनेश्वर, भुसावर, भुसावल, भूड़को, भूल, भेड़वन, भैंसमुंडी, भैंसवाही, भैरमऊ, भैसोदा, भोगपुर, भोजपुर, भोजपुर-सुन्दरनगर, भोजवली, भोपाल, भौर, भौरा, भौली, भ्रमरपुर, मंगतोला, मंगरूलदत्त, मंगरुलनाथ, मंगलपुर (मनैतापुर), मंगलौर टाउन, मंडरी, मंडल, मंडला, मंडी, मंडोली, मंदसौर, मई, मऊ-रानीपुर, मकराना, मकरी, मकवा, मखदुमपुर, मखमेलपुर, खेमई, मखरा, मगरी, मगोर्रा, मचकना, मजलिसपुर, मजिरकांणा, मझगवाँ, मझगवाँ-रामगढ़, मझगाँव खुर्द, मझरिया, मझेरियाकलाँ, मटवारी, मटेहनी, मड़ावदा, मडोरी, मतवाना, मथुरा, मथुरापुर, मदनपुर, मदारीचक, मधासिया, मधुबन, मधुबनी, मधेपुरा, मनफरा, मनमाड, मनासा, मनिगाँव, मनिपाड़ा, मनीपाल, मनेला (तेवाड़ीखोला), मनोहरपुर, ममरेजपुर, मयसपुर (नेपाल), मरकचो, मरारीटोला (बिरसा), मरौंदा, मर्दनपुरवा, मलंगवा, मलकलीपुर डेवढ़ी, मलथौन, मलाहु, मलिनियाँदिरा, मवीकलाँ, मसवासीसेराँय, मसुरीया, मसौढ़ी महला (काश्मीरगंज), महनियावास, महमदाबाजार, महरोली, महादेव, महाभारा (नेपाल), महाराजपुर, महासमुंद, महिषी, महुआर, महुआखेड़ा, महुरा, महुवाखेरा, महू, महेशवारा, महोदा, महोबा, महोली, मांडल, मांडलगढ, मांडलटाउन, माचाडी, माचाडी चौक (सी), माछरा, माजरा, माणिकपुर, माधवनगर, माधोपुर, माधोपुर गोविंद, मानिला, मामटखेड़ा, मारकन, मालडा बुजुर्ग, मालडा बुजुर्ग (मिरजापुर), मालतीपुर, मालथौन, मालपुर, मालाड, मालेरकोटला, माल्देसिरौलीगरुड, माल्हनवाडा, मासूमपुर, महावीरनगर, माहीपुरा, मिझौना, मिठनपुरा, मिनावदा, मिराज, मिरिक (दार्जिलिंग), मिश्रपुर, मिहाना, मिहोना, मीतमन्दिर बड़ालू, मीतली, मीरजापुर, मीरापुर, मुंगेली, मुंडगोड़, मुंडा, मुंबई, मुगलसराय, मुजफ्फरपुर, मुठीपार, मुढ़ीपार, मुबारकपुर (कांटी), मुरादनगर, मुरादाबाद, मुल्लनपुर, मुवाणा-खोलीघाट, मुशेदपुर, मुश्ता, मुसाफा, मुस्तफाबाद, मूँगुस, मूंजखेड़ा, मूलाकोट, मूसलपुर, मूसापुर, मेड़तासिटी, मेदनीपुर, मेरठ, मेरठ कैंट, मेवडा, मेहकर, मेहाड़ा जाटूवास, मोगा, मोठपुर, मोडासा, मोतिहारी, मोदीनगर, मोन, मोरेड, मोहगाँव खुर्द, मोहतरा, मोहनपुर, मोहनपुरा,

मोहभट्ठा, मोहाली, मौजपुर, मौधिया, मौलपुर, म्याऊ, यमुनानगर, यवतमाल, यादवपुर, येनखेड़ा, येवदा, रंगिया, रक्सेहा, रगजा, रगजासकती, रघुनाथपुर, रघुराजगढ़, रजडीहाँ, रजपुरा, रठेरा, रणयोधा, रतनगढ़, रतनगवाँ, रतनपुर, रतलाम, रत्नगर टाडो (नेपाल), रधौली, रमखिरिया, रमपुरा, ररी, ररी शिकारपुरा, रसदपुरा, रहसा पूर्वी, रांगड़, राँची, राँवसर, राजगीर, राजाका सहसपुर, राजागार्डन, राजाजीका करेड़ा, राजापाखर, राजुखाड़ी, राधाऊर, रानीबाग, रामगंजमंडी, रामगढ़ जबंधे, रामगढ़ (लखोनी), रामनगर, रामपुर बखरा, रामपुर मझिला, रामपुरी, रामेश्वरकंपा, रायबरेली, रायपुर, रायपुर कल्चुरियान, रायपुरसानी (रावत), रायरंगपुर, रायसर, रायसिंहनगर, रावटी, रावतभाटा, रावलामंडी, राहजोल, रिनाक रेसी पूर्व, रीनक, रीवाँ, रुदावल, रुदौली, रुई, रुड़की, रुरवाई, रेवड़ापुर, रेवाड़ी, रेवारी, रेहटी, रैकोवा-कोलमी, रैनी, रैहन, रोड़ा, रोसावाँ, रोहतक, रौनी जाथान, लक्ष्मणपुर, लक्ष्मीपुर पोखरिया, लक्ष्मीपुरभित्ता, लक्ष्मीपुरसायत, लखनऊ, लखोरिया, लखौरा, लखौरी, लछीमा, लधौनटुकड़ा, लफदा, ललितपुर, ललितललाम-सन्हौली, लवहरफरना, लहरी-तिवारीडीह, लहेरियासराय, लाडवा, लातूर, लाबरिया, लालपुरा, लालपुरा (भीम), लालसिंग, लालसोट, लालाके-बाँसी, लावन, लासूर स्टेशन, लिधौरा (गुरसराय), लिलुआ, लीमाचौहान, लुनठूड़ा-पिठौरागढ़, लुहारी, लेवा, लोईसिंहा, लोचीनगला, लोपड़ा, लोहंडिया-बाजार, लोहा, लोहारा, लौंह, लौर, वजीरगंज, वजीरनगर, वटईकेला, वडनेर गंगाई, वडविहार, वणकरवास, वद्री, वरारी, वरुड जउलका, वरोरा, वरोरी, वलौदा, वल्लभनगर, वाडा, वाडी-नयकोटा, वानखेड, वाराणसी, वारिपदा, वास्को-डि-गामा, वाहेगाँव, विंढमगंज, विजियानगरम्, विदिशा, विनई, विभौनी, विरता, विरौंधी, विशाखापट्टनम्, विष्णुपुर, वीरबागड़ा, वेरावल, वैदहा, वैद्यनाथधाम, वैर, वैरवार, व्यासनगर (जाजपुर-रोड), शकरा, शनिचरा, शाजापुर, शामली, शाल्यो, शाहकोट, शाहगढ़, शाहजहाँपुर, शाहजहाँपुर-निनायाँ, शाहपुर-टहला, शाहपुर (पंडितटोला), शाहोपुर-बरमा, शिंदे, शिकारपुर, शिमला, शिवगंज, शिवपुरी, शिवाड़, शीतलापुरी, शीवगढ़, शुजालपुरमंडी, शेखपुरा, शेरगढ़, शेरुणा, शेषपुर (दखिना), श्योपुरकलाँ, श्रीकरणपुर, श्रीनगर, संगरिया, संग्रामपुर किला, सकरार, सठिन, सड़रा, सड़ासों, सतना, सतुआँ, सथरा, सदरपुर, सदाशिवपेठ, सनवी, सनावल, सपरून, सपलेड़, सपोटरा, सफीपुर, सबलपुर, सबलपुरखास, सबसुखपुर पठखौली, समस्तीपुर, सरखों, सरगाँव, सरथुआ, सरायपाली, सरिया, सरेंधी, सरेई चम्पुआ, सरैया गोपाल, ससौढ़, सहरी, सहार, सहारनपुर, सांगली, सांडिया, साँभरलेक, साँवड, साँवली, साँवलोदा पुरोहितान, सागर, सागरपुर, साढ़मल, सातोद-कोलवद, सादाबाद, साधपुर, साबरमती, सारंगपुर, सारसंडा, सालेवाडा, सालोन-बी, सावनेर, सासन, सासाराम, साहिबगंज, सिंगटौली, सिंगरौली, सिंगोली, सिंघाना, सिंद्री, सिकंदराबाद, सिगौली चारभुजाकी, सितारगंज, सिधौली, सिमराहीबाजार, सिमरिया, सिरपुर-कागजनगर, सिरसकन्हर, सिरहौल, सिलाटी, सिलेपुर, सिलोखर, सिवनी, सिवेरा, सिसवानाहर, सीतापुर, सीनखेडा, सीवाँ, सीसरखास, सीसवाली, सीहोर, सुंहेत, सुआतला, सुकाहर, सुगभटोली, सुगवाँ, सुगाँव, सुजानगढ़, सुजिया-मोहलिया, सुठालिया, सुतरी, सुथार-बौलिया, सुनखला, सुनाखला, सुनेत, सुमावली, सुरसुरा, सुरिहारी, सुर्री, सुरेन्द्रनगर, सुलतानपुर, सुलतानपुर पूर्व, सुसनेर, सूंखार, सूरजपुर, सूरत, सूरतगढ़, सूरी, सेंट्रल-पल्प-मिल, सेंठा, सेऊ, सेमरा, सेमराबाजार, सेमरोल, सेमलियादीरा, सेरी, सेलदा, सेवली, सैदनपुर, सैफाबाद, सोजतरोड, सोजित्रा, सोनई, सोनदत्ति, सोनवला, सोनहटी, सोनीपत, सोलसिंदा, सोहड़ी, सोहागपुर, स्वारका, हंडिया, हंसपुरा, हजारीबाग, हटनी, हड़ल, हथौड़ाखेड़ा, हनुमानगढ़-टाउन, हनुमानगढ बरेली (दिमाड़ा), हनुमानगढ़ संगम, हनूतपुरा, हब्बल, हमीरपुर, हरखपुर, हरगनपुर, हरदा, हरदी, हरदोई, हरिद्वार, हरिनगर खादीजमा, हरिपुर-डीहटोल, हरिहरपुर-वैद्यालय, हल्द्वानी, हल्दी-रामपुर, हसनबाजार, हसामपुर, हसुवा, हस्तिनापुर, हाँफा, हाँसूपुर, हाजीपुर, हाड़ेचा, हाथरस, हाबड़ा, हालीशहरकोना, हिंगनघाट, हिंडौनसिटी, हिंदमोटर, हिमराजपुर, हिम्मतनगर, हिरनी, हिरनोदा, हिसार, हुमायूँपुर, हुस्सेछपरा, हूर, हेटौंडा (नेपाल), हैदरगढ़, हैदराबाद, होजाई, होल्टा, होशंगाबाद, ५६ ए०पी०ओ०, ८४ बटा० सी० पु० ब०।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

पाँच लाखसे पचीसका महत्त्व अधिक

मेरे स्व० पिता ठा० करणीसिंहजी राजस्थानमें पूछे जानेवाले सरदारोंमें थे। उनका बचपन कठिनाइयोंमें बीता। परंतु उन्होंने ठिकाने (राज्य)-का काम अपने हाथमें लेते ही सब कठिनाइयोंको जीत लिया। वे कुछ ही समयमें समृद्ध जागीरदार कहलाने लगे। उन्होंने अपने जमानेमें बड़े-बड़े धार्मिक तथा सार्वजनिक सेवाके काम किये और अपने जीवनमें ज्यादा नहीं तो कम-से-कम पाँच लाख रुपये इन विविध सत्कर्मोंमें खर्च किये।

इन पाँच लाख रुपयोंके अतिरिक्त पचीस रुपये उन्होंने और खर्च किये, जिनका विशेषरूपसे मैं आज उल्लेख करना चाहता हूँ। यह उस समयका प्रसंग है, जब मैं बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके घर आया था। तब मैं भी घरका कुछ काम देखने लगा था। दूसरे ठिकानोंकी तरह हमारे ठिकानेमें भी मुकद्दमे चला करते थे। भूराराम नामक एक व्यक्तिसे जमीन-सम्बन्धी एक मुकद्दमा चल रहा था। वह उपर्युक्त आदमीके मुकद्दमेकी पेशीका दिन था। अदालत दूर थी। गाड़ीसे जाना होता था। गाड़ी छूटनेमें केवल एक घंटेका समय शेष था। मेरे पिताजीने जब भूरारामको वहीं ग्राममें ही फिरते देखा तो उसे अपने पास बुलाकर कहा—'आज यहीं कैसे घूम रहे हो? आज तो मुकद्दमेकी पेशी है।'

उसने उत्तर दिया—'कैसे जाऊँ? वकीलको देनेके लिये पंद्रह रुपये भी नहीं हैं। पूरे ग्राममें घूम आया, कहीं भी रुपये नहीं मिले।'

यह सुनते ही मेरे पिताने मुझे पंद्रह रुपये लानेका आदेश दिया। मैं जब रुपये लेकर आया तो उन्होंने रुपये मेरे हाथसे अपने हाथमें ले लिये। यह भी एक अनोखी ही घटना थी; क्योंकि जबसे मुझे याद पड़ता है, मैंने उन्हें अपने हाथमें रुपये लेते नहीं देखा था। उन्होंने वे रुपये भूरारामको देते हुए कहा—'जा, दौड़कर गाड़ी पकड़। गाड़ी चूक जायगा तो तेरा मुकद्दमा बिगड़ जायगा।'

ऐसी ही एक दूसरी घटना है, जिसमें पिताजीने दस रुपये म्हादाराम नामके आदमीको हमारे खिलाफ मुकद्दमा लड़नेके लिये दिये थे।

एक दिन मैंने मौका पाकर पिताजीसे निवेदन किया—'ये गाँवके लोग, जिनसे अपना मुकद्दमा चलता है, अपनेसे किसी बातमें कम नहीं हैं। वे मेहनत करनेमें अपनेसे कम नहीं, पूरे ग्रामकी सहानुभूति उनके साथ है; क्योंकि वे गरीब हैं और हम धनवान् हैं। इस गरीबीके कारण न्यायालयकी सहानुभूति भी उनके साथ है। अतः इन लोगोंसे या तो मुकद्दमा लड़ना नहीं चाहिये या फिर इनकी आर्थिक सहायता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि मुकद्दमा जीतनेका एक ही साधन हो सकता है कि उसे लम्बा किया जाय, जिससे इनकी अर्थव्यवस्था असंतुलित हो जाय और फलस्वरूप हम मुकद्दमा जीत जायँ। जब आप उनकी आर्थिक सहायता कर देते हैं तो वे मुकद्दमा क्यों छोड़ने लगे। इस तर्कका आपके पास कोई उत्तर हो तो मुझे समझाइये।'

इसपर उन्होंने कहा, 'मैं तेरी तरह पढ़ा हुआ तो हूँ नहीं, इससे तेरे तर्कका उत्तर मैं नहीं दे सकता। मेरी भाषा मेरी भावनाको व्यक्त करनेमें असमर्थ है। पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि तू गलत रास्तेपर है और मैं सहीपर। आगे चलकर तू देखेगा कि हममें कौन सही था।'

और आज मैं देख रहा हूँ कि उनकी बात कितनी सही थी। आज ग्रामका हर व्यक्ति इन पचीस रुपयोंकी गाथा गाता है। ऐसा जान पड़ता है कि इन पचीस रुपयोंके अलावा उन्होंने और कुछ खर्च किया ही नहीं; क्योंकि जिसके मुँहसे सुनो बस, इन्हीं रुपयोंकी चर्चा सुनायी देगी। पचीसका पलड़ा पाँच लाखके पलड़ेसे भी कितना भारी है!

—लक्ष्मणसिंह जागीरदार

(२)

गरुडपुराणने सत्प्रेरणा दी

[पाप तथा कर्जकी गठरी साथ क्यों ले जाऊँ?]

मेरे बाबा लाला नारायणदासजी (बझैड़ेवाले) क्षेत्रके अच्छे-बड़े जमींदारोंमें थे। पिलखुआके आस-पासके अनेक गाँवोंमें उनकी जमींदारी थी। भूमिपर काश्त करनेवाले किसानोंसे लगान या मालगुजारी मिलती थी।

यह लगभग ५० वर्ष पुरानी बात है। जमींदारीप्रथा दम तोड़ ही रही थी। पासके ग्राम सिखेड़ाका एक किसान हमारे घर आया। मैं अपने पिताजी (भक्त श्रीरामशरणदासजी)-के पास बैठा हुआ था। उसने आकर 'राम-राम' किया और पूछा—'लालाजी कहाँ हैं?'

पिताजीने बताया कि उगाहीमें किसी गाँव गये हैं, आनेवाले ही हैं। वह पासमें बैठकर प्रतीक्षा करने लगा।

एकाएक उसने अपनी धोतीकी फेंटमेंसे गंदे-से कपड़ेकी पोटली निकाली और उसे खोलकर उसमेंसे रुपयोंकी गड्डी निकाल ली। रुपयोंकी गड्डी पिताजीके पास रखकर बोला—'भगतजी! यह रकम लालाजीको देनी है। उन्होंने मुझपर अदालतमें नालिश की हुई है और मैंने वकीलके बहकावेमें आकर झूठा ही बयान दे दिया कि मैं २७० रुपये लालाजीके पुत्र भगतजीको दे गया था। मुझे कई रातसे नींद नहीं आ रही है, झूठे बयानके कारण। मैं रकम मारकर अपना परलोक नहीं बिगाड़ना चाहता।' यह कहते-कहते वह रो पड़ा।

'खचेड़ू सिंह! तुमने तो अदालतमें झूठा बयान दे दिया था, फिर यह बदलाव मनमें कैसे आया?' पिताजीने कुरेदा।

'सच बात बताऊँ आपको'—उसने कहा—'मेरे पड़ोसमें एक पण्डितजीकी मौत हो गयी। मैं उनके यहाँ गरुडपुराण सुनने गया। गरुडपुराणमें एक कथा आयी कि जो बेईमानी करता है, झूठ बोलता है, ठगी करता है, उसे परलोकमें घोर यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। कर्ज मार लेनेवालेको दूसरे जन्ममें चुकाना पड़ता है। बस, उसी रातसे मुझे नींद नहीं आ रही है। वैसे भी सत्तर वर्षका हो गया हूँ, न जाने कब भगवान्‌के यहाँसे बुलावा आ जाय। झूठ, पाप तथा कर्जका बोझ कन्धेपर क्यों ले जाऊँ?'

पिताजीने उस भोले किसानकी बातें सुनीं तो उनकी आँखें भीग आयीं उसकी निश्छलता देखकर। रुपये देकर वह चला गया—जैसे किसी बहुत बड़े भारसे मुक्त हो गया हो और दूसरे ही दिन जब पिताजीसे किसीने आकर कहा, 'खचेड़ू मर गया' तो वे रोने लगे। बोले—'बड़े कहे जानेवाले आदमी संत-महात्माओंके उपदेश सुनते हैं, धर्मशास्त्रोंका अध्ययन करते हैं, परंतु उनपर अमल कोई बिरला ही करता होगा। किंतु खचेड़ू—छोटा-सा गरीब किसान, एक बार गरुडपुराणका अंश सुनते ही पाप-पुण्य, झूठ-सत्यके मर्मको गहराईसे समझ गया। वह जरूर महान् आत्मा था।'

पिताजीने चबूतरेके उस जगहकी मिट्टी उठाकर सिरसे लगा ली, जहाँ पिछले दिन खचेड़ू पैर रखे बैठा हुआ था।

—शिवकुमार गोयल

(३)

...और ड्राइवरने गाड़ी रोक दी

घटना सन् १९५६ ई० के आसपासकी है, तब मैं कलकत्तेके एक कॉलेजमें पढ़ता था। मैंने पोलोका खेल कभी नहीं देखा था और मेरे मनमें इसे देखनेकी उत्सुकता रहती थी कि किस प्रकार घोड़ोंपर चढ़कर गेंदसे खेला जाता है। उन्हीं दिनों जयपुरके महाराजा श्रीमानसिंहजी अपनी टीमके साथ कलकत्तामें पधारे हुए थे और उस समय उनकी टीम सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। मैं अपने मित्रों श्रीभँवरलाल एवं श्रीकुन्दनलाल आदिके साथ पोलो-ग्राउण्डकी तरफ जानेके लिये बस-अड्डे पहुँचा। बसमें अंदर घुसनेकी जगह नहीं थी और पीछेकी तरफ लटकनेकी जगह भी नहीं थी। दो-चार आदमी साइडमें खिड़कियोंकी रॉडको पकड़कर लटके हुए थे। हम भी देखादेखी साइडकी खिड़कियोंके सहारे लटक गये। लटककर चलनेका जीवनमें मेरा यह पहला अनुभव था। लटकना जानता भी नहीं था। लटकनेके लिये पैर टिकानेका कोई आधार तो होना ही चाहिये। हवामें अँगुलियोंके जोरपर कितनी देर लटका जा सकता था? जिस खिड़कीसे मैं लटका था, उसमें रॉड न होकर एक पाती थी, जिसको मैं अँगुलियोंसे पकड़े हुए था। पाती चुभ रही थी, बस द्रुत गतिसे दौड़ रही थी और ऐसा लग रहा था कि अँगुलियाँ टूटनेवाली ही हैं। मेरे शरीरका संतुलन बिगड़ चुका था और रह-रहकर पैर सड़कसे टकरा रहे थे। मेरा एक साथी बार-बार पैर ऊपर करनेके लिये बोल रहा था।

मैं हताश हो चुका था। 'अब गिरा तब गिरा' की स्थिति हो गयी थी। किस क्षण हाथ छूट जायँ पता नहीं था। अब तो भगवान्‌का ही सहारा था। मैंने अपने इष्टदेवको याद किया और रक्षाकी प्रार्थना की। कुछ क्षणोंतक इष्टदेवका स्मरण करते हुए ऐसे ही लटके-लटके समय बिताया और अगले ही क्षण परम पिता परमात्माका ऐसा चमत्कार हुआ कि झटकेसे गाड़ी खड़ी हो गयी। कंडक्टरने बिना किसी कारणके गाड़ी रुकते ही ड्राइवरसे पूछा कि गाड़ी क्यों रोक दी? ड्राइवरने कहा कि जो बाहर लटक रहे हैं, उनसे टिकटके पैसे लेने हैं। उस स्थानसे पोलो-ग्राउण्ड थोड़ी ही दूर था। भगवान्‌ने मुसीबतसे पीछा छुड़ाया और हमलोग पैदल रवाना हो गये, बस भी चल पड़ी। बात आयी गयी हो गयी।

जीवनपथपर आगे बढ़ते-बढ़ते जब समझ आयी तो बात समझमें आयी कि उस सूनी जगहपर बस खड़ी क्यों हो गयी थी। एक क्षणकी देरी किये बिना बसका रुकना आज मुझे गजेन्द्रमोक्षकी याद दिलाता है। आश्चर्य तो यह भी है कि ड्राइवरको टिकटकी चिन्ता कबसे होने लगी, यह काम तो कंडक्टरका है। किंतु दयालु भगवान्‌ने ड्राइवरको गाड़ी रोकनेके लिये प्रेरित किया और हमारी जान बची। इस घटनाका समय तो बहुत हो गया है किंतु इष्टदेवका वह चमत्कार जब भी याद आता है तो उनके प्रति असीम विश्वाससे मुग्ध हो जाता हूँ। —दीपचन्द भाटी

मनन करने योग्य

जादूके मन्त्र

राजस्थान राज्यके जयपुर जिलेके एक राजकीय विद्यालयमें श्रीशंकरलालजी प्रधानाध्यापक होकर आये। उन्होंने वहाँके विद्यालयकी प्रगतिके लिये स्वयंको समर्पित करनेका निश्चय कर लिया था और वहाँके विद्यार्थियों तथा अन्य लोगोंमें यह प्रचारित करवा दिया कि वे एक बहुत बड़े पहुँचे हुए साधु महाराजसे जादूके ऐसे मन्त्र जान चुके हैं कि जिनके कानोंमें उन्हें फूँक देते हैं, वे लोग खूब प्रगति करके अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं।

उनकी इस बातको सुनकर लोगोंमें बड़ा कौतूहल हुआ। वहाँके लोगोंने उनसे उनके जादूके मन्त्रको अपने कानोंमें डलवानेका निश्चय कर लिया। उनके इस निश्चयके बारेमें जानकर प्रधानाध्यापकजीने गुरुपूर्णिमाके दिन अपने विद्यालयमें एक विशाल समारोहका आयोजन किया और फिर उन्होंने वहाँके विद्यार्थियों और लोगोंके कानोंमें बारी-बारीसे अपना जादूका मन्त्र फूँक दिया। मन्त्र फूँकनेके बाद वे उनसे बोले—मेरा यह जादूका मन्त्र आप लोगोंपर तभी अपना प्रभाव दिखायेगा, जब विद्यार्थी दिन-रात खूब अपनी पढ़ाई-लिखाई करेंगे और यहाँके बाकी लोग परिश्रमसे अपना कृषिकार्य करेंगे। इसके साथ-साथ सत्य, अहिंसा, दया, धर्म, परोपकार, परिश्रम और लगन-जैसे नियमोंका पालन करके दीन-दुःखियोंकी सेवा भी करनी होगी।

'गुरुजी! हम सभी लोग ऐसा ही करेंगे।' वहाँके सभी विद्यार्थियों और अन्य लोगोंने उनसे सम्मिलित स्वरमें कहा। अब तो विद्यालयके सभी अध्यापक एवं अध्यापिकाओंने अपने विद्यार्थियोंको खूब परिश्रम और लगनसे पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। विद्यार्थी भी खूब परिश्रम और लगनसे अपनी पढ़ाईमें जुट गये। प्रधानाध्यापकजीने अपने विद्यालयमें खूब पेड़-पौधे लगवा दिये और उनकी देख-रेख कराने लगे। वे समय-समयपर उनमें पानी डलवाने लगे। पानीके लिये उन्होंने विद्यालयमें एक कुएँका निर्माण करवा दिया और शासकीय एवं गाँववालोंके सहयोगसे कई कमरोंका निर्माण करवा दिया।

वहाँके लोग भी दिन-रात खूब परिश्रम और लगनसे अपने कृषिकार्योंमें जुट गये थे। अब वे लोग एक-दूसरेसे प्रेमका व्यवहार करने लगे। समय-समयपर एक-दूसरेकी मदद करने लगे। सत्य, अहिंसा, दया, धर्म, परोपकार, परिश्रम और लगनके सिद्धान्तोंपर चलकर वे लोग अपना जीवन आनन्दसे व्यतीत करने लगे। उन सभीके दिन-रातके परिश्रम और लगनके परिणामस्वरूप उनके खेतोंमें खूब पैदावार हुई। कुछ वर्षोंमें उनकी तो जैसे काया ही पलट चुकी थी। विद्यार्थी भी अपनी-अपनी परीक्षाओंमें उच्च श्रेणियोंमें उत्तीर्ण होने लगे।

गरमीकी छुट्टियोंमें प्रधानाध्यापकजीने वहाँके सभी निरक्षर लोगोंको शिक्षित करनेके लिये साक्षरता-कार्यक्रम चलाया। वहाँके बड़े-बुजुर्ग लोगोंको साक्षरताका महत्त्व बताकर उन्होंने उन्हें साक्षर बना दिया। अपना जीवन सुख-शान्तिमय देखकर सभी आश्चर्यचकित थे और वे इसे जादूके मन्त्रका ही प्रभाव समझ रहे थे। उन्हें यह भी जिज्ञासा हुई कि जादूके मन्त्र कौन-से हैं। कदाचित् वे लोग भी जान जाते तो कितना अच्छा होता! तब वहाँके विद्यार्थियों और अन्य लोगोंने प्रधानाध्यापकजीसे उनके इस जादूके मन्त्रको उन्हें सिखानेका आग्रह किया, इसपर प्रधानाध्यापकजी मुसकराते हुए उनसे बोले—'सत्य, अहिंसा, दया, धर्म, परोपकार, परिश्रम और लगन—ऐसे जादूके मन्त्र हैं, जिन्हें अपनाकर प्रत्येक आदमी प्रगति करके अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर सकता है।'

उनकी यह बात सुनकर सभी लोग विस्मित रह गये। आज भी वहाँके सभी लोग अपना जीवन सुखपूर्वक ही व्यतीत कर रहे हैं। हमें भी सत्य, अहिंसा, दया, धर्म, परोपकार, परिश्रम और लगनके सिद्धान्तोंको अपनाकर सुखी जीवन व्यतीत करना चाहिये। ये जादूके मन्त्र नहीं तो और क्या हैं?

—ओ० पी० राजकुमार

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(ना० पूर्व० ४१। ११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मङ्गलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पचास करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी, परंतु इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं उनके अनुसार अड़तालीस करोड़, अस्सी लाख, दस हजार मन्त्रके नाम-जप हुए हैं, जिन्हें इसी अङ्कमें प्रकाशित किया गया है। पिछले वर्ष इस नाम-जपकी संख्या लगभग उनचास करोड़, बीस लाख, नब्बे हजार थी, परंतु इस वर्ष यह संख्या कुछ कम हुई है। यद्यपि जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होनेके अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे इस वर्ष पचास करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है, यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये जिससे भगवन्नाम-

जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि०-सं० २०६०)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के इस प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं—

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनाङ्क १९। ११। २००२ ई०) मंगलवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा वि०-सं० २०६० को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अङ्गुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जन जपकी संख्याकी सूचना ही भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि नहीं। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

सम्पादक—'कल्याण'

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वर्ष ७६

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, नवम्बर २००२ ई०

संख्या ११

पूर्ण संख्या ९१२

नागपत्नियोंकी भगवान्‌से प्रार्थना

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने। भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने॥
ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये। अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च॥
अपराधः सकृद् भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः। क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः॥
अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः। स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम्॥
विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया। यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतोभयात्॥
(श्रीमद्भा० १०। १६। ३९-४०, ५१—५३)

[**नागपत्नियोंने कहा—**] प्रभो! हम आपको प्रणाम करती हैं। आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्यके नित्य निधि हैं। आप सबके अन्तःकरणोंमें विराजमान होनेपर भी अनन्त हैं। आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंके आश्रय तथा सब पदार्थोंके रूपमें भी विद्यमान हैं। आप प्रकृतिसे परे स्वयं परमात्मा हैं। आप सब प्रकारके ज्ञान और अनुभवोंके खजाने हैं। आपकी महिमा और शक्ति अनन्त है। आपका स्वरूप अप्राकृत—दिव्य चिन्मय है, प्राकृतिक गुणों एवं विकारोंका आप कभी स्पर्श ही नहीं करते। आप ही ब्रह्म हैं, हम आपको नमस्कार कर रही हैं। शान्तात्मन्! स्वामीको एक बार अपनी प्रजाका अपराध सह लेना चाहिये। यह मूढ है, आपको पहचानता नहीं है, इसलिये इसे क्षमा कर दीजिये। भगवन्! कृपा कीजिये, अब यह सर्प मरनेहीवाला है। साधुपुरुष सदासे ही हम अबलाओंपर दया करते आये हैं। अतः आप हमें हमारे प्राणस्वरूप पतिदेवको दे दीजिये। हम आपकी दासी हैं। हमें आप आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें? क्योंकि जो श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाओंका पालन—आपकी सेवा करता है, वह सब प्रकारके भयोंसे छुटकारा पा जाता है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, नवम्बर २००२ ई०

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

कल्याण

याद रखो—संसारमें सुख सभी चाहते हैं परंतु किसीको पूर्ण-अखण्ड-स्थायी सुख नहीं मिलता। सुखके लिये भटकते-भटकते जीवन बीत जाता है और सुख आगे-से-आगे सरकता जाता है। इसका कारण यही है कि मनुष्य जिन प्राकृतिक वस्तुओंसे सुख चाहता है, उनमें वह पूर्ण-अखण्ड-स्थायी सुख है ही नहीं। अतएव यदि तुम सुख चाहते हो तो पूर्ण-अखण्ड-नित्य-सत्य सुख-स्वरूप भगवान्‌को भजो।

याद रखो—किसीको कोई वस्तु वहींसे मिलेगी, जहाँ वह होगी। हम बालूमेंसे तेल निकालना चाहें या जलमेंसे घी निकालना चाहें तो निराश ही होंगे; क्योंकि न बालूमें तेल है और न जलमें घी। तेलके लिये तिल-सरसों आदि तिलहन पदार्थोंकी और घीके लिये दूधकी आवश्यकता होगी। इसी प्रकार पूर्ण-अखण्ड-नित्य सुख एकमात्र भगवान्‌में ही है; वे ही अनन्त सुखसागर हैं; अतएव यदि तुम सुख चाहते हो तो उन भगवान्‌को भजो।

याद रखो—भगवान्‌को भजनेका अर्थ यह है कि जिस प्रकार भोगोंकी इच्छासे तुमने भोगोंको आत्म-समर्पण कर रखा है, उसी प्रकार भगवान्‌को आत्मसमर्पण करो। भोगोंमें जैसी सहज-स्वाभाविक प्रीति है, वैसी ही सहज स्वाभाविक प्रीति भगवान्‌में करो।

याद रखो—भगवान्‌के समान अकारण प्रीति करनेवाला सुहृद्, भली-बुरी सभी स्थितियोंमें आश्रय देकर अभय करनेवाला दयालु और कोई भी नहीं है। भगवान् सुहृद् होनेके साथ ही सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ भी हैं। उनके प्रति आत्मसमर्पण करनेपर उनके प्रत्येक विधानमें उनकी परम मङ्गलमयताके दर्शन होंगे, उनका दिव्य स्पर्श प्राप्त होगा और इससे सारे दुःखोंका अवसान हो जायगा।

याद रखो—दुःख-सुख किसी भी परिस्थितिमें, प्राणीमें या पदार्थमें नहीं है; वह है हमारे मनकी प्रतिकूल और अनुकूल भावनामें। हम जहाँ प्रतिकूलता पाते हैं, वहीं दुःखी हो जाते हैं और जहाँ अनुकूलता देखते हैं, वहाँ सुखका अनुभव करते हैं। ये दुःख-सुख प्रतिकूलता-अनुकूलताकी कमी-बेशीके साथ ही घटते-बढ़ते हैं और प्रतिकूलता-अनुकूलताका भाव बदल जाने या न रहनेपर बदल जाते या नष्ट हो जाते हैं। आज जो वस्तु तुम्हें प्रतिकूलभाव होनेके कारण दुःखदायिनी दीखती हैं, वे ही कल अनुकूलभाव होनेपर सुख देनेवाली बन जायँगी।

याद रखो—श्रीभगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण करनेपर तुम्हें सर्वत्र भगवान्‌की मङ्गलमयी, आनन्दमयी कृपाके दर्शन होंगे, उनके प्रत्येक विधानमें—जो फलरूपमें तुम्हें प्राप्त होता है—मङ्गलमयताके कारण अनुकूलताके दर्शन होंगे। प्रतिकूलता कहीं रहेगी ही नहीं और तुम हर हालतमें सुखी—परम सुखी हो जाओगे।

याद रखो—जगत् द्वन्द्वमय है। सुख-दुःख, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय, शुभ-अशुभ आदि परस्पर-विरोधी दो भावोंसे परिपूर्ण धारणा ही जगत् है। भगवान् एक हैं, सम हैं, सारे द्वन्द्वोंमें वे एक ही पूर्ण हैं, सारे द्वन्द्व उन्हींके आधारपर कल्पित हैं और सारे द्वन्द्वोंमें उन्हींका आत्मप्रकाश है या सारे द्वन्द्व उन्हींकी माया अथवा लीला हैं। हैं एकमात्र वे ही। अतएव उन्हें आत्मसमर्पण करनेपर इन द्वन्द्वोंके स्थानपर भगवान् या भगवान्‌की अभिन्नस्वरूपा लीलाके दर्शन होंगे। सुख-दुःख दोनोंका ही सर्वथा अभाव हो जायगा और तुम उस आत्यन्तिक सुखको—जो द्वन्द्वातीत और भगवत्स्वरूप है—प्राप्त हो जाओगे। तुम्हारा जीवन धन्य तथा सफल हो जायगा। अतएव तुम ऐसा पूर्ण, अखण्ड और नित्य सुख चाहते हो तो सर्वात्मना भगवान्‌को ही भजो। **'शिव'**

प्रभुका प्रेम और प्रभाव *

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रभुके गुण-प्रभाव और प्रेमकी बातें कोई कह नहीं सकता। प्रेम वाणीका विषय नहीं है, प्रेमका चित्र नहीं लिया जा सकता, वह तो अनुभवकी चीज है। प्रेम भाव है। जो इसका अनुभव करता है वही जानता है। प्रभुके प्रभावको जब देवतागण भी नहीं जान सकते तो फिर मेरे-जैसा क्या जाने? वह असम्भवको भी सम्भव कर सकता है। हम तो साधारण सिद्धियोंको देखकर ही मुग्ध हो जाते हैं। ऐसी सिद्धियोंको तो राक्षस भी प्राप्त कर लिया करते थे। प्रभुके प्रभावकी तो अपार महिमा है। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व—ये सिद्धियाँ जिसको प्राप्त हों, उसीको हम प्रभावशाली समझते हैं। उसमें प्रभावकी कोई बात नहीं। महाराज श्रीकृष्णजी तथा श्रीरामजीका प्रभाव तो अपरिमित है। गोवर्धन उठाना भी कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि जिस प्रभुने सारे संसारको उठा रखा है, उसके लिये एक पहाड़ उठाना क्या आश्चर्य है। गोवर्धन तो द्रोण पर्वतका एक टुकड़ा है। सारे ब्रह्माण्डको भगवान् श्रीकृष्णके दास शेषजी ही उठा रखे हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं—धनुषकी क्या बात है, मैं सारे ब्रह्माण्डको उठा सकता हूँ। महाराजका प्रभाव इतना ही नहीं है। यह तो इन्द्रके मदमर्दनके लिये अँगुलीपर पर्वत उठाया था। ब्रह्माजीके द्वारा गायोंको छिपा देनेपर दूसरा गोधन रच लेना भी कोई विशेष बात नहीं। वेदव्यासजीने तो सारी सेना फिर बुला ली थी। जब वेदव्यासजीकी यह महिमा है, फिर प्रभुका तो कहना ही क्या। वे श्रीकृष्णजी साक्षात् परमेश्वर हैं। वे स्वयं ब्रह्माको रचते हैं, फिर बछड़ोंको रचनेमें क्या विशेषता है। ये सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सारे-के-सारे उन्होंने एक क्षणमें रच दिये। यही नहीं, पता नहीं ऐसे-ऐसे कितने ब्रह्माण्ड उस विज्ञानानन्द परमात्माके एक अंशमें पड़े हुए हैं। वे ही प्रभु श्रीकृष्णके रूपमें आते हैं। धर्मकी स्थापना की, गीताका उपदेश दिया। जिस गीताका अभ्यास करनेसे प्रत्येक श्लोकमें महाराजने प्रेम-प्रभाव दिखलाया है। महाराजके भक्त ही ऐसे हो गये, जिन्होंने कइयोंका उद्धार कर दिया, फिर प्रभु तो सारे संसारका उद्धार कर सकते हैं। क्यों नहीं किया, यह तो प्रभु ही जानें! उनकी दया अपार है, प्रत्येक क्रियामें उनकी दया भरी हुई है। प्रभुकी दयाकी लहरें उठ रही हैं। सागरमें जैसे लहरें उछलती हैं, वैसे ही उस दया-सागरकी लहरें उसमें उछलती हैं।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी—ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

'**सर्वलोकमहेश्वरम्**' इसमें प्रभाव भरा हुआ है, '**सुहृदम्**' इसमें दया, '**भोक्तारं यज्ञतपसाम्**' इसमें प्रेम भरा हुआ है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

प्रेम नहीं हो तो भगवान् नहीं खाते। भगवान्ने दुर्योधनके निमन्त्रण देनेपर उससे कहा—जहाँ प्रेम होता है, वहाँ उसका आतिथ्य स्वीकार किया जाता है या भयसे अथवा दुःखी होनेके कारण स्वीकार किया जाता है। दुःख तथा भय तो मेरेमें नहीं है, प्रेम तुझमें नहीं है। *'दुर्योधनके मेवा त्यागे, साग विदुर घर खायो।'* जहाँ प्रेम होता है, वहाँ महाराज बिना बुलाये चले जाते हैं और जाकर खाने लगते हैं। उनका प्रभाव कौन बतला सकता है? महाभारत, गीता, भागवत, रामायण आदिमें प्रभाव, प्रेम, दया भरी हुई है। दया-प्रेम गुण हैं। प्रभुमें जिस गुणकी तरफ खयाल करिये, वही अपार है। विष देनेवाली पूतनाको भी मुक्ति

* प्रवचन—तिथि प्रथम वैशाख शुक्ल ५, संवत् १९९१, प्रातःकाल, वटवृक्ष स्वर्गाश्रम।

दे दी। ऐसी दया कौन कर सकता है? विष देने आये उसको भी अमृत, परमामृत देना—ऐसा काम तो प्रभु और प्रभुके भक्त ही कर सकते हैं। हिरण्यकशिपुके साथ प्रह्लादका बर्ताव देखें। प्रह्लादजीने भगवान्से वर माँगा कि सारे जीवोंका उद्धार कर दें। उनके पापोंको मैं भोगूँगा। भगवान्ने कहा—प्रह्लाद! तुम्हारा हृदय उदार है, इसलिये तुम्हारे साथके मनुष्योंका उद्धार कर दूँगा। ध्रुवजी भी प्रभुसे राज्य न लेनेकी बात कहते हैं। पर प्रभुने कहा कि फिर इसके अतिरिक्त और माँगो। उसने माताका कल्याण माँगा। वह तो कल्याणरूप है। ईश्वरकी भक्तिके लिये ध्रुव वनको गये थे, सिद्धि भी प्राप्त कर ली। ध्रुव कहते हैं कि मेरी सौतेली माताका उद्धार होना चाहिये, जिसके कारण मैं आपका दर्शन कर सका। महाराज युधिष्ठिरका भाव देखें—वनमें दुर्योधन उन्हें सतानेके लिये जाता है, गन्धर्वोंसे आक्रान्त—पकड़े हुए दुर्योधनको महाराज युधिष्ठिरने छुड़ाया। भृगुजीके चरणचिह्नको हृदयमें धारण करके प्रभु बताते हैं कि ऐसे क्षमावान् बनो। जब विषदात्री पूतनाको अमृत दिया तो अमृत देनेवाली माताको क्या दिया? अपने-आपको दे दिया। वे महेश्वर प्रभु जिन्हें कोई भी नहीं बाँध सकता, वे प्रभु प्रेमसे माताके द्वारा बँध जाते हैं। मुक्ति क्या, मुक्तिका तो सदाव्रत यशोदाके यहाँ बँटता था। मुक्तिदाता श्रीशिवजी भी भिखारी होकर यशोदाके घरपर आते हैं।

एक ब्राह्मणको यशोदाजीने निमन्त्रण दिया, वह भोजनके पूर्व प्रभुके भोग लगाने लगा। श्रीकृष्णजी उसको तुरंत खा गये। ब्राह्मण सुपात्र था। ठहर गया, फिर भोजन बना, भोग लगानेपर श्रीकृष्णजी फिर खा गये। अन्तमें वह ब्राह्मण उनके चरणोंमें लोटने लगा। कैसी उदारता, कैसा प्रेम भरा हुआ है! गोपियाँ प्रभुसे प्रेम किया करती थीं। वे असंख्य ब्रह्माण्डके मालिक प्रेमसे उनके साथ खेलते थे। आज थोड़ी-सी प्रभुताई पानेपर अभिमान हो जाता है। वह प्रभु तो इतनी प्रभुता पाकर भी क्या काम कर रहे हैं। छोटे-से-छोटा काम, महाराज युधिष्ठिरके यहाँ पत्तल उठानेका काम प्रभुने अपने जिम्मे लिया।
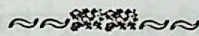
पक्षियोंको दाना

मुस्लिम संत तालमुदके यहाँ उनसे दुआ लेनेवालोंका ताँता लगा रहता था। उनके विषयमें दूर-दूरतक यह धारणा थी कि जिसे वह खुश होकर देख लेते हैं, उसका दुःख दूर हो जाता है।

याकूब नामक व्यक्ति दुर्व्यसनी बेटों तथा पारिवारिक कलहके कारण बहुत दुःखी तथा चिन्तित रहता था। वह कई बार आत्महत्या करनेका प्रयास भी कर चुका था, किंतु जैसे-तैसे हर बार बच जाता था। वह जीवनसे पूरी तरह निराश हो चुका था।

याकूबने सोचा यदि संत तालमुदकी उनपर कृपा-दृष्टि पड़ जाय तो शायद उसके दुःखोंका अन्त हो जाय। एक दिन याकूब खोजता-खोजता संतके पास पहुँच गया। संत तालमुद एक झरनेके किनारे बैठे हुए घासपर फुदक रही चिड़ियोंको दाना चुगा रहे थे। फुदकती चिड़ियाँ उनके सिर एवं कन्धोंपर आ बैठतीं तो वे उन्हें हाथमें लेकर जोरसे हँसते तथा नाचने लगते।

याकूबके मुरझाये चेहरेको देखते ही तालमुद समझ गये कि यह कोई दुःखी व्यक्ति है। उन्होंने उसके कन्धेपर हाथ रखा तथा कहा—'इन मूक तथा निश्छल प्राणियोंको दाना खिलाकर इनकी संतुष्टिसे जो असीम आनन्द मिलता है, वह फरेबी और मतलबी सन्तानको खुश रखनेमें जीवन खपा देनेसे कभी नहीं मिल सकता।'

याकूब इन वाक्योंका अर्थ समझ चुके थे। उसी दिनसे उन्होंने अपने व्यसनी पुत्रों तथा पत्नीका मोह त्याग दिया तथा अपना जीवन अनाथ और बीमार बच्चोंकी सेवामें लगानेका सङ्कल्प ले लिया।

अब वे पूरी तरह तनावमुक्त होकर आनन्दमय जीवन जीने लगे थे। —श्रीशिवकुमारजी गोयल

नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थके परम रहस्यज्ञ श्रीराम

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ९०१ से आगे]

श्रीसीता श्रीरामचन्द्रकी कायाकी छाया थीं। रामरूप भानुकी प्रभा एवं रामरूप चन्द्रकी चन्द्रिका थीं, रामरूप ईश्वरकी महाशक्तिरूपा प्रकृति थीं एवं आनन्दसिन्धु श्रीरामकी माधुर्यसारसर्वस्वकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मी थीं। बहिरङ्ग दृष्टिसे ही राम-सीताका विप्रयोग सम्भव था, अन्तरङ्ग दृष्टिसे तो यह विप्रयोग सम्भव ही न था। इसीलिये जैसे लङ्कामें सीताकी छाया ही रह सकती थी, वैसे ही वनवासमें भी छाया ही थी। वस्तुतः जैसे अमृतसे मधुरिमाका पार्थक्य असम्भव है, वैसे ही राघवेन्द्र श्रीरामसे सीताका पार्थक्य असम्भव ही था। परंतु वह काल्पनिक विप्रयोग भी श्रीरामके लिये असह्य वेदनाका विषय था। अपने हाथोंको श्रीराम निष्करुण कहते थे—

'हे हस्त! तुम आसन्नप्रसवा सीताके निर्वासनमें दक्ष रामके हस्त हो, अतः तुममें करुणा कैसे हो सकती है?'

परंतु स्नेह एवं प्रेमके उद्रेकमें श्रीरामने कर्तव्यसे विचलित न होनेकी प्रतिज्ञा ले रखी थी। वे किसी भी स्नेह, दया या सुखके मोहमें पड़कर लोकाराधन, प्रजारञ्जनके कार्यसे कैसे विमुख हो सकते थे? उन्होंने सीताका भी इसीमें हित समझा था और वह हुआ भी। इस कठोरताका आश्रयण किये बिना महर्षि वाल्मीकिका समागम नहीं हो सकता था, उनके द्वारा विश्वपावन रामायण महाकाव्यका निर्माण सम्पन्न न हो पाता और सीताके सुपुत्र लव-कुश इस प्रकारके संस्कारवान्, विद्वान्, बलवान्, धनुष्मान्, कीर्तिमान् तथा प्रतिभावान् नहीं बन सकते थे। सीताका कष्ट श्रीरामका कष्ट था। स्वयं रामने ही सीताको वनवास देकर स्वयंको कष्टमें डालकर सीताके निर्मल, निष्कलङ्क, परम पवित्र, उज्ज्वल चरित्रको संसारके सामने उपस्थित किया था। परम सानुक्रोश होते हुए भी श्रीराम निरनुक्रोश-से बन गये थे। श्रीरामने लव-कुशसे पूछा था—'तुम्हारी माताका क्या नाम है?' उन्होंने कहा—'हमारी माताका नाम वनदेवी है।' पिताका नाम पूछनेपर कुशने कहा—'हम लोगोंको मालूम नहीं है।' परंतु लवने कहा—'मैं जानता हूँ मेरे पिताका नाम निरनुक्रोश है; क्योंकि एक दिन माताने कहा था—निरनुक्रोशतनयोः।' श्रीरामके नेत्रोंमें आँसू आ गये।

वस्तुतः जगज्जननी सीता श्रीरामके हृदयको पहचानती थीं। पहले उन्होंने वनमें छोड़कर लौटते हुए लक्ष्मणसे कहा था—

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा
वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः
श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य॥
(रघुवंश० १४। ६१)

अर्थात् लक्ष्मण! मेरी तरफसे उन राजासे यह कहना कि आपके सामने ही मेरी अग्निपरीक्षा एवं अग्निशुद्धि हुई थी। फिर भी आपने लोकापवाद-श्रवणके कारण जो मेरा परित्याग किया है, क्या यह आपके कुलके सदृश है? परंतु दूसरे ही क्षण सीताजीने फिर कहा—नहीं प्रभो! आप तो प्राणिमात्रके हितैषी एवं कल्याणकी कामना करनेवाले हैं, फिर मेरे सम्बन्धमें आपकी अन्यथा बुद्धि कैसे हो सकती है? वज्रोपम असह्य श्रीचरण-विप्रयोगरूप दुःख तो मेरे ही पूर्वजन्मोंके कर्मोंका फल है—

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं
न कामचारो मयि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां
विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः॥
(रघुवंश० १४। ६२)

पतिव्रतामुकुटशिरोमणि सीताजीने आगे कहा—'मैं प्रसवके पश्चात् सूर्यमें दृष्टि लगाकर ऐसी तपस्या करूँगी, जिससे जन्मान्तरमें भी आप ही मेरे भर्ता हों और फिर कभी ऐसा विप्रयोग न हो'—

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टि-
रूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि
त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥
(रघुवंश १४। ६६)

श्रीरामने सीताजीको वनमें भेजकर स्वयं तपस्या करते हुए ग्यारह हजार वर्षतक अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर यागादिविहित होनेपर भी दूसरा परिणय नहीं किया। सुवर्णमयी सीताको ही अपने दक्षिणाङ्गमें बैठाकर अश्वमेध आदि बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। श्रीरामका स्मरण कर

विह्वल होनेपर सीताजीकी सखी वासन्ती कहती थी कि 'सखि! तुम ऐसे निष्ठुर श्रीरामका स्मरण करके क्यों दीर्घ एवं उष्ण उच्छ्वास लेती हो। सीताजीने कहा—सखि! राम निष्ठुर नहीं हैं। मैं बहिरङ्ग दृष्टिसे उनसे दूर हूँ, वस्तुतः उनके हृदयकी रानी मैं ही हूँ। सखि! श्रीरामके हृदयको अन्य किन्हीं स्त्रियोंका श्वास कभी स्पर्श नहीं कर सका।'

इस प्रकार श्रीरामने नीतिके साथ ही पूर्णरूपसे प्रीतिका भी पालन किया था। श्रीरामने अनन्त अद्भुत अनुरागके साथ ही सीताजीको वनवास देकर उन्हें अवसर दिया कि वे भी महर्षियोंके मुखारविन्दसे अध्यात्म-चर्चाका श्रवण कर सकें और समाधिनिष्ठ होकर आध्यात्मिक उच्च स्थितिकी परमार्थ साधनामें प्रतिष्ठित हों। स्वयं भी वे विषय-विरक्त होकर ब्रह्मनिष्ठाका सम्पादन कर सकें। इस प्रकार प्रजारञ्जनके साथ-साथ परमार्थसाधन भी सम्पन्न हो।

किसी भी मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान्के लिये मातृ-पवित्रता-ख्याति अत्यावश्यक है। अतः अपने उत्तराधिकारी लव-कुशकी उच्च स्थितिके लिये सीता-चरित्रका उज्ज्वल एवं निष्कलङ्क होना अत्यावश्यक है। राजमहलोंमें पालन-पोषण एवं प्राप्य संस्कारोंकी अपेक्षा, आरण्यक ऋषियोंके आश्रममें पालन-पोषण एवं प्राप्त संस्कार बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसीलिये अपने उत्तराधिकारी पुत्रोंका उत्कृष्ट संस्कार एवं उत्कृष्ट शक्तिशाली चरित्र-निर्माण हो सके, इस कार्यमें सीताजीका वनवास अत्यधिक उपयोगी था।

महर्षि वाल्मीकिजीने स्वयं ही वेद-वेदाङ्गोंकी शिक्षाके समान धनुर्वेद एवं गन्धर्वादिकी भी शिक्षा उन्हें दी थी। इसीलिये कुमार लव-कुश धनुर्वेदमें भी प्रतिष्ठित रहस्यज्ञ हुए थे। अयोध्या, किष्किन्धा, लङ्का एवं संसारके सभी शूरवीरोंने उनका लोहा माना था। रामाश्वमेधके अश्वको अवरुद्धकर लव-कुशने श्रीरामसहित उनके सभी शूरवीरोंके साथ युद्धमें महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की थी। इस तरह सीता-निर्वासनरूप कार्यमें भी नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थ सबका सामञ्जस्य श्रीरामने सम्पादित किया था।

नीतिज्ञोंने नीतिनिष्ठामें श्रीरामको ही सर्वोत्कृष्ट आदर्श माना है—

यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति॥

(अनर्घराघव १।४)

'न्यायपर चलनेवालेके वानर, भालू, गृध्र आदि पशु-पक्षी भी साथी बन जाते हैं। न्यायका पथ छोड़कर चलनेवालेका भाई भी साथ छोड़ देता है।' दृष्टान्तरूपमें श्रीराम एवं रावणको देखा जा सकता है।

कुछ पाश्चात्त्य अज्ञ कुप्रचारक दुःसंस्कारोंसे दूषित मस्तिष्कवाले अपने अधकचरे रामायणज्ञानका दुष्प्रचारमें दुरुपयोग करते हैं। वे सीताके लङ्का-निवास एवं वनवास दोनोंके रामायणवर्णित स्वरूपको विकृत करके उससे सीताजीके दुश्चरित होने तथा दण्डित होनेकी कल्पना करते हैं और इसे श्रीरामकी क्रूरता और पिछड़े हुए जंगलियोंके उदाहरणके रूपमें उपस्थित करते हैं।

परंतु यह उनका उपहासास्पद 'अर्धकुक्कुटी न्याय' का उदाहरणमात्र है। जैसे कोई आधी मुर्गीका भक्षण करके आधीको अण्डा देनेके लिये रखना चाहता है, उसी प्रकार ऐसे लोग रामायणके ही आधारपर सीता एवं श्रीरामका अस्तित्व मानकर रामायणके द्वारा ही वर्णित श्रीसीतारामके परमेश्वरत्व तथा उनके दिव्य अलौकिक चरित्रोंको अस्वीकार कर देते हैं।

वस्तुतः रामायण आदि भारतीय आर्षग्रन्थोंका प्रामाण्य अस्वीकार करनेसे सीता एवं श्रीरामका अस्तित्व किसी भी आधुनिक इतिहास एवं प्रत्यक्ष तथा अनुमानसे नहीं सिद्ध हो सकता। अतः यदि रामायण आदिका प्रामाण्य मान्य है तब तो रामायणमें वर्णित सीता और रामके दिव्य चरित्रोंको मानना भी अनिवार्य ही है। यदि रामायणका प्रामाण्य नहीं मान्य है तो फिर सीताजी और श्रीरामका अस्तित्व तथा विरोधियोंद्वारा कल्पित घटनाओंकी भी सिद्धि नहीं हो सकती। अन्यथा ईसा आदि सम्बन्धी इतिहासमें भी उनके विरुद्ध बहुत-सी कल्पनाएँ की जा सकती हैं, परंतु यह शिष्टता, सभ्यता न होकर असभ्यताकी पराकाष्ठा ही होगी।

रामायणके अनुसार सीताजीके निर्मल, निष्कलङ्क, परम पवित्र चरित्रकी प्रामाणिकता राक्षसों तथा वानरोंके समक्ष साक्षात् अग्नि, ब्रह्मा, इन्द्रने तथा सभी देवताओंने सिद्ध कर दी है। सीता-वनवासका पवित्र उद्देश्य भी पूर्ववर्णित प्रकारसे श्रीरामका नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थका सामञ्जस्य-सम्पादन करना ही है। सीताजीका निर्णय तो रामायणवर्णित दिव्य चरित्र है, जिससे सर्वसाधारणको भी सीताजीके साक्षात् दिव्य परमेश्वरी होनेका विश्वास हो जाता है। सीताजीने पृथिवी-देवीसे प्रार्थना की थी कि यदि मैं पवित्र तथा निष्कलङ्क हूँ तो कृपा करके आप प्रकट होकर अपने अङ्कमें स्थान दें। यह कहते ही तत्क्षण पृथिवी

फट गयी। उसमेंसे एक दिव्य परम तेजोमय प्रकाशमय सिंहासन प्रकट हुआ। उसपर विराजमान श्रीविष्णु-पत्नी माधवी मूर्तिमती भगवती पृथिवी-देवीने सीताको प्यारसे अपने अङ्कमें बैठा लिया और सबके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं। प्रजामें जय-जयकार होने लगा।

भारतमें आज भी कितनी सतियाँ जनसमूहके समक्ष ही अपने शरीरसे दिव्य अग्नि प्रकट कर पतिका अनुगमन करती हैं। सीताजीका तो रामायणके अनुसार जन्म भी पृथिवीसे ही हुआ था। ये सब बातें जड़वादियोंकी समझमें भले ही न आयें, परंतु आध्यात्मिक तथा आधिदैविक तत्त्वोंमें विश्वास करनेवालोंके लिये ऐश्वर्य तथा माधुर्यकी अधिष्ठात्री श्रीमहालक्ष्मी तथा श्रीगङ्गाकी अधिष्ठात्री दिव्य सुरेश्वरीके समान ही अखण्ड भूमण्डलकी अधिष्ठात्री विष्णु-पत्नी माधवी सर्वमान्य तत्त्व हैं।

अतः उनसे सीताजीका आविर्भाव तथा उनके अङ्कमें निवेश असम्भव नहीं है। साथ ही देवता विग्रहवान् होते हैं। देवता स्वेच्छानुसार दिव्य लीला-विग्रह धारण कर सकते हैं। केनोपनिषद्में ब्रह्मका दिव्य अप्रधृष्य तेजोमय यक्षरूपमें आविर्भाव वर्णित है। छान्दोग्योपनिषद्में आदित्यमण्डलान्तर्गत पुरुषका हिरण्यश्मश्रु, हिरण्यकेश, पुण्डरीक-नेत्र तथा ज्योतिर्मय स्वरूप स्पष्टरूपसे वर्णित है। मन्त्रसंहिताओंमें भी नीलग्रीव शिव तथा त्रिविक्रम श्रीविष्णुका श्रीविग्रह वर्णित है।

इसी दृष्टिसे सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् विष्णु या ब्रह्मका रामस्वरूपमें एवं साधिष्ठान दिव्य शक्तिका श्रीसीतारूपमें आविर्भाव शास्त्र, युक्ति एवं तर्कसङ्गत है।

श्रीकामिल बुल्केने भी अपनी 'रामकथा' में श्रीरामके लौकिक रूपका ही वर्णन किया है और यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि वेदोंमें कहीं भी श्रीरामका वर्णन नहीं है। यद्यपि दशरथका वर्णन वेदोंमें है, यह वे स्वयं मानते हैं। परंतु वे 'वेद' शब्दसे केवल मन्त्रसंहिता ही समझते हैं। जबकि पूर्वोत्तरमीमांसक, कल्पसूत्रकार तथा सभी मिताक्षरा-प्रभृति निबन्धकार मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंको ही वेद मानते हैं। उपनिषदोंमें पूर्णरूपसे श्रीराम-श्रीसीता तथा श्रीकृष्ण-श्रीराधा, श्रीनृसिंह आदिका शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्म होना अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस विषयमें रामतापनीय, रामरहस्य, गोपालतापनीय, नृसिंहतापनीय आदि उपनिषद् द्रष्टव्य हैं। (समाप्त)

[प्रेषक—श्रीबिहारीलालजी टाँटिया]
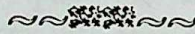
वाणीका शृङ्गार ही सच्चा शृङ्गार

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्द्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥

(नीति-शतक १९)

प्रायः मनुष्य समाजमें आदर, मान-सम्मान चाहता है। सम्मान पानेके लिये वह शरीरका शृङ्गार आदि भी करता है। अनेक आभूषण, सुन्दर वेशभूषा धारण करता है, किंतु यदि वाणीमें कड़ुवाहट है, तीखापन है तो कोई भी शृङ्गार मनुष्यको आदर तथा स्नेह नहीं दिला सकता। वाणीकी कटुता उसे तिरस्कार और उपेक्षाका पात्र बना देती है।

बातचीतमें मधुरता न हो, बोलनेके तौर-तरीकेमें कटुता हो तो अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित मनुष्यको किसीसे भी आदरपूर्ण-व्यवहारकी आशा नहीं करनी चाहिये। मीठा बोलनेसे ही बदलेमें मीठा व्यवहार मिलता है।

सुन्दर बाजूबंद, चाँदनी-सा चमकीला मोतियोंका हार, सुवासित जलका स्नान, चन्दनका लेप, पुष्पहार, केशोंका सुन्दर अवगुण्ठन आदि सभी शृङ्गार-प्रसाधन मनुष्यके शरीरकी ऐसी शोभाके कारण अवश्य बन सकते हैं, जिन्हें देखकर इन गहनोंको धारण करनेवाला शायद अपनेको ऊँचा मानने लगे, अहम्मन्य हो जाय, किंतु ऐसे अहंकारका हेतु वह शृङ्गार उसे समाजमें शोभास्पद स्थान नहीं दिला सकता। अतः इन मूल्यवान् रत्नोंको सच्चा आभूषण नहीं कह सकते। इन आभूषणोंकी चमक-दमक नश्वर है, इनका कोई मूल्य नहीं।

मनुष्यका सच्चा आभूषण तो मधुर वाणी ही है। यदि व्यक्ति सूनृतावाक्सम्पन्न है तो उसे अन्य किसी भी आभूषणकी आवश्यकता नहीं है। हितकर, मधुर, सत्य एवं प्रिय वाणी ही उसे सब प्रकारसे भूषित कर देती है। अतः प्रत्येक मनुष्यके लिये उचित है कि वह वाणीमें मिठास लानेका प्रयत्न करे। **—श्रीमनोजकुमारजी मिश्र**

सबमें भगवान् कैसे देखें और व्यवहार कैसे करें

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ०-सं० ९०४ से आगे]

एक बीमार आदमी है, वह खा नहीं सकता। एक कौर नहीं खा सकता और एक मेहनत करनेवाला आदमी अगर दो सेर न खाय तो उसका काम नहीं चलता। महाभारतमें आता है कि एकचक्रा नगरीमें जब पाण्डव भीख माँगकर लाते तो आधेमें अकेले भीम और आधेमें माता कुन्ती और चारों भाई खाते थे। आधेमें पाँचका पेट भरता और आधेमें अकेले भीमका पेट भरता। अब अगर भीमको पाँचोंके समान ख़ुराक देने लगें तो भीम तो भूखे रह जायँगे और उन लोगोंको अगर भीमकी ख़ुराक खानेको बाध्य करें तो अपचग्रस्त होकर वे बीमार हो जायँगे। अतएव भोजन एक-सा सम्भव नहीं। इसी प्रकार बुद्धि एक-सी नहीं, कद एक-सा नहीं, परिमाण एक-सा नहीं, वजन एक-सा नहीं, विचारशक्ति एक-सी नहीं; पर सबको सुख पाना है—यह चीज एक-सी है। सबमें एक ही आत्मा है, सबको दुःख होता है, दर्द होता है, यह बात एक-सी है। इस प्रकारसे जहाँ हमारी आत्मभावना होगी कि सारे विराट्‌में सब जगह एक आत्मारूपमें हम फैले हुए हैं तो किससे वैर करेंगे? अपने-आपसे कोई वैर करता है क्या? अपने-आपको गाली देता है क्या? अपने-आपको कोई मारता है? कोई नहीं। जहाँ भगवान्‌की भावना हो वहाँ तो इससे भी उत्तम। भक्तकी दृष्टिमें तो और भी विलक्षण बात होती है—

अब हौं का सौं बैर करौं।
कहत पुकारत प्रभु निज मुख सौं हौं घट-घट बिहरौं॥

× × ×

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(रा०च०मा० ७। ११२)

किससे विरोध करें, किसे वैरी मानें सबमें तो हमारे भगवान् भरे हैं। जहाँ आत्माकार भावना रहती है, वहाँ हमें दूसरेका दुःख वैसे ही सहन नहीं होता जैसे हमारे पैरका दुःख हृदयको सहन नहीं होता। दुःख पैरमें और उसका दर्द हृदयमें, उसकी चिन्ता मस्तिष्कमें, उसे देखनेका काम आँखका, उसके लिये दवा लाकर लगानेका काम हाथका, दवा लाने जायँगे पैरसे। ये सारे काम इन्द्रियोंके द्वारा, शरीरके द्वारा होते रहेंगे पर होंगे केवल आत्मभावनासे। यह बर्तावकी दूसरी बात है।

अब तीसरी चीज इससे बहुत ऊँची है। वह बिलकुल व्यवहारकी चीज है। हम जगत्‌में अपना सुख चाहते हैं कि नहीं। हम जगत्‌में सम्मान चाहते हैं कि नहीं। हम अपना हित सबके द्वारा चाहते हैं कि नहीं। हम दूसरोंसे अपने प्रति सत्य व्यवहार चाहते हैं कि नहीं। इस हेतु यह कसौटी है—दूसरेसे जो चाहते हैं वही स्वयं भी करें, न चाहते हों तो न करें—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम्॥
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड १९। ३५५-५६)

जो-जो अपने मनके प्रतिकूल हो, जो चीज अपनेको बुरी लगती हो, दूसरेके साथ वह न करें। इस सिद्धान्तपर व्यवहारकी कसौटी बना लें और उसमें भी एक खास बात है—जहाँ दुःख है, जहाँ दर्द है, जहाँ वेदना है, जहाँ पीड़ा है, जहाँ अभाव है; वहाँ विशेष प्रेमकी आवश्यकता है। यह समझनेका विषय है। यह स्वार्थी संसार जबतक अपना स्वार्थ सधे तबतक बड़ा प्रेम करता है और जब स्वार्थ सधना बंद हो जाय तो अनुपयोगी मानकर त्याग देता है। हमारी संस्कृतिमें इसके विपरीत बात है—माता-पिता बूढ़े हैं उनकी सेवा करो, गाय दूध देते-देते बूढ़ी हो गयी अब उसको पालो। किंतु आजका अर्थवादी यह नहीं कहता। वह कहता है कि बूढ़ी गाय अनुपयोगी है, उसको काट डालो। आप तो सुनकर सिहर जाते हैं किंतु ऐसा ही हो रहा है। एक सरकारी योजना बनी, उसमें ऐसा कहा गया कि लोगोंमें मांसाहारकी प्रवृत्ति बढ़ायी जाय जिससे जो निरुपयोगी पशु हैं वे काम आने लगें। लोगोंकी मांस खानेकी प्रवृत्ति ज्यादा होना—यही आजका युग है। सरकारी

योजनानुसार कसाईखाने खुल रहे हैं। मुर्गी-उद्योग, बकरा-उद्योग, सुअर-उद्योग और मछली-उद्योग—ये सब बन रहे हैं। क्या है यह सब? मनुष्य राक्षस बनता जा रहा है। दूसरे जीवोंकी ओर मनुष्य देखता ही नहीं कि उन्हें भी दुःख होता है, उनका दुःख हमारा दुःख। छोटा बच्चा नामदेव कुल्हाड़ी लेकर आया और माँके सामने बैठकर पैरपर छीलने-सा उपक्रम करने लगा तो माँ बोली—बेटा! क्या कर रहे हो यह, लग जायगी। नामदेवने कहा—परीक्षा कर रहा था कि दर्द होता है या नहीं।

माँ बोली—यह कैसे? नामदेवने कहा—मैया! तुमने उस दिन कहा था ना कि उस गाछ (वृक्ष)-की छाल उतार लाओ। तब मैं गाछकी छाल उतार लाया था। उससे रस टपकता था। मेरे मनमें विचार आया कि क्या गाछको वेदना नहीं हुई होगी? रस टपका है शायद वेदना हुई हो। अतः मैं अपने पैरकी छाल उतारकर परीक्षा करना चाहता था कि वेदना होती है या नहीं।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन॥

(गीता ६। ३२)

नामदेववाली यह चीज जब मनुष्यके हृदयमें आ जाती है तो दूसरेका दुःख उसका दुःख बन जाता है। इन दो बातोंको याद रखिये—पहली यह कि कभी भी दूसरेका दुःख अपना सुख न बन जाय, क्योंकि यह महान् अभागापन होगा। मनुष्यके जीवनका महान् दुर्भाग्य होता है जब वह किसी दूसरेके दुःखमें सुखका अनुभव करता है। और, दूसरी बढ़िया बात है—जहाँ भी अवसर आये, जहाँ भी सुविधा हो, जहाँ शक्ति हो, जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ अपना सुख दूसरेके दुःखको हटानेमें देता रहे। अपने सुखको दूसरेके दुःखके नाशके लिये दे दे। बिना विचारे दे दे। बड़ा सुख मिलेगा। इससे कभी घाटा नहीं होगा। यह केवल एक वहमकी बात है कि हम घाटेमें रह जायँगे।

एक पौराणिक कथा आती है—एक धर्मशील राजा थे। उन्होंने अपने जीवनमें सब अच्छे-अच्छे काम किये। पाप किया ही नहीं। उनके जीवनमें मात्र एक पाप बना और वह पाप हमारे जीवनमें तो शायद रोज ही बनता हो बल्कि उससे भी बड़ा-बड़ा। पाप क्या बना कि उस राजाने अपने जीवनमें एक बार अपनी निर्दोष पत्नीका अपमान कर दिया। यह पाप है। स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर एक-दूसरेके पूरक हैं। छोटे-बड़ेका कोई भाव नहीं। स्त्री अगर पुरुषको परमात्मा मानती है तो उसका दूसरा लक्ष्य है। स्त्री घरका काम अगर न करे तो गृहस्थी बिगड़ जायगी। घरमें रहना, बच्चोंको पालना, घरका काम करना, उसके लिये आवश्यक है। उसके लिये घर मन्दिर होना चाहिये। ऋषियोंने यह बड़ा सुन्दर तरीका सोचा। यह साधनका बड़ा सुन्दर तरीका है।

ध्येयाकार वृत्तिका नाम ध्यान है। भगवत्प्राप्तिके लिये भगवदाकार वृत्ति होनी चाहिये। अतः स्त्रीके लिये विधान कर दिया कि घर तुम्हारा मन्दिर और पति ही तुम्हारे स्वामी—परमेश्वर। इनकी सेवाका काम—भगवान्‌की पूजा है। इस प्रकार भगवान्‌की पूजा घरमें रहकर करो। 'भगवान्-भगवान्, पति-भगवान्, पति-भगवान्' करते-करते पति तो रह जायगा, क्योंकि वह तो नश्वर है और भगवान्‌के आकारकी बुद्धि बन जायगी तथा भगवत्प्राप्ति हो जायगी। यह भगवान्‌की प्राप्तिका साधन है। पुरुषोंके नाम पट्टा नहीं लिखा गया कि वे परमेश्वर हैं और स्त्री गुलाम हैं, कभी नहीं। स्त्रीको गुलाम माननेवाला पाप करता है। आत्मामें भेद नहीं और अगर उसमें भगवान् हैं तो वह हमारे लिये भगवान्‌की भाँति पूज्य है। कार्य अलग-अलग, क्रिया अलग-अलग। कार्यके भेद आत्मामें भेद नहीं करते। कार्यके भेद ईश्वरतामें भेद नहीं करते।

उस राजाने एक पाप किया कि अपनी निर्दोष पत्नीका जीवनमें एक बार अपमान किया। उसके पापका दण्ड-विधान यह हुआ कि उसकी जीवात्माको नरकके मार्गसे—नरकके समीपसे दिव्य लोकोंमें ले जाया जाय। उसके जीवनमें इतनी पुण्यराशि है जो उसकी दुर्गति कभी होने नहीं देगी, पर उसे एक छोटे-से पापका फल भुगता देना है कि नरकके रास्तेसे उसको ले जाया जाय। यही हुआ। विधानके अनुसार देवदूत—यमदूत नहीं—बड़े आरामसे उसके जीवको ले जाने लगे। जब वह नरकोंके समीप पहुँचा तो उसको बड़े जोरसे कराहनेकी आवाज सुनायी दी; जैसे कई पीड़ित, यातनाग्रस्त प्राणी कराह रहे हों, असहाय होकर रो रहे हों, क्रन्दन कर रहे हों। राजाने पूछा कि भई, यह क्या है? देवदूतोंने कहा—यह नरकलोक है। यहाँ पाप

करनेवाले प्राणी आते हैं और उन्हें यातना-शरीर मिलता है। उसके द्वारा वे नारकीय यन्त्रणा भोगते हैं, वे ही सब कराह रहे हैं। वे आगे बढ़े तो कराहना बंद हो गया। रोनेकी आवाज बंद हो गयी। फिर कुछ आगे बढ़े तो फिर कराहनेकी आवाज आयी। उसके साथ यह भी आवाज आयी कि राजन्! आगे मत बढ़ो, ठहरो।

राजाने देवदूतोंसे कहा— ठहर जाओ। वे ठहर गये। राजाने पूछा—इसका क्या मतलब है? आवाज पहले आयी फिर बंद हुई, अब फिर आने लगी और ठहरनेका निवेदन, यह क्या बात है? देवदूतोंने असली चीज बतायी कि आपका जीवन इतना पुण्यमय है, इतना पवित्र है, इतने पवित्र परमाणु उसके अंदर भरे हैं कि आपके इस सूक्ष्म शरीरसे स्पर्श करके जो वायु नरकोंमें गयी उस वायुका स्पर्श पाते ही नरककी आग बुझ गयी। नरकोंमें सारे-के-सारे शस्त्र बेकाम हो गये। इससे नरकके सब-के-सब प्राणी आश्वस्त हो गये। उनका कराहना बंद हो गया। पर जब आप आगे बढ़े और जब वायुका स्पर्श होना बंद हो गया तब फिर नारकीय पीड़ा आरम्भ हो गयी। इसीलिये वे सब कराह रहे हैं। राजाने कहा कि तब तो हम यहीं रहेंगे। हम यहाँसे नहीं जाते और हमारे लिये यह विधान हो जाय कि हमें नरकोंमें भेज दिया जाय, हम यहीं रहेंगे। देवदूतोंने समझाया पर राजा माने नहीं। वे बोले—हमें तो यहीं रहना है। अगर हमारे रहनेसे इन सारे दुःखी जीवोंका दुःख कम होता हो, मिटता हो तो हम नरक भोगेंगे और ये सुखी हो जायँ। जब राजा नहीं माने तो इन्द्रदेव और धर्मराज—दोनों सशरीर वहाँ पहुँचे और उन्होंने राजासे प्रार्थना की कि महाराज! आपको यहाँ नहीं रहना है। आपके कर्म इतने पवित्र और इतने पुण्यमय हैं कि आपके लिये तो दिव्यलोक सुरक्षित है। यह तो आपके द्वारा एक गलती हुई थी उस कारण ये लोग इस मार्गमें आपको ले आये और यह भी अच्छा हुआ कि आपके आनेसे कुछ देरके लिये तो यहाँके प्राणियोंको शान्ति मिली। अब आप चलिये। राजाने कहा—मैं नहीं जाऊँगा, यहीं रहूँगा। देवराज बोले—महाराज! आपको तो चलना ही होगा। यह तो सारा आपके पुण्यका प्रताप है। उन्होंने कहा—पुण्यका प्रताप? देवराज बोले—हाँ! तब राजाने जल मँगवाया, हाथमें लिया और संकल्प किया कि मेरे आजतकके सारे पुण्य इन नरकके प्राणियोंको सदाके लिये अर्पित हैं। अब तो नरकोंका काम ही रुक गया और तमाम विमान आ गये। सारे नारकीय प्राणियोंका त्राण हो गया। राजा खड़े रहे। धर्मराजने कहा—महाराज! आगे बढ़िये अब। वे बोले—हम कैसे आगे बढ़ें? हमारे पास तो जो कुछ था हमने दे दिया। तब धर्मराज बोले—महाराज! यह जो दे दिया आपने, यह तो महादान किया; इसका जो महापुण्य हुआ वह कहाँ जायगा? इस महादानका जो महापुण्य हो गया वह क्या मामुली चीज हुई? कितनी विलक्षण बात है।

हम अपनेको वहीपर धोखा दे जाते हैं जहाँ उपकार करनेमें, सेवा करनेमें, देनेमें अपनी हानि मानते हैं। जबकि हानि तो होगी ही नहीं, यही तो असली लाभ है कि किसी दूसरेके दुःखको अपना दुःख बना लो और उसके दुःखको हरण करनेके लिये अपने-आपको मिटा दो। इससे तुम मिटोगे नहीं। जहाँ अपने-आपको मिटाने जाओगे वहीं तुमको बनानेवाला एक ऐसा आयोजन बन जायगा जो सदाके लिये तुमको बना देगा और ऊँचा बना देगा।

यह हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी प्राणीका हमारे द्वारा अहित न हो जाय, बुरा न हो जाय, दूसरेको दुःख न पहुँचे। वैसे अगर सद्भावनासे दुःख पहुँचे तो वह क्षम्य होता है। जैसे कुमार्गमें जाते हुए किसी बच्चेको माँ-बाप रोक लें तो उसको अज्ञानवश दुःख भले हो पर उसकी हितभावनाके कारण वह दुःख क्षम्य होता है। किसी भी प्रकारसे दूसरेका भला ही हो, ऐसा सोचना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि हम किसीका सुख हरण न करें, किसीका हित हरण न करें, बल्कि अपना सुख देकर—अपना सर्वस्व देकर—अपना सब कुछ खोकर भी उसका सुख देखें। यहीं आकर प्रेमका प्रारम्भ होता है। जहाँ प्रेमास्पदके सुखके लिये अपने सर्वस्वका परित्याग करनेको हम तैयार हों, वहाँसे प्रेम प्रारम्भ होता है। बिना त्यागकी भित्तिके प्रेमका महल कभी बनता नहीं। नींव नहीं पड़ती। सबसे पहले त्याग चाहिये। अपना अपना त्याग, अपने सुखका त्याग, अपने स्वार्थका त्याग। बस, प्रियतमका स्वार्थ ही अपना स्वार्थ। यह प्रियतम-भाव सबमें हो जाय; क्योंकि सब भगवान्के रूप हैं। **(क्रमशः)**

दो अकाट्य सत्य

(श्री जय जय बाबा)

असंशयं मृत्युरिति प्रजानतो
नरस्य रागो हृदि यस्य जायते।
अयोमयीं तस्य परैमि चेतनां
महाभये रज्यति यो न रोदिति॥

(बुद्धचरित)

भगवान् बुद्धने कहा—मृत्यु निश्चित है, ऐसा जानते हुए भी जिस मनुष्यके हृदयमें विषयोंके प्रति अनुराग उत्पन्न होता है, उसकी चेतना लोहेके समान जड़ है, ऐसा मैं मानता हूँ; क्योंकि मृत्युरूपी महाभय उपस्थित हो जानेपर भी वह दुःखी होकर रोनेके बजाय क्षुद्र और क्षणभंगुर विषयोंमें प्रीति करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने भी गीता (२। २७)-में कहा है—**'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'** अर्थात् जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है।

अतः पहला अकाट्य सत्य यह है कि जिसने जन्म लिया है, वह निश्चय ही मरेगा।

महाभारतमें एक कथा आती है कि जुएमें हार जानेपर पाण्डवोंको बारह वर्षका वनवास और उसके उपरान्त एक वर्षका अज्ञातवास भुगतना पड़ा। उस अज्ञातवासमें पाण्डवोंको छिपकर रहना पड़ा।

वनवासके समय एक बार प्यास लगनेपर युधिष्ठिरने सबसे छोटे पाण्डव नकुलको कहींसे पानी लानेकी आज्ञा दी। बहुत समय बाद भी जब नकुल पानी लेकर नहीं लौटे तो सहदेवको भेजा, उनके न लौटनेपर अर्जुनको और फिर भीमसेनको भेजा। किसीके भी न लौटनेपर स्वयं युधिष्ठिर पानी लेने गये। कुछ दूर जानेपर युधिष्ठिरने पानीका एक सुन्दर सरोवर और उसके किनारे अपने चारों भाइयोंको अचेत पड़ा देखा। युधिष्ठिरके उस सरोवरमेंसे पानी भरनेका प्रयास करते ही एक यक्षकी आवाज आयी कि पानी भरनेसे पहले मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो, नहीं तो तुम्हारी भी वही गति होगी जो तुम्हारे बेहोश पड़े हुए भाइयोंकी हुई है।

युधिष्ठिरने यक्षसे कहा—पूछो, तुम्हारे क्या प्रश्न हैं?

यक्षने युधिष्ठिरसे अनेक प्रश्न पूछे। उनमेंसे एक प्रश्न था—**'किमाश्चर्यम्'** इस संसारमें महान् आश्चर्यकी बात क्या है?

इस प्रश्नका उत्तर युधिष्ठिरने इस प्रकार दिया—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(वन० ३१३। ११६)

नित्यप्रति प्राणी मरकर यमराजके पास जाते हैं, परंतु जो लोग अभीतक नहीं मरे हैं, वे मरना नहीं चाहते और अमर होकर इसी संसारमें रहना चाहते हैं, इससे बड़ा इस संसारमें क्या आश्चर्य हो सकता है!

दूसरा अकाट्य सत्य यह है कि मरनेपर जीव इस संसारका कोई भी पदार्थ अपने साथ नहीं ले जा सकता, सब कुछ यहीं रह जाता है। मृत्युकी स्थितिका कवि बहुत ही हृदयस्पर्शी और भावमय वर्णन करता है—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहद्वारि जनः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

धनानि भूमौ—पुराने जमानेमें बैंक नहीं होते थे। अतः जो लोग अपने स्त्री और पुत्रोंसे छिपाकर अपने धन—रुपया-पैसा, सोना, चाँदी आदि कीमती चीजें भूमिमें गाड़ देते थे और मृत्युके समय बेहोशी या कण्ठ अवरुद्ध हो जानेके कारण उस धनका अता-पता अपने स्त्री-पुत्रोंको न बता पाते थे तो मृत्युके समय वह धन जमीनमें ही रह जाता था।

पशवश्च गोष्ठे—गाय, भैंस, घोड़ा, ऊँट आदि पशु गोष्ठमें ही बँधे रह जाते हैं।

नारी गृहद्वारि—पतिकी अर्थीके साथ पत्नी घरकी देहलीतक ही जा सकती है।

जनः श्मशाने—इष्ट-मित्र, भाई-बन्धु आदि केवल श्मशानतक मरनेवालेके साथ जाते हैं।

देहश्चितायाम्—देह चितामें जल जाती है, उसकी राख भी यहीं रह जाती है, साथ नहीं जाती।

धर्मानुगः—कवि कहता है कि परलोक-मार्गमें केवल

जीवका सुकृत ही साथ जाता है। अन्य सब यहीं रह जाता है।

तो दूसरा अकाट्य सत्य यह हुआ कि चाहे आपने करोड़ोंकी सम्पत्ति कमायी हो, किंतु मृत्युके समय आप कुछ भी साथ नहीं ले जा सकते।

प्राय: देखा जाता है कि संसारी लोग अपने जीवनकालमें उपर्युक्त दोनों अकाट्य और ध्रुव सत्योंको व्यवहारमें भूल जाते हैं। उसका ही परिणाम है कि हमको जीवनमें अनेक प्रकारके दु:ख भोगने पड़ते हैं।

हमारे इस शरीरका निर्माण प्रकृति और पुरुष—इन दो तत्त्वोंके संयोगसे हुआ है। मृत्युके भयसे छुटकारा पाकर निर्भय होनेका एक ही उपाय है, वह यह कि इस शरीरमें जो प्रकृतिका भाग है उसे प्रकृतिको सौंप दिया जाय। जो वस्तु जिसकी है, उसको सौंपनेपर उस विषयमें आप निर्भय हो जायँगे।

सौंप देनेका मतलब यह है कि उसमें अहंता, ममता न रखे। जैसा कि श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें कहा गया है—

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठ:॥
धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्॥

(४।७९-८०)

गोकर्णने कहा—पिताजी! यह शरीर हड्डी-मांस और रुधिरका पिण्ड है; इसे आप 'मैं' मानना छोड़ दें और स्त्री-पुत्रादिको 'अपना' कभी न मानें। इस संसारको रात-दिन क्षणभंगुर देखें। इसकी किसी भी वस्तुको आप स्थायी समझकर उसमें राग न करें। बस, एकमात्र वैराग्यरसके रसिक होकर भगवान्‌की भक्तिमें लगे रहें।

एकमात्र भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है, निरन्तर उसीका आश्रय लिये रहें। अन्य सब प्रकारके लौकिक धर्मोंसे मुख मोड़ लें। सदा साधुजनोंकी सेवा करें। भोगोंकी लालसाको पास न फटकने दें तथा जल्दी-से-जल्दी दूसरोंके गुण-दोषोंका विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान्‌की कथाओंके रसका ही पान करते रहें।

संत कबीरने कहा है—*'ज्यों-की-त्यों धर दीन्हीं चदरिया।'* यह शरीररूपी चदरिया आपकी नहीं है, आपके पास रखी हुई यह प्रकृतिकी अमानत है। दूसरेकी धरोहर, उसकी अमानत लौटानेमें दु:ख काहेका? दूसरेकी चीजको अपनी मान लेनेकी बेईमानी जिसने की है, उसको तो दु:ख भुगतना ही पड़ेगा।

अज्ञानी लोग अपनेको शरीर मान लेते हैं। वास्तवमें तो यह शरीर आपका दृश्य है, द्रष्टा और दृश्य हमेशा भिन्न होते हैं, एक नहीं हो सकते।

श्रीमद्भागवत (११।२२।४९)-में आया है—

तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनो: पृथक्॥

जैसे वृक्षको देखनेवाला वृक्षसे भिन्न होता है, वैसे ही इस शरीरको देखनेवाला भी इससे भिन्न है।

कबहूँ मन बिश्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो॥
जदपि बिषय-सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो॥
जनम अनेक किये नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिबेक-नीर-बिनु, बेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों हरषि हृदै नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥

(विनय-पत्रिका ८८)

साधकोंके प्रति—

रुपयोंके सहारेसे हानि

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हमें सबसे पहले अपने जीवनका एक उद्देश्य बनाना चाहिये कि इस जीवनमें हमें परमात्माकी प्राप्ति करनी है। चाहे सारी दुनिया हमारा विरोध करे, पर हमें अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनी है—ऐसा पक्का विचार किये बिना संसार-बन्धन छूटेगा नहीं। अपना उद्देश्य, ध्येय एक बना लो, फिर सब ठीक हो जायगा। जो विधवा हो गयीं अथवा जो साधु हो गये, उनको तो सर्वथा परमात्माकी तरफ लग जाना चाहिये। इसके सिवाय उनका संसारमें क्या काम है? उनका शरीर-निर्वाह हो जायगा। कैसे होगा? यह तो भगवान् जानें!

प्रायः आपने समझ रखा है कि पहले अपने निर्वाहका प्रबन्ध कर लें, रुपये जमा कर लें, पीछे भजन-स्मरण करेंगे। ऐसा भाव आपकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं होने देगा। जिन्होंने अपने पास रुपये जमा किये हुए हैं, उनकी जल्दी आध्यात्मिक उन्नति नहीं होगी। रुपयोंका सम्बन्ध आपकी आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधा डालेगा। जिसके पास कुछ नहीं है, रोटी कहाँ मिलेगी—इसका भी पता न हो, उसकी जितनी जल्दी उन्नति होगी, उतनी जल्दी रुपये रखकर साधन करनेवालेकी नहीं होगी। कारण कि उसके भीतर रुपयोंका सहारा रहेगा। रुपयोंके सहारेसे कल्याण नहीं होगा, यह निश्चित बात है। जिसके पास रुपयों आदिका कोई सहारा न हो, रोटीका भी ठिकाना न हो कि क्या खायेंगे? कल क्या मिलेगा? उसकी उन्नति बहुत जल्दी होगी। यह बात आपको शायद न जँचे, पर मेरेको यह जँचती है। जिसका रुपयोंका सहारा रहेगा कि रुपये जमा रखकर उसके ब्याजसे काम चलायेंगे, उसकी जल्दी उन्नति नहीं होगी। रुपयोंका आश्रय रहनेसे भगवान्‌का अनन्य आश्रय नहीं होगा। कुछ भी सहारा रहेगा तो वह परमात्माकी प्राप्ति नहीं होने देगा। दीखता ऐसा है कि रुपयोंका प्रबन्ध हो जाय तो फिर निश्चिन्त होकर भजन करेंगे, पर वास्तवमें निश्चिन्त नहीं हो सकोगे।

भगवान्‌ने कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'हे पृथानन्दन! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें लगे हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।'

यहाँ भगवान्‌ने तीन बातें कही हैं—'**अनन्यचेताः**', '**सततम्**' और '**नित्यशः**'। इन तीनों बातोंका तात्पर्य है—(१) '**अनन्यचेताः**' अर्थात् एक भगवान्‌के सिवाय अन्य किसीका सहारा न हो, (२) '**सततम्**' अर्थात् जिस दिन परमात्मामें लगे, उस दिनसे लेकर मृत्युतक और (३) '**नित्यशः**' अर्थात् सुबहसे लेकर शामतक—नींद खुलनेसे लेकर नींद आनेतक परमात्मासे जुड़े रहें। इन तीन बातोंसे भगवान् सुलभ हो जाते हैं। जिसका एक भगवान्‌के सिवाय और कोई सहारा नहीं है, ऐसे अनन्यचेता मनुष्यके लिये भगवान्‌ने अपनेको सुलभ बताया है। जिसको रोटी, कपड़ा, मकान आदि किसीका कोई सहारा नहीं है, वह अगर भगवान्‌में लगे तो बहुत जल्दी उन्नति करेगा। कई आदमी कहते हैं कि हमारे पास पैसा नहीं है, पैसा होता तो भजन करते! यह बिलकुल झूठी बात है। रुपयोंका सहारा दीखता अच्छा है, पर अच्छा है नहीं। जिसके पास कुछ नहीं है, किसीका भी सहारा नहीं है, उसके ऊपर भगवान्‌की बहुत कृपा समझनी चाहिये। वह बड़ा भाग्यशाली है! उसकी बहुत जल्दी उन्नति होगी।

असत् पदार्थोंके सहारेसे ही सबका नुकसान हो रहा है। असत्‌के सहारेसे ही आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो रही है। जो असत्, अनित्य वस्तुका सहारा नहीं लेता, उसकी उन्नति जरूर होगी। सहारा लेना हो तो नित्यका लो। अनित्यका सहारा दीखता तो ठीक है, पर उससे लाभ नहीं होता। रुपये जमा हो जायँगे तो उनका

ब्याज आ जायगा। उस ब्याजसे काम चलेगा और निश्चिन्त होकर भजन-स्मरण करेंगे—यह असत्का सहारा है। अगर आप आध्यात्मिक उन्नति चाहते हो तो असत्का सहारा छोड़ना ही पड़ेगा। असत्का सहारा छोड़नेपर उन्नति जरूर होगी, इसमें संदेह नहीं है। इसलिये किसीका भी सहारा मत लो, न वस्तुका, न व्यक्तिका। सत्संगसे भी लाभ लो, पर उसका सहारा मत लो, गुरुका भी सहारा मत लो। श्रीदयालुदासजी महाराजने कहा है—

बोल न जाणूं कोय अल्प बुद्धि मन वेग तें।
नहिं जाके हरि होय या तो मैं जाणूं सदा॥

(करुणासागर ७४)

तात्पर्य है कि जिसका कोई नहीं होता, उसके भगवान् होते हैं। परंतु जिनको दीखता है कि हमारे पास रुपये हों तो हम भी भजन करें, वह भजन नहीं कर सकता। संसारमें देखो कि जिनके पास रुपये हैं, वे कितना भजन करते हैं? ज्यादा रुपयोंवाले सत्संग नहीं कर सकते, सत्संगमें ज्यादा ठहर नहीं सकते। मैंने ऐसे आदमियोंको देखा है, जो सत्संग करते थे। परंतु जब उनके पास रुपये ज्यादा हो गये, तब उनका सत्संगमें आना छूट गया। संसारका सहारा बिलकुल कामका नहीं है। जिसके पास कुछ नहीं है, कोई सहारा नहीं है, वह व्यक्ति भगवान्को बहुत प्रिय होता है। स्वयं भगवान् कहते हैं—

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः।

(श्रीमद्भा० १०।६०।१४)

'हम सदासे अकिंचन हैं और अकिंचन लोगोंसे ही हम प्रेम करते हैं तथा अकिंचन लोग ही हमारेसे प्रेम करते हैं।'

कुन्तीदेवी भगवान्से कहती हैं कि आप उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिंचन हैं—**त्वामकिञ्चनगोचरम्** (श्रीमद्भा० १।८।२६)। इसलिये जिसके पास अपना करके कुछ नहीं है, वह बड़ा भाग्यशाली है। उसपर भगवान्की बड़ी भारी कृपा है। संसारको अपना माननेसे धोखा ही होगा। संसारका सहारा टिकनेवाला नहीं है, एक दिन छूट जायगा—इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है। अगर मनमें रुपयोंका सहारा पकड़ा हुआ रहेगा कि ब्याज आता रहेगा, हम मौजसे भजन-साधन करेंगे तो रुपयोंका भजन होगा, भगवान्का नहीं। असली चिन्तन रुपयोंका ही होगा। अगर संसारका सहारा छोड़ दोगे तो फिर भगवान्का ही सहारा रहेगा। कारण कि असत्का त्याग करनेपर सत् ही शेष रहेगा।

जिनके पास कुछ नहीं है और भीतरमें कोई इच्छा भी नहीं है, वे बड़े बड़भागी हैं। मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—ऐसा भाव रखनेवालेके जीवन-निर्वाहमें कमी नहीं आयेगी। कुत्तों आदिको देखो। वे बिना झोलीके फकीर हैं! उनके पास न रुपया है, न जमीन-जायदाद है, न कोई जीविका है, फिर भी उनका वंश लाखों वर्षोंसे चलता आया है। भगवान् श्रीरामके राज्यमें भी कुत्तेकी कथा आती है! जिनके पास ज्यादा रुपये हैं, वे खर्च नहीं कर सकते। साधुओंको रोटी भी गरीबोंके घरसे मिलती है, धनियोंके घरसे नहीं। इसका मैं भुक्तभोगी हूँ। गरीबोंके घरमें रसोईतक जा सकते हैं, पर धनियोंके घरमें प्रवेश नहीं कर सकते; क्योंकि वहाँ लाठी लिये हुए आदमी खड़ा रहता है! जिनके पास खानेको रोटी नहीं, पहननेको पूरा कपड़ा नहीं, रहनेको मकान नहीं, अण्टीमें दाम नहीं, पैरोंमें जूती नहीं, सिरपर छाता नहीं, पर एक भगवान्का ही सहारा है, वे संत-महात्मा बन जाते हैं! पैसा होनेपर भजन करेंगे—यह कोरा वहम है। मैंने धनी आदमियोंसे बात करके देखा है। उनके पास इतना रुपया है कि कई पीढ़ियाँ बिना कुछ किये उन रुपयोंसे अपना जीवन-निर्वाह कर सकती हैं, फिर भी वे रात-दिन रुपये कमानेमें ही लगे हुए हैं। अब वे भजन कैसे कर सकते हैं? रुपयोंका सहारा भजनमें बड़ा भारी विघ्न है।

मेरी सभी भाई-बहनोंसे प्रार्थना है कि आप अपना एक उद्देश्य बना लें कि हमें तो आध्यात्मिक उन्नति करनी है और 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहते हुए भगवान्को पुकारें। यह बहुत ही उत्तम एवं लाभकी बात है।

'यतो धर्मस्ततो जयः'

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

'धृञ्' धातुसे निष्पन्न 'धर्म' शब्दका अर्थ धारण करना, पालन करना या आश्रय देना आदि है—'**धरति लोकोऽनेन, धरति लोकं वा, धरति विश्वम् इति, धरति लोकान्, ध्रियते वा जनैरिति।**' (अमरकोष १।६।३)

महर्षि कणादप्रणीत 'वैशेषिक दर्शन' में कहा गया है—'**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**'

'**धृ**' धातु धारण, पोषण और महत्त्वके अर्थमें प्रयुक्त होती है। इसी धातुसे 'धर्म' शब्द निष्पन्न हुआ है—'**धर्मेति धारणे धातुर्माहात्म्ये चैव पठ्यते। धारणाच्च महत्त्वेन धर्म एष निरुच्यते॥**' (मत्स्यपु० १३४।१७)

श्रुतिका डिंडिम उद्घोष है कि धर्म सर्वोत्कृष्ट है—'**धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान्बलीयाꣳसमाशꣳसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तꣳ सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति॥**' (बृहदारण्यक० १।४।१४)

अर्थात् धर्मसे उत्कृष्ट कुछ नहीं है, इसलिये जिस प्रकार राजाकी सहायतासे (साधारण कुटुम्बी पुरुष) अपनेसे अधिक बलवान्‌को पराभूत करना चाहता है, वैसे ही धर्मके द्वारा दुर्बल पुरुष भी बलवान्‌को जीतना चाहता है। जो धर्म है वह निःसंदेह सत्य ही है। इसीलिये सत्य बोलनेवालेको 'यह धर्ममय वचन बोलता है' तथा धर्ममय भाषण करनेवालेको कहते हैं 'यह सत्य भाषण करता है' क्योंकि ये दोनों धर्म ही हैं।

धर्म ही समस्त संसारकी स्थितिका मूल है—

'**धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा०**' (महानारायणोपनिषद्)

धर्मके प्रति आस्थाका अंकुश अगर मानव-समाजने स्वीकार न किया होता तो निश्चित जानिये कि मानवीय सभ्यता आज जीवित न होती। सभी कष्ट अधर्मके कारण हैं और अक्षय सुखका संयोग धर्मसे होता है।

अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम्।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम्॥

(मनु० ६।६४)

वैज्ञानिकतासे अभिभूत आधुनिक मस्तिष्कोंमें धर्मवाली बात सरलतासे प्रवेश नहीं कर पायेगी। उसके लिये आद्य शंकराचार्य और स्वामी रामतीर्थ-जैसी अनुभूति तथा पार्वती और मीरा-जैसा विश्वास चाहिये, जो यह मानते थे कि केवल बुद्धिपर ही मानव आश्रित नहीं है। इस विराट् शक्तिके समक्ष मानव इतना सूक्ष्मातिसूक्ष्म है कि 'अणु' कहना भी अतिशयोक्ति होगी। इन्द्रियजन्य अनुभूतिसे परे भी कुछ है, ऐसा मानना श्रेयस्कर है और वह है 'धर्म'।

विज्ञान एक शक्ति है, यह स्वीकार्य है। पर यह भी ध्रुव सत्य है कि विज्ञानके उपयोगका निर्देश धर्म ही कर सकता है। महर्षि चरकके वचन ध्यातव्य हैं—**अभिशापप्रभवस्याप्यधर्म एव हेतुर्भवति। ये लुप्तधर्माणो धर्मादपेतास्ते गुरुवृद्धसिद्धर्षिपूज्यानवमत्याहितान्याचरन्ति; ततस्ताः प्रजा गुर्वादिभिरभिशप्ता भस्मतामुपयान्ति०।** (च०वि० ३।२३)

अभिशापसे भी होनेवाले जनपदोद्ध्वंसका कारण भी अधर्म ही है। जब मनुष्योंकी धार्मिक भावना लुप्त हो जाती है, धन और शक्तिका मद बढ़ जाता है, तब वे पूज्य गुरु, वृद्ध, सिद्ध एवं ऋषियोंका तिरस्कार करते हैं और उनके अभिशापसे एक साथ समूल नष्ट हो जाते हैं।

धर्मवीर युधिष्ठिर आदि पाण्डव कौरवोंद्वारा दी गयी यातनाको भी सहते रहे। धर्मकी मर्यादाका निर्वाह भी करते रहे, पर प्रतिवाद नहीं किये, धर्म ही उनकी रक्षा करता रहा। परंतु महाभारतके युद्धमें रथका पहिया धँस जानेपर जब कर्ण अर्जुनको धर्मके लक्षण गिनाकर कर्तव्य समझाने लगता है—

प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणेऽथ कृताञ्जलौ॥
शरणागते न्यस्तशस्त्रे याचमाने तथार्जुन।
अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा॥
न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि शूराः साधुव्रते स्थिताः।

(महा० कर्ण० ९०।१११—११३)

अर्जुन! जो केश खोलकर खड़ा हो, युद्धसे मुँह मोड़ चुका हो, ब्राह्मण हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, हथियार डाल चुका हो, प्राणोंकी भीख माँगता हो, जिसके बाण, कवच और दूसरे-दूसरे आयुध नष्ट हो गये हों, ऐसे पुरुषपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शूरवीर शस्त्रोंका प्रहार नहीं करते।

तब श्रीकृष्ण स्वयं एक-एक अधर्मपूर्ण कृत्योंकी याद दिलाकर कर्णसे पूछते हैं—छलपूर्वक जुएके समय, भीमको विष देते समय, लाक्षागृहकाण्डमें, द्रौपदीचीरहरण एवं अभिमन्यु-वधके समय '**क्व ते धर्मस्तदा गतः?**' तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था।

यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि
किं सर्वथा तालुविशोषणेन।

(महाभारत, कर्ण० ९१।१२)

'यदि उन अवसरोंपर यह धर्म नहीं था तो आज भी यहाँ सर्वथा धर्मकी दुहाई देकर तालु सुखानेसे क्या लाभ?' सत्त्वहीन, प्राणहीन, अर्थहीन शब्दोंसे ऊपर उठनेका यह कितना बड़ा सामर्थ्य था श्रीकृष्णमें! धर्मके पाशको विच्छिन्न कर, धर्मके प्राणको विमुक्त करनेकी कैसी निर्भीक घोषणा थी! आज भी आश्चर्य होता है।

'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।'

(मनु० ८।१५)

अर्थात् धर्मकी रक्षा करनेपर वह रक्षक बन जाता है और उसका उल्लंघन करनेपर वही धर्म मार डालता है। यह सिद्धान्त कितना अटल है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

(विष्णुधर्म० ३।२५३।४४)

अर्थात् जैसा व्यवहार आपको अपने प्रति न रुचता हो, वैसा आप अन्यके प्रति भी न करें। नीतिधर्मकी यह उद्घोषणा परम कल्याणकारी है। आप दूसरोंके प्रति वैसा व्यवहार अवश्य करें, जैसा आप उनसे चाहते हैं। **'धर्मं चरत माऽधर्मम्'** अर्थात् सदैव धर्माचरण ही करो, अधर्माचरण कभी भी न करो—इस वचनका पालन करनेवाला सदा सुखी रहता है, उसके लोक-परलोक दोनों बन जाते हैं।

पुत्रशोकसे संतप्त गान्धारीको जब यह ज्ञात हुआ कि युधिष्ठिर अपने शत्रुओंका संहारकर मेरे पास आये हैं, तब गान्धारीने उन्हें शाप देनेकी इच्छा की—**'गान्धारी पुत्रशोकार्ता शप्तुमैच्छदनिन्दिता'**। किंतु सत्यवतीनन्दन महर्षि व्यास तो त्रिकालदर्शी ठहरे। वे दिव्य दृष्टिसे तथा अपने मनको समस्त प्राणियोंके साथ एकाग्र करके उनके आन्तरिक भावको समझ लेते थे।

दिव्येन चक्षुषा पश्यन् मनसा तद्गतेन च।
सर्वप्राणभृतां भावं स तत्र समबुध्यत॥

(महाभारत, जलप्रदानिकपर्व १४।५)

महर्षि उस स्थलपर पहुँच गये जहाँ गान्धारी और पाण्डव उपस्थित थे। वे गान्धारीसे बोले—

न कोपः पाण्डवे कार्यो गान्धारि शममाप्नुहि।
वचो निगृह्यतामेतच्छृणु चेदं वचो मम॥
उक्तास्यष्टादशाहानि पुत्रेण जयमिच्छता।
शिवमाशास्व मे मातर्युध्यमानस्य शत्रुभिः॥
सा तथा याच्यमाना त्वं काले काले जयैषिणा।
उक्तवत्यसि गान्धारि यतो धर्मस्ततो जयः॥

(महाभारत, जलप्रदानिकपर्व १४।७—९)

गान्धारराजकुमारी! शान्त हो जाओ, तुम्हें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर क्रोध नहीं करना चाहिये। अभी-अभी जो बात मुँहसे निकालना चाहती हो उसे रोककर मेरी बात सुनो। प्रतिदिन विजयकी कामनासे गत अठारह दिनोंसे तुम्हारे पास तुम्हारा पुत्र आकर कहता था—'माँ! मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करने जा रहा हूँ। तुम मेरे कल्याणहेतु आशीर्वाद दो।'

जब-जब भी विजयकी कामनासे दुर्योधन समय-समयपर तुमसे प्रार्थना करता था, तब-तब तुम सदा यही उत्तर देती थी कि—'जहाँ धर्म है, वहीं विजय है।' क्या पाण्डवोंकी विजयके बाद भी तुम्हें विश्वास नहीं कि पाण्डवोंमें धर्मका बल सर्वाधिक है—**'नूनं धर्मस्ततोऽधिकः'**।

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्॥

(वा० रा० ३।९।३०)

अर्थात् धर्मसे अर्थ प्राप्त होता है, धर्मसे सुखका उदय होता है तथा धर्मसे सब कुछ पाया जा सकता है। इस संसारमें धर्म ही सार है।

प्राणोंपर संकट भले ही आ जायँ, फिर भी अपने धर्मपालनसे डिगना नहीं चाहिये—

'न धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।'

मैंने राजस्थानके चूण्डावत, शेखावत, हाड़ा, राठौर, राणा और सिसौदिया-जैसे परिवारोंमें घरोंके प्रवेशद्वारपर आज भी **'धर्मो रक्षति रक्षितः'** का रूपान्तर ***'जे दृढ़ राखे धर्म ने, तेहि राखे करतार'*** सुभाषित लिखा हुआ देखा है।

धर्म ही कामधेनुके समान सारी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला है। संतोष स्वर्गका नन्दन-कानन और विद्या मोक्षकी जननी है, जबकि तृष्णा वैतरणी नदीके समान नरकमें ले जानेवाली है—

धर्मः कामदुघा धेनुः संतोषो नन्दनं वनम्।
विद्या मोक्षकरी प्रोक्ता तृष्णा वैतरणी नदी॥

(बृहन्ना० पु० २७।७२)

धर्मराज युधिष्ठिरने ओघवती नदीके तटपर शर-शय्यापर लेटे हुए पितामह भीष्मजीसे पूछा—'पितामह! सर्वोत्तम धर्मका जीवनोपयोगी उपदेश देनेकी कृपा करें।' उन्होंने उत्तर दिया—

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा॥

अर्थात् मुझे तो सर्वोत्तम धर्म यही लगता है कि मनुष्य सदा भक्तिपूर्वक कमल-दल-नयन श्रीमन्नारायणकी स्तवमयी सपर्या—अर्चा, पूजा करता रहे।

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ९१५ से आगे]

अमानिना मानिदेन तृणादपि सुनीचेन।

दीनता, आत्म-चिन्तन, श्रीसद्‌गुरु-सेवा—इन तीनन कूँ जो करि लेगौ, वाकूँ कोई रोक नहीं सकै। यमराज हू वाकूँ दूरि सौं ही हाथ जोरि देय है।

साधक केवल साधनमें जुट जाय और कोई संकल्प न बनावै तौ माया कौ भय नहीं रहै है। साधनमें अपूर्व शक्ति है।

साधन ही साधन कूँ बढ़ावै है, साधन ही साधक कूँ सँभारै है और साधन ही साध्य सौं मिलावै है।

एक हू क्षण साधन सौं अवकाश न मिलै, यह है साधनकी सँभार।

शरीरके काम हू विवश है कैं ही करने परैं, तब माया हाथ नहीं मारै है। क्यौंकि अवकाश ही नहीं है।

इच्छा एक ही बनै कि साधन ठीक बनि जाय।

रुग्णावस्थाके कारण यदि भजनमें बाधा आवै तौ औषधि लै ले।

साधनके ताँईं आहारकी सँभार करनी ही परैगी।

योग्य शिष्य शरणमें आयवे पै संकल्प बनैं कि यह याही जन्ममें पार है जाय। यह श्रीसद्गुरुकी विशेषता है।

सरलता, विनम्रता, उदारता, क्षमाशीलता—ये साधुताके भूषण हैं। इनकूँ धारण करि लियौ तौ एक ही जन्ममें बेड़ा पार और बड़े-बड़ेनकी कृपा स्वतः प्राप्त है जायगी।

यदि सुख भोगिवेकी, आरामकी, सुविधाकी कामना बनी तौ माया फँसाय लेगी। यदि कछु कामना है तौ अवश्य ही फँसैगौ। जहाँ कामना होय है, माया वहीं हाथ मारै है।

जितनौं त्याग-वैराग होयगौ, पीछें चलिकैं भोग्य उतनौं ही बढ़ि जायगौ। जैसें ज्वर उतरि जायवेके पीछें आहार अधिक करनौं परै है। ठीक यही दशा ऊपरी त्याग-वैरागकी होय है। यासौं बचिवेकौ केवल एक ही उपाय है, जाकूँ अंग्रेजीमें कहै हैं **Only**—काहू संत कौ दृढ़ आश्रय। फिर अपने मन सौं कछु न करै।

सदैव अपनेमें देखै—हमारौ मन का चाहै? हमारी कामना का है? माया सौं बचिवे कौ उपाय है केवल एक। प्रतिज्ञा बनि जाय कि—जो करै, जो कहै, जो सुनै, जो देखै, जो बिचारै, सब कछु इनके ताँईं ही होय।

यदि साधन केवल इनके ताँईं ही है तौ माया हाथ नहीं मारैगी। कामना न हैवे पै ही माया-राज्य सौं निकारि सकै है। यदि कहूँ कठिनाई आवैगी तौ जाकौ दृढ़ आश्रय है, वही सँभारि लेगौ, बचाय लेगौ—

'रीझत राम सनेह निसोतें।'

या पथमें इनपै दबाव डारनौं नहीं है। इनकौ भजन केवल इनके ताँईं।

इनके ताँईं हू, इनपै दबाव नहीं। केवल कर्तव्य-पालन! कर्तव्य-पालन पै ही जोर दियौ गयौ है।

इनके यहाँ चूक नहीं है, हमारे हितकी बात ये हम सौं अधिक जानैं हैं। इन्हैं हम न सुझावैं। न संत पै दबाव डारैं, न श्रीभगवान् पै। अपने कर्तव्य-पालन पै ही पूरौ ध्यान राखैं।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

जीव कौ केवल इतनौं ही अधिकार है कि वह अपनौं कर्तव्य-पालन करै। संतकी जीवनी सौं देखैं कि ये कैसे रहे। इनसौं रहनी सीखै। प्रेम-पथमें दबाव नहीं है। याचना नहीं है।

सबकौ सार है एक—काहू संत कौ दृढ़ आश्रय। न अपने मन सौं यह, न अपने मन सौं वह! जैसे संत चलावैं—क्रमशः वैसैं ही चलतौ रहै। बस, खेल-खेलमें बनि गयौ काम।

चलते-चलते—ठीक चलते-चलते हू, जो रुकि जायँ तौ वाकौ कारण है यह कि या तौ श्रीसद्‌गुरु नहीं मिले

अथवा श्रद्धा नहीं भई। श्रद्धा शिथिल हैवे पै ही साधक रुक जाय है।

प्रथम-प्रथम संतनमें भाव बनै, तब आगे कौ मार्ग सुलभ। मोहके मिटायवे कौ एक ही उपाय है, इनमें प्रेम बनै। याकौ दृढ़ संकल्प। ज्यौं-ज्यौं प्रेम बढ़ैगौ, मोह मिटतौ जायगौ, दोऊ एक साथ नहीं रह सकैं हैं।

—यहाँ श्रीकुम्भनदासजीके पुत्रकी मृत्यु कौ उदाहरण दियौ और कही कि जा वनमें सिंह रहैं हैं, वहाँ कोई नहीं रह सकै है। ऐसें ही जा अन्तःकरणमें प्रेम-देवता विराजे हौयँगे, वा अन्तःकरण में मोह आदिक टिक ही नहीं सकैं हैं।

सुग्रीवजीके द्वारा कही भई ये द्वै चौपाई बड़े ही काम की हैं—

नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥

इनकौ भाव स्पष्ट ही है कि यदि काम, क्रोध, लोभ—इन तीनन सौं बचि जाय, तौ जीव ही ईश्वर बनि जाय है। इनसौं प्रतिज्ञा करि-करिकैं बचै तौ एक ही जन्ममें बेड़ा पार।

संकल्प कोई न उठैं। यदि उठैं ही तौ केवल इनके ताँईं ही उठैं। जबतक संकल्प बंद नहीं हौयँगे, तबतक आवागमन हू बंद नहीं होयगौ। ये विश्व केवल संकल्प ही तौ है। जो-जो संकल्प बनते गये, वे सब आज दीखि रहे हैं। यदि इनकौ संकल्प बनतौ, तौ ये हू मिलते।

शास्त्र-बिहित ऐसौ कोई सद्गुण न होय, जो प्रेम-पथके पथिकमें नहीं होय। अर्थात् समस्त सद्गुण प्रेमीमें कूटि-कूटिकैं भरे भये हौने चहिएँ।

बुलायकैं घटना सुनायी, बोले कि—केवल सुनिवेके ताँईं ही नहीं है, बल्कि अपने सीखिवेके ताँईं है।

एक बहुरूपिया राजाके दरबारमें पहुँच्यौ। राजाने वासौं कही कि तुम हमें भुलावामें डारिकैं अपनौं नाटक करौ, तब तौ हम जानैं। बहुरूपिया हँसतौ भयौ सिर झुकायकैं चल्यौ गयौ। कछु दिना पश्चात् एक दिव्य संन्यासी कौ रूप धरिकैं सहसा राजदरबारमें उपस्थित है गयौ। संन्यासी-संत कूँ देखिकैं, राजाने तुरंत सिंहासन सौं उतरिकैं, संत कौ अभिवादन कियौ। दण्डवत् प्रणाम करिकैं, राजसिंहासन पै विराजमान कियौ। विधिवत् पूजन कियौ। भोजन करायकैं बहुत सौ धन दक्षिणामें श्रीचरणनमें अर्पित कियौ। संन्यासी महाराजने वह धन लैनौ तौ दूरि, स्पर्श हू तक नहीं कियौ और ऐसें ही उठिकैं चले गये। वेष उतारिकैं बहुरूपिया पुनः राजदरबारमें उपस्थित भयौ और राजा सौं बोल्यौ कि महाराज लाऔ मेरौ पुरुष्कार। राजाने पूछी, काहे बात कौ? बहुरूपिया बोल्यौ कि मेरे साँचे नाटक कौ, जो आपसौं पूर्वमें तय भयौ हो। आपने कही कि तुम हमकूँ भुलावामें डारि देहु, तब तौ हम जानैं। वह संन्यासी मैं ही तौ हो, जो आपने राजसिंहासन पै बैठारिकैं पूजन-अर्चन कियौ हो। आप मेरे झूँठे नाटक कूँ साँचौ मानि बैठे। किंचित् हू नहीं पहिचान पाये। बहुरूपियाकी बात सुनिकैं राजा बहुत ही प्रसन्न भयौ और साथ ही प्रभावित हू भयौ। राजाने बहुरूपिया सौं पूछी कि आज तुम हम सौं पुरुष्कार माँगि रहे हौ, वाही समय क्यों नहीं लै लियौ हो। हमने तौ बहुत सारौ धन तुम्हारे चरणनमें अर्पित कियौ हो? उत्तरमें बहुरूपिया बोल्यौ कि महाराज! मैं वा समय संन्यासी हो। संन्यासी कौ धर्म और मर्यादापालन करिवेकी मेरी पूरी जिम्मेदारी रही। संन्यासी-वेष इतनौं पावन है कि जाकौ स्मरण करिवे मात्र सौं ही अन्तःकरणमें पवित्रता कौ संचार हैवे लगि जाय है। विकार कोसन दूरि भागि जायँ हैं। ऐसे परम पावन वेषकी आन-मान-मर्यादा कूँ मैं कैसें बिगार सकै हो। याही कारण मैंने वा समय आपकौ दियौ भयौ द्रव्य नहीं लियौ हो। बहुरूपियाकी बात सुनिकैं राजा अत्यन्त प्रसन्न भयौ और जो धन संन्यासी-वेषधारी बहुरूपिया कूँ अर्पित किया हो, वह सब-कौ-सब वाकूँ दे कैं विदा करि दियौ।

अब यहाँ सीखिवेकी बात है यह कि—जब बहुरूपियातक या वेषकी आन-मान-मर्यादाकी रक्षा करें हैं तौ हम लोगन कौ कितनौं उत्तरदायित्व बनै है, अपने वेषकी पूरी-पूरी रक्षा करिवे कौ। अर्थात् हमारौ पूरौ-पूरौ उत्तरदायित्व है। **(क्रमशः)**

उत्साह

(डॉ० श्रीप्रकाशसिंहजी बी० एस्-सी०, एम्० बी० बी० एस्०)

जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके सभी साधनोंमें उत्साहका प्रमुख स्थान है। इसके बिना अपनी उन्नतिके किसी भी कार्यक्रममें आप सफल नहीं हो सकते या यों कहिये, उत्साहका सहारा लेकर ही अपने परिश्रमका आप पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। जीवनमें आप जो कुछ भी करना चाहें—एकाग्रताका पाठ पढ़ना चाहें, अथाह शक्ति अर्जित करना चाहें अथवा आत्मोन्नति करना चाहें—सभीमें उत्साह आपको कार्यशील बनाता है, कार्यरत रखता है और उन्नतिकी ओर अग्रसर करता है। किंतु यह उत्साह क्षणिक नहीं बल्कि स्थायी होना चाहिये।

उत्साह बड़ा ही प्रेरणाप्रद है। बिना उत्साहके बड़े ही प्रभावशाली तर्क-वितर्क भी आपको कार्यशील नहीं बना सकते। किसी भी कार्यमें यदि आप श्रेष्ठता प्राप्त करना चाहते हैं अथवा पदोन्नति करके शिखरपर पहुँचना चाहते हैं; चाहे वह आपका प्रिय व्यापार हो, आपका दैनिक कार्य हो या आपके अध्ययनका विषय हो तो इसके लिये आपको पहले अपनेमें उत्साह उत्पन्न करना पड़ेगा और फिर उस तीव्र उत्साहको बनाये रखना पड़ेगा।

उत्साहको उत्पन्न करने और बढ़ानेके कितने ही नियम हैं। आप उन नियमोंको पालन करनेका प्रयत्न कीजिये, सफलता आपकी दासी बनकर रहेगी। अपने विषयमें विशेषज्ञ बननेका प्रयत्न कीजिये। आप विद्यार्थी हों तो अध्ययनसे, चिकित्सक हों तो रोगियोंसे और चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तकोंसे या गायक हों तो गान-विद्या-विषयक अभ्याससे अनुराग उत्पन्न कीजिये। अपने कार्यसे एकाकार हो जाइये। अपने विषयकी गहराइयोंमें प्रवेश कीजिये तो उत्साह बढ़ता ही जायगा। उत्साह आपकी योग्यता और चातुर्यके साथ बढ़ता ही जायगा। जैसे ही किसी विषयमें आपका उत्साह कम होने लगे, उस विषयकी सूक्ष्मताओंकी खोजमें लग जाइये।

जो भी कार्य कीजिये, उसमें नया जीवन फूँक दीजिये, हँसते हुए, मुसकराते हुए कीजिये। सदा सर्वत्र आपके मुखपर आशा और उमंगकी छाप होनी चाहिये।

अपनी विफलताओंपर निराश न होइये, उनको बार-बार मस्तिष्कमें स्थान न दीजिये। विफलताएँ सफलताका रास्ता खोल देती हैं। अपनी सफलताओं और पूर्ण किये हुए कार्योंके विषयमें दूसरेसे बातचीत कीजिये; परंतु ध्यान रखिये कि अहंकारका भाव न आने पाये। अपने सौभाग्यके विषयमें दूसरोंको बताइये, अपनी विफलताओं और भूलोंके विषयमें दूसरोंको न बताइये। अपनी विफलताओं और भूलोंके विषयमें चुप, परंतु सावधान रहिये। आपका उत्साह दिन दूना रात चौगुना बढ़ेगा।

महापुरुषोंकी जीवनी पढ़िये, उनके-जैसे चरित्रवान् बननेका प्रयत्न कीजिये। नैपोलियनकी जीवनी पढ़िये जिसको आल्पस पर्वतने रास्ता दे दिया था और महाराजा रणजीतसिंहके जीवनसे प्रेरणा लीजिये जिन्हें बरसातमें बढ़ी हुई सिन्धु नदीने रास्ता दे दिया था। ये उत्साहके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

हमारी मानसिक स्थितिका प्रभाव हमारे शरीरपर पड़ता है और हमारी शारीरिक दशा हमारे मानसको प्रभावित करती है। उत्साह मुसकान, हँसी, लगन, शक्ति, ध्यान अथवा सावधानीके रूपमें प्रकट होता है। ये ही शक्तियाँ हमें सफलताकी ओर अग्रसर करती हैं। संसारके चित्रपटपर एक उत्साही पुरुषका अभिनय कीजिये। यथार्थ उत्साह स्वयमेव ऊपरकी शक्तियोंको प्रकट कर देगा।

जीवनके हर पहलूमें उत्साह ही मनुष्यको सामान्य या विशिष्ट बनाता है। एक विद्यार्थी, जिसके लिये विद्याध्ययन केवल कर्तव्य है, एक साधारण नागरिक ही बन पाता है, जब कि दूसरा विद्यार्थी यदि अपना कार्य साहस और उत्साहके साथ करता है तो महान् बननेकी योग्यता रखता है।

उत्साह आपके कार्यको उस प्रसन्नता और सफलतामें बदल देगा जिसकी आप बहुत दिनोंसे आशा लगाये बैठे थे। उत्साह ही सफलताका रहस्य है जो कि आपके गुणोंमें चार चाँद लगा देता है।

संतवाणी

(श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधन जीवन है और जीवन साधन है। साधन और जीवनका विभाजन असाधन है। असाधनके त्यागमें स्वत: साधन है। अब आप विचार करें कि जब जीवन ही साधन है तो उसका विभाजन हो ही कैसे सकता है? यदि हमें अपने जीवनमें और साधनमें दूरी मालूम होती है, भेद मालूम होता है तो इसका नाम ही असाधन है। असाधनका त्याग करना ही मानवका परम पुरुषार्थ है। यानी जिससे हमारी अभिन्नता नहीं हो सकती, जिससे हम अभिन्न नहीं हो सकते, उससे हम सम्बन्ध नहीं रखेंगे।

अब आप विचार करें कि जिसे आप असाधनके नामसे कहते हैं, क्या उससे आप अभेद हो सकते हो? कोई ऐसा मिथ्यावादी हो सकता है, जो सभीसे झूठ बोले और सदैव झूठ बोले? मेरे विचारके अनुसार संसारमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा। तात्पर्य क्या निकला? असाधनसे एकता नहीं हो सकती। तो जिससे हमारी एकता नहीं हो सकती, उसका हमें त्याग करना है।

अच्छा, क्या कोई व्यक्ति ऐसा कह सकता है कि शरीर और संसारकी वस्तुओंसे अपना विभाजन नहीं होगा? आपको पता है कि नहीं, एक बेचारेके एक हाथकी अँगुलियाँ कट गयीं और एक हाथ कोहनीसे कट गया। बताइये, यह कोई हमारे-आपके वशकी बात है? इससे यह सिद्ध हुआ कि हाथसे हमारा नित्य-सम्बन्ध नहीं रह सकता, शरीरसे हमारा-आपका नित्य-सम्बन्ध नहीं रह सकता।

तो जिससे नित्य-सम्बन्ध नहीं है, जिससे एकता नहीं हो सकती, उसके साथ एकताका भाव स्वीकार करना, यह क्या हुआ? यह असाधन हुआ। अब इसी दृष्टिकोणसे आप और हम अपने-अपने जीवनको देखें और विचार करें कि हमारा नित्य-सम्बन्ध किससे हो सकता है? किसी दोषके साथ किसी भी दोषीका नित्य-सम्बन्ध नहीं है। यदि नित्य-सम्बन्ध है तो बताओ वर्तमानमें क्या दोष है? आप जिस दोषके सम्बन्धमें कहेंगे, वह भूतकालका होगा। उसीके आधारपर आप अपनेको वर्तमानमें दोषी मानेंगे?

आप कहेंगे, क्या बतायें प्रीति जाग्रत् नहीं होती! क्यों नहीं होती, इसपर थोड़ा विचार करें तो आपको मालूम होगा कि प्रीति तो जीवनमें है। लेकिन किस वेषमें है, यह देखना है। जिसे आप दोष कहते हैं, यह भी किसीकी प्रीति है। जैसे वस्तुकी प्रीतिका नाम लोभ हो गया, किसी व्यक्तिकी प्रीतिका नाम मोह हो गया और किसी परिस्थितिकी प्रीतिका नाम काम हो गया। लेकिन किसी भी वस्तुसे इतनी प्रीति नहीं है कि उसके बिना न रह सकें। यदि ऐसा होता तो सुषुप्ति कभी नहीं स्वीकार करते।

जब हम चौबीस घण्टेमें कुछ समयके लिये सुषुप्ति स्वीकार करते हैं तो इससे सिद्ध होता है कि जाग्रत् और स्वप्नमें जो व्यक्ति है, जो वस्तुएँ हैं, जो अवस्था है, उनका वियोग आपको अभीष्ट है। जब किसी भी व्यक्तिसे, किसी भी वस्तुसे हमारा-आपका नित्य-सम्बन्ध रह ही नहीं सकता, तब केवल इतना ही प्रश्न रह जाता है कि वस्तुका सदुपयोग करें और व्यक्तिकी सेवा करें।

जिस वक्त आप वस्तुका उपयोग करने चलते हैं, उस समय वस्तुके संग्रहकी जो बात सोच लेते हैं, बस यही असाधन आ गया। कितने साधक ऐसे हैं, जो ईमानदारीसे कह सकते हैं कि वस्तु सदुपयोगके लिये है, संग्रहके लिये नहीं, ऐसे विरले ही होंगे।

प्राप्त वस्तुका सदुपयोग करनेमें साधकका अधिकार रहा है। संग्रह करनेकी रुचि कभी किसी साधकमें नहीं हुई, चाहे वह भक्त हो और चाहे वह संत हो। हमें और आपको यह देखना है कि जब हम साधन करने बैठते हैं तो हमारे मनमें संग्रह करनेकी रुचि है या नहीं। संग्रहकी रुचि कभी भी प्रीति जाग्रत् नहीं होने देती।

प्रीतिका क्रियात्मक रूप सेवा और विवेकात्मक रूप त्याग है। प्रीतिका जो भावात्मक रूप है वह है स्मृतिका उदय होना, विरहका उदय होना, मिलनका रस मिलना— यह सब प्रीतिका भावात्मक रूप है। तो भाई, प्रीतिका जो भावात्मक रूप विरह है, उसीसे शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि सब छक जाते हैं, जिससे रसकी वृद्धि होती है। वह तभी होती है, जब संग्रहकी रुचि लेशमात्र भी नहीं रहती।

संग्रहकी रुचि वस्तुसे सम्बन्ध नहीं तोड़ने देती और वस्तुका सम्बन्ध उदारताका उदय नहीं होने देता। देखिये, वस्तुसे कोई हानि नहीं होती। वस्तुका जो सम्बन्ध है, वह

उदारताका अपहरण कर लेता है। जब उदारता जीवनमें नहीं रहती तब नीरसता बनी रहती है।

एक बारकी घटना है। मैं ट्रेनमें बैठा था। उस समय अकेले रहनेपर मैं मार्गव्ययके लिये पैसे रखता था। ऐसा गुरुदेवका आदेश था कि बिना टिकट मत चलना। पुराने संतोंमें दिखावा होता ही नहीं था। ऐसा नियम था कि यदि जाना जरूरी है तो पैसा ले लो और टिकट खरीद लो। पैसेका काम तो करें और पैसे न रखें। यह भी त्यागका एक अनोखा ढंग है कि काम तो करें हजारों रुपयेका और कहें कि महाराजजी तो पैसे रखते ही नहीं। मैं उनमेंसे पहले नम्बरका आदमी हूँ।

तो उस दिन महाराज, टिकट-कलेक्टर एक आदमीको टिकट न होनेकी वजहसे तंग कर रहा था। जब वह तंग करता था तो मेरे मनमें बार-बार यह बात आती थी कि पैसे देकर उसका टिकट बनवा दूँ। फिर मैं सोचता था कि अगर मैं इसको पैसे दे दूँगा तो मुझे फिर किसीसे पैसे माँगने पड़ेंगे। पुराने संत लोग कभी इस बातको पसंद नहीं करते थे। मैंने सोचा कि इतनी तकलीफ मुझे क्यों हो रही है? तो मालूम हुआ कि मुझे इसलिये तकलीफ हो रही है कि मेरे पास पैसे हैं। अगर मेरे पास पैसे न होते तो मुझे कभी तकलीफ न होती।

आप लोग अपने दिलको टटोलें कि जिनके पास संग्रह है, क्या सचमुच उन्हें दुःखियोंका दर्शन नहीं होता? दिन-रात होता है, महाराज! अपनी अयोग्य संतानके लिये रखे रहते हैं, योग्य अधिकारीको नहीं देते। यह क्या है? उदारता नष्ट हो गयी। उदारताका तो अर्थ यह है कि जब दुःखीपर दृष्टि पड़े तो आपका हृदय करुणित हो जाय। करुणाका अर्थ यह है कि आप अपना सुख बाँटनेके लिये विवश हो जायँ और सुखीपर दृष्टि पड़े तो चित्त प्रसन्न हो जाय।

यह बताया जाता है कि योग करनेसे पहले चित्त प्रसन्न होना चाहिये। जो सुखियोंको देखकर प्रसन्न नहीं होता, उसे प्रसन्नता कहाँसे मिलेगी? तो कहनेका मेरा तात्पर्य यह था कि संग्रहकी रुचिने उदारताका अपहरण कर लिया। उदारताका अपहरण होनेसे चित्तको जो द्रवीभूत रहना चाहिये था, उसमें सख्ती आ गयी। सख्ती माने, दुनियाके दुःखको देखकर सहते रहना।

कोई कहे हम सबका दुःख तो नहीं मिटा सकते। यह बात ठीक है। लेकिन जितने अंशमें मिटा सकते हो, उतना भी नहीं मिटाते और बुद्धिपूर्वक यह निर्णय कर लेते हो कि हमारे पास जो धन है, उसका अच्छा-से-अच्छा उपयोग करना भी हमें ही आता है।

मैं आपसे निवेदन कर दूँ कि भाई, जिसके पास धन होता है, उसे धनका सदुपयोग करना नहीं आता। आप कहेंगे कि यह बात बिलकुल झूठी है। लेकिन यह बात शत-प्रतिशत सच्ची है। धनका संग्रह करनेकी सामर्थ्य जिसमें होती है, उसमें धनका सदुपयोग करनेकी योग्यता नहीं होती, ऐसा नियम ही है।

यदि सदुपयोग करना आ जाय तो वह संग्रह कर ही नहीं सकता। इसलिये उपयोग हमेशा दूसरोंके द्वारा ठीक होता है। हाँ, एक बात है कि यदि संग्रह करते समय भावना यह है कि जो हम संग्रह कर रहे हैं, भगवत्-सेवाके लिये, कर रहे हैं, विश्वसेवाके लिये कर रहे हैं, दुःखियोंकी सेवाके लिये कर रहे हैं, तब तो संग्रह करना भजन हो सकता है। लेकिन संग्रह करनेके बाद उपयोग करना भी हमको ही आता है, दूसरोंको नहीं आता; ऐसा मानना भारी भूलकी बात है। इसमें बहुत-से लोग धोखा खा जाते हैं और वस्तुसे मनुष्यका मूल्य कम कर देते हैं। वस्तुसे श्रमका मूल्य तो कम कर ही देते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि सही काम करनेवाले व्यक्ति आपको नहीं मिल पाते।

तो कहनेका मेरा तात्पर्य यह था कि जब हमारे जीवनमेंसे उदारता चली जाती है, तब हमारा हृदय द्रवीभूत नहीं रहता, करुणित नहीं रहता, सख्त हो जाता है। विचारशक्ति तो बनी रहती है, योग्यता बनी रहती है, विवेचनशक्ति बनी रहती है, लेकिन हृदय द्रवीभूत नहीं रहता। जब हृदय द्रवीभूत नहीं रहता तो मधुर स्मृति उदित नहीं होती। विचारशक्ति जो है, तर्कशक्ति जो है, वह निषेधात्मक साधनामें सहायक होती है। विचारशक्तिसे हम वस्तुओंसे सम्बन्ध तो तोड़ सकते हैं। किंतु हृदयके द्रवीभूत हुए बिना मधुर स्मृति उदित नहीं होती और उसके बिना प्रीतिका जो भावात्मकरूप विरह है, उसकी वृद्धि नहीं होती। (क्रमशः)

अध्यात्मरामायणमें भगवन्नाम-महिमा

(श्रीकैलासजी त्रिपाठी)

भगवान्‌का नाम, रूप, लीला तथा धाम—ये चारों सच्चिदानन्द हैं। इनमें भी भगवन्नाम प्रथम स्थानपर परिगणित है। भगवन्नामके अवलम्बनसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षसहित पञ्चम पुरुषार्थरूप भगवत्प्रेमकी प्राप्ति सहज ही हो जाती है। जिसने 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया उसने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदका अध्ययन कर लिया—'**ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः। अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥**' भगवन्नामको पुराण और श्रुतियोंका सार कहा गया है। '*अति पावन पुरान श्रुति सारा।*' उसी भगवन्नामकी महिमासे ओत-प्रोत 'अध्यात्मरामायण' अति पावन ग्रन्थ है। रामचरितकी यह अध्यात्मपरक गाथा ब्रह्माण्डपुराणमें उत्तरखण्डके अन्तर्गत पठित है। अस्तु, इसके रचयिता महामुनि वेदव्यासजी ही हैं। इस रामचरितगाथाको भगवान् शङ्करने अपनी प्रेयसी आदिशक्ति श्रीपार्वतीको सुनाया है—

आलोड्याखिलवेदराशिमसकृद्यत्तारकं ब्रह्म त-
द्रामो विष्णुरहस्यमूर्तिरिति यो विज्ञाय भूतेश्वरः।
उद्धृत्याखिलसारसङ्ग्रहमिदं संक्षेपतः प्रस्फुटं
श्रीरामस्य निगूढतत्त्वमखिलं प्राह प्रियायै भवः॥

(युद्धका० १६।४९)

अर्थात् भूतनाथ भगवान् शङ्करने बारम्बार समस्त वेदराशिका मन्थन करके यह निश्चय किया कि तारकमन्त्र 'राम' विष्णु भगवान्‌की गुप्त मूर्ति है। अतः उन्होंने समस्त वेदोंके सारका संग्रहरूप यह भगवान् रामका सम्पूर्ण गुप्त तत्त्व अपनी प्रिया श्रीपार्वतीजीको संक्षेपमें सुनाया।

उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि अध्यात्मरामायण भगवन्नामसे आप्लावित है। अध्यात्मरामायणमें आये भगवन्नाम-महिमासम्बन्धी कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं—

(१) भगवान् शङ्कर नामामृतके प्रेमी— अध्यात्मरामायणके बालकाण्डमें देवी अहल्या भगवान् रामके समक्ष भगवन्नाम-महिमाकी ओर संकेत करते हुए अपने उद्गार इस प्रकार व्यक्त करती हैं—

यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं
यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च।
यन्नामसाररसिको भगवान्पुरारि-
स्तं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि॥

(५।४७)

जिनके चरणकमलोंकी रजको श्रुतियाँ भी ढूँढ़ती रहती हैं, जिनकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलद्वारा ब्रह्माजी प्रकट हुए हैं तथा जिनके नामामृतके रसिक भगवान् शङ्कर हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीका मैं अपने हृदयमें अहर्निश ध्यान करती हूँ।

यहाँपर अहल्याके माध्यमसे भगवान् शङ्करको नामामृतका रसिक बताया गया है।

(२) भगवन्नामके आश्रयसे दुःख और शोकसे मुक्ति— जानकीजीके पाणिग्रहणके अवसरपर श्रीरामजीकी शरण ग्रहण करते हुए मिथिलापति महाराज जनक कहते हैं—

यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका
देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये॥

(बालका० ६।७५)

जिनके नाम-कीर्तनमें लगे रहकर देवगण दुःख और शोकको जीत लेते हैं, उन आपकी मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ।

यहाँ स्पष्ट संदेश है कि भगवन्नामका आश्रय लेकर हम दुःख और शोकको जीत सकते हैं।

(३) कलियुगमें कल्याणका एकमात्र साधन भगवन्नाम— श्रीरामके वनगमनके अवसरपर व्याकुल समाजको समझाते हुए श्रीवामदेवजी कहते हैं—

राम रामेति ये नित्यं जपन्ति मनुजा भुवि।
तेषां मृत्युभयादीनि न भवन्ति कदाचन॥
का पुनस्तस्य रामस्य दुःखशङ्का महात्मनः।
रामनाम्नैव मुक्तिः स्यात्कलौ नान्येन केनचित्॥

(अयो० का० ५।२६-२७)

संसारमें जो लोग नित्यप्रति राम-राम जपा करते हैं उन्हें किसी समय मृत्युके भय आदि नहीं होते। फिर उन महात्मा रामके लिये तो दुःखकी शंका कैसे हो सकती है? कलियुगमें तो एकमात्र राम-नामसे ही मुक्ति हो सकती है और किसी उपायसे नहीं।

यहाँ भगवन्नामके सम्बन्धमें दो बातें कही हैं—१. भगवन्नाम अभयप्रदाता है और २-कलियुगमें एकमात्र भगवन्नाम ही कल्याणका साधन है।

(४) नाम-स्मरणसे अन्त:करणकी निर्मलता—वनवासी श्रीराम वाल्मीकिजीके आश्रमपर पहुँचकर उनसे अपने रहनेहेतु स्थान पूछते हैं। तब वाल्मीकिजी भगवान्के रहनेके अन्यान्य स्थान बताते हुए यह भी कहते हैं—

त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मषाणां
सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे॥
(अयो० का० ६। ६३)

आपके नाम-संकीर्तनसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, उनके हृदयकमलमें सीतासहित आपका निवासगृह है।

यहाँ भगवन्नामके सम्बन्धमें यह भाव स्पष्ट है कि नाम-स्मरणसे पाप नष्ट हो जानेपर निर्मल हृदयमें आत्मस्वरूप श्रीभगवान्की स्वानुभूति प्राप्त होती है।

(५) नामकी महिमा अवर्णनीय—वाल्मीकिजी भगवन्नाम-महिमाके संदर्भमें भगवान् रामसे स्वानुभवयुक्त उद्गार प्रकट करते हुए इस प्रकार कहते हैं—

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम्।
यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान्॥
(अयो०का० ६। ६४)

हे राम! जिसके प्रभावसे मैंने ब्रह्मर्षिपद प्राप्त किया है आपके उस नामकी महिमाका कोई किस प्रकार वर्णन कर सकता है।

इतना कहकर वाल्मीकिजी आत्मकथा इस प्रकार बतलाते हैं कि पूर्वकालमें मैं किरातोंके साथ रहकर शूद्रोंके आचरणमें रत था। केवल जन्ममात्रकी द्विजातीयतायुक्त मुझ अजितेन्द्रियद्वारा शूद्राके गर्भसे बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। चोरोंके सङ्गसे मैं भी चोर हो गया। एक दिन घोर वनमें सप्तर्षियोंको जाते देख उनके वस्त्रादि छीननेकी इच्छासे 'रुको-रुको' कहकर मैं उनके पीछे दौड़ा। तब मुनीश्वरोंने मेरा अभिप्राय जानकर निर्भयतापूर्वक कहा कि एक बार अपने कुटुम्बियोंसे जाकर पूछो कि मैं प्रतिदिन जो पाप सञ्चित करता हूँ, उसके आपलोग भी भागी होंगे या नहीं? परंतु कुटुम्बियोंद्वारा पापभोगमें सहभागितासे मना कर दिये जानेपर मेरे मनमें प्रबल वैराग्य हो गया। तब मुनीश्वरोंकी शरण आनेपर उन्होंने आपके नामाक्षरोंको उलटा करके मुझसे कहा कि तू इसी स्थानपर रहकर एकाग्रचित्त हो हमारे आनेतक 'मरा-मरा' जपो। हे राम! इस प्रकार आपके नामके प्रभावसे मैं आज सीता और लक्ष्मणसहित आपको देख रहा हूँ। मैं निस्संदेह मुक्त हो गया।

(६) भगवन्नामसे विमुखोंको ही माया घेरती है—जब भगवान् श्रीराम सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमपर पहुँचे तब सुतीक्ष्ण मुनि भगवन्नाम-महिमासम्बन्धी अपने मनोभाव इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

त्वं सर्वभूतहृदयेषु कृतालयोऽपि
त्वन्मन्त्रजाप्यविमुखेषु तनोषि मायाम्।
त्वन्मन्त्रसाधनपरेष्वपयाति माया
सेवानुरूपफलदोऽसि यथा महीपः॥
(अरण्यका० २। २९)

आप समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं तथापि जो लोग आपके मन्त्रजपसे विमुख हैं उन्हें आप अपनी मायासे मोहित करते हैं और जो उस मन्त्रके जपमें तत्पर हैं उनकी माया दूर हो जाती है। इस प्रकार राजाके समान आप सबको उनकी सेवाके अनुसार फल देनेवाले हैं।

यहाँ स्पष्ट संकेत है कि मायासे वे ही मोहित होते हैं जो भगवन्नामसे विमुख हैं।

(७) भगवन्नाम-जपके सभी अधिकारी—मायामृग मारीचको भगवान् श्रीरामके द्वारा मारे जानेपर देवगण भगवन्नाम-महिमाके सम्बन्धमें परस्पर इस प्रकार कहते हैं—

द्विजो वा राक्षसो वापि पापी वा धार्मिकोऽपि वा।
त्यजन्कलेवरं रामं स्मृत्वा याति परं पदम्॥
(अरण्यका० ७। २४)

अर्थात् जो श्रीरामका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ते हैं वे ब्राह्मण हों या राक्षस, पापी हों या धार्मिक, परम पदको ही प्राप्त होते हैं।

(८) एक क्षणके नाम-जपसे समस्त पातकोंसे मुक्ति—सुग्रीव भगवान् श्रीरामकी स्तुतिके अनन्तर भगवन्नाम-महिमाकी अभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं—

राम रामेति यद्वाणी मधुरं गायति क्षणम्।
स ब्रह्महा सुरापो वा मुच्यते सर्वपातकैः॥
(किष्कि०का० १। ८४)

जिसकी वाणी एक क्षण भी राम-राम ऐसा सुमधुर

गान करती है वह ब्रह्मघाती अथवा मद्यपी भी क्यों न हो, समस्त पापोंसे छूट जाता है।

(९) नाम-स्मरणसे परम पदकी प्राप्ति—सम्पाती समुद्रतटपर वानरोंसे अत्यन्त दृढ़तापूर्वक भगवन्नाम-महिमाका उद्घोष करते हुए कहता है—

यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं
तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम्।
तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्य भक्ताः प्रिया
यूयं किं न समुद्रमात्रतरणे शक्ताः कथं वानराः॥

(किष्कि०का० ८।५५)

हे वानरगण! जिनके नामके स्मरणमात्रसे बड़े दुष्टजन भी इस अपार संसार-सागरको पार करके भगवान् विष्णुके सनातन परम पदको प्राप्त कर लेते हैं, आपलोग तो त्रिलोकीकी स्थिति करनेवाले उन्हीं भगवान् रामके प्रिय भक्तगण हैं। फिर इस क्षुद्र समुद्रको पार करनेमें क्यों न समर्थ होंगे?

(१०) मृत्युकालीन भगवन्नामकी महिमा—वाली मृत्युके समय श्रीरामसे भगवन्नाम-महिमासम्बन्धी अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त करता है—

यन्नाम विवशो गृह्णन् म्रियमाणः परं पदम्।
याति साक्षात्स एवाद्य मुमूर्षोर्मे पुरः स्थितः॥

(किष्कि० का० २।६७)

मरते समय विवश होकर भी जिनका नाम लेनेसे पुरुष परम पद प्राप्त कर लेता है वही आप आज इस अन्तिम घड़ीपर साक्षात् मेरे सामने विराजमान हैं।

महादेवजी पार्वतीजीको रामचरित सुनाते हुए कहते हैं कि समुद्र लाँघनेको उद्यत हनुमान्जी भगवन्नाम-महिमाके सम्बन्धमें इस प्रकार बोले—

प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत्स्मरन्॥
नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम्।
किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिकः॥

(सुन्दरका० १।४-५)

प्राण-प्रयाणके समय जिनके नामका एक बार स्मरण करनेसे ही मनुष्य अपार संसार-सागरको पारकर उनके परम धामको चला जाता है, फिर मैं उन्हींका दूत उनके अवयवरूप अँगुलीकी अँगूठी लिये उन्हींका ध्यान करते हुए समुद्रको लाँघ जाऊँ तो इसमें कौन-सी बड़ी बात है?

(११) नाम-जपसे समस्त बन्धनोंसे मुक्ति—मेघनादद्वारा हनुमान्जीको ब्रह्मपाशमें बाँध लिये जानेपर स्वयं व्यासजी भगवन्नाम-महिमाके सम्बन्धमें कहते हैं—

यस्य नाम सततं जपन्ति ये-
ऽज्ञानकर्मकृतबन्धनं क्षणात्।
सद्य एव परिमुच्य तत्पदं
यान्ति कोटिरविभासुरं शिवम्॥
तस्यैव रामस्य पदाम्बुजं सदा
हृत्पद्ममध्ये सुनिधाय मारुतिः।
सदैव निर्मुक्तसमस्तबन्धनः
किं तस्य पाशैरितरैश्च बन्धनैः॥

(सुन्दरका० ३।९९-१००)

अर्थात् जिनके नामका निरन्तर जप करनेवाले भक्तजन एक क्षणमें ही अज्ञानकृत बन्धनको काटकर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान उनके परम कल्याणमय पदको तत्काल प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं भगवान् रामके चरण-कमलोंको सदा अपने हृदयकमलमें धारण करनेसे हनुमान्जी समस्त बन्धनोंसे छूटे हुए हैं। उनका ब्रह्मपाश अथवा और किसी बन्धनसे क्या हो सकता है?

इसी प्रकार हनुमान्जीकी पूँछमें अग्नि लगाये जानेकी घटनाके सन्दर्भमें व्यासजीकी अभिव्यक्ति है—

यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापा-
स्तापत्रयानलमपीहि तरन्ति सद्यः।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः
सन्तप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन॥

(सुन्दरका० ४।४७)

जिनके नाम-स्मरणसे मनुष्य समस्त पापोंसे छूटकर तुरंत ही तापत्रयरूप अग्निको पार कर जाते हैं, उन्हीं श्रीरघुनाथजीके विशिष्ट दूतको यह प्राकृत अग्नि भला किस प्रकार ताप पहुँचा सकती थी?

(१२) भगवद्भजनसे परमधामकी प्राप्ति—कुम्भकर्ण रावणको समझाते हुए भगवान्के नामकी महिमा इस प्रकार कहता है—

रामं भजन्ति निपुणा मनसा वचसानिशम्।
अनायासेन संसारं तीर्त्वा यान्ति हरेः पदम्॥

(युद्धका० ७।६९)

जो लोग दिन-रात मन और वचनसे भगवान् रामका

भली प्रकार भजन करते हैं, वे बिना प्रयास ही संसारको पारकर श्रीहरिके परमधामको जाते हैं।

(१३) भगवत्-सम्बन्धसे संसार गोष्पदतुल्य—भगवान् रामद्वारा कुम्भकर्णके मारे जानेपर नारदजी भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—

त्वन्नाम स्मरतां नित्यं त्वद्रूपमपि मानसे॥
त्वत्पूजानिरतानां ते कथामृतपरात्मनाम्।
त्वद्भक्तसङ्गिनां राम संसारो गोष्पदायते॥

(युद्धका० ८।४६-४७)

जो लोग आपका नाम-स्मरण करते हुए रूपका हृदयमें ध्यान करते हैं, आपकी पूजामें तत्पर रहते हैं, आपके कथामृतका पान करते रहते हैं तथा आपके भक्तोंका सङ्ग करते हैं उनके लिये यह संसार गायके पदके समान हो जाता है।

(१४) नाम-जप करनेवालेको माया नहीं भासती—रावणके मरणोपरान्त देवगण भगवान् रामकी स्तुति करते हुए भगवन्नाम-महिमाकी अभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं—

त्वन्मायासंवृतानां त्वं भासि मानुषविग्रहः।
त्वन्नाम स्मरतां राम सदा भासि चिदात्मकः॥

(युद्धका० १३।७)

हे राम! जो लोग आपकी मायासे आच्छादित हैं उन्हें आप मनुष्यरूप प्रतीत होते हैं किंतु जो आपका नाम स्मरण करते हैं उन्हें तो आप सर्वदा चैतन्यस्वरूप ही भासते हैं।

(१५) भगवान् शङ्करद्वारा तारक ब्रह्म 'राम' नाममन्त्रका उपदेश—भगवान् शङ्कर श्रीरामकी स्तुतिके अनन्तर भगवन्नाम-महिमाके सम्बन्धमें इस प्रकार कहते हैं—

अहं भवन्नाम गृणन्कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥

(युद्धका० १५।६२)

प्रभो! आपके नामोच्चारणसे कृतार्थ होकर मैं अहर्निश पार्वतीसहित काशीमें रहता हूँ और वहाँ मरणासन्न पुरुषोंको उनके मोक्षके लिये आपके तारक मन्त्र राम-नामका उपदेश करता हूँ।

(१६) श्रीहनुमान्‌जीका नाम-प्रेम—अध्यात्मरामायणके युद्धकाण्डमें हनुमान्‌जीकी भगवन्नामप्रियताका एक सुन्दर प्रकरण आया है। रामराज्याभिषेकके समय करबद्ध खड़े हुए हनुमान्‌जीसे उनकी भक्तिके कारण अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् रामने कहा—हनुमन्! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हें जिस वरकी इच्छा हो माँग लो। तब हनुमान्‌जीने अत्यन्त हर्षित होकर उनसे कहा—

त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम॥
अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले।
यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम्॥

(१६।१२-१३)

हे श्रीरामजी! आपका नाम-स्मरण करते हुए मेरा चित्त तृप्त नहीं होता। अतः मैं निरन्तर आपका नाम-स्मरण करता हुआ पृथ्वीपर रहूँ। जबतक संसारमें आपका नाम रहे तबतक मेरा शरीर भी रहे। इसपर श्रीरामजीने कहा—तुम जीवन्मुक्त होकर संसारमें सुखपूर्वक रहो।

(१७) भगवन्नामप्रेमीको सान्तानिक लोककी प्राप्ति—अध्यात्मरामायणके अन्तमें आया है कि इस धराधामको छोड़कर स्वधाम जानेके समय श्रीरामने ब्रह्माजीसे कहा कि ये अयोध्यावासी एवं अन्य प्राणी—सब मेरे भक्त और मुझमें प्रीति रखनेवाले हैं। ये सभी मेरे साथ स्वर्गलोक जाना चाहते हैं। मेरी आज्ञासे आप शीघ्र वहाँ इनका प्रवेश करा दें। भगवान्‌के ये वचन सुनकर ब्रह्माजीने कहा—भगवन्! ये महापुण्यशाली लोग मेरे लोकसे भी ऊपर अत्यन्त दीप्तिशाली और विचित्र भोगोंसे सम्पन्न सान्तानिक लोकोंको प्राप्त हों। पुनः वे इस प्रकार कहने लगे—

ये चापि ते राम पवित्रनाम
गृणन्ति मर्त्या लयकाल एव।
अज्ञानतो वापि भजन्तु लोकां-
स्तानेव योगैरपि चाधिगम्यान्॥

(९।६३)

हे श्रीराम! और भी जो लोग मरनेके समय आपका पवित्र नाम लेंगे अथवा जो भूलकर भी आपका भजन करेंगे वे भी योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य उन्हीं लोकोंको जायँगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सम्पूर्ण अध्यात्मरामायण भगवन्नाम-महिमासे परिपूर्ण है।

संस्कृत-ग्रन्थोंमें न्याय और न्यायालय

(सप्त-आचार्य डॉ० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, डी०लिट्०, साहित्यरत्न)

भारतीय आर्ष वाङ्मयमें न्यायकी पूर्ण प्रतिष्ठा रही है, किंतु कालक्रमसे उसका स्वरूप नष्ट-सा हो गया है तथापि यहाँपर प्राचीन न्याय-पद्धतिका किञ्चित् विवरण दिया जा रहा है—

चार प्रकारके न्यायालय—प्राचीन संस्कृत-साहित्यके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि न्यायालय चार प्रकारके होते थे—(१) प्रतिष्ठित, (२) अप्रतिष्ठित, (३) मुद्रित तथा (४) शासित।

प्रतिष्ठित—जो किसी पुर या ग्राममें हो।

अप्रतिष्ठित—जो समय-समयपर नाना ग्रामोंमें अवस्थित हो।

मुद्रित—जो राजाके द्वारा नियुक्त हो और मुहर प्रयोगमें ला सके।

शासित—जहाँ राजा स्वयं बैठकर न्याय करे।

न्यायालयके अन्य नाम भी हैं—सभा (ऋक्० १। १२४। ७), धर्माधिकरण या अधिकरण (मृच्छकटिक ९; कादम्बरी ८५) और धर्मस्थान अथवा धर्मासन (वसिष्ठस्मृति १६। २)।

कादम्बरीमें राजप्रासादका विस्तृत वर्णन है और उसमें न्यायालयका भी वर्णन है। न्यायालयमें धर्माधिकारी लोग कुर्सीपर बैठते थे। वहाँ यह भी लिखा है कि उसमें वेत्रासनका प्रयोग होता था।

समय—न्यायालयका समय प्रातः ६। ३० बजेसे मध्याह्नपर्यन्त माना गया है। कौटल्यने दिनका दूसरा भाग उपयुक्त माना।

अवकाश—न्यायालयके अवकाशकी तिथि अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या और पूर्णिमा मानी गयी।

न्यायालय या सभाके दस अङ्ग—आचार्य बृहस्पतिने राजा, न्यायाधीश, सभ्य, स्मृतिशास्त्र, गणक (एकाउंटेंट), लेखक, सोना, अग्नि, जल तथा साध्यपाल (पुरुष)—ये दस अङ्ग माने हैं। न्यायाधीशको अधिकरणिक भी कहा जाता था और प्राज्वाक भी।

दो न्यायालय—राजाका न्यायालय और मुख्य न्यायाधीशका न्यायालय—ये दो न्यायालय होते थे। अर्थशास्त्रके प्रणेता कौटल्यने ग्रामकूट न्यायालयका उल्लेख भी किया है, जिसमें ग्रामके लोग चोरी करनेवाले तथा बेईमानको निष्कासित करते थे।

वकील होते थे—प्राचीन युगमें भी वकीलोंकी आवश्यकता थी, ये वादी-प्रतिवादीका अभिमतं स्पष्ट करते थे। इन्हें द्रव्य भी दिया जाता था। फौजदारीके केसमें न्यायालयमें कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। दण्डका प्रावधान था।

आसेध (Stay Order)—आसेध चार प्रकारके होते थे—१-स्थानासेध—घर जानेपर रोक, २-समयासेध—निश्चित समयतकके लिये रोक, ३-प्रवासासेध—यात्राका निषेध तथा ४-कार्यासेध—निर्माण-विक्री आदिका निषेध।

जमानतको प्रतिभूति, वादीको अर्थी, अभियोक्ता और प्रतिवादीको प्रत्यर्थी एवं अभियुक्त भी कहा जाता था।

मजिस्ट्रेटके लिये 'प्रदेष्टा' शब्द भी प्रचलित था।

स्त्रीप्रमाण—परम्पराएँ विभिन्न ग्रामोंमें उद्भावित हुई हैं, ऐसा धर्मशास्त्रके इतिहासमें प्रमाणित किया गया है। वहाँ यह भी लिखा है कि किस रीति और किस विधिका पालन करना चाहिये, इसके लिये लोगोंको स्त्रियोंसे पूछना चाहिये (आप०गृ०सू०)। आपस्तम्बने सर्वसम्मतिसे अनुमोदित आचरणके आधारपर कानून बनानेपर बल दिया है—

स्त्रीभ्यश्च सर्ववर्णेभ्यश्च धर्मशेषान् प्रतीयादित्येके।

(आप०धर्म० १। ७)

स्त्रियोंसे वे रीतियाँ पूछी जायँ जो शास्त्रोंमें उपलब्ध न हों। श्राद्ध एवं लौकिक क्रियाओंमें तो स्त्री प्रमाण हैं। इसे अन्य आचार्य भी स्वीकार करते हैं। भगवान् मनुका कहना है कि उस मार्गपर चलना चाहिये, जिसपर सज्जनोंके पिता-पितामह चलते आये हैं—

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥

(मनु० ४। १७८)

न्यायके नाम—नृपशास्त्र, दण्डनीति और अर्थशास्त्र—

ये समानार्थक हैं—

दमो दण्ड इति ख्यातस्तस्माद्दण्डो महीपतिः।
तस्य नीतिर्दण्डनीतिर्नयनान्नीतिरुच्यते॥

(शुक्रनीति १।१५७)

'दण्ड' शब्द उपशमनार्थक '**दमु उपशमने**' इस धातुसे बना है, जिसका अर्थ है उपशमन—नियन्त्रण या शासन करनेवाला। दण्डकी नीतिको दण्डनीति कहते हैं। नीतिका अर्थ है जो लोगोंको ले चले।

अर्थ—मानव-जीवन अथवा वृत्ति या मानवसे भरी पृथ्वी—यह 'अर्थ' कहलाता है। जो शास्त्र पृथ्वीकी प्राप्ति एवं संरक्षणका साधन है वह अर्थशास्त्र है। पृथ्वी सम्पत्तिका उद्गम-स्थल है। (कौ०अर्थ० १५।१)

अर्थशास्त्र-दण्डनीति—शिक्षा, भूमि, स्वर्ण, पशु आदिके निरूपणको अर्थकी संज्ञा दी गयी है और इनके विषय-विवेचनको 'अर्थशास्त्र' कहा गया है। प्रजाशासन एवं अपराध-दण्डको जिसमें विशिष्टता दी गयी उस शासन-शास्त्रको 'दण्डनीति' कहा गया। नीतिशास्त्र अर्थशास्त्रके महार्णवसे ही निकला है। मिताक्षराने अर्थशास्त्रको राजनीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्रका अभिन्न अङ्ग माना है। अर्थशास्त्र-राजनीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र—इनको सिद्धान्तरूपसे धर्ममार्गपर चलना चाहिये।

संस्कृत-ग्रन्थोंमें न्यायका वर्णन विस्तारसे उपलब्ध है। विशेषत: महाभारत—वनपर्व, सभापर्व, उद्योगपर्व, शान्तिपर्व, आश्रमवासिकपर्व, वाल्मीकीय रामायण—अयोध्याकाण्ड १५।६७—१००, युद्धकाण्ड १७।१८—६३; मनुस्मृति ७।९, अर्थशास्त्र, याज्ञवल्क्य, वृद्धहारीत, वृद्धपाराशरस्मृति, अग्नि, गरुड, मत्स्य, विष्णु, मार्कण्डेय, कालिकापुराण आदिमें तथा शुक्रनीति अभिलाषितार्थ, चिन्तामणि, युक्तिकल्पतरु, नीतिवाक्यामृत, बृहस्पतिसूत्र, कृत्यकल्पतरु, राजधर्म-कौस्तुभ, बुद्धनीति, कामन्दकीय नीति आदि परिगण्य हैं।

न्याय जो नामावशेष है—

प्रक्रान्ते साहसे वादे पारुष्ये दण्डवाचिके।
बलाद् भूतेषु कार्येषु साक्षिणो दिव्यमेव वा॥

(कात्या०मिता०२।२२)

प्रक्रान्तमें तथा साहस-हत्या और निक्षेप आदिमें यदि दोनों पक्ष सहमत हों तो दिव्य न्यायका आश्रय लिया जाता था। आचार्य शुक्रका कहना है कि सत्यके उद्घाटनमें जहाँ युक्ति असमर्थ हो वहाँ दिव्य शपथोंका प्रयोग करना उचित है; क्योंकि साधनहीन व्यवहारमें कठिनाई आनेपर महात्माओं तथा देवताओंने दिव्य शपथोंका प्रयोग किया था। वादी-प्रतिवादीकी परस्पर शुद्धिके लिये ही ये दिव्य शपथें होती हैं। इन दिव्य शपथोंको जो नहीं मानता था, वह धर्मतस्कर माना जाता था—'**स नरो धर्मतस्करः**' (शुक्रनीति ४।२३३)। वत्स ऋषि शुद्धिके लिये अग्निमें कूदे थे। वाल्मीकीय रामायणमें सीताकी अग्निपरीक्षा हुई थी। यही दिव्य न्याय है। आचार्य शुक्रने दिव्य परीक्षाद्वारा निर्णय करनेमें अग्नि, विष, तुला, जल, धर्म, अधर्म, चावल तथा शपथ—इन आठ साधनोंका निर्देश किया है। इनमें अग्नि, विष, तुला, जल—ये प्रधान हैं।

अग्निपरीक्षा—लोहा गरम करके शोध्य (अपराधी)-के हाथपर सात पत्तोंपर रखने तथा जलते अंगारोंपर कूदकर चलनेसे निशान न होनेपर शुद्ध माना जाता था। इसी प्रकार गरम लोहा जीभसे चटानेका प्रयोग भी होता था।

विषपरीक्षा—आचार्य शुक्रने बताया है कि विषका भक्षण करे या सर्पके बिलमें हाथ डाले और साँपके द्वारा काटे जानेपर भी विषका असर न हो तो निर्दोष है अन्यथा अपराधी।

तुलापरीक्षा—यज्ञीय काष्ठकी तुला बनवाकर देवपूजन करके अभियुक्तके मस्तकपर तुलसी-पत्ता बाँधकर तुलाके एक पलड़ेपर बैठाया जाता था और दूसरे पलड़ेपर ईंट-पत्थर रखा जाता। फिर न्यायाधीश कहता कि तुमने अमुक अपराध किया है; तुम यदि शुद्ध हो तो फिर बैठो । बैठनेपर, हलका होनेपर शुद्ध तथा भारी होनेपर अपराधी होना माना जाता था। बराबर आनेपर फिर एक प्रयास किया जाता था।

जलपरीक्षा—जलमें निश्चित समयके लिये पत्थरसे बाँधकर डालते थे, नहीं डूबनेपर निर्दोष माना जाता था। ईसाकी प्रारम्भिक शताब्दियोंमें यह न्याय जीवित था, ऐसा मृच्छकटिक एवं कादम्बरीसे पुष्ट है।

इसी प्रकार अपने इष्टदेवको स्नान कराये गये उत्तम

जल (चरणामृत)-का पान करके शपथ कराया जाता था कि 'मैंने अमुक अपराध नहीं किया है यदि किया हो तो मेरा विनाश कर दे।'

धर्म और अधर्मकी प्रतिमा सामने रखकर आँखोंमें पट्टी बाँधकर उठवायी जाती थी। यदि धर्मकी मूर्ति उठती तो निर्दोष और अधर्मकी मूर्ति उठती तो दोषी। ऐसे ही एक रुपयेभर चावलोंको चबवाया जाता था। यदि दोषी होता तो मुँहसे खून निकलने लगता था।

इनमें अपवाद भी थे। जैसे विष-प्रयोग ब्राह्मणके लिये वर्ज्य था। दिव्य शपथोंका वर्णन सभी प्राचीन देशोंमें किसी-न-किसी रूपमें मिलता है। अभिलेखोंमें भी इनका वर्णन मिलता है।

इस प्रकार यह दिव्य न्याय ग्रामोंमें अभी भी भगवान् या आराध्यके सम्मुख निर्वाचित पञ्चों—लोगोंके समक्ष शपथरूपमें जीवित है और तसमाष-तण्डुलके न्याय अभी लोक-संस्कृतिमें समाये हैं। रातको मिट्टीके बरतनमें चावल भिगोकर प्रातः अपराधीको निगलवाये जाते हैं। यदि मुखमेंसे खून आता है तो अपराध सिद्ध हो जाता है। संस्कृत-ग्रन्थोंमें न्यायका अर्थ है भगवान् विष्णु और न्यायालयका अर्थ है मन्दिर। इसीसे प्राचीन भारतीय परम्परामें सत्यरूपी न्यायकी सर्वत्र मान्यता थी। इसीलिये न कोई दण्ड था और न दाण्डिक—**'न दण्डो न च दाण्डिकः'**।

'शीलं सर्वत्र वै धनम्'

(श्रीरेवानन्दजी गौड़, एम०ए०, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ, व्याकरणाचार्य)

मनुष्यको इस लोकमें सुख-प्राप्तिसे ही संतुष्टि नहीं, परलोक-सुखकी उसे अधिक चिन्ता है। वह एक ऐसे धनकी चाहमें है, जो लोक-परलोक दोनोंमें सुखद हो। अतः वह भौतिकवादसे ऊबकर आध्यात्मिक जगत्का द्वार खटखटाता है, जहाँ उसे अन्तर्बोध होता है।

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः।
परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्र वै धनम्॥

(वल्लभदेवकृत सुभाषितावली ३०५३)

'परदेशमें विद्या, विपत्तिमें सद्बुद्धि, परलोकमें धर्म धन (सहायक) है, परंतु शील-सदाचार तो ऐसा धन है, जो लोक और परलोक दोनोंमें साथ देता है।' इस प्रकार शील सार्वभौम सुखका साधन सिद्ध होता है।

सुखी जीवनके लिये विद्या, बुद्धि, धन-जन-बलकी अपेक्षा उत्तम शीलकी अधिक आवश्यकता है। देखा जाता है कि धनवान्, बलवान् तथा विद्वान् भी शीलके अभावमें उद्दण्डवृत्तिके कारण अपमानित होते हैं और दरिद्र तथा अशिक्षित मनुष्य भी शीलवृत्तिद्वारा समाजमें पूज्य माने जाते हैं। शीलके अभावमें विद्वान् रावण राक्षसराज और शीलवृत्तिके कारण विभीषण भक्तराज कहलाये। इसीलिये भारतीय परम्परा उद्घोष करती है—

रामादिवद् वर्तितव्यं न क्वचिद् रावणादिवत्।

शीलके अभावमें विद्वान् ब्राह्मण भी मणिभूषित सर्पवत् त्याज्य माना गया है, उसका संसर्ग भी भयंकर है—

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः॥

(हितोपदेश १।८९)

शीलवान्‌को प्रचार, शपथ या बाह्याडम्बरमें विश्वास नहीं होता, शील स्वतः ही उसका उद्घोषक है। वह लोकैषणा और वित्तैषणाकी परिधिसे ऊपर उठकर सब भूतोंमें अपनेको और अपनेमें सब भूतोंको देखता है।

शीलयुक्त मनुष्यका स्वभाव सरल और शान्त होता है। उसके मन, वचन और कर्ममें एकरूपता होती है। उसका चिन्तन, मनन और दर्शन विलक्षण होता है। वह पर-कन्याको पुत्री, पर-युवतीको भगिनी और पर-नारीको मातृवत् देखता है। पर-धनको देखकर वह अपनी नीयत खराब नहीं करता, उसका दृढ़ विचार होता है—

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

(ईशावास्योप० १)

'किसी दूसरेके धनकी आकाङ्क्षा न करो।' उत्तम शील पुरुषकी परात्मक बुद्धिको छिपा देता है। उसके लिये

'मैं' और 'तू' रह ही नहीं जाता। उसे तो कीट-पतंग, पशु-पक्षी और जड़-चेतनमें अपने प्यारे प्रभुका दर्शन होता है। उसका 'स्व' संकुचित नहीं रहता। वह 'जीओ और जीने दो' में विश्वास रखता है, सह-अस्तित्वकी भावनामें विचरता है और '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' का प्रचार करता है।

वह अपने लिये नहीं, वरन् दूसरोंके लिये जीता है, मरता है। वह स्वर्गीय सुखकी अपेक्षा पीड़ितोंके पीड़ा-हरणको अच्छा मानता है, सबके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी हो उठता है। राजा रन्तिदेवने भगवान्से वरदान माँगा—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

मनुष्य-जीवनमें उत्तम शीलका बड़ा महत्त्व है। नम्रता और सहिष्णुता उत्तम शीलके दो अङ्ग हैं। नम्रता महत्ताका प्रतीक और सहिष्णुता मनुष्यताका सूचक है। पर-मत, पर-धर्म और पर-अभ्युदयमें सहिष्णुता एक महान् गुण है, परंतु अन्याय और स्वत्वापहरणमें सहिष्णुता महान् दोष है। तब यह कायरताका रूप धारण कर लेती है। भारत और पश्चिमी देशोंमें उत्तम शीलके कारण अनेक पुरुष अजर-अमर हो गये।

१—महाभारतके शान्तिपर्वमें एक अन्तर्बोध-कथा है। इन्द्र स्वयं ब्रह्मज्ञानी थे। एक समय वे अपने राज्यसे भ्रष्ट हो गये। तब उन्होंने अपने गुरु बृहस्पतिजीसे पूछा—'भगवन्! मेरा श्रेय किसमें है?' गुरुजीने कहा—'तेरा श्रेय आत्मज्ञानमें है।' इस उत्तरसे इन्द्रको संतुष्टि नहीं हुई तो बृहस्पतिजीने उन्हें शुक्राचार्यके पास भेज दिया। जब वहाँ भी उन्हें संतुष्टि न मिली तो शुक्राचार्यने कहा—'मैं इससे अधिक नहीं जानता, तुम प्रह्लादके पास जाओ।' अन्तमें राज्यभ्रष्ट इन्द्र ब्राह्मणवेशमें प्रह्लादके पास गये और उनके शिष्य बन गये। प्रह्लादने उपदेश दिया—'शील ही त्रैलोक्यका राज्य पानेकी सच्ची कुंजी है और यही श्रेय है।' इन्द्रके सेवा-भावसे प्रसन्न होकर प्रह्लादने कहा—'**वरं ब्रूहि**'। इन्द्र बोले—'आप मुझे अपना शील दे दीजिये।' प्रह्लादके 'तथास्तु' कहनेपर शीलके साथ ही धर्म, सत्य, व्रत, श्री, ऐश्वर्य आदि सब गुण उनके शरीरसे निकलकर इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हो गये। फलतः शीलके कारण इन्द्र अपना राज्य पा गये।

२—सुकरात एक विचारक थे। उन्हें मारनेके लिये जहर पीसा जा रहा था। उनके मित्रोंके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। परंतु वे चुपके-से बाहर जाकर जहर पीसनेवालेसे बोले—'मालूम होता है, तुम नये हो। तुमने कभी पहले जहर पीसा नहीं, तुम्हें इस दिशामें अनुभव नहीं, हाथ जल्दी चलाओ, देर न करो।' वह आदमी बोला—'जिंदगीभर यही काम करता रहा हूँ। न मालूम कितनोंको जहर दे चुका, परंतु तुम-जैसा सदाचारी, शीलवान् आदमी देखनेमें नहीं आया।' सुकरातको जहर दिया गया, कुछ देरतक वे होशमें रहे और बोले—'जहरके प्रभावसे जंघाओंतक मेरे पैर मर गये। हाथ मर गये, परंतु मित्रो! मैं अभी भी जिंदा हूँ। मेरे भीतर मेरा शील है, वही मेरा आत्मा है। जो अजर-अमर है, वह विषसे, शस्त्रसे नहीं मरता—**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।** (गीता २।२३)

३—क्राइस्ट जीससको शूली दी गयी। वे चिल्लाये नहीं, रोये नहीं, बल्कि हँसे और मुसकराये! उनके हाथोंको कीलोंसे गोंदा गया, पैरोंको छेदा गया, नंगे गातसे लहू टपकने लगा; फिर भी उनके मुँहसे निकला—'परमात्मा! क्षमा कर देना इन लोगोंको; क्योंकि ये नासमझ हैं—ये मेरे धर्मको, विचारको, शीलको मारना चाहते हैं। शील मेरे जीवनका सम्बल है। वह सदा मेरे साथ है और सदा साथ रहेगा।'

४—मंसूर अपनी शील-रक्षाके कारण ही बलिदान हो गये, उनके हाथ-पाँव काटे गये, आँखें फोड़ी गयीं, गर्म-गर्म शलाकाओंसे उन्हें बींधा गया, परंतु उनके होंठोंपर उफ़तक नहीं! वे मुसकराये और बोले कि 'जिस शीलके कारण मैं मारा जा रहा हूँ, वही शील मुझे शक्ति और साहस दे रहा है। माननीय गोखले, लोकमान्य तिलक, न्यायाधीश रानाडे, जमशेदजी, गाँधीजी और मालवीयजी इन्हीं शील-स्वभावोंके कारण महान् एवं देशरत्न बन गये।

परिवारमें कैसे रहें ?

पतिके लिये पत्नी भी तीर्थ

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

भगवान्ने अपने सनातन विधानमें नारी जातिको पूजनीय माना है। मनुजी लिखते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

(मनु० ३।५६)

अर्थात् जहाँ नारियोंकी पूजा होती है, वहाँ देवताओंकी कृपादृष्टि बनी रहती है और जहाँ उनकी पूजा नहीं होती, वहाँ देवताओंकी कृपादृष्टि न होनेसे समस्त यज्ञादि क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

पद्मपुराणमें पितृतीर्थ और गुरुतीर्थके बाद पत्नीतीर्थ शब्दका प्रयोग किया गया है। भगवान् विष्णुने राजा वेनके पूछनेपर कहा कि राजन्! तुमने पूछा कि माता-पिता और गुरु—ये सभी तीर्थ कैसे हैं, इस विषयको विस्तारसे बतायें। इन तीर्थोंमें पहले मैं तुमसे पत्नी-तीर्थकी बात बताता हूँ। इस सम्बन्धमें एक इतिहास सुनो—

(क) कृकल वैश्यकी कथा

काशी नामकी नगरीमें कृकल नामके एक वैश्य रहते थे। उनकी पत्नी परम साध्वी थी। उसका नाम था सुकला। वह शुद्ध स्वभाववाली अत्यन्त सुन्दरी थी। उसके पति कृकल भी सर्वज्ञ, धर्मज्ञ, गुणी, विवेकशील एवं उत्तम स्वभावके थे। वे प्रायः लगनसे पुराणोंकी कथाएँ सुना करते थे। उन्होंने सुना था कि तीर्थोंका सेवन बहुत ही पुण्यप्रद एवं कल्याणप्रद होता है। इससे प्रभावित होकर उनके मनमें तीर्थोंके प्रति श्रद्धा हो गयी। एक बार कुछ ब्राह्मण और व्यापारी तीर्थयात्रापर जा रहे थे। कृकलको यह एक अच्छा अवसर प्राप्त हुआ कि वे भी उनके साथ तीर्थयात्रापर जायँ। जब उनकी पत्नी सुकलाने सुना कि मेरे पतिदेव तीर्थयात्रापर जा रहे हैं तो उनके भावी वियोगसे वह विकल हो उठी और बोली—स्वामिन्! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ। अतः प्रत्येक धार्मिक कृत्य आपके साथ रहकर करनेका मेरा अधिकार है। मैं भी आपके साथ तीर्थयात्रापर चलूँगी और आपकी सेवा करूँगी।

कृकल अपनी पत्नीसे बहुत प्यार करते थे। अतः उन्होंने विचार किया कि यदि मैं पत्नीको भी साथ ले चलूँ तो मेरी इस प्राणवल्लभाको बहुत ही कष्टका सामना करना पड़ेगा; क्योंकि रास्ते बहुत ही बीहड़ हैं। यह भूख-प्याससे परेशान हो जायगी, मैं इसे प्राणसे बढ़कर मानता हूँ। कहीं यह मर गयी तो मेरा सर्वनाश हो जायगा। एकमात्र यही मेरे जीवनका आधार है। अतः इसे तीर्थोंमें न ले जाकर, मैं स्वयं ही तीर्थयात्रापर जाऊँगा—ऐसा विचारकर उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'मैं तेरा त्याग नहीं करूँगा।' इसके बाद बिना पत्नीको बताये उन यात्रियोंके साथ तीर्थयात्रापर चले गये। सुकला जब ब्राह्ममुहूर्तमें उठी तो देखी कि उसके पतिदेव कहीं दिखायी नहीं पड़ रहे हैं और वह रोने लगी। जब उसने पतिके साथियोंसे पूछा तो पता चला कि वे तीर्थयात्रापर चले गये। पतिके साथियोंने उसे बहुत समझाया-बुझाया कि तुम शोक न करो। वे जल्दी ही आ जायँगे।

वह घर आकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसने प्रण किया कि मेरे पति जबतक नहीं आयेंगे, मैं जमीनपर ही सोऊँगी और रूखी-सूखी खाऊँगी। सुकलाके दिन बड़ी कठिनाईसे बीत रहे थे। विरहाग्निसे उसका शरीर काला हो रहा था, अहर्निश रोती रहती थी, न नींद आती और न भूख ही लगती थी।

सुकलाकी सखियोंने सुकलासे पूछा कि तुम इतनी दुःखी क्यों रहती हो? कारण बताओ। सुकलाने बताया कि उसके पतिदेव उसे छोड़कर तीर्थयात्रापर चले गये हैं, उनका वियोग उससे सहा नहीं जाता। सुकलाकी सखियाँ नारीधर्मकी जानकार नहीं थीं। वे सांसारिक सुखोंको ही महत्त्व देती थीं। उन्होंने कहा कि सखि! तुम्हारा रोना-धोना व्यर्थ ही है। तुम क्यों व्यर्थमें अपने शरीरको सुखा रही हो। पतिदेव तीर्थयात्रासे वापस आ जायँगे। किसी प्रकारसे व्यथित होनेकी आवश्यकता नहीं है। अतः अच्छी प्रकारसे खाओ-पीओ और आनन्दपूर्वक रहो।

सुकलाने कहा कि सखियो! तुम्हारी बातें शास्त्रसम्मत नहीं लगतीं। मैं जो आचरण कर रही हूँ—वह भगवान्द्वारा बनाये गये विधानके अनुकूल है। पतिके न रहनेपर शृङ्गार करना भगवान्के विधानके प्रतिकूल है।

सुकलाके सतीत्वकी कठोर परीक्षा—साध्वी सुकलाके सौन्दर्यकी चर्चा देवलोकतक पहुँच ही चुकी थी, उसके पतिप्रेमकी भी चर्चा होने लगी। देवराज इन्द्रने कामदेवकी सहायतासे सुकलाकी कठोर परीक्षा ली। इस परीक्षामें साध्वी सुकलाका चरित्र और भी निखर गया। इसमें धर्मने सुकलाको बहुत सहायता पहुँचायी।

सुकलाके पतिदेवका तीर्थयात्रासे लौटना—शास्त्र-विश्वासी कृकल तीर्थयात्रा पूरीकर अपने साथियोंके साथ घर लौट रहे थे। वे यह सोचकर बहुत प्रसन्नचित्त थे कि इस तीर्थयात्रासे उनका जीवन सफल हो गया। कृकलके मनमें यह सोचकर अधिक प्रसन्नता हो रही थी कि उनके सभी पितर स्वर्गलोकमें पहुँच गये। इतनेमें उनके सामने एक विचित्र दृश्य उपस्थित हुआ। उन्होंने देखा कि कोई दिव्य पुरुष उनके पितरोंको बाँधे हुए है—यह देखकर वे विकल हो गये। उन्होंने उनके बाँधे जानेका कारण पूछा कि मेरे तीर्थश्राद्धसे तो इन्हें स्वर्ग पहुँचना था—इन्हें बाँधा क्यों गया है?

दिव्य पुरुषने कहा कि मैं धर्म हूँ। तुम्हारे श्राद्धका फल इन्हें नहीं मिला। कृकलने पूछा कि मेरे द्वारा किये गये श्राद्ध व्यर्थ क्यों हो गये और इन्हें बाँधा क्यों गया?

धर्मने उत्तर दिया कि तुम्हें इसीलिये सफलता नहीं मिली; क्योंकि तुमने अपनी साध्वी पत्नीको इस पवित्र कार्यमें सम्मिलित नहीं किया। यदि पत्नीको भी साथ लिया होता तो उस श्राद्धसे तुम्हारे पितरोंको अमृतपान-सी तृप्ति मिलती। तुम्हारे पितर इसलिये बाँधे गये हैं; लोभवश इन्होंने तुम्हारे अवैध श्राद्धान्नको खा लिया है। कृकल बहुत विकल हो गये और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा कि अब आप यह बतायें कि हमारे पितर किस उपायद्वारा इस बन्धनसे मुक्त होंगे।

धर्मने कहा—महाभाग! तुम अपने घर जाओ। तुम्हारी पत्नी सुकला तुम्हारे लिये बहुत विकल हो रही है। तुम अपनी पत्नीको साथ लेकर जो श्राद्ध-कर्म करोगे, वह श्राद्धान्न तुम्हारे पितरोंको मिलेगा और उनको मुक्ति मिलेगी।

कृकलने घर पहुँचनेपर रास्तेमें घटी घटनाको अपनी पत्नीसे बतायी। पतिको पाकर सुकलाका मन अति प्रसन्न हो गया। इसके बाद कृकलने घरपर ही रहकर पत्नीके साथ श्रद्धापूर्वक शीघ्र श्राद्धादि कर्म किया। इस कर्मसे देवता, पितर और मुनिगण विमानोंपर चढ़कर वहाँ आये एवं पति-पत्नी दोनोंको सराहने लगे। देवताओंने कहा कि कृकल! तुम अपनी पत्नीके साथ वर माँगो। कृकलने पूछा कि आपलोग मेरे किस पुण्य और तपसे मुझे वर देनेके लिये पधारे हैं। देवराज इन्द्रने कहा कि यह तुम्हारी पत्नी सुकला सती साध्वी है। इसीसे संतुष्ट होकर हमलोग तुम्हें वर देना चाहते हैं।

इसके बाद इन्द्रने उसके सतीत्वकी परीक्षाकी कहानी भी सुनायी। हर्षके उद्रेकसे उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उन दोनोंने बार-बार देवताओंको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और देवताओंसे वर माँगा कि अन्तमें पितरोंके साथ हम विष्णुके धाममें पहुँचें।

देवताओंने एवमस्तु कहा। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी और सब ओर प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता फैल गयी।

इस तरह शास्त्रने पत्नीको तीर्थ माना है और यह भी कहा है कि इस तीर्थकी तुलना कोई दूसरा तीर्थ नहीं कर सकता—

नास्ति भार्यासमं तीर्थम्। (प०पु० भूमि० ६१।२२)

कश्यपस्मृतिने भी स्पष्ट कर दिया है कि तीर्थ, दान, श्राद्धादि जितने सत्कर्म हैं वे सभी पत्नीके अधीन हैं। अतः पत्नी स्वर्गका साधन है—

दाराधीनाः क्रियाः सर्वा दाराः स्वर्गस्य साधनम्।
(कश्यपस्मृति-४)

इसी तरह जैसे पत्नीके लिये पति तीर्थ है, वैसे ही पतिके लिये पत्नी भी तीर्थ है।

मनुजीने लिखा है—'**पतिभिर्देवरैस्तथा पूज्या भूषयितव्याश्च**'।

फिर भी शास्त्रने पत्नीके लिये यह सुविधा दी है कि केवल पतिकी पूजासे सर्वातिशायी फल मिल जाता है किंतु पतिके लिये यह सुविधा नहीं है कि वह केवल पत्नीमें अनुराग और उसके सम्मानसे सर्वातिशायी फल प्राप्त करे। भगवान्ने विश्वकल्याणके लिये पतिपर गुरुतर बोझ दिया है। उसे पत्नीसे अनुराग करना है, लेकिन परम अनुराग परमात्मासे ही करना है और परमात्माके आदेशसे शास्त्रके आदेशानुसार पितृकर्म, देवकर्म, नित्यकर्म और नैमित्तिक कर्म करके तीनों लोकोंको तृप्त करना है। इसलिये पत्नीमें अनुराग होना चाहिये, आसक्ति नहीं।

(ख) आदर्श पति मधुच्छन्दा

ब्रह्मर्षि मधुच्छन्दा महर्षि विश्वामित्रके पुत्र थे। इन्होंने ऋग्वेदके बहुत-से सूक्तोंका दर्शन किया है। अपने पिताकी

तरह मधुच्छन्दा भी तेजस्वी ऋषि थे। राजा शर्यातिने इन्हें अपना पुरोहित बना रखा था। मार्कण्डेयस्मृतिके अनुसार शर्यातिने समझ रखा था कि पुरोहितके बिना राजाका कार्य सफल नहीं हो पाता। पुरोहितसे श्रेय और सम्पत्ति दोनोंकी प्राप्ति होती है। पुरोहितको माता, पिता, आचार्य, बान्धव, पुत्र, मित्र आदि सभी रूपोंमें समझना चाहिये। राजा शर्याति अपने पुरोहित मधुच्छन्दाका सभी रूपोंमें सम्मान करते थे, किंतु समवयस्क होनेके नाते उन्होंने मैत्रीको प्रधान बना रखा था।

महर्षि मधुच्छन्दाके प्रभावसे राजा शर्यातिने दिग्विजय प्राप्त की थी। एक बार पुरोहितको आगे करके राजा शर्याति दिग्विजयकर लौट रहे थे। रातके समय सेनाने पड़ाव डाल दिया था। उस समय राजा शर्यातिने अपने पुरोहितको कुछ अन्यमनस्क देखा। राजाने पूछा—आप उद्विग्न क्यों हैं? आपकी वजहसे ही हमलोगोंने दिग्विजय प्राप्त की है, यह तो खुशीका अवसर है। इस अवसरपर तो आपको प्रसन्न होना चाहिये। मालूम होता है कि किसी विशेष कारणसे आप उद्विग्न हैं।

महर्षि मधुच्छन्दाने बताया—मुझे अपनी पत्नीकी याद आ रही है, मुझे संदेह है कि मेरे वियोगमें वह जीवित होगी या नहीं।

यह सुनकर राजा शर्याति हँस पड़े और बोले—आप मेरे मित्रके साथ-साथ पुरोहित भी है। संसारका सुख तो क्षणभंगुर है, आप-जैसे महर्षिको इस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। मधुच्छन्दाने गम्भीर होकर कहा—राजन्! पत्नी और पतिका आपसमें प्रेम होना दूषण नहीं अपितु भूषण है। वैसे तो सम्पूर्ण नारीजाति ही सम्माननीया है, शास्त्रोंने इन्हें पूज्या कहा है और बताया है कि जिस घरमें नारीकी पूजा होती है, वहाँ सारे देवता वास करते हैं और जिस घरमें इनका सम्मान नहीं होता वहाँ की गयी सारी क्रियाएँ निष्फल होती हैं।

अतः पतिके लिये पत्नी भी सम्माननीया है—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।

(मनुस्मृति ३।५५)

इस प्रकार शास्त्रानुसार भी पत्नीके प्रेमका उत्तर प्रेमसे ही देना चाहिये। यह पतिका पुनीत कर्तव्य है। हम बहुत दिनोंसे वियुक्त हैं, इसलिये वह बहुत दुःखी होगी। इसीलिये मैं उद्विग्न हूँ। मैं यही बात सोच रहा था कि दुःखकी अधिकतामें कहीं उसके प्राण न चले जायँ। राजाको यह बात लग गयी। जब वे अपने नगरके निकट आये तो अपनी और पुरोहितकी पत्नीके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये उन्होंने नगरमें एक संदेश भेजा। संदेशमें कहा गया कि राजा जब दिग्विजय करके लौट रहे थे तो एक राक्षस पुरोहितसहित राजाको मारकर खा गया। यह संदेश सुनकर शर्यातिकी पत्नियाँ इस संदेशकी सचाईका पता लगानेमें जुट गयीं, किंतु ऋषि मधुच्छन्दाकी पत्नीके प्राण-पखेरू उड़ गये। वह इस आघातको सह न सकी। जब राजाने पुरोहितकी पत्नीकी मृत्युका समाचार और अपनी पत्नियोंकी चेष्टाओंको सुना तो उन्हें विस्मय और दुःख दोनों हुए। उन्होंने अपने दूतोंको पुनः यह संदेश देनेके लिये भेजा कि पुरोहित और राजा दोनों नगरके पास आ गये हैं। इधर राजाने सब सेनाको अपने नगर लौटा दिया और पुरोहितको कुछ धन देकर कुछ तीर्थोंमें बाँट आनेके लिये भेज दिया। पुरोहितको राजाके किसी कृत्यका परिचय न था। वे तीर्थोंमें जाकर धनका वितरण करने लगे।

इधर राजा पुरोहितकी पत्नीकी मृत्युका कारण स्वयंको समझकर बहुत चिन्तित हुए। वे गौतमी गङ्गाके तटपर आये और गङ्गाजी, सूर्य तथा देवताओंको सम्बोधित करते हुए बोले—यदि मैंने सचाईके साथ प्रजाका पालन किया हो, यज्ञ किया हो, दान किया हो तो मेरे पुरोहितकी पत्नी मेरी आयु लेकर जीवित हो जाय। यह कहकर राजा अग्निमें प्रवेश कर गये। ठीक उसी समय पुरोहितकी पत्नी जीवित हो गयी।

इधर जब मधुच्छन्दाको यह मालूम हुआ कि महाराजके प्राणत्यागसे मेरी पत्नी जीवित हो गयी तो उन्होंने भी राजाको जीवित करना अपना कर्तव्य माना। उन्होंने भगवान् सूर्यकी बहुत ही श्रद्धासे स्तुति की। मधुच्छन्दा-जैसे महर्षिकी स्तुतिसे सूर्य भगवान् बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मधुच्छन्दासे वर माँगनेको कहा। मधुच्छन्दाने सर्वप्रथम वरमें राजाका जीवन माँगा और दूसरे वरमें राजाके लिये एक योग्य पुत्रकी माँग की। भगवान् सूर्यने राजा शर्यातिको जिलाया और मधुच्छन्दाकी पत्नीका जीवन भी सुरक्षित कर दिया तथा अपनी तरफसे मधुच्छन्दाको बहुत-से कल्याणमय वर दिये। राजा और पुरोहितकी पत्नीके जीवित होनेसे सारी प्रजामें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। यहाँ ध्यान देनेकी बात है कि पत्नीको अपने पतिके अनुरागसे ही सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यह सुविधा पतिको नहीं है। पत्नीके प्रति अनुराग एवं सम्मान रखते हुए पुरुषको भगवत्प्राप्तिमें मन लगाना चाहिये।

गोस्वामी तुलसीदासकृत 'दोहावली' में नीति-वचनामृत

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय)

गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी रचनाओंमें धर्म, सदाचार तथा नीतिका व्यापक प्रयोग किया है। इन्हीं विशेषताओंके कारण 'श्रीरामचरितमानस'को सम्पूर्ण विश्वमें अत्यन्त सम्मान प्राप्त है। तुलसीदासजीने अपनी कृति दोहावलीमें भी छोटे-छोटे दोहोंके माध्यमसे बड़ी महत्त्वपूर्ण नीतिपरक बातें कही हैं; जिनसे जनसामान्य लाभ उठाता आ रहा है। गोस्वामीजीके विचारसे नीतिपर चलना एवं श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम करना सबसे उत्तम है; उनका यह भी मानना है कि नीतिपर चलनेके कारण ही वनमें भी श्रीरामजीको पक्षियों एवं पशुओं (जटायु तथा वानर-भालु आदि)-का साथ मिला, जबकि नीतिके परित्यागी बालि और रावणने अपने घरमें ही हितैषी भाइयोंको अपना काल बना लिया—

चलब नीति मग राम पग नेह निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिअ सो बसन जो न पखारें फीक॥ ४६९॥
खग मृग मीत पुनीत किय बनहुँ राम नयपाल।
कुमति बालि दसकंठ घर सुहृद बंधु कियो काल॥ ४४२॥

दु:संगका प्रभाव बताते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि कुसंगतिमें रहते हुए सज्जनताकी आशा करना व्यर्थ है—

बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास॥ ३६२॥

दूसरी ओर सत्संगति गङ्गाजीके समान पावनकारी है। गङ्गाजीमें कैसा भी जल पड़े एवं सत्संगतिमें कैसा भी दुर्जन मनुष्य जाये, उसे ये दोनों ही अपने समान पवित्र बना देती हैं परंतु इनकी प्राप्ति श्रीरामकृपासे ही सुलभ है—

राम कृपाँ तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान॥ ३६३॥

ईर्ष्याका निषेध करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं कि जो दूसरोंकी सुख-सम्पत्ति देख-सुनकर बिना आगके ही जलने लगते हैं, उनके भाग्यसे भलाई भाग जाती है अर्थात् उनका भला नहीं हो सकता—

पर सुख संपति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिन के भाग ते चलै भलाई भागि॥ ३८८॥

तुलसीदासजीका कहना है कि दुष्टकी कपटभरी मीठी वाणी सुनकर अपने मनमें भलीभाँति विचारकर उसका मतलब समझना चाहिये, सहसा विश्वास नहीं करना चाहिये। मूढ़ दासी मन्थराकी कपटयुक्त मीठी वाणीसे ही कैकेयी श्रीरामके राज्याभिषेकमें बाधक बनीं—

तुलसी खल बानी मधुर सुनि समुझिअ हियँ हेरि।
राम राज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि॥ ३९९॥

जो स्वभावसे ही अपना हित करनेवाले मित्र, गुरु और स्वामीकी सीखको शिरोधार्य करके कार्य नहीं करता, वह बादमें भरपेट पछताता है और उसके हितकी अवश्य ही हानि होती है। पुन: गोस्वामीजी कहते हैं कि माता-पिता और स्वामीकी सीखको स्वभावसे ही सिर चढ़ाकर पालन करनेवालेका जीवन सफल है, अन्यथा उसका जगत्‌में जन्म लेना ही व्यर्थ है—

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥ ४२१॥
मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥ ५४०॥

तुलसीदासजीकी नीतिमें फूल-पत्तोंसे भी लड़ाई करना बुरा है, इसीलिये बुद्धिमान् लोग किसीसे नहीं लड़ते। इस बातके साक्षी यादव और कामदेव हैं। तिनकोंसे लड़कर यादवोंका कुल नष्ट हो गया और पुष्पबाणद्वारा शिवजीपर प्रहार करके कामदेव शरीरहीन (अनङ्ग) हो गया। अपने दूसरे दोहेमें वे भृगुमुनि और विष्णुका उदाहरण देते हुए कहते हैं कि क्षमा और क्रोधके गुण-दोषोंको सुनकर उससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भृगुमुनिकी क्रोधसे मारी हुई लातको छातीपर सहनेके कारण विष्णु अविचल लक्ष्मीके स्वामी हुए, परंतु एक ब्राह्मणके क्रोधके कारण ब्राह्मणोंको माँगे भीख नहीं मिलती—

सुमति बिचारहिं परिहरहिं दल सुमनहुँ संग्राम।
सकुल गए तनु बिनु भए साखी जादौ काम॥ ४२५॥
छमा रोष के दोष गुन सुनि मनु मानहि सीख।
अबिचल श्रीपति हरि भए भूसुर लहै न भीख॥ ४२७॥

आगे क्रोधका निषेध करते हुए वे कहते हैं कि क्रोधमें अपनी जबान खोलनेसे अच्छा है कि तलवार खींच ली जाय, क्योंकि तलवारका घाव मिट जाता है, पर जबानका घाव अमिट है, अत: विचारकर ऐसे वचन बोलने चाहिये जो कि सुननेमें मीठे तथा परिणाममें हितकारी हों—

रोष न रसना खोलिऐ बरु खोलिअ तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिअ बचन बिचारि॥ ४३५॥

चुगलखोरी सर्वथा त्याज्य है, क्योंकि किसी बातके न कहनेसे पेट नहीं फूल जाता और कहनेसे सामने बातोंका ढेर नहीं लग जाता है, अत: समय-असमयको समझकर एवं पवित्र बुद्धिसे विचार करके ही यथायोग्य वचन बोलने चाहिये—

पेट न फूलत बिनु कहें कहत न लागइ ढेर।
सुमति बिचारें बोलिऐ समुझि कुफेर सुफेर॥ ४३७॥

विपत्तिकालके मित्र कौन हैं? तुलसीके शब्दोंमें धैर्य, धर्म, विवेक, सत्साहित्य, साहस और सत्यव्रत एवं भगवद्विश्वास ही विपत्तिकालके सच्चे मित्र हैं। तुलसी-नीतिके अनुसार व्यक्तिको बुरे वचनों और सब प्रकारके कष्टोंको सहते हुए मिथ्या अपमानको अङ्गीकार कर लेना चाहिये, परंतु धर्मको कभी नहीं छोड़ना चाहिये। श्रेष्ठ बुद्धिमान् पुरुष ऐसा ही उपदेश और आचरण कर गये हैं—

तुलसी असमय के सखा धीरज धरम बिबेक।
साहित साहस सत्यब्रत राम भरोसो एक॥ ४४७॥
सहि कुबोल साँसति सकल अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिअ कहि करि गए सुजान॥ ४६६॥

यदि कोई गृहस्थ मोहवश शास्त्रोक्त कर्म-मार्गका परित्याग करता है और यदि कोई संन्यासी संसारमें आसक्त एवं ज्ञान-वैराग्यसे हीन है तो वे दोनों अवश्य ही शोचनीय हैं अर्थात् गृहस्थको शास्त्रीय कर्मानुष्ठानमें लगे रहना चाहिये एवं संन्यासीको ज्ञान-वैराग्यके साथ संसारसे विरक्त रहना चाहिये—

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥ ४८०॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजीकी दोहावलीमें बहुत ही अनमोल नीति-वचन उद्धृत हैं। इन नीतियोंका अनुपालन हम सबके हितमें होगा।

व्यवहारमें विषमताका त्याग

जिनके अच्छे आचरण हों, उन्हें भगवान् भी चाहते हैं कि ऐसा व्यक्ति मेरे धाममें आये। अच्छे आचरणवाले भगवान्के धाममें जाते हैं, अतएव हमें अच्छे आचरण बनाने चाहिये। भगवान्के यहाँ ऐसी व्यवस्था है कि वहाँ बुरे आचरणवाले नहीं जा सकते।

स्त्रियोंको चाहिये कि घरमें जो विषमता है, उसे दूर करें। लड़का और लड़कीमें पहले छोटी अवस्थामें जबतक लड़केका विवाह नहीं होता है, तबतक लड़केसे विशेष प्रेम रहता है और लड़कीसे कम। जब लड़केका विवाह हो जाता है तो लड़केसे प्रेम घटकर विवाहिता लड़कीसे प्रेम बढ़ जाता है। लड़कीको घरवालोंसे छिपाकर गुप्तरूपसे देना बुरी आदत है, अतएव लड़कीकी अपेक्षा लड़केकी बहूपर ज्यादा प्रेम रखना चाहिये, अन्यथा वह बहू लड़केके सामने शिकायत करके लड़केको भी विरुद्ध बना देती है और सारे घरमें कलह रहता है। वधूको भी चाहिये कि सासकी कोई बात अपने पीहरवालोंसे नहीं कहे और न पतिसे ही कहे। यदि माताका प्रेम लड़कीपर अधिक रहे और छिप-छिप करके दे तो लड़के और लड़केकी बहू ऐसा कहने लगते हैं कि कब यह लड़की अपने ससुराल जाये। पुत्रवधूको चाहिये कि सास और ससुरकी सेवा तन, मनसे करे। सेवासे उनको मुग्ध कर दे। पिता और पुत्रको भी अपना सुधार करना चाहिये। आपसमें प्रेम बढ़ाना चाहिये।

विदुरनीति

आठवाँ अध्याय

[गताङ्क पृ०-सं० ९१९ से आगे]

विदुर उवाच

योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः
करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा।
क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्त-
मलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः॥ १॥

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं
यः संत्यजत्यनपाकृष्ट एव।
सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते
जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य॥ २॥

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया॥ ३॥

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः॥ ४॥

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः॥ ५॥

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्॥ ६॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना॥ ७॥

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः
क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता।
अपालनं हन्ति पशूंश्च राज-
न्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्॥ ८॥

अजाश्च कांस्यं रजतं च नित्यं
मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन
एतानि ते सन्तु गृहे सदैव॥ ९॥

अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी।
विषमौदुम्बरं शङ्खः स्वर्णनाभोऽथ रोचना॥ १०॥

गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत्।
देवब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत॥ ११॥

विदुरजी कहते हैं—[राजन्!] जो सज्जन पुरुषोंसे आदर पाकर आसक्तिरहित हो अपनी शक्तिके अनुसार अर्थ-साधन करता रहता है, उस श्रेष्ठ पुरुषको शीघ्र ही सुयशकी प्राप्ति होती है, क्योंकि संत जिसपर प्रसन्न होते हैं, वह सदा सुखी रहता है॥ १॥ जो अधर्मसे उपार्जित महान् धनराशिको भी उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना ही त्याग देता है, वह जैसे साँप अपनी पुरानी केंचुलको छोड़ता है, उसी प्रकार दुःखोंसे मुक्त हो सुखपूर्वक शयन करता है॥ २॥ झूठ बोलकर उन्नति करना, राजाके पासतक चुगली करना, गुरुसे भी मिथ्या आग्रह करना—ये तीन कार्य ब्रह्महत्याके समान हैं॥ ३॥ गुणोंमें दोष देखना एकदम मृत्युके समान है। कठोर बोलना या निन्दा करना लक्ष्मीका वध है। सुननेकी इच्छाका अभाव या सेवाका अभाव, उतावलापन और आत्मप्रशंसा—ये तीन विद्याके शत्रु हैं॥ ४॥ आलस्य, मद-मोह, चञ्चलता, गोष्ठी, उद्दण्डता, अभिमान और लोभ—ये सात विद्यार्थियोंके लिये सदा ही दोष माने गये हैं॥ ५॥ सुख चाहनेवालेको विद्या कहाँसे मिले? विद्या चाहनेवालेके लिये सुख नहीं है। सुखकी चाह हो तो विद्याको छोड़े और विद्या चाहे तो सुखका त्याग करे॥ ६॥ ईंधनसे आगकी, नदियोंसे समुद्रकी, समस्त प्राणियोंसे मृत्युकी और पुरुषोंसे कुलटा स्त्रीकी कभी तृप्ति नहीं होती॥ ७॥ आशा धैर्यको, यमराज समृद्धिको, क्रोध लक्ष्मीको, कृपणता यशको और सार-सँभालका अभाव पशुओंको नष्ट कर देता है। राजन्! एक ही ब्राह्मण यदि क्रुद्ध हो जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्रका नाश कर देता है॥ ८॥ बकरियाँ, काँसेका पात्र, चाँदी, मधु, अर्क खींचनेका यन्त्र, पक्षी, वेदवेत्ता ब्राह्मण, बूढ़ा, कुटुम्बी और विपत्तिग्रस्त कुलीन पुरुष—ये सब आपके घरमें सदा मौजूद रहें॥ ९॥ भारत! मनुजीने कहा है कि देवता, ब्राह्मण तथा अतिथियोंकी पूजाके लिये बकरी, बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घी, जल, ताँबेके बर्तन, शङ्ख, शालग्राम और गोरोचन—ये सब वस्तुएँ घरपर रखनी चाहिये॥ १०-११॥

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि
पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः॥ १२॥
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये
संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः॥ १३॥
महाबलान् पश्य महानुभावान्
प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्।
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान्
गतान्नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य॥ १४॥
मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या
उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति
चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति॥ १५॥
अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते
वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र
पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः॥ १६॥
उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः।
अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः॥ १७॥
अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयंकृतम्।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं संचिनुयाच्छनैः॥ १८॥
अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाधो
महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम्।
तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां
बुध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन्॥ १९॥
इदं वचः शक्ष्यसि चेद् यथाव-
न्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव।
यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके
भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति॥ २०॥
आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था
सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा
पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव॥ २१॥
कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि संतर॥ २२॥

तात! अब मैं तुम्हें बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सर्वोपरि पुण्यजनक बात बता रहा हूँ—कामनासे, भयसे, लोभसे तथा इस जीवनके लिये भी कभी धर्मका त्याग न करे॥ १२॥ धर्म नित्य है, किंतु सुख-दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य है, पर इसका कारण (अविद्या) अनित्य है। आप अनित्यको छोड़कर नित्यमें स्थित होइये और संतोष धारण कीजिये; क्योंकि संतोष ही सबसे बड़ा लाभ है॥ १३॥ धन-धान्यादिसे परिपूर्ण पृथ्वीका शासन करके अन्तमें समस्त राज्य और विपुल भोगोंको यहीं छोड़कर यमराजके वशमें गये हुए बड़े-बड़े बलवान् एवं महानुभाव राजाओंकी ओर दृष्टि डालिये॥ १४॥ राजन्! जिसको बड़े कष्टसे पाला-पोसा था, वह पुत्र जब मर जाता है तो मनुष्य उसे उठाकर तुरंत अपने घरसे बाहर कर देते हैं। पहले तो उसके लिये बाल छितराये करुण स्वरमें विलाप करते हैं, फिर साधारण काठकी भाँति उसे जलती चितामें झोंक देते हैं॥ १५॥ मरे हुए मनुष्यका धन दूसरे लोग भोगते हैं, उसके शरीरकी धातुओंको पक्षी खाते हैं या आग जलाती है। यह मनुष्य पुण्य-पापसे बँधा हुआ इन्हीं दोनोंके साथ परलोकमें गमन करता है॥ १६॥ तात! बिना फल-फूलके वृक्षको जैसे पक्षी छोड़ देते हैं, उसी प्रकार उस प्रेतको उसके जातिवाले, सुहृद् और पुत्र चितामें छोड़कर लौट आते हैं॥ १७॥ अग्निमें डाले हुए उस पुरुषके पीछे तो केवल उसका अपना किया हुआ बुरा या भला कर्म ही जाता है। इसलिये पुरुषको चाहिये कि वह धीरे-धीरे प्रयत्नपूर्वक धर्मका ही संग्रह करे॥ १८॥ इस लोक और परलोकसे ऊपर और नीचेतक सर्वत्र अज्ञानरूप महान् अन्धकार फैला हुआ है, वह इन्द्रियोंको महान् मोहमें डालनेवाला है। राजन्! आप इसको जान लीजिये, जिससे यह आपका स्पर्श न कर सके॥ १९॥ मेरी इस बातको सुनकर यदि आप सब ठीक-ठीक समझ सकेंगे तो इस मनुष्यलोकमें आपको महान् यश प्राप्त होगा और इहलोक तथा परलोकमें आपके लिये भय नहीं रहेगा॥ २०॥ भारत! यह जीवात्मा एक नदी है, इसमें पुण्य ही तीर्थ है, सत्यस्वरूप परमात्मासे इसका उद्गम हुआ है, धैर्य ही इसके किनारे हैं, इसमें दयाकी लहरें उठती हैं, पुण्यकर्म करनेवाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है; क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है॥ २१॥ काम-क्रोधादिरूप ग्राहसे भरी, पाँच इन्द्रियोंके जलसे पूर्ण इस संसारनदीके जन्म-मरणरूप दुर्गम प्रवाहको धैर्यकी नौका बनाकर पार कीजिये॥ २२॥ [क्रमशः]

नीतिके आख्यान—

(१)

दुर्बलको बलवान्‌से वैर नहीं करना चाहिये

(सेमल-वृक्षकी कथा)

हिमालय पर्वतपर एक बहुत विशाल शाल्मलि (सेमल)-का वृक्ष था। उसकी डालियाँ दूर-दूरतक फैली थीं, अतः वृक्षकी छाया भी बहुत दूरतक फैली रहती थी। अनेक पशु-पक्षियोंका वह आश्रय-स्थल बन गया था। एक दिन देवर्षि नारदजी भ्रमण करते हुए उस स्थानपर आये, जहाँ वह वृक्ष निर्भय हो खड़ा था और उससे कहने लगे—शाल्मले! तुम्हें देखकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। तीव्र वायुके झोंकोंसे दूसरे पेड़ उखड़ जाते हैं, उनकी डालियाँ टूट जाती हैं, परंतु तुमपर उसका कोई प्रभाव नहीं दिखायी देता। मालूम पड़ता है भयानक वायुदेव तुम्हें अपना बन्धु मानते हैं; क्योंकि मैं तो भूतलपर किसी वृक्ष, पर्वत आदिको ऐसा नहीं देखता, जो पराक्रमी वायुदेवके वेगके सामने टिका हो। वायुदेव तुम्हारी जो रक्षा कर रहे हैं, लगता है यह उनकी तुमपर कृपा ही है।

देवर्षि नारदजीकी बातोंको सुनकर सेमल-वृक्षको अपना अपमान-सा प्रतीत हुआ। वह बोला, मैं ऐसे किसी वायुदेवको नहीं जानता और न उसकी कृपापर ही जी रहा हूँ। मेरा तेज और बल वायुसे भी भयंकर है। इतना ही नहीं, मैं उसके वेगको भी रोक देता हूँ। वह कुपित भी हो जाय तो मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

देवर्षि नारदजीने उसकी मिथ्या अभिमानसे भरी हुई बातोंको सुना तो उन्होंने वायुके महान् बलका वर्णन किया और कहा—अच्छा, तुम नहीं मानते हो तो एक दिन इसका भी निर्णय हो ही जायगा। ऐसा कहकर देवर्षि नारदजी वायुदेवके पास गये और सेमलकी उपेक्षापूर्ण बातोंसे उन्हें अवगत कराया।

वायुदेव रुष्ट हो गये, उन्हें सेमलका मिथ्या दर्प करना अच्छा नहीं लगा। वे शीघ्र ही हिमालय पर्वतपर सेमलके पास गये और कहने लगे—

अरे क्षुद्र शाल्मले! देवर्षि नारदजीसे मुझे तुम्हारा सारा वृत्तान्त ज्ञात हो गया है। अपने मुखसे आत्मश्लाघा करना और बढ़-चढ़कर बातें बनाना अच्छा नहीं होता। मैं तुम्हारे बल-तेजको अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे मालूम है कि ब्रह्माजीने सृष्टिके समय तुम्हारी छायामें विश्राम किया था, उसी बातको ध्यानमें रखकर मैं तुम्हें बचाता आ रहा हूँ। पर द्रुमाधम! तुम ऐसे मानोगे नहीं, मुझे अपना विकराल रूप दिखाना ही पड़ेगा।

इसपर सेमलको हँसी आ गयी, वह ऊपर-ऊपर तो बड़ी डींग हाँकने लगा, किंतु अंदरसे भयभीत हो गया; क्योंकि वह वायुके पराक्रमको और अपनी शक्तिको अच्छी तरह समझता था। इसी बीच वायुदेव वहाँसे चले गये। किंतु सेमलके मनमें भय व्याप्त हो गया। उसने वायुदेवसे वैर बाँधना ठीक नहीं समझा। अतः उसने नीतिबलका आश्रय लेनेकी सोची और विनय-नीतिका प्रयोग किया। अभीतक उसकी जो डालियाँ चारों ओर बहुत ऊँची-ऊँची फैली थीं, उसने उनको समेटकर नीचे झुका लिया। जो सेमल तनकर खड़ा था, अब वह नीचेको झुक गया। इस स्थितिमें वह वायुदेवके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा।

प्रातःकाल होनेको ही था कि वायुदेव कुपित हो सब वृक्षोंको उखाड़ते-पछाड़ते उस स्थानपर पहुँचे जहाँ सेमल खड़ा था। पर यह क्या! वायुदेवने देखा कि सेमलने अपनी डालियाँ झुका ली हैं, पत्ते, फूलोंको भी गिरा दिया है, यह तो मुरझाया-सा दीखता है। उन्हें समझते देर न लगी कि सेमलने विनय-नीतिका आश्रय ले लिया है, उन्हें सेमल बड़ा बुद्धिमान् मालूम पड़ा, वे मुसकरा उठे और सेमलसे कहने लगे—

शाल्मले! मैं तो तुम्हें ऐसा ही बना देनेके लिये बड़े रोषसे यहाँ आया था, पर तुमने तो पहले ही अपनेको वैसा बना लिया। अब जो तुम्हें कष्ट तथा अपमान सहना पड़ रहा है, वह तुम अच्छी तरह समझ ही रहे हो। तुमने जो

नारदजीसे कहा था, वह तो याद पड़ ही रहा होगा। तुमने पहले जो मूर्खता की है, उसीका यह फल है।

अत: यह जान लो कि जो मूर्ख स्वयं दुर्बल होकर किसी बलवान्‌से वैर गाँठता है, वह तुम्हारे ही समान दु:ख और अपमानको प्राप्त होता है। इसलिये बलवानोंसे वैर नहीं करना चाहिये—

'तस्माद् वैरं न कुर्वीत दुर्बलो बलवत्तरै:।'

(महाभारत, शान्ति० १५७।९)

(२)

ऋषिके तिरस्कारका कुफल

अभिमन्युनन्दन राजा परीक्षित् बड़े धर्मात्मा थे। एक दिन इन्हें मालूम हुआ कि मेरे राज्यमें कलियुग आ गया है। बस, ये उसे ढूँढ़नेके लिये निकल पड़े। एक स्थानपर उन्होंने देखा कि राजोचित वस्त्राभूषणसे सुसज्जित कोई शूद्र गौ और बैलको डंडोंसे पीट रहा है। बैलके तीन पैर टूट चुके थे, एक ही अवशेष था। उनका परिचय प्राप्त करनेपर मालूम हुआ कि यह बैल धर्म है, गौ पृथ्वी है और कलियुग ही शूद्र है। उन्होंने उस कलिको मारनेके लिये खड्ग उठाया, परंतु वह उनके चरणोंपर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा। राजाको दया आ गयी। उन्होंने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके और उसका यह गुण देखकर कि कलियुगमें और किसी साधन, योग, यज्ञ आदिकी आवश्यकता न होगी, केवल भगवान्‌के नामोंसे ही प्राणियोंके स्वार्थ, परमार्थ आदि कार्य सम्पन्न हो जायँगे, अत: उसे रहनेके लिये जुआ, शराब, स्त्री, हिंसा, सोना आदि स्थान बता दिये; क्योंकि इन स्थानोंमें झूठ, मद, अपवित्रता तथा क्रूरता आदि दोष रहते हैं।

कुछ दिनोंके बाद उस समयकी प्रथाके अनुसार राजा परीक्षित् शिकार खेलने निकले। एक मृगके पीछे दौड़ते हुए दूर निकल गये। थकावट और प्यासके कारण वे घबरा उठे। पानी पीनेकी इच्छासे एक ऋषिके आश्रमपर गये, परंतु वे ध्यानमग्न थे। इनकी याचनासे उनका ध्यान भङ्ग नहीं हुआ। इसी समय कलियुगने इनपर आक्रमण किया। इन्हें क्रोध आ गया और क्रोधवश ऋषिका परिहास करनेके लिये इन्होंने उन ध्यानमग्न ऋषिके गलेमें एक मृत सर्प पहना दिया तथा आवेशमें ही राजधानी लौट आये।

कुछ समय बाद जब इन्हें होश आया, तब ये पश्चात्ताप करने लगे और इस अपराधका दण्ड भोगनेके लिये उसकी प्रतीक्षा करने लगे।

उधर कुछ ऋषि-बालकोंने जाकर नदी-किनारे खेलते हुए उनके पुत्रसे यह बात कह सुनायी। उसे क्रोध आ गया और उसने शाप दे दिया कि आजके सातवें दिन तक्षक नाग परीक्षित्‌को डँसेगा। अपमानके कारण उद्विग्न होकर वह बालक रोने लगा। उसका रोना सुनकर धीरे-धीरे ऋषिका ध्यान टूटा। उन्होंने सब बातें सुनकर अपने पुत्रको बहुत डाँटा। संसारके एकमात्र धार्मिक सम्राट् हमारे आश्रममें आये; उनका सत्कार तो दूर रहा, अपमान हुआ और उन्हें मृत्युतकका शाप दे दिया गया! आगे आनेवाले समयमें अधर्मकी सम्भावित वृद्धिसे ऋषि चिन्तित हो उठे, परंतु अब तो शाप दिया जा चुका था। राजाके पास संदेश भेज दिया गया। इसी शापसे महाराज परीक्षित्‌की मृत्यु हुई।

विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र—

गोरक्षक महाराज दिलीप

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पार्श्वतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

(गरुडपुराण २। ४७। ३१)

इक्ष्वाकुवंशमें महाराज दिलीप बड़े ही प्रसिद्ध राजर्षि हो गये हैं। वे बड़े भक्त, धर्मात्मा और प्रजापालक राजा थे। चारों वर्ण उनके शासनसे संतुष्ट थे। महाराजको सभी प्रकारके सुख थे, किंतु उन्हें कोई संतान नहीं थी। एक बार वे इसके लिये अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठजीके आश्रमपर गये और अपने आनेका कारण बताकर उनसे उपाय पूछा।

महर्षि वसिष्ठने दिव्यदृष्टिसे सब बातें समझकर कहा—'राजन्! आप एक बार देवासुर-संग्राममें गये थे। वहाँसे लौटकर जब आप आ रहे थे, तब रास्तेमें आपको सुरनन्दिनी कामधेनु मिलीं। सामने होनेपर भी आपकी दृष्टि उनपर नहीं पड़ी तथा आपने उन्हें प्रणाम नहीं किया। कामधेनुने इसे अविनय समझकर आपको संतानहीनताका शाप दे दिया। उस समय आकाशगङ्गा बड़े जोरोंसे शब्द कर रही थी, इससे आपने उस शापको सुना नहीं। अब इसका एक ही उपाय है कि किसी भी प्रकार उनको आप प्रसन्न कीजिये। वे तो अब यहाँ हैं नहीं। उनकी बछिया मेरे पास है, आप इसकी सेवा करें। भगवान्ने चाहा तो आपका मनोरथ शीघ्र ही पूरा होगा।'

गुरुकी आज्ञा शिरोधार्यकर महाराज अपनी महारानी-सहित गो-सेवामें लग गये। वे प्रातः बड़े ही सबेरे उठकर गौकी बछियाको दूध पिलाते, ऋषिके हवनके लिये दूध दुहते और फिर गौको लेकर जंगलमें चले जाते। गौ जिधर भी जाती, उसके पीछे-पीछे चलते। वह बैठ जाती तो स्वयं भी बैठकर उसके शरीरको सहलाते। हरी-हरी दूब उखाड़कर उसे खिलाते। जिधरसे भी वह चलती, उधर ही चलते। इस प्रकार महाराजको इक्कीस दिन पूरे हो गये।

एक दिन वे गौके पीछे-पीछे जंगलमें जा रहे थे। गौ एक बहुत बड़े वनमें घुस गयी। महाराज भी पीछे-पीछे धनुषसे लताओंको हटाते हुए चले। एक वृक्षके नीचे जाकर उन्होंने क्या देखा कि गौ नीचे है, उसके ऊपर एक सिंह चढ़ बैठा है और गौका वध करना चाहता है। महाराजने भाथेसे बाण निकालकर उस सिंहको मारना चाहा, किंतु उनका हाथ जहाँ-का-तहाँ जडवत् रह गया। अब वे क्या करते? उन्होंने अत्यन्त दीनतासे कहा—'आप कोई सामान्य सिंह नहीं हैं, आप देवता हैं। इस गौको छोड़ दीजिये; इसके बदलेमें आप मुझे जो भी आज्ञा दें, मैं करनेको तैयार हूँ।' सिंहने कहा—'यह वृक्ष भगवती पार्वतीजीको अत्यन्त प्रिय है, मुझे शिवजीने स्वयं अपनी इच्छासे उत्पन्न करके इसकी रक्षामें नियुक्त किया है। यहाँ जो भी आता है, वही मेरा आहार है। यह गौ यहाँ आयी है, इसे ही खाकर मैं पेट भरूँगा। इस विषयमें आप कुछ भी नहीं कर सकते।'

महाराजने कहा—'सिंहराज! यह गौ मेरे गुरुदेवकी है, मैं इसके बदले आपको सब कुछ देनेको तैयार हूँ; आप मुझे खा लें और इसे छोड़ दें।'

सिंहने बहुत समझाया कि 'आप महाराज हैं, प्रजाके प्राण हैं, गुरुको ऐसी लाखों गौएँ देकर संतुष्ट कर सकते हैं।' किंतु महाराजने एक न मानी। अन्तमें सिंह तैयार हो गया, महाराज जमीनपर पड़ गये। थोड़ी देरमें उन्होंने देखा तो न वहाँ सिंह, न वृक्ष; केवल कामधेनु ही खड़ी थी। उसने कहा—'राजन्! मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूँ, यह सब मेरी माया थी; आप मेरा दूध अभी दुहकर पी लें, आपके पुत्र होगा।' महाराजने कहा—'देवि! आपका आशीर्वाद शिरोधार्य है; किंतु जबतक आपका बछड़ा न पी लेगा, गुरुके यज्ञके लिये दूध न दुह लिया जायगा और गुरुजीकी आज्ञा न होगी, तबतक मैं दूध नहीं पीऊँगा।'

इसपर गौ बहुत संतुष्ट हुई। गौ संध्याको महाराजके आगे-आगे महर्षि वसिष्ठके आश्रमपर पहुँची। सर्वज्ञ ऋषि तो पहले ही सब जान गये थे। महाराजने जाकर जब यह सब वृत्तान्त कहा, तब वे प्रसन्न होकर बोले—'राजन्! आपका मनोरथ पूरा हुआ। गौकी कृपासे आपके बड़ा पराक्रमी पुत्र होगा। आपका वंश उसके नामसे चलेगा।'

नियत समयपर ऋषिने नन्दिनीका दूध राजा और रानीको दिया। महाराज अपनी राजधानीमें आये और रानी गर्भवती हुईं। यथासमय उनके पुत्र उत्पन्न हुआ। यही बालक रघुकुलका प्रतिष्ठाता 'रघु' नामसे विख्यात हुआ। महाराज दिलीप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वृद्धप्रपितामह थे।

व्रतोत्सव-पर्व

मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष (२०-११-२००२ से ४-१२-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	बुध	कृत्तिका	२० नवम्बर	कार्तिकव्रतका पारण, अनुराधा नक्षत्रके सूर्य दिन १०-०१ बजे, सर्वार्थसिद्धियोग सायं ५-२१ बजेतक
प्रतिपदा	गुरु	रोहिणी	२१ ,,	प्रतिपदा तिथि दिन ८ बजेतक, रोहिणी नक्षत्र रात्रि ९-३१ बजेतक
द्वितीया	शुक्र	मृगशिरा	२२ ,,	मिथुनके चन्द्रमा दिन १०-११ बजे, राष्ट्रिय आग्रहायणमास, सायन धनुराशिके सूर्य रात्रि शेष ४ बजे, भद्रा रात्रि ९-१८ बजेसे
तृतीया	शनि	आर्द्रा	२३ ,,	भद्रा दिन ९-३२ बजेतक, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ७-४६ बजे
चतुर्थी	रवि	पुनर्वसु	२४ ,,	कर्कके चन्द्रमा सायं ५-४८ बजे, यायिजययोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग दिन ९-३२ बजेसे रात्रि ११-५२ बजेतक
पञ्चमी	सोम	पुष्य	२५ ,,	दोषसंघविनाशक रवियोग रात्रि ११-४१ बजेसे, सर्वार्थसिद्धियोग प्रातः ६-४१ बजेसे रात्रि ११-४० बजेतक
षष्ठी	भौम	अश्लेषा	२६ ,,	सिंहके चन्द्रमा रात्रि ११-०१ बजे, रवियोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग प्रातः ६-४१ बजेसे रात्रि ११-०१ बजेतक, भद्रा प्रातः ८ बजेसे रात्रि ७-१७ बजेतक, मृत्युबाण रात्रि ११-४८ बजेसे
सप्तमी	सप्तमी तिथिका क्षय			षष्ठी तिथि प्रातः ७-५९ बजेतक तदुपरि सप्तमी तिथि रात्रि शेष ६-३६ बजेतक, सूर्योदय प्रातः ६-४१ बजे, सूर्यास्त सायं ५-१९ बजे
अष्टमी	बुध	मघा	२७ ,,	श्रीभैरवाष्टमीव्रत, सायंकाल भैरवोत्पत्ति, यात्रा-दर्शन-पूजन, कालाष्टमी, बुधाष्टमीपर्व (सूर्यग्रहणके समान), प्रथमाष्टमी (उड़ीसा), मृत्युबाण रात्रि ११-४९ बजेतक
नवमी	गुरु	पू०फा०	२८ ,,	कन्याके चन्द्रमा रात्रि २-२६ बजे, यायिजययोग रात्रि ८-५० बजेसे रात्रि २-५१ बजेतक
दशमी	शुक्र	उ०फा०	२९ ,,	दशमी तिथि रात्रि १२-३८ बजेतक, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र रात्रि ७-२० बजेतक, भद्रा दिन १-४५ बजेसे रात्रि १२-३८ बजेतक
एकादशी	शनि	हस्त	३० ,,	तुलाके चन्द्रमा रात्रि शेष ४-५२ बजे, उत्पन्ना एकादशीव्रत (सबका), यायिजययोग तथा यमघण्टयोग सायं ५-४३ बजेतक
द्वादशी	रवि	चित्रा	१ दिसम्बर	द्वादशी तिथि रात्रि ७-५५ बजेतक, चित्रा नक्षत्र दिन ४-०१ बजेतक, द्विपुष्करयोग दिन ४-०१ बजेतक
त्रयोदशी	सोम	स्वाती	२ ,,	सोमप्रदोषव्रत, पुत्रकी कामनाके लिये श्रेष्ठव्रत, मासशिवरात्रिव्रत, यायिजययोग दिन २-२३ बजेतक, भद्रा सायं ५-३७ बजेसे रात्रि शेष ४-३० बजेतक
चतुर्दशी	भौम	विशाखा	३ ,,	वृश्चिकके चन्द्रमा प्रातः ७-१४ बजे, ज्येष्ठा नक्षत्रके सूर्य दिन १-११ बजे, स्थायिजययोग दिन १२-५० बजेतक
अमावास्या	बुध	अनुराधा	४ ,,	स्नान-दान-श्राद्ध आदिकी अमावास्या, सर्वार्थसिद्धियोग दिन ११-२९ बजेतक

मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष (५-१२-२००२ से १९-१२-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	गुरु	ज्येष्ठा	५ दिसम्बर	धनुके चन्द्रमा दिन १०-२४ बजे, चन्द्रदर्शन, रुद्रव्रत (पिडिया), मृत्युबाण रात्रि ८-१२ बजेसे
द्वितीया	शुक्र	मूल	६ ,,	मृत्युबाण रात्रि ७-४५ बजेतक, मूल नक्षत्र दिन ९-३९ बजेतक
तृतीया	शनि	पू०षा०	७ ,,	मकरके चन्द्रमा दिन ३-१९ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, रवियोग दिन ९-१८ बजेसे, भद्रा रात्रि ९-०५ बजेसे
चतुर्थी	रवि	उ०षा०	८ ,,	भद्रा दिन ८-४९ बजेतक, रवियोग दिन ९-२३ बजेतक
पञ्चमी	सोम	श्रवण	९ ,,	कुम्भके चन्द्रमा रात्रि १०-३२ बजे, द्वितीया नागपञ्चमी, पञ्चमी तिथि दिन ८-५० बजेतक, स्कन्दषष्ठीव्रत, गुरु तेगबहादुर शहीद दिवस, रवियोग दिन १०-०१ बजेसे, सर्वार्थसिद्धियोग प्रातः ६-४६ बजेसे दिन १० बजेतक, पञ्चक आरम्भ रात्रि १०-३३ बजेसे
षष्ठी	भौम	धनिष्ठा	१० ,,	चम्पाषष्ठीव्रत (महाराष्ट्रमें प्रसिद्ध), मित्रसप्तमी, गुह्यषष्ठी, मूलक रूपिणीषष्ठी (बंगाल), रवियोग दिन ११-०६ बजेतक, द्विपुष्करयोग दिन ९-२३ बजेसे दिन ११-०६ बजेतक
सप्तमी	बुध	शतभिषा	११ ,,	सप्तमी तिथि दिन १०-२५ बजेतक, भद्रा दिन १०-२६ बजेसे रात्रि ११-०९ बजेतक
अष्टमी	गुरु	पू०भा०	१२ ,,	मीनके चन्द्रमा प्रातः ८-११ बजे, रवियोग तथा यायिजययोग दिन २-४२ बजेसे
नवमी	शुक्र	उ०भा०	१३ ,,	नन्दानवमी, देवीके पूजनसे विष्णुलोककी प्राप्ति, कल्पादि नवमी, रवियोग प्रातः ६-४७ बजेसे सायं ५-१३ बजेतक, सर्वार्थामृतसिद्धियोग सायं ५-०३ बजेसे
दशमी	शनि	रेवती	१४ ,,	मेषके चन्द्रमा रात्रि ७-३४ बजे, मृत्युबाण सायं ४-०२ बजेसे, रवियोग रात्रि ७-३४ बजेतक, यायिजययोग दिन ३-५२ बजेसे रात्रि ७-३४ बजेतक, पञ्चक समाप्त रात्रि ७-३४ बजे, भद्रा रात्रि ३-५७ बजेसे
एकादशी	रवि	अश्विनी	१५ ,,	भद्रा सायं ६-०१ बजेतक, मोक्षदा एकादशीव्रत (सबका), गीता-जयन्ती, मौन एकादशी (जैन), मृत्युबाण दिन ३-३१ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि १०-११ बजेतक
द्वादशी	सोम	भरणी	१६ ,,	मत्स्यद्वादशी, द्वादशी तिथि रात्रि ८-०७ बजेतक, मूल नक्षत्र तथा धनुराशिके सूर्यकी संक्रान्ति दिन ३-०१ बजे, गोदावरीमें स्नान, वस्त्र-अन्न-दान, धनुराशिके संक्रान्तिसे खरमासारम्भ, यायिजययोग रात्रि ८-०८ बजेसे रात्रि१२-४१ बजेतक
त्रयोदशी	भौम	कृत्तिका	१७ ,,	वृषके चन्द्रमा प्रातः ७-१५ बजे, भौमप्रदोषव्रत, ऋणसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये श्रेष्ठव्रत, सौर पौषमासारम्भ, स्थायिजययोग रात्रि ९-५६ बजेसे रात्रि २-५५ बजेतक
चतुर्दशी	बुध	रोहिणी	१८ ,,	काशीमें पिशाचमोचन-यात्रा तथा दर्शन, पिशाचसे छुटकारा प्राप्त होनेके लिये श्राद्धतर्पण, पार्वणश्राद्ध, कपर्दीश्वरदर्शन, रवियोग रात्रि शेष ४-४७ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग सायं ५-१३ बजेतक, भद्रा रात्रि १०-२४ बजेसे
पूर्णिमा	गुरु	मृगशिरा	१९ ,,	भद्रा दिन ११-५२ बजेतक, मिथुनके चन्द्रमा सायं ५-२९ बजे, स्नान-दान-व्रत आदिकी पूर्णिमा, दत्तात्रेय-जयन्ती, नगरपरिक्रमा, मृगशिरा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमामें नमक-दानसे सुन्दर रूपकी प्राप्ति, पूर्णिमा तिथि रात्रि १२-२२ बजेतक, मृगशिरा नक्षत्र रात्रि ६-११ बजेतक

व्रतोत्सव-पर्व

पौष कृष्णपक्ष (२०-१२-२००२ से २-१-२००३ तक) सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	शुक्र	आर्द्रा	२० दिसम्बर	प्रतिपदा तिथि रात्रि १२-५० बजेतक, आर्द्रा नक्षत्र दिन-रात
द्वितीया	शनि	आर्द्रा	२१ ,,	कर्कके चन्द्रमा रात्रि १-२३ बजे, आर्द्रा नक्षत्र प्रात: ७-०५ बजेतक, त्रिपुष्करयोग प्रात: ७-०६ बजेसे रात्रि १२-४७ बजेतक
तृतीया	रवि	पुनर्वसु	२२ ,,	**राष्ट्रिय पौषमास,** सायन मकरराशिके सूर्य दिन २-४१ बजे, यायिजययोग प्रात:७-२९ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग, पुनर्वसु नक्षत्र प्रात: ७-२९ बजेतक, भद्रा दिन १२-३२ बजेसे रात्रि १२-१४ बजेतक
चतुर्थी	सोम	पुष्य	२३ ,,	श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ८-३९ बजे, सर्वार्थसिद्धियोग प्रात: ७-२३ बजेतक, पुष्य नक्षत्र प्रात: ७-२३ बजेतक, यायिजययोग रात्रि ११-१४ बजेसे
पञ्चमी	भौम	अश्लेषा	२४ ,,	सिंहके चन्द्रमा प्रात: ६-५२ बजे, रवियोग रात्रि शेष ६ बजेसे, अश्लेषा नक्षत्र प्रात: ६-५२ बजेतक तदुपरि मघा नक्षत्र रात्रि शेष ६-०१ बजेतक, सूर्योदय प्रात: ६-४७ बजे, सूर्यास्त सायं ५-१३ बजे
षष्ठी	बुध	पू०फा०	२५ ,,	**क्रिसमस दिवस,** रवियोग रात्रि शेष ४-४८ बजेतक, भद्रा रात्रि ८-०४ बजेसे
सप्तमी	गुरु	उ०फा०	२६ ,,	भद्रा प्रात: ७-०२ बजेतक, कन्याके चन्द्रमा दिन १०-२७ बजे, जोरमेला (तीन दिनतक पंजाब), यायिजययोग सायं ६-०१ बजेतक
अष्टमी	शुक्र	हस्त	२७ ,,	अष्टमी तिथि दिन ३-४८ बजेतक, अष्टका श्राद्ध (पार्वणश्राद्धकी तरह), हस्त नक्षत्र रात्रि १-४७ बजेतक
नवमी	शनि	चित्रा	२८ ,,	तुलाके चन्द्रमा दिन १२-५७ बजे, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि १२-०८ बजेसे, भद्रा रात्रि १२-१८ बजेसे
दशमी	रवि	स्वाती	२९ ,,	भद्रा दिन ११-०७ बजेतक, द्वादशी तिथिमें पारणसे लाभ, परंतु द्वादशी तिथिकी हानि है, इसलिये त्रयोदशी तिथिमें करें (त्रयोदशी तिथिके अन्तमें पारणका निषेध है), सफला एकादशीव्रत (स्मार्त्त), दशमी तिथि दिन ११-०७ बजेतक, पौष दशमी (जैन), पार्श्वनाथ-जयन्ती, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रके सूर्य दिन ३-५९ बजे, यायिजययोग दिन ११-०८ बजेसे रात्रि १०-२७ बजेतक
एकादशी	सोम	विशाखा	३० ,,	वृश्चिकके चन्द्रमा दिन ३-०२ बजे, यति-निष्कामगृही, वनस्थ, विधवा-वैष्णव आदिके लिये एकादशीव्रत, एकादशी तिथि प्रात: ८-४७ बजेतक तदुपरि द्वादशी तिथि प्रात: ६-३६ बजेतक, सूर्योदय प्रात: ६-४७ बजे, सूर्यास्त सायं ५-१३ बजे, श्रीरामानन्दीय बौधायन-जयन्ती, एकादशीव्रतका पारण एकादशी तिथिके अन्तमें प्रात: ८-४८ बजेसे
त्रयोदशी	भौम	अनुराधा	३१ ,,	भौम प्रदोषव्रत, ऋणसे छुटकारा प्राप्त होनेके लिये श्रेष्ठव्रत, स्थायिजययोग रात्रि शेष ४-३८ बजेसे, त्रयोदशी तिथि रात्रि शेष ४-३७ बजेतक, भद्रा रात्रि शेष ४-३८ बजेसे
चतुर्दशी	बुध	ज्येष्ठा	१ जनवरी	भद्रा दिन ३-४६ बजेतक, धनुके चन्द्रमा सायं ६-१९ बजे, **जनवरी १ सन् २००३ ई०, ईसाई नववर्षारम्भ,** मासशिवरात्रिव्रत
अमावास्या	गुरु	मूल	२ ,,	स्नान-दान-श्राद्धकी अमावास्या, बकुल अमावास्या (उड़ीसा), मूल नक्षत्र सायं ५-३० बजेतक

पौष शुक्लपक्ष (३-१-२००३ से १८-१-२००३ तक) सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	शुक्र	पू०षा०	३ जनवरी	मकरके चन्द्रमा रात्रि ११-०३ बजे, प्रतिपदा तिथि रात्रि १२-३८ बजेतक, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र सायं ५-०३ बजेतक
द्वितीया	शनि	उ०षा०	४ ,,	चन्द्रदर्शन, त्रिपुष्करयोग सायं ५-०३ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग
तृतीया	रवि	श्रवण	५ ,,	कुम्भके चन्द्रमा रात्रि शेष ६ बजे, यायिजययोग सायं ५-३२ बजेसे रात्रि १२-१४ बजेतक, रवियोग रात्रि १२-१५ बजेसे, पञ्चक आरम्भ रात्रि शेष ६-०१ बजेसे, सूर्योदय प्रात: ६-४६ बजे, सूर्यास्त सायं ५-१४ बजे
चतुर्थी	सोम	धनिष्ठा	६ ,,	रवियोग सायं ६-३० बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, भद्रा दिन १२-३३ बजेसे रात्रि १२-५० बजेतक
पञ्चमी	भौम	शतभिषा	७ ,,	पञ्चमी तिथि रात्रि १-५३ बजेतक, रवियोग रात्रि ८ बजेसे
षष्ठी	बुध	पू०भा०	८ ,,	मीनके चन्द्रमा दिन ३-२५ बजे, अन्नरूपा षष्ठी (बंगाल), रवियोग रात्रि ९-५५ बजेतक
सप्तमी	गुरु	उ०भा०	९ ,,	गुरु गोविन्द सिंह-जयन्ती, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि १२-१२ बजेसे, यायिजययोग रात्रि शेष ५-१८ बजेतक, सप्तमी तिथि रात्रि शेष ५-१८ बजेतक, भद्रा रात्रि शेष ५-१९ बजेसे
अष्टमी	शुक्र	रेवती	१० ,,	भद्रा सायं ६-२१ बजेतक, मेषके चन्द्रमा रात्रि २-४३ बजे, सर्वार्थामृतसिद्धियोग रात्रि २-४३ बजेतक, स्थायिजययोग तथा रवियोग रात्रि २-४४ बजेसे, पञ्चक समाप्त रात्रि २-४३ बजे, अष्टमी तिथि दिन-रात
अष्टमी	शनि	अश्विनी	११ ,,	अष्टमी तिथि प्रात: ७-२४ बजेतक, उत्तराषाढ़ा नक्षत्रके सूर्य सायं ४-३६ बजे, रवियोग तथा यायिजययोग रात्रि शेष ५-२१ बजेसे, अश्विनी नक्षत्र रात्रि शेष ५-२० बजेतक
नवमी	रवि	भरणी	१२ ,,	यायिजययोग दिन ९-३६ बजेतक, नवमी तिथि दिन ९-३६ बजेतक
दशमी	सोम	भरणी	१३ ,,	वृषके चन्द्रमा दिन २-२७ बजे, भरणी नक्षत्र प्रात: ७-५३ बजेतक, लोहरी (पंजाब-जम्बू-काश्मीर), साम्ब दशमी, सूर्यपूजा (उड़ीसा), भद्रा रात्रि १२-३४ बजेसे
एकादशी	भौम	कृत्तिका	१४ ,,	भद्रा दिन १-२७ बजेतक, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका), मन्वादि एकादशी, मकरराशिके सूर्यकी संक्रान्ति रात्रि १०-४९ बजे, दूसरे दिन पुण्यकाल, देवताओंके लिये दिन और दैत्योंके लिये रात्रि, **सूर्य उत्तरायण, खरमास समाप्त, 'शिशिर-ऋतु'** पोंगल (दक्षिण भारत), रवियोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग दिन १०-१० बजेतक
द्वादशी	बुध	रोहिणी	१५ ,,	मिथुनके चन्द्रमा रात्रि १२-५३ बजे, प्रदोषव्रत, सौर माघमासारम्भ, मकरसंक्रान्तिजन्य पुण्यकाल,खिचड़ी-मूँग-लड्डू (मिठाई) आदिका दान, प्रयागमें अथवा गोदावरीमें स्नान, मृत्युबाण रात्रि १०-४१ बजेसे, सर्वार्थसिद्धियोग दिन १२-०८ बजेतक, द्वादशी तिथि दिन २-५१ बजेतक
त्रयोदशी	गुरु	मृगशिरा	१६ ,,	मृत्युबाण रात्रि ९-४६ बजेतक, रवियोग दिन १-३९ बजेसे, मृगशिरा नक्षत्र दिन १-३८ बजेतक
चतुर्दशी	शुक्र	आर्द्रा	१७ ,,	चतुर्दशी तिथि सायं ४-१५ बजेतक, व्रतकी पूर्णिमा, रवियोग दिन २-४० बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग, भद्रा सायं ४-१६ बजेसे रात्रि शेष ४-१२ बजेतक
पूर्णिमा	शनि	पुनर्वसु	१८ ,,	कर्कके चन्द्रमा दिन ९-०१ बजे, स्नान-दान आदिकी पूर्णिमा, शाकम्भरी-जयन्ती, माघ स्नान-व्रत-यम-नियम आजसे आरम्भ, प्रतिदिन सूर्योदयके समय समुद्र-काशी-दशाश्वमेध अथवा प्रयागमें स्नान, यायिजययोग दिन ३-०९ बजेतक, पूर्णिमा तिथि सायं ४-०८ बजेतक

साधनोपयोगी पत्र

(१)

सबका स्वभाव एक-सा नहीं होता

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण! आपका लम्बा पत्र मिला। आपके साथ घरमें तथा बाहर किसीके भी स्वभावका मेल नहीं खाता, इसलिये आप सदा दुःखी रहते हैं और ऐसा मानते हैं कि किसीके द्वारा भी आपके मनकी आशा कभी पूरी नहीं हो सकती, सो ठीक ही है। सबके स्वभावका मेल खाना कभी सम्भव नहीं है। प्रकृतिकी विषमतासे ही जगत् बनता है। वस्तुतः इन विभिन्नताओंका नाम ही जगत् है। विभिन्न प्रकृति, विभिन्न स्वभाव, विभिन्न परिस्थिति, विभिन्न मनोवृत्ति आदि न हों तो जगत् ही न रहे। जैसे जगत्‌में समान आकृतिके दो मनुष्य नहीं मिलते, वैसे ही सर्वांशमें एक-से स्वभावके दो मनुष्य नहीं हो सकते। यह स्वभाव-भेद भी भगवान्‌की विचित्र सृष्टिका एक सौन्दर्य है। आपको दुःख इसीलिये होता है कि आप सबका स्वभाव अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं और सबसे अपने स्वभावके अनुकूल ही अपने सुखकी आशा पूरी कराना चाहते हैं।

क्या आपका स्वभाव घर तथा बाहरवालोंके सर्वथा अनुकूल है? क्या आप उन सबकी आशा उनके स्वभावानुसार पूर्ण करते हैं? यदि नहीं तो फिर आप उनसे ऐसी आशा क्यों करते हैं? यह आशा ही सारे दुःखोंका मूल है। 'दूसरे प्राणियोंसे, पदार्थोंसे, स्थितियोंसे मुझे सुख मिलेगा'—यह आशा बिलकुल छोड़ दें। आप स्वभावसे सुखी हैं, आत्माका स्वरूप ही नित्य सुख है। दूसरोंसे आशा करके आप स्वयं दुःखोंको बुलाकर दुःखी होते हैं। दूसरोंका स्वभाव बदलनेकी इच्छा मत कीजिये, स्वयं अपने स्वभावको बदलिये। दूसरोंके स्वभावमें अनुकूलताका अनुभव कीजिये। दूसरोंके स्वभावको अपने अनुकूल बनानेका भी यही परम साधन है कि आप प्रतिकूल स्वभाववालेके द्वारा सुख प्राप्त करनेकी आशाको सर्वथा छोड़ दें।

प्रतिकूल स्वभाववालेका विनाश देखनेकी कभी-कभी क्षीण-सी इच्छा होती है, सो इसमें क्या आश्चर्य है? प्रतिकूलतामें द्वेष होता है और द्वेष्य वस्तुके विनाशकी इच्छा सहज ही होती है। पर इसे कभी-कभी होनेवाली 'क्षीण-सी इच्छा' नहीं समझनी चाहिये। 'क्षीण' रूपमें तथा 'कभी-कभी' तो आप उसे देख पाते हैं, वस्तुतः तो वह मनमें समायी तथा छायी है। पर यह है बहुत ही बुरी चीज! विरोधी स्वभाववालेका विनाश तो उसके प्रारब्धमें होगा, तभी होगा, पर उसका विनाश चाहनेवालेका बुरा तत्काल हो जाता है। दूसरेके बुरेकी इच्छा करनेवाला कभी सुखी नहीं हो सकता, उसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती। '**अशान्तस्य कुतः सुखम्**'। वह तो रात-दिन जलता रहता है और वह ज्यों-ज्यों अपने विरोधी स्वभाववालेका विरोध करता है, उसे दुःख पहुँचाने या गिरानेका प्रयत्न करता है, ज्यों-ज्यों उसके मनमें घृणा, द्वेष, क्रोध और हिंसाके भाव उत्पन्न होते तथा बढ़ते हैं, त्यों-ही-त्यों उसके विरोधीमें भी ठीक वैसे ही विरोधी तथा दूषित भाव उत्पन्न होते और बढ़ते रहते हैं। परिणाममें दोनोंका जीवन दुःखमय बन जाता है। विरोधीके स्वभावको अपने अनुकूल बनाना हो तो उसके स्वभावके प्रति सम्मान, प्रेमका भाव धारण करना चाहिये और उसके विरोधी स्वभावकी आलोचना या उसपर टीका-टिप्पणी न करके उसके अन्य गुणोंकी प्रशंसा तथा उनके लिये उसका सम्मान करना चाहिये।

वही मनुष्य श्रेष्ठ है और वही वस्तुतः सुखी है, जो बड़े-से-बड़े विरोधी स्वभाववाले प्राणी-पदार्थके स्वभावसे अपने स्वभावको विचलित नहीं होने देता। जिसका स्थिर, शान्त, प्रेमपूर्ण उदार स्वभाव किसी भी परिस्थितिमें डिगता नहीं, वरं अपनी सत्य, सुन्दर स्वभाव-निष्ठासे जो विरोधी स्वभाववालेको अनुकूल बना लेता है। जिसका चित्त विरोधी स्वभावके प्राणी-पदार्थोंके सामने आनेपर क्षुब्ध हो जाता है, चञ्चल होकर विकारी बन जाता है और विरोधीके प्रति घृणा करके उसका अनिष्ट-चिन्तन करने लगता है, ऐसे निर्बल चित्तका मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता और न वह परमार्थ-साधनके मार्गपर ही अग्रसर हो सकता है।

दूसरेके स्वभावको सहन करके उसका हितचिन्तन करनेवाला मनुष्य भगवान्‌के मार्गपर निश्चित आगे बढ़ता है। कदाचित् ऐसा न हो और किसीका स्वभाव इतना दूषित जान पड़े कि सहन करना असह्य हो जाय तो वहाँ करुणहृदयसे करुणामय भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि 'प्रभो! इस भूले हुए प्राणीको आप सद्बुद्धि दें, जिससे इसके दुःखोंका नाश तथा इसका परम हित हो और मेरे स्वभावको ऐसा निर्मल तथा सुदृढ़ बना दें कि वह किसी भी स्थितिमें आपकी मधुर स्मृतिको छोड़कर—किसीके स्वभावके कारण पूर्ण क्षुब्ध न हो।' हृदयकी सच्ची प्रार्थनाको भगवान् पूरी करते हैं।

फिर, एक बात यह भी है कि आपके स्वभावसे जो प्रतिकूल है, वह वस्तु अच्छी नहीं है, सो बात नहीं है तथा

न यही बात है कि जो वस्तु आपके लिये अनावश्यक है, वह दूसरेके लिये भी वैसी ही हो। संसारमें विभिन्न रुचि तथा प्रकृतिके मनुष्य हैं और उनकी विभिन्न रुचियोंके अनुसार विभिन्न स्वभावके प्राणी-पदार्थ हैं तथा यथास्थान और यथाधिकार उन सभीकी उपयोगिता है।

अतएव जो सबके स्वभावके अनुकूल होकर, सबसे हिल-मिलकर रहता है। काम-क्रोध-लोभ, भय-विषाद आदि जिसके चित्तको कभी चलायमान नहीं कर सकते। किसीसे भी किसी प्रकारके सुखकी आशा न करके जो सबकी सेवा करता है, सबको सुख पहुँचाता है तथा सबके साथ रहते हुए ही जो नित्य निर्विकार, शान्त तथा आनन्दमग्न रह सकता है, वही सच्चा साधक है और वही नित्य-सुखके मार्गपर आरूढ़ है। समस्त चराचर संसार मङ्गलमय भगवान्‌की अभिव्यक्ति है, सारे भावोंके मूल उद्गम भगवान् ही हैं। यहाँ जो कुछ है, भगवान् हैं, जो कुछ हो रहा है, भगवान्‌की लीला है। इन सभीमें आनन्दमय भगवान् भरे हैं, यों मानकर जो प्रत्येक परिस्थितिमें, प्रत्येक संयोग-वियोगमें, प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल स्वभावमें क्षोभरहित, निर्विकार, शान्त और सुखी रह सकता है, वही सुखी है और उसीको परम सुखरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है। आप ऐसा करेंगे तो सुखी हो जायँगे, यह निश्चित है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

संसारकी सुखमयता

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि संसार दुःखमय भी है तथा दुःखलेशशून्य सर्वथा आनन्दमय भी है। जहाँ भगवान्‌की विस्मृति है, जहाँ केवल विषय-भोगोंके प्राप्त करनेकी इच्छा, विषय-भोगोंसे सुखकी आशा तथा विषय-भोगोंमें प्रीति है, वहाँ संसार सर्वथा 'दुःखमय' है और जहाँ संसारके विषयरूपमें अप्रीति, विषयोंमें सुखबुद्धिका अभाव, भगवत्प्रीत्यर्थ ही विषय-सेवन, भगवत्-लीलाकी पूर्तिके लिये ही भोग-स्वीकार तथा संसारमें सर्वत्र सर्वथा भगवान्‌की संनिधिका अनुभव है, वहाँ संसार 'परमानन्दमय' है। वस्तुतः संसार आनन्दमय भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति है तथा यह भगवान्‌की ही आनन्दमयी लीला है, इसलिये यह स्वरूपतः आनन्दमय ही है। दुःख तो सर्वत्र भगवान्‌की अनुभूतिके तथा सर्वथा भगवान्‌की स्मृतिके अभावमें ही है। वस्तुतः सर्वत्र मङ्गलमय आनन्दमय भगवान्‌की सत्ता है, मङ्गलमय आनन्दमय भगवान्‌का आनन्द है तथा मङ्गलमय आनन्दमय भगवान्‌के सौन्दर्यका प्रसार है। भगवान्‌के इस मङ्गलमय आनन्दमय स्वरूपमें जिनकी दृष्टि है, प्रीति है और प्रतिष्ठा है, उनके लिये संसार आनन्दमय है एवं वे ही संसारमें भगवान्‌के आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करते हैं। कोई भी बाह्य स्थिति न तो उनके इस आभ्यन्तरिक नित्य आनन्दको हटा सकती है और न आनन्द ही प्राप्त करा सकती है।

संसारके विषय-भोगोंमें जिनकी आसक्ति नहीं, कामना नहीं, ममता नहीं तथा भगवान्‌में जिनकी आसक्ति, ममता एवं भगवत्-प्राप्ति या प्रीतिकी कामना है, वे विषय-भोगोंमें रहते हुए उनके स्पर्शसे अलिप्त रहते हैं और वह विषय-भोग भगवान्‌की पूजाकी सामग्री—भगवत्कार्यके साधन बनकर उन्हें नित्य भगवान्‌का सुख-संस्पर्श कराता रहता है। यों नित्य ब्रह्म-संस्पर्शको प्राप्त पुरुष नित्य ब्रह्म-सुखमें—भगवत्प्रेमानन्दमें निमग्न रहते हुए ही संसारमें भगवान्‌का कार्य करते रहते हैं।

इसके विपरीत बाहरसे जो विषय-भोगोंके त्यागी-से दीखते हैं और बाहरी त्यागके चिह्नोंको भी धारण करते हैं, पर जिनके मनमें विषयासक्ति, विषय-कामना तथा संसारके प्राणी-पदार्थोंमें इन्द्रियसुखार्थ ममता है, वे दुःखोंसे मुक्त नहीं हो सकते; क्योंकि भगवत्-विस्मृतिरूप परम दुःखमय संसारको उन्होंने मनमें बसा रखा है, उनके लिये संसार सदा दुःखरूप ही है।

इसके विपरीत, जिनके मनमें भगवान् बसते हैं, जो नित्य भगवत्सम्पर्कमें रहते हैं, जिनकी अहंता भगवान्‌की अनुगामितामें परिणत हो चुकी है, जिनकी सारी ममता भगवान्‌के चरणकमलोंमें केन्द्रित हो चुकी है, जिनकी आसक्ति भगवान्‌की स्वरूप-लीला-सम्पत्तिमें समाहित हो गयी है और जिनकी कामना केवल श्रीभगवान्‌के प्रेमराज्यमें ही विचरण करती है, उनका प्रत्येक कार्य भगवत्प्रीतिकी प्रेरणासे तथा भगवत्-संनिधिकी अनुभूतिमें होता है और उनकी प्रत्येक वस्तु भगवान्‌के प्रति समर्पित होकर धन्य हो जाती है, वे चाहे बाहरसे त्यागके चिह्न न धारण करते हों, पर वे ही यथार्थ त्यागी हैं। त्यागीको ही शान्ति मिलती है—**'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** और जहाँ शान्ति है, वहीं सुख है; अतएव ऐसे पुरुषोंके लिये संसार सर्वथा सुखमय है; क्योंकि वह भगवान्‌का लीला-क्षेत्र है और प्राणिमात्रके कल्याणके लिये होनेवाली मधुर लीलासे ओतप्रोत है। ऐसे ही पुरुष संसारमें धन्य हैं। इस दृष्टिसे संसारको आनन्दसे उत्पन्न, आनन्दमें स्थित और आनन्दमें ही विलीन होनेवाला जानकर आनन्दस्वरूपका अनुभव करना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आस्था और विश्वासकी विजय

बात उन दिनोंकी है जब मैं दसवीं कक्षामें पढ़ता था, मेरे गाँवसे विद्यालय लगभग छः किलोमीटरकी दूरी पर था, तब कच्ची सड़क थी, साइकिलसे गाँवके पढ़नेवाले छात्रोंकी टोलियाँ निकलती थीं, रास्तेमें पड़नेवाले गाँवोंसे भी ऐसी ही टोलियाँ मिलती जाती थीं, इस तरह विद्यालय पहुँचते-पहुँचते एक लम्बा कारवाँ-सा बन जाता था। चूँकि मैं गीता-रामायणका बचपनसे ही पाठ आदि करता था। अतः मेरे इस आध्यात्मिक स्वभाव एवं धार्मिक-रुचिके कारण सभी कनिष्ठ-वरिष्ठ साथी मेरा सम्मान करते थे और मुझसे अपेक्षा भी रखते थे कि मैं कुछ गीता-रामायणकी कथाएँ सुनाता चलूँ।

सुरम्य, मनोरम चम्बल घाटीकी साँपकी तरह बल खाती सड़कके किनारे कई प्राचीन मन्दिर, मठ, अखाड़े आदि हैं। मैं विद्यालय आते-जाते समय इन पावन स्थलोंको श्रद्धाभिनत अभिवादन किया करता था, इतना ही नहीं जब इन स्थलोंपर बाहरसे कोई महात्मा, सिद्ध योगी-जन आदि पधारते थे तो मैं उनके प्रवचनोंका लाभ लेने एवं दर्शन करने भी नियमितरूपसे जाता, मेरा अनुकरणकर मेरे साथ चलनेवाला छात्र-समूह भी जाता। इस तरह भगवत्प्रेरणासे सहजहीमें श्रद्धाभक्ति और सदाचारका अनुकरणीय वातावरण बन जाता था।

हाईस्कूल बोर्डकी परीक्षाएँ चल रही थीं, अपने गाँव-क्षेत्रसे मैं ही अकेला इस परीक्षामें बैठा था। प्रातः पाँच बजे घरसे साइकिलसे चलता था ताकि समयसे कुछ पहले पहुँच सकूँ। एक दिन कुछ देरीसे घरसे निकला, सोचा था तेज साइकिल चलाकर देरीकी पूर्ति कर लूँगा। करीब तीन किलोमीटर चलनेके बाद साइकिल पंचर हो गयी, रास्तेमें कोई रिपेयरकी दूकान भी नहीं थी, फलतः साइकिल लेकर पैदल चलनेके सिवाय और कोई विकल्प ही नहीं था।

बस, भगवान्‌का नाम लेकर तेज गतिसे चलता रहा। फिर भी लगभग बीस मिनटकी देरीसे चल रहा था। तभी वह जगह आ गयी, जहाँ मठके सामने पीपलके नीचे बने चबूतरेपर एक अघोरी-जैसे फक्कड़ साधु विगत कुछ महीनोंसे लेटे रहते थे, मैं आते-जाते समय उन्हें प्रणाम करता था, परंतु वे मेरे अभिवादनका कोई प्रत्युत्तर भी नहीं देते थे। फिर भी मैं रोज उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम करके ही निकलता था। उस दिन काफी देरी एवं परीक्षामें शामिल होनेकी चिन्तावश मैं उन्हें प्रणाम किये बिना ही तेज चालसे आगे निकल गया। अभी करीब पंद्रह कदम ही आगे निकल पाया था कि 'रुको बेटा' की आकर्षक एवं मधुर आवाजने मुझे सहसा ही टोका, मैं जल्दीमें था, फिर भी महात्माकी आकर्षक आवाजपर पीछे लौटकर पीपलके नीचे बने उस चबूतरेके पास आ खड़ा हुआ, जहाँ वे फकीर लेटे हुए थे।

मुझे पास आया देखकर वे बोले—'भगवान्‌पर भरोसा रखता है तो घबड़ा क्यों रहा है? आरामसे जा, आज तेरी परीक्षा आधा घंटा देरसे शुरू होगी। समयसे पहुँच जाओगे।' मैं यन्त्रवत् चल पड़ा, विद्यालय पहुँचकर ज्ञात हुआ कि आज आधा घंटा देरसे परीक्षा शुरू होगी। कारण यह बताया गया कि आज भूलवश प्रश्न-पत्रका गलत पैकिट आ गया, सो उसे बदलनेके लिये केन्द्र-व्यवस्थापक बाहर गये हैं। इस तरह उस दिन आधा घंटा देरीसे परीक्षा हुई, जिसके कारण ही परीक्षामें समयसे मेरा शामिल होना सम्भव हो सका। वापस लौटते समय मैं अनेक प्रश्न पूछनेकी अभिलाषा लिये जब उस जगहपर आया तो ज्ञात हुआ कि वे महात्मा सुबहसे ही कहीं चले गये हैं। इसके बाद वे फिर उधर कभी नहीं दिखे, परंतु मेरी आस्था और विश्वास साधु-अभिवादनके परिप्रेक्ष्यमें तबसे अचल और अटल है।

—इंदल सिंह भदौरिया

(२)

मांस खाना महापाप

हम पंजाबके रहनेवाले हैं। जब वहाँ गड़बड़ी हुई थी उस समय मैं छोटा-सा बच्चा था। हमारे घरमें मांसका सेवन होता और मुझे भी मांस खिलाया जाता था। मैं मांस खा तो लेता, पर उसके दो-तीन घंटे बाद

ही मेरे दस्त होने लगते। घरवाले दवा दिलाते तो ठीक हो जाता। फिर मांस खाता तो फिर वैसा ही होता। सन् १९४७ ई० में जब हम यहाँ आये तो हमारी हालत कुछ और ही थी। दिन गुजरते गये और भगवान्‌की दयासे हमलोग कुछ काममें लग गये। फिर यहाँ भी वही मांसका सेवन होने लगा। एक दिन घरवालोंने मुझे कुछ पैसे देकर मांस लानेको भेजा। मैं कसाईके अड्डेपर पहुँचा तो वहाँ बहुतसे खरीदार खड़े थे। मांस थोड़ा था, अतः उस कसाईने कहा—'मैं और बकरा बनाऊँगा, तब आपको दूँगा।' हम सब वहाँ बैठ गये। तदनन्तर उसने दूसरे बकरेके साथ जो सलूक किया, वह बड़ा ही भयानक था। मैंने इससे पहले ऐसा बीभत्स दृश्य कभी देखा ही नहीं था। मुझसे वह दृश्य देखा नहीं गया। मेरा जी घबराने लगा और मैं वहाँसे तुरंत भाग आया। मुझे कबीरजीका वह दोहा याद आ गया—

बकरी पाती खाति है ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवाल॥

मैंने घर लौटकर कह दिया कि उसके पास मांस ख़त्म हो गया है। साथ ही मैंने घरवालोंसे यह भी कह दिया कि आपलोग अगर मांस खायँगे तो मैं घरसे चला जाता हूँ। घरवालोंने कहा कि हम मांस खाना छोड़ देंगे। तबसे हमारे घरवालोंने कभी मांस खानेका इरादातक नहीं किया। मैं अपने सभी भाइयोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि वे सबसे पहले तुरंत मांस खाना छोड़ दें। मांसके लिये जिस निर्दयतासे जीव मारे जाते हैं, वह बड़ा भारी पाप है। 'कल्याण' पढ़नेवालोंको तो अभी प्रतिज्ञा ही कर लेनी चाहिये कि वे कभी मांस नहीं खायँगे।

—मदनलाल पिहोवा

(३)

गोमूत्र-सेवनसे कैंसरका इलाज

मेरी ताई माँको गलेकी भोजन-नलीमें गाँठ होनेसे भोजन करना मुश्किल हो गया था। मैंने बाँसवाड़ा जाकर दवा करवायी। एक माहतक इलाज चला, पर कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। तब गुजरातमें मोड़ासा जाकर प्राईवेट अस्पतालमें दिखाया, वहाँ गलेमें गाँठ होना बताया गया और ऑपरेशन करवानेको कहा। ऑपरेशन करवाया और १५ दिन बादतक कोई लाभ न होनेपर पुनः वापस जाकर ऑपरेशन करवाया—दो गाँठें निकलीं। डॉ० साहबने गाँठोंको जाँचके लिये लैबोरेटरीमें भेजा। वहाँसे प्राप्त रिपोर्टमें भोजन-नलीमें कैंसर होना बताया गया। ऐसी दुःखद घटना सुनकर तो पूरे परिवारवाले हताश और परेशान हो गये। मेरे दादाजी देवी माँका स्मरण कर अहमदाबाद इलाजके लिये गये, वहाँ भी डॉ० साहबने कैंसर होना बताया तथा २१ दिनकी दवा दी। हम वापस घर चले आये। ताई माँके स्वास्थ्यमें कोई सुधार न हो सका था। हमलोग हताश-से हो गये थे कि अब क्या करें, कौन-सा उपाय करें? सभी भगवान्‌को याद करने लगे कि कोई उपाय पता चले, जिससे इस बीमारीसे छुटकारा मिले। ऐसे ही एक दिन स्वाध्याय करते समय 'कल्याण'में 'गोमूत्रसे जटिल रोगोंका इलाज' लेख पढ़कर मेरे दादाजी उसी दिनसे दोनों समय गोमूत्र लाकर मेरी ताई माँको सेवन करवाने लगे। २१ दिन बाद पुनः अहमदाबाद जाकर जाँच करवायी। डॉक्टरने कहा २१ दिनकी दवा और ले लो, उसके बाद सिविलमें भर्ती होना पड़ेगा। घर आकर नियमित गोमूत्रका सेवन कराया गया तथा प्रभुका स्मरण चलता रहा। २१ दिन बाद पुनः अहमदाबाद जाकर जाँच करवायी और डॉक्टरके कहनेपर ब्लडकी भी जाँच करवायी। रिपोर्ट देखकर डॉक्टर आश्चर्यमें पड़ गये कि इतनी जटिल बीमारी सिर्फ ४२ दिनकी दवा लेनेपर कैसे जड़से नष्ट हो गयी? मेरी ताई माँ पहलेकी तरह सामान्य भोजन भी करने लगीं। यह सुनकर वे आश्चर्य करने लगे। उन्होंने आश्वासन दिया कि रिपोर्ट सही है। बीमारी अब नहीं रही। जब उन्हें बताया गया कि ताई माँको नियमित रूपसे गोमूत्रका सेवन कराया गया है तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वास्तवमें गोमूत्रमें ऐसी शक्ति है कि श्रद्धा-विश्वासके साथ इसका विधिपूर्वक सेवन करनेसे बड़ी-से-बड़ी बीमारी सहज ही दूर हो जाती है और मन-बुद्धिमें निर्मलता भी आती है। यह ध्यान रखना चाहिये कि मूत्र शुद्ध भारतीय नस्लकी गायका ही हो।

—जितेन्द्र जोशी

(४)

मूक मानवता

एक बार सुरक्षाकोषके लिये कार्यक्रम सम्पन्न करने मेरा पूना जाना हुआ था। वहाँ भाई नारायण सोलंकीने एक छोटी-सी किंतु मानवताभरी बात वहाँके एक सज्जन व्यापारीकी सुनायी।

पूनामें कुछ वर्षों पहले जो बाढ़ आयी थी, उसमें बहुतसे घर डूब गये थे। एक गुजराती कुटुम्ब घर नष्ट हो जानेके कारण चौराहेपर आश्रय खोजता छोटे-से बच्चेके साथ खड़ा था।

वहाँसे बहुत लोग निकलते। सभी—'क्यों भाई, आप तो बड़ी मुसीबतमें आ पड़े? हमारे लायक कोई काम-काज हो तो कहना।' ऐसा कहकर मौखिक सहानुभूति दिखाकर आगे बढ़ जाते।

मोटरपर सवार होकर राजनैतिक कार्यकर्ता आये। इन्होंने भी सहानुभूति और आश्वासनके दो शब्द कहकर अपना रास्ता पकड़ा।

किसीने यह विचार नहीं किया कि बिना घरबारका बना हुआ यह छोटे-से बच्चेवाला कुटुम्ब रातको कहाँ रहेगा? यों सुबहसे शामतक वह कुटुम्ब भूखा-प्यासा रास्तेके चौराहेपर खड़ा रहा। उधरसे जिसके साथ आँखकी भी जान-पहचान नहीं, ऐसे एक राजस्थानी सज्जन निकले। समाचार पूछकर सारी परिस्थितिका अनुमान कर लिया और वे उस कुटुम्बको अपने घर ले गये। कुछ भी कहे-सुने बिना ही उनके रहने तथा खाने-पीनेकी सारी व्यवस्था उन्होंने कर दी। सिलाईके कामके लिये एक मशीन भी खरीद दी और उस कुटुम्बको रोजी कमानेवाला भी बना दिया।

अपने साथ रखकर भाईकी तरह उनकी सँभाल रखी और वह भी पूरे एक वर्षतक। जब वे भाई अपने पैरोंपर खड़े रहने योग्य हो गये, तब उन्होंने अलग घर ले लिया और उसमें रहनेको चले गये।

इस मूक मानवताका विज्ञापन उन सज्जनने कभी कहीं भी नहीं किया। न कभी पत्रोंमें नाम तथा फोटो छपवाये। परंतु जिनकी सेवा-सँभाल की, वे भाई तो उपकारवश इनकी गुण-गाथा गाया ही करते हैं। (अखण्ड आनन्द)

—मूलराज अंजारिया

(५)

सहजधर्म

सन् १९५२ की बात है। श्रीसत्यस्वरूप महात्मा शाहंशाहजी अमरकण्टकसे शहडोल जा रहे थे। गाड़ीमें बहुत अधिक भीड़ थी, परंतु महात्माजीको शहडोल जाना अत्यावश्यक था। वे उसी भीड़में बड़ी सावधानीसे घुस गये और चुपचाप एक स्थानपर जाकर खड़े हो गये। वहींपर एक अप-टू-डेट सज्जन बैठे हुए थे। उन्होंने महात्माजीको देखकर बिगड़कर कहा—'यह ढोंगी साधू खा-खाकर मोटा-ताजा बना हुआ है। हरामकी वस्तु मिलती है और बिना टिकट जहाँ चाहें वहाँ चल पड़ते हैं। इन्हीं ढोंगियोंने तो भारतको बर्बाद कर दिया है। ...... चल हट सिरपरसे ......' इस प्रकार वे महात्माजीको बुरी-भली सुनाने लगे। महात्माजीने कोई प्रतिवाद नहीं किया, वे खड़े-खड़े मुस्कराने लगे।

उसी समय टिकट-परीक्षक इसी डिब्बेमें टिकट निरीक्षण करनेके लिये आ गया। अप-टू-डेट सज्जन उस टिकटनिरीक्षकको देखकर घबरा गये। इधर-उधर देखने लगे। तबतक उन्हीं सज्जन महोदयसे टिकट-परीक्षकने कहा—'टिकट!' वे तो मुँह बनाने-बिगाड़ने लगे। इतनेमें ही महात्माजीने कहा—'बाबू! इनका टिकट मेरे पास है, यह लीजिये।' यह सुनकर जब उस टिकट बाबूने ऊपर महात्माजीकी ओर देखा तो उन्हें पहचानकर सभी कुछ छोड़ 'स्वामीजी', 'स्वामीजी' कहता हुआ उनके चरणोंपर पड़ गया और उन्हें उठाकर प्रथम श्रेणीमें ले जाने लगा। वे अप-टू-डेट सज्जन महोदय उठकर रोते हुए स्वामीजीसे कहने लगे—'मुझे क्षमा कर दें।' स्वामीजीने हँसते हुए कहा—'भैया! इसमें क्षमा-प्रार्थनाकी तो कोई आवश्यकता नहीं। तुमने अपराध ही क्या किया है? वह तो तुम्हारी सहज प्रवृत्ति थी और मैंने भी क्या किया, जिसपर तुम मेरे कृतज्ञ होते हो? भैया! मेरी प्रसन्नताका पार नहीं है; क्योंकि मुझ तुच्छकी सेवाको तुमने स्वीकार कर लिया। मैंने कोई नया कार्य थोड़े ही किया। यह तो मेरा सहजधर्म है, जिसका मैंने पालन किया है।' वे सज्जन तो पानी-पानी हो गये।

महात्माजीके इस वाक्यको सुनकर मेरा हृदय हर्षोत्फुल्ल हो उठा। आज भी जब मैं महात्माजीका सहज धार्मिक स्वभाव सोचता हूँ तो मुझे बड़ी प्रेरणा मिलती है।

—मानसकेसरी कुमुदजी रामायणी

मनन करने योग्य

व्यवहारमें भगवद्दर्शन

गुजरातमें एक-दूसरेसे मिलते समय 'कृष्ण!' कहते हैं। उत्तर भारतमें यदि कोई मिलता है तो 'राम-राम!' कहनेका रिवाज है। दो बार 'राम' कहनेकी भावना यह है कि मेरे अंदर वही राम विराजते हैं जो आपमें हैं। ऐसी भावना रखनेसे बहुत शान्ति मिलती है। जिसे जीवमात्रके दर्शनसे भगवान् याद आयें वही सच्चा वैष्णव है। प्रत्येक मनुष्यमें रामजी विराजते हैं, ऐसा याद रखें, इससे आपका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय हो जायगा।

घरमें नौकर कुछ गलती करता है तो हम उसको डाँटते हैं। यदि लड़का गलती करता है तो चला लेते हैं। लेकिन यह याद रखना चाहिये कि नौकरमें भी वही भगवान् हैं। जैसी ध्वनि वैसी प्रतिध्वनि, आपकी आत्माको प्रतिकूल लगे, ऐसा व्यवहार दूसरेके साथ मत कीजिये तो आपका व्यवहार शुद्ध होगा और भक्तिमें आनन्द आयेगा।

रामजीकी सेवामें भगवान्‌को चन्दन-पुष्प अर्पण करें—इतनेसे ही भक्ति परिपूर्ण नहीं होती। वह तो भक्तिकी एक प्रक्रिया है। भक्ति तो तब होती है जब सबमें भक्तिभाव जगता है। मनुष्य भक्ति तो करता है, किंतु व्यवहारको शुद्ध नहीं रखता। व्यवहार और भक्तिमें बहुत फर्क नहीं है। अमुक समय व्यवहारका, अमुक समय भक्तिका—ऐसा नहीं होना चाहिये। सब जगह सतत भक्ति करनी चाहिये।

सब लौकिक कार्योंसे निवृत्त होनेके बाद जो समय मिले उसमें भक्ति करें, उसे 'मर्यादा-भक्ति' कहते हैं। किंतु वास्तवमें व्यवहार और भक्ति अलग नहीं हैं। भक्त बाजारमें सब्जी लेने जाते हैं, वह भी भक्ति है। प्रत्येक कार्यमें ईश्वरका अनुसन्धान होना है जिसे कहते हैं 'पुष्टि भक्ति'।

प्रभुका स्मरण करते-करते घरका काम करे, यह भी भक्ति है। यह घर भगवान्‌का है और यदि घरमें कूड़ा-करकट होगा तो भगवान् नाराज होंगे। हमारे भोजनको पहले श्रीनारायण जीमते हैं इस भावनासे बनाया हुआ भोजन भी भक्ति है। बहुत-सी माताएँ कहती हैं कि हमारा कुटुम्ब बड़ा है और पूरा दिन रसोईघरमें ही बीत जाता है, इसलिये हम सेवा-पूजा नहीं कर सकती हैं। किंतु सबमें भगवत्-रूप मानकर सबकी सेवा करना—यह भी भक्ति है। भक्ति-भावनाके लिये धंधा छोड़नेकी जरूरत नहीं है। भगवान्‌के लिये जो भी काम करे वह भक्ति है। क्रियाका महत्त्व नहीं है, किंतु क्रियाके पीछेकी भावना महत्त्वकी चीज है। मन्दिरमें बैठकर माला जपे और विचार स्वार्थके करे, उसके बदले यदि मन्दिरमें बुहारीकी सेवा करे, वह अधिक श्रेष्ठ है।

व्यवहार करे, व्यवहारमें विवेककी जरूरत है। शरीरको थकावट लगे तो मनको भी थकावट लगती है, फिर वह दूसरी प्रवृत्ति ढूँढ़ता है। भक्तिके लिये अपनी प्रवृत्तिका त्याग करनेकी जरूरत नहीं है, किंतु आपके प्रत्येक व्यवहारको भक्तिमय बनना चाहिये।

बड़े-बड़े संत भी शुरूमें धंधा ही करते थे। उन्हें धंधा करते-करते ही प्रभु-प्राप्ति होती थी। नामदेवजी दर्जी थे। गोरा कुम्हार मिट्टीके बर्तन बनाते थे। कबीरजी जुलाहे थे। सेना नाविक हजामतका धंधा करते थे। ग्राहकमें भी भगवान्‌का अनुभव करना चाहिये। प्राचीन कालमें महाज्ञानी ब्राह्मण भी वैश्यके घर सत्संगके लिये जाते थे। जाजलि ऋषिकी कथा है। एक दिन उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी कि सत्संगके लिये जनकपुरीमें तुलाधार वैश्यके यहाँ जाइये।

उस समय तुलाधार दूकानमें बैठे थे। उन्होंने जाजलि ऋषिसे पूछा कि आप आकाशवाणी सुनकर पधारे हैं?

जाजलि ऋषिको आश्चर्य हुआ। तुलाधारसे पूछते हैं, आपके गुरु कौन हैं? तुलाधार कहते हैं—'मेरा धंधा ही मेरा गुरु है। तराजूकी डंडी सीधी रखता हूँ, ज्यादा नफा नहीं लेता। दूकानमें जो ग्राहक आयें उनको भगवान्‌का अंश समझकर बर्ताव करता हूँ। अपने माता-पिताको परमात्मस्वरूप समझकर उनकी सेवा करता हूँ।'

धंधा करते समय ईश्वरको मत भूलियेगा तो आपका धंधा ही भक्ति बन जायगा। कुछ वैष्णव दूकानमें द्वारकानाथका चित्र रखते हैं, वह ठीक है। किंतु भगवान् सबमें दीखते हैं, ऐसा समझकर व्यवहार करना बहुत जरूरी है। जीवनमें धर्म मुख्य है, दूसरे सब गौण हैं।

—संत डोंगरेजी महाराज

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, दिसम्बर २००२ ई०

पूर्ण संख्या ९१३

अम्बरीषद्वारा दुर्वासाजीके दुःख-निवृत्तिहेतु सुदर्शनचक्रसे प्रार्थना

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय। सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते॥
यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः। कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः॥
यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः। सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः॥

(श्रीमद्भा० ९। ५। ४, १०-११)

[अम्बरीषने कहा—] भगवान्‌के प्यारे, हजार दाँतवाले चक्रदेव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको नष्ट कर देनेवाले एवं पृथ्वीके रक्षक! आप इन ब्राह्मणकी रक्षा कीजिये। यदि मैंने कुछ भी दान किया हो, यज्ञ किया हो अथवा अपने धर्मका पालन किया हो, यदि हमारे वंशके लोग ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव समझते रहे हों तो दुर्वासाजीकी जलन मिट जाय। भगवान् समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। यदि मैंने समस्त प्राणियोंके आत्माके रूपमें उन्हें देखा हो और वे मुझपर प्रसन्न हों तो दुर्वासाजीके हृदयकी सारी जलन मिट जाय।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, दिसम्बर २००२ ई०

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

कल्याण

याद रखो—सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर भगवान् तुम्हारे परम सुहृद् हैं, वे सदैव सर्वत्र स्वयं तुम्हारी सहायताके रूपमें प्रस्तुत हैं। जब कभी तुम्हें मनमें निराशा हो, तुम अपनेको असहाय, निराश्रय, सबके द्वारा उपेक्षित और अकेला समझने लगो—तभी विश्वासपूर्वक उन अपने भगवान्‌को पुकारो। वे तुरंत तुम्हारी सहायताके लिये तुम्हारे पास आ खड़े होंगे।

याद रखो—भगवान्‌के लिये न तो कोई जीव छोटा-बड़ा है और न कोई काम ही छोटा-बड़ा है। वे सबके सबसे अधिक निकटस्थ आत्मीय हैं—अपने हैं। न तो छोटे-से-छोटा बनकर छोटा काम करनेमें उन्हें लज्जा-संकोच है और न वे दूसरोंके लिये असम्भव, महान्-से-महान् विशाल अत्यन्त कठिन कार्य सम्पन्न करनेमें असमर्थ हैं। तुम अपनेको उनपर छोड़ दो—केवल उन्हींपर छोड़ दो, वे तुम्हारे सारे अभावोंकी पूर्ति कर देंगे या अभावकी अनुभूति ही पूर्णरूपसे समाप्त कर देंगे। तुम परम सुखी हो जाओगे।

याद रखो—भगवान्‌के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। वे सर्वभवनसमर्थ हैं और **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थः'** हैं। तुम अडिग तथा पूर्ण विश्वासके साथ अपनेको सर्वतोभावेन उनपर छोड़ दो। तुम्हारे मार्गके सारे अवरोध दूर हो जायँगे, सारे बड़े-से-बड़े विघ्न हट जायँगे, सारी कठिनाइयोंके किले अनायास ही टूट जायँगे। तुम्हें पाथेययुक्त तथा सच्चे प्रिय संगीके सहित प्रशस्त पद मिल जायगा और तुम बिना ही परिश्रमके सुखपूर्वक हँसते-हँसते अपने लक्ष्यपर पहुँच जाओगे।

याद रखो—भगवान् तुम्हारी प्रत्येक परिस्थितिमें और तुम्हारी प्रत्येक यथार्थ आवश्यकताके समय तुम्हारे सहज सहायक हैं। जब तुम दूसरे सारे आश्रयोंका त्याग करके उनके सौहार्दकी ओर दृष्टिपात करोगे और अपना सारा योगक्षेम उन्हींको मान लोगे—यदि सचमुच तुम ऐसा कर सकोगे—तो तुम देखोगे कि तुम्हारा हृदय अकस्मात् हरा हो गया है, ऊँचा उठ गया है, तुम्हारी निराशा नष्ट हो गयी है, तुम्हें प्रत्यक्ष सहायता मिलने लगी है, तुम्हारे साथ एक कभी न हटनेवाला—कभी साथ न छोड़नेवाला मित्र आ खड़ा हुआ है। तुम उपेक्षित नहीं हो—बड़ी प्रीतिके साथ समादरपूर्वक तुम्हारी देख-रेख की जा रही है और एक कोई वरदहस्त सदा-सर्वदा तुम्हें अभयदान दे रहा है।

याद रखो—तुम भगवान्‌पर विश्वासपूर्वक पूर्ण निर्भर नहीं रहते, उनके नित्य अपनेपनपर दृढ़ विश्वास नहीं करते, उनकी सुधामयी, शक्तिमयी सहज कृपाकी ओर दृष्टिपात नहीं करते—इसीसे अपनेको असहाय, निराश्रय और निराश पाते हो; इसीसे भय, चिन्ता और विषादके बादलोंसे घिरे रहते हो। इस संदेहभरी डाँवाँडोल स्थितिसे अपनेको अलग कर लो, फिर देखोगे—तुम्हारी प्रत्येक यथार्थ आवश्यकताके समय सर्वदाता भगवान् तुम्हारे सहायकके रूपमें खड़े हैं।

याद रखो—भगवान् तुम्हारे हैं, तुम भगवान्‌के हो। इस नित्य सत्य अचल स्थितिको भूलकर ही तुम संशयसागरके नये-नये दुःखोंकी तरंगोंके आघातसे घायल हो रहे हो। यह मिथ्या स्थिति है। भगवान्‌पर विश्वास करो—पूर्ण विश्वास करो। यह असत् संशयसागर तुरंत सूख जायगा और तुम अपनेको भगवान्‌की सत्य नित्य-सुखद गोदमें पाओगे। **'शिव'**

मृगतृष्णारूप संसार*

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मरुभूमिमें तरङ्गें उठ रही हैं, मृगोंको जल-ही-जल दीख रहा है। वास्तवमें जल है नहीं, उसे जाने बिना दौड़ रहे हैं। उसके जाननेवाले बतानेके लिये नजदीक आते हैं तो मृग समझते हैं कि मारनेके लिये आ रहे हैं, इसी प्रकार संसार मरुभूमि है। विषयभोगोंमें सुखरूपी जल प्रतीत हो रहा है और मनुष्य दौड़ रहे हैं। महात्मालोग त्याग और शान्तिका जल दिखा रहे हैं, पर हमलोगोंने तो भोगको ही अधिक सुखका जल समझ रखा है। कोई महात्मा पुरुष ही उनको पकड़कर तैयार करे, कोई बलवान् आदमी चारों ओरसे मृगोंको घेर ले और गङ्गाजीपर उन्हें उतार दे तो वे जल पीने लग जायँ। गङ्गाजी साक्षात् ब्रह्मद्रव हैं। हमें भी ब्रह्मद्रवपर लाकर छोड़ दिया गया है। अब यदि यहाँ भी हम जल नहीं पीयें तो क्या उपाय है? आकाश निर्मल है, शुद्ध है, इसमें जो यह नीलिमा है, वह वास्तवमें है नहीं, बिना हुए ही दीखती है, उसी तरह यह संसार कुछ है नहीं, दीखता है कि है। केवल मृगतृष्णावाली बात है। एक विज्ञानानन्द परमात्मा ही है। नीलिमा दीखनेपर भी मानना चाहिये कि नहीं है, संसारके भोगोंमें आनन्द नहीं है। प्रतीतिमात्र होती है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २।१६)

असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है।

संसारमें आनन्द है ही नहीं, यदि होता तो फिर जाता कहाँ, रहना चाहिये। इसी प्रकार संसारके जितने भोग हैं वे क्षणमें दीखते हैं, क्षणमें नष्ट हो जाते हैं। दूरसे दीखते हैं, नजदीक पहुँचनेपर कुछ नहीं। नजदीक पहुँचना ही उन्हें पहचानना है। बहुरूपिया जैसे रोज स्वाँग बदलता है, उसे लोग जान जाते हैं। पर जो क्षण-क्षणमें बदले कभी किसका, कभी किसका रूप धारण करे, उसे लोग कैसे जानें। प्रत्यक्ष देखना यह है जैसे सूर्य पूर्वमें उदय होता है—यह प्रत्यक्ष है।

जैसे मेरा जन्म चूरूका है, किसी भी घरमें चला जाऊँ, चूरूका ही रहूँगा। सूर्य कभी-कभी पूर्वमें होते हुए भी पश्चिम दीखने लग जाता है। इस प्रकार शरीररूपी घरमें रहेंगे तब तो भ्रम रहेगा, अपना घर यानी परमात्मामें स्थित होनेपर भ्रम मिट जायगा। यह अपना स्थान नहीं है, अपनी जन्मभूमि नहीं है। हम तो दूसरी जगहसे आये हैं। इस शरीरमें तो आत्माका आना हुआ है। असली स्थान तो परमात्मा है। *'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*। ईश्वरसे हटनेसे ही यह दशा है। समझनेके लिये ईश्वरको अनादि कहा जाता है, परंतु वास्तवमें ईश्वर अनिर्वचनीय है। कोई निमित्तसे हुआ हो ऐसा नहीं है, स्वाभाविक है। कोई तुलना हो तब तो बतलाया जाय कि यों है, पर कोई तुलना ही नहीं है फिर कैसे समझाया जाय। जो यह संसार दीख रहा है, यह है ही नहीं। वास्तविक बात समझमें नहीं आयी, इसलिये संसारकी प्रतीति है। समझमें आनेपर भ्रम मिट जाता है, अपने स्थानपर आनेपर भ्रम मिटता है। ध्यान करनेसे स्थान प्राप्त होता है। ध्याता चेतन है, फिर ध्येयाकार बन जाता है। ध्येयाकार होते ही ध्येय चेतन हो जाता है। अभी तो हम अपनी बुद्धिसे ध्यान करते हैं, ध्यान ध्याताके विषयसे परमात्मा विलक्षण हैं, परंतु तब समझेंगे जब ध्यान करते-करते ध्येयाकार हो जायँगे। ध्याता चेतन है, ध्येय जड़ है। फिर ध्याताकी चेतनता ध्येयमें चली जाती है और ध्याताकी अल्पताको ध्येय जो एक महान् शक्ति है, वह नष्ट कर देता है। वहाँ नाम दृश्य नहीं रहता। दोनों मिलनेपर, तीनों मिलनेपर एक परमात्मा ही रह जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि ध्यान करनेवाला व्यक्ति समझे कि मैं परमात्माका अंश हूँ। सबका संकल्प उठा दिया तो परमात्मा स्वयं सर्वत्र व्यापक हो गये। परमात्मा सब जगह व्यापक हो ही रहे हैं। बर्फ-जलकी बात कही। गरमी पैदा होनेपर बर्फ नष्ट हो जाती है। बारम्बार यह हलचल मचाये कि ज्ञान आनन्द, पूर्ण आनन्द, घन आनन्द—इस तरह ध्यान करते-करते तन्मय हो जाय या यह भाव करे कि सारे संकल्पोंको प्रभु समाप्त कर

* प्रवचन तिथि—प्रथम वैशाख कृष्ण १०, संवत् १९९९, दोपहर, [illegible]

दें। इस प्रकार संसारका अत्यन्त अभाव हो गया। ध्याता, ध्येय, ध्यान है, परमात्माके ध्यानरूपी अमृतका पान कर रहा है। प्रभु हमारा ध्यान करते हैं और हम प्रभुका ध्यान करते हैं। न तो प्रभु दूसरी चीजका ध्यान करते हैं और न मैं दूसरी चीजका ध्यान करूँगा, यह नियम ले ले।

प्रभुसे यह कहे यदि तू ध्यान छोड़ना चाहे तो छोड़ दे, मैं तो ध्यान करता ही रहूँगा। उस अमृतरसका पान करना हो तो ध्यान करता ही रहे। प्रभुमय हो जाना ही मंजूर है। एक गोपी कृष्णका ध्यान कर रही थी, तन्मय होकर वह बोली कि मैं कृष्णका ध्यान करती हूँ, कृष्ण तो नहीं बन जाऊँगी? दूसरी बोली तू कृष्ण बन जायगी तो वे कृष्ण गोपी बन जायँगे, नाता तो वही रहेगा।

घनश्यामने कहा कि मेरी ऐसी श्रद्धा हो जाय तो मेरा काम तो बन जायगा। बात यह है कि काम बनानेकी इच्छा गड़बड़ है। मैं काम बना दूँगा, यह भरोसा तो नहीं करना चाहिये। काम नहीं बना तो फिर धोखा रहेगा। काम चाहे बने चाहे मत बने, हमें तो भगवत्प्रेम बढ़ाना है। जो मुझे नहीं छोड़ता, उसे मैं भी नहीं छोड़ता। हाँ, वह यदि छोड़ भी दे तो मैं तो पकड़नेकी चेष्टा ही करता हूँ। आजकल तो लोग माँ-बापको भी नहीं मानते, जो जन्मसिद्ध सम्बन्ध है। अपना तो प्रेमका सम्बन्ध है। माना हुआ सम्बन्ध है। नहीं माने तो फिर क्या किया जाय? आप चेष्टा नहीं करें तो मैं क्या कर सकता हूँ।

हमलोग विज्ञानानन्दघन प्रभुका ध्यान कर ही रहे हैं। बस करते ही रहें। एक विज्ञानमय परमात्माका ध्यान ही करता रहे। यदि आप ध्याता, ध्यान और ध्येय—इन तीनोंकी एकता करना चाहते हैं तो कभी भी कर सकते हैं, परंतु एकता करके फिर तीन नहीं बन सकेंगे। एक बननेपर एक ही रह जायँगे। अब जितने दिनकी इच्छा हो, उतने दिन आनन्द पीओ। जब इच्छा हो एक बना लिया। ध्यान करनेवाला एकदम तन्मय हो जाय।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥

(गीता ५। १७)

जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है; ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्तिको अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं।

आनन्दघन बोध, आनन्द इसी प्रकार तार बाँध दे। दूसरा अग्निका उदाहरण अग्निमें घीकी आहुति दे दी, प्रभुने सारे संसारका संकल्प उठा दिया। केवल मैं और प्रभु ही रह गये। प्रार्थना करे कि प्रभो! मेरा भी संकल्प उठा दें। जिस दिन यह प्रार्थना की, उसी दिन सब काम समाप्त हो जाते हैं। एक महात्मा पुरुष भी कष्ट नहीं देना चाहते फिर परमात्माकी तो बात ही क्या है। प्रभु देखते हैं कि परिश्रम मिटा, यह तो चिन्तन नहीं करता फिर मुझे क्यों करना है। बात यह है कि सब संकल्प उठा दिये, जब दास ही नहीं रहा तो प्रभु कौन। दास और प्रभु सब एक ही हो गये।

दूब दधि रोचनु कनक थार भरि भरि
आरति सँवारि बर नारि चलीं गावतीं।
लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकीके
पहिरावो राघोजूको सखियाँ सिखावतीं॥
तुलसी मुदित मन जनकनगर-जन
झाँकतीं झरोखें लागीं शोभा रानीं पावतीं।
मनहुँ चकोरीं चारु बैठीं निज निज नीड
चंदकी किरिन पीवैं पलकौ न लावतीं॥

(कवितावली १। १३)

आध्यात्मिक जीवन

(श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)

आध्यात्मिक जीवनका तात्पर्य या प्रयोजन यही है कि हमें अपनी आत्माके अन्दर जीनेका रास्ता मिल जाय। अपनी आत्मामें ऐसा जीवन चला जाय कि जिससे वह बिखरा हुआ बाहरका मन अन्दर एकत्रित (इकट्ठा) हो जाय अर्थात् संसारसे बिछुड़कर केवल अपने-आपमें एकाग्र हो जाय। जैसे नींदमें मन इकट्ठा हो जाता है तो मनुष्यको बहुत सुख और शान्ति प्राप्त होती है। कारण कि उस समय मनके अन्दर संसारकी कोई भी उलझन नहीं होती और मन संसारको ठुकराकर ही नींदमें आता है। नींदमें सोये हुएको इतना आनन्द होता है कि यदि कोई उसको नींदसे जगा दे तो वह नींदसे उठनेवाला दुःख मानता है; क्योंकि नींदसे उठनेपर उसका सुख बिगड़ता है। नींदके समय उसे किसी प्रकारकी कोई शंका, भय तथा बन्धन नहीं होता है और श्वास भी बड़े आरामसे चलता है। जैसे नींदमें सोये हुए किसी प्राणीको आप देखते हैं कि वह बड़े लम्बे-लम्बे खुर्राटे मारता है। कारण कि नींदमें ज्ञानदेव स्वतन्त्र हो करके रोम-रोमतक अपना स्पर्श लेता है। रोम-रोमके अन्दरसे श्वासकी गति होनेसे वह ताजगीका अनुभव करता है। बाहर बिखरी हुई सारी शक्तिका संसारसे बिछुड़कर नींदमें जब अपने मनमें प्रवाह हो जाता है तो उसका आनन्द आने लगता है। इसी प्रकार जागते-जागते भी अपने मनको सारे संसारसे बिछुड़कर (अलग करके) अपनी आत्मामें अर्थात् अपने-आपमें एकत्रित (इकट्ठा) करना है। तब जैसे निद्रामें सुखका अनुभव होता है, उसी प्रकार जागते-जागते भी वह सुख हमारे साथ बना रहेगा।

यही अपनी आत्माका सुख अन्तमें सदा बना रहनेवाला कल्याणस्वरूपसे हमारे अनुभवमें आता रहेगा। परंतु जागते-जागते ऐसा सुख अनुभव करनेके लिये सारे संसारसे मनको मुक्त करना पड़ेगा अर्थात् मनको संसारके सकल (सारे) बन्धनोंके जालसे छुड़ाना पड़ेगा। यही बन्धनोंसे छूटनारूप मुक्ति है और ऐसी मुक्ति होनेपर यही नित्य सनातन सुख, सदा बना रहनेवालेके रूपमें हमें प्राप्त होगा।

श्रद्धा रखकर, किसी दूसरेसे सुनकर या पुस्तकोंसे पढ़कर अपने जीवनको देखे कि इसका अन्त कहाँ है और हमारा हित (भलाई) किसमें है? आध्यात्मिक जीवनकी परख करके इसकी पहचान करे और नियमोंका पालन करे। ऐसा करनेके लिये अपनी आँख, कान एवं रसना (जिह्वा)-को भी रोके और खाने-पीनेकी आदतरूप शक्तिपर भी संयम (काबू) रखे। दूसरोंके सुखको देखकर अपने मनमें चिढ़े नहीं अर्थात् जले नहीं, अपितु दूसरोंको दुःखी देखकर दयाभाव रखे, दूसरोंके गुणोंको तो पहचाने तथा उनकी प्रशंसा भी करे; परंतु अवगुण किसीके भी न देखे अर्थात् दूसरोंके अवगुणों और पापोंकी ओर ध्यान ही न दे। थोड़ा अपने-आप दुःख सहन कर ले, परंतु बाहर संसारमें किसीका भी बुरा करनेके लिये न चले। इस प्रकार यह सब अपना आत्मसंयम है।

बाहरके स्वार्थोंके कारण ही मनुष्य न जाने क्या-क्या करनेके लिये तैयार हो जाता है। दूसरोंके भड़कावेमें आ करके वह जो कुछ भी करता है, वह अच्छा नहीं होता है अर्थात् भड़कावेमें किया गया कर्म अपने लिये हितकर नहीं होता है।

मनुष्य उद्वेग (जोश)-में केवल दूसरेका बुरा करनेकी सोचता है, किन्तु दूसरेका अहित तो होगा या नहीं होगा, इसके बारेमें अभी कुछ भी नहीं पता है, परंतु उसका अपना अहित (बुरा) इस प्रकारकी सोचसे अवश्य हो जायगा। दूसरेका बुरा करनेका परिणाम (नतीजा) यही है कि उसके अपने मनमें हमेशा शंका और भय होनेके कारणसे वह आरामसे अपना खाना-पीना भी नहीं कर सकता, स्वस्थ चिन्तन नहीं कर सकता और न ही आरामके साथ भरपूर नींद ही ले सकता है। ऐसी परिस्थितिमें यदि अपना मान (मैं) भी जाता है तो उसको जाने दे और अपमानके दुःखको भी सहन कर ले, परंतु अपमानके दुःखके कारण कोई भी मिथ्या कर्म करनेको प्रवृत्त न हो; क्योंकि हिंसा, उग्रता या कोई मिथ्या (खोटे) काम करनेवाला मनुष्य अपने जीवनकालमें कभी सुखी नहीं हो पाता है और न ही मर करके सुखी होता है।

जन्मसे मनुष्यको जो जीवन मिलता है, वह भौतिक जीवन है, जिसमें बाहर संसारमें ही जीनेका रास्ता है। संसारमें जबसे बालक (बच्चा) उत्पन्न होता है तो उसका जीवन बाहर संसारका ही है अर्थात् बाहर संसारमें ही बहता रहता है; क्योंकि उसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, जिह्वा (रसना) और त्वचा बाहरकी ओर खुली हुई होती हैं। इन इन्द्रियोंसे वह बाहर ही सबको पहचानता, देखता, सुनता और अनुभव करता है। जो प्राणी और पदार्थ सुख देते हैं, उनको ग्रहण करना तथा जो दुःख देते हैं, उनका त्याग करना ही राग-द्वेष कहे जाते हैं।

यह सारा राग-द्वेषका झगड़ा बाहरके जीवनका है। उपनिषदोंमें आता है कि ब्रह्मने इस सृष्टिकी रचना की और सब इन्द्रियोंको बहिर्मुख कर दिया। यह तो इस प्रकारसे इन्द्रियोंकी हिंसा ही हुई कि मनुष्यको बहिर्मुख प्रेरित कर दिया। इसलिये बाहरके प्राणी एवं पदार्थोंको तो सब जानते हैं और उनको अन्दरके बारेमें कुछ भी पता नहीं है अर्थात् मनुष्यके अन्दर जो आत्माका सुख अज्ञानके पर्दोंमें रहता है—छुपा रहता है, कारण कि इन्द्रियाँ बाहरकी ओर खुली हुई हैं। इसी कारण रोग, शोक तथा व्याधियाँ आती हैं।

संसारमें जीव बेचारा बचपनसे ही बाहर बह रहा है। इस संसारमें ही थोड़ा सुख तथा अपनी भलाई समझ करके वह इतना बाहरकी ओर संलग्न हो जाता है कि उन तुच्छ (सारहीन और थोड़े) सुखोंको पानेके लिये अपने प्राणतक त्यागनेको तैयार हो जाता है। उसके मनमें कभी यह विचार आता ही नहीं कि जिस संसारकी ओर मैं लग रहा हूँ, उसका अन्तिम फल क्या होगा? इस संसारके सुखमें कितनी मिठास है और यह सदा बनी रहनेवाली भी है या नहीं और अन्तमें इसकी समाप्ति कहाँ है?

× × ×

यदि बाहरसे मनुष्यका मन नहीं बिछुड़ता, चिन्ता-फ़िकरमें ही उलझा रहता है, बाहरके प्राणी और पदार्थोंसे सुख प्राप्त करनेकी इच्छा बनी ही रहती है तथा मन उन्हींकी ओर लपकता रहता है अर्थात् बाहरी सुखोंमें रँगा रहता है एवं उन्हींकी अपनी 'मैं' भी बनी रहती है तो यही राग है। इसे ही 'राग-बन्धन' के नामसे कहा गया है। जो उन सुखोंको भंग करनेवाले हैं, उनसे जलन एवं क्रोध आता है और मन यही सोचता रहता है कि उनसे कब पीछा छूटेगा, यही द्वेष है, जो 'द्वेष-बन्धन' के नामसे कहा गया है। बाहरके सुखोंके मिलनेपर और उनके पूरा हो जानेपर मन उन्हींके मानवाला हो जाता है। उन्हीं सुखोंके मिलनेपर वह अपनी 'मैं' को पाता है। यदि संसारके सुख नहीं मिलते हैं तो उन्हींके चक्करोंमें मन पड़ा रहता है। यही सब राग, द्वेष, मान, मोह और संशय आदि बन्धनोंका जाल है, जो मनुष्यको कभी भी इनसे बाहर निकलकर सुख एवं शान्ति नहीं पाने देता है। इन्हीं बन्धनोंको समझ करके यदि आपने उनसे अपना मन मोड़ लिया तो आपको अन्तर्मुख हुई ज्ञानशक्तिका प्रवाह ऐसा आशीर्वाद देगा, जैसे हर समय वह आशीर्वाद आपके साथ है। ऐसी अवस्था-प्राप्त मनुष्यके लिये कहा जायगा कि उसके ऊपर दुर्गामाता या भगवान्‌की कृपा हो गयी है। परंतु यदि वह मन अभी एकाग्र नहीं हुआ है तो इसका कारण बिजलीकी गतिके समान उसका प्रवाह बाहर ही बहते रहना है। जैसे बिजली चालू करते ही एक सेकेण्डमें लाखों मील दूर चली जाती है, इसी तरह अपने मनकी भी गति है। ज़रा भी मस्तिष्क (दिमाग)-में किसीके बारेमें सोचनेसे मन वहीं पहुँच जाता है, चाहे वह प्राणी और पदार्थ कलकत्ता या दूसरे देशमें उपस्थित हो। मनके वहाँ जानेसे समझो वहाँतक आपकी शक्ति भटक गयी। जब आप उस शक्तिको इकट्ठा करने लगेंगे तो मन इस समयमें और अनेक धाराएँ बहा देगा; परंतु आपको उन धाराओंकी ओर ध्यान न देकर अपने मनको पहलेवाले स्थानसे लौटानेका यत्न करना है।

मनको बाहरसे इकट्ठा करनेका यही एकमात्र रास्ता है कि उसको बाहरके सुखकी ओर ले जानेवाले तृष्णारूप कारणकी जड़ ही काट दी जाय। अपने मनको बोल-बोलकर समझाओ कि संसारमें वास्तविक (असली) सुख कुछ भी नहीं है और जो भी तुच्छ (सारहीन) थोड़े सुख दिखायी भी देते हैं, वे अन्तमें दुःखोंमें ही समाप्त होते हैं। इस प्रकार विचार करते-करते आपको ज्ञान होगा कि जब

इन तुच्छ सुखोंसे कुछ मिलनेवाला ही नहीं है अर्थात् इनसे कुछ भी प्राप्ति सम्भव नहीं है, तब इनके बारेमें तो सोचना भी व्यर्थ ही है। इन सांसारिक सुखोंसे जो कुछ मिलना था, वह किसी अवस्था एवं समयका ही था। अब आपने ज्ञानसे समझ लिया कि इन सुखोंको पानेका कोई भी फल नहीं है। इस प्रकारका विचार करना ही ज्ञान उपजाना है। ये सब अन्दरके सत्य हैं और इनकी भक्ति करनी है। सत्यज्ञानको ही 'प्रज्ञा' कहा जाता है अर्थात् वह ज्ञान जो किसी विषयके बारेमें बार-बार विचार करनेसे अन्तिम फल (निचोड़)-के रूपमें मिलता है—वह छिपा हुआ ज्ञान जो कि सांसारिक ज्ञानके मार्गसे नहीं प्राप्त होता; परंतु ध्यानकी सूक्ष्मता (बारीकी)-से बुद्धिमें प्रकट होता है।

इन प्रज्ञाओंकी ही उपासना करते-करते जैसे-जैसे आपका मन बाहरके संसारसे मुक्त होता जायगा अर्थात् छूटता जायगा, वैसे-वैसे ही आपको अन्दर आनन्द मिलता जायगा। अन्तमें इस आनन्दका फल यही है कि बाहर किसीकी भी 'तू-मैं' नहीं जाननी पड़ेगी और यह भी समझमें आयेगा कि जैसे मेरी 'मैं' तुच्छ थी, वैसे ही सबकी 'मैं' भी तुच्छ ही है। फिर एक ही चेतन है, जो सबकी देहोंमें बैठा हुआ सबका काम चला रहा है। यदि आपने उस चेतनको जान लिया और उसका आनन्द भी अखण्ड (पूर्णरूप)-से आपको मिलने लग गया तो यही आध्यात्मिक जीवनकी पूर्णता है।

भौतिक जीवन तो आप सब देखते ही हैं, कारण कि यह जीवन तो आप सब व्यतीत कर रहे हैं और इसके बीचमें आनेवाली उलझनें भी आप देख रहे हैं। इन उलझनोंके कारण ही शरीरमें नाना प्रकारकी रोग-व्याधियाँ, मनमें असमाप्त होनेवाले शोक, जिनकी कोई औषधि भी नहीं; उत्पन्न होते रहते हैं और मन इन्हींमें उलझा हुआ अपना जीवन समाप्त कर देता है तथा यह परम सुखका अनुभव नहीं कर पाता। यह जो सारा संसारका जीवन दिखायी दे रहा है; इससे विपरीत (उलटा) आध्यात्मिक जीवन है। इस जीवनका फल यही है कि मनको इस संसारकी उलझनोंसे मुक्त करवा करके अर्थात् सब बन्धनोंसे छुट्टी दिलवाकर आत्माको एक ऐसी स्थितिमें पहुँचा देना, जिसमें इसके अन्दरका सुख अपने-आपको पता लगता रहे। उसको यह भी पता चलेगा कि यह सुख तो सनातन (सदा बना रहनेवाला) है और इसमें बाहरसे किसीकी दासता भी नहीं है। इस सुखको पानेके लिये रुपये-पैसे नहीं लगते हैं अर्थात् रुपये-पैसेका भी इसमें कोई खर्च नहीं है। इस सुखको प्राप्त करनेके लिये केवल अपना यत्न ही काममें आता है। आप चुपचाप इस आध्यात्मिक जीवनपर चलते रहिये और किसीको खबर करनेकी भी आवश्यकता नहीं है कि मैं कैसे रहता हूँ? इस जीवनमें किसी भी प्रकारके बाहरी दिखावे (प्रदर्शन)-की आवश्यकता नहीं है; केवल अपने जीवनके कुछं नियमोंमें अनुशासित रहकर चलना पड़ता है, जैसे कि शास्त्रोंमें सद्गुरुओंद्वारा चलाया हुआ जीवन बताया गया है। इस प्रकारका यह आध्यात्मिक जीवन है।

इस जीवनको अपनाने एवं इसपर चलनेके लिये यही हिम्मत (प्रयास) करे कि जबसे उसने होश सँभाला है, उसी समयसे ही अपने अन्दर बुद्धियोगको जगाये और अपने अन्दरके सत्योंको समझनेका प्रयास करे। इस प्रकार करता हुआ अपने जीवनका सुधार करता जाय। बस, यहींसे आध्यात्मिक जीवनका श्रीगणेश होता है।

यह जीवन चलते-चलते अन्तमें जहाँ पहुँचता है, उसी स्थानको परम धाम (परमपद) कहा जाता है अर्थात् इस जीवनका अन्तिम फल परम सुख (परमानन्द)-की प्राप्ति है, जो सुख कभी भी समाप्त होनेवाला नहीं है। इसके विपरीत पहलेवाला भौतिक (सांसारिक) जीवन अन्तमें केवल उलझन एवं दुःखोंमें ही समाप्त होनेवाला है। अब यह आपके ऊपर निर्भर करता है कि आप भौतिक जीवनपर ही चलते रहते हैं या आध्यात्मिक जीवनको अपनाकर उसपर चलते हैं।

सबमें भगवान् कैसे देखें और व्यवहार कैसे करें

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ०सं० ९५१ से आगे]

एक बारकी बात है, बादशाह अकबर कहीं दौरेपर गये थे। वहीं खेमा पड़ा हुआ था। सुबहका वक्त था, बादशाह बन्दगी कर रहे थे—नमाज़ पढ़ रहे थे। एक वेश्या वहाँसे निकली। वह अपनी धुनमें जा रही थी, तन्मय थी। उसने देखा नहीं कि बादशाह सलामत ख़ुदाकी बन्दगी कर रहे हैं। ठोकर लग गयी। बादशाहको गुस्सा आ गया। बन्दगी कर रहे थे और शीलवान् थे, इसलिये उस समय बोले नहीं, पर मनमें बड़ा क्षोभ हुआ। कुछ समय बाद वह लौटी। बादशाह वहाँ आरामकुर्सीपर बैठे हुए थे। बादशाहने उसको पहचान लिया। उसी मार्गसे दूरसे निकल रही थी तो उसे पास बुलाया। पूछा, कौन हो तुम? बेचारी काँप गयी। डरके मारे बोली—मैं तो एक बाज़ारू औरत हूँ। बादशाह बोले—तुम्हारी इतनी हिम्मत कि मैं उस समय बन्दगी कर रहा था—ख़ुदाकी नमाज़ पढ़ रहा था और तूने ठोकर मार दी। जानती हो मैं कौन हूँ? वह बोली—हूजूर, जानती हूँ। आप जहाँपनाह बादशाह हैं, पहचानती हूँ। बादशाह बोले—जानती हो इसकी सजा क्या होगी? बोली—हाँ जानती हूँ आप मुझे मार सकते हैं। वे बोले—फिर तुम तैयार हो? बोली—हाँ, तैयार हूँ, पर जब मरना ही है तो एक बात पूछना चाहती हूँ। बोले—पूछो। वह बोली—आप ख़ुदाकी बन्दगी कर रहे थे? बोले—हाँ, कर तो रहा था। तो ख़ुदाकी बन्दगीमें आपको मेरे जानेका ध्यान रहा, पर मैं एक नाचीज नापाक आदमीकी बन्दगी करने जा रही थी और मैं ख़ुद नापाक हूँ, उस वक्त मैं अपनेको भूल गयी और मैंने बादशाह सलामतको ठोकर मार दी। मैं अपनी धुनमें मस्त थी। जब मैं अपनी धुनमें अपने-आपको भूल गयी और आप ख़ुदाकी बन्दगी कर रहे थे तथा मेरी ओर देख रहे थे? बादशाहका सिर नीचा हो गया। बोले—भई, ठीक। ख़ुदाकी बन्दगीमें यह कसर थी।

एक ऐसी और बड़ी सुन्दर कहानी एक महात्माने मुझे सुनायी थी। एक मौलवी साहब थे। वे दिनमें बारह-बारह बार नमाज़ पढ़ते थे और करीब चालीस साल नमाज़ पढ़ते हो गये। उन्होंने एक दिन खुदासे कहा—अपने गुरुके मार्फत कि ख़ुदा हमारी बन्दगीको जानते तो हैं? आवाज आयी—'नहीं, हम तुम्हारी बन्दगीसे खुश नहीं हैं।' अरे, चालीस चाल हो गये, दिनमें बारह-बारह बार नमाज़ हम पढ़ते रहे। हमारे घुटने सब छिल गये, फिर यहाँपर गड्ढा पड़ गया नमाज़ पढ़ते-पढ़ते, जमीनपर सिर टेकते-टेकते और ख़ुदाको यह पसंद भी नहीं। ख़ुदा इससे खुश नहीं। क्यों खुश नहीं हुए? बोले—इसलिये खुश नहीं कि जब तुम अकेलेमें बन्दगी करते थे और जब कोई सामने आता था तब जो बन्दगी करते थे, उसमें कुछ फ़र्क है। बोले—यह कैसे? तुम जब अकेलेमें करते थे तब एकाध-बार चादर बिछायी तथा घुटना टिकाकर बैठ गये; और जब कोई सामने देखनेवाला होता तब तो बड़े मजेसे घुटने टेकते, सिर टेकते ताकि लोग देखें कि नमाज़ पढ़ रहे हैं। तुम तो उनको दिखानेके लिये बन्दगी कर रहे थे, ख़ुदाके लिये कहाँ कर रहे थे?

हमलोगोंकी साधना भी प्रायः ऐसी ही होती है। कीर्तन करते हैं मस्तीमें और जब कोई आ जाय तो बहुत मजेमें करने लगते हैं। अकेलेमें नहीं करते—भगवान्को कौन दिखाता है, हम तो दिखाते हैं दुनियाको ताकि लोग कहें कि देखो, मस्त हुए कैसे प्रेमी हैं, कैसे ज्ञानी हैं, बेहोश हो गये। अगर हरिचर्चाके मध्य बच्चा रोये तो हम बच्चेपर ध्यान क्यों दें, हम सुनते रहें। यह समझनेकी चीज है। श्रवणमें भी हमारी तन्मयता नहीं होती। इसका अर्थ यह नहीं कि खूब हल्ला मचाकर श्रोता और वक्ताके तन्मयताकी परीक्षा ली जाय। यह चीज तो अपनी साधनाकी है। जब हम किसी साधनामें लग रहे हैं, उस समय अगर बाहरकी चीजपर हमारा चित्त जाता है तो हमारा चित्त ठीक-ठीक उसमें लगा नहीं और चित्त जबतक नहीं लगा तबतक वह वस्तु प्राप्त नहीं होती। साधनामें चित्तकी संलग्नता बड़ी आवश्यक होती है।

एक मार्मिक बात है कि सबमें भगवान्को देखें या सबमें आत्माको देखें और फिर वैसा ही उनसे व्यवहार करें तो जो व्यवहार अपनेको बुरा लगता है, वह दूसरेको भी

बुरा लगता होगा तथा जो व्यवहार अपनेको अच्छा लगे, वह दूसरेको भी अच्छा लगता होगा। इस कसौटीपर अपनेको कस लें। जहाँ-जहाँ दुःख है, जहाँ-जहाँ पीड़ा है, जहाँ-जहाँ यन्त्रणा है, जहाँ-जहाँ अभाव है वहाँ-वहाँ पहले तो यह मानें कि यहाँ-यहाँ भगवान् इस अभावके रूपमें आये हैं और हमसे सेवा माँग रहे हैं। जहाँ बीमार देखें वहाँ समझें कि भगवान् बीमार बनकर सेवा माँग रहे हैं। जहाँ अन्न-वस्त्रका अभाव हो वहाँ देखें कि भगवान् यहाँ अपाहिज बनकर, दीन बनकर और अकालग्रस्त बनकर हमसे अन्न माँग रहे हैं। इस प्रकारसे जहाँ-जहाँ अभाव हो, वहाँ-वहाँ भगवान्‌को विशेष देखकर सेवामें प्रवृत्त हो जायँ। विचार करें कि यह अवस्था हमारी हो जाय तो? हमारा पैर कट रहा है, सिर कट रहा है और हम आरामसे नाम ले रहें हैं, तब तो बात दूसरी है। यदि अपने आरामका खयाल आ जाय तो हम कहने लगेंगे—हमें जगह मिलनी चाहिये, आश्रय मिलना चाहिये और दूसरेके लिये हम वेदान्ती या प्रेमी बन जायँ—ऐसा नहीं होना चाहिये। भगवान्‌ने इसलिये **'सर्वभूतहिते रताः'** कहा है अर्थात् सभी प्राणियोंके हितमें लगे रहो। वेदान्तके ज्ञानपर और भक्तिके नामपर हम कर्तव्यसे विमुख न हो जायँ। यही सीधी बात है। यह न कहें कि संसार है ही नहीं तो सबको मरने दो। हमारे मरनेकी बात आयेगी तब हम सोचेंगे।

हमारे एक मित्र थे जयदयालजी कसेरा। बड़े सत्संगी थे। वे पढ़े-लिखे नहीं थे, पर हमने उनसे बहुत कुछ सीखा। उनकी कही हुई बातें हमें अब भी बहुत याद आती हैं। वे बड़े मज़ाक़िया थे। मज़ाकमें कहा करते कि भाईजी! आधा ज्ञान तो हमको हो गया, आधा बाकी रहा। परायेको तो हमने अपना मान लिया और अपनेको पराया अभी नहीं माना है। यह आधा ज्ञान तो हम सब कर लेते हैं, पर यह तो अज्ञान है। जहाँ दूसरेका दुःख हो वहाँ उस दुःखको अपना दुःख बना लें, तब असली चीज हमारे जीवनमें आयेगी। तब हम वास्तवमें अनुभव कर सकेंगे कि दुःख क्या चीज होती है। एक बात ध्यानमें रहे—यह व्यवहारकी बात है। किसीको दुःखी देखकर कभी भी उसके सामने यह मत कहो कि तुम अपने कर्मका फल भोग रहे हो; क्योंकि इससे बहुत भारी-सी चोट लगेगी उसको। एक तो वह स्वयं ही दुःख भोग रहा है और उसे कह दिया कि कर्मका भोग है। किसी बहनपर अगर विपत्ति आ गयी—उसके पतिका देहान्त हो गया। कोई ऐसी बात कह दे तो? ऐसी बातें हमलोग असमय कह देते हैं। सास कह देती है, घरके लोग कह देते हैं कि यह हमारे घरमें ऐसी कुलक्षिणी आयी कि पतिको खा गयी। कितना बड़ा अपराध है यह। वह बेचारी तो खुद इस समय कितनी संत्रस्त है, कितनी दुःखी है और उसके घावपर और घाव लगा देना, यह कितना बड़ा महापाप है? यह देखनेकी चीज है, पर हम देखते कहाँ हैं? हम अपने सुखके सामने उसके दुःखको भूल जाते हैं।

एक भाईने एक प्रश्न पूछा है—विधवाका धर्म क्या है? यहाँ विधवाका धर्म बतलानेके पहले विधवाके साथ हमारा क्या कर्तव्य है, यह पहले देखना चाहिये। यह मानें कि हम स्त्री बनें और विधवा हों और हमारे साथ बुरा बर्ताव हो उस समय हम क्या सोचेंगे? यह देखकर, यह सोचकर फिर विधवाका कर्तव्य बताना है। विधवा भी मनुष्य है। हम बड़ी नासमझीके साथ कह देते हैं कि सर्वस्वका त्याग कर दो। अरे, तुम करनेके लिये कितना तैयार हो? अपने-आप ज़रा-सा त्याग करनेको हम तैयार नहीं और उसके द्वारा अनोखे त्यागकी हम आशा करें। हम चाहें कि वह आज शुकदेव मुनि बन जाय तो यह सम्भव कैसे है? उसको बनानेमें सहायता करो, स्वयं त्यागी बनो, विषयोंसे विरक्त बनो। उसके सामने कोई ऐसी चीज अपने जीवनकी मत लाओ कि जिससे उसके जीवनमें शैतान जागे। तब वह सुरक्षित रहेगी। उसका आदर करो, उसकी उपासना करो, उसको सुख पहुँचाओ। सुख पहुँचानेका यह अर्थ नहीं कि उसे विषयोंमें डाल दो। वह सिर्फ़ यह समझे कि मेरे साथ भी सद्बर्ताव होता है। मुझे भी लोग मनुष्य मानते हैं। परंतु भूल जाते हैं लोग, सास भूल जाती है, बहू भूल जाती है और ननद भूल जाती है। वे यह नहीं सोचतीं कि कल मैं विधवा हो जाऊँगी तो? वह बच्ची किसी दूसरेके घरसे इस घरमें आयी। जिसको वह कह सकती थी कि यह मेरा है, वह नहीं रहा तो अब क्या सब उसको यह कह दें कि तुम परायी हो, निकलो घरसे, तुम्हारा कोई अधिकार नहीं। यह नृशंसता है, निर्दयता है। यह समाजका पाप है जो

समाजको खा रहा है, खायेगा। विधवामें भगवान्‌को देखो और उसके भगवान्‌को जगाओ। उसके सामने विषयोंकी चर्चा न आने दो, पर न आने दो अपने चरित्रके द्वारा, अपने त्यागके द्वारा, तब उससे आशा करो कि वह कितना ऊँचा बन सकती है। अब भी वह ऊँची है। आज भी हिंदू विधवाके समान हमने कहीं संसारमें किसी स्त्रीको नहीं देखा, देख नहीं पाते। हिंदू विधवा जो आज पवित्र है, उतनी पवित्रता कहाँ है संसारमें। संसारके लोग इस चीजको देखकर मुग्ध हो जाते हैं।

बंगालमें एक नौजवान जमींदारकी पत्नी सुन्दरी देवी थीं। जमींदार मर गया था। यह अंग्रेजी जमानेकी बात है। उस समय कलक्टर अंग्रेज रहे। कलक्टरकी पत्नी उनके घर आयीं। वह विलायतसे नयी आयी हुई थी। वे हिंदू आचारको जानते थे। उन्होंने सुन्दरीको देखा और देखकर बड़े अच्छे भावसे, सद्भावसे और सहानुभूतिसे उस गौरांग देवीने कह दिया कि बेटी! तुम्हारी छोटी उम्र है, विवाह कर लो न! बड़े हितकी भावनासे कहा। पर इस बातसे उसके हृदयको इतनी ठेस पहुँची कि उसने स्वयंसे कहा—'विवाह कर लो' यह बात सुन ली अपने कानसे और मर नहीं गयी। फिर क्या था, उसने अनशन शुरू कर दिया—अन्न-जलका परित्याग कर दिया। यह सच्ची घटना है, काल्पनिक बात नहीं। अनशनके पश्चात् बात फैली। कलक्टरतक बात पहुँच गयी। कलक्टरने अपनी स्त्रीसे पूछा कि क्या बात है? उसने बताया कि मैं वहाँ गयी थी और यह बात कह आयी। वे बोले—जाओ, क्षमा माँगो। उसको तुमने बड़ी ठेस पहुँचायी है। उसके हृदयपर आघात किया है। वह देवी आयी और आ करके उसके चरणोंमें गिर गयी। बोली—बेटी! तुम मुझे माफ कर, तू कितनी ऊँची है यह मैं जानती नहीं थी। तेरे स्वरूपको मैंने पहचाना नहीं।

आज भी हिंदू देवी जितनी ऊँची है उतना ऊँचा कोई नहीं है। जगत्‌के इतिहासमें कोई ऐसा प्रसंग नहीं मिलता जो मरनेके बाद भी साथ जाना चाहती है; परलोकमें साथ रहना चाहती है। इसका अर्थ यह नहीं कि जो पतियोंके भी पति परमात्मा हैं, उन्हें भूल जाय। पतिमें परमात्माको देखनेका भाव क्या है? परमात्माको प्राप्त करना ही जीवनका उद्देश्य है। पुरुष हो या स्त्री हो। स्त्रीको परमात्माकी प्राप्तिका अधिकार नहीं—यह नहीं मानना चाहिये। यह बिलकुल गलत बात है। स्त्री भी अधिकारिणी और पुरुष भी अधिकारी। उनके रास्ते अलग-अलग हैं। वहाँ न स्त्री है न पुरुष। वहाँ तो स्त्री-पुरुष दोनोंसे अतिरिक्त वह अलिंग है, उसके लिये कोई बात नहीं। उस भगवान्‌की सेवा करनेके लिये सब तैयार रहें। कोई पतिके द्वारा सेवा करे, कोई परमपतिकी सीधी सेवा करे, जैसे मीराने की। मीराने विवाह करके भी विवाह नहीं किया। उनका विवाह हो गया था रणछोड़जी (भगवान् श्रीकृष्ण)-से और फिर जबतक उसके स्वामी जीवित रहे उनकी सेवा की उसके बाद उसने रणछोड़जीको पति मान लिया, पर उसके पति माननेका यह अर्थ थोड़े कि उसका शरीर कहीं भ्रष्ट हुआ। वह तो परमपति जो सबके पति हैं, जो सबके स्वामी हैं, जो पतियोंके पति हैं, जो पतियोंके—स्वामियोंके आत्मा हैं, उन परमात्मा, जगदाधार, जगत्पति, विश्वात्मा, विश्वपति और सर्वलोकमहेश्वरको उसने अपना पति माना और कहा—

ऐसे बरको क्या बरूँ, जो जनमै और मर जाय।
बर बरिये एक साँवरो री, (मेरे) जो चुड़लो अमर हो जाय॥

कितनी पवित्र बात है! इस तरह दूसरेके दुःखमें हम जबतक दुःखी नहीं होते, जबतक दूसरेके दुःखको अपना सुख बनाते हैं, तबतक हम मनुष्य कहलानेके अधिकारी नहीं, साधक कहाँसे होंगे, देवता कहाँसे होंगे, गुण कहाँसे आयेगा। हमें तो सबसे पहले यह करना चाहिये कि हम अपने जीवनमें किसीका दुःख न देख सकें, न मिटा सकें दूसरी बात; पर किसीके दुःखको देखकर हमारा जीवन रो उठे, कम-से-कम सहानुभूति तो होनी ही चाहिये। आज हमारा एक मित्र है, वह कल मर गया और हम उसके बाल-बच्चोंको भूल जायँ। इतने स्वार्थी हम हो जायँ कि आज हम जिसे प्यार करते थे, जो हमारे घरका था उसके बच्चोंसे हमारा कोई वास्ता नहीं। यह नृशंसता है। तीसरी चीज यह है कि हम व्यवहारके नाते जब अपने लिये सुख चाहते हैं, अपना हित चाहते हैं, अपना सम्मान चाहते हैं तो दूसरोंके साथ भी वही बर्ताव करें।

सबमें भगवान् मानें, पहली बात। सबमें आत्माको देखें, यह दूसरी बात; फिर सबके सुख-दुःखको अपने समान मानें, यह तीसरी बात। [समाप्त] (कैसेट-संख्या-१२)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी 'शरणागत-नीति'

(आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, शास्त्राचार्य, एम्०ए० (हिन्दी, संस्कृत), साहित्यरत्न)

श्रीराम-रावणका भयानक युद्ध छिड़नेवाला था। रावणके सहोदर भाई विभीषण युद्ध-विरोधी थे। विभीषण श्रीरामके प्रभावसे पूर्ण अवगत थे। उचित समयपर वे रावणके पास पहुँचे और उसे युद्ध टालनेकी सम्मति दी। उन्होंने उससे श्रीरामका प्रभाव बतलाकर सीताको सौंप देनेका निवेदन किया और क्षमा-याचना करनेकी भी सलाह दी; किंतु घमंडी रावणको भाई विभीषणकी एक भी बात मान्य न हुई। उसने विभीषणपर अपना क्रोध प्रकट करते हुए उनपर लातसे प्रहार भी कर दिया। भरी सभामें विभीषणका अपमान हुआ जिसे वे सहन न कर सके तथा अपने चार सहयोगियोंके साथ आकाशमार्गसे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी शरणमें चल पड़े। श्रीरामके सैन्य-शिविरके पास वे आकाशमार्गसे उतरे। उनपर श्रीरामके गुप्तचरोंकी दृष्टि पड़ी। अपने चारों सहयोगियोंके साथ विभीषण श्रीरामके सम्मुख उपस्थित किये गये।

श्रीरामने विभीषण और उनके चारों अनुचरोंको देखा। विभीषणके मन्तव्यको 'जाननेके लिये उन्होंने अपने समस्त राजनीतिक सलाहकारोंको अपने पास बुलाया, जिनमें सुग्रीव, अंगद, नल-नील, जाम्बवान् और हनुमान् आदि श्रेष्ठ लोग थे, सभी उपस्थित हो गये। श्रीरामने उन सबको आदरके साथ अपने पासमें बैठाया और सामने उपस्थित लङ्काधिपति रावणके भाई विभीषणकी ओर संकेत करके, उनके विषयमें जानकारी चाही। सबकी सम्मति जाननेकी इच्छासे सर्वश्रेष्ठ जाम्बवान्की ओर इंगित करके श्रीरामने सबसे पहले उनकी ही सम्मति माँगी। जाम्बवान् प्रसन्न हो गये, वे सुग्रीवकी ओर देखने लगे।

विभीषणने अपना परिचय दे दिया था और श्रीरामसे शरणागत होनेकी प्रार्थना भी कर दी थी। भगवान् श्रीराम सर्वज्ञ, महान् और सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ थे। युद्ध उपस्थित होनेपर विभीषण शत्रुपक्षकी ओरसे श्रीरामकी शरणमें आये थे। रावणके सहोदर भाई होनेसे सहसा विश्वासके पात्र भी न थे।

श्रीराम मर्यादापालक और शरणागतवत्सल थे। पहली ही दृष्टिमें वे विभीषणको पहचान गये थे, परंतु विभीषणका आगमन राजनीतिपरक हो गया था। समय भी युद्धकालका था। अतः शत्रुपक्षके श्रेष्ठ जनका मनोभाव जानना आवश्यक और अनिवार्य था। श्रीराम उस राजनीतिके समर्थक भी थे। उनके आवाहनपर सभी सभासद प्रसन्न एवं उत्सुक थे। श्रीरामके मनोभावको समझ सभी सभासद एक साथ ही बोल पड़े—'प्रभो! तीनों लोकोंमें कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसे आप नहीं जानते? पर आपने अपनत्व दिखाकर हमें बुलाया है और आदर दिया है।'

श्रीरामके आग्रहपर सर्वप्रथम अंगद बोले—'राजन्! विभीषण हमारे यहाँ शत्रुपक्षकी ओरसे आये हैं। इनके प्रति हमारे मनमें शंका होना स्वाभाविक है। सहसा शत्रुपक्षीय जनोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता। स्वभावसे विभीषण क्या हैं, कुछ कहा भी नहीं जा सकता। ये दानववंशी हैं और दानवोंके मनकी बातें जानना सरल नहीं। अवसर पाते ही ये आक्रमण कर सकते हैं। अतः राजन्! विभीषणके बाहरी आकार-प्रकारपर विश्वास करना अनुचित होगा। विश्वास किया भी नहीं जा सकता। सर्वप्रथम इनके गुण-दोषोंकी पहचान करनी पड़ेगी। उसके बाद ही इन्हें अपनाना उचित होगा। यदि विभीषण कपटरहित हों और शुद्ध मनसे यहाँ आये हों, तभी इन्हें अपनाना युक्तिसंगत होगा।'

युवराज अंगदके इतना कहकर चुप हो जानेपर श्रीरामने शरभ नामक सेनापतिसे सम्मति माँगी। शरभने निवेदन किया—'श्रीराम! विभीषणके पीछे किसी गुप्तचरको नियुक्त करना उचित होगा। उसके द्वारा ही विभीषणका मनोगत भाव जानना आवश्यक है। सहसा शत्रुपक्षके लोगोंपर विश्वास नहीं किया जाता। विभीषणके मनकी बात जानकर ही अपने पक्षमें रखने या न रखनेका निर्णय लेना ठीक होगा।' शरभका विचार जानकर श्रीरामने पुनः जाम्बवान्की ओर दृष्टिपात किया। इसपर जाम्बवान् बोले—'प्रभो! विभीषण ऐसे समय यहाँ आये हैं, जब युद्ध छिड़ना ही चाहता है। भयानक परिस्थिति है। युद्धकालमें शत्रुपक्षपर विश्वास करना विषम संकट पैदा कर देता है। विभीषणको ऐसे समय यहाँ नहीं आना चाहिये था। शत्रुजनोंका विश्वास नहीं किया जाता। हाँ, परीक्षा कर लेनेपर इन्हें अपने पक्षमें रखना उचित है।'

जाम्बवान्के बाद मैन्दकी बारी आयी। फिर अन्यान्य सेनापतियोंसे भी पूछा गया, पर सभीने विभीषणके विषयमें शंका ही प्रकट की। अन्तमें श्रीरामने हनुमान्जीसे सलाह

माँगी। हनुमान्‌जी अति विनम्रतासे बोले—'प्रभो! आप स्वयं समस्त बुद्धिमानोंमें सर्वश्रेष्ठ और नीतिज्ञोंमें अग्रगण्य हैं। आप सर्वसमर्थ तथा भविष्यद्रष्टा हैं। आपसे अधिक ज्ञाता बृहस्पति भी नहीं हैं। प्रभो! आपके समक्ष सर्वज्ञाता बनकर मैं नहीं बोल रहा हूँ और न तो मैं विभीषणका पक्षधर ही हूँ। मैं जो कुछ भी कहूँगा, आपके गौरवकी रक्षा करते हुए ही कहूँगा। विभीषणके विषयमें आपके सभासदों और सेनापतियोंने जो कुछ भी कहा है, उससे कुछ काम बनता हुआ नहीं प्रतीत होता। किसीको कोई दायित्व सौंपे बिना उसकी गतिविधि और उसका मनोभाव नहीं जाना जा सकता। विभीषणके विषयमें गुप्तचर-व्यवस्थाकी जो बात कही गयी है, वह ठीक समय और ठीक स्थानपर नहीं कही गयी है। विभीषण ठीक समय और ठीक स्थानपर ही आये हैं। ये कपटरहित होकर आपकी शरणमें आये हैं। प्रभो! किसीके मनकी भेदभरी बात सहसा नहीं जानी जा सकती। यदि विभीषणके मनमें किसी प्रकारका भेद-भाव होता तो आपके पास आनेका साहस ही नहीं दिखाते। कोई मानव अपना आकार-प्रकार, वेश-भूषा भले ही छिपाये, किंतु उसका मनोभाव नहीं छिप पाता। प्रभो! मानवकी मुखाकृति उसके मनोभावको बता देती है। हे प्रभो! देश-काल और स्थितिका भली प्रकारसे विचार करके ही निर्णय देना बुद्धिमानी है तथा वही सफल-सच्ची नीति मानी जाती है। विभीषणने आपकी शरणमें आकर अपने सत्साहसका ही परिचय दिया है। इन्हें अपनाने या त्यागनेकी क्षमता आपमें ही है।' इतना कहकर हनुमान्‌जी मौन हो गये। तदनन्तर वानरराज सुग्रीव अपना विचार व्यक्त करने लगे। वे बोले—'हे श्रीराम! विभीषण अपने परिवारको आपत्तिकालमें छोड़कर यहाँ आये हैं। जब इन्होंने अपने सगे भाईको छोड़ दिया तो दूसरोंको कैसे अपना सकते हैं?'

सुग्रीवका विचार सुनकर श्रीरामने अपने समस्त सभासदों और सेनापतियोंपर दृष्टिपात किया। मर्यादापालक श्रीरामको हनुमान्‌जीका मन्तव्य सर्वाधिक सामयिक और सद्विचारसम्पन्न जान पड़ा था। अतः अपना मनोभाव व्यक्त करनेके पूर्व भाई लक्ष्मणसे वे बोले—

अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च।
न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः॥

(वा०रा० ६।१८।८)

'लक्ष्मण! इस समय वानरराजने जो बात कही है वैसी बात कोई अन्य बिना शास्त्रोंका अध्ययन एवं गुरुजनोंकी सेवा किये नहीं कह सकता।'

श्रीरामकी शरणागत-समर्थक पावन नीति

श्रीरामने सीधे वानरराज सुग्रीवसे कहा—'सुग्रीव! आपने विभीषणमें जो भाईके परित्यागरूप दोषकी चर्चा की है, उस विषयमें मुझे एक ऐसे अति सूक्ष्म अर्थकी प्रतीति हो रही है, जो समान राजाओंमें प्रत्यक्ष देखी जाती है। राजाओंमें दो प्रकारके छिद्र बताये गये हैं। एक तो उसी कुलमें उत्पन्न हुए जाति-भाई और दूसरे पड़ोसी देशोंके निवासी। ये संकटग्रस्त अपने विरोधी राजा या राजपुत्रपर सहसा प्रहार कर बैठते हैं। इसी भयसे विभीषण यहाँ आया है। जिनके मनमें पाप नहीं है, ऐसे एक कुलमें उत्पन्न हुए भाई-बन्धु अपने कुटुम्बीजनोंको हितैषी मानते हैं। परंतु यही सजातीय बन्धु अच्छा होनेपर भी प्रायः राजाओंके लिये शंकालु हो जाते हैं। रावण भी विभीषणको शंकाकी दृष्टिसे देखने लगा है। सुग्रीव! तुमने शत्रुपक्षीय सैनिकको अपनानेमें जो दोष कहा है कि वह अवसर देखकर प्रहार कर बैठता है, उसके विषयमें मैं नीतिसंगत उत्तर दे रहा हूँ। सुनो—

न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकाङ्क्षी च राक्षसः।
पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद् ग्राह्यो विभीषणः॥

(वा०रा० ६।१८।१३)

हमलोग इसके कुटुम्बी तो हैं नहीं [अतः हमसे स्वार्थहानिकी आशङ्का इसे नहीं है] और यह राक्षस राज्य पानेका अभिलाषी है। [इसलिये भी यह हमारा त्याग नहीं कर सकता] इन राक्षसोंमें बहुत-से लोग बड़े विद्वान् भी होते हैं, [अतः वे मित्र होनेपर बड़े कामके सिद्ध होंगे] इसलिये विभीषणको अपने पक्षमें मिला लेना चाहिये।

श्रीरामने विभीषणको शरणमें लेने और अपने पक्षमें मिलानेकी स्पष्ट घोषणा करते हुए विभीषणकी मित्रताकी सराहना की। उन्होंने कहा—'तात सुग्रीव! सुनो, संसारमें भरतके समान भाई नहीं। मेरे समान बेटा नहीं और सभी मित्र तुम्हारे समान नहीं'—

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥

(वा०रा० ६।१८।१५)

वानरराज सुग्रीव मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके मन्तव्यको

जान-समझकर भी अपने ही विचारोंपर दृढ़ रहे। वे पुनः विनम्रताके साथ बोले—'हे राघवेन्द्र! यह विभीषण अपने भाई रावणकी सलाहसे ही यहाँ आया है। मैं इसे बन्दी बनाना ही ठीक समझ रहा हूँ। यह हमलोगोंपर घात लगाकर आक्रमण कर सकता है।' इतना ही नहीं, सुग्रीवने तो अपना विचार व्यक्त करते हुए विभीषणके वधके लिये भी जब राय दे दी, तब शरणागतवत्सल मर्यादापालक प्रभु श्रीराम सखा सुग्रीवको समझाते हुए मङ्गलमय सुखदायक वचन बोले—

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथंचन॥

× × ×

अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥

(वा०रा० ६।१८।२२-२३)

'हे सुग्रीव! विभीषण दुष्ट हो या सज्जन, यह मेरा अहित नहीं कर सकता। मैं चाहूँ तो पृथ्वीके समस्त राक्षसोंका संहार अपनी अँगुलीके अग्रभागसे कर सकता हूँ।' श्रीरामने सुग्रीवको समझाते हुए एक कबूतरका उदाहरण दिया, जिसने अपने ही शत्रु व्याधको शरण दी। उन्होंने महर्षि कण्डुकी शरणागत-समर्थक गाथाका भी ज्ञान सुग्रीवको कराया। श्रीरामने कहा—'सुग्रीव! शरणमें आया पुरुष संरक्षण न प्राप्त कर यदि उस संरक्षकके देखते-देखते मर जाय (नष्ट हो जाय) तो वह उसके समस्त पुण्योंको अपने साथ ले जाता है'—

विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः।
आनाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः॥

(वा०रा० ६।१८।३०)

मर्यादापालक श्रीरामने वानरराज सुग्रीवको महर्षि कण्डुजीके शरणागत-पालक महत्त्वपूर्ण वचनोंको सुनाकर अपनी घोषणा सुनायी। शरणागतवत्सल श्रीरामकी वह घोषणा प्रत्येक भगवद्भक्तको भरोसा दिलाती है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० ६।१८।३३)

जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा सदाके लिये व्रत है।

श्रीरामने कहा—'सखा सुग्रीव! विभीषण या स्वयं रावण ही मेरी शरणमें आया हो तो भी तुम उसे ले आओ। मैंने उसे अभय-दान दे दिया है।' शरणागतवत्सल श्रीरामकी इस घोषणाके बाद वानरराज सुग्रीवका भ्रम दूर हो गया। विनम्रभावसे सुग्रीवने अपनी स्वीकारोक्तिके साथ कहा—'धर्मज्ञ! लोकेश्वरशिरोमणे! आपने जो धर्मसंगत घोषणा की है, इसमें किसीको आश्चर्य नहीं हो सकता। प्रभो! आप महान् हैं, शक्तिमान् हैं और सन्मार्गपर विराजमान हैं। प्रभो! मैंने भी विभीषणको निर्दोष माना। हनुमान्‌जीने भी विभीषणकी भलीभाँति परीक्षा कर ली है। अतः हे प्रभो! विभीषण भी हमारे-जैसे होकर यहाँ रहें और हमारी मित्रता प्राप्त करें'—

तस्मात् क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव।
विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः॥

(वा०रा० ६।१८।३८)

मर्यादापालक श्रीरामने दृढ़तापूर्वक कह दिया कि जीव चाहे मानव हो या निशाचर, जब मेरे (भगवान्‌के) सम्मुख आ जाता है, तब उसी समय उसके करोड़ों जन्मोंके पापोंको मैं नष्ट कर देता हूँ। उसका पाप समाप्त होते ही उस जीवका मन शुद्ध हो जाता है। पुनश्च मेरे सम्मुख कपटी जीव आ भी नहीं सकते। अपना अन्तिम निर्णय सुनाते हुए श्रीरामने कहा—'हे मित्र (सुग्रीव)! सुनो। यदि यह विभीषण रावणका भेजा भेदिया बनकर आया होगा तो भी इसकी चिन्ता नहीं; क्योंकि संसारभरमें जितने भी निशाचर हैं, उन्हें अकेले लक्ष्मण एक निमेषमें ही समाप्त कर देंगे। श्रीरामने अन्तमें कहा—

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

(रा०च०मा० ५।४४।८)

हनुमान्‌जी और अंगदने विभीषणको श्रीरामके सम्मुख उपस्थित कर दिया। अपना परिचय देते हुए विभीषण प्रभु श्रीरामके चरणोंपर गिर पड़े और प्रभुने शरणागत भक्त विभीषणको हृदयसे लगा लिया—

दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥

(रा०च०मा० ५।४६।२)
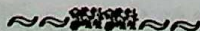
साधकोंके प्रति—

कल्याणका निश्चित उपाय

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान्‌ने जीवपर कृपा करके उसको अपना कल्याण करनेके लिये ही मनुष्यशरीर दिया है। अपना कल्याण करनेके सिवाय मनुष्यजन्मका दूसरा कोई प्रयोजन है ही नहीं। शरीर, धन-सम्पत्ति, जमीन-मकान, स्त्री-पुत्र आदि जितनी भी सांसारिक वस्तुएँ हैं, वे सब-की-सब मिलने और बिछुड़नेवाली हैं। अत: कोई कितना ही बड़ा धनवान् बन जाय, बलवान् बन जाय, विद्वान् बन जाय, ऊँचे पदवाला बन जाय, बड़े कुटुम्बवाला बन जाय पर अपने कल्याणके बिना ये सब-की-सब वस्तुएँ अपने कुछ काम न आयेंगी। बिना दूल्हेकी बरातकी तरह सम्पूर्ण सांसारिक भोग व्यर्थ हैं। इसलिये मनुष्यका खास कर्तव्य है—अपना कल्याण करना।

एक मार्मिक बात है कि अपना कल्याण करनेमें मनुष्यमात्र सर्वथा स्वतन्त्र है, समर्थ है, योग्य है, अधिकारी है। कारण कि भगवान् जीवको मनुष्यशरीर देते हैं तो उसके साथ ही अपना कल्याण करनेकी स्वतन्त्रता, सामर्थ्य, योग्यता और अधिकार भी प्रदान करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य अपना कल्याण करनेके लिये क्या करे? इसका उत्तर है कि यदि मनुष्य इन चार बातोंको दृढ़तासे स्वीकार कर ले तो उसका कल्याण हो जायगा—

(१) मेरा कुछ भी नहीं है।

(२) मेरेको कुछ भी नहीं चाहिये।

(३) मेरा किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

(४) केवल भगवान् ही मेरे हैं।

मिलने और बिछुड़नेवाली वस्तुओंको अपना मानना मूल दोष है, जिससे सम्पूर्ण दोषोंकी उत्पत्ति होती है। वास्तवमें अनन्त ब्रह्माण्डोंमें केश-जितनी वस्तु भी अपनी नहीं है। इसलिये 'मेरा कुछ भी नहीं है'—ऐसा स्वीकार करनेसे जीवनमें निर्दोषता आ जाती है। निर्दोषता आते ही मनुष्य धर्मात्मा हो जाता है।

जब मेरा कुछ है ही नहीं तो फिर हम किस वस्तुकी चाहना करें? अत: 'मेरेको कुछ भी नहीं चाहिये'—ऐसा स्वीकार करते ही जीवनमें निष्कामता आ जाती है। निष्कामता आते ही मनुष्य योगी हो जाता है अर्थात् उसको समत्वरूप योगकी प्राप्ति हो जाती है—**'समत्वं योग उच्यते'** (गीता २।४८)। कोई भी कामना न होनेसे उसको चित्तवृत्तिनिरोधरूप योगकी भी प्राप्ति हो जाती है—**'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'** (योगदर्शन १।२)।

मनुष्यमात्रका स्वरूप स्वत: असंग है—**'असङ्गो ह्ययं पुरुष:'** (बृहदा० ४।३।१५)। अत: मिलने और बिछुड़नेवाले किसी भी वस्तु-व्यक्तिके साथ अपना सम्बन्ध न माननेसे मनुष्यको अपनी असंगताका अनुभव हो जाता है। असंगताका अनुभव होनेपर वह ज्ञानी हो जाता है।

जीवमात्र परमात्माका अंश है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५।७) भगवान्‌का अंश होनेके नाते केवल भगवान् ही हमारे हैं। भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई हमारा नहीं है। इस प्रकार भगवान्‌में अपनापन स्वीकार करते ही मनुष्य भक्त हो जाता है।

धर्मात्मा, योगी, ज्ञानी और भक्त होनेमें ही मनुष्यका कल्याण निहित है। ऐसा होनेमें कठिनाई भी नहीं है; क्योंकि वास्तवमें मनुष्यमात्रका स्वरूप स्वत: निर्दोष, निष्काम, असंग और भगवान्‌का अंश है। तात्पर्य है कि हमारा स्वरूप सत्तामात्र है। उस सत्तामें निर्दोषता, निष्कामता और असंगता स्वत:सिद्ध है तथा वह सत्ता भगवान्‌का अंश है। इसलिये साधकका कर्तव्य है कि वह उपर्युक्त चारों बातोंको दृढ़तासे स्वीकार कर ले। फिर उसका कल्याण निश्चित है।

हिन्दू-धर्मकी विशिष्टता

(श्रीहरनारायणजी महाराज)

अमेरिकासे पादरी 'रेवरेण्ड आवार'को भारतमें ईसाई-धर्मका प्रचार-प्रसार करनेके लिये भेजा गया। उन्होंने पूनाके आस-पास ईसाई-धर्मका प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन जब वे कुछ लोगोंके सामने हिन्दू-धर्मकी निन्दा तथा ईसाई-धर्मकी प्रशंसा कर रहे थे, पं० सीतारामजी गोस्वामीने उनसे कहा—'आप बिना जाने-समझे हिन्दू-धर्मकी निन्दा क्यों करते हैं? आपको चाहिये कि हिन्दू-धर्मके सम्बन्धमें कुछ कहनेसे पहले उसे भलीभाँति समझ लें।'

यह बात पादरी आवारको ठीक प्रतीत हुई, अतः उन्होंने संस्कृत तथा मराठी भाषा सीखकर हिन्दू-धर्मग्रन्थोंका गहन अध्ययन किया। इस अध्ययनसे उनकी हिन्दू-धर्मके प्रति गहन निष्ठा हो गयी। उन्होंने अमरीकन मिशनको पत्र लिखा—'भारतमें सैकड़ों ईसाई हैं अर्थात् ईसा-जैसे अनेक संत हो गये हैं। अतः भारतमें ईसाई-धर्मके प्रचारका कोई औचित्य नहीं है। भारतमें ईसाई-धर्म-प्रचार-कार्य पूर्णतः बंद कर देना चाहिये। मैंने हिन्दू-धर्मग्रन्थोंका गहन अध्ययन करके इस तथ्यको जान लिया है कि भारतवर्ष सत्यधर्मका अगाध समुद्र है। अतः मैं मिशनसे त्यागपत्र देता हूँ, आजके बाद मैं ईसाई धर्मका प्रचार-प्रसार नहीं करूँगा। इतना ही नहीं, अपनी आठ लाखकी सम्पत्ति जो अमेरिकामें है, उसे मैं 'भारतीय इतिहास शोधक मण्डल' को अर्पित करता हूँ, जिससे मण्डलद्वारा भारतीय सद्ग्रन्थोंके अनुवाद छपते रहें।'

उन्होंने आगे लिखा—'बुद्धिसे ही मनुष्य मनुष्य है, अन्यथा उसमें और मनुष्येतर प्राणियोंमें क्या अन्तर? जो धर्म मनुष्यकी बुद्धिको क़ैद करते हैं, उसे एक निर्धारित मार्गपर ही चलनेको कहते हैं, उससे सोचने-समझनेका मौलिक अधिकार छीनते हैं अर्थात् उसकी बौद्धिक स्वाधीनताका अपहरण करते हैं, ऐसे धर्म मनुष्यका हित नहीं, अपितु अहित करते हैं, उसे कूप-मण्डूक बनाते हैं, उसकी विकास-प्रक्रियाको रोकते हैं। अतः मैं ऐसे धर्मोंकी निन्दा करता हूँ। विश्वमें प्रचलित सभी धर्म—ईसाई, इसलाम, यहूदी, पारसी और बौद्ध आदि मनुष्यकी बुद्धिको क़ैद करते हैं। केवल हिन्दू-धर्म ही एक ऐसा धर्म है, जो मनुष्यको बौद्धिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है, अतः मैं हिन्दू-धर्मका हिमायती हूँ।'

ईसाई-धर्म, इसलाम-धर्म, यहूदी-धर्म और बौद्ध-धर्म आदि प्रचारक धर्म हैं। प्रचारका अर्थ है—कुछ विशेष विश्वासों एवं मतोंको जनसमूहमें प्रचलित करना। जितने प्रचारक धर्म हैं, वे कुछ विश्वासों तथा मतोंपर आधारित हैं। वे विश्वास एवं मत सार्वजनिक नहीं हैं अर्थात् सभी उनको सत्य नहीं मानते। जो इन बातोंको सत्य नहीं मानते, वे इन धर्मोंसे बाहर रहते हैं। इन धर्मोंकी व्यापकता मतैक्यपर निर्भर है; किंतु हिन्दू-धर्ममें यह बात नहीं है। उसका प्राण मत नहीं आचार है, विश्वास नहीं अनुष्ठान है।

हिन्दू-धर्ममें श्रद्धाके सुमन विवेकके प्रकाशमें ही खिलते हैं। इस धर्ममें विचारोंकी पूर्ण स्वतन्त्रता है। हिन्दू-धर्ममें कोई वैष्णव है, कोई शैव है तथा कोई शाक्त है। कोई आस्तिक है तो कोई नास्तिक। तत्त्वालोचनामें हिन्दू दर्शन-शास्त्रोंमें तीव्र मतभेद हैं। निरीश्वर सांख्य और सेश्वर योग तथा न्याय, वैशेषिक अथवा पूर्व मीमांसा एवं उत्तर मीमांसा सभी अपने-अपने सिद्धान्तोंका मण्डन और दूसरोंके सिद्धान्तोंकी समालोचना करते हैं तो भी वे सभी हिन्दू-धर्ममें सम्मिलित हैं, कोई भी हिन्दू समाजसे बहिष्कृत नहीं हुआ है। विचारकी यह स्वाधीनता, साधनाके ऋजु-वक्र अनेक पथ हिन्दू-धर्ममें ही हैं। इन्हींके कारण हिन्दू-धर्ममें वह उदार तथा सार्वजनीन भाव आ गया है, जो अन्यत्र नहीं है। हिन्दू-धर्म-जैसी उदारता प्रचारक धर्मोंमें सम्भव नहीं है। कोई भी प्रचारक धर्म यह स्वीकार नहीं करेगा कि दूसरे धर्मोंमें भी सत्य है। सभी अपनेको सही तथा दूसरोंको गलत बतलाते हैं। इसलाम धर्म कहता है—'जो मुसलमान नहीं हैं, उन्हें जहन्नुम जाना पड़ेगा।' ईसाई-धर्मके कथनानुसार 'जो ईसाई नहीं हैं, उन्हें नरककी यातना सहनी पड़ेगी।' इस प्रकार सभी प्रचारक धर्म विश्वकल्याणार्थ अपने संकीर्ण मतका प्रचार

कर विश्वका अकल्याण कर रहे हैं। हिन्दू-धर्म अपनेको पूर्ण सत्यज्ञाता नहीं मानता। वह कहता है—*'इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥'* (रा०च०मा० १।१२१।२) अर्थात् यही सत्य है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

सभी प्रचारक धर्म अन्धश्रद्धाके बलपर स्थित हैं; किंतु हिन्दू-धर्ममें यह बात नहीं है। भारतीय ऋषियोंका यह अनादि धर्म जिसमें जगत्के समस्त धर्मोंका सहजमें समन्वय हो सकता है, अन्य धर्मोंकी भाँति खोखला या निराधार नहीं है। परम शुद्धि-बुद्धिसे मैंने इस धर्मके परम तत्त्वको जानने एवं पहचाननेका प्रयत्न किया है। इस प्रयत्नसे मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि हिन्दू-धर्म, धर्मका एक अगाध महासागर है। जो सार वस्तु अन्य धर्मोंमें है, वह सब हिन्दू-धर्ममें निहित है, किंतु जो हिन्दू-धर्ममें है; वह अन्य धर्मोंमें नहीं है।

उक्त विचारोंके कारण मैं मिशनसे त्यागपत्र दे रहा हूँ। मुझे बौद्धिक स्वतन्त्रताके वातावरणमें विचरने दीजिये।

~~~

पृथ्वीका अमृत—गायका दूध

गायका दूध पृथ्वीका सर्वोत्तम आहार है। इसे मृत्युलोकका अमृत कहा गया है। मनुष्यकी शक्ति एवं बलको बढ़ानेवाला गोदुग्ध-जैसा दूसरा कोई श्रेष्ठ पदार्थ इस त्रिलोकीमें नहीं है। देवकार्य तथा औषधके रूपमें इसका विशेषरूपसे उपयोग होता है। पञ्चामृत बनानेमें इसका अनुपात सर्वाधिक रहता है।

गायका दूध पीला तथा स्वर्ण-जैसे गुणोंसे युक्त होता है। इसमें विटामिन 'ए' पाया जाता है।

गायका दूध जीर्णज्वर, मानसिक रोग, मूर्च्छा, भ्रम, संग्रहणी, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, हृदयरोग, शूल, गुल्म, रक्तपित्त और योनिरोग आदिमें उत्तम प्रयोज्य है।

प्रतिदिन गायके दूधके सेवनसे अनेक प्रकारके रोग यूँ ही दूर हो जाते हैं एवं वृद्धावस्थाका विशेष प्रभाव नहीं होने पाता। इसके सेवनसे शरीरमें तत्काल शक्ति-स्फुरण होने लगता है।

एलोपैथी दवाओं, रासायनिक खादों तथा प्रदूषण आदिके कारण; हवा, पानी एवं आहारके द्वारा शरीरमें जो विष एकत्रित होता है, उसे नष्ट करनेकी शक्ति मात्र गोदुग्धमें है।

गायके दूधसे बनी मिठाइयोंकी अपेक्षा अन्य पशुओंके दूधसे बनी मिठाइयाँ जल्दी बिगड़ जाती हैं।

गायको शतावरी खिलाकर उस गायके दूधपर मरीजको रखनेसे 'क्षयरोग' (T. B.) मिटता है।

गायके दूधमें दैवी-तत्त्वोंका निवास है। विशेषरूपसे गोदुग्धमें तेजस्तत्त्व अधिक एवं पृथ्वीतत्त्व कम होनेके कारण व्यक्ति प्रतिभासम्पन्न होता है और उसकी ग्रहण-शक्ति (Grasping-Power) बढ़ती है, साथ ही ओजकी वृद्धि होती है, बुद्धि निर्मल बनती है एवं विचार सात्त्विक बनते हैं। इस दूधमें विद्यमान 'सेरीब्रोसाडस' तत्त्व मस्तिष्क एवं बुद्धिके विकासमें सहायक है।

केवल गायके दूधमें ही (Strontian) तत्त्व है जो कि अणुविकिरणोंका प्रतिरोधक है। 'रशियन' वैज्ञानिक गायके घी-दूधको 'एटम बम' के अणुकणोंके विषका शमन करनेवाला मानते हैं, उस दूधमें रासायनिक तत्त्व नहींके बराबर होनेके कारण उसको अधिक मात्रामें सेवन करनेसे भी कोई 'साइड इफेक्ट' या नुकसान नहीं होता।

'कारनेल विश्वविद्यालय'के पशुविज्ञानके विशेषज्ञ प्रोफेसर 'रोनाल्ड गोरायटे'का कहना है कि गायके दूधसे प्राप्त होनेवाले Mdgi प्रोटीनके कारण शरीरकी कोशिकाएँ कैंसरयुक्त होनेसे बचती हैं।

गायके दूधसे 'कोलेस्ट्रॉल' नहीं बढ़ता, बल्कि हृदय एवं रक्तकी धमनियोंके संकोचनका निवारण होता है। इस दूधमें दूधकी अपेक्षा आधा पानी डालकर, पानी जल जाय तबतक उबालकर पीनेसे वह कच्चे दूधकी अपेक्षा पचनेमें अधिक हलका होता है।

गायका दूध अत्यन्त स्वादिष्ठ, स्निग्ध, मुलायम, चिकनाईयुक्त, मधुर, शीतल, रुचिकर, बुद्धिवर्धक, बलवर्धक, स्मृतिवर्धक, जीवनदायक, रक्तवर्धक, वाजीकारक, आयुष्यकारक एवं सर्वरोगको हरनेवाला है। इसीलिये गोदुग्धको पृथ्वीका अमृत कहा गया है।

[प्रेषक—श्रीराधेश्यामजी लोहिया]

~~~

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ९५९ से आगे]

प्रेम-पथमें दो बात परम आवश्यक है—

(१) प्रेमी कौ संग और (२) सतोगुणी आहार—यदि ये प्राप्त हैं तौ उत्थान शीघ्र है जाय।

यदि उत्थान चाहै तौ अपने सिर पै कोई भार न राखै, ताकि बाकौ चिन्तन करनौं परै।

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय॥

अहंकार, क्रोध, अपमान तथा ईर्ष्या—ये हैं पतनके कारण। आज ये ही रह गये हैं। हम इनसौं सावधान रहैं। अपने जीवनमें ये न रहन पावैं। भजन भले ही कम बनै तौ कोई बात नहीं, किंतु अपने जीवनमें ये न रहन पावैं। आज गुरु-भक्तिके बहाने सौं अन्य सब संतनकौ भरिपेट अपमान कियौ जाय है, हमारे द्वारा यह न हौन पावै। हमारे ताँईं तौ सबही पूज्य हैं। वेषधारीमात्र हमारे पूज्य हैं। वाही कौ यह फल है कि आज भारतभरके संतनकी कृपा प्राप्त है।

'जग हित निरुपधि साधु लोग से॥'

साधुकी शोभा और कल्याण है साधुतामें, रहनीमें। कछु तौ या अभावमें उलझे परे हैं कि आज कहाँ खामिंगे। कहाँ पीमिंगे और जो कछू बड़े हैं, वे सम्मान तथा धन बटोरिवेमें तथा आश्रम बनायवे (ऐश्वर्य)-में अटक गये हैं। हम सावधान रहैं कि मात्र साधुवेषमें ही न रह जायँ। आजकल ईर्ष्या-अहंकार बढ़ि रहे हैं। हममें ये न हौन पावैं। साधुसौं सबकौ हित ही होय है। काहू कौ अहित है ही नहीं सकै।

कितनौं ऊँचौ वाक्य है—

'नहिं कछु भय न दीनता आई॥'

श्रीलोमशजीने शाप दै दियौ, किंतु **(निर्भरता इष्टके मङ्गलमय विधान पै)** नैंकहू भय नहीं, दीनता नहीं, क्योंकि मैं कौआ बन्यौ हूँ, कौनके ताँईं? श्रीरामके ताँईं। कितनी छाती है इनकी? कितनौं साहस है इनकौ? सार है यह कि अपने इष्टमें इतनी प्रगाढ़ आत्मीयता हौनी चहिए।

थानेदारके पास खड़े रहौ तौ साहस नहीं काहू कौ, चाहैं वह कितनौं हू प्रबल-शत्रु क्यौं न होय कि तुम पै प्रहार करि दे। ऐसैं ही सतत प्रियतमके पास बने रहौ तौ काहू विकार कौ साहस नहीं कि वह तुम पै धावा बोलि दे।

श्रीभगवान् वसिष्ठजी कह रहे हैं कि *'सौंपेहु राजु राम के आएँ।'* राजमाता कौसल्याजीने तौ यहाँतक कह दयी कि बेटा भरत! यदि तुम राज-काज सँभारि लेउगे तौ मेरे सब दुःख दूरि है जायँगे। मैं यही जान लूँगी कि मेरौ राम ही राजा है गयौ है और सब पुरवासी मन्त्रीनने हू याही कौ अनुमोदन करि दियौ, किंतु श्रीभरतजी कह रहे हैं कि *'जाउँ राम पहिं आयसु देहू।'* इतनौं बड़ौ साम्राज्य। बाकूँ ठुकराय दियौ श्रीरामके ताँईं। तब श्रीरामजीने कही—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥

यह बात कब बनी, जब अपनौ सर्वस्व श्रीरामके ताँईं त्याग दियौ।

साधक वहाँ रहै, जहाँ भोग्य पदार्थन कौ बाहुल्य न होय। **(तप, त्याग)** पूर्ण-वैराग्य सौं रहै।

—कामना कोई हो न।

—पूर्ण श्रद्धा होय।

—फिर कहुँ प्राप्त है जाय संत-सेवा, बस, है गयौ एक ही जन्ममें बेड़ा पार।

श्रीअक्रूरजी जब ब्रजमें आये, तब जो-जो संकल्प

मार्गमें करते आये, वे-वे ही ब्रजमें आयकैं प्राप्त भये। ऐसें ही साधककी रहनीमें केवल वहाँके ही संकल्प हौने चहिएँ, जहाँ जानौं हैं। अन्तमें वे ही प्राप्त हौयँगे, जैसें अक्रूरजी कूँ प्राप्त भये। पीछैं चलिकैं श्रीशुकदेवजीने यहू कह दियौ है कि हे राजन्! जो इनमें ही लगे रहैं हैं, तत्पर रहैं हैं, उनके तौ इतर संकल्प बनैं ही नहीं हैं। अपने कूँ प्रेम-पथ कौ पथिक मानैं हैं तौ हमारी रहनीमें प्रेम-ही-प्रेम हौनौं चहिएँ। काहू कूँ देखैं तौ प्रेम सौं। काहू कूँ छूवैं तौ प्रेम सौं। काहू कूँ बोलैं तौ प्रेम सौं। कटुता, कठोरता, रूक्षता छू न जाय। प्रेम-ही-प्रेम होय तौ शीघ्र प्रेम-प्राप्त है जायगौ।

आज माह पूर्ण, वर्ष पूर्ण है गयौ तौ हमहूँ आज सौं अभ्यास बनावै कि हमारे जो काम हौयँ, वे सब पूरे मन सौं पूरे हौयँ। अपने मन, बुद्धिकी एकहू नहीं सुनै। एक रहस्यकी बात है, हमारौ लक्ष्य है प्रेम। जो यामें सहायक होयँ वे सब पकरने हैं। बाधक होयँ उनकूँ छोड़नौं हमारौ परम कर्तव्य है। सतत अपने लक्ष्यकी ओर ही बढ़ते चलनौं। साधन श्रीसद्गुरु निर्दिष्ट होय। यथा—

'तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।' (गीता १०। १०)

और होय केवल इनके ताँईं। तौ कोई रोकि नहीं सकै, एक ही जनममें बेड़ा पार।

ब्राह्मणके चार सद्गुण-पालन करि लैवे पै ब्राह्मणत्व ठीक-ठीक सिद्ध होय है—

विद्या—अपने अध्ययन सौं प्राप्त करी भई।

तप—प्रकृतिके व्यवहार कूँ सहन करनौं।

त्याग—संग्रह न हौन पावै काहू वस्तु कौ।

संयम—वाणी, नेत्र, कर्ण और समस्त इन्द्रियन कौ। बौलनौं, देखनौं, सुननौं, खानौं, पीनौं आदि-आदि सबकौ पूर्ण-संयम।

भगवान् श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणजी कूँ भगवान् श्रीशङ्करजीके पास भेज्यौ कि पूछिकैं आऔं वैराग्य का बस्तु है? श्रीलखनलालजी वहाँ पहुँचे तौ का देख्यौ कि भगवान् श्रीशङ्करजी अपनी जिह्वा और उपस्थ कूँ पकरिकैं नृत्य करि रहे हैं। या दृश्य कूँ देखिकैं श्रीलखनलालजी बिना कछु कहे-सुने उल्टे पाँव ही वापस लौटि आये। भगवान् श्रीरामजीने ग्लानि सौं भरे श्रीमुख अपने अनुज श्रीलखनलालजी सौं पूछी कि क्यौं भैया लखन! का बात है? ऐसौ और तरह कौ मुख क्यौं बनाय रहे हौ? तुम्हारे प्रश्न कौ उत्तर आशुतोषने नहीं दियौ है का? मोकूँ बताऔ का बात है? तुम ऐसे खिन्न मन काहे कूँ है रहे हो? प्रभुके पूछिवे पै श्रीलखनलालजीने सबरौ आँखिन देख्यौ हाल ज्यौं-की-त्यौं कह सुनायौ। सुनिकैं प्रभु बोले कि यही तौ उत्तर है तुम्हारे प्रश्न कौ। जानैं अपनी जिह्वा और उपस्थ कूँ संयत करि लियौ, वही सच्चौ वैरागी है। जो उपस्थ कूँ वशमें करनौं चाहै और ब्रह्मचर्यकौ पालन करनौं चाहै, वह अपनी जिह्वाकौ संयम अवश्य ही करै। बिना जिह्वाके संयमके उपस्थकौ संयम सम्भव ही नहीं। तेल, गुड़, खटाई, लाल-मिर्च—ये सब ब्रह्मचर्यके महान् घातक हैं। धातु कूँ तरल बनाय देयँ हैं। जिनकूँ बाल्यकाल सौं इनकौ सेवन करायौ जाय है, उनके ब्रह्मचर्यकी दुर्दशा होय है। सबकौ संयम ठीक तथा सब काम नपे-तुले हौने चहिएँ। आजकल एक नयी प्रथा प्रारम्भ है गयी है सिद्ध बनिवे की। जो मिल्यौ सो खाय लौ, जो मिल्यौ सो पहरि लौ, जो चाह्यौ सो बोल दियौ। साधक तौ हैं ही नहीं। अपने जीवनमें यह न हौन पावै। सावधान! सतत सावधान रहकैं अपने कूँ ही देखते रहैं।

बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। कलियुगकी पूरी चाल है या पथ पै।

आजकल सुख, आराम, वैभव आदि-आदि सबनकी तैयारी यहाँके ताँईं ही है। का छोटे, का बड़े, निन्दा नहीं करि रहे हैं। ऐसैं ही धीरें-धीरें देहाध्यास बढ़ि जाय है। तत्त्वकी बात है एक—अन्तःकरण एकदम खाली इनके ताँईं।

उदाहरण दियौ वंशी कौ—

'करैं धाम वास और सोचैं बाहर की।'

जो अपने कर्तव्य-पालनमें दृढ़ हैं, प्रमाद नहीं, उपेक्षा नहीं।

पूर्ण-सत्यता है, पूर्ण-तत्परता है, तौ ये जो करैं, प्रचार हू करनौं चाहैं तौ कछु लाभ है सकै। अन्यथा नहीं।

(क्रमशः)

संतवाणी

(श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ९६२ से आगे]

वस्तुके सदुपयोगमें और व्यक्तिकी सेवामें साधन बाधक नहीं है। वस्तुओंका उत्पादन भी साधनमें बाधक नहीं है। साधनमें जो बाधक है, वह है वस्तुसे सम्बन्ध और वस्तुका संग्रह। दिन-रात वस्तुका उत्पादन करो, कोई बाधा नहीं पड़ेगी। उसका सदुपयोग करते जाओ। वस्तुका उत्पादन करते जाओ और उसका सदुपयोग करते जाओ। यह नियम है कि वस्तुकी प्राप्ति किसी विधानसे होती है और यह निश्चित बात है कि उस विधानमें उदार नीति होती है। जो उदार व्यक्ति होते हैं, उनके पास आवश्यक वस्तुएँ अपने-आप आती हैं। यदि वस्तुएँ अपने-आप नहीं आतीं तो उन्हें वस्तुओंका चिन्तन बिलकुल नहीं होता। जहाँ वस्तु-चिन्तन नहीं होता वहाँ क्या होगा बताओ? या तो वहाँ चिन्तनरहित शान्ति होगी अथवा प्रियका विरह होगा या तत्त्वकी जिज्ञासा होगी, तीव्र जिज्ञासा होगी। तीव्र जिज्ञासाका अर्थ क्या है? तीव्र जिज्ञासा सभी वस्तुओंकी, सभी अवस्थाओंकी, सभी परिस्थितियोंकी कामनाको खा लेती है।

एक बात ध्यान देनेकी है कि जिज्ञासा वर्तमान जीवनकी वस्तु है। यह नहीं कि आज जिज्ञासा होगी और कल उसकी पूर्ति होगी। जिज्ञासाकी पूर्ण जागृति, उसकी पूर्ति और कामनाओंकी निवृत्ति—ये तीनों एक साथ होती हैं। यदि जिज्ञासाकी पूर्ति नहीं हुई तो समझना चाहिये कि कामना नष्ट नहीं हुई और यदि कामना नष्ट नहीं हुई तो समझना चाहिये कि जिज्ञासाकी जागृति नहीं हुई।

साधनकी दृष्टिसे तो वस्तुके सदुपयोगका, वस्तुके उत्पादनका बहुत बड़ा स्थान है। इससे हानि नहीं है। आप चाहे मिलके द्वारा, चाहे किसी प्रकारसे वस्तुका उत्पादन करें; इससे साधनमें कोई क्षति नहीं होगी। किंतु उत्पादन करते समय जो उत्पादनका तरीका हो, जो उपाय हो, वह ऐसा होना चाहिये कि जिससे आप यह कह सकें कि हमने ऐसा काम नहीं किया, जो करना नहीं चाहिये। यानी उसके उत्पादनका तरीका ईमानदारीका होना चाहिये। तब आवश्यक वस्तुएँ आपके पास अपने-आप आती रहेंगी।

वस्तुएँ आती रहें और आप उनका सदुपयोग करते रहें, यह प्रभुकी सेवा होगी। तो वस्तुके सदुपयोगद्वारा प्रभुकी सेवा व्यक्तिके स्वरूपमें होगी। जब आप व्यक्तिके स्वरूपमें प्रभुकी सेवा करेंगे, तब व्यक्ति-बुद्धि नष्ट हो जायगी और भगवत्-बुद्धि उदित हो जायगी। वस्तु-बुद्धिके नाश होनेसे ममताके लिये कोई स्थान ही नहीं रहेगा। ऐसा मालूम होगा कि यह जो वस्तु है, यह तो सेवासामग्री है। प्रभुकी सेवासामग्री है। वस्तु और प्रभु जो हैं, वे व्यक्तिके रूपमें अभिव्यक्त हुए हैं। किसलिये अभिव्यक्त हुए हैं? आपमें जो सेवा करनेकी रुचि थी, उसकी पूर्तिके लिये वे अभिव्यक्त हुए हैं?

यह किसका दृष्टिकोण है? यह साधकका दृष्टिकोण है और व्यक्तिगतरूपसे अपने सुख भोगनेके लिये वस्तु मैंने सम्पादित की है तथा जगत् जो है वह सुखसामग्री है। इनमेंसे सुख लिया जाय, इनका भोग किया जाय। यह क्या है? यह असाधन है।

साधनकी दृष्टिसे वस्तुका अर्थ केवल उन वस्तुओंसे लेना चाहिये जिनका उपयोग किया जा सके। जैसे बोलनेकी शक्ति भी एक वस्तु है, सुननेकी शक्ति भी एक वस्तु है, समझनेकी शक्ति भी एक वस्तु है। इन सभी वस्तुओंका सदुपयोग प्रभुकी सेवामें है और प्रभुकी अभिव्यक्ति जगत्के स्वरूपमें है।

देखिये, आस्तिकवाद और नास्तिकवादमें अन्तर क्या है? आस्तिकवाद जगत्में प्रभुका दर्शन कराता है और नास्तिकवाद प्रभुमें जगत्का दर्शन कराता है। आस्तिकदर्शन और नास्तिकदर्शनमें यह बड़ा भारी अन्तर है। प्रभुमें जगत्का दर्शन, यह नास्तिकदर्शनकी बात है। यह भी एक दर्शन है और जगत्में प्रभुका दर्शन, यह आस्तिकदर्शनकी बात है।

आस्तिकदर्शनकी दृष्टिसे जगत्का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है और जब जगत्का अस्तित्व ही नहीं है तो बताइये सम्बन्ध किससे रहेगा? जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व है, उसीसे सम्बन्ध रहेगा। क्या ऐसा हो सकता है कि सम्बन्ध-कर्तामें उसकी स्मृति उदित न हो कि जिससे उसने सम्बन्ध किया है? ऐसा कभी नहीं हो सकता। सम्बन्ध-कर्ता उसकी स्मृति है जिसका उससे सम्बन्ध है। जब हमारा

सम्बन्ध प्रभुसे है तो हमारा अस्तित्व क्या हुआ? प्रभुकी स्मृति। अब आप बताइये कि जहाँ हम अपनेमें और प्रभुकी स्मृतिमें भेद करते हैं, दूरी मानते हैं कि हम अलग हैं और प्रभुकी स्मृति अलग है तो भाई! साधन सिद्ध हुआ ही नहीं। साधन सिद्ध तभी होगा, जब हमारा अस्तित्व और प्रभुकी स्मृति एक हो।

तात्पर्य क्या निकला? प्रभुकी स्मृति है जीवन। जीवन माने प्रभुकी स्मृति। प्रभुकी स्मृति उदित हुई? जब प्रभुसे सम्बन्ध जोड़ा और प्रभुसे सम्बन्ध कब जोड़ा? बोले, जब जगत्में प्रभुका दर्शन किया। जगत्में जो प्रभुका दर्शन नहीं कर सकता, उसका मन संसारसे कभी नहीं हट सकता। विचारसे कोई भले ही मान ले। कितना ध्यान करेंगे आप? कितनी देर ध्यान करेंगे आप? कितनी देर आप नाक बंद करेंगे, कितनी देर आप आँख बंद करेंगे? कितनी देर मनको रोकियेगा?

क्या दशा होगी? जैसे मधुमक्खियोंके काटनेके भयसे कोई जलमें डूब जाय और जब उछले, तब मक्खियाँ काटेंगी महाराज! तो जबतक हम जगत्में प्रभुका दर्शन नहीं कर सकते अथवा यों कहो कि प्रत्येक वस्तुमें प्रभुका दर्शन नहीं कर सकते, तबतक सदाके लिये मन भगवान्में लग जाय, यह बात कभी भी सिद्ध नहीं होती। किसीका लग जाय तो लग जाय। पर मैं नहीं कह सकता। हमारे यहाँकी साधनपद्धतिमें किसी साधनका विरोध नहीं किया जाता। अगर कोई मानता है कि मन लग जायगा तो लग जाय।

व्यक्तिगत जो मेरा अपना विचार है, वह यह है कि जबतक हम जगत्में प्रभुका दर्शन नहीं कर सकते, खुली आँखोंसे अपने प्यारेको नहीं देख सकते, खुले कानोंसे अपने प्यारेकी वाणी नहीं सुन सकते और स्पष्ट रूपसे उनके हाथपर हाथ नहीं फिरा सकते, तबतक सदाके लिये मन अपने प्यारेमें नहीं लग सकता। जबतक यह मालूम होता है कि हमारे प्यारेसे भिन्न भी कोई और है तथा जबतक यह मालूम होता है कि कोई गैर या कोई और है, तबतक सदाके लिये मन भगवान्में लग जाय, इसकी आशा करना मुझे तो कम-से-कम ऐसा लगता है कि मैं अपनेको धोखा देता हूँ।

भाई! जगत्में तो अपने प्रभुका दर्शन आस्तिकवाद और प्रभुमें जगत्का दर्शन भौतिकवाद। जगत्को तो जगत् मानकर जगत्की वस्तुओंसे जगत्की सेवा करना भौतिक-दर्शनकी साधना। यह हाथ भी जगत्का और इस हाथसे सेवा जिसकी की जा रही है वह भी जगत्का तो अन्तर क्या हुआ भाई! अन्तर केवल इतना हुआ कि यदि आप जगत्की सत्ता स्वीकार करके जगत्की वस्तुओंसे जगत्की सेवा करेंगे तो अन्तमें जगत्का अभाव पायँगे और जगत्में प्रभुका दर्शन करके प्रभुकी दी हुई वस्तुओंसे जगद्रूप प्रभुकी सेवा करेंगे, तब सेवाके अन्तमें प्रीति पायँगे।

प्रभुका मिलन, प्रभुकी सेवा और प्रभुका ज्ञान—इन तीनोंमें बड़ा अन्तर है भाई! प्रभुका ज्ञान तो ऐसा समझो कि जैसे जगत्को प्रभु मान लें। एक मिट्टीके ढेलेको साक्षात् पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन मान लें तो समझ लो कि उसे प्रभुका ज्ञान हो गया और जो वस्तुरूपसे प्राप्त है उससे उसकी ठीक सेवा कर दें, यह प्रभुकी सेवा। प्रभुकी प्रीति इसके बाद आती है, भाई! पहले प्रभुका ज्ञान, फिर प्रभुकी सेवा और फिर प्रभुकी प्रीति।

प्रीति कब उदित होती है? जब समस्त क्रियाओंका अन्त होता है। समस्त चेष्टाओंका अन्त, समस्त चेष्टाओंका अत्यन्त अभाव, श्रमका अभाव जहाँ होता है, वहीं प्रीतिका उदय होता है। परंतु एक बात ध्यान रहे कि चेष्टाओंका अन्त होनेपर उस शान्तिमें रमण करने लगे, तब भी प्रीतिका उदय नहीं होता। इसलिये शान्तरसके अन्तमें दास्य, सख्य और वात्सल्य आदि भावोंकी प्राप्ति उन्हींको होती है जो शान्तरसमें आसक्त नहीं हैं, शान्तरसमें रमण नहीं करते।

प्रभुकी प्रीतिकी जागृति और सर्वदुःखोंकी निवृत्ति शान्तरसमें है। इसके पश्चात् दास्यभाव, सख्यभाव, वात्सल्यभाव, माधुर्यभाव आदिकी अभिव्यक्ति होती है। तात्पर्य कहनेका यह था कि क्या आप जगत्में प्रभुका दर्शन कर सकते हैं? यह नहीं कि कोई कहे कि हम तो अपने गुरु महाराजमें भगवान्के दर्शन करते हैं या अमुक विभूतिमें प्रभुका दर्शन करते हैं। सच पूछिये तो यह कमजोर दिलकी बात है कि जिसपर विजयी नहीं हो सके, उसे भगवान् मान बैठे। अपने गुरुमें, संतमें और विभूतियोंमें भगवान्के दर्शन कोई कठिन बात नहीं है।

भाई! सूर्यको कोई आदमी नहीं बना सकता तो सूर्यमें भगवान्का दर्शन कहाँ कठिन है? अरे, गेहूँसे बिस्कुट बना सकते हैं; परंतु गेहूँ तो कोई नहीं बना सकता। इस तरह वस्तु-विशेषमें भगवत्-बुद्धि होना कोई कठिन बात नहीं है, पर यह अधूरी आस्तिकता है। पूरी आस्तिकताका तो अर्थ यह है कि भगवान्से भिन्न कुछ है ही नहीं, अभी भी नहीं है, पहले भी नहीं था और आगे भी नहीं होगा। **(क्रमशः)**

जीवनकी समस्याओंका समाधान

(श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी)

आज प्राय: हम सभी जीवनकी विविध समस्याओंसे संत्रस्त हो रहे हैं। हमारा जीवन विभिन्न कारणोंसे तनावपूर्ण है। चेष्टा करनेपर भी हम अशान्तिसे त्राण नहीं पाते हैं। ऐसी स्थितिमें 'पद-रत्नाकर' ग्रन्थ हमारा सम्बल बन सकता है। यद्यपि 'पद-रत्नाकर' 'सूर-सागर' की तरह भक्तिरसका गीतकाव्य है। पर इसमें हमारे जीवनकी विभिन्न समस्याओंके सटीक समाधान प्रस्तुत किये गये हैं। उनमेंसे ऐसे ही कुछ पद यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं*—

कई बार हमारे सामने ऐसी परिस्थितियाँ न चाहनेपर भी आ जाती हैं, जब हम उनका सामना करनेमें स्वयंको असमर्थ पाकर भयभीत होकर उनसे भागना चाहते हैं। ऐसी परिस्थितिसे उबरनेके लिये 'पद-रत्नाकर'में समाधान बताया गया है।

मानव-जीवनमें कटुता-कठिनाई विविध भाँति आतीं।
कभी-कभी वे अति भीषण बन तन-मनपर हैं छा जातीं॥
जो निराश हो रोने लगता, उसपर वे बढ़तीं भारी।
विविध प्रकारोंसे बहुसंख्यक बन, अति दुख देतीं सारी॥
हो भयभीत, छोड़कर साहस, जो कापुरुष भाग जाता।
भाग न पाता, गिर पड़ता वह, बुरी तरह कुचला जाता॥
पर जो कर विश्वास ईश्वरी बलपर, सम्मुख डट जाता।
उससे डर वे भाग छूटतीं, नहीं दुखी वह हो पाता॥

(पद-सं० १२८७)

कई बन्धुजनोंने जीवनमें इसे अपनाकर सुख-शान्तिका अनुभव किया है।

बहुत बार न चाहनेपर भी हम क्रोधके वशीभूत हो जाते हैं। क्रोध तभी आता है जब हमारी मनचाही बात नहीं होती; उस समय हम अपना विवेक खो बैठते हैं, भले ही हमें बादमें पछताना पड़े। ऐसे समयके लिये इस प्रकार सुझाव दिया गया है—

क्रोध जब आये, चुप हो रहो। "क्रोधमें राम-नाम-जप करो"॥
क्रोधको मत करने दो काम। क्रोधके समय रटो हरि नाम॥
क्रोधको खूब दिखाओ त्रास। क्रोधका करो क्षमासे नाश॥

(पद-सं० १४७८)

लोभ केवल धनका ही नहीं होता। हमारे संग्रहकी प्रत्येक प्रवृत्तिमें लोभ छाया रहता है। इसी लोभकी वृत्तिके कारण हमलोग प्राय: अशान्त रहते हैं। इससे छुटकारा पानेके लिये अनन्य मनसे भगवान्‌का भजन करना सर्वोत्तम उपाय है—

धन, जन, पद, अधिकार, कीर्ति-यश, भूमि, भवन, संतति, सम्मान।
सभी आदि-अन्तवाले हैं, क्षणभङ्गुर, दुःखोंकी खान॥
मोह-विवश—'इनमें सुख है', यह छायी मानव-मनमें भ्रान्ति।
इससे खोज रहा सुख इनमें, बढ़ते दुख नित नयी अशान्ति॥
एक मात्र प्रभुके स्वरूपगत है अतिशय सुख नित्य अनन्त।
सुख इच्छित यदि हो तो, मन अनन्यसे भजिये श्रीभगवन्त॥

(पद-सं० १३९२)

घरमें आजकल पति-पत्नीकी समस्या बेहद टेढ़ी होती जा रही है। न चाहनेपर भी प्राय: जीवनमें ऐसे प्रसंग आते ही रहते हैं, जिनसे दोनोंके जीवनमें तनाव रहने लगता है। ऐसी परिस्थितिमें हम निम्नलिखित विचारोंको अपना सकें तो तनावमुक्त हो सकते हैं—

नारी है घरकी साम्राज्ञी, पुरुष बाहरी कार्याधीश।
सेवक-सखा परस्पर दोनों, दोनों ही दोनोंके ईश॥
है घर एक, तथापि सदा है कर्मक्षेत्र दोनोंके भिन्न।
हो यदि कर्म विभिन्न न, तो बस, हो जायेगा घर उच्छिन्न॥
खूब निखरता यों दोनोंके मिलनेसे गृहस्थका रूप।
प्रीति परस्पर बढ़ती, बढ़ता पल-पल सुख-सौभाग्य अनूप॥
दोनों दोनोंको सुख देते, रहते स्व-सुख-कामना-हीन।
स्वार्थ न होनेसे दोनोंका चित्त न होता कभी मलीन॥

(पद-सं० १३२९)

इसी तरह आज पुत्र-पितामें पर्याप्त मतभेद देखनेमें आते हैं। पुत्र अपने स्वतन्त्र विचारोंको अधिक महत्त्व देता है। फलत: दोनोंमें मनमुटाव बढ़ने लगता है। ऐसी स्थितिमें वहाँ दिया गया एक सुझाव इस प्रकार है—

पुत्र सुपुत्र वही जो करता नित्य पिता-माताका मान।
तन-मन-धनसे सेवा करता, सहज सदा करता सुख-दान॥

× × ×

धर्मशील, तपनिष्ठ, मनस्वी, मितव्ययी, दाता, धृतिमान।
पुत्र वही होता कुल-तारक, फैलाता कुल-कीर्ति महान॥

(पद-सं० १३२६)

उदासीको हम अपने जीवनसे प्राय: निकाल नहीं पाते। किसी-न-किसी कारणसे जीवनयात्रामें उदासीके प्रसंग आते ही रहते हैं। श्रीपोद्दारजी उदासीसे दूर रहनेके लिये कहते हैं—

जग की छोड़े आस, प्रभुमें कर विश्वास।
ले वह सुख की साँस, कभी न रहे उदास॥

(पद-सं० १३१०)

हम यदि अपने जीवनमें इन बातोंको उतार सकें तो निश्चय ही सुखी हो सकते हैं।

* यहाँ दिये गये सभी पद 'गीताप्रेस'से प्रकाशित भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा विरचित 'पद-रत्नाकर' ग्रन्थसे उद्धृत हैं।

परिवारमें कैसे रहें ?

पिताका वात्सल्यभरा कर्तव्य

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

(१) राजा अश्वतरका आख्यान

नाग देवताओंकी कोटिमें आते हैं। ये पाताललोकमें रहते हैं। उस समय नागोंके राजा अश्वतर थे। उनके छोटे भाईका नाम कम्बल था। नागराजके दो पुत्र थे। उन्होंने दोनों पुत्रोंको सभी विद्याओंमें पारंगत बनानेमें अत्यधिक श्रम किया था। एक दिन पिताने दोनों पुत्रोंसे कहा, 'बेटा! तुम दोनों राजनीति आदि विविध शास्त्रोंको जान चुके हो, अब तुम्हें पृथ्वीका व्यावहारिक और भौगोलिक ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिये। इसलिये तुम दोनों भूलोकमें जाओ।'

नागराजके दोनों पुत्र ब्राह्मणरूपमें पृथ्वीपर पर्यटन करने लगे। उस समय पृथ्वीपर ऋतध्वज नामक एक सुयोग्य युवराज थे, वे सबको सम्मान देते थे। सबसे प्रेम करते थे और सबको अपना समझते थे। नागराज अश्वतरके दोनों पुत्रोंको भी उन्होंने अपने स्नेहपाशमें मैत्रीभावसे बाँध लिया था। दोनों नागपुत्र युवराज ऋतध्वजके प्रेममें मग्न हो गये। रातको पाताललोक चले जाते, परंतु वहाँ वे युवराजके वियोगमें लम्बी-लम्बी साँसें लेते रहते थे।

एक दिन अश्वतरने पूछा—'पुत्रो! तुम दोनोंका भूलोकके प्रति इतना प्रेम क्यों है? तुम लोग दिनमें पाताललोकमें दिखते नहीं हो, केवल रातमें ही मैं तुम दोनोंको देख पाता हूँ।'

पुत्रोंने कहा, 'पिताजी! पृथ्वीपर शत्रुजित् नामके राजा हैं, जिनके पुत्रका नाम ऋतध्वज है। वे बड़े ही गुणवान्, शीलवान् और विनयी हैं। उनके द्वारा अर्पित किये हुए सुन्दर उपचारों—भोगोंने हमारा मन हर लिया है। ऋतध्वजके बिना न तो पाताललोक और न भूलोकमें ही हमारा मन लगता है। पिताने कहा, 'तुम्हारा मित्र ऋतध्वज धन्य है। मैं कह नहीं सकता कि उसका पिता कितना पुण्यात्मा है, जिसके पुत्रमें गुण-ही-गुण हैं। अब तुम दोनों मेरी एक बातका उत्तर दो कि तुम दोनोंने अपने मित्रके चित्तको प्रसन्न करनेके लिये उनकी कोई इच्छा पूरी की है? मेरे घरमें जो सुवर्ण, रत्न और वाहन आदि उनके लिये उचित दिखायी दे, उन्हें तुम दे सकते हो।' पुत्रोंने कहा, 'वे सभी तरहसे समृद्ध हैं। हमारे पास कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे उन्हें देकर कृतकृत्य हुआ जाय।' पिताने कहा, 'प्रत्येकके पास किसी-न-किसी चीजकी कमी होती है। हमें सोचकर बताओ कि उनके पास किस चीजकी कमी है?' पुत्रोंने कहा कि उनके पास एक ऐसी चीजकी कमी है, जिसे न हम दोनों पूरा कर सकते हैं और न आप ही। पिताने आग्रह करते हुए पूछा कि उन्हें किस चीजकी कमी है?

पुत्रोंने कहा, 'पिताजी! उनकी एक प्राणप्रिया पत्नी थी जिसका नाम था मदालसा।' तालकेतुने धोखेसे उसके प्राण हर लिये। पूरी कथा यह है कि एक बार ऋतध्वजके पिताके पास गालव ऋषि पहुँचे। उन्होंने अपने योगबलसे एक घोड़ेका निर्माण कर उन्हें देते हुए कहा, 'आजकल पृथ्वीपर
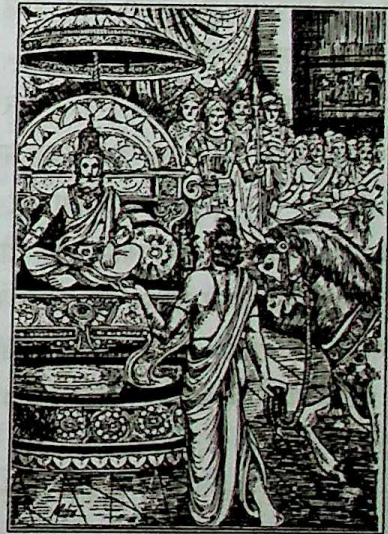
बहुत-से दानव आ गये हैं, इसपर चढ़कर आप उन दानवोंसे अपनी प्रजाका रक्षण कर सकते हैं। राजाने घोड़ा अपने पुत्र ऋतध्वजको दिया और कहा, 'युवराज! तुम इस घोड़ेपर बैठो और अपनी प्रजाकी रक्षाके लिये दानवोंका संहार करो।' युवराज बहुत ही शूरवीर था। वह प्रतिदिन घोड़ेपर बैठकर पृथ्वीका चक्कर लगाता और दानवोंका विनाश करता। अन्तमें उनके लोकमें जाकर उसने दानवराज पातालकेतुका भी वध किया। तब तालकेतु नामक उसका छोटा भाई

राजकुमारसे बदला लेनेके लिये मुनिके वेषमें पृथ्वीपर रहने लगा। वह जानता था कि युवराजका अपनी पत्नी मदालसापर बहुत स्नेह है और मदालसा भी उसके वियोगमें एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। तालकेतु मुनिका कपट वेष बनाकर राजकुमारकी प्रतीक्षा करने लगा। जब वे उसके आश्रमके पास आये तो उसने उनसे कहा कि राजकुमार! मैं तुमसे एक सहायता चाहता हूँ। यदि तुम हाँ कहो तो मैं कहूँ; क्योंकि तुम दृढप्रतिज्ञ हो। मैं एक यज्ञ करूँगा। उस यज्ञमें अनेक इष्टियाँ होंगी। उसमें सुवर्णकी दक्षिणा अपेक्षित है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि यह गलेका आभूषण मुझे दे दो और इस आश्रमकी रक्षा करो, तबतक मैं जलमें प्रवेश कर वरुणदेवताकी स्तुति करता हूँ। राजकुमारने अपना कण्ठाभरण उसे दे दिया। वह कपटी दानव उसे लेकर जलमें प्रवेश कर गया और जलके भीतर-ही-भीतर होता हुआ राजमहलमें पहुँच गया तथा उसने यह सूचना भी दी कि राजकुमारको किसी दानवने मार डाला है। मैं राजकुमारका यह कण्ठाभरण लाया हूँ। उसे देखकर मदालसाने अपने प्राण त्याग दिये।

अश्वतरके पुत्रोंने कहा, 'पिताजी! राजकुमारको अपनी प्राणवल्लभा मदालसाका ही शोक है। राजकुमारने दूसरा विवाह नहीं किया। इस दुःखको हमलोग दूर नहीं कर सकते।' राजा अश्वतरने कहा, 'दुनियामें कुछ भी असम्भव नहीं है। मैं माता सरस्वतीको प्रसन्न कर उनसे गान-विद्या प्राप्तकर भगवान् शंकरको प्रसन्न करूँगा और उनसे मदालसाको पुत्रीरूपमें प्राप्त करूँगा। फिर तुम मदालसाको राजकुमारको अर्पित कर देना।'

अश्वतरकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने वर माँगनेको कहा। नागराजने कहा, 'मदालसाने जिस रूपमें प्राण त्यागा था ठीक उसी अवस्था, रूप एवं गुणमें ही मेरी पुत्रीके रूपमें मुझे प्राप्त हो जाय।'

भगवान् शंकरने कहा कि तुम पितरोंका श्राद्ध करके मध्यम पिण्डको खा लेना। इससे मदालसा तुम्हारे मध्यम फणसे उसी रूप, गुण और अवस्थामें प्रकट हो जायगी।

अश्वतरने भगवान् शंकरके बताये अनुसार किया और

मदालसा प्रकट हो गयी। उसके बाद राजा अश्वतरने राजकुमार ऋतध्वजको बुलाकर मदालसाको उन्हें अर्पित कर दिया।

यह है पिताका पुत्रोंके प्रति प्रेम और कर्तव्य।

(२) पिताका वात्सल्य (आधुनिक आख्यान)

एक पत्रिकामें एक छात्रने अपनी आपबीती घटनाका वर्णन किया है। उसने लिखा है कि उसके पिता एक साधारण गृहस्थ थे। उनके पास इतनी ही खेती थी कि उससे एक छोटे परिवारकी भोजन एवं वस्त्रकी व्यवस्था हो जाय। छात्र कुशाग्रबुद्धिका था। प्रारम्भिक शिक्षाके बाद लोगोंने उसके पिताको उसे उच्च शिक्षाहेतु बाहर भेजनेको प्रेरित किया। पिताने पुत्रको शहर भेज दिया और स्वयं कुलीका कार्य करके उसे शिक्षाहेतु धन भेजने लगा।

अवकाशमें छात्र घर आ रहा था। ट्रेनसे स्टेशनपर उतरनेपर उसने कुली-कुलीकी आवाज लगायी। छात्रका पिता जो वहाँ कुलीका कार्य करता था, उसका सामान उठाकर उसके पीछे-पीछे चलने लगा। अँधेरा होनेके कारण वह पिताको पहचान न सका। घर पहुँचनेपर जब उसने देखा कि कुली और कोई नहीं, स्वयं उसके पिता ही हैं तो वह लज्जित होकर उनके चरणोंपर गिर गया। छात्रके पूछनेपर पिताने कहा, 'बेटा! तुम्हें उच्च शिक्षा दिलानेके लिये धनकी आवश्यकता थी, इसीलिये मैं कुलीका कार्य करने लगा था।'

धन्य है पिताका हृदय!

पाश्चात्त्य जीवन-शैली और बढ़ती बीमारियाँ

(डॉ० श्रीमती मधु पोद्दार, एम्०डी० (मेडि०))

आजकल हमारे देशमें मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हार्ट-अटैक, दमा, टी०बी०, कैंसर एवं एड्स-जैसे विभिन्न रोगोंमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, जिसके लिये नित्य नये-नये कारणों तथा इलाजकी खोजें हो रही हैं; किंतु इन रोगोंका फैलाव रुकनेकी अपेक्षा निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। अगर हम सभी रोगोंके मूलमें नजर डालें तो सिर्फ़ एक ही मुख्य कारण नजर आता है, वह है अपनी पुरानी जीवन-शैलीकी उपेक्षा एवं पाश्चात्त्य संस्कृतिका अन्धानुकरण। आज हमारा जीवन पश्चिमके रंगमें रँगकर विभिन्न बीमारियोंको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे निमन्त्रण दे रहा है, चाहे वह पाश्चात्त्य भोजन हो या पेय जल, पाश्चात्त्य गीत-संगीत हो या पश्चिमी रहन-सहन, पश्चिमी चिकित्सा-पद्धति हो या बीमारियोंके इलाज एवं बचावके पश्चिमी तौर-तरीके, जिनमें हम मूल कारणोंको नज़रअंदाज करके, पश्चिमी महँगी दवाओंपर ही व्यर्थ धन व्यय कर रहे हैं। फलस्वरूप अनेक अन्य नयी-नयी बीमारियोंको भी जन्म दे रहे हैं।

सर्वप्रथम अगर हम भारतीय रहन-सहन एवं खान-पानकी तुलना पाश्चात्त्य जीवन-शैलीसे करते हुए इन बीमारियोंके कारणोंको समझें तो स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह आजके पिज्जा, बर्गर-जैसे अधिक कैलोरी तथा चर्बीवाले पाश्चात्त्य जंक फूड एवं मांसाहार ही मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप एवं हार्टअटैकसहित करीब १०८ बीमारियोंके लिये जिम्मेदार हैं, जबकि प्राचीन कालमें हर भारतीय चावल, दाल, गेहूँ, चना, हरी सब्जी, फल, दूध, देशी घी एवं सरसोंके तेलसे निर्मित शाकाहारी भोजन लेता था, जो वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्, वसा, विटामिन एवं मिनरलके आधारपर एक संतुलित भोजन था; जिससे न तो मोटापा होता था और न ही हायपरकोलेस्ट्रोलिमिया (रक्तमें अधिक कोलेस्ट्रोल) एवं न ही आज-जैसे आधुनिक रोग होते थे। पर इस भोजनको रूढ़िवादी और अवैज्ञानिक मानकर हम लोगोंने इसे छोड़ दिया तथा पश्चिमी चालोंमें आकर पिज्जा, बर्गर, रिफाइण्ड तेल तथा मांसाहारको अपना लिया, जो महँगे तो हैं ही, साथ-ही-साथ स्वास्थ्यके लिये भी अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानोंद्वारा यह तथ्य प्रमाणित हो चुका है कि १०० ग्राम मांसाहारसे जहाँ ११४ कैलोरी एवं ८—२० ग्राम प्रोटीन मिलती है, वहीं १०० ग्राम आटेसे ३००-४०० कैलोरी, १०० ग्राम दालसे २४ ग्राम प्रोटीन एवं सोयाबीनसे ४४ ग्राम प्रोटीन मिलती है, यानी मांसाहारसे पाँच गुना ज्यादा प्रोटीन एवं वह भी सस्ती; क्योंकि एक ग्राम शाकाहारी प्रोटीनपर जहाँ २-४ पैसेका खर्च आता है, वहीं एक ग्राम मांसाहारपर सात गुना (१४ पैसा) खर्च आता है यानी मांसाहार अपेक्षाकृत कम पौष्टिक और महँगा भोजन तो है ही, साथ ही हृदयरोगसहित १०८ बीमारियों—जैसे कि हड्डियोंका कमजोर होना, गुर्देकी बीमारियाँ, क़ब्ज़, गठिया, माइग्रेन, लकवा, फालिज, दौरे, स्कर्वी, जिगररोग, एनिमिया, पित्ताशयकी पथरी, रतौंधी एवं विभिन्न कैंसर रोगोंके लिये भी जिम्मेदार है। इसलिये अमरीकामें आजकल 'मीटलेस मील' का चलन जोरोंपर है तथा करीब ४५% डॉक्टर और जनता मांसाहार छोड़कर शाकाहारी बन चुके हैं। पिज्जा बर्गर-जैसे जंक फूडके विरोधमें भी आजकल अमरीकामें विरोध शुरू हो चुका है; क्योंकि आँकड़ोंके अनुसार करीब तीन लाख अमरीकी हर वर्ष मोटापेसे उपजी बीमारियोंसे मर रहे हैं तथा एक अमरीकी 'सीजर' ने तो पिज्जा, बर्गर खिलानेवाले रेस्तराँके ऊपर करोड़ों रुपयेका दावा भी कर दिया है कि ऐसे भोजनसे उसका वजन १३० कि०ग्रा० हो गया है तथा वह डायबिटीज़, हाई ब्लडप्रेशर एवं हाई कोलेस्ट्रॉलसे पीड़ित होकर दो बार हार्टअटैकका शिकार भी हो चुका है, जबकि उसके परिवारमें आनुवांशिक रूपसे इस तरहकी कोई बीमारी नहीं रही है। भारतमें भी ऐसे भोजनके प्रचलनसे ही मोटापेके कारण इन रोगोंमें बढ़ोत्तरी हो रही है। अतः हमें अभीसे जागरूक होकर ऐसे भोजनका त्याग कर देना ही उचित है।

इसी तरह पश्चिमके गलत प्रचारसे प्रभावित होकर हमने देशी घी छोड़कर रिफाइंड तेलको आत्मसात् कर लिया है। अब अनुसन्धानोंसे यह प्रमाणित हो चुका है कि यह तेल स्वास्थ्यके लिये ज्यादा हानिकारक है; क्योंकि ऐथेरोस्कलेरोसिस (धमनियोंमें कोलेस्ट्रॉलका जमाव) जो हार्टअटैक एवं फालिजके लिये जिम्मेदार है, रिफाइण्ड तेल खानेवालोंमें अधिक होता है। देशी घीका ओमेगा-६ फैटी

एसिड ही वास्तवमें ओमेगा-६ एवं ओमेगा-३ फैटी एसिड्सका अनुपात ठीक रखनेमें सहायक होता है एवं हृदयके विभिन्न रोगोंसे बचाव करता है जबकि पश्चिमवालोंने अपना रिफाइण्ड तेल बेचनेके लिये हम भारतीयोंके मनमें देशी घीके बारेमें भ्रम तथा भय उत्पन्न कर दिया है।

इसी तरह आज हमने शिकंजी एवं ठंडाई-जैसे भारतीय पेय-पदार्थोंको छोड़कर मिनरल वाटर, पेप्सी एवं कोक-जैसे पाश्चात्त्य शीतल पेयजलोंको आत्मसात् कर लिया है, जो एक तरफ हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमताको तो घटाते ही हैं, वहीं दूसरी तरफ पेट, मस्तिष्क तथा हड्डियोंके विभिन्न रोगोंको भी बढ़ा रहे हैं। अमरीकाकी पत्रिका 'दि अर्थ आइलैण्ड जनरल' द्वारा किये गये शोध एवं उससे निकले निष्कर्ष इस तथ्यको साबित कर चुके हैं कि कोकको एक बोतलमें ४०—७२ मि०ग्रा० तक नशीले तत्त्व, ग्लिसरीन, अल्कोहल, इस्टरगम तथा पशुओंसे प्राप्त ग्लिसरोल एवं साइट्रिक एसिड है, जो हमारी आँतोंको तो नुकसान पहुँचाते ही हैं, साथ ही हमारी हड्डियोंको भी कमजोर कर रहे हैं, जिसके कारण वे जल्दी टूटती एवं देरसे जुड़ती हैं। जर्मनी-स्थित 'न्यू आइन्सेनवर्ग' के एक अध्ययनसे पता चला है कि ज्यादामात्रामें कोला पीनेवाली लड़कियोंकी हड्डियाँ अधिक टूटती हैं (करीब पाँच गुना ज्यादा)। यह अध्ययन अमरीकामें मैसच्यूसेस्ट्स-स्थित 'हावर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ' में किया गया, जिसमें ४५० लड़कियोंको शामिल किया गया था। इसके अलावा इन पेयजलोंमें कितना अधिक एसिड होता है, यह इस बातसे ही स्पष्ट हो जाता है कि जो हड्डियाँ वर्षोंतक जमीनमें नहीं गल पातीं, वे इन पेयजलोंमें १० दिन रखनेमें ही गल जाती हैं या फिर इन पेयजलोंको यदि शौचालयमें एक घंटेके लिये छोड़ दिया जाय तो वहाँकी फर्श एकदम चमक जाती है। पेप्सीमें भीगे हुए कपड़ेसे वस्त्रोंकी ग्रीस एवं बर्तनोंकी जंगतक हट जाती है। यानी पेप्सी एवं कोकसे हम स्वयं अपने पेट और हड्डियोंकी बीमारियोंको आमन्त्रित कर रहे हैं तथा फिर इन बीमारियोंको दूर करनेके लिये अन्य दवाइयोंपर धन व्यय कर रहे हैं, जबकि मूल कारण वही रहा है।

फैशन एवं आधुनिकताके नामपर शराब, सिगरेट और गुटखा जहाँ जिगरकी विभिन्न बीमारियों एवं कैंसर आदि रोगोंको जन्म देता है तो पश्चिमकी नकलसे किया गया यन्त्रीकरण एवं उससे होनेवाला प्रदूषित वातावरण फेफड़ोंके विभिन्न रोगों—जैसे दमा, कान तथा मस्तिष्ककी विभिन्न बीमारियोंके लिये उत्तरदायी है। शराबका अत्यधिक सेवन जहाँ पेट तथा जिगरकी बीमारियोंको जन्म देता है, वहीं अनेक दुर्घटनाओं एवं उससे बढ़नेवाली अपङ्गताके लिये भी जिम्मेदार है। जबकि हम इसे नज़रअंदाज करके सिर्फ़ पोलियो और उससे होनेवाली अपङ्गतापर ही ध्यान दे रहे हैं तथा शराबकी बिक्रीको बढ़ावा दे रहे हैं। इसी तरह कर्कश आवाजमें बजते हुए पाश्चात्त्य-संगीत हमारी श्रवणशक्तिको नष्ट कर रहे हैं तो पाश्चात्त्य जीवन-शैली एवं नैतिकताका पतनरूप एड्स्-जैसी घातक बीमारियोंकी वृद्धि भी कर रहे हैं।

यह अजीब विडम्बना है कि विभिन्न अनुसन्धानोंद्वारा प्रमाणित इन कारणोंको जाननेके बावजूद हम इसे नजरअंदाज कर रहे हैं तथा फैशन एवं आधुनिकताके नामपर पश्चिमका अन्धानुकरण करके स्वयं इन बीमारियोंको बढ़ा रहे हैं; फिर इन्हीं रोगोंके बचाव तथा इलाजमें भी पश्चिमकी ही महँगी दवाओंपर धनका अपव्यय करके गरीबी और इन दवाओंसे बढ़नेवाले अन्य रोगोंको निमन्त्रण दे रहे हैं एवं यह चक्र चलता ही जा रहा है, जिसमें फँसकर हम मूर्ख बनकर छले जा रहे हैं, चाहे वह मिनरल वाटर, रिफाइण्ड तेल, पिज्जा एवं बर्गरका मामला हो या हिपेटाइटिस, एड्स्-जैसी बीमारियोंकी दवाओं या वैक्सीनका। विदेशी कम्पनियाँ विभिन्न प्रकारके भय एवं भ्रम फैलाकर, एयर कंडीशंड कमरोंमें बैठकर विभिन्न आँकड़े बनाकर, प्रायोजित अनुसन्धान तथा तथ्य देकर एवं दुष्प्रचार करके कम खतरनाक रोगोंकी अपनी महँगी दवाएँ तथा वैक्सीन बेच रही हैं, जिससे टी०बी०, मलेरिया या टाइफॉइड्-जैसी अनेक ठीक होनेवाली बीमारियोंकी उपेक्षा हो रही है।

अतः आज जब अध्यात्मका स्थान भौतिकता एवं भारतीयताका स्थान पाश्चात्त्य जीवन-शैलीने ले लिया है तथा हमने आधुनिकता एवं विज्ञानके नामपर पश्चिमका अन्धानुकरण करके विभिन्न प्रकारकी बीमारियोंको आमन्त्रित कर लिया है, तब हमारे देशके बुद्धिजीवियों, कर्णधारों एवं सञ्चार-माध्यमोंका यह परम कर्तव्य है कि वे पश्चिमी देशोंद्वारा प्रायोजित चालोंको समझें तथा उनके दुष्प्रचारसे होनेवाले कुप्रभावों एवं दुष्परिणामोंके बारेमें जनताको जाग्रत् करें। आज आवश्यकता इस बातकी है कि हम पश्चिमी सभ्यताके अन्धानुकरणका विरोध करके अपनी पुरानी सभ्यता और संस्कृतिको बढ़ावा दें तथा पूर्वजोंके ज्ञानको कोरी कल्पना न मानकर उसे पूर्णतया वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत समझते हुए समाजमें उचित स्थान दिलायें, ताकि हम भारतीय जनमानस फिरसे पूर्णतया स्वस्थ जीवन पा सकें।

विदुरनीति

आठवाँ अध्याय

[गताङ्क पृ०-सं० ९७७ से आगे]

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं
विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम्।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य
यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित्॥ २३॥
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा॥ २४॥
नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती
नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी।
सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन्
न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात्॥ २५॥
अधीत्य वेदान् परिसंस्तीर्य चाग्नी-
निष्ट्वा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च।
गोब्राह्मणार्थं शस्त्रपूतान्तरात्मा
हतः संग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति॥ २६॥
वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्च
धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च।
त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं
प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुङ्क्ते॥ २७॥
ब्रह्म क्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः
क्रमेणैतान्न्यायतः पूजयानः।
तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपाप-
स्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुङ्क्ते॥ २८॥
चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो
हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध।
क्षात्राद् धर्माद्धीयते पाण्डुपुत्र-
स्तं त्वं राजन् राजधर्मे नियुङ्क्ष्व॥ २९॥

धृतराष्ट्र उवाच

एवमेतद् यथा त्वं मामनुशाससि नित्यदा।
ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथाऽऽत्थ माम्॥ ३०॥
सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते॥ ३१॥
न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित्।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम्॥ ३२॥

जो बुद्धि, धर्म, विद्या और अवस्थामें बड़े अपने बन्धुको आदर-सत्कारसे प्रसन्न करके उनसे कर्तव्य-अकर्तव्यके विषयमें प्रश्न करता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता॥ २३॥ शिश्न और उदरकी धैर्यसे रक्षा करे अर्थात् कामवेग और भूखकी ज्वालाको धैर्यपूर्वक सहे। इसी प्रकार हाथ-पैरकी नेत्रोंसे, नेत्र और कानोंकी मनसे तथा मन और वाणीकी सत्कर्मोंसे रक्षा करे॥ २४॥ जो प्रतिदिन जलसे स्नान-संध्या-तर्पण आदि करता है, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहता है, नित्य स्वाध्याय करता है, पतितोंका अन्न त्याग देता है, सत्य बोलता और गुरुकी सेवा करता है, वह ब्राह्मण कभी ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता॥ २५॥ वेदोंको पढ़कर, अग्निहोत्रके लिये अग्निके चारों ओर कुश बिछाकर नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा यजन कर और प्रजाजनोंका पालन करके गौ-ब्राह्मणोंके हितके लिये संग्राममें मृत्युको प्राप्त हुआ क्षत्रिय शस्त्रसे अन्तःकरण पवित्र हो जानेके कारण ऊर्ध्वलोकको जाता है॥ २६॥ वैश्य यदि वेद-शास्त्रोंका अध्ययन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा आश्रितजनोंको समय-समयपर धन देकर उनकी सहायता करे और यज्ञोंद्वारा तीनों* अग्नियोंके पवित्र धूमकी सुगन्ध लेता रहे तो वह मरनेके पश्चात् स्वर्गलोकमें दिव्य सुख भोगता है॥ २७॥ शूद्र यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी क्रमसे न्यायपूर्वक सेवा करके इन्हें संतुष्ट करता है तो वह व्यथासे रहित हो पापोंसे मुक्त होकर देह-त्यागके पश्चात् स्वर्गसुखका उपभोग करता है॥ २८॥ महाराज! आपसे यह मैंने चारों वर्णोंका धर्म बताया है; इसे बतानेका कारण भी सुनिये। आपके कारण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर क्षत्रियधर्मसे च्युत हो रहे हैं, अतः आप उन्हें पुनः राजधर्ममें नियुक्त कीजिये॥ २९॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! तुम प्रतिदिन मुझे जिस प्रकार उपदेश दिया करते हो, वह बहुत ठीक है। सौम्य! तुम मुझसे जो कुछ भी कहते हो, ऐसा ही मेरा भी विचार है॥ ३०॥ यद्यपि मैं पाण्डवोंके प्रति सदा ऐसी ही बुद्धि रखता हूँ, तथापि दुर्योधनसे मिलनेपर फिर बुद्धि पलट जाती है॥ ३१॥ प्रारब्धका उल्लङ्घन करनेकी शक्ति किसी भी प्राणीमें नहीं है। मैं तो प्रारब्धको ही अचल मानता हूँ, उसके सामने पुरुषार्थ तो व्यर्थ है॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ विदुरनीति सम्पूर्ण॥

* गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्नि—ये तीन अग्नियाँ हैं।

विटामिन 'सी' का राजा आँवला

(डॉ० श्रीनन्दलालजी)

आँवलेका वानस्पतिक नाम '**एम्बिलिका आफिसिनेलिस**' (***Emblica Officinalis***) है। यह कसैला, स्वादिष्ठ, शीतल, मधुर, खट्टा, कड़वा तथा किंचित् कटु होता है। यह बालोंके लिये हितकारी, अरुचिनाशक, क़ब्ज़ियतको दूर करनेवाला, प्रमेह, विष, ज्वर एवं अफाराको दूर करनेवाला है। विटामिन 'सी' का राजा होनेके कारण यह त्वचारोग, नेत्ररोग तथा स्कर्वी नामक बीमारियोंमें तत्काल राहत देनेवाला है। आँवलेके गुणोंको आयुर्वेदके ग्रन्थ—भावप्रकाश, चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता तथा निघंटु आदिने खूब सराहा है। आँवलेमें अधिकांश रोगोंको दूर करने तथा शक्तिवर्धनकी अद्भुत क्षमता है। गर्भवती स्त्रीके लिये आँवलेका मुरब्बा बहुत लाभदायक होता है। नित्य दो नग मुरब्बा प्रातः खाली पेट गर्भवती महिलाको खिलानेसे प्रसव नैसर्गिकरूपमें बिना किसी औषधि और चिकित्सकीय सहयोगके होता है तथा शिशुमें तीव्र रोग-प्रतिरोधक क्षमता पायी जाती है, जिसके प्रभावसे शिशु अद्भुत ओजस्वी एवं सौन्दर्यसे भरपूर होता है।

'च्यवनप्राश' एक महौषधिके रूपमें प्रसिद्ध है। इसके निर्माणमें मुख्य घटक आँवला ही है। यह भी प्रसिद्धि है कि आँवलेके यथाविधि सेवनसे महर्षि च्यवन ओज एवं तेजसे सम्पन्न पूर्ण युवा हो गये थे और उन्हींके नामसे आँवलेसे निर्मित यह औषधि 'च्यवनप्राश' कहलाने लगी।

आँवलेमें एक विशेष प्रकारका रसायन पाया जाता है, जिसका नाम 'सक्सीनिक एसिड' है। यह एसिड वृद्धावस्थाको आनेसे रोकता है तथा इसमें पुनर्यौवन प्रदान करनेकी अद्‌भुत शक्ति भी है। 'सक्सीनिक एसिड' तथा इसमें मौजूद अन्य महत्त्वपूर्ण रसायन रुग्ण एवं जीर्ण कोशिकाओंके पुनर्निर्माणमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वैज्ञानिकोंका ऐसा मानना है कि आपातकालमें कृत्रिम विटामिन 'सी' के लिये टेबलेट (Tablet), कैप्स्यूल (Capsule) लिया जा सकता है, किंतु यह शरीरके अनुकूल नहीं होता। आँवलेमें नैसर्गिकरूपसे विटामिन 'सी' पाया जाता है। नीबूकी तुलनामें १७ गुना ज्यादा विटामिन 'सी' आँवलेमें मिलता है। आँवलेके बाद सबसे ज्यादा विटामिन 'सी' अमरूदमें पाया जाता है।

आँवलेका रासायनिक विश्लेषण—प्रति १०० ग्राममें विभिन्न रसायनोंकी मात्रा इस प्रकार है—

आँवलेमें विटामिन 'सी'	६८० मिग्रा/१०० ग्राम
आँवलेके रसमें विटामिन 'सी'	९२१ मिग्रा/१०० सीसी
कार्बोहाइड्रेट	१४.१ प्रतिशत
जल	८१.२ प्रतिशत
फाइबर (रेशा)	३.४ प्रतिशत
कैल्सियम	०.५ प्रतिशत
फॉस्फोरस	.०२ प्रतिशत
आयरन	१.०२ मिग्रा. प्रति १००ग्राम

आँवलेका प्रयोग—आँवलेका अनेक रूपोंमें सेवन किया जा सकता है। यथा—सूखे आँवलेको पानीमें भिगोकर, मुरब्बा, चूर्ण, रस, कच्चा तथा उबालकर आदि।

आँवला प्रकृतिद्वारा मनुष्यके लिये दिया हुआ दिव्य अमृत फल है। इसे किसी-न-किसी रूपमें हमें नित्य सेवन करना चाहिये।

यहाँ कुछ रोगोंमें आँवलेकी प्रयोगविधि प्रस्तुत है—

सफेद दाग—एक चम्मच आँवलेके चूर्णमें एक चम्मच मिस्त्रीका चूर्ण मिलाकर सुबह-शाम नित्य छः माहतक लेनेसे सफेद दाग दूर हो जाता है।

स्मरण-शक्ति—स्मरण-शक्ति बढ़ानेके लिये नित्य प्रातः खाली पेट २ नग आँवलेका मुरब्बा खायें।

डायबिटीज—नित्य एक छोटा चम्मच आँवलेका चूर्ण ताजे पानीसे सुबह-शाम सेवन करें। साथ ही प्रातःकाल १ से २ किमी० का प्रातः-भ्रमण करें, २ माहमें ही मधुमेह (शुगर) कम हो जायगी।

पथरी—मूत्राशयकी पथरी होनेपर सम मात्रामें आँवलेका चूर्ण एवं मिस्त्री मिलाकर सुबह-शाम फंकी लेनेसे आशातीत सफलता मिलती है। छः माह सुबह-शाम प्रयोग करना चाहिये।

हकलाना या तुतलाना—हकलानेवाले बच्चों या किशोर-

किशोरियोंको नित्य मुखमें सूखे आँवलेका टुकड़ा डालकर चूसना चाहिये। इससे बोली साफ आने लगेगी। इसका छः माहतक नित्य प्रयोग करें।

कृमि—कृमिरोग बच्चोंके लिये काफी खतरनाक होता है। इससे बच्चेके स्वास्थ्यपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। दुर्बलता, खूनकी कमी, उल्टी तथा बार-बार वमनकी इच्छा आदि कृमिके लक्षण हैं। ऐसेमें ताजे आँवलेका रस ६ चम्मच और शहद २ चम्मच मिलाकर सात दिनोंतक सुबह-शाम दें। इससे निश्चितरूपसे कृमि मलके साथ बाहर आ जायँगे।

अजीर्ण—भोजन करनेके बाद सम मात्रामें आँवलेका चूर्ण और मिस्त्री १ चम्मच सुबह-शाम सेवन करनेसे अजीर्ण जड़से समाप्त हो जाता है। ३० दिनोंतक प्रयोग करना चाहिये।

नेत्ररोग—सम मात्रामें आँवलेका चूर्ण मिस्त्री मिलाकर एक-एक चम्मच ताजे पानीसे सुबह-शाम सेवन करें। इससे अधिकांश नेत्ररोग ठीक हो जाते हैं। स्वस्थ व्यक्ति भी अपने नेत्रोंको स्वस्थ बनाये रखनेके लिये यह प्रयोग कर सकते हैं।

क़ब्ज़ियत—क़ब्ज़ियतसे ९० प्रतिशत लोग परेशान रहते हैं। ऐसेमें त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा) सम मात्रामें कुटवा-पिसवाकर रात्रिमें सोते समय एक चम्मच गुनगुने पानीसे पी लेना चाहिये। त्रिफला सात दिन लगातार सेवन करें, तत्पश्चात् क़ब्ज़ियत होनेपर पुनः अपनी आवश्यकतानुसार ले सकते हैं।

हृदयरोग—शारीरिक व्याधियोंमें हृदयरोग सबसे खतरनाक होता है; क्योंकि हृदयके स्वस्थ रहनेपर ही हमारा जीवन निर्भर है। हृदयने कार्य करना बंद किया नहीं कि प्राणपखेरू उड़ गये। आइये, जानें हृदयको मजबूत तथा ताकतवर बनानेका नुसख़ा—

नित्य प्रातःकाल २ नग आँवलेका मुरब्बा खायें, तत्पश्चात् गायका दूध ३०० मिली० पीयें, इसके बाद दो घंटेतक न कुछ खायें और न ही कुछ पीयें। सूखा आँवला एवं मिस्त्री चूर्ण सममात्रामें एक-एक चम्मच सुबह-शाम सेवन करनेसे हृदय ताकतवर होता है। हृदयके वॉल्व ठीक ढंगसे कार्य करते हैं। हृदयरोगियोंको यह प्रकल्प कम-से-कम एक वर्षतक नियमित अपनाना चाहिये।

नकसीर—रात्रिमें बीस ग्राम सूखा आँवला एक सौ पचास ग्राम पानीमें भिगो लें। सुबह आँवलेका टुकड़ा पानीमें थोड़ा मसलकर छान करके पी जायँ, मात्र सात दिन प्रयोग करनेसे ही लाभ दिखायी देने लगेगा।

बाल झड़ना व कमजोर होना—यह समस्या युवावर्गमें अधिक पायी जाती है। कुछ लोग तो गंजेतक हो जाते हैं। यदि ऐसी समस्या है तो सूखा आँवला बीससे चालीस ग्राम, दो सौ ग्राम पानीमें रात्रिको भिगो दें। सुबह इसी पानीसे बाल धो लें, बाल चमचमाते नजर आयेंगे। कुछ दिनोंतक नित्य ऐसा करनेसे सिरकी ऊपरी त्वचामें विटामिन 'सी' पर्याप्त मात्रामें पहुँच जायगा। फलस्वरूप आपके बालोंको प्राकृतिक ताकत मिलने लगेगी। सम मात्रामें आँवला चूर्ण और मिस्त्री मिलाकर पानीके साथ लेना भी काफी फायदेमंद है। मेंहदीके साथ रात्रिमें आँवलेका चूर्ण भिगोकर सुबह लगायें, २ घंटा सूखने दें तत्पश्चात् बाल धो लें, बालोंमें सुनहरी रंग हिलोरें मारेगा। जिनके बाल सफेद हो गये हैं, उनके लिये यह प्रयोग अच्छा है।

उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड-प्रेशर)—ऐसे व्यक्तिको नित्य आँवलेका मुरब्बा प्रातःकाल खाली पेट खाना चाहिये। यह प्रयोग छः माहतक करना चाहिये।

आँवलेका सेवन बाह्य अथवा आन्तरिक किन्हीं रूपोंमें किया जाय तो लाभ पहुँचायेगा ही, किंतु विशेष लाभ चिकित्सकीय दृष्टिसे उपयोग करनेसे ही मिलता है।
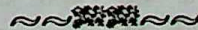
जानकी! हौं रघुपति कौ चेरौ।
बीरा दै रघुनाथ पठायौ, सोध करन कों तेरौ॥
दस और आठ पदम बनचर लै चाहत हैं गढ़ घेरौ।
तिहारे कारन स्याम मनोहर, निकट दियौ है डेरौ॥
अब जिन सोच करौ मेरी जननी! जनम-जनम हौं चेरौ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, सारद रंक कित फेरौं॥

तम्बाकू—मानव-जातिका शत्रु या मित्र?

'तम्बाकू' शब्दसे शायद ही कोई अपरिचित हो; क्योंकि यह घर-घरमें शहरसे लेकर गाँवके किसानोंतक व्यापकरूपसे फैला हुआ है। अब हम अधिक विवेचन न करके तम्बाकूके गुण-दोषोंपर दृष्टिपात करें।

तम्बाकूका जन्मस्थान भारत नहीं है। मुगलोंके शासनकालमें पुर्तगीजलोग इसे भारतमें लाये थे। इसका प्रमाण यह है कि हिंदूजातिके पुराणादि धर्मग्रन्थोंमें, जो विश्वके साहित्यमें सबसे अधिक प्राचीन हैं, कहीं भी तम्बाकूका उल्लेख नहीं मिलता। इतिहासमें दृष्टिपात करनेपर ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम कोलम्बसने अमेरिकामें वहाँके निवासियोंको तम्बाकू पीते देखा था।

तम्बाकूका उपयोग

इसका उपयोग तीन प्रकारसे होता है—प्रथम, धूम्रपान करते हैं, बीड़ी-सिगरेट और चिलम-हुक्का—आदि अलग-अलग साधन हैं। द्वितीय, चूने या पानमें मिलाकर खाते हैं और तृतीय, नाकसे सूँघते हैं। बहुत-से लोग इसका जर्दा बनाकर मुँहमें रखा करते हैं।

तम्बाकू भयङ्कर विष है

तम्बाकूकी खेतीकी रक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि संसारका कोई भी पशु-पक्षी इसके पत्ते नहीं खाता, मुँहतक नहीं लगाता। केवल एक प्रकारका कीड़ा है, जो तम्बाकूके पत्तेपर पैदा होता है और उसे खाता है। एक पुरानी ग्रामीण कहावत है—*'तम्बाकूको गधा भी नहीं खाता।'* उसको भी तम्बाकूके विषका ज्ञान होता है और सर्प तो भयके कारण तम्बाकूके खेतमें जातातक नहीं। यदि कोई साँपको पकड़कर उसके मुँहमें बलपूर्वक तम्बाकू डाल दे तो थोड़े ही समयमें वह मृत्युके मुँहमें चला जायगा। वैज्ञानिकोंने तम्बाकूमें छः प्रकारके विषोंका पता लगाया है—१-निकोटीन, २-प्रूसिक एसिड, ३-पाइरीडीन, ४-कोलीडीन, ५-एमोनिया और ६-कार्बन मोनो ओक्साइड। इसके सिवा कई प्रकारके और भी बहुत-से विष इसमेंसे निकल सकते हैं।

तम्बाकूका उपयोग करनेवालोंके मुँहका स्वाद बिगड़ जाता है, इतना ही नहीं, इससे आयु भी घट जाती है।

भूमिका नाश

जिस भूमिमें तम्बाकू बोयी जाती है, वह भूमि खराब हो जाती है। भारतमें अधिकांश ऐसी भूमिमें तम्बाकू बोयी जाती है, जिसमें अनाज नहीं बोया जाता। यदि बोया जाता है तो उपज जैसी चाहिये, वैसी नहीं उतरती। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे देशके किसान धनके लालचमें पड़कर अनाजकी अपेक्षा तम्बाकूकी खेती ही अधिक करते हैं। बहुत थोड़ी-सी भूमिमें अनाज उत्पन्न किया जाता है। अनाजकी कम खेती होनेके कारण ही अनाजका भाव आसमानपर चढ़ता जा रहा है। इसके साथ ही पशुओंके लिये चारेका संकट दिनोंदिन गम्भीर होता जा रहा है। पशुपालन महँगा हो रहा है तथा घी और दूधका अभाव भी इसी कारण है एवं गोहत्याके पापका उत्तरदायित्व भी पूरा-पूरा इसीके सिर है। लाखों एकड़ जमीनमें तम्बाकूकी खेतीके कारण गायें भूखों मर रही हैं। इससे उन्हें कसाईखानेमें भेजते हैं। हमारी सरकार भी गोहत्याका कारण घास-चारेका अभाव बतलाती है।

धनका नाश

तम्बाकूके उपयोगसे होनेवाले धनकी बरबादीका अन्दाजा लगाना भी बहुत कठिन है। कुछ लोग शौकीनीसे तथा कुछ आदतन अपनी आयका बहुत बड़ा भाग इसमें व्यय कर देते हैं। यदि इस धनका उपयोग अन्यत्र हो तो बहुत बड़ा लाभ मिल सकता है; दूसरेकी भलाई हो सकती है। तम्बाकू जितनी पीयी जाती है, वह धुएँके रूपमें हवामें मिल जाती है और जितनी खायी और सूँघी जाती है, वह कफ या थूकके रूपमें जमीनपर फेंक दी जाती है। वह सब सूर्यकी गरमीसे सूखकर, वायुके वेगसे उड़कर, वायुमें मिल जाती है। यह तम्बाकूका व्यसन चौबीस घंटेका होता है। इस प्रकार तम्बाकू वायुमें चौबीसों घंटे मिलती रहती है और इसी दूषित वायुमें सारे प्राणी श्वास लेते हैं।

तनका नाश

तम्बाकूकी आदत पड़नेके बाद मनुष्य उसे जल्दी छोड़ नहीं सकता और वह इस व्यसनका गुलाम बन जाता

है। नियत समयपर आदतके अनुसार यदि उसे तम्बाकू न मिले तो वह शौच करने नहीं जा सकता, अन्न पचा नहीं सकता तथा किसी भी प्रकारकी मेहनत-मजदूरी या दूकानदारी आदि काम नहीं कर सकता। वह भाड़ेका टट्टू बन जाता है। बहुत-से लोगोंको सुँघनीकी आदत पड़ जाती है, यह सबसे अधिक हानिकारक है; क्योंकि नाकके द्वारा सीधे फेफड़ेमें घुस जानेके कारण यह कैंसर-रोग उत्पन्न करती है। इस व्यसनसे खाँसी आती है। खाँसीसे दूसरा रोग दमा हो जाता है और दमेसे तीसरा रोग क्षय हो जाता है। चौथा, बड़े भागमें कैंसर हो जाता है। जैसे तम्बाकू खानेवालोंके गले और जीभके पिछले भागमें, बीड़ी-सिगरेट पीनेवालोंके गलेमें तथा सूँघनेवालोंके फेफड़ेमें कैंसर हो जाता है एवं पाँचवाँ रोग हृदयकी गतिको बंद करनेवाला होता है। तम्बाकूसे आँख, दिमाग, पेट और शरीरकी एक-एक नाड़ी खराब हो जाती है। बाजारमें कोई भी वस्तु शुद्ध नहीं मिलती, प्रत्येक वस्तुमें मिलावट होती है। संसारके दूसरे किसी भी देशमें खाने-पीनेकी वस्तुओंमें मिलावट नहीं की जाती, परंतु हम भारतवासी प्राय: ऐसा करते हैं। यही कारण है कि हमारा देश पतनकी ओर जा रहा है। हमको तो अपने रोगी भाइयोंके ऊपर भी दया नहीं आती। हम दवाओंमें मिलावट करते हैं। बनावटी दवाएँ बनाकर बेचते हैं। कितने ही बच्चे और नौजवान इस कारणसे चोरी करके दुर्व्यसनमें फँस जाते हैं। बीड़ी-सिगरेट न मिलनेपर भीख माँगते हैं। यदि भीख माँगनेपर भी नहीं मिलती तो घरमें या बाहर चोरी करते हैं। तम्बाकूसे भूमिका, शरीरका, धनका नाश तथा मानवताका ध्वंस—इस प्रकार सर्वनाश हो रहा है।

तम्बाकूसे मुक्त होनेके उपाय

कहावत है कि *'प्रकृति प्राणके साथ ही जाती है।'* यही बात आदतके विषयमें है। आज इस कलियुगमें अच्छी आदत जल्दी नहीं पड़ती। परंतु बुरी आदत जल्दी पड़ती है और उसे भूलनेके लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। प्रत्येक क्रियामें मानसिक बलकी आवश्यकता होती है। पहले अन्त:साक्षीके द्वारा मनोबल प्राप्त करके पक्का निश्चय कर लेना चाहिये कि मुझे तम्बाकू छोड़नी ही है। एक दिन घरमें भोजन न मिले या कच्चा अथवा ठंडा मिले तो हम उत्तेजित हो जाते हैं और लड़ने-झगड़ने लगते हैं; परंतु जब मनमें यह निश्चय कर लेते हैं कि हमको दो दिनका उपवास करना है तो वह आसानीसे सहन किया जा सकता है। ऐसे ही तम्बाकूके छोड़नेका दृढ़ निश्चय करना चाहिये। बालकके समान हठ करना चाहिये। प्राण भले ही चले जायँ, पर तम्बाकू नहीं छुऊँगा।* तीसरी बात यह है कि जो मनुष्य तम्बाकूके दास बन गये हैं, उसके बिना जो शौच नहीं जा सकते, भोजन नहीं पचा सकते, कोई भी काम मन लगाकर नहीं कर सकते, उसके बिना एक डग भी चला नहीं जाता, ऐसे लोगोंकी समस्याको सुलझानेके लिये बुद्धिपूर्वक विचार करना पड़ेगा। तम्बाकूको यदि त्याग देना है तो जिस कामकी पूर्तिके लिये तम्बाकूका उपयोग किया जाता है, उस कामकी पूर्तिके लिये किसी दूसरी वस्तुका उपयोग करना पड़ेगा। तम्बाकूका उपयोग पाँच कामोंकी पूर्तिके लिये किया जाता है—१-शौच जानेके पहले तम्बाकू पीते या खाते हैं, उसके बिना शौच नहीं उतरती, २-भोजन करनेके बाद उसको पचानेके लिये इसे खाते या पीते हैं। ३-किसीको रातको जागना होता है तो वह तम्बाकूका उपयोग करता है। ४-किसीका पेट फूल जाता है, पेटमें वायु हो जाती है तो उसके शमनके लिये वह तम्बाकूका प्रयोग करता है। ५-जब नाक बंद हो जाती है या सर्दी हो जाती है तो नाकको खोलनेके लिये सूँघनी लेते हैं।

उपाय—अब इन कार्योंके लिये हमें तम्बाकूके उपयोगकी जगह क्या करना चाहिये, इसका विचार करें—

(१) रातको काम करनेवाले वायुप्रकृतिवालोंके लिये सौंफ ५ तोले, अजवाइन १५ तोले, संचर नमक ७॥ तोले और दो बड़े नीबूका रस।

(२) गरम प्रकृतिवालोंके लिये, जिनको गरम वस्तु

* कलकत्तेमें श्रीलक्ष्मीनारायणजी मुरोदिया नामक एक संत गृहस्थ थे। उन्हें वर्षोंसे तम्बाकूका बड़ा व्यसन था। उनकी चिलमकी आग कभी बुझती ही नहीं थी। वे विनोदमें कहा करते—'धूपियाकी आग कभी ठंढी नहीं होनी चाहिये।' एक दिन उनके एक श्रद्धेय महानुभावने उनसे कहा—'लक्ष्मीनारायण! चिलम छोड़ दो।' उन्होंने पूछा—'छोड़ दूँ?' महानुभाव बोले—'हाँ-हाँ छोड़ दो।' एक क्षण मौन रहकर तुरंत श्रीलक्ष्मीनारायणजीने कहा—'छोड़ दी।' बस, उसी क्षणसे चिलमकी आग बुझ गयी। फिर उन्होंने जीवनभर कभी तम्बाकू नहीं पी।

अनुकूल नहीं होती—सौंफ १५ तोले, अजवाइन ५ तोले, संचर नमक ७॥ तोले और दो बड़े नीबूका रस।

(३) सामान्य प्रकृतिवालोंके लिये, जिनको गरम और ठण्डी दोनों वस्तुएँ अनुकूल हों, सौंफ १० तोले, अजवाइन १० तोले, संचर नमक ७॥ तोले और दो बड़े नीबूका रस।

बनानेकी विधि—संचर नमकको बारीक पीसकर काँचके गिलासमें नीबूके रसमें मिला दे। फिर सौंफ और अजवाइन साफ करके कलईवाले बर्तनमें रखकर संचर नमक मिलाये हुए रसको उसमें डाले और हाथोंसे मसलकर सबको एकमें मिला दे। फिर कोयलोंकी आगपर सेंककर डब्बेमें भर ले और सदा पास रखे।

खानेकी विधि—हर समय दो-चार दाने मुँहमें डालकर चबाता रहे, कभी मुँह खाली न रखे; क्योंकि मुँह खाली रखनेसे तम्बाकू याद आयेगी। यदि नींदमें याद आये तो उठकर इसीको मुँहमें डाल ले। दस-पंद्रह दिनोंमें व्यसन छूट जायगा।

इससे पहला लाभ होगा भोजन पचनेका, दूसरा लाभ पेटकी खराबी दूर हो जायगी और शौच जानेके पहले तम्बाकूका उपयोग नहीं करना पड़ेगा। सौंफ भोजनको पचाती है और पेटको साफ रखती है तथा आँखोंको लाभ पहुँचाकर दृष्टिको तेज करती है।

अजवाइन और संचर नमक भोजनको पचानेके साथ-साथ वायु (गैस)-का भी नाश करते हैं। इस ओषधिके सेवनसे मुँहका स्वाद बदल जायगा; इससे जागरणमें भी सहायता मिल सकेगी और खर्च भी मामूली। परंतु यह याद रखना चाहिये कि ओषधिका उपयोग करते समय घी-दूधका सेवन आवश्यक है।

छींकके लिये नाकमें सूँघनेकी इच्छा हो तो सूर्यके सामने नाक ऊपर करके खड़े रहनेसे एक-दो मिनटमें छींक आ जाती है और नाक तथा दिमाग साफ हो जाते हैं। यदि छींक न भी आये तो नाक अवश्य खुल जायगी। सूर्यनारायणकी किरणोंमें इतनी अधिक दिव्य शक्ति है कि प्रातः सूर्य-किरणोंका शरीरमें स्पर्श होनेसे अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। इसीलिये सूर्य-स्नान और सूर्य-नमस्कारको ऋषि-मुनियोंने प्रधानता प्रदान की है। (संध्या-वन्दनमें सूर्यार्घ्यका विधान है।) सारे दिन सूर्यसे मनुष्यको विटामिन 'डी' मिलता रहता है।

सूँघनीके बदलेमें कपड़ेसे छाना हुआ बारीक नमक अथवा नीलगिरी तेल ले सकते हैं। कपड़ेकी बत्ती बनाकर नाकमें डालनेसे यह काम पूर्ण हो सकता है।

भारतकी काया-पलट

यदि हम भारतवासी तम्बाकू छोड़कर इसके ऊपर खर्च होनेवाले धनको इकट्ठा करें तो एक वर्षमें अरबों रुपये हो जायँगे। लाखों गायोंको चारा दे सकेंगे और इससे लाखों डेरी तथा गायें हो जायँगी। शुद्ध दूध-घीकी नदियाँ बहने लगेंगी और भारतकी काया-पलट होकर नवनिर्माणका स्वप्न शीघ्र ही मूर्तिमन्त हो जायगा।

यूरोप और अमेरिका जाग उठे हैं। उन लोगोंकी शोधशालाएँ काम कर रही हैं। आज लंदनकी सरकार तम्बाकूके विरुद्ध पुस्तकें छपा रही है। स्वीडनकी सरकार तम्बाकूके प्रचारपर प्रतिबन्ध लगा रही है और भारतका दुर्भाग्य है कि अन्नके उत्पादनको छोड़कर तम्बाकूकी उन्नतिमें प्रयास कर रहा है।

भारतीय कैंसर सोसायटीके एक डॉक्टरने शोध किया है कि तम्बाकू पीनेसे कैंसरका रोग उत्पन्न होता है। अभी हालमें वैज्ञानिकोंने अनुसंधानके द्वारा बतलाया है कि फेफड़ेके कैंसरका कारण तम्बाकू पीनेकी आदत है। आशा है कि इस विवेचनसे पाठकवर्ग स्वयं विचार करेंगे और दूसरोंको विचारनेके लिये प्रेरणा प्रदान करेंगे।

क्या वश हमारा है भला, हम दीन हैं, बलहीन हैं।
मारो कि पालो, कुछ करो तुम, हम सदैव अधीन हैं।
प्रभुके यहाँसे भी कदाचित्, आज हम असहाय हैं?
इससे अधिक अब क्या कहें, हा! हम तुम्हारी गाय हैं॥

(भारत-भारती)
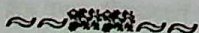
साधनोपयोगी पत्र

[१]

सबमें भगवान् हैं

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण।

आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें कुछ विलम्ब हो गया, इसके लिये क्षमा करें। हमलोगोंका जन्म भारतवर्षमें हुआ है, भारतवर्षकी भूमि अत्यन्त पवित्र है। इसलिये हमारा सौभाग्य है। भगवान्‌की यह हमपर बड़ी कृपा है, इसमें कोई संदेह नहीं; परंतु भगवान्‌के लिये तो भारत और भारतेतर सभी देश—अनन्त ब्रह्माण्डका प्रत्येक स्थान समान है तथा सब स्थानोंके निवासी चराचर सभी जीव उनके अपने हैं। सच्ची बात तो यह है कि भगवान्‌की दृष्टिमें उनके अपने सिवा और कुछ है ही नहीं—'**मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति**'।

हम यदि अपनेको भगवान्‌की संतान मानें तो जीवमात्र सभी उनकी प्रिय संतान हैं। वे ही सबके एकमात्र परम पिता या वात्सल्यमयी माता हैं। माता-पिताको अपने सभी बालक प्रिय होते हैं। उनका सभीपर स्नेह और वात्सल्य है। वे सभीका हित चाहते हैं और सभीको सुखी बनाना चाहते हैं। इस दृष्टिसे जगत्‌के हम सभी जीव परस्पर भाई-बहिन हैं, फिर चाहे हम भारतमें जन्मे हों या यूरोपमें, अमेरिकामें अथवा ईरान-अफगानिस्तानमें। हम सभीको परस्पर एक-दूसरेके हितकी इच्छा करनी चाहिये और एक-दूसरेको सदा सुख पहुँचानेका प्रयत्न करना चाहिये। जिनका हृदय वात्सल्यपूर्ण है, वे माता-पिता उस पुत्रपर कैसे प्रसन्न हो सकते हैं, जो अपने दूसरे भाई या भाई-बहिनोंको दुःखी देखकर, उन्हें दुःखी बनाकर, सुखी होना चाहता है। 'हिंदू सुखी रहें और सब सुखसे वञ्चित हों; भारतवासी सुख-सम्पन्न रहें, अन्य देशवासी दुःख भोगें; मनुष्य सुखी हों, इतर प्राणी सुख प्राप्त न करें। बल्कि सभीका सुख उनसे निकलकर हमारे पास आ जाय, उनका दुःख ही हमारा परम सुख बन जाय।' ऐसी भावना कितनी पापमयी है और परम पिता भगवान्‌को कितना अप्रसन्न करनेवाली है, इसपर ज़रा अन्तस्तलसे विचार करें।

हमारे यहाँ तो यह सिद्धान्त माना गया है और यह सत्य है कि चराचर सभी रूपोंमें—अखिल जगत्‌के रूपमें हमारे भगवान् ही अभिव्यक्त हो रहे हैं। सब वही हैं या सब उन्हींके शरीर हैं—वे सबमें सदा समानभावसे विराजमान हैं। अतएव किसी भी जीवको सुख पहुँचाना उनको सुख पहुँचाना है, किसीकी सेवा करना उन्हींकी सेवा करना है। किसीको प्रणाम करना उन्हींको प्रणाम करना है और इसी प्रकार किसीको दुःख पहुँचाना, किसीकी हानि करना तथा किसीका तिरस्कार करना उन्हींको दुःख पहुँचाना, नुकसान पहुँचाना एवं तिरस्कृत करना है। वेदका पवित्र आदेश है—

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

(शुक्लयजु० ४०।१)

इस अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड-चेतनरूप जगत् है, यह सब ईश्वरसे व्याप्त है, उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक भोगते रहो। आसक्त मत होओ। धन किसका है?

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित् समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(११।२।४१)

यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी और समुद्र—सभी भगवान्‌के शरीर हैं। ऐसा समझकर जो कोई भी मिले, उसे अनन्यभावसे प्रणाम करे।

स्वयं भगवान् गीतामें कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(६।३०)

जो सर्वत्र (सम्पूर्ण प्राणियोंमें) मुझे देखता है और सब (प्राणियों)-को मुझमें देखता है उससे मैं कभी अदृश्य नहीं होता और वह मुझसे कभी अदृश्य नहीं होता।

इन सब शास्त्रवाक्योंपर ध्यान देकर हमें ऐसा बनना चाहिये कि जिससे हमारी क्रियामें, हमारे वचनमें और हमारे मनमें भी कभी किसीके अहितकी कल्पना भी न आये; किसीको दुःखी देखकर सुखी होनेका असत् तथा पापमय संकल्प कभी न उठे। यह निश्चय मान लेना चाहिये कि

जिससे दूसरेका अहित या उसे दुःख होगा, उससे हमारा हित या हमको सुख कभी हो ही नहीं सकता। उचित तो यह है कि अपने पास जो कुछ सुख-सामग्री हो, उसे जहाँ उस सुख-सामग्रीके अभावसे दुःख फैला है, वहाँ बाँटते रहें। उनकी अपनी वस्तु समझकर आदरपूर्वक उनको देते रहें और इसीमें अपनेको तथा उस सुख-सामग्रीको धन्य समझें। **'त्वदीयं वस्तु गोविन्द मया तुभ्यं समर्पितम्।'** शेष भगवत्कृपा।

[२]

मानवताकी रक्षा

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण।

आपका कृपापत्र मिला। मेरी समझसे मनुष्य पहले मनुष्य है, फिर वह किसी सम्प्रदायका अनुयायी है। जिस मनुष्यने अपने मनुष्यत्वको खो दिया, वह किसी विशिष्ट सम्प्रदायका अनुयायी भी कैसे माना जा सकता है। सत्-सम्प्रदाय तो वस्तुतः मनुष्योंके ही होते हैं। मनु महाराजने मानवके लिये दस धर्म बतलाये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(६।९२)

धृति, क्षमा, मनका निग्रह, चोरीकी वृत्तिका अभाव, बाहर-भीतरकी शुद्धि, इन्द्रियोंका संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।

जिनमें ये गुण मौजूद हैं और जो इन गुणोंके सम्पादनमें लगा हुआ है, वही मानव है। जो दूसरेका बुरा चाहता है, बुरा करता है, सम्प्रदायभेदसे द्वेषयुक्त होकर किसीसे घृणा करता और उसके धर्मपर आक्षेप करता है, वह तो मानवतासे गिर जाता है। उसे धर्मात्मा कैसे माना जाय।

किस धर्ममें भगवान्का क्या स्वरूप माना गया है, सृष्टिके निर्माणका क्याः क्रम माना गया है। इसको लेकर झगड़नेकी आवश्यकता साधारण मनुष्यको नहीं है। इसका तर्क-वितर्क या तो गम्भीर विचारवाले दार्शनिक कर सकते हैं या झगड़ालू प्रकृतिके लोग। साधारण मनुष्य तो अपने सीधे मार्गसे चलता रहे। खण्डन-मण्डनमें पड़े ही नहीं। यही उसके लिये सुभीतेकी बात है। हाँ, इतना अवश्य ध्यान रखे कि उसके उस मार्गमें चलनेसे मनुकथित उपर्युक्त दस मानवधर्म अथवा श्रीमद्भगवद्गीताके १६वें अध्यायमें बतलाये हुए दैवी सम्पत्तिके गुण कम तो नहीं हो रहे हैं। यदि वे कम हो रहे हैं तो अपने मार्गपर विचार करना चाहिये और जिस किसी सत्पुरुषपर श्रद्धा हो, उनसे पूछकर मार्गकी भूलको मिटानेका प्रयत्न करना चाहिये। नहीं तो, चुपचाप अपने मार्गपर चलते रहना चाहिये।

आपके दूसरे प्रश्नका उत्तर यह है कि भगवान् श्रीरामका या विष्णुभगवान्का ध्यान करनेके समय यदि श्रीकृष्णका ध्यान होने लगे तो आपको यही मानना चाहिये कि भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीविष्णु और भगवान् श्रीकृष्ण एक ही हैं। इनके मात्र लीलास्वरूप भिन्न हैं, तत्त्वतः इनमें कोई भेद नहीं है। भगवान् इस सिद्धान्तका निश्चय करानेके लिये ही श्रीकृष्णरूपमें मेरे ध्यानमें आये हैं। साधकको सदा सावधान रहना चाहिये—न तो वह अनेक भगवान् माने और न भगवान्के किसी रूपको भगवान् न माने। वह यदि श्रीरामके स्वरूपका उपासक है तो यह माने कि मेरे भगवान् श्रीराम ही कहीं विष्णुरूपमें, कहीं शिवरूपमें, कहीं श्रीकृष्णरूपमें, कहीं गणेशरूपमें, कहीं सूर्यरूपमें, कहीं जगदम्बारूपमें और कहीं नाम-रूपरहित निर्गुण-निराकार निर्विशेषरूपमें उपासित होते हैं। इसी प्रकार श्रीविष्णु, शिव, श्रीकृष्ण, गणेश, सूर्य, देवी और निराकार-निर्गुणके उपासक समझें। हम भगवान्के जिस रूपकी उपासना करते हैं, वही भगवान् हैं; दूसरे लोगोंके उपास्यरूप भगवान् नहीं हैं, ऐसा मानते हैं तो हमारे भगवान् हमारी उपासनाकी सीमातक ही रह जाते हैं। हम स्वयं ही अपने भगवान्को छोटा बना लेते हैं और यदि यह मानें कि अलग-अलग सब भगवान् हैं तो भगवान् अनेक हो जाते हैं, कोई भी एक भगवान् नहीं रहते। अतएव अनन्यताका यही भाव है कि उपासना भगवान्के एक ही नाम-रूपकी करें और भगवान्के दूसरे सब नाम-रूपोंको उन्हीं भगवान्के नाम-रूप समझें। किसीका विरोध नहीं, खण्डन नहीं और अपने उपास्यमें नित्य अनन्यनिष्ठा।

परंतु जान-बूझकर इष्टके स्वरूप और नामको बार-बार बदलना नहीं चाहिये। इससे मनकी एकाग्रता तथा इष्टनिष्ठामें बाधा आती है। तत्त्वतः एक मानते हुए ही, यथासाध्य एक ही स्वरूपको सर्वोपरि परम इष्टदेव मानना तथा सदा-सर्वदा उसीके नामका जप करना चाहिये। इससे साधनमें सुविधा होती है। शेष भगवत्कृपा।

मेरे विचार

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

वर्तमान समयकी आवश्यकताओंको देखते हुए मैं अपने कुछ विचार प्रकट कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि अगर कोई व्यक्ति मेरे नामसे इन विचारों, सिद्धान्तोंके विरुद्ध आचरण करता हुआ दिखे तो उसको ऐसा करनेसे यथाशक्ति रोकनेकी चेष्टा की जाय।

मेरे दीक्षागुरुका शरीर शान्त होनेके बाद जब वि०सं० १९८७ में मैंने उनकी बरसी कर ली, तब ऐसा पक्का विचार कर लिया कि अब एक तत्त्वप्राप्तिके सिवाय कुछ नहीं करना है। किसीसे कुछ माँगना नहीं है। रुपयोंको अपने पास न रखना है, न छूना है। अपनी ओरसे कहीं जाना नहीं है, जिसको गरज होगी, वह ले जायगा। इसके बाद मैं गीताप्रेसके संस्थापक सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सम्पर्कमें आया। वे मेरी दृष्टिमें भगवत्प्राप्त महापुरुष थे। मेरे जीवनपर उनका विशेष प्रभाव पड़ा।

मैंने किसी भी व्यक्ति, संस्था, आश्रम आदिसे व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं जोड़ा है। यदि किसी हेतुसे सम्बन्ध जोड़ा भी हो तो वह तात्कालिक था, सदाके लिये नहीं। मैं सदा तत्त्वका अनुयायी रहा हूँ, व्यक्तिका नहीं।

मेरा सदासे यह विचार रहा है कि लोग मुझमें अथवा किसी व्यक्तिविशेषमें न लगकर भगवान्‌में ही लगें। व्यक्तिपूजाका मैं कड़ा निषेध करता हूँ।

मेरा कोई स्थान, मठ अथवा आश्रम नहीं है। मेरी कोई गद्दी नहीं है और न ही मैंने किसीको अपना शिष्य, प्रचारक अथवा उत्तराधिकारी बनाया है। मेरे बाद मेरी पुस्तकें ही साधकोंका मार्गदर्शन करेंगी। गीताप्रेसकी पुस्तकोंका प्रचार, गौरक्षा तथा सत्संगका मैं सदैव समर्थक रहा हूँ।

मैं अपना चित्र खींचने, चरण-स्पर्श करने, जय-जयकार करने, माला पहनाने आदिका कड़ा निषेध करता हूँ।

मैं प्रसाद या भेंटरूपसे किसीको माला, दुपट्टा, वस्त्र, कम्बल आदि प्रदान नहीं करता। मैं खुद भिक्षासे ही शरीर-निर्वाह करता हूँ।

सत्संग-कार्यक्रमके लिये रुपये (चन्दा) इकट्ठा करनेका मैं विरोध करता हूँ।

मैं किसीको भी आशीर्वाद, शाप या वरदान नहीं देता और न ही अपनेको इसके योग्य समझता हूँ।

मैं अपने दर्शनकी अपेक्षा गङ्गाजी, सूर्य अथवा भगवद्विग्रहके दर्शनको ही अधिक महत्त्व देता हूँ।

रुपये और स्त्री—इन दोके स्पर्शका मैंने सर्वथा त्याग किया है।

जिस पत्र-पत्रिका अथवा स्मारिकामें विज्ञापन छपते हों, उनमें मैं अपना लेख प्रकाशित करनेका निषेध करता हूँ। इसी तरह अपनी दूकान, व्यापार आदिके प्रचारके लिये प्रकाशित की जानेवाली सामग्री (कैलेण्डर आदि)-में भी मेरा नाम छापनेका मैं निषेध करता हूँ। गीताप्रेसकी पुस्तकोंके प्रचारके सन्दर्भमें यह नियम लागू नहीं है।

मैंने सत्संग (प्रवचन)-में ऐसी मर्यादा रखी है कि पुरुष और स्त्रियाँ अलग-अलग बैठें। मेरे आगे थोड़ी दूरतक केवल पुरुष बैठें। पुरुषोंकी व्यवस्था पुरुष और स्त्रियोंकी व्यवस्था स्त्रियाँ ही करें। किसी बातका समर्थन करने अथवा भगवान्‌की जय बोलनेके समय केवल पुरुष ही अपने हाथ ऊँचे करें, स्त्रियाँ नहीं।

कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनोंमें मैं भक्तियोगको सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ और परमप्रेमकी प्राप्तिमें ही मानवजीवनकी पूर्णता मानता हूँ।

जो वक्ता अपनेको मेरा अनुयायी अथवा कृपापात्र बताकर लोगोंसे मान-बड़ाई करवाता है, रुपये लेता है, स्त्रियोंसे सम्पर्क रखता है, भेंट लेता है अथवा वस्तुएँ माँगता है, उसको ठग समझना चाहिये। जो मेरे नामसे रुपये इकट्ठे करता है, वह बड़ा पाप करता है। उसका पाप क्षमाके योग्य नहीं है।

नीतिके आख्यान—

(१)

गुरुजनोंके वचनोंपर श्रद्धा रखनी चाहिये

[ब्राह्मण-कर्कटक कथा]

किसी नगरमें ब्रह्मदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। एक बार कुछ कार्यवश वह दूसरे ग्राम जाने लगा तो उसकी माने कहा—बेटा! अकेले क्यों जा रहे हो, किसी साथीको साथ ले लो। ब्रह्मदत्तने उत्तर दिया—मा! तुम डरो नहीं, यह रास्ता निर्विघ्न है। साथीकी आवश्यकता नहीं है।

मा उसके इस दृढ़ निश्चयको जानकर पासकी बावलीसे एक कर्कटक (केकड़े)-को पकड़ लायी और उसे देते हुए बोली—वत्स! यदि तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक है ही तो इस केकड़ेको ही साथ ले लो। यह तुम्हारा सहायक होगा। पहले तो ब्रह्मदत्तको केकड़ेको साथ ले जाना अच्छा नहीं लगा, वह सोचने लगा यह मेरी क्या सहायता कर सकता है? लेकिन फिर माकी बातको आज्ञारूप मानकर उसने केकड़ेको एक कपूरकी डिबियामें रखकर अपने झोलेमें डाल लिया और अपने गन्तव्यकी ओर चल पड़ा।

कुछ दूर जानेके बाद गरमी और धूपसे व्याकुल हो वह एक वृक्षके नीचे विश्राम करने लगा। वृक्षकी शीतल छायामें शीघ्र ही उसे नींद भी आ गयी। उस वृक्षके खोखलेमें एक सर्पका निवास था। ब्रह्मदत्तको सोता देख वह उसे डँसनेके लिये कोटरसे बाहर निकला, पर कपूरकी सुगन्धसे आकृष्ट हो वह झोलेमें रखी डिबियाको निगलने लगा। सर्पके दन्त-प्रहारसे डिबिया टूट गयी और उसमेंसे निकलकर केकड़ेने साँपको अपने तीखे नाखूनोंसे विदीर्ण कर डाला। इस प्रकार साँपको अपनी दुष्टताका फल मिल गया।

उधर नींद खुलनेपर ब्रह्मदत्तने देखा कि पासमें ही एक साँप मरा पड़ा है। उसके मुँहमें डिबिया देखकर वह समझ गया कि इसे केकड़ेने ही मारा है। वह सोचने लगा कि माकी आज्ञाको श्रद्धापूर्वक मान लेनेके कारण आज मेरे प्राणोंकी रक्षा हो गयी, अन्यथा यह सर्प मुझे जिन्दा न छोड़ता।

माता, पिता, गुरु तथा श्रेष्ठजन—सभी पूज्य तथा वन्द्य हैं, आदरणीय हैं, उनकी कल्याणकारिणी आज्ञा बिना विचार मान्य है, उनमें भी माताका स्थान सर्वोपरि है—इसीलिये उसे 'अतिगुरु' कहा गया है। अत: माता आदिके वचनोंको आज्ञारूप समझकर मानना चाहिये, इससे कल्याण ही होता है। नीतिशास्त्रमें भी कहा गया है—

मन्त्रे तीर्थे द्विजे दैवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

अर्थात् मन्त्रकी साधनामें, तीर्थयात्रा एवं तीर्थस्थानमें, ब्राह्मणोंकी सेवा आदिमें, देवताओंके विषयमें, ज्योतिषियोंमें, औषधियों तथा गुरुमें जिस व्यक्तिकी जैसी श्रद्धा होती है, उसके अनुसार ही उसे फल मिलता है।

(पञ्चतन्त्र, अपरीक्षितकारक)

(२)

स्नेही मित्रोंका हितकारी वचन अवश्य मानना चाहिये

बहुत पहलेकी बात है, मगध देशमें फुल्लोत्पल नामक एक सरोवर था। उसमें कम्बुग्रीव नामका एक कछुआ रहा करता था। उसकी मित्रता संकट और विकट नामके दो हंसोंसे हो गयी थी, जो नित्य जलाशयके तटपर आकर उसे देवर्षियों एवं महर्षियोंके पावन चरित्र तथा आख्यान सुनाया करते थे। सायंकाल होनेपर वे अपने निवासस्थानपर चले जाते थे। इस प्रकार तीनों मित्रोंके दिन आनन्दपूर्वक बीत रहे थे। परंतु समय सदैव एक-सा नहीं रहता। एक वर्ष वर्षा नहीं हुई, सरोवरमें बहुत थोड़ा ही जल बचा। उसपर भी एक दिन कुछ धीवरोंकी कुदृष्टि उस सरोवरपर पड़ गयी। उन्होंने सलाह की कि कल प्रात: ही जाल आदि लगाकर मछली और कछुओंका शिकार किया जाय। कम्बुग्रीव उनकी बातें सुनकर भयभीत हो गया, उसने यह सब अपने दोनों मित्रों—संकट और विकटको बताया तथा उनसे कोई उपाय करनेको कहा।

हंसोंने कहा—यहाँसे काफी दूरीपर एक सरोवर है, हमलोग प्रतिदिन वहाँ जाते हैं। कमलके सुन्दर फूलोंसे सुशोभित वह सरोवर अगाध जलसे परिपूर्ण है, वहाँ आप प्रसन्नतापूर्वक रह सकते हैं और हमलोगोंका सांनिध्य भी आपको मिलता रहेगा। परंतु कठिनाई यह है कि आप अपनी मन्थर गतिसे वहाँ एक वर्षमें भी नहीं पहुँच सकेंगे। यह सुनकर कम्बुग्रीवने कहा कि मित्रो! इसका एक उपाय है—मैं हलकी, किंतु मजबूत लकड़ीको बीचमें दाँतोंसे दबा लूँगा और आप दोनों उसके दोनों किनारोंको पकड़कर सरोवरकी ओर उड़

चलियेगा। इस प्रकार मैं भी वहाँ पहुँच जाऊँगा। हंसोंने कहा—मित्र कम्बुग्रीव! आपकी योजना तो बहुत ही अच्छी है, परंतु इस विषयमें हमारी एक सलाह है। आपको यहाँसे सरोवरतक पहुँचनेके पहले मौन धारण करना होगा। यदि उसके पहले आपने अपना मुख कुछ भी बोलनेके लिये खोला तो नीचे गिर पड़ेंगे। कम्बुग्रीवके सलाह स्वीकार करनेपर हंस उसे लेकर सरोवरकी ओर उड़ चले।

रास्तेमें एक स्थानपर चरवाहे गौएँ चरा रहे थे, कछुएको आकाशमार्गसे इस प्रकार जाते देख वे चिल्लाने लगे कि अगर यह गिर जाय तो इसे पकड़कर घर ले जाना चाहिये। उनके इस प्रकारके शोरको सुनकर कम्बुग्रीवको क्रोध आ गया। वह मित्रोंका हितकारी वचन भूल गया और चरवाहोंको सम्बोधित कर कहने लगा—'तुम लोगोंको धूल ही फाँकनी पड़ेगी।' इतना कहते ही लकड़ी छूट जानेके कारण वह गिरा और मर गया। इसीलिये नीति कहती है—

सुहृदां हितकामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति।
स कूर्म इव दुर्बुद्धिः काष्ठाद्भ्रष्टो विनश्यति॥

अर्थात् जो (मनुष्य) हितकारी मित्रोंका वचन नहीं मानता, वह मूर्ख लकड़ीसे गिरे हुए कछुएके समान मर जाता है। (हितोपदेश, संधिकथा)

विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र—

सत्यरक्षाके लिये प्राण देनेवाले महाराज दशरथ

'पुन्य पुंज दसरथ सम नाहीं।'

कभी देवासुर-युद्धमें कैकेयीके त्याग तथा साहससे प्रसन्न होकर दो वरदान देनेकी बात चक्रवर्ती महाराज दशरथने कह दी थी। असुरोंसे युद्ध करते समय महाराजके रथका धुरा टूट गया था। उनके अनजानमें वहाँ अपनी भुजा लगाकर रानी कैकेयीने रथको गतिमान् रखा। उस समय तो रानीने वरदान माँगा नहीं, उसे सुरक्षित रख लिया।

भगवान् श्रीरामके लीला-संकेतसे देवी सरस्वतीने प्रेरणा दी, मन्थराकी बुद्धि विकृत हुई और उसकी खोटी सलाहने रानीके चित्तमें व्यामोह उत्पन्न कर दिया। श्रीरामका कल राज्याभिषेक और उससे पूर्व रात्रिमें रानी कैकेयीने महाराज दशरथको वचनबद्ध करके दो वरदान माँगे—'भरतका राज्याभिषेक और श्रीरामको चौदह वर्षका वनवास।'

भरतका राज्याभिषेक सहज स्वीकार था चक्रवर्ती नरेशको, किंतु रामका वनवास?

जीवन मोर राम बिनु नाहीं।

—महाराज इसे निश्चित समझते हैं। इतना समझते-जानते भी वे कैकेयीकी बात अस्वीकार नहीं कर सकते। महत्त्व जीवनका नहीं है, मोह प्राणोंका नहीं है; प्राण देनेपर भी श्रीरामको वन जाकर चौदह वर्ष ***'तापस बेष बिसेष उदासी'*** रहना है, यह मर्मभेदिनी पीड़ा।

लोग कहते हैं कि 'महाराज दशरथने रानी कैकेयीके वरदानको 'हाँ' नहीं कहा। उन्होंने श्रीरामको वन जानेकी आज्ञा नहीं दी। अतः श्रीरामके, पिताके वचन मानकर वन जानेकी बात ठीक नहीं है।'

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः।

'उत्तम पुत्र वह, जो पिताकी इच्छा जानकर उसका पालन करे और जो आज्ञा मिलनेपर करे, वह तो मध्यम पुत्र है।' —यह नीति भूलनी नहीं चाहिये। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके लिये पिताका वरदान ही उनकी आज्ञा है और महाराज दशरथका मौन वरदानकी स्वीकृति नहीं है, यह कौन कहेगा?

सम्पूर्ण धर्माचरण जिनकी प्राप्तिके लिये किये जाते हैं, वे श्रीराम स्वयं ही पुत्र बनकर प्राप्त हुए। वे प्राणाधिक प्रिय—अपने मुखसे उन्हें वन जानेकी बात निकल नहीं पाती। यह सोचते ही व्याकुलता बढ़ती है और मूर्च्छा आ जाती है। लेकिन रानी कैकेयीके वरदानकी स्वीकृति ही तो है वह व्याकुलता। अन्यथा व्याकुल होनेका हेतु क्या? व्याकुलता स्वयंमें मौन स्वीकृति है।

श्रीराम आते हैं। महारानी कैकेयी उनसे अपने वरदानकी बात कहती हैं। उसे स्वीकार करके मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम माता कौसल्यासे विदा लेने जाते हैं। यह सब महाराज दशरथकी उपस्थितिमें उनके सम्मुख होता है। लौटकर श्रीराम वहीं वल्कल धारण करते हैं और पदवन्दना करके भाई तथा जानकीके साथ प्रस्थान करते हैं। महाराजका व्याकुल, असहाय मौन—इन सबका नीरव अनुमोदन ही तो है। सत्यकी रक्षाके लिये यह त्याग—ऐसा त्याग कि उसकी वेदनाने अन्तमें प्राण ले ही लिये! इस सत्यरक्षण एवं त्यागके ही कारण तो महान् महिमान्वित हैं चक्रवर्ती महाराज दशरथ।

व्रतोत्सव-पर्व

माघ कृष्णपक्ष (१९-१-२००३ से १-२-२००३ तक) सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	रवि	पुष्य	१९ जनवरी	प्रतिपदा तिथि दिन ३-३३ बजेतक, पुष्य नक्षत्र दिन ३-११ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग दिन ३-११ बजेतक
द्वितीया	सोम	अश्लेषा	२० ,,	सिंहके चन्द्रमा दिन २-४४ बजे, सायन कुम्भ राशिके सूर्य रात्रि १०-२८ बजे, भद्रा रात्रि १-४६ बजेसे
तृतीया	भौम	मघा	२१ ,,	भद्रा दिन १-०२ बजेतक, राष्ट्रिय माघमासारम्भ, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, आज गणेशोत्पत्ति, चन्द्रोदय रात्रि ८-३६ बजे, तृतीया तिथि दिन १-०२ बजेतक, अभिजित् नक्षत्रके सूर्य दिन ११-३० बजे, स्थायिजययोग दिन १-०३ बजेसे
चतुर्थी	बुध	पू०फा०	२२ ,,	कन्याके चन्द्रमा सायं ६-२७ बजे, चतुर्थी तिथि दिन ११-१५ बजेतक
पञ्चमी	गुरु	उ०फा०	२३ ,,	नेताजी-जयन्ती, यायिजययोग दिन ९-१२ बजेतक, रवियोग दिन ११-२६ बजेसे
षष्ठी	शुक्र	हस्त	२४ ,,	तुलाके चन्द्रमा रात्रि ९-०१ बजे, श्रीरामानन्दाचार्य-जयन्ती, श्रवण नक्षत्रके सूर्य सायं ५-४५ बजे, भद्रा प्रात: ६-५८ बजेसे सायं ५-४८ बजेतक
सप्तमी	सप्तमी	तिथिका क्षय		षष्ठी तिथि प्रात: ६-५८ बजेतक तदुपरि सप्तमी तिथि रात्रि शेष ४-३८ बजेतक
अष्टमी	शनि	चित्रा	२५ ,,	अष्टका श्राद्ध (पार्वणश्राद्धकी तरह), अभिजित् निवृत्त सूर्य दिन १-२१ बजे, यायिजययोग रात्रि २-१७ बजेसे रात्रि शेष ६ बजेतक, चित्रा नक्षत्र दिन ८-१२ बजेतक तदुपरि स्वाती नक्षत्र रात्रि शेष ६-३२ बजेतक, सूर्योदय प्रात: ६-३८ बजे, सूर्यास्त सायं ५-२२ बजे
नवमी	रवि	विशाखा	२६ ,,	वृश्चिकके चन्द्रमा रात्रि ११-१९ बजे, भारतीय गणतन्त्र दिवस, विशाखा नक्षत्र रात्रि शेष ४-५५ बजेतक
दशमी	सोम	अनुराधा	२७ ,,	अनुराधा नक्षत्र रात्रि ३-३३ बजेतक, यायिजययोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ९-४८ बजेसे रात्रि ३-३३ बजेतक, भद्रा दिन १०-५३ बजेसे रात्रि ९-४७ बजेतक
एकादशी	भौम	ज्येष्ठा	२८ ,,	धनुके चन्द्रमा रात्रि २-१५ बजे, षट्तिला एकादशीव्रत (सबका), स्थायिजययोग रात्रि ७-४९ बजेसे रात्रि २-१५ बजेतक
द्वादशी	बुध	मूल	२९ ,,	प्रदोषव्रत, द्वादशी तिथि सायं ६-०९ बजेतक, यमघण्टयोग रात्रि १-२२ बजेतक
त्रयोदशी	गुरु	पू०षा०	३० ,,	मासशिवरात्रिव्रत, महात्मा गाँधी स्मृति दिवस, शहीद दिवस, मेरु त्रयोदशी (जैन), रटन्ती कालिका पूजा (बंगाल), भद्रा सायं ४-५१ बजेसे रात्रि शेष ४-२३ बजेतक
चतुर्दशी	शुक्र	उ०षा०	३१ ,,	मकरके चन्द्रमा प्रात: ६-४७ बजे, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि १२-४३ बजेसे
अमावास्या	शनि	श्रवण	१ फरवरी	मौनी अमावास्या, अमावास्या तिथि दिन ३-३१ बजेतक, स्नान-दान-श्राद्ध आदिकी अमावास्या, मौनव्रत धारण करके स्नान करे, श्रवण नक्षत्र रात्रि १-०३ बजेतक

माघ शुक्लपक्ष (२-२-२००३ से १६-२-२००३ तक) सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	रवि	धनिष्ठा	२ फरवरी	प्रतिपदा तिथि दिन ३-३५ बजेतक, चन्द्रदर्शन, कुम्भके चन्द्रमा दिन १-२८ बजे, वल्लभावतार, मृत्युबाण दिन १-४२ बजेसे, द्विपुष्करयोग दिन ३-३६ बजेसे रात्रि १-५५ बजेतक, पञ्चक आरम्भ दिन १-२९ बजेसे
द्वितीया	सोम	शतभिषा	३ ,,	द्वितीया तिथि सायं ४-१३ बजेतक, मृत्युबाण दिन १-१७ बजेतक, रवियोग रात्रि ३-१९ बजेसे
तृतीया	भौम	पू०भा०	४ ,,	मीनके चन्द्रमा रात्रि १०-३९ बजे, रवियोग रात्रि शेष ५-०७ बजेतक, स्थायिजययोग सायं ५-१९ बजेसे रात्रि शेष ५-०७ बजेतक, सूर्योदय प्रात: ६-३२ बजे, सूर्यास्त सायं ५-२८ बजे, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र रात्रि ५-०७ बजेतक, भद्रा रात्रि शेष ६-०६ बजेसे
चतुर्थी	बुध	उ०भा०	५ ,,	भद्रा सायं ६-५२ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, तिल चतुर्थी, कुन्द चतुर्थी, प्रदोषमें कुन्द-पुष्पके द्वारा देवपूजन, सोपपदा चतुर्थी, वेदारम्भानध्याय
पञ्चमी	गुरु	उ०भा०	६ ,,	वसन्तपञ्चमी, श्रीपञ्चमी, वागीश्वरी-जयन्ती-यात्रा, तक्षकपूजापञ्चमी, वसन्त रतिकाम महोत्सव, सरस्वती-पूजन, मत्स्याधार लेखनी-पूजा (बंगाल), धनिष्ठा नक्षत्रके सूर्य रात्रि ७-५७ बजे, रवियोग प्रात: ७-२० बजेसे रात्रि ८-४५ बजेतक
षष्ठी	शुक्र	रेवती	७ ,,	मेषके चन्द्रमा दिन ९-४८ बजे, शीतलाषष्ठी (बंगाल), अमृतसिद्धियोग दिन ९-४८ बजेतक, रवियोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग दिन ९-४९ बजेसे, पञ्चक समाप्त दिन ९-४८ बजे
सप्तमी	शनि	अश्विनी	८ ,,	अचला सप्तमीव्रत, रथसप्तमी, मन्वादि सप्तमी, रवियोग दिन १२-२५ बजेतक तदुपरि यायिजययोग, भद्रा रात्रि १-०२ बजेसे
अष्टमी	रवि	भरणी	९ ,,	भद्रा दिन २-०१ बजेतक, वृषके चन्द्रमा रात्रि ९-३५ बजे, भीमाष्टमी
नवमी	सोम	कृत्तिका	१० ,,	श्रीहरसूब्रह्मदेव-जयन्ती, चैनपुर रोहतास (बिहार), महानन्दा नवमी, स्नान-दानसे अक्षय फलकी प्राप्ति, रवियोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग और यायिजययोग सायं ५-२२ बजेसे रात्रि शेष ४-४८ बजेतक
दशमी	भौम	रोहिणी	११ ,,	मृत्युबाण दिन १०-१५ बजेसे, रवियोग प्रात: ६-२८ बजेसे सायं ५-३२ बजेतक, रोहिणी नक्षत्र रात्रि ७-२४ बजेतक, दशमी तिथि रात्रि ६-०९ बजेतक
एकादशी	बुध	मृगशिरा	१२ ,,	मिथुनके चन्द्रमा दिन ८-१२ बजे, मृत्युबाण दिन ८-५३ बजेतक, रवियोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ९ बजेतक, भद्रा सायं ६-३६ बजेसे
एकादशी	गुरु	आर्द्रा	१३ ,,	भद्रा प्रात: ७-०२ बजेतक, एकादशी तिथि प्रात: ७-०२ बजेतक, जया एकादशीव्रत (सबका), भीष्मद्वादशी, कुम्भराशिके सूर्यकी संक्रान्ति दिन ९-३३ बजे, गोदावरीमें स्नान, गो-अन्न-जल आदिका दान, तिलद्वादशी
द्वादशी	शुक्र	पुनर्वसु	१४ ,,	कर्कके चन्द्रमा सायं ४-३७ बजे, एकादशीव्रतका पारण प्रात: ७-२५ बजेतक, द्वादशी तिथि प्रात: ७-२५ बजेतक, सौर फाल्गुनमासारम्भ, सोपपदा द्वादशी, वेदारम्भानध्याय, प्रदोषव्रत, कल्पादि त्रयोदशी
त्रयोदशी	शनि	पुष्य	१५ ,,	त्रयोदशी तिथि प्रात: ७-१४ बजेतक, पुष्य नक्षत्र रात्रि १०-५४ बजेतक
चतुर्दशी	रवि	अश्लेषा	१६ ,,	सिंहके चन्द्रमा रात्रि १०-३४ बजे, स्नान-दान-व्रत आदिकी पूर्णिमा, तिल-पात्र-ऊनीवस्त्र-कम्बल आदिका दान, माघ स्नान-व्रत-यम-नियम आदि समाप्त, गुरु रविदास-जयन्ती, अग्न्युत्सव (रात्रिव्यापिनी उड़ीसा)
पूर्णिमा	पूर्णिमा	तिथिका क्षय		चतुर्दशी तिथि प्रात: ६-२५ बजेतक तदुपरि पूर्णिमा तिथि रात्रि शेष ५-३० बजेतक

व्रतोत्सव-पर्व

फाल्गुन कृष्णपक्ष (१७-२-२००३ से ३-३-२००३ तक) सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	सोम	मघा	१७ फरवरी	प्रतिपदा तिथि रात्रि शेष ४-०१ बजेतक, मघा नक्षत्र रात्रि ९-५१ बजेतक
द्वितीया	भौम	पू०फा०	१८ "	कन्याके चन्द्रमा रात्रि २-२७ बजे, त्रिपुष्करयोग रात्रि ८-४८ बजेसे रात्रि २-११ बजेतक
तृतीया	बुध	उ०फा०	१९ "	शततारकास्वर्क रात्रि ११-३४ बजे, सायन मीनराशिके सूर्य दिन १०-३० बजे, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि ७-२७ बजेसे, भद्रा दिन १-१३ बजेसे रात्रि १२-१४ बजेतक
चतुर्थी	गुरु	हस्त	२० "	तुलाके चन्द्रमा रात्रि शेष ५-०६ बजे, राष्ट्रिय फाल्गुनमास, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ९-३२ बजे
पञ्चमी	शुक्र	चित्रा	२१ "	चित्रा नक्षत्र सायं ४-१६ बजेतक, रवियोग सायं ४-१७ बजेसे
षष्ठी	शनि	स्वाती	२२ "	रवियोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग दिन २-३५ बजेतक, त्रिपुष्करयोग सायं ५-०५ बजेसे, भद्रा सायं ५-०५ बजेसे रात्रि ३-५५ बजेतक
सप्तमी	रवि	विशाखा	२३ "	वृश्चिकके चन्द्रमा प्रातः ७-२१ बजे, भानुसप्तमीपर्व, अष्टकाश्राद्ध, सप्तमी तिथि दिन २-४५ बजेतक, मृत्युबाण प्रातः ६-४६ बजेसे, त्रिपुष्करयोग दिन १२-५७ बजेतक तदुपरि यायिजययोग दिन २-४५ बजेतक
अष्टमी	सोम	अनुराधा	२४ "	जानकी-जयन्ती, मृत्युबाण प्रातः ६-३३ बजेतक
नवमी	भौम	ज्येष्ठा	२५ "	धनुके चन्द्रमा दिन १०-११ बजे, ज्येष्ठा नक्षत्र दिन १०-११ बजेतक, भद्रा रात्रि ९-४८ बजेसे
दशमी	बुध	मूल	२६ "	भद्रा दिन ८-५७ बजेतक, दुर्लभ सन्धिकरयोग दिन ८-५७ बजेतक, मूल नक्षत्र दिन ९-१४ बजेतक
एकादशी	गुरु	पू०षा०	२७ "	मकरके चन्द्रमा दिन २-३३ बजे, विजया एकादशीव्रत (सबका), एकादशी तिथि प्रातः ७-३९ बजेतक, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र दिन ८-३७ बजेतक
द्वादशी	शुक्र	उ०षा०	२८ "	द्वादशी तिथि प्रातः ६-४५ बजेतक, एकादशीव्रतका पारण प्रातः ६-४५ बजेतक, प्रदोषव्रत, सर्वार्थसिद्धियोग दिन ८-२४ बजेसे, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र दिन ८-२३ बजेतक
त्रयोदशी	शनि	श्रवण	१ मार्च	कुम्भके चन्द्रमा रात्रि ९-०२ बजे, श्रीमहाशिवरात्रिव्रत, चतुर्दशलिङ्गपूजा, श्रीवैद्यनाथ-जयन्ती, कृत्तिवासेश्वरदर्शन, सर्वार्थसिद्धियोग दिन ८-३९ बजेतक, पञ्चक आरम्भ रात्रि ९-०३ बजेसे, भद्रा प्रातः ६-२२ बजेसे सायं ६-२५ बजेतक
चतुर्दशी	रवि	धनिष्ठा	२ "	चतुर्दशी तिथि प्रातः ६-२८ बजेतक, शिवरात्रिव्रतका पारण प्रातः ६-२९ बजेके बाद; श्राद्धकी अमावास्या, धनिष्ठा नक्षत्र दिन ९-२४ बजेतक
अमावास्या	सोम	शतभिषा	३ "	मीनके चन्द्रमा रात्रि शेष ५-५९ बजे, अमावास्या तिथि प्रातः ७-०७ बजेतक, सोमवती अमावास्या, स्नान-दान आदिकी अमावास्या, मृत्युबाण रात्रि शेष ५-१६ बजेसे, शतभिषा नक्षत्र दिन १०-४१ बजेतक

फाल्गुन शुक्लपक्ष (४-३-२००३ से १८-३-२००३ तक) सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	भौम	पू०भा०	४ मार्च	प्रतिपदा तिथि दिन ८-१२ बजेतक, चन्द्रदर्शन, पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रके सूर्य रात्रि शेष ५-०८ बजे, मृत्युबाण रात्रि शेष ५-३१ बजेतक, त्रिपुष्करयोग दिन ८-१३ बजेसे दिन १२-२४ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग
द्वितीया	बुध	उ०भा०	५ "	द्वितीया तिथि दिन ९-४६ बजेतक, उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र दिन २-३३ बजेतक
तृतीया	गुरु	रेवती	६ "	मेषके चन्द्रमा सायं ४-५८ बजे, यायिजययोग दिन ११-३७ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग सायं ४-५९ बजेतक तदुपरि रवियोग, पञ्चक समाप्त सायं ४-५८ बजे, भद्रा रात्रि १२-४२ बजेसे
चतुर्थी	शुक्र	अश्विनी	७ "	भद्रा दिन १-४४ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, स्थायिजययोग दिन १-४४ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग तथा रवियोग रात्रि ७-३५ बजेतक
पञ्चमी	शनि	भरणी	८ "	वृषके चन्द्रमा रात्रि शेष ४-४८ बजे, यायिजययोग दिन ३-५१ बजेतक, रवियोग रात्रि १०-१२ बजेसे
षष्ठी	रवि	कृत्तिका	९ "	गोरूपिणीषष्ठी (बंगाल), त्रिपुष्करयोग तथा रवियोग सायं ५-५१ बजेसे रात्रि १२-३६ बजेतक तदुपरि यायिजययोग
सप्तमी	सोम	रोहिणी	१० "	होलाष्टकारम्भ, यायिजययोग रात्रि ७-३३ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि २-४५ बजेतक, सप्तमी तिथि रात्रि ७-३३ बजेतक, रोहिणी नक्षत्र रात्रि २-४५ बजेतक, भद्रा रात्रि ७-३४ बजेसे
अष्टमी	भौम	मृगशिरा	११ "	भद्रा दिन ८-१० बजेतक, मिथुनके चन्द्रमा दिन ३-३५ बजे, स्थायिजययोग रात्रि ८-४९ बजेतक, यमघण्टयोग और रवियोग रात्रि शेष ४-२७ बजेसे, मृगशिरा नक्षत्र रात्रि शेष ४-२६ बजेतक
नवमी	बुध	आर्द्रा	१२ "	सन्धिकरयोग रात्रि ९-४१ बजेसे रात्रि शेष ५-४१ बजेतक, रवियोग प्रातः ६-०८ बजेसे सायं ५-५९ बजेतक, सूर्योदय प्रातः ६-०७ बजे, सूर्यास्त सायं ५-५९ बजे, मृत्युबाण रात्रि शेष ४-४५ बजेसे, आर्द्रा नक्षत्र रात्रि शेष ५-४१ बजेतक
दशमी	गुरु	पुनर्वसु	१३ "	कर्कके चन्द्रमा रात्रि १२-१४ बजे, मृत्युबाण रात्रि शेष ४-४५ बजेतक, फगु दशमी (उड़ीसा), यायिजययोग रात्रि ९-५९ बजेसे, सर्वार्थसिद्धियोग तथा रवियोग प्रातः ६-०७ बजेसे सायं ५-५९ बजेतक
एकादशी	शुक्र	पुनर्वसु	१४ "	आमलकी एकादशीव्रत (सबका), रंगभरी एकादशी, श्रीकाशीविश्वनाथ शृंगार-दिन, मीन राशिके सूर्यकी संक्रान्ति रात्रि शेष ४-४८ बजे (दूसरे दिन पुण्यकाल)
द्वादशी	शनि	पुष्य	१५ "	आज संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल दोपहरतक, गौ-अन्नदान, गोदावरी-स्नान, सौर चैत्रमासारम्भ, 'वसन्त-ऋतु'
त्रयोदशी	रवि	अश्लेषा	१६ "	सिंहके चन्द्रमा प्रातः ६-२५ बजे, प्रदोषव्रत, अश्लेषा नक्षत्र प्रातः ६-२५ बजेतक तदुपरि मघा नक्षत्र रात्रि शेष ५-४७ बजेतक
चतुर्दशी	सोम	पू०फा०	१७ "	होलिका दाह, भद्रा सायं ६-२२ बजेसे रात्रि शेष ५-२५ बजेतक, अतः होलिका दाह भद्रा पुच्छमें रात्रि १-०४ बजेसे रात्रि २-१५ बजेके अंदर, सूर्योदय ६-०३ बजे, सूर्यास्त सायं ५-५७ बजे, चौमासी चौदस (जैन), व्रतकी पूर्णिमा
पूर्णिमा	भौम	उ०फा०	१८ "	कन्याके चन्द्रमा दिन १०-२८ बजे, स्नान-दान आदिकी पूर्णिमा, काशीमें होली, चतुःषष्ठीयात्रा, मन्वादि पूर्णिमा, हुताशनीजन्म, दोलयात्रा, श्रीचैतन्य महाप्रभु-जयन्ती, उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रके सूर्य दिन १२-५९ बजे, पूर्णिमा तिथि सायं ४-३० बजेतक

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गीताजीके पाठसे सुस्वास्थ्यकी प्राप्ति

वैसे तो बाल्यावस्थासे ही मुझमें आस्तिकता और भगवान्‌के प्रति श्रद्धा थी। फिर भी दूषित वातावरणके कारण मैं कुसङ्गतिमें पड़ गया और भगवान्‌को भूलकर बड़े-बड़े दूषित पापकर्म करने लग गया। भगवान्‌की अजब लीला है। मेरे पिताजीने मेरा स्कूल जाना छुड़वाकर मुझे नौकरी करनेके लिये पंजाबके अहमदगढ़की एक दूकानपर भेज दिया। उन दिनों मेरी आयु १५ वर्ष थी। किसी पापकर्मके कारण मेरे शरीर (गुप्ताङ्ग)-में कुष्ठरोग हो गया। अनेक प्रकारकी दवाएँ लेनेपर भी कोई लाभ नहीं हुआ तो किसीने मुझे बताया कि अमुक ग्राममें एक प्रेत पूजित होता है, उसके चरणोंमें प्रसाद चढ़ाओ तो लाभ होगा। उसके कथनानुसार प्रयत्न किया, परंतु कुछ लाभ न हुआ। मैं अपने गाँव लौट आया। उसके बाद पुनः नौकरी करनेके लिये मुम्बई चला गया। वहाँपर भी दवाएँ लीं; परंतु बीमारी ठीक होनेकी अपेक्षा बढ़ी ही। दुःखमें भगवान्‌का स्मरण हर कोई करता है, परंतु सुखमें भगवान् किसीको यादतक नहीं आते। मैं भी भगवत्स्मरण करता था ताकि बीमारी ठीक हो जाय। उसके बाद मैं नोखामें नौकरी करने लग गया। उस समय मेरी स्थिति ऐसी हो गयी कि चलना-फिरना भी अत्यन्त कठिन हो गया। फिर भी किसी तरहसे नौकरी करता था। घरमें गरीबी होनेके कारण काम छोड़ भी नहीं सकता था और बीमारीका भी किसीको पता नहीं चला। न ही मैंने किसीको बताया। उसके बाद मैं जम्मू काम करनेके लिये चला गया। वहाँपर मैं प्रायः भगवान् श्रीरघुनाथजीके मन्दिरमें जाया करता था। साथ ही मैं गीताप्रेसकी पुस्तकें पढ़ा करता था। एक दिन मैंने एक पुस्तकमें पढ़ा कि गीताजी श्रीभगवान्‌से बड़ी हैं। यह बात पढ़ते ही मैं रोगको तो भूल गया और मेरे मनमें गीताकी पुस्तक प्राप्त करनेकी इच्छा जाग्रत् हो गयी। अब मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि किसी प्रकार श्रीगीताजी मिल जायँ। इस इच्छाके छः महीने बाद भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य कृपासे मुझे श्रीमद्भगवद्गीताजीका स्वाध्याय करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस दिनसे मैंने श्रीगीताजी पढ़नी शुरू की, उसी दिनसे मुझे कुछ ऐसा लगने लगा कि वेदना अल्प-सी हो रही है। पहले तो मुझे लगा कि यह मेरा भ्रम हैं; किंतु जैसे-जैसे पाठ करते-करते दिन बीतते गये मेरे शरीरका रोग ठीक होने लगा और विश्वास करें कुछ ही दिनोंमें मेरा शरीर एकदम स्वस्थ हो गया। यह रोग मेरे शरीरमें लगभग पाँच वर्षतक रहा। वैसे तो रोग कट जाना श्रीगीताजीके लिये बहुत ही साधारण बात है। यह इसका लौकिक प्रभाव है और अलौकिक प्रभाव तो बहुत ऊँचा है, भगवान्‌से भी बढ़कर। यह तो मैं एक श्रीगीताजीका लौकिक प्रभाव लिख रहा हूँ। इसका अलौकिक प्रभाव तो वाणीद्वारा बतलाया भी नहीं जा सकता। मैं उन सभी महापुरुषोंके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, जो श्रीगीताजीके आधे श्लोकका भी पाठ करते हैं; क्योंकि ऐसे महापुरुष सभीके लिये पूजनीय हैं। जो श्रीगीताजीका पाठ नहीं करते हैं, उन प्रेमी भाई-बन्धुओंसे मेरा यह नम्र निवेदन है कि वे भी निष्कामभावसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रीगीताजीका स्वाध्याय अवश्यमेव करें। —महीराम बैनीवाल

(२)

बैलने प्रार्थना सुनी

राजस्थानके सवाईमाधोपुर जिलेकी खण्डार तहसीलके बिचपुरी गाँवकी यह सत्य घटना है। उन दिनों हमारी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। मेरे पिताजीके पास एक ही बैल था, दूसरा वे खरीद नहीं पाये। जमीन कम थी। एक बैल किसी दूसरेका माँगकर काम चला लिया करते थे। एक बार खेत पड़े ही रह गये। बुवाईके समय कोई बैल नहीं मिल पाया। इसलिये जुताई हो नहीं सकी। मेरे पिताजी निराश हो गये। इधर स्यालूकी खेतीका समय निकला जा रहा था। अचानक पिताजीको याद आया कि हमारे यजमान गोकुल गुर्जरका बैल है, जो इस समय बुवाईसे निवृत्त है। गोकुल गुर्जरके यहाँ भी एक ही बैल था, उसने अपने भाईके बैलोंसे खेत बो दिये थे। गोकुल गुर्जरका वह बैल इतना खूँखार था कि क्या हिम्मत किसीकी जो उसे पकड़ भी ले। सारा गाँव डरता था उस बैलसे।

मेरे पिताजीने यजमान गोकुल गुर्जरसे कहा भैया! मेरे खेत खाली पड़े हैं, तू मुझे अपना बैल दो दिनके लिये दे दे। गुर्जरने कहा—महाराज! मेरा बैल आपको मार देगा। आप यदि चला सको तो मुझे बैल देनेमें कोई आपत्ति नहीं है। पिताजीने कहा ठीक है। मेरे पिताजी अब पशु-बाड़ेमें जहाँ बैल बँधा हुआ था वहाँ गये।

पिताजीको देखते ही बैल चौकन्ना एवं क्रुद्ध होकर खड़ा हो गया। खुरोंसे जमीन खोदने लगा। पिताजीने डंडा हाथसे फेंक दिया। हाथ जोड़कर बैलसे प्रार्थना करने लगे—'हे बैलदेवता! मेरे खेत खाली पड़े हैं, मैं गरीब ब्राह्मण हूँ। आप दो दिनके लिये कृपा कर दें तो मेरा भी गुजारा हो जायगा। आपके मालिकने तो मुझसे कह दिया है, अब तो सारा कार्य आपकी कृपापर है। आपसे नम्र निवेदन कर रहा हूँ, मुझ दीनपर कृपा करें।' 'जैसे भक्त भगवान्‌से प्रार्थना करता है' उसी प्रकार पिताजी बैलसे प्रार्थना करते रहे। इस प्रार्थनाका कुछ ऐसा असर पड़ा कि बैल शान्त मुद्रामें खड़ा हो गया। पिताजीने प्यारसे उसकी पीठपर हाथ फेरा और खोलकर प्यारसे हाँकते हुए खेतमें ले आये तथा हलमें जोत दिया। बैलका मालिक और गाँवके सब लोग यह अद्भुत दृश्य देखकर आश्चर्य प्रकट करने लगे कि इस ब्राह्मणने बैलपर क्या जादू कर दिया है? सारे दिन पिताजी प्रेमपूर्वक प्रार्थना करते रहे, बातें करते रहे और उस बैलसे कई दिनतक काम लेते रहे। गोकुल भी मेरे पिताजीसे मना नहीं करता और उस बैलको मेरे पिताजीके अलावा गाँवभरमें कोई काममें नहीं ले सका था। मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ कि प्रार्थनासे बैल किस प्रकार वशमें हो गया। सब जीवोंमें वही परमात्मा है, किन्तु हम पहचान नहीं पाते हैं। प्रार्थना और सद्भावनासे बैल तो क्या हिंसक पशु सिंह आदि भी वशमें हो जाते हैं—

सब जग ईश्वर रूप है भलो बुरो नहिं कोय।
जाकी जैसी भावना तैसो ही फल होय॥

इस घटनासे सिद्ध होता है कि सबमें वही परमात्मा समाया हुआ है।

काश! यदि हम इस जगत्‌को वासुदेवमय देखने लग जायँ तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है।

मुझमें राम तुझमें राम सबमें राम समाया है।
कर लो प्यार जगत में सबसे कोई नहीं पराया है॥

आपसे कोई वैर-विरोध रखे तो आप अपनी सद्भावनासे उसे अपना प्रेमी बनाइये। प्यारसे मनुष्य तो क्या क्रूर एवं हिंसक पशु भी वशमें हो जाते हैं।

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

—श्रीनारायण शर्मा

(३)

जॉन एडम्सकी न्यायप्रियता

अमरीकन राष्ट्रपति जॉन एडम्स (१७३५-१८२६) अमरीकन स्वातन्त्र्य-युद्धके प्रमुख नायकोंमेंसे थे। अमरीकन स्वातन्त्र्य-युद्धके बहुत पहिलेसे ही अमरीकामें ब्रिटिश अधिकारियोंके विरुद्ध सर्वत्र रोष और घृणा फैली हुई थी। फलतः सन् १७७० ई० में एक दिन एक अमरीकन भीड़ने एक अंग्रेज संतरीको घेरकर बुरी तरह मारना-पीटना आरम्भ किया। समाचार पाकर अंग्रेज अधिकारी कैप्टन प्रीस्टन छः सैनिकोंके साथ अंग्रेज संतरीको बचानेके लिये दौड़ा। उत्तेजित भीड़ने उसकी भी बुरी तरह मरम्मत की और एक अंग्रेज बेहोश होकर गिर पड़ा। आत्मरक्षाका कोई उपाय न देख अंग्रेजोंने भीड़पर गोली चला दी, जिससे दो अमरीकन मारे गये और तीन बादमें अस्पतालमें जाकर मर गये। प्रीस्टन और उसके छः सैनिक हत्याके अपराधमें पकड़े गये और मुकदमा चालू हो गया।

इस समय अमरीकन जनतामें प्रीस्टनके विरुद्ध बहुत उत्तेजना थी। यदि प्रीस्टन जेलमें बंद न कर दिये जाते तो सम्भवतः जनता उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालती। प्रीस्टनको सारे अमेरिकामें एक भी वकील पैरवीके लिये नहीं मिला। इसी समय जॉन एडम्सने घोषणा की कि 'प्रीस्टन निर्दोष है; उसने जो कुछ किया आत्मरक्षार्थ किया, उसकी पैरवी मैं करूँगा।' जॉन एडम्सने मुकदमेकी पैरवी की और प्रीस्टन निर्दोष छूट गये।

जॉन एडम्स एक कट्टर धार्मिक घरानेके व्यक्ति थे। उनका विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्तिको केवल भगवान्‌को ही प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उसकी प्रसन्नतामें ही सबकी प्रसन्नता और उसकी अप्रसन्नतामें ही सबकी अप्रसन्नता है। जॉन एडम्सका विश्वास सच्चा सिद्ध हुआ। स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके पश्चात् जॉन एडम्स अमेरिकाके उपराष्ट्रपति बनाये गये और जब जार्ज वाशिंगटनने तीसरी बार राष्ट्रपति बनना अस्वीकार कर दिया तब वे बहुमतसे राष्ट्रपति चुने गये।

एडम्स-वंश अमेरिकाके अत्यन्त प्रतिभाशाली वंशोंमें है। जॉन एडम्सके जीवनकालमें ही उनके सुपुत्र जॉन क्विन्सी एडम्स अमेरिकाके राष्ट्रपति चुने गये। जॉन एडम्सके पौत्र चार्ल्स फ्रांसिस एडम्स अमेरिकाकी ओरसे ब्रिटेनमें

राजदूतके पदपर रहे, जो उस समय बड़े महत्त्वका समझा जाता था।

जॉन एडम्सके प्रपौत्र हेनरी एडम्सका स्थान अमेरिकाके प्रधान साहित्यिकों और विचारकोंमें है। हेनरी एडम्स गीताके अनन्य प्रेमी थे। अपनी लङ्कायात्रामें जब वे थांडीके बौद्ध-मन्दिरमें पहुँचे तो लगभग आधे घंटेतक पवित्र वृक्षके नीचे ध्यानमग्न बैठे रहे और उसके पश्चात् उन्होंने एक लम्बी कविता लिखी Buddha and Brahma (बुद्ध और ब्रह्म)। जिसमें उन्होंने बुद्धके संन्यास-मार्गकी अपेक्षा गीताके निष्काम कर्मयोगको श्रेष्ठ ठहराया है। एमर्सनकी तरह हेनरी एडम्सने भी ब्रह्मसे ब्रह्मनिष्ठयोगी—निष्काम कर्मयोगीका—अर्थ लिया है। यह कविता पहली बार अमेरिकन पत्रिका येलरिव्युमें १९९५ में छपी थी।

—श्रीराजेन्द्रप्रसाद जैन, निस्सा

(४)

स्त्रीरूपमें देवी

वर्षों पूर्वकी घटना है। मैं बैंकसे अपना चार हजारकी कीमतका जेवर और दो हजार रुपये नकद निकलवाकर पर्समें रखकर ला रही थी। मेरे पास एक डलियामें बाजारसे लायी हुई कुछ और भी चीजें थीं। मैंने अपना पर्स इस डरसे कि कहीं रास्तेमें इधर-उधर न हो जाय, उस टोकरीमें ही रख दिया था। मैं लोकल बसमें आ रही थी। न जाने कैसे मेरा पर्स टोकरीमेंसे बसमें गिर गया। जब मैंने घर आकर देखा तो पर्स न देखकर मेरी हालत खराब हो गयी। मैंने सोचा कि मैं ऑफिस अपने पतिको फोन करूँ। मैं यह सोच ही रही थी कि इतनेमें क्या देखती हूँ कि एक भद्र महिला मेरा पर्स लिये दरवाजेपर खड़ी हैं; क्योंकि उस पर्समें मेरी नोटबुक थी, जिसपर मेरा नाम-पता लिखा था। जिससे उन्हें मेरा मकान फौरन मिल गया। मैं तो देखकर गद्गद हो गयी। मुझे तो स्त्रीके रूपमें वह देवी दिखायी दीं। आजकलके जमानेमें इतनी निर्लोभता कठिनतासे ही देखनेमें आती है। मैंने उनका नाम-पता पूछा तो उन्होंने बड़ी कठिनतासे बताया कि मेरा नाम सुशीला गुप्ता है। उन्होंने कहा कि मैंने तो अपना फर्ज अदा किया है, इसमें प्रशंसाकी क्या बात है; परंतु मेरा मन नहीं मानता कि जिसने मेरे ऊपर इतना बड़ा उपकार किया हो, मैं उसकी प्रशंसामें दो शब्द भी न कहूँ। मेरी लड़कीकी शादी है इसीलिये मैं जेवर लायी थी, यदि न मिलता तो पता नहीं मेरी क्या दशा होती।

—सरला देवी

(५)

'जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी'

बात सन् १९६२ ई० के जून मासकी है। मेरी बारहवीं कक्षाका परीक्षाफल निकला, जो अनुकूल नहीं था। मुझे काफी दुःख हुआ। मेरी माताजी मासिक 'कल्याण' पढ़ा करती थीं। मुझे निराश एवं दुःखी देखकर उन्होंने 'पढ़ो, समझो और करो' स्तम्भसे एक घटना सुनायी। उसमें एक सज्जनने लिखा कि उनका भी परीक्षाफल अनुकूल न निकलनेसे उन्हें अपना जीवन काफी अन्धकारमय प्रतीत होने लगा था। तब उन्होंने श्रीरामचरितमानसकी निम्नलिखित पंक्तियोंका प्रतिदिन पाठ करके जीवनमें सफलता और उन्नति प्राप्त की थी—

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥

× × ×

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥

अर्थात् अपना भक्त जानकर जिसपर वे (श्रीरामजी) कृपा करते हैं, उसके हृदयरूपी आँगनमें सरस्वतीजीको नचाया करते हैं। वे (श्रीरामजी) मेरी (बिगड़ी) सब तरहसे सुधार देंगे, जिनकी कृपा, कृपा करनेसे नहीं अघाती।

इन दो पंक्तियोंको मूलमन्त्र मानकर मैंने पुनः पढ़ाई प्रारम्भ की तो कभी भी कोई कठिनाई मेरे सामने नहीं आयी। परीक्षाओंमें उत्तरोत्तर मुझे सफलता प्राप्त होती गयी। मैंने 'मेनिटोबा विश्वविद्यालय'से पी-एच्०डी०की उपाधि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त एक विशिष्ट वैज्ञानिकके रूपमें भी सफलता पानेमें उक्त पंक्तियोंके नियमित पाठने मुझे सफलता दिलायी। इसी कारण आज मैं उच्च पदपर सेवा कर रहा हूँ। इन सारी सफलताओंके लिये मैं मासिक पत्र 'कल्याण' तथा उसमें इन चौपाइयोंका स्मरण दिलानेवाले सज्जनका सदैव आभारी रहूँगा। मुझे विश्वास है कि इन चौपाइयोंका जो विद्यार्थी श्रद्धासे पाठ करेगा और श्रीरामजीमें निष्ठा रखेगा उसकी निराशा तो दूर होगी ही, वह जीवनके हर क्षेत्रकी परीक्षामें सफल होगा तथा श्रीरामजीकी कृपा भी उसे प्राप्त हो जायगी।

—के० एस० मिश्र

मनन करने योग्य

सत्यप्रियता और दयालुता

डॉक्टर साहब अपनी विद्यामें पारंगत थे और भगवान्‌की कृपासे उनके हाथमें बड़ा यश था। डॉक्टर साहबकी दवा अमृतका-सा काम करती। डॉक्टरकी यह कीर्ति दूर-दूरतक फैली थी। इससे उनके यहाँ रोगियोंकी भीड़ लगी रहती। अमीर-गरीब सभी बीमार होते हैं, इसलिये अमीर-गरीब सभी उनके पास आते भी। वे सबसे समान व्यवहार करते, उन्हें आश्वासन देते और भगवत्कृपापर विश्वास करके, भगवान्‌का नाम लेकर दवा देते तथा इसी प्रकार भगवत्कृपापर विश्वासके साथ भगवन्नाम लेकर ही दवा सेवन करनेके लिये कहते। यह भगवत्कृपा तथा भगवन्नामका ही प्रभाव होगा कि उनके रोगी प्रायः शीघ्र अच्छे हो जाते। रोगीके अच्छे होनेपर वे दवा चालू न रखकर उसे संयम-नियमसे रहने तथा भगवन्नामका विशेष आश्रय लेनेकी सम्मति देते।

उस समय जमींदारी कायम थी और सर्वत्र जमींदारोंका प्रभाव था। जमींदारोंने जहाँ बहुत सेवा-उपकार, धर्मके काम किये, वहाँ उनमेंसे कई लोगोंके द्वारा मदकी प्रबलतासे बुरे काम भी बहुत बन गये।

डॉक्टर साहबके गाँवके जमींदार अच्छे आदमी थे। डॉक्टर साहबसे उनका बड़ा प्रेम भी था। घरमें खुला आना-जाना था और उनसे डॉक्टर साहबको आर्थिक लाभ भी कम नहीं था। जमींदारका लड़का बदचलन था और स्वाभाविक ही उसके साथी-संगी भी ऐसे ही थे। बड़े आदमियोंके लड़कोंसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये आवारा लोग उनकी सेवा-खुशामद करके उन्हें पतनके गर्तमें गिराया करते हैं। यहाँ भी ऐसी ही बात थी। एक कुलीन गृहस्थकी पुत्र-वधूके सम्बन्धमें साथी-संगियोंने जमींदारके लड़केको उकसाया। उन्होंने हर तरहकी सहायता देनेका वादा किया। जमींदारका लड़का तैयार हो गया। बहुत-सी अनुचित कार्रवाइयाँ हुईं। अन्तमें इसी दुष्प्रपञ्चके सिलसिलेमें जमींदार-पुत्रके द्वारा उस लड़कीके पिता सद्‌गृहस्थका खून हो गया। मामला सच्चा था। पर डॉक्टरकी रिपोर्टपर निर्भर करता था। डॉक्टरसे जमींदारने कहा—'इसे आत्महत्या सिद्ध कर दिया जाय'। पर डॉक्टरने बड़ी विनयके साथ उत्तर दिया—'आपके तथा आपके लड़केके साथ मेरी बड़ी सहानुभूति है, मैं आपके दुःखसे अत्यन्त दुःखी हूँ। आपके रोनेके साथ मुझे भी रोना आता है; पर मैं जानता हूँ कि यह आत्महत्या नहीं है, हत्या है और इसका करनेवाला आपका ही पुत्र है। तब मैं कैसे दूसरी बात लिखूँ'। जमींदारने बहुत दबाया। अन्तमें एक लाख रुपयेका लालच दिया और न माननेपर अपनी जमींदारीके बलसे बरबाद कर डालनेकी धमकी भी दी। पर डॉक्टरने अपने सत्यको नहीं छोड़ा। सच्ची रिपोर्ट लिखकर जमी-जमाई डॉक्टरी तथा आमदनीको लात मारकर गाँव छोड़कर दूसरी जगह चले गये। गाँवमें रहनेपर जमींदार तंग करता।

डॉक्टर सत्यके हिमायती, न्यायपरायण होनेके साथ ही दयालु भी थे। उन्होंने रिपोर्टके साथ ही कलेक्टरको एक पत्र इस आशयका लिख दिया जो सत्य था कि लड़केने आवेशमें यह हत्या की है, उम्र छोटी है, जमींदारका एकमात्र लड़का है और गतवर्ष ही विवाह हुआ है, अतएव सरकार इसपर दयापूर्ण भावसे विचार करे। उस समय कलेक्टर ही सर्वेसर्वा होते थे। लड़केपर मुकद्दमा चला, पर सरकारकी इच्छाके अनुसार उसे केवल दो सालकी सजा हुई। डॉक्टरकी सत्यप्रियता और दयाशीलताका ही यह सुपरिणाम था।

ईश्वरकी ओर चित्तवृत्ति रखनेसे तुम्हारी उन्नति ही होगी। इस मार्गमें कभी अवनति तो होनी सम्भव ही नहीं।

यदि तुम ईश्वरके प्रीतिपात्र होना चाहते हो तो ईश्वर जिस स्थितिमें रखना चाहता है उसमें संतुष्ट होना सीखो।

॥ श्रीहरिः ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ७६वें वर्ष (वि०सं० २०५८-५९, सन् २००२ ई०)-के तीसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्क एवं फरवरी-अङ्ककी विषय-सूची विशेषाङ्कके आरम्भमें देखनी चाहिये।)

निबन्ध-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

पद्य सूची

संकलित पद्य-सूची

संकलित सामग्री

देशमें अकालकी स्थिति

यह सुनते आये हैं कि पूर्वके दिनोंमें कभी-कभी वर्षा आदिकी कमीके कारण देशमें किसी वर्ष अकालकी स्थिति भी आ जाती थी, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य और पशु—दोनों ही बड़ी संख्यामें अकालसे ग्रस्त होकर कालके गालमें समा जाते थे। देशके कई क्षेत्रोंमें हाहाकार मच जाता था। सेवा-समितियाँ सेवा-कार्यमें संलग्न हो जाती थीं, फिर भी अकालकी भयावह स्थितिका मुकाबला करना ही पड़ता था।

देशकी स्वतन्त्रताके बाद कुछ अंशोंमें इस परिस्थितिपर काबू भी पा लिया गया, कारण कई क्षेत्रोंमें नलकूप तथा नहरोंके द्वारा सिंचाईकी पर्याप्त व्यवस्था कर ली गयी, परंतु इसके बाद भी कृषिको वर्षाकी आवश्यकता रहती ही है।

इस वर्ष संयोगवश बहुत वर्षोंके बाद वर्षा-ऋतुमें सूखा पड़ गया अर्थात् वर्षाका अभाव रहा, इसके कारण सामान्यतः अकालकी स्थिति होना स्वाभाविक ही है। किसानोंको कठिनाईका सामना करना पड़ रहा है, फिर भी केन्द्रसरकार और राज्यसरकारकी सजगताके कारण कई स्थानोंमें स्थिति नियन्त्रणमें भी है।

परंतु राजस्थानमें आये दिन अकालकी स्थिति बन जाती है, इस वर्ष तो इस स्थितिने भयावह रूप धारण कर रखा है। विशेषकर गायोंके लिये तो यह अकाल कालके रूपमें ही उपस्थित है। इस क्षेत्रमें सूखा पड़नेके कारण गायोंके चारेका तो सर्वथा अभाव ही हो गया है। पहलेके दिनोंमें पड़ोसी राज्यों हरियाणा, पंजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश आदिसे चारा प्राप्त हो जाता था, परंतु इस बार वह भी सम्भव नहीं, कारण वहाँ स्वयं ही अभाव है। इसके साथ ही गायों और अन्य पशुओंके पीनेके लिये पानीका भी महान् संकट उपस्थित है, कारण यह न तो खरीदा जा सकता है और न बाहरसे मँगाया जा सकता है। अन्नकी भी समस्या तो है ही, मानव जिस-किसी प्रकार अपनी समस्याका समाधान करेंगे, लेकिन मूक पशु (गायों)-के लिये महान् संकटकी स्थिति है। यद्यपि राजस्थान-सरकार भी इन आपदाओंके समाधानके लिये प्रयासरत है, परंतु सरकारी काम-काज कैसे होते हैं, यह सभी जानते हैं।

अतः इस संकटसे उबरनेके लिये देशकी समाजसेवी-संस्थाओंको आगे आना चाहिये। पिछले दिनों गीताप्रेस-सेवादलके द्वारा भी कुछ राहत-कार्य प्रारम्भ किया गया है। जो व्यक्ति साधनसम्पन्न हैं, उन्हें व्यक्तिगतरूपसे अथवा स्वयंसेवी-संस्थाओंके माध्यमसे राहत-कार्यमें पूर्ण सहयोग प्रदान करनेकी आवश्यकता है, जिससे वहाँ हजारों गायोंके प्राणोंकी रक्षा की जा सके।

सेवाका अवसर प्राप्त होनेपर उससे चूक जाना आध्यात्मिक दृष्टिसे बहुत बड़ी भूल होगी।

—राधेश्याम खेमका